दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शकर।
हर हर शकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शकर॥
हर राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गोरीशकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(सस्करण २,३०,०००)

सस्कारभूमि भारतवर्षकी महिमा

अहो अमीषा किमकारि शोभन प्रसन्न एषा स्विदुत स्वय हरि।
यैर्जन्म लब्ध नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिक स्पृहा हि न॥
कि दुष्करैर्न क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृति प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्॥
कल्पायुषा स्थानजयात्पुनर्भवात् क्षणायुषा भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृत मनस्विन सन्यस्य सयान्त्यभय पद हरे॥

देवता भी भारतवर्षमे उत्पन्न हुए मनुष्योकी इस प्रकार महिमा गाते है—'अहा! जिन जीवोने भारतवर्षमे भगवान्‌की सेवाके योग्य मनुष्य-जन्म प्राप्त किया है उन्होने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वय श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्यके लिये तो निरन्तर हम भी तरसते रहते है। हम बडे कठोर यज्ञ तप व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्गका अधिकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या लाभ है? यहाँ तो इन्द्रियोके भोगोकी अधिकताके कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है अत कभी श्रीनारायणके चरणकमलोकी स्मृति होती ही नही। यह स्वर्ग तो क्या—जहाँके निवासियोकी एक-एक कल्पकी आयु होती है किंतु जहाँसे फिर ससारचक्रमे लौटना पडता है उन ब्रह्मलोकादिकी अपेक्षा भी भारतभूमिमे थोडी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है क्योकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमे ही अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीभगवान्‌को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर सकता है। (*श्रीमद्भागवत*)

इस अङ्कका मूल्य १३० रु० (सजिल्द १५० रु०)

वार्षिक शुल्क*
भारतमे १३० रु०
सजिल्द १५० रु०
विदेशमे—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क*
भारतमे ६५० रु०
सजिल्द ७५० रु०

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखे।

सस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website www.gitapress.org | e-mail booksales@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721

सदस्यता शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजे।

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यो और प्रेमी पाठकोसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८०वे वर्ष—सन् २००६ का यह विशेषाङ्क 'संस्कार-अङ्क' आपलोगोकी सेवाम प्रस्तुत है। इसमे ४७२ पृष्ठोम पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोमे विपय-सूची आदि है। कई बहुरगे एव रेखाचित्र भी दिये गये है। डाकमे सभी ग्राहकोको विशेषाङ्क-प्रेषणमे लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एव प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये। जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारम सहयोगी भी हो सकेगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-सख्या एव पता छपा है, उसे कृपया जाँच ल तथा अपनी सदस्य-सख्या सावधानीसे नोट कर ले। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारम सदस्य-सख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्रवाई नहीं कर पाते है। डाकद्वारा अङ्कोके सुरक्षित वितरणमे सही पता एव पिन-कोड आवश्यक है। अत अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एव *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अत पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१००	२८	स० नारदपुराण	१००	५३	सूर्याङ्क	६०
७	ईश्वराङ्क	९०	२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५६	वामनपुराण	७५
८	शिवाङ्क	१००	३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१५०
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३१	तीर्थाङ्क	१००	६६	स० भविष्यपुराण	९०
१०	योगाङ्क	९०	३४	स० देवीभागवत (माटा टाइप)	१३०	६७	शिवोपासनाङ्क	७५
१२	सत-अङ्क	१२५	३५	स० योगवासिष्ठ अङ्क	९०	६८	रामभक्ति-अङ्क	६५
१५	साधनाङ्क	१२०	३६	स० शिवपुराण (बडा टाइप)	११०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१८	स० वाल्मीकीय		३७	स० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०	७१	कूर्म-पुराण	८०
	रामायणाङ्क	६५	३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९०	७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
१९	स० पद्मपुराण	१४०	४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१००	७३	वेदकथाङ्क	८०
२१	स० मार्कण्डेयपुराण	५५	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान्		७४	सं० गरुडपुराणाङ्क	९०
२१	स० ब्रह्मपुराण	७०		श्रीराधाकृष्णकी दिव्य		७५	आराग्य-अङ्क (सवर्धित स०)	१२०
२२	नारी अङ्क	१००		लीलाओका वर्णन]	८०	७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	११०	४४-४५	नरसिहपुराण	६०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	
२४	हिन्दू-सस्कृति-अङ्क	१२०	४४-४५	अग्निपुराण	१२०		(११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२५	स० स्कन्दपुराणाङ्क	१५०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	७५	७८	व्रतपर्वोत्सव-अङ्क	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१२०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	७५	७९	देवीपुराण[महाभागवत]	
२७	बालक-अङ्क	११०	५१	स० श्रीवराहपुराण	६०		शक्तिपीठाङ्क	८०

सभी अङ्कापर डाक-व्यय अतिरिक्त देय हागा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य है।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरि ॥

'संस्कार-अङ्क' की विषय-सूची

[३]

॥ श्रीहरि ॥

'सस्कार-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-सख्या

विषय — पृष्ठ-संख्या

आशीर्वाद

संस्कारतत्त्व-विमर्श

जीवनमें संस्कारोंकी उपादेयता

विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रुतिका माङ्गलिक संदेश

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक (इसे) भोगते रहो, (इसमें) आसक्त मत होओ, (क्योंकि) धन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है। (ईशावास्योपनिषद्)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

शास्त्रनियत कर्मोंको (ईश्वरपूजार्थ) करते हुए ही इस जगत्में सौ वर्षोंतक जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। इस प्रकार (त्यागभावसे, परमेश्वरके लिये) किये जानेवाले कर्म, तुझ मनुष्यमें लिप्त नहीं होंगे, इससे (भिन्न) अन्य कोई प्रकार *अर्थात् मार्ग नहीं है* (जिससे कि मनुष्य कर्मसे मुक्त हो सके)। (ईशावास्योपनिषद्)

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

यदि इस मनुष्यशरीरमें (परब्रह्मको) जान लिया तब तो बहुत कुशल है, यदि इस शरीरके रहते-रहते (उसे) नहीं जान पाया (तो) महान् विनाश है। (यही सोचकर) बुद्धिमान् पुरुष प्राणी-प्राणीमें (प्राणिमात्रमें परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर इस लोकसे प्रयाण करके अमर (परमेश्वरको प्राप्त) हो जाते हैं। (केनोपनिषद्)

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

पूर्णब्रह्म परमात्मन्! (आप) हम दोनों (गुरु-शिष्य)-की साथ-साथ रक्षा करें, हम दोनोंका साथ-साथ पालन करें, (हम दोनों) साथ-साथ ही शक्ति प्राप्त करें, हम दोनोंकी पढ़ी हुई विद्या तेजोमयी हो, हम दोनों परस्पर द्वेष न करें। (कठोपनिषद्)

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

श्रेय और प्रेय—ये दोनों ही मनुष्यके सामने आते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य उन दोनोंके स्वरूपपर भलीभाँति विचार करके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है, (और) वह श्रेष्ठबुद्धिवाला मनुष्य परम कल्याणके साधनको ही भोग-साधनकी अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है, (परंतु) मन्दबुद्धिवाला मनुष्य लौकिक योगक्षेमकी इच्छासे भोगोंके साधनरूप प्रेयको अपनाता है। (कठोपनिषद्)

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥

मेरी जिह्वाके अग्रभागमें माधुर्य हो। मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता हो। मेरे कर्ममें माधुर्यका निवास हो और हे माधुर्य! मेरे हृदयतक पहुँचो। (अथर्ववेद)

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

पुत्र पिताके व्रतका पालन करनेवाला हो तथा माताका आज्ञाकारी हो। पत्नी अपने पतिसे शान्तियुक्त मीठी वाणी बोलनेवाली हो। (अथर्ववेद)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई-भाई आपसमें द्वेष न करें। बहिन बहिनके साथ ईर्ष्या न रखे। आप सब एकमत और समान व्रतवाले बनकर मृदु वाणीका प्रयोग करें। (अथर्ववेद)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

तुम सबके संकल्प एक समान हों, तुम्हारे हृदय एक समान हों और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्णरूपसे संगठित हो। (ऋग्वेद)

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

मेरी दृष्टिको दृढ कीजिये, *सभी प्राणी मुझे मित्रकी दृष्टिसे* देखें, मैं भी सभी प्राणियोंको मित्रकी दृष्टिसे देखूँ, हम परस्पर एक-दूसरेको मित्रकी दृष्टिसे देखें। (यजुर्वेद)

संस्कारोंकी महिमा

ब्राह्मसंस्कारसंस्कृत ऋषीणां समानतां सामान्यतां समानलोकतां सायोज्यतां गच्छति। दैवेनोत्तरेण संस्कारेणानुसंस्कृतो देवानां समानतां सामान्यतां समानलोकतां सायोज्यतां च गच्छति।

गर्भाधानादि ब्राह्म-संस्कारोंसे संस्कृत व्यक्ति ऋषियोंके समान पूज्य तथा ऋषितुल्य हो जाता है। वह ऋषिलोकमें निवास करता है तथा ऋषियोंके समान शरीर प्राप्त करता है और पुनः अग्निष्टोमादि दैवसंस्कारोंसे अनुसंस्कृत होकर वह देवताओंके समान पूज्य एवं देवतुल्य हो जाता है, वह देवलोकमें निवास करता है और देवताओंके समान शरीर प्राप्त करता है। (महर्षि हारीत)

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

गर्भशुद्धिकारक हवन जातकर्म, चूडाकरण तथा मौञ्जीबन्धन (उपनयन) आदि संस्कारोंके द्वारा द्विजोंके बीज तथा गर्भसम्बन्धी दोष—पाप नष्ट हो जाते हैं। (मनुस्मृति)

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

वेदाध्ययनसे, मधु-मांसादिके त्यागरूप व्रत अर्थात् नियमसे प्रातः-सायंकालीन हवनसे त्रैविद्य नामक व्रतसे ब्रह्मचर्यावस्थामें देव-ऋषि-पितृतर्पण आदि क्रियाओंसे गृहस्थावस्थामें पुत्रोत्पादनसे ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ आदि पञ्च महायज्ञोंसे और ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बनाया जाता है। (मनुस्मृति)

गर्भहोमैर्जातकर्मनामचौलोपनायनैः ।
स्वाध्यायैस्तद्व्रतैश्चैव विवाहस्नातकव्रतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

गर्भाधान-संस्कारमें किये जानेवाले हवनके द्वारा और जातकर्म नामकरण चूडाकरण यज्ञोपवीत वेदाध्ययन वेदोक्त व्रतोंके पालन, स्नातकके पालनयोग्य व्रत विवाह पञ्च महायज्ञोंके अनुष्ठान तथा अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा इस शरीरको परब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य बनाया जाता है। (महाभारत)

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सब संस्कार वेदोक्त पवित्र विधियों और मन्त्रोंके अनुसार कराना चाहिये, क्योंकि संस्कार इहलोक और परलोकमें भी पवित्र करनेवाला है। (महाभारत)

संस्कृतस्य हि दान्तस्य नियतस्य यतात्मनः ।
प्राज्ञस्यानन्तरा सिद्धिरिहलोके परत्र च॥

जिसके वैदिक संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुए हैं, जो नियमपूर्वक रहकर मन और इन्द्रियोंपर विजय पा चुका है, उस विज्ञ पुरुषको इहलोक और परलोकमें कहीं भी सिद्धि प्राप्त होते देर नहीं लगती। (महाभारत)

चित्रकर्म यथाऽनेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्विधिपूर्वकैः ॥

जिस प्रकार किसी चित्रमें विविध रङ्गोंके योगसे धीरे-धीरे निखार लाया जाता है, उसी प्रकार विधिपूर्वक संस्कारोंके सम्पादनसे ब्रह्मण्यता प्राप्त होती है। (महर्षि अङ्गिरा)

संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरुत्तरैरनुसंस्कृतः ।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्राह्मलौकिकः ॥
ब्राह्मं पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुनः ।
नाकपृष्ठं यशो धर्मं त्रिरीजानस्त्रिविष्टपम्॥

गर्भाधान आदि प्रारम्भिक तथा अग्न्याधेय आदि उत्तरवर्ती संस्कारों और दया क्षान्ति अनसूया शौच अनायास, मङ्गल अकार्पण्य तथा अस्पृहा—इन आठ आत्मसंस्कारोंसे नित्य सम्पन्न रहनेवाला द्विज ब्रह्मलोक प्राप्त करनेके योग्य हो जाता है। साथ ही पाकयज्ञों, हविर्यज्ञों और सोमयज्ञसंस्कारोंसे संस्कारसम्पन्न होकर वह यश एवं धर्मको अर्जन करके स्वर्गपृष्ठको प्राप्त होता है उसे देवलोककी प्राप्ति होती है और वह पुनः सदाके लिये उस ब्राह्मपदको प्राप्त कर लेता है जहाँसे उसका फिर पुनरागमन नहीं होता। (महर्षि शङ्ख-लिखित)

संस्कार-सुधानिधि

निवृत्ति कर्मण पापात्सतत पुण्यशीलता।
सद्वृत्ति समुदाचार श्रेय एतदनुत्तमम्॥
मानुष्यमसुख प्राप्य य सज्जति स मुह्यति।
नाल स दु खमोक्षाय सङ्गो वै दु खलक्षण ॥

पाप-कर्मसे दूर रहना, सदा पुण्यका सचय करते रहना, साधुपुरुपोके बर्तावको अपनाना और उत्तम सदाचारका पालन करना—यह सर्वोत्तम श्रेयका साधन हे। जहाँ सुखका नाम भी नहीं है, ऐसे मानव-शरीरको पाकर जो विषयोम आसक्त होता है, वह मोहमे डूब जाता है। विषयोका सयोग दु खरूप है, वह कभी दु खासे छुटकारा नहीं दिला सकता। (नारदपुराण)

तप सचय एवेह विशिष्टो धनसचयात्॥
त्यजत सचयान् सर्वान् यान्ति नाशमुपद्रवा ।
न हि सचयवान् कश्चित् सुखी भवति मानद॥

इस लोकम धन-सचयकी अपेक्षा तपस्याका सचय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक सग्रहोका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। मानद! सग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हा सकता। (पद्मपुराण)

मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वार परिकीर्तिता ।
शमो विचार सतोपश्चतुर्थ साधुसङ्गम ॥
एत सेव्या प्रयत्नन चत्वारो द्वौ त्रयोऽथवा।
द्वारमुद्घाटयन्त्येत मोक्षराजगृहे तथा॥
एक या सर्वयत्नन प्राणास्त्यक्त्वा समाश्रयत्।
एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वश यत ॥

मोक्षके द्वारपर चार द्वारपाल कह गय हैं—शम, विचार सताप और चौथा सत्सङ्ग। पहल तो इन चाराका ही प्रयत्नपूर्वक सवन करना चाहिय। यदि चारोंके सेवनकी शक्ति न हो ता तीनका सवन करना चाहिय तीनका सवन न हो सकनपर दोका सेवन करना चाहिय। इनका भलीभाँति सवन होनपर य मोक्षरूपी राजगृहम मुमुक्षुका प्रवेश होनेके लिये द्वार खोलते हैं। यदि दोके सेवनकी भी शक्ति न हो तो सम्पूर्ण प्रयत्नसे प्राणोकी बाजी लगाकर भी इनमेसे एकका अवश्य ही आश्रयण करना चाहिये। यदि एक वशमे हो जाता हे तो शप तीन भी वशम हो जाते हैं। (योगवासिष्ठ)

जीर्यन्ति जीर्यत केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यत ।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥
अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दोपशतावहा।
अधर्मबहुला चैव तस्मात्ता परिवर्जयेत्॥

जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं, किंतु धन और जीवनकी आशा बूढे होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है। तृष्णाका कहीं ओर-छोर नहीं हे, उसका पेट भरना कठिन होता है, वह सैकडा दोपोको ढोये फिरती है, उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं, अत तृष्णाका परित्याग कर दे। (पद्मपुराण)

मन शौच कर्मशौच कुलशौच च भारत।
शरीरशौच वाक्शौच शौच पञ्चविध स्मृतम्॥
पञ्चस्वेतपु शौचेपु हृदि शौच विशिष्यते।
हृदयस्य च शौचेन स्वर्गं गच्छन्ति मानवा ॥

मन शुद्धि, क्रियाशुद्धि कुलशुद्धि शरीरशुद्धि और वाक्-शुद्धि—इस तरह पाँच प्रकारकी शुद्धि बतायी गयी है। इन पाँचा शुद्धियाम हृदयकी शुद्धि सबस बढकर है। हृदयकी ही शुद्धिस मनुष्य स्वर्गम जाते हैं। (महाभारत)

अनित्य यौवन रूप जीवित रत्नसचय ।
ऐश्वर्यं प्रियसवासा गृध्यत्तत्र न पण्डित ॥

यह तरुण अवस्था यह रूप यह जीवन रत्नराशिका यह सग्रह ऐश्वय तथा प्रियजनोंका सहयाम—

सब कुछ अनित्य है, अत विवेकी पुरुषको इसमे आसक्त नहीं होना चाहिये। (महाभारत)

धर्मार्थ यस्य वित्तेहा वर तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्॥

जो धर्मके लिये धन पाना चाहता है, उस पुरुषके लिये धनकी ओरसे निरीह हो जाना ही उत्तम है, क्योकि कीचडको लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श ही न करना मनुष्योके लिये श्रेयस्कर है। (महाभारत)

पिता धर्म पिता स्वर्ग पिता हि परम तप ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता ॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमय पिता।
मातर पितर तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
मातर पितर चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणोसे माता-पिता सतुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा साता द्वीपासे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। (पद्मपुराण)

गृहस्थाना परो धर्मो नान्योऽस्त्यतिथिपूजनात्।
अतिथेर्न च दोषोऽस्ति तस्यातिक्रमणेन च॥

गृहस्थोके लिये अतिथि-सत्कारसे बढकर दूसरा कोई महान् धर्म नहीं है। अतिथिसे महान् कोई देवता नहीं है, अतिथिके उल्लङ्घनसे बडा भारी पाप होता है। (स्कन्दपुराण)

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहत शोचति रात्र्यहानि।
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति
तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्य ॥

वचनरूपी बाण मुखसे निकलते हैं और वे दूसरोके मर्मपर ही चोट पहुँचाते हैं, जिनसे आहत हुआ मनुष्य रात-दिन शोकग्रस्त रहता है, अत उनका प्रयोग विद्वान् पुरुष दूसरापर कदापि न करे। (महाभारत)

त्वकार नामधेय च ज्येष्ठाना परिवर्जयेत्।
अवराणा समानानामुभयेषा न दुष्यति॥

अपनेसे बडोका नाम लेकर या 'तू' कहकर न पुकारे, जो अपनेसे छोटे या समवयस्क हो, उनके लिये वसा करना दोषकी बात नहीं है। (महाभारत)

सव्येन सव्य सगृह्य दक्षिणेन तु दक्षिणम्।
न कुर्यादेकहस्तेन गुरो पादाभिवादनम्॥

अपने दाहिने हाथसे गुरु (तथा माता-पिता आदि अपनेसे बडे एव श्रेष्ठजना)-का दाहिना चरण और बाये हाथसे उनका बायाँ चरण पकडकर प्रणाम करना चाहिये। कभी एक हाथसे प्रणाम नहीं करना चाहिये। (महाभारत)

न चात्मान प्रशसेद्वा परनिन्दा च वर्जयेत्।
वेदनिन्दा देवनिन्दा प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥

अपनी प्रशसा न करे तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक त्याग करे। (पद्मपुराण)

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्ग च साधुषु।
दया मैत्रीं प्रश्रय च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥

पहले शरीर सतान आदिमे मनकी अनासक्ति सीखे। फिर भगवान्के भक्तासे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे। इसके पश्चात् प्राणियाके प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनयकी निष्कपट भावसे शिक्षा ग्रहण करे। (श्रीमद्भागवत)

संस्कारसे समन्वित जीवनचर्या

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।' जो जनमता है, उसे मरना भी पड़ता है और मरनेवालेका पुनर्जन्म होना भी प्राय निश्चित है। अपने शास्त्र कहते है कि चौरासी लाख योनियोमे भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपासे तथा अपने पुण्यपुञ्जोसे मनुष्ययोनि प्राप्त करता है। मनुष्यशरीर प्राप्त करनेपर उसके द्वारा जीवनपर्यन्त किये गये अच्छे-बुरे कर्मोके अनुसार पुण्य-पाप अर्थात् सुख-दु ख आगेके जन्मोमे भोगने पड़ते है—'अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।' शुभ-अशुभ कर्मोके अनुसार ही विभिन्न योनियोमे जन्म होता है, पापकर्म करनेवालोका पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि तिर्यक् योनि तथा प्रेत-पिशाचादि योनियोमे जन्म होता है, पुण्य-कर्म करनवालेका मनुष्ययोनि, देवयोनि आदि उच्च योनियोमे जन्म होता है। मानवयोनिके अतिरिक्त ससारकी जितनी भी योनियाँ है वे सब भोगयोनियाँ है, जिनमे अपने शुभ एव अशुभ कर्मोके अनुसार पुण्य-पाप अर्थात् सुख-दु ख भोगना पडता है। केवल मनुष्ययोनि ही है, जिसमे जीवको अपने विवेक-बुद्धिके अनुसार शुभ-अशुभ कर्म करनेका सामर्थ्य प्राप्त होता है।

अत मनुष्य-जन्म लेकर प्राणीको अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है। कारण इस भवाटवीमे अनेक जन्मोतक भटकनेके बाद अन्तमे यह मानव-जीवन प्राप्त होता है, जहाँ प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदाके लिये अपना कल्याण कर सकता है अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे भी मुक्त हो सकता है, परतु इसके लिये अपने सनातन शास्त्रोद्वारा निर्दिष्ट जीवन-प्रक्रिया चलानी पडेगी।

पुनर्जन्म और परलोक—हमे शास्त्रसे ही बोधित होते है, अत जन्मसे पूर्व ही शास्त्र जीवको सावधान करता है और उसके कल्याणका मार्ग निर्देशित करता है। प्राणीके जन्मके पूर्व तथा जन्मके बाद जबतक वह अबोध रहता है, तबतक उसके माता-पिताका कर्तव्य होता है कि वे अपने सतानकी कल्याण-कामनासे शास्त्रोक्त विधिसे गर्भाधान, पुसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, शिक्षा तथा समावर्तन और विवाह आदि सस्कार यथासमय सम्पन्न कराये। बादमे जब व्यक्ति स्वय प्रबुद्ध हो जाता है, तब उसे अपनी जीवनचर्या, दैनिक चर्या शास्त्रोक्त विधिसे सम्पन्न करनी चाहिये। हमारे शास्त्र वस्तुत परमात्मप्रभुकी आज्ञा है तथा प्राणिमात्रके कल्याणके सविधान है। भगवान् कहते है कि जो मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, वह मेरा द्वेषी है तथा वैष्णव होनेपर भी मेरा प्रिय नहीं है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लङ्घ्य वर्तते। आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी वैष्णवोऽपि न मे प्रिय ॥

श्रीमद्भगवद्गीतामे अर्जुनकी जिज्ञासापर कि कर्तव्यका निर्णय कैसे किया जाय ? भगवान्ने कहा—कर्तव्य (क्या करना चाहिये) और अकर्तव्य (क्या नहीं करना चाहिये)-की व्यवस्थामे शास्त्र ही प्रमाण है, यह समझकर तुम्हे शास्त्रविधिसे नियत कर्म ही करना चाहिये—

तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

भगवान् तो यहाँतक कहते है कि जो पुरुष शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न उसे सुख मिलता है और न उसे परम गति ही प्राप्त होती है—

य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत । न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परा गतिम्॥

कई लोग चौबीस घटेम एक-आध घटा समय निकालकर भगवान्की पूजा-ध्यान, समाधि करते है तथा

कई लोग परोपकारकी भावनासे एक-दो घटे समाजसेवा आदि कार्योमे भी समय लगाते है, परतु इसके अतिरिक्त समय बाईस घटेमे वे क्या करते है ? यदि काम-क्रोध, लोभ, मोह, मद-मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेषके वशीभूत होकर अपने स्वार्थकी पूर्तिमे असत्यका आश्रय लेते है—झूठ बोलते है, बेईमानी करते है, शास्त्रकी आज्ञाके विपरीत कार्य करते है, अपने थोडे लाभके लिय दूसराका बडा नुकसान करते है तो उन्हे एक-दो घटेके पुण्यकर्मका भी फल मिलेगा तथा बाईस घटे जो पापकर्म किया, उसका भी फल भोगना पड़ेगा। इस प्रकार वे स्वर्ग-नरक, सुख-दु ख भोगते हुए ससारकी इस भवाटवीमे अनेक योनियोमे जनमते-मरते रहेगे, उनका पिण्ड छूटना सम्भव नही है। इसलिये चौबीस घटेका समय भगवान्‌की पूजा बन जाय। हम खाते-पीते है, सोते है, नित्यक्रिया करते है—ये सब-के-सब भगवदाराधनके रूपमे परिणत हो जायँ। इसकी प्रक्रिया हमारे शास्त्र बताते है।

अत कल्याणकामी व्यक्तिको सस्कारोसे समन्वित जीवनचर्या (जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त) तथा दैनिक चर्या (प्रात -जागरणसे लेकर रात्रि-शयनपर्यन्त) चलानी चाहिये। पूर्वजन्मके भी शुभ-अशुभ सस्कार सूक्ष्मशरीर तथा कारणशरीरके द्वारा अगले जन्ममे प्रारब्ध बनकर साथ रहते है, अत पूर्ण सावधानीकी आवश्यकता है। इन सब दृष्टियोको ध्यानमे रखकर शास्त्रोक्त सस्कारसे समन्वित जीवनचर्या और दैनिक चर्या पाठकोके लाभके लिये यहाँ सक्षेपमे प्रस्तुत की जा रही है—

'आचार. परमो धर्म '

दैनिक जीवनचर्याम आचार-विचारकी सर्वप्रथम आवश्यकता है। आचार-विचार सस्कारोके मूल घटक हैं। वेद-पुराणादि शास्त्रोमे आचार-विचारकी अत्यधिक महिमा है। वे कहते हैं जो मनुष्य आचारवान् हैं, उन्हे दीर्घ आयु, धन, सतति, सुख और धमकी प्राप्ति होती है। ससारमे वे विद्वानोसे भी मान्यताको प्राप्त करते हैं और उन्ह नित्य अविनाशी भगवान् विष्णुके लोककी प्राप्ति होती है—

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते
आयुश्च वित्त च सुताश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोक-
मत्रापि विद्वज्जनपूज्यता च॥

सभी शास्त्राका यह निश्चित मत है कि आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। आचारहीन पुरुष यदि पवित्रात्मा भी हो तो उसका परलोक और इहलोक दोना नष्ट हो जाते हैं—

आचार परमो धर्म सर्वेषामिति निश्चय ।
हीनाचारी पवित्रात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति॥

यह भी कहा गया है कि 'आचारहीन न पुनन्ति वेदा ' (विष्णुधर्मो० ३।२५१।५) अर्थात् जो व्यक्ति आचारहीन हैं, उन्हे वेद भी पवित्र नहीं करते। अपवित्र व्यक्तिद्वारा अनुष्ठित धर्म निष्फल-सा होता है। इस सम्बन्धमे इतिहास-पुराणामे एक बडी रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार, वेदके एक शिष्य थे उत्तक। उन्होने कुछ खाकर खडे-खडे आचमन कर लिया जिससे उन्हे राजा पौष्यकी पतिव्रता रानीका राजमहलमे दर्शनतक नहीं हुआ। जब पौष्यद्वारा उनकी उच्छिष्टता या अपवित्रताकी सम्भावना व्यक्त हुई और उत्तकने भलीभाँति अपना हाथ, पैर, मुख धोकर पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ, हृदयतक पहुँचने योग्य पवित्र जलसे तीन बार आचमन किया तथा अपने नेत्र, नासिका आदिका जलसिक्त अङ्गुलियाद्वारा स्पर्शकर शुद्ध हो अन्त पुरमे प्रवेश किया तब उन्हे पतिव्रता रानीका दर्शन हुआ।

शास्त्रामे आचारपर बहुत सूक्ष्म विचार किये गये हैं, जिससे सामान्यजन परिचित न होनेके कारण पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते। आचारके दो भेद माने गये हैं—एक सदाचार तथा दूसरा शोचाचार। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सदाचरणका होना अत्यन्त आवश्यक है। विष्णुपुराणमे और्व ऋषिने गृहस्थके सदाचारके विषयम कहा हैं—

सदाचाररत प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षित ।
पापेऽप्यपाप परुपे ह्यभिधत्ते प्रियाणि य ।
मैत्रीद्रवान्त करणस्तस्य मुक्ति करे स्थिता॥

(३।१२।४१)

'बुद्धिमान् गृहस्थ पुरुप सदाचारके पालन करनेसे ही ससारके बन्धनसे मुक्त होता है। सदाचारी विद्या और विनयसे युक्त रहता हे तथा पापी पुरुपके प्रति भी पापमय कष्टप्रद व्यवहार नहीं करता। वह सभीके साथ हित, प्रिय आर मधुर भापण करता ह। सदाचारी पुरुप मैत्रीभावसे द्रवित अन्त करणवाले हाते हैं, उनके लिये मुक्ति हस्तगत रहती है।'

सदाचारके अन्तर्गत काम, क्रोध लोभ, मोह, मद मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेप, झूठ कपट, छल-छद्म, दम्भ आदि असत्-आचरणाका त्याग तथा सत्य, अहिसा दया, परोपकार, क्षमा, धृति इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध आदि सत्-आचरणाका ग्रहण मुख्य है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम कहा गया है कि 'सभी शुभ लक्षणासे युक्त होनेपर भी पुरुप यदि आचारसे रहित है तो उसे न विद्याकी प्राप्ति होती है और न अभीष्ट मनोरथाकी ही। ऐसा व्यक्ति नरकका भागी बनता है।'[१]

इसके विपरीत जो सत्-आचारका पालन करता है वह पुरुप स्वर्ग, कीर्ति आयु, सम्मान तथा सभी लौकिक सुखाका भोग करता है। आचारवान्‌को ही स्वर्ग प्राप्त होता है, वह रोगरहित रहता है, उसकी आयु लम्बी होती है और वह सभी ऐश्वर्योका भाग करता है।[२]

अत शास्त्रामे वर्णित सदाचरणाका ही सर्वदा व्यवहार करना चाहिये। कल्याणका यह परम श्रेयस्कर मार्ग है।

शौचाचार

सदाचारकी भाँति शौचाचारका भी पुराणामे विशेप महत्त्व प्रतिपादित किया गया हे। शौचाचारसे प्रत्यक्षत शरीरादिकी वाह्यशुद्धि होती है। प्रात काल उठनसे लेकर शयनपर्यन्त शौचाचारकी विधि शास्त्रामे वर्णित है, यहाँ शौचाचारके कुछ सूत्र प्रस्तुत किये जाते हैं—

प्रात काल उठनके बाद भगवत्स्मरणके अनन्तर शौचकी विधि इस प्रकार वतायी गयी हे—शौचके समय मृत्तिकाका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। एक बार मूत्रेन्द्रिय तथा तीन बार पायु (मलस्थान)-को मृत्तिका एव जलसे प्रक्षालित करे। तदनन्तर दस बार बायाँ हाथ मिट्टीसे धोये तथा सात बार दाना हाथ मिट्टीसे धोने चाहिये। तीन बार पाँवाको मिट्टीसे धोये। इसके बाद आठ बार कुल्ला करना चाहिये तथा लघुशकाके अनन्तर चार बार कुल्ला करना चाहिये।[३] उपर्युक्त विधान गृहस्थोके लिये हे। ब्रह्मचारियाको इसका दुगुना, वानप्रस्थियाको तिगुना तथा सन्यासियोको चार गुना करना चाहिये।

दन्तधावन-विधि—शौचादि कृत्यके बाद दन्तधावन-विधि बतायी गयी है। मौन होकर दातौन अथवा मजनसे दाँत साफ करने चाहिये। दातौनके लिय खैर करज कदम्ब बड इमली, बाँस आम, नीम, चिचडा, बेल, आक गूलर बदरी तिन्दुक आदिकी दातूने अच्छी मानी जाती हैं।[४] लिसोढा, पलाश कपास नील धव कुश काश आदि वृक्षकी दातौन वर्जित हैं।

निषिद्धकाल—प्रतिपदा पष्ठी अष्टमी नवमी चतुर्दशी अमावास्या पूर्णिमा सक्रान्ति जन्मदिन विवाह

१-सर्वलक्षणयुक्तोऽपि नरस्त्वाचारवर्जित । न प्राप्नोति तथा विद्या न च किञ्चिदभीप्सितम्।
आचारहीन पुरुपो नरक प्रतिपद्यते॥ (३।२५०।४)

२-आचार स्वर्गजनन आचार कीर्तिवर्धन । आचारश्च तथायुष्यो धन्यो लोकसुखावह ॥
आचारयुक्तस्त्रिदिव प्रयाति आचारवानेव भवत्यरोग । आचारवानेव चिर तु जीवदाचारवानेव भुनक्ति लक्ष्मीम्॥ (विष्णुधर्मो० २७१।१ ४)

३-पवित्रताके लिये कम-से-कम लघुशकाक समय जलका प्रयोग तो अवश्य ही करना चाहिय। शौचविधि रात्रिमें तथा स्त्री और शूद्रके लिये आधा हो जाती है मार्गम चौथाई बरता जाती है तथा रोगियोके लिये उनकी शक्तिपर निर्भर करता है।

४ खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा। तिन्तिडी वणुपृष्ठ च आम्रनिम्बौ तथैव च॥
अपामार्गश्च विल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा। बदरी तिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने॥

व्रत, उपवास, रविवार और श्राद्धके अवसरपर दातौन नहीं करना चाहिये। रजस्वला तथा प्रसूतावस्थामें भी दातौन वर्जित है।

जिन-जिन अवसरोंपर दातौनका निषेध है, उन-उन अवसरोंपर तत्तद् वृक्षोंके पत्ते या सुगन्धित दन्तमंजनसे दाँत स्वच्छ कर लेना चाहिये।[1] निषिद्धकालमें जीभी करनेका निषेध नहीं है।

क्षौरकर्म—क्षौरकर्मके लिये बुधवार तथा शुक्रवारके दिन प्रशस्त हैं। शनि, मंगल तथा बृहस्पतिवार और चतुर्दशी आदि तिथियाँ निषिद्ध कही गयी हैं। व्रत और श्राद्धके दिन भी क्षौरकर्ममें वर्जित हैं।

तैलाभ्यङ्गविधि—रविवारको तेल लगानेसे ताप, सोमवारको शोभा, भौमवारका मृत्यु (अर्थात् आयुकी क्षीणता), बुधवारको धन, गुरुवारको हानि, शुक्रवारको दुःख और शनिवारको सुख होता है। यदि निषिद्ध दिनोंमें तेल लगाना हो तो रविवारको पुष्प, गुरुवारको दूर्वा, भौमवारको मिट्टी और शुक्रवारको गोबर तेलमें डालकर लगानेसे दोष नहीं होता है।[2] यह विधि केवल तिलके तेलके लिये है। सरसोंके तेल अथवा सुगन्धित तेलका निषेध नहीं है।

स्नान—शरीरकी पवित्रताके लिये नित्य स्नानकी आवश्यकता है। शास्त्रोंमें स्नानके कई प्रकार बतलाये गये हैं। सामान्यतः शुद्ध जलसे सम्पूर्ण शरीरके मल-प्रक्षालनको स्नान कहा जाता है। मत्स्यपुराणमें कहा गया है कि स्नानके बिना शरीरकी निर्मलता और भावशुद्धि नहीं प्राप्त होती। अतः मनकी विशुद्धिके लिये सर्वप्रथम स्नानका विधान है। कुएँ आदिके निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मूल मन्त्रके द्वारा उस जलमें तीर्थ-भावना करनी चाहिये।[3] स्नानके लिये गङ्गाका जल तथा तीर्थोंका जल सर्वाधिक पवित्र माना जाता है। फिर अन्य नदियों, सरोवरों, तडागों, कूपों आदिके जल पवित्र माने गये हैं। गङ्गा, तीर्थों तथा नदियोंमें स्नानका विशेष महत्त्व बताया गया है। अन्य स्नानकी विशेष विधियाँ भी पुराणोंमें वर्णित हैं। यथा—प्रायश्चित्तस्नान, अभिषेकस्नान, भस्मस्नान तथा मृत्तिकास्नान आदि। अशक्तावस्थामें कटिभागसे नीचेके अङ्गोंका प्रक्षालन तथा गलेसे ऊपरके अङ्गोंके प्रक्षालनसे भी स्नानकी विधि पूरी हो जाती है। विशेष अशक्यावस्था तथा आपत्तिकालमें निम्न मन्त्रोंद्वारा मार्जन-स्नानकी विधि बतायी गयी है। सामान्य अवस्थामें भी पूजा-पाठके पूर्व इस मन्त्रके द्वारा शरीरपर जल मार्जन करनेपर पवित्रता आती है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

—इस मन्त्रके द्वारा शरीरपर जलसे मार्जन करे तथा—

'**आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो०**'—

इस मन्त्रके द्वारा भी शरीरपर जल छिड़कते हुए मार्जन-स्नान करना चाहिये। '**यस्य क्षयाय जिन्वथ**' कहकर नीचे जल छोड़े और '**आपो जनयथा च नः**' इससे पुनः मार्जन करे।

भोजनविधि—स्नानोपरान्त सन्ध्योपासन एवं पूजन आदिसे निवृत्त होनेके पश्चात् भोजनकी विधि है। भोजनके सम्बन्धमें दो बातें मुख्य हैं। एक तो उच्छिष्ट (जूठा) भोजन करना सर्वथा निषिद्ध है। भोजन प्रारम्भ करनेसे पूर्व हाथ-पैरोंको शुद्ध जलसे प्रक्षालित करना चाहिये तथा जलद्वारा आचमन कर मौन होकर भोजन करना चाहिये। भोजनके

१- तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा कारयेद् दन्तधावनम्।' (स्कन्दपु० प्रभासखण्ड)
२-तैलाभ्यङ्गे रवौ तापः सोमे शोभा कुजे मृतिः। बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःखं शनौ सुखम्॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका। गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक्॥
३-नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते। तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥
अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्। तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। (मत्स्य० १०२।१-२)

अन्तमे भी आचमन करनेकी विधि है।

भोजनकी दूसरी मुख्य बात है द्रव्य-शुद्धि। सदाचारपूर्वक अर्जित द्रव्यका ही भोजन मनुष्यके लिये लाभदायी होता है तथा उसके अन्त करण और बुद्धिको पवित्र रखता है। अत स्थूल दृष्टिसे भोजनमे शुद्धता, पवित्रता और सात्त्विकता होनी ही चाहिये पर साथ ही सूक्ष्मरूपसे सत्यतासे अर्जित धनसे बना भोजन परम पवित्र होता है। बिना परिश्रम किये किसी पराये व्यक्तिके अन्नका भोजन करनेकी प्रवृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये।[१]

आशौच—जीवनमे कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी आती हैं जब व्यक्ति आशौचावस्थामे रहता है। उस समय वह देवार्चन आदि कोई शुभ कार्य करनेका अधिकारी नहीं रहता।

जननाशौच-मरणाशौच—अपने परिवारमे नव-शिशुके जन्म होनेपर प्राय तीन दिन तथा सगोत्रमे किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जानेपर दस रात्रिका आशौच माना गया है। आशौचावस्थामे देवकार्य पितृकार्य वेदाध्ययन तथा गुरुजनोके अभिवादन आदि शुभकार्योका निषेध किया गया है। यहाँतक कि देवमन्दिरमे प्रवेश तथा पूजन आदि करना भी वर्जित है।

स्त्रियोके लिये प्राय मासमे एक बार विशेष अवस्था आती है, जिसमे वे रजस्वला हो जाती हैं। इसमे तीन रात्रितक उनकी आशौचावस्था रहती है। इस अवधिमे स्त्रीको घरका कोई काम-काज नहीं करना चाहिये। यहाँतक कि किसी वस्तु या किसी व्यक्तिका स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इस अवस्थाके समाप्त होनेपर स्त्रीके लिये सचैल स्नानकी विधि है। तदनुसार उसके कपडे तथा बर्तन आदि धोनेके बाद ही शुद्धता आती है।

आचमन—जिस प्रकार शरीरकी शुद्धि तथा पवित्रताके लिये स्नानादि कृत्योका महत्त्व है उसी प्रकार आभ्यन्तर एव बाह्य पवित्रताके लिये शास्त्रोमे आचमनका भी विशेष महत्त्व वर्णित है। प्राय दैनिक कार्योमे सामान्य शुद्धिके लिये प्रत्येक कार्यमे आचमनका विधान है। लघुशंका शौच तथा स्नान आदिके अनन्तर आचमन करना आवश्यक है। अत आचमनसे हम केवल अपनी ही शुद्धि नहीं करते, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणतकको तृप्त करते हैं।[२] कोई भी देवादि शुभ कार्य करनेके पूर्व तथा अनन्तर आचमन करना चाहिये।

आचमन-विधि—पूर्व, उत्तर या ईशान दिशाकी ओर मुख करके आसनपर बैठ जाय शिखा बाँधकर हाथ घुटनोके भीतर रखते हुए निम्न मन्त्रोसे तीन बार आचमन करे—

'ॐ केशवाय नम , ॐ नारायणाय नम , ॐ माधवाय नम ।' आचमनके बाद अँगूठेके मूलभागसे होठोको दो बार पोछकर **'ॐ हृषीकेशाय नम '** उच्चारणकर हाथ धोवे। फिर अँगूठेसे आँख नाक तथा कानका स्पर्श करे। अशक्त होनेपर तीन बार आचमन कर हाथोको धोकर दाहिना कान छू ले। दक्षिण तथा पश्चिमकी ओर मुख कर आचमन नहीं करना चाहिये। चलते-फिरते अथवा खडे होकर भी नहीं करना चाहिये।

मादक द्रव्योका निषेध—ससारमे मदिरा ताडी, चाय कॉफी कोको, भाँग अफीम चरस गाँजा, तबाकू, बीडी-सिगरेट तथा चुरुट आदि जितनी भी मादक वस्तुएँ हैं, वे सब मनुष्यमात्रके लिये अव्यवहार्य हैं। इनका उपयोग मनुष्यको भीषण गर्तमे डालनेवाला होता है। पद्मपुराणके अनुसार धूम्रपान करनेवाले ब्राह्मणको दानतक देनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है तथा धूम्रपान करनेवाला ब्राह्मण ग्राम-शूकर होता है—

धूम्रपानरते विप्रे दान कुर्वन्ति ये नरा ।
ते नरा नरक यान्ति ब्राह्मणा ग्रामशूकरा ॥

पद्मपुराणमे यह बात आयी है कि मादक द्रव्योके सेवनसे व्यक्तिका आत्मिक पतन और उसकी शारीरिक हानि होती है। इसलिये किसी भी स्थितिमे इन वस्तुओका सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

१-अपने मित्र या सगे-सम्बन्धियोके यहाँ विशेष आग्रह होनेपर विवशतापूर्वक भोजन करनेमें दोष नहीं है।

२-(क) एव स ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त जगत् स परितर्पयेत्॥ (व्याघ्रपाद)

(ख) य क्रिया कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिक । भवन्ति हि वृथा तस्य क्रिया सर्वा न सशय ॥ (पुराणसार)

भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्ममें आचार-विचारको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये, वास्तविक उन्नतिको प्राप्त करनेके निमित्त आचारका आश्रय आवश्यक है। इससे अन्तःकरणकी पवित्रताके साथ-साथ लौकिक और पारलौकिक लाभ भी प्राप्त होता है।

दैनिक चर्या

मनुष्य-जीवनमें प्रातःकाल जागरणसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त दैनिक कार्यक्रमोंका पर्याप्त महत्त्व है। शास्त्रोंमें यह प्रकरण दैनन्दिन सदाचारमें निर्दिष्ट है।

वास्तवमें सच्चा सुख नित्य, सनातन और एकरस शान्तिमें है। उसके आश्रय हैं मङ्गलमय भगवान्। प्रत्येक स्त्री-पुरुषका प्रयत्न उन्हीं परम-प्रभुको प्राप्त करनेके लिये होना चाहिये। अतः इस भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि चौबीस घंटेके सम्पूर्ण समयका कार्यक्रम भगवदाराधनके रूपमें हो। चलना-फिरना उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना आदि सब कुछ भगवान्की प्रीतिके लिये पूजारूपमें हो। पापाचरणके लिये कहीं भी अवकाश न हो, तभी स्वतः कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। अपनी दिनचर्या शास्त्र-पुराणोक्त वचनोंके अनुसार ही चलानी चाहिये, जिससे जीवन भगवत्पूजामय बन जाय। यहाँ संक्षेपमें इसका किञ्चित् दिग्दर्शन करानेका प्रयास किया जाता है—

प्रातः जागरण—प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदयसे प्रायः डेढ़ घंटासे तीन घंटा पूर्व उठ जाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तकी बड़ी महिमा है। इस समय उठनेवालेका स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है। जो सूर्य उगनेके समय सोता है उसकी आयु और शक्ति घटती है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है। आँख खुलते ही दोनों करतलोंको देखते हुए निम्न श्लोकका पाठ करना चाहिये—

> कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
> करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

'हथेलियोंके अग्रभागमें लक्ष्मी निवास करती हैं, मध्यभागमें सरस्वती और मूलमें ब्रह्माजी निवास करते हैं। अतः प्रातः हथेलियोंका दर्शन करना आवश्यक है, इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। इस विधानका आशय यह भी है कि प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम दृष्टि और कहीं न जाकर अपने करतलमें ही देव-दर्शन करे, जिससे वृत्तियाँ भगवच्चिन्तनकी ओर प्रवृत्त हों। यथासाध्य उस समय भगवान्का स्मरण और ध्यान भी करना चाहिये तथा भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये कि दिनभर मेरेमें सुबुद्धि बनी रहे। शरीर तथा मनसे शुद्ध सात्त्विक कार्य हों, भगवान्का चिन्तन कभी न छूटे। इसके लिये भगवान्से बल माँगे और आत्मद्वारा यह निश्चय करे कि आज दिनभर मैं कोई भी बुरा कार्य नहीं करूँगा। भगवान्को याद रखते हुए भले कार्योंको ही करूँगा।

भूमि-वन्दना— शय्यापर बैठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वी माताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना चाहिये—

> समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
> विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥
>
> (विश्वामित्रस्मृति ४५)

मङ्गल-दर्शन—तदनन्तर माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन और मूर्तिमान् भगवान् माता-पिता, गुरु एवं ईश्वरको नमस्कार करना चाहिये। फिर शौचादिसे निवृत्त होकर रातका कपड़ा बदलकर आचमन करना चाहिये। पुनः निम्नलिखित श्लोकोंको पढ़कर पुण्डरीकाक्ष भगवान्का स्मरण करते हुए अपने ऊपर जलसे मार्जन करना चाहिये। इससे मान्त्रिक स्नान हो जाता है—

> अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
> यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
> अतिनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम्।
> स्मरामि पुण्डरीकाक्षं तेन स्नातो भवाम्यहम्॥

पुन उपासनामय कर्महेतु दैनन्दिन ससार-यात्राके लिये भगवत्प्रार्थना कर उनसे आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये—

त्रैलाक्यचैतन्यमयादिदेव
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रात समुत्थाय तव प्रियार्थं
ससारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥
(मन्त्रमहोदधि २१।६)

अजपा-जप—इसके बाद अजपा-जपका सङ्कल्प करना चाहिय क्याकि शास्त्रोक्त सभी साधनामे यह 'अजपा-जप' विशष सुगम है। स्वाभाविक '**हसो-हसो**'-की जगह '**सोऽह-सोऽह**' के जपका ध्यान करनेसे साते-जागते सब स्थितियामे यह जप प्रचलित माना जाता है।

तदनन्तर भगवान्‌का ध्यान करते हुए नाम-कीर्तन करना चाहिये और प्रात स्मरणीय श्लोकाका पाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् शौचादि कृत्योसे निवृत्त होना चाहिये। शौचविधिमे शुद्धिके लिये जल और मृत्तिकाका प्रयोग बताया गया है,[1] जा परम आवश्यक है।

आभ्यन्तर शौच[2]—व्याघ्रपादक अनुसार मिट्टी और जलसे होनेवाला शौच बाह्यशौच कहा जाता है। इसकी अबाधित आवश्यकता है शौचाचारविहीनकी की गयी सभी क्रियाएँ भी निष्फल ही होती हैं।[3] मनोभावको शुद्ध रखना आभ्यन्तरशौच माना गया है। किसीके प्रति ईर्ष्या द्वेष, क्राध, लोभ मोह घृणा आदिका न होना आभ्यन्तरशौच है। भगवान् सबमे विद्यमान हैं इसलिये किसीसे द्वेष, क्रोधादि नहीं करना चाहिये। सबमे भगवान्‌का दर्शन करते हुए, सभी परिस्थितियाको भगवान्‌का वरदान समझते हुए सबम मैत्रीभाव रखना चाहिये साथ ही प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करते हुए उनकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करते रहना चाहिये।

गङ्गास्नानकी विधि—उषाकी लालीसे पूर्व ही स्नान करना उत्तम है। इससे प्राजापत्य-व्रतका फल प्राप्त होता है।[4] तल लगाकर तथा देहको मल-मलकर गङ्गादिम स्नान करना मना है। वहाँ बाहर तटपर हा दह-हाथ मलकर नहा लना चाहिय। इसके बाद नदीम गाता लगाव। शास्त्राने इस 'मलापकर्षण' स्नान कहा है। यह अमन्त्रक हाता है। स्वास्थ्य और शुचिता—दानाक लिये यह स्नान भी आवश्यक है। निवीती होकर गमछस जनऊको भी स्वच्छ कर ल।[5] इसक बाद शिखा बाँधकर आचमन और प्राणायाम कर दाहिने हाथम जल लेकर सङ्कल्पपूर्वक स्नान करना चाहिये।

स्नानसे पूर्व समस्त अङ्गाम निम्न मन्त्रस मिट्टी लगानी चाहिये—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पाप यन्मया दुष्कृत कृतम्॥

तत्पश्चात् गङ्गाजीके द्वादशनामाका कीर्तन करे, जिसम उन्हाने स्नानकालम वहाँ अपने उपस्थित होनका निर्देश दिया है—मन्त्र इस प्रकार है—

नन्दिनी नलिनी सीता मालती च मलापहा।
विष्णुपादाब्जसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥
भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी।
द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशय॥
स्नानोद्यत पठेज्जातु तत्र तत्र वसाम्यहम्॥[6]

इसके बाद नाभिपर्यन्त जलमे जाकर जलकी ऊपरी सतह हटाकर, कान और नाक बदकर प्रवाह या सूर्यकी ओर मुख करके स्नान करे। शिखा खोलकर तीन पाँच सात या बारह गोते लगावे। गङ्गाके जलम वस्त्रको नहीं

१-शौचकी विधि 'आचार-प्रकरण' म देखनी चाहिये।

२-शौच तु द्विविध प्रोक्त बाह्यमाभ्यन्तर तथा। मृज्जलाभ्या स्मृत बाह्य भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (आह्निक० व्याघ्रपाद)

३-शौचे यत्न सदा कार्य शौचमूलो द्विज स्मृत । शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फला क्रिया ॥ (दक्ष)

४-उपस्युपसि यत् स्नान नित्यमेवारुणोदये। प्राजापत्येन तत् तुल्य महापातकनाशनम्॥ (दक्ष)

५-यज्ञोपवीत कण्ठे कृत्वा त्रि प्रक्षाल्य। (आचाररत्न)

६-साधारण कूप बावली आदिके जलमें गङ्गाजीका यह आवाहन तो आवश्यक है ही अन्य पवित्र नदियाके जलम भी यह आवश्यक माना गया है।

निचोडना चाहिये। शौचकालका वस्त्र पहनकर तीर्थोमे स्नान करना तथा थूकना निषिद्ध है।

घरमे स्नान—घरमे स्नान करना हो तो स्नानसे पूर्व गङ्गा आदि पवित्र नदियाका निम्न मन्त्रसे जलमे आवाहन करना चाहिये—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सनिधि कुरु॥

तदनन्तर स्नान करे। स्नानके अनन्तर जलसे प्रक्षालित शुद्ध वस्त्र धारण कर दवार्चन करना चाहिये। ऊनी तथा कौशेय वस्त्र बिना धोये भी शुद्ध मान्य हैं। दूसरेका पहना हुआ कपडा नहीं पहनना चाहिये। लुँगी (बिना लाँगका वस्त्र) नहीं पहनना चाहिये—**'मुक्तकक्षो महाधम ।'** बल्कि धोती धारणकर सन्ध्या-पूजन आदि कर्म करने चाहिये।

तिलक-धारण—कुशा अथवा ऊनके आसनपर बैठकर सन्ध्या-पूजा दान, होम, तर्पण आदि कर्मोके पहले तिलक अवश्य धारण करना चाहिये। बिना तिलक इन कर्मोको निष्फल बताया गया है।

शिखा-बन्धन—जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर स्थित ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका आधार सुषुम्णा नाडी समाप्त होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है। इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान, क्रिया-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति सुरक्षित रहती है, जिससे भजन-ध्यान, दानादि शुभकर्म सुचारुरूपसे सम्पन्न हाते हैं। इसीलिये कहा गया है—

ध्याने दाने जपे होमे सध्याया देवतार्चने।
शिखाग्रन्थि सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

जपादि करनेके पूर्व आसनपर बैठकर तिलक धारण तथा शिखा-बन्धन करनेके पश्चात् सङ्कल्पपूर्वक सध्यावन्दन करना चाहिये। साथ ही कम-से-कम एक माला या उससे अधिक गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिय।

पञ्च महायज्ञ—सध्योपासनके अनन्तर पञ्च महायज्ञका विधान है। वे हैं—ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ), पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और मनुष्ययज्ञ।[१] वेद-शास्त्रका पठन-पाठन एव सध्योपासन, गायत्रीजप आदि ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ) है, नित्य श्राद्ध-तर्पण पितृयज्ञ है, हवन देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ हे। देवयज्ञसे देवताओकी, ऋषियज्ञसे ऋषियोकी, पितृयज्ञसे पितरोकी, मनुष्ययज्ञसे मनुष्योकी और भूतयज्ञसे भूतोकी तृप्ति होती है।

पितृतर्पणमे देवता ऋषि, मनुष्य, पितर सम्पूर्ण भूतप्राणियोको जलदान करनेकी विधि है। यहाँतक कि पहाड, वनस्पति और शत्रु आदिको भी जल देकर तृप्त किया जाता है। देवयज्ञमे अग्निमे आहुति दी जाती है। वह सूर्यको प्राप्त होती है और सूर्यसे वृष्टि तथा वृष्टिस अन्न और प्रजाकी उत्पत्ति होती है।[२] भूतयज्ञको बलिवैश्वदेव भी कहते हैं, इसमे अग्नि सोम, इन्द्र वरुण मरुत् तथा विश्वेदेवाके निमित्त आहुतियाँ एव अन्नग्रासकी बलि दी जाती है।

मनुष्ययज्ञमे घर आये हुए अतिथिका सत्कार करके उसे विधिपूर्वक यथाशक्ति भोजन कराया जाता है।[३] यदि भोजन करानेकी सामर्थ्य न हो तो बैठनेके लिये स्थान, आसन जल प्रदान कर मीठे वचनोद्वारा उसका स्वागत तो अवश्य ही करना चाहिये।[४]

स्वाध्यायसे ऋषियाका, हवनसे देवताआका तर्पण और श्राद्धस पितराका, अन्नसे मनुष्याका और बलिकर्मसे सम्पूर्ण भूतप्राणियाका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये।[५] इस प्रकार जो मनुष्य नित्य सब प्राणियाका सत्कार

१-अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयनस्तु तर्पणम्। होमो दैवा बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनु० ३।७०)
२-अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्न तत प्रजा॥ (मनु० ३।७६)
३-सम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्न चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ (मनु० ३।९९)
४-तृणानि भूमिरुदक वाक्चतुर्थी च सूनृता। एतान्यपि सता गेहे नाच्छिद्यन्ते कदाचन॥ (मनु० ३।१०१)
५-स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि। पितृञ्छ्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥ (मनु० ३।८१)

करता है, वह तेजोमय मूर्ति धारण कर सीधे अर्चिमार्गके द्वारा परमधामको प्राप्त होता है।[१] सबको भोजन देनेके बाद शेष बचा हुआ अन्न यज्ञशिष्ट होनेके कारण अमृतक तुल्य है इसलिये ऐसे अन्नका ही सज्जनाके खानेयाग्य कहा गया है।[२] भगवान् श्रीकृष्णने गीताम भी प्राय ऐसी ही बात कही है।[३]

उपर्युक्त सभी महायज्ञाका तात्पर्य सम्पूर्ण भूतप्राणियाकी अन्न और जलके द्वारा सवा करना एव अध्ययन-अध्यापन जप उपासना आदि स्वाध्यायद्वारा सबका हित चाहना है। इनम स्वार्थ-त्यागकी बात तो पद-पदम बतलायी गयी है।

आहार (भोजनविधि)—प्राणीके नेत्र, श्रोत्र, मुख आदिद्वारा आहरणीय रूप, शब्द, रस आदि विषयरूप आहार-शुद्धिसे मनकी शुद्धि होती है। मन शुद्ध होनेपर परमतत्त्वकी निश्चल स्मृति हाती है। निश्चल स्मृतिसे ग्रन्थिमोक्ष होता है।[४] बलिवैश्वदेवके अनन्तर गौ श्वान काक अतिथि तथा कीट-पतङ्गके निमित्त पञ्चबलि निकालनेका विधान है, जा भोजनके पूर्व तत्तद् जीवोको दना चाहिये। अपने इष्टदेवको नैवेद्य निवेदित कर अर्थात् भगवान्‌को भोग लगाकर ही प्रसादरूपम भोजन करनका विधान है। भोजनके प्रारम्भम **'ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूताना पतये स्वाहा'**—इन मन्त्रासे तीन ग्रास निकालनेकी विधि है। इसका तात्पर्य है कि सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी एव चतुर्दश भुवनोके स्वामीको तथा चराचर जगत्‌के सम्पूर्ण प्राणियाको मैं यह अन्न प्रदान करता हूँ। तदनन्तर **'ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा और ॐ समानाय स्वाहा'**—इन पाँच मन्त्रोसे लवणरहित पाँच ग्रास आत्मारूप ब्रह्मके लिये पञ्च आहुतिके रूपम लेना चाहिये। तत्पश्चात् **'अमृतोपस्तरणमसि'** इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका अर्थ है—'मैं अमृतमय अन्नदवको आसन प्रदान करता हूँ।' फिर मौन हाकर भोजन करना चाहिये। भोजनके अन्तम **'अमृतापिधानमसि'** इस मन्त्रस पुन आचमन करना चाहिये। इसका अर्थ है—'मैं अमृतरूप अन्नदेवताको आच्छादित करता हूँ।' आहारकी पवित्रताके लिये यह आवश्यक है कि आहार उच्छिष्ट न हो और सत्यतासे अर्जित धनसे ही निर्मित किया गया हो।[५]

शयन-विधि—जैसे मनुष्य साकर उठनपर शान्त चित्तस जिसका चिन्तन करता है, उसका प्रभाव गहरा पडता है, उसी प्रकार सोनेसे पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है उसका भी गहरा प्रभाव पडता है। अत शयनसे पूर्व पुराणाकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा आदि श्रवण करते हुए शयन करना चाहिय। भविष्यपुराणम कहा गया है—जो हाथ-पैर धोकर पवित्र हुआ मनुष्य पुराणाकी सात्त्विक कथा सुनता है वह ब्रह्महत्यादि पापासे मुक्त हो जाता है।[६] पर यह भाजनसे पूर्व नियमित कथा-श्रवणकी विधि प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त शयनसे पूर्व दिनभरके कार्योंका सम्यक् अवलोकन करना चाहिये तथा इस सम्बन्धम यह चिन्तन करना चाहिये कि कोई गलत कार्य तो नहीं किया। यदि कोई गलत काय हो गया हो तो उसके लिये पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌से क्षमा-याचना करनी चाहिये और भविष्यम फिर इस प्रकारकी गलतीकी पुनरावृत्ति न हो—ऐसी प्रतिज्ञा करते हुए शयन करना चाहिये। इससे जावनको निर्दोष बनानेम विशेष सहायता मिलती है। विष्णुपुराणमे कहा गया है कि हाथ-पैर धोकर मनुष्य सायकालीन भोजन करनके पश्चात् जो जीर्ण न हो, बहुत बडी न हो सकुचित न हो ऊँची न हो मैली न हो, जन्तुयुक्त न हो एव जिसपर कुछ बिछावन बिछाया हो उस

१-एव- य सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति। स गच्छति पर स्थान तेजोमूर्ति पथर्जुना॥ (मनु० ३।९३)

२-अघ स केवल भुङ्क्ते य पचत्यात्मकारणात्। यज्ञशिष्टाशन ह्येतत्सतामन्न विधीयते॥ (मनु० ३।११८)

३-यज्ञशिष्टाशिन सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै। भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३।१३)

४-आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्ष ॥ (छान्दोग्य० ७।२६।२)

५-भाजनकी विशेष बाते आचार-प्रकरण म देखनी चाहिये।

६-मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो। पुराण सात्त्विक रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति य ॥

शय्यापर शयन करना चाहिये। पूर्व और दक्षिणकी ओर सिर करके शयन करना उत्तम बतलाया गया है। उत्तर एव पश्चिमकी ओर सिर करके सोनेका निषेध है।

सतान-प्राप्ति—स्त्री-सहवासका मुख्य उद्देश्य है पुत्रोत्पादनद्वारा वशकी रक्षा तथा पितृ-ऋणसे मुक्त होना। शास्त्रमर्यादानुसार सतानोत्पत्तिकी प्रक्रियाको भगवान्‌ने अपनी विभूतियोमे गिना है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'

'प्रजनश्चास्मि कन्दर्प ।'

पुत्रार्थी अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी, व्रतोपवास तथा श्राद्ध आदि पर्वकालोको छोडकर ऋतुकालम स्व-स्त्रीके पास जाय। रजोदर्शनकालम अर्थात् स्त्रीके रजस्वला होनेपर भूलकर भी स्त्री-सहवास न करे, न उसके साथ एक शय्यापर सोये। रजस्वलागामी पुरुषकी प्रज्ञा तेज, बल चक्षु और आयु नष्ट हो जाती है—

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह॥
रजसाभिप्लुता नारीं नरस्य ह्युपगच्छत ।
प्रज्ञा तेजो बल चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥

कर्मक्षेत्र (गृहस्थाश्रमका पालन)—गृहस्थमात्रको घरके कामोमे मन लगाना चाहिये। गृहस्थ-आश्रम सभी आश्रमोका आधार कहा गया है। यह बात सबको स्मरण रखना चाहिये कि हम जो कुछ भी करे, वह सब प्रभु-प्रीत्यर्थ ही कर। कर्म करके उसका सम्पूर्ण फल भगवान्‌के चरणोमे अर्पित कर देना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्यको कर्म-बन्धनमे बँधना नहीं पडेगा और उसके समस्त कर्म भगवदाराधनमे परिणत हो जायँगे। शास्त्रोमे कहा गया है कि 'शरीरका निर्वाह हो जाय' यही लक्ष्य रखकर शरीरको कोई क्लेश पहुँचाय विना वर्णविहित, निन्दारहित कार्यके द्वारा धनका सचय करना चाहिये—

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वै कर्मभिरगर्हितै ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम्॥

अत गृहस्थ व्यक्तिको अपने कल्याणके लिये शास्त्र-मर्यादाका पालन करना चाहिये। वास्तवमे मनुष्यका शरीर खान-पान, भोग-विलासके लिये नहीं, प्रत्युत शास्त्र-मर्यादाका पालन करके भगवत्प्राप्ति करनेके लिये मिला है, जो प्रधान लक्ष्य है। इन्द्रियोके विषयोको राग-द्वषरहित होकर इन्द्रियरूप अग्निम हवन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। शब्द, रूप आदिका श्रवण और दर्शन आदि करते समय अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थोंमे राग-द्वेषरहित होकर उनका न्यायोचित सेवन करनेसे अन्त करण शुद्ध होता है और उसम 'प्रसाद' होता है। उस 'प्रसाद' या 'प्रशम' स सारे दु खाका नाश होकर परमात्माके स्वरूपमे स्थिति हो जाती है। परतु जबतक इन्द्रियाँ और मन वशमे नहीं होते तथा भोगामे वैराग्य नहीं होता, तबतक अनुकूल पदार्थके सेवनसे राग और हर्ष एव प्रतिकूलके सेवनसे द्वेष और दु ख होता है। अतएव सम्पूर्ण पदार्थोको नाशवान् ओर क्षणभङ्गुर समझकर न्यायसे प्राप्त हुए पदार्थोका विवेक तथा वैराग्ययुक्त बुद्धिके द्वारा समभावसे ग्रहण करना चाहिये। दर्शन, श्रवण, भोजनादि कार्य रसबुद्धिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे भगवत्प्राप्तिके लिये करने चाहिये। पदार्थोम भोग-विलास-भावना स्वाद-सुख या रमणीयता-बुद्धि ही मनुष्यके मनमे विकार उत्पन्न कर उसका पतन कराती है। अत आसक्तिरहित होकर विवेक-वैराग्यपूर्वक धर्मयुक्त बुद्धिके द्वारा विहित विषय-सेवन करना उचित है। इससे हवनके लिये अग्निमे डाले हुए ईंधनकी तरह विषयवासना अपने-आप ही भस्म हो जाती है। फिर उसका कोई अस्तित्व या प्रभाव नहीं रह जाता। इस प्रकार सस्कारयुक्त होनेसे परमात्माके स्वरूपम स्थिर और अचल स्थिति हो जाती है तथा उनकी प्राप्ति हो जाती है।

देवोपासना

जीवनमे उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लता है तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिम सलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य हे भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे यथासाध्य ससारकी विषय-वासनाओ और भोगासे दूर रहकर भगवदाराधन एव अभीष्टदेवकी उपासनाम सलग्न होनेकी आवश्यकता पडती

है। जिस प्रकार गङ्गाका अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रान्मुखी होता है, उसी प्रकार भगवद्-गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलङ्क, परम पवित्र अन्त करणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक उपासना है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
(श्रीमद्भा० ३।२९।११)

इसके लिये आवश्यक है कि चित्त ससार और तद्विषयक राग-द्वेषादिस विमुक्त हो जाय। शास्त्रा और पुराणाकी उक्ति है—'**देवो भूत्वा यजेद् दवान् नादयो देवमर्चयेत्।**' दव-पृजाका अधिकारी वही है, जिसम देवत्व हा। जिसम दवत्व नहीं, वास्तवम उस दवार्चनस पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हाती। अत उपासकको भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ मोह, मद मात्सर्य, अभिमान आदि दुर्गुणाका त्याग कर अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्राक्त आचार-धर्मको स्वीकार कर बाह्य-शुद्धि कर लेनी चाहिये, जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन बुद्धि अहङ्कार तथा अन्तरात्माकी भौतिकता एव लौकिकताका समूल उन्मूलन हो सके और उनम रसात्मकता तथा पूर्ण-दिव्यताका आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा तभी वह उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेम समर्थ हो सकेगा।

यहाँ शास्त्रामे वर्णित देवोपासनाकी कुछ विधियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

नित्योपासनाम दो प्रकारकी पूजा बतायी गयी है—(१) मानसपूजा और (२) बाह्यपूजा। साधकको दोना प्रकारकी पूजा करनी चाहिये तभी पूजाकी पूर्णता है। अपनी सामर्थ्य और शक्तिके अनुसार बाह्यपूजाके उपकरण अपने आराध्यके प्रति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निवेदन करना चाहिये। शास्त्रोमे लिखा है कि '**वित्तशाठ्य न समाचरेत्**' अर्थात् दव-पूजनादि कार्योंमे कजूसी नहीं करनी चाहिये। सामान्यत जो वस्तु हम अपने उपयोगम लेते हैं, उससे हल्की वस्तु अपन आराध्यका अपण करना उचित नहीं है। वास्तवम भगवान्‌को वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, वे ता भावक भूखे हैं। व उपचाराका तभी स्वीकार करते हैं जब निष्कपटभावस व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा और भक्तिस निवदन करता है।

बाह्यपूजाक विविध विधान हैं यथा—राजापचार सहस्रापचार चतु षष्ट्युपचार षाडशापचार और पञ्चोपचार-पूजन आदि। यद्यपि सम्प्रदाय-भेदस पूजनादिम किञ्चित् भेद भी हो जात हैं परतु सामान्यत सभी दवाके पूजनकी विधि समान है। गृहस्थ प्राय स्मार्त हात हैं जा पञ्चदेवाकी पूजा करत हैं। पञ्चदवाम १ गणश, २ दुर्गा ३ शिव ४ विष्णु और ५ सूर्य हैं। य पाँचा दव स्वयम पूर्ण ब्रह्म-स्वरूप हैं। साधक इन पञ्चदवाम एकको अपना इष्ट मान लेता है, जिन्हे वह सिहासनपर मध्यम स्थापित करता है। फिर यथालब्धापचार-विधिसे उनका पूजन करता है।

भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसम उपचारोका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। समयपर जो भी उपचार उपलब्ध हो जाय उन्हे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं।

विशिष्ट उपासना—विशेष अवसरापर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा सप्तशतीका पाठ रामायण आदिके नवाह-पाठ श्रावण आदि पवित्र महीनाम लक्ष-पार्थिवार्चन महारुद्राभिषेक श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आराग्यता एव दीर्घजीवन-प्राप्तिके निमित्त महामृत्युञ्जयका जप एव धन सतान तथा अन्य कामनाआके निमित्त किये जानेवाले अनुष्ठान भी इन्हींम आते हैं, परतु भगवत्-प्रीतिके निमित्त किये गये अनुष्ठानका अनन्त फल शास्त्राम बताया गया है, जो भी अनुष्ठान-साधन-भजन किया जाय वह अनात्म (ससारकी) वस्तुओकी प्राप्तिके निमित्त नहीं अपितु भगवान्‌की प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ही करना चाहिये।

मानस-पूजा

बाह्यपूजाके साथ-साथ मानस-पूजाका भी अत्यधिक महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमे ही हो जाती है। भगवान्‌को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे है। ससारमे ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं है, जिनमे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये शास्त्रोमे मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामे भक्त अपने इष्टदेवको मुक्तामणियोसे मण्डितकर स्वर्णसिहासनपर विराजमान करता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गङ्गाके जलमे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पञ्चामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणामे भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक सक्षिप्त विधि भी पुराणोमे वर्णित है। जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।

(प्रभो! मैं वायुदेवके रूपमे धूप आपको प्रदान करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

(प्रभो! मैं अग्निदेवके रूपमे दीपक आपको प्रदान करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो! मैं सर्वात्माके रूपमे ससारके सभी उपचारोको आपके चरणामे समर्पित करता हूँ।)—इन मन्त्रोसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

आहार-शुद्धि

भोजनके रससे ही शरीर, प्राण और मनका निर्माण होता है। म्लान चित्तमे देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होता। अशुद्ध भोजनसे रोग, क्षोभ और ग्लानि होती है। शुद्ध भोजनसे मन पवित्र होता है। अन्याय, बेईमानी, चोरी, डकैती आदिसे उपार्जित दूषित अन्नद्वारा शुद्ध चित्तका निर्माण होना असम्भवप्राय है। इसी प्रकार अशुद्ध स्थानमे रखे दूध, दही आदि या कुत्ते आदिसे स्पृष्ट पदार्थ भी त्याज्य हैं।

गौके दूध, दही, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, नारगी, आँवला, साठी चावल, जौ, जीरा आदि हविष्यान्न व्रतोमे उपादेय हैं। मधु, खारा नमक, तेल, लहसुन, प्याज, गाजर, उडद मसूर कोदो, चना, बासी तथा परान्न त्याज्य हैं। जिन्हे भिक्षा लेनेका अधिकार है उन सन्यासी आदिकोके लिये भिक्षा परान्न नहीं है, पर भिक्षा सदाचारी एव पवित्र गृहस्थोसे ही लेनी चाहिये।

मन्त्रजप

मन्त्रानुष्ठानमे ब्रह्मचर्य एव पवित्रतापूर्वक भू-शयन आदि आवश्यक हैं। अनुष्ठानकालमे कुटिल व्यवहार, क्षौर-कर्म, तैलाभ्यङ्ग तथा बिना भोग लगाये भोजन नहीं करना चाहिये। साधकको यथासम्भव पवित्र नदियो, देवखातो, तीर्थ, सरोवर, पुष्करिणी आदिमे मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये। यथाशक्ति तीनो समय सध्या और इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। शिखा खोलकर निवस्त्र होकर एक वस्त्र पहनकर सिरपर पगडी बाँधकर, अपवित्र होकर या चलते-फिरते जप करना निषिद्ध हैं। जपके समय माला पूरी हुए विना बातचीत नहीं करनी चाहिये। जप समाप्त करने और प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन कर लेना चाहिये।

मलिन वस्त्र पहनकर, केश बिखेरकर और उच्चस्वरसे जप करना शास्त्रविरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं—आलस्य, जँभाई, नींद, छींकना, थूकना, डरना अपवित्र अङ्गाका स्पर्श और क्रोध। जापकको स्त्री, शूद्र पतित, व्रात्य, नास्तिक आदिके साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुखसे वार्तालाप असत्य और कुटिल भाषण छोड देना चाहिये। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदिको शुद्ध एव स्वच्छ रखना चाहिये। उबटन, इत्र, फूलमालाका उपयोग और गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिय। सोकर, बिना आसनके, चलते और खाते समय तथा बिना माला ढँके जो जप किया जाता है, उसकी गणना अनुष्ठानके जपम नहीं होती। जिसके चित्तमे व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीरमे पीडा हो, उसे और जहाँ स्थान अशुद्ध एव अन्धकाराच्छन्न हो, वहाँ जप नहीं करना चाहिये। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध हे और भी बहुत-से नियम हैं, उन्ह जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिये। ये सब नियम मानस-जपके लिये नहीं हैं।

शास्त्राम जप-यज्ञको सब यज्ञाकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। पद्म एव नारदपुराणम कहा गया है कि समस्त यज्ञ वाचिक जपकी तुलनामे सोलहवे हिस्सेके बराबर भी नहीं हैं। उपाशु-जपका फल वाचिक जपस सौ गुना और मानस-जपका सहस्रगुना हाता है। मानस-जप वह हे जिसमे अर्थका चिन्तन करते हुए मनमे ही मन्त्रके वर्ण स्वर और पदाकी आवृत्ति की जाती है। उपाशु-जपम कुछ-कुछ जीभ और होठ चलत हैं अपने कानातक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जपका वाणीक द्वारा उच्चारण किया जाता है। तीना ही प्रकारके जपाम मनके द्वारा इष्टका चिन्तन होना चाहिये। मानसिक स्तात्र-पाठ और उच्चस्वरसे उच्चारणपूर्वक मन्त्र-जप—ये दाना निष्फल हैं।

जपम मालाका प्रयोग—साधकाक लिये माला भगवानूक स्मरण और नाम-जपका सख्या-गणनार्थ बडी ही सहायक होती है। इसमे उतनी सख्या पूर्ण करनेक लिये सब समय प्रेरणा प्राप्त होती रहती है एव उत्साह तथा लगनम किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। जो लोग बिना सख्याके जप करते हैं, उन्ह इस बातका अनुभव होगा कि जब कभी जप करते-करते मन अन्यत्र चला जाता है, तब मालूम ही नहीं होता कि जप हो रहा था अथवा नहीं या कितने समयतक जप बद रहा। यह प्रमाद हाथमे माला रहनेपर या सख्यासे जप करनेपर नहीं होता। यदि मन कभी कहीं चला भी जाता है तो मालाका चलना बद हो जाता है, सख्या आगे नहीं बढती और यदि माला चलती रही तो जीभ भी अवश्य चलती ही रहेगी। कुछ ही समयम ये दोनो मनको आकृष्ट करनेम समर्थ हो सकेगी।

देवतातत्त्व

देवता मुख्यतया तैंतीस माने गये हैं। उनकी गणना इस प्रकार है—प्रजापति, इन्द्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु और ग्यारह रुद्र। निरुक्तके देवतकाण्डम देवताओके स्वरूपके सम्बन्धमे विचार किया गया है, वहाँके वर्णनसे यही तात्पर्य निकलता है कि वे कामरूप होते हैं। वेदान्त-दर्शनमे कहा गया है कि देवता एक ही समय अनेक स्थानाम भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं। शास्त्राम देवताओके ध्यानकी सुस्पष्ट विधि निर्दिष्ट है। उसी रूपमे उनका ध्यान एव उपासना की जानी चाहिय।

सभी साधना एव उपासनाओका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति या सायुज्य मुक्ति है। देवतालोग अपनी उपासनासे प्रसन्न हाकर सासारिक पुरुषार्थोंकी उपलब्धिके साथ भगवत्प्राप्तिम भी सहायक होते हैं। ऊपर देवोपासनाकी सक्षिप्त विधि निर्दिष्ट है। विशेष जानकारीके लिये उनके उपासनापरक पुराण, आगमादि ग्रन्थ देखने चाहिये।

यज्ञ

भारतीय सस्कृति और वेद-पुराणाम यज्ञाकी अपार महिमा निरुपित है। यज्ञाके द्वारा विश्वात्मा प्रभुका सतृप्त करनेकी विधि बतलायी गयी है। अत जा जन्म-मरणक बन्धनस मुक्त होना चाहते हैं उन्ह यज्ञ-यागादि शुभ कर्म अवश्य करन चाहिये। वद जा परमात्माक नि श्वासभूत हैं,

उनकी मुख्य प्रवृत्ति यज्ञोके अनुष्ठान-विधानमे है। यज्ञोद्वारा समुद्भूत पर्जन्य—वृष्टि आदिसे ससारका पालन करते हैं। इस प्रकार परमात्मा यज्ञोके सहारे ही विश्वका सरक्षण करते हैं। यज्ञकर्ताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीताके तृतीय अध्यायके १० से १५ तकके श्लोकोम यज्ञपर ही ससारको आधृत कहा है और इसमे वेद और परमात्माकी प्रतिष्ठा कही है।

भगवान्ने गीतामे कहा है—

सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

(३।१०)

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमे यज्ञसहित प्रजाओकी सृष्टिकर उनसे कहा—'तुमलाग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो।' गीताम तो भगवान्ने यहाँतक कहा है कि यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले मनुष्य सब पापासे मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करनेके लिये अन्न पकाते हैं, वे तो पापको ही खाते हैं—

यज्ञशिष्टाशिन सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै ।
भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

(३।१३)

इसलिये भगवान्ने कहा—'**तस्मात् सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम्**' (गीता ३।१५)। सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सर्वदा यज्ञम प्रतिष्ठित हैं। शरीर और अन्त करणकी शुद्धि तथा जीवनमे दिव्यताके आधानके लिये भी यज्ञकी आवश्यकता है—'**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ।**' ये यज्ञ सकाम भी किये जाते हैं और निष्काम भी।

अनेक राजाओ आदिके चरित्र-वर्णनम विविध यज्ञानुष्ठानोके सुन्दर आख्यान-उपाख्यान भी पुराणोम उपलब्ध होते हैं। इन यज्ञासे परमपुरुष नारायणकी ही आराधना हाती है। श्रीमद्भागवत (४।१४।१८-१९)-म स्पष्ट वर्णित है—

यस्य राष्ट्र पुर चैव भगवान् यज्ञपूरुष ।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितै ॥
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावन ।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥

जिसके राज्य अथवा नगरमे वर्णाश्रम-धर्मोका पालन करनेवाले पुरुष स्वधर्म-पालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं, हे महाभाग! भगवान् अपनी वेद-शास्त्ररूपी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे प्रसन्न रहते है, क्याकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण प्राणियाके रक्षक हैं। पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (३।१२४)-मे स्पष्ट कहा गया है कि—यज्ञसे देवताओका आप्यायन अथवा पोषण होता है। यज्ञद्वारा वृष्टि होनेसे मनुष्योका पालन होता है, इस प्रकार ससारका पालन-पोषण करनेके कारण ही यज्ञ कल्याणके हेतु कह गये हैं—

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवा ।
आप्यायन वै कुर्वन्ति यज्ञा कल्याणहेतव ॥

सभी पुराणोने यज्ञोके यथासम्भव सम्पादनपर अत्यधिक बल दिया है। यज्ञाका फल केवल इहलौकिक ही नहीं, अपितु पारलौकिक भी है। इनके अनुष्ठानसे देवो, ऋषियो, दैत्यो, नागो, किन्नरा, मनुष्यो तथा सभीको अपने अभीष्ट कामनाआकी प्राप्ति ही नहीं हुई है, प्रत्युत उनका सर्वाङ्गीण अभ्युदय भी हुआ है। अत इनका सम्पादन अवश्यकरणीय है।

व्रतोपवास

शास्त्रोमे मनुष्योके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन, दान आदि अनक साधन बताये गये हैं। उनमेसे एक साधन व्रतोपवास भी है। इसकी बडी महिमा है। अन्त करणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि विचार और ज्ञान-तन्तु विकसित होते हैं। शरीरक अन्तस्तलम परमात्माके प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनताका सचार होता ह। पारमार्थिक लाभके साथ-साथ व्रतोपवासस लौकिक लाभ भी होत हैं। व्यापार व्यवसाय, कला-कौशल शास्त्रानुसधान और उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किय जानम मन निगृहीत रहता है जिससे सुखमय दीर्घजीवनके आरोग्य-साधनोका स्वत सचय हो जाता है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतासे दूर होते ही हैं तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सासर्गिक पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भक पूर्व पापयुक्त प्राणियोका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है। पुण्य-प्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमे उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य सचय करनेके सङ्कल्पको व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन, भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना तथा समस्त भोगोका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको शारीरिक सताप सहन करना पडता है, इसीलिये इसे तप भी कहा जाता है। इन्द्रिय-निग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम कहा गया है। व्रतमे इन्द्रियोका नियमन (सयम) करना होता है, इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। क्षमा, सत्य दया, दान शौच, इन्द्रिय-सयम, देवपूजा, हवन सतोष और चोरीका अभाव—इन दस नियमोका पालन सामान्यत सभी व्रतोमे आवश्यक माना गया है—

क्षमा सत्य दया दान शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
देवपूजाग्निहरण सतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वय धर्म सामान्यो दशधा स्मृत ।

(अग्नि० १७५।१०-११)

सभी पापोसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोका त्याग करते हुए सद्‌गुणोके साथ वास करना ही उपवास कहलाता है। उपवास करनेवाले व्रतीको स्नान आदि क्रियासे शुद्ध होकर देव, गुरु, ब्राह्मण साधु, गौकी पूजा सत्सङ्ग-सेवन भगवत्कथा-श्रवण तथा दान-पुण्य आदिके कार्य अवश्य करने चाहिये।

जल फल मूल दधि हवि ब्राह्मणकी इच्छा, ओषधि और गुरु (पूज्यजनो)-के वचन—इन आठसे व्रत नहीं बिगडते। होमावशिष्ट खीर भिक्षान्न सत्तू, कण (गोरैड या तृणपुष्प), यावक (जौ), शाक, गोदुग्ध, दही, घी, मूल, आम, अनार, नारगी और कदलीफल आदि खानेयोग्य हविष्य हैं।

व्रतीको तामसी वस्तुओका सेवन स्त्री-सम्पर्क तथा अलङ्करण एव शृङ्गारके साधनोसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। बार-बार जल पीने, दिनमे शयन करने तथा मैथुनादि-सहवाससे व्रत दूषित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे भी हो पवित्र रहते हुए अपने सङ्कल्पित व्रतका अनुष्ठान करता रहे इसीमे परम कल्याण है।

यथाविधि व्रत करके उसके पूर्ण हो जानेपर उद्यापन करना चाहिये। व्रतीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि व्रतारम्भके बाद यदि क्रोध, लोभ मोह या आलस्यवश उसे अधूरा छोड दे तो तीन दिन अन्नका त्याग कर पुन व्रतारम्भ करे।* व्रतमे तथा तीर्थयात्रा और श्राद्धमे दूसरेका अन्न लेनेसे जिसका अन्न होता है, उसीको उसका पुण्य प्राप्त हो जाता है।

आपत्तिमे अथवा अशक्यताकी स्थितिमे व्रतादि धर्मकार्य स्वय न कर सके तो पति, पत्नी पुत्र, पुरोहित, भाई या मित्रसे प्रतिनिधिके रूपमे कराया जा सकता है। उपर्युक्त प्रतिनिधि प्राप्त न हो तो यह कार्य ब्राह्मणद्वारा भी सम्पन्न हो सकता है।

यहाँपर प्रत्येक मासमे किये जानेवाले प्रधान-प्रधान व्रतोकी एक तालिका दी जा रही है। व्रतोकी पूर्ण विधिके ज्ञानादिके लिये व्रतग्रन्थो तथा पुराणो और पूजापद्धतियोको देखना चाहिये—

१-**चैत्र**—सवत्सरप्रतिपदाव्रत अरुन्धतीव्रत, सूर्यषष्ठी रामनवमी हनुमज्जयन्ती अशून्यशयनव्रत भर्तृद्वादशी।

२-**वैशाख**—अक्षयतृतीया निम्बसप्तमी गङ्गासप्तमी, परशुरामजयन्ती।

३-**ज्येष्ठ**—वटसावित्री निर्जला एकादशी गङ्गादशहरा।

४-**आषाढ**—हरिशयनी एकादशी, स्कन्दषष्ठी सूर्यसप्तमी व्यासपूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा)।

५-**श्रावण**—नागपञ्चमी, दूर्वाष्टमी श्रावणी पूर्णिमा।

* क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि। दिनत्रय न भुञ्जीत शिरसो मुण्डन भवेत्॥ (ग०पु०आ० १२८।१९)

६-भाद्रपद—हरितालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषि-पञ्चमी, मुक्ताभरणसप्तमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, वामनद्वादशी, अनन्तचतुर्दशी, अगस्त्यव्रत।

७-आश्विन—उपाङ्गललिता, महालय, देवीनवरात्र, विजयादशमी, शरत्पूर्णिमा।

८-कार्तिक—करवाचौथ (कर्कचतुर्थी), धनत्रयोदशी, नरकचतुर्दशी, दीपावली, गोवर्द्धन (अन्नकूट), यमद्वितीया, भीष्मपञ्चक-व्रत, हरिबोधिनी, वैकुण्ठचतुर्दशी, कार्त्तिकी पूर्णिमा, मनोरथपूर्णिमा।

९-मार्गशीर्ष—कालभैरवाष्टमी, दत्तजयन्ती।

१०-पौष—भद्राष्टमी, मकरसङ्क्रान्ति।

११-माघ—वसन्तपञ्चमी, अचलासप्तमी, भीष्माष्टमी।

१२-फाल्गुन—महाशिवरात्रि, होलिका आदि।

इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका आश्रयण कर अपने त्रिविध तापोंको दूर करनेके लिये, अन्त करणकी शुद्धिके लिये, विशेषत भगवत्प्रीतिके लिये ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम कल्याण होता है, बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें सत्त्वगुणका उद्रेक होता है तथा विवेकशक्ति प्राप्त होती है। सत्-असत्का निर्णय स्वत होने लगता है और अन्तमे सन्मार्गमे प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवासके अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है, ईप्सित फलोंकी प्राप्ति होती है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। व्रतोंपर देवता अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करते हैं इसमे कोई संदेह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं वे संसारमे सभी दु खोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमे ऐश्वर्यका भोग करते हुए देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।

दान

मनुष्यके जीवनमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया गया है, यह एक प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन कुछ दान अवश्य करना चाहिये—

'श्रद्धया देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्'

दान चाहे श्रद्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, परंतु दान किसी भी प्रकार अवश्य देना चाहिये। मानवजातिके लिये दान परम आवश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। इस प्रसङ्गमे एक कथा आती है—एक बार देवता, मनुष्य और असुर तीनोंकी उन्नति अवरुद्ध हो गयी। अत वे सब प्रजापति पितामह ब्रह्माजीके पास गये और अपना दु ख दूर करनेके लिये उनसे प्रार्थना करने लगे। प्रजापति ब्रह्माने तीनोंको मात्र एक अक्षरका उपदेश दिया—'द'। स्वर्गमे भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही देवलोकका सुख माना गया है, अत देवगण कभी वृद्ध न होकर सदा इन्द्रिय-भोग भोगनेमे लगे रहते हैं। उनकी इस अवस्थापर विचारकर प्रजापतिने देवताओंको 'द' के द्वारा 'दमन'—इन्द्रिय-दमनका उपदेश दिया। ब्रह्माजीके इस उपदेशसे देवगण अपनेको कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणाम कर वहाँसे चले गये।

असुर स्वभावसे ही हिंसा-वृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और हिंसा उनका नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापतिने उन्हें इस दुष्कर्मसे छुडानेके लिये 'द' के द्वारा जीवमात्रपर 'दया' करनेका उपदेश दिया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको शिरोधार्यकर वहाँसे चले गये।

मनुष्य, कर्मयोनि होनेके कारण सदा लोभवश कर्म करने और अर्थसंग्रहमे ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने लोभी मनुष्योंको 'द' के द्वारा उनके कल्याणके लिये 'दान' करनेका उपदेश किया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी आज्ञाको स्वीकारकर सफल-मनोरथ होकर उन्हें प्रणाम कर वहाँसे चले गये। अत मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

'विभवो दानशक्तिश्च महता तपसा फलम्।'

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्य-पुञ्जसे प्राप्त होता है।

महाराज युधिष्ठिरके समयकी एक घटना है— किन्हीं ब्राह्मण देवताके पिताका देहान्त हो गया। उनके मनमें यह भाव आया कि मैं अपने पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर करूँ, पर उनके पास चन्दनकी लकडीका सर्वथा अभाव था। वे राजा युधिष्ठिरके पास गये और उन्होने उनसे सारा वृत्तान्त बताकर पिताके दाह-संस्कारके निमित्त चन्दन-काष्ठकी याचना की। महाराज युधिष्ठिरके पास चन्दन-काष्ठकी कोई कमी नहीं थी तथा ऐसे समय वे उन ब्राह्मणको देना भी चाहते थे, परतु उस समय अनवरत वर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण काष्ठ भीग चुके थे। गीली लकडीसे दाह-संस्कार नहीं हो सकता था, अत उन्हे वहाँसे निराश लौटना पडा। इसक अनन्तर वे इसी कार्यके निमित्त राजा कर्णके पास पहुँचे। राजा कर्णके सामने भी ठीक वही परिस्थिति थी। अनवरत वर्षाके कारण सम्पूर्ण काष्ठ गीले हो चुके थे परतु ब्राह्मणको पितृ-दाहके लिये चन्दनकी सूखी लकडीकी आवश्यकता थी। कर्णने यह निर्णय लिया कि उनका राज्यसिंहासन चन्दनकी लकडीसे बना हुआ है, जो एकदम सूखा है। अत उन्होने कारीगरोको बुलाकर सिंहासनसे काष्ठ निकालनेका तत्काल आदेश दे दिया। इस प्रकार उन ब्राह्मणके पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर सम्पन्न हो सका। चन्दनके काष्ठका सिंहासन महाराज युधिष्ठिरके पास भी था पर यह सामयिक ज्ञान और मनकी उदारता उन्हे प्राप्त न थी जिसके कारण वे इस दानसे वञ्चित रह गये और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्णको दानवीरकी उपाधि भी प्राप्त हुई।

शास्त्रोमे दानके लिये स्थान काल और पात्रका विस्तृत विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमे शुभकालमे अच्छे मुहूर्तमे सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है परतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमे आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीडित समुदायको अन्न, आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनो प्रकारसे होता है। शास्त्रो तथा पुराणोमे दानके विभिन्न स्वरूप वर्णित हैं—

(१) दैनिक जीवनमे जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और सत्कर्म सम्पन्न होते हैं, उसी प्रकार दान भी नित्य-नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमे अन्न-दानका विशेष महत्त्व बताया गया है।

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोपर जो दान दिये जाते हैं, उन्हे नैमित्तिक दान कहते हैं शास्त्र-पुराणोमे इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र अथवा रजतपात्रमे काले तिल, स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी अमावास्या पूर्णिमा सक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालमे विशेषरूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमे अन्नदान, द्रव्यदान स्वर्णदान भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(३) वेद-पुराणोमे कुछ ऐसे दानोका भी वर्णन है, जो मनुष्यकी कामनाओकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं जिनमे तुलादान गोदान भूमिदान, स्वर्णदान घटदान आदि अष्ट दश तथा षोडश महादान परिगणित हैं—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि नि स्वार्थ-भावसे भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण-बुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमे परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमे विशेष सहायक सिद्ध हो सकेगे।

(४) कुछ दान बहुजनहिताय बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमे करनेकी परम्परा है। देवालय विद्यालय, औषधालय भोजनालय (अन्नक्षेत्र) अनाथालय गोशाला धर्मशाला कुएँ, बावडी तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ किये जायँ तो परमकल्याणकारी सिद्ध होगे।

सामान्यत न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दशमाश बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यम ईश्वरकी प्रसन्नताक लिय लगाना चाहिये—

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमाशेन धीमता।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च॥
(स्कन्दपुराण केदारखण्ड १२।३५)

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य नहीं हाता। यह बात 'न्यायोपार्जितवित्तस्य' इस वचनसे स्पष्ट होती है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी प्रकारक उपकारका भाव न उत्पन्न हो इसके लिये इस श्लोकम 'कर्तव्य' पदका प्रयोग हुआ है, अर्थात् 'धनका इतना हिस्सा दान करना' यह मनुष्यका कर्तव्य है। मानवका मुख्य लक्ष्य है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। अत दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाय रखना भी आवश्यक है। इसीलिये 'कर्तव्या विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च' इन शब्दाका प्रयोग किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके पास एक हजार रुपय हो उसमसे यदि उसने एक सौ रुपये दान कर दिये तो बचे हुए ९०० रुपयोमे ही उसका ममत्व और आसक्ति रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम करके अन्त करणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलाककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है।

उपार्जित धनके दशमाशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिक मानवाके लिये किया गया है, पर जो व्यक्ति वैभवशाली धनी और उदारचेता हैं, उन्हे तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोमे विभक्त करना चाहिये—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग) (५) स्वजन (परिवार)-के लिये। इस प्रकार पाँच प्रकारसे धनका विभाग करनेवाला इस लोकमे और परलाकमे भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिय किया गया है कि जिससे जीविकाक साधनाका विनाश न हो, क्योंकि भागवतमे यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशसा नहीं करते, क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ तप आदि शुभकर्म करनेम समर्थ हाता है—

न तद्दान प्रशसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दान यज्ञस्तप कर्म लोके वृत्तिमतो यत॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, एसे लोगाके लिय दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्य पालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चाका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्ह पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है—

शक्त परजने दाता स्वजने दु खजीविनि।
मध्वापातो विषास्वाद स धर्मप्रतिरूपक॥

जा धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगाके दु खपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेम समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसराको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपम अधर्म है।

शास्त्रोम दानके सम्बन्धमे तो यहाँतक कहा गया है कि जितनेम पेट भर जाता है, उतनेम ही मनुष्यका अधिकार है उससे अधिकमे जो अधिकार मानता है वह चोर है, दण्डका भागी है—

यावद् भ्रियेत जठर तावत् स्वत्व हि देहिनाम्।
अधिक योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

तीर्थ

भगवान्‌के अवतारोके प्राकट्य-स्थल, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवताओकी यज्ञ-भूमियाँ ओर क्षेत्र विशिष्ट नदियोके

सङ्गम एव पवित्र वन, पर्वत, देवखात, झील, झरने तथा प्रभावशाली सत, भक्त, ऋषि-मुनि-महात्माओकी तप स्थलियाँ और साधनाके क्षेत्र आदि तीर्थ कहे जाते हे। तीर्थोम जानेसे सत्सङ्गके साथ-साथ वहाँके पूर्वोक्त सभी तत्त्वाके सूक्ष्म तेजस्वी सस्कार उपलब्ध होते हैं। इससे पाप नष्ट होकर पुण्याका सचय होता है—

प्रभावादद्भुताद् भूमे सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीना च तीर्थाना पुण्यता स्मृता॥

'श्रद्धा-विश्वाससे तीर्थका फल बढता हे। तीर्थमे जाने तथा रहनेवालेको प्रतिग्रह, काम, क्रोध, लोभ मोह, दम्भ परनिन्दा और ईर्ष्या-द्वेपस बचना चाहिये। तीर्थोमे पाप करनेसे पापकी वृद्धि होती है। अत पापसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।'

भारतके चारा धाम और साता पुरियाकी भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके जन्म एव आवास-स्थल होनेसे तथा बदरिकाश्रम, रामेश्वरम् आदि धामोकी नर-नारायणके तपस्या करने तथा भगवान् श्रीराम आदिद्वारा देव-स्थापन करनेसे अत्यन्त महत्ता है। गङ्गा आदि नदियाँ नाम लेनेसे ही साधकको तार देती हैं। इसी प्रकार पुष्कर मानसरोवर आदि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा यज्ञ आदि करनेके कारण वे महान् तीर्थ हैं। जिसका शरीर और मन सयत होता है उसे तीर्थोका विशप फल मिलता है। अग्नि, इन्द्र आदि दवताआके द्वारा यज्ञ करने कुरुक द्वारा तप करने तथा भगवान् श्रीकृष्णक गीतोपदेशसे कुरुक्षेत्रकी विशेपता हुई है।

गणपति आदि दवता एव ऋषि-मुनि पितर सत ब्राह्मणोका स्मरण-पूजन करके तीर्थयात्राका शुभारम्भ करना चाहिये और यान आदिका आश्रय छोडकर शुद्धभावसे धर्माचरणका वढाते हुए तीर्थोम निवास करना चाहिये।

नदीरूप तीर्थ—देवनदी गङ्गा, यमुना सरस्वती नर्मदा गादावरी सरयू, गामती शिप्रा, रामगङ्गा सिन्धु, कावरी पयोष्णी गण्डकी तमसा कृतमाला साबरमती चन्द्रभागा इरावती आदि पुण्यसलिला नदियाँ तीर्थरूप हैं। शास्त्राम इनकी विशप महिमा बतायी गयी है।

यथाशक्ति यथाविधि इन तीर्थोम स्नान-मार्जन आदि करके पुण्यार्जन करना चाहिये। नित्य दैनिक चर्याके साथ ही सस्कारोकी सुसम्पन्नताके लिये नदीरूप तीर्थोकी विशेष महिमा है।

भारतके पवित्र कुल-पर्वत—पुराणाके अनुसार नदियोकी तरह पर्वताको भी पूज्य एव आदरणीय बताया गया है। दक्षिण भारतके वेकटगिरि और श्रीशैलको साक्षात् नारायणरूप माना गया है। स्कन्दपुराणमे नारायणगिरि, शालग्रामपर्वत अरुणाचल, सिहाचल सुमेरु मन्दर, हिमवान्, विन्ध्याचल, चित्रकूट, पारिजात, अञ्जनगिरि आदि सभीको भगवान्का रूप निरूपित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणम पर्वतोकी पूजा-विपयक सम्पूर्ण सामग्री दी गयी है। स्कन्दपुराणमे अरुणाचल पर्वतको साक्षात् शिवका रूप कहा गया है—

'तत्र देव स्वय शम्भु पर्वताकारता गत ।'

(स्कन्द०अरु०मा०उत्त० ४।१२)

व्रजम गिरिराज पर्वतकी महत्ता भी सर्वविदित है जिनकी पूजा स्वय भगवान् श्रीकृष्णने व्रजवासियाके साथ की थी तथा स्वय गिरिराजरूप धारण किया था। आज भी सहस्रा नर-नारी गिरिराज पर्वतको साक्षात् भगवद्रूप मानकर परिक्रमा और पूजन करत हैं।

इस प्रकार पर्वताका देवता-रूप या भगवान्का स्वरूप होना सिद्ध होता है। उनकी पूजाकी परम्परा भी सृष्टिके आरम्भसे ही चली आयी है। हिमालय विन्ध्याचल, पारिजात मलयगिरि महेन्द्राचल शुक्तिमान्, चित्रकूट ऋक्षवान्, सह्याचल ऋष्यमूक, श्रीशैल, अरुणाचल कामगिरि गोवर्धन आदि यहाँके मुख्य पर्वत हैं जिनकी शास्त्रोम विशेप महिमा वतायी गयी है।

इन पर्वतोके अतिरिक्त भारतमे अन्य भी मङ्गल-प्रस्थ ऋषभगिरि कूटगिरि कोलाचल वारिधार ककुद्गिरि, नालगिरि आदि सहस्रा पर्वत हैं जा पवित्र एव स्मरणीय हैं।

मोक्षदायिनी पुरियाँ—शास्त्राम मुक्तिक पाँच मुख्य कारण वतलाये गये हैं। इनम ब्रह्मज्ञान प्रथम हतु है। द्वितीय है भक्तिद्वारा भगवत्कृपाकी प्राप्ति। तृतीय है अपन पुत्र-

पौत्रादिको, गोत्रजो, कुटुम्बियो तथा अन्य व्यक्तियाद्वारा गया आदि तीर्थोमे सम्पादित श्राद्ध-कर्म। चौथा है धर्मयुद्ध तथा गोरक्षा आदिमे हुई मृत्यु। पाँचवाँ है कुरुक्षेत्र आदि प्रधान तीर्थों और सात प्रधान मोक्षदायिनी पुरियोंमें निवासपूर्वक शरीर-त्याग। शास्त्रामे तीर्थोके माहात्म्यको विस्तारसे बतलाया गया है। यद्यपि सभी तीर्थ उत्तम फलोके देनेवाले एव सेव्य हैं तथापि अपने वैशिष्ट्यके कारण ये पुरियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती—ये सात पुरियाँ मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। इसीलिये गरुडपुराण (२।४९।११४)-मे कहा गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका ॥

चार धाम—भारतवर्षकी चारो दिशाओमें चार धाम अवस्थित हैं। उत्तरमे बदरीनाथ, दक्षिणमे रामेश्वरम्, पूर्वमे जगन्नाथपुरी तथा पश्चिममे द्वारकापुरी—इन चारो धामोकी यात्रा हो जानेपर तीर्थयात्रा पूर्ण मानी जाती है।

मानस-तीर्थका महत्त्व

एक बार अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—निष्पापे! मैं उन मानस-तीर्थोंका वर्णन करता हूँ जिन तीर्थोमे स्नान करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, उसे सुनो। सत्य, क्षमा इन्द्रिय-सयम सब प्राणियोके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन सतोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमे ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। मनकी परमविशुद्धि तीर्थोका भी तीर्थ है। जलमे डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-सयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।

जो लोभी, चुगलखोर, निर्दय, दम्भी और विषयामे आसक्त है, वह सारे तीर्थोमे भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी ओर मलिन ही है। शरीरका मैल उतारनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जल-जन्तु जलमे ही पैदा होते हैं ओर जलमे ही मरते हैं, परतु वे स्वर्गमे नहीं जाते, क्योकि उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोमे अत्यन्त राग ही मनका मल है और विषयोसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, 'वैसे' ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ शौच, तप, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ ही हैं। जिसकी इन्द्रियाँ सयममे हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमे जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।*

सस्कार

वेद-पुराणों तथा धर्मशास्त्रोमें सस्कारोंकी आवश्यकता बतलायी गयी है। जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमे चमक-प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये

---

* शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे। येषु सम्यङ्नर स्नात्वा प्रयाति परमा गतिम्॥
सत्य तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रह। सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दान तीर्थं दमस्तीर्थं सतोषस्तीर्थमुच्यते। ब्रह्मचर्यं पर तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञान तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्। तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनस परा॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यो दमस्नात शुचि शुद्धमनोमल॥
यो लुब्ध पिशुन क्रूरो दाम्भिको विषयात्मक। सर्वतीर्थेष्वपि स्नात पापो मलिन एव स॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मल। मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्त सुनिर्मल॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकस। न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमला॥
विषयेष्वतिसरागो मानसो मल उच्यते। तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्य समुदाहृतम्॥
चित्तमन्तर्गत दुष्ट तीर्थस्नानान्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौत सुराभाण्डमिवाशुचि॥

उसे तपाकर, तराशकर मल हटाना एव चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमे मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसस्कृत होना आवश्यक है अथात् उसका पूणत विधिपूवक सस्कार सम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमे विधिपूर्वक सस्कार-साधनसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न कर आत्माको परमात्माके रूपमे प्रतिष्ठित करना ही मुख्य सस्कार है ओर मानव-जीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी इसीमे है।

सस्कारासे आत्मा—अन्त करण शुद्ध होता हे। सस्कार मनुष्यको पाप ओर अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे सयुक्त करते हें। सस्कार मुख्यत दो प्रकारके हाते हैं—१-मलापनयन और २-अतिशयाधान। किसी दर्पण आदिपर पडी हुई धूल आदि सामान्य मलको वस्त्र आदिसे पोछना-हटाना या स्वच्छ करना मलापनयन कहलाता है और फिर किसी रग या तेजोमय पदार्थद्वारा उसी दर्पणको विशेप चमत्कृत या प्रकाशमय बनाना अतिशयाधान कहलाता है। अन्य शब्दोमे इसे ही भावना, प्रतियत्न या गुणाधान-सस्कार कहा जाता है।

सस्कारोकी सख्याम विद्वानाम प्रारम्भसे ही कुछ मतभेद रहा है। गौतमस्मृतिम ४८ सस्कार बतलाये गये हैं। महर्षि अङ्गिराने २५ सस्कार निर्दिष्ट किये हें। पुराणोमे भी विविध सस्काराका उल्लेख हे, परतु उनमे मुख्य तथा आवश्यक षोडश सस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश सस्कार इस प्रकार हें[१]—१-गर्भाधान, २-पुसवन, ३-सीमन्तोन्नयन ४-जातकर्म ५-नामकरण ६-निष्क्रमण ७-अन्नप्राशन, ८-वपन-क्रिया (चूडाकरण), ९-कर्णवेध १०-व्रतादेश (उपनयन), ११-वेदारम्भ, १२-केशान्त (गोदान), १३-वेदस्नान (समावर्तन), १४-विवाह, १५-विवाहाग्नि-परिग्रह, १६-त्रेताग्निसग्रह।

आगे इन्हीं सालह सस्काराका सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इनका आरम्भ जन्मसे पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। विशेष जानकारीके लिये गृह्यसूत्रों, मनु आदि स्मृतियोके साथ पुराणोका भी गम्भीर अवलोकन करना चाहिये।

(१) गर्भाधान-सस्कार—विधिपूर्वक सस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य सतान उत्पन्न होती है। इस सस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता हे, दोपका मार्जन तथा क्षेत्रका सस्कार होता है। यही गर्भाधान-सस्कारका फल है।[२] गर्भाधानके समय स्त्री-पुरुष जिस भावसे भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज-वीर्यमे भी पडता हे। उस रज-वीर्यजन्य सतानमें भी व भाव प्रकट होते हैं।[३] अत शुभमुहूर्तम शुभ मन्त्रसे प्रार्थना करके गर्भाधान करे। इस विधानसे कामुकताका दमन और शुभ-भावापन्न मनका सम्पादन हो जाता है। द्विजातिको गर्भाधानसे पूर्व पवित्र होकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये—

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्ता पुष्करस्रजौ॥

(बृहदारण्यक० ६।४।२१)

'हे सिनीवाली देवि! एव हे विस्तृत जघनोवाली पृथुष्टुका देवि! आप इस स्त्रीको गर्भ धारण करनेकी सामर्थ्य दे और उसे पुष्ट करे। कमलोकी मालासे सुशोभित दोना अश्विनीकुमार तेरे गर्भको पुष्ट कर।'

दानमिज्या तप शौच तीर्थसेवाश्रुत तथा। सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मल ॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नर। तत्र तस्य कुरुक्षेत्र नैमिष पुष्कराणि च॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे। य स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमा गतिम्॥ (स्कन्द० काशीख० ६।२९—४१)

१-गर्भाधान पुसवन सोमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशन वपनक्रिया ॥
कर्णवेधा व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधि। केशान्त स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रह ॥
त्रेताग्निसग्रहश्चेति सस्कारा षोडश स्मृता। (व्यासस्मृति १।१३—१५)

२-निषेकाद् बैजिक चैनो गार्भिक चापमृज्यते। क्षेत्रसस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफल स्मृतम्॥ (स्मृतिसग्रह)

३-आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशोभि समन्वितौ। स्त्रीपुसौ समुपेयाता तयो पुत्रोऽपि तादृश ॥ (सुश्रुत० शारीरस्थान २।४६)

अर्थात् स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टासे सयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभावका होता है।

(२) पुसवन-संस्कार—पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमे पुसवन-संस्कारका विधान है। 'गर्भाद् भवेच्च पुसूते पुस्त्वरूपप्रतिपादनम्' (स्मृतिसग्रह)। इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, इसलिये पुसवन-संस्कार किया जाता है। 'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्र ' अर्थात् 'पुम्' नामक नरकसे जो त्राण (रक्षा) करता है, उसे पुत्र कहा जाता है। इस वचनके आधारपर नरकसे बचनेके लिये मनुष्य पुत्र-प्राप्तिकी कामना करते हैं। मनुष्यकी इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये ही शास्त्रोमे पुसवन-संस्कारका विधान मिलता है। जब गर्भ दो-तीन मासका होता है अथवा गर्भिणीम गर्भके चिह्न स्पष्ट हो जाते हैं, तभी पुसवन-संस्कारका विधान बताया गया है।

शुभ मङ्गलमय मुहूर्तमें माङ्गलिक पाठ करके गणेश आदि देवताओका पूजन कर वटवृक्षके नवीन अङ्कुरा तथा पल्लवो और कुशकी जडको जलके साथ पीसकर उस रसरूप ओषधिको पति गर्भिणीकी दाहिनी नाकसे पिलाये और पुत्रकी भावनासे—

ॐ हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० १३।४)

—इत्यादि मन्त्राका पाठ कर। इन मन्त्रोसे सुसस्कृत तथा अभिमन्त्रित भाव-प्रधान नारीके मनमें पुत्रभावका प्रवाह प्रवाहित हो जाता है। जिसके प्रभावसे गर्भके मास-पिण्डमे पुरुषके चिह्न उत्पन्न होते हैं।

पुसवन-संस्कारका ही उपाङ्गभूत एक संस्कार होता है जो 'अनवलोभन' कहलाता है। इस संस्कारका यह प्रयोजन है कि इससे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा होती है और, असमयमे गर्भ च्युत नहीं होने पाता। इसमें शिशुकी रक्षाके लिये सभी माङ्गलिक पूजन, हवनादि कार्योंके अनन्तर जल एव ओषधियोकी प्रार्थना की जाती है।

पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुराणोमे पुसवन नामक एक व्रत-विशेषका विधान भी बतलाया गया हे, जो एक वर्षतक चलता है। स्त्रियाँ पतिकी आज्ञासे ही इस व्रतका सङ्कल्प लेती हैं। भागवतके छठे स्कन्ध, अध्याय १८-१९ मे बताया गया है कि महर्षि कश्यपकी आज्ञासे दितिने इन्द्रके वधकी क्षमता रखनेवाले पुत्रकी कामनासे यह व्रत किया था।

(३) सीमन्तोन्नयन-संस्कार—गर्भके छठे या आठवे मासमे यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका फल भी गर्भकी शुद्धि ही है। सामान्यत गर्भमे ४ मासके बाद बालकके अङ्ग-प्रत्यङ्ग-हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। चेतनाका स्थान हृदय बन जानेके कारण गर्भम चेतना आ जाती है। इसलिये उसम इच्छाओका उदय होने लगता हे। वे इच्छाएँ माताके हृदयमे प्रतिबिम्बित होकर प्रकट होती हैं, जो 'दोहद' कहलाता है। गर्भमे जब मन तथा बुद्धिम नूतन चेतनाशक्तिका उदय हाने लगता है, तब इनमें जो संस्कार डाले जाते हैं, उनका बालकपर बहुत गहरा प्रभाव पडता हे। इस समय गर्भ शिक्षण-योग्य होता है। महाभक्त प्रह्लादको देवर्षि नारदजीका उपदेश तथा अभिमन्युको चक्रव्यूह-प्रवेशका उपदेश इसी समयमे मिला था। अत माता-पिताको चाहिये कि इन दिना विशेष सावधानीके साथ शास्त्रसम्मत व्यवहार रखे।

इस संस्कारमे घृतयुक्त यज्ञ-अवशिष्ट सुपाच्य पौष्टिक चरु (खीर) गर्भवती स्त्रीको खिलाया जाता है। संस्कारके दिन सुपाच्य पौष्टिक भोजनका विधान करके यह सकेत कर दिया गया है कि प्रसवपर्यन्त ऐसा ही सुपाच्य पौष्टिक भोजन देना चाहिये।

इस संस्कारमे पतिको शास्त्रवर्णित गूलर आदि वनस्पतिद्वारा गर्भिणीके सीमन्त (माँग)-का 'ॐ भूर्विनयामि, ॐ भुवर्विनयामि, ॐ स्वर्विनयामि' मन्त्रसे पृथक्करणादि क्रियाएँ करते हुए यह मन्त्र पढना चाहिये—

येनादिते सीमान नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमान नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥

अर्थात् 'जिस प्रकार देवमाता अदितिका सीमन्तोन्नयन प्रजापतिने किया था, उसी प्रकार इस गर्भिणीका सीमन्तोन्नयन करके इसके पुत्रको जरावस्थापर्यन्त दीर्घजीवी करता हूँ।' इसके बाद वृद्धा ब्राह्मणियोद्वारा आशीर्वाद दिलाया जाता है।

(४) जातकर्म-संस्कार—इस संस्कारसे गर्भस्राव-

जन्य सारा दोष नष्ट हो जाता है। बालकका जन्म होते ही यह संस्कार करनेका विधान है। नालछेदनसे पूर्व बालकको स्वर्णकी शलाकासे अथवा अनामिका अँगुलीसे असमान मात्राम मधु तथा घृत चटाया जाता है। इसमे स्वर्ण त्रिदोष-नाशक है। घृत आयुवर्धक तथा वात-पित्तनाशक है एव मधु कफनाशक है। इन तीनोका सम्मिश्रण आयु, लावण्य और मेधाशक्तिको बढानेवाला तथा पवित्रकारक होता है।

बालकके पिता अथवा आचार्यको बालकके कानके पास उसके दीर्घायुके लिये इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

'अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि॥' (पारस्कर० १।१६।६)

'जिस प्रकार अग्निदेव वनस्पतियोद्वारा आयुष्यमान् हैं, उसी प्रकार उनके अनुग्रहसे मैं तुम्हे दीर्घ आयुसे युक्त करता हूँ।' ऐसे आठ आयुष्य-मन्त्रोंको बालकके कानके पास गम्भीरतापूर्वक जप कर उसके मनको उत्तम भावोसे भावित करे। पुन पिताद्वारा पुत्रके दीर्घायु होने तथा उसके कल्याणकी कामनासे **'ॐ दिवस्परि प्रथम जज्ञे०'** (यजु० १२।१८—२८) इत्यादि ग्यारह मन्त्रोंका पाठ करते हुए बालकके हृदय आदि सभी अङ्गोका स्पर्श करनेका विधान है। इस संस्कारमे माँके स्तनोंको धोकर दूध पिलानेका विधान इसलिये किया गया है कि माँके रक्त और माससे उत्पन्न बालकके लिये माँका दूध ही सर्वाधिक पोषक पदार्थ है।

(५) नामकरण-संस्कार—इस संस्कारका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि एव लौकिक व्यवहारकी सिद्धि बताया गया है।* जन्मसे दस रात्रिके बाद ग्यारहवें दिन या कुलक्रमानुसार सौवें दिन या एक वर्ष बीत जानेके बाद नामकरण-संस्कार करनेकी विधि है। पुरुष और स्त्रियाका नाम किस प्रकारका रखा जाय इन सारी विधियाका वर्णन पुराणामें बताया गया है।

(६) निष्क्रमण-संस्कार—इस संस्कारका फल विद्वानोने आयुकी वृद्धि बताया है—**'निष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभि '**। यह संस्कार बालकके चौथे या छठे मासमे होता है, सूर्य तथा चन्द्रादि देवताओका पूजन कर बालकको उनके दर्शन कराना इस संस्कारकी मुख्य प्रक्रिया है। बालकका शरीर पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाशसे बनता है। बालकका पिता इस संस्कारके अन्तर्गत आकाश आदि पञ्चभूताके अधिष्ठाता देवताआस बालकके कल्याणकी कामना करता है। यथा—

शिवे ते स्ता द्यावापृथिवी असतापे अभिश्रियौ।
श ते सूर्य आ तपतु श वातो वातु ते हृदे।
शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्या पयस्वती ॥

(अथर्ववेद ८।२।१४)

अर्थात् 'हे बालक! तेरे निष्क्रमणके समय द्युलोक तथा पृथिवीलोक कल्याणकारी, सुखद एव शोभास्पद हो। सूर्य तेरे लिये कल्याणकारी प्रकाश करे। तेरे हृदयमें स्वच्छ कल्याणकारी वायुका सचरण हो। दिव्य जलवाली गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ तेरे लिये निर्मल स्वादिष्ठ जलका वहन करे।'

(७) अन्नप्राशन-संस्कार—इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें मलिन-भक्षण-जन्य जो दोष बालकमे आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है (**'अन्नाशनान्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुद्ध्यति'**)। जब बालक ६-७ मासका होता है और दाँत निकलने लगते हैं, पाचनशक्ति प्रबल होने लगती है, तब यह संस्कार किया जाता है।

शुभमुहूर्तम देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् माता-पिता आदि सोने या चाँदीकी शलाका या चम्मचसे निमलिखित मन्त्रसे बालकको हविष्यान्न (खीर) आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न चटाते हैं—

शिवौ ते स्ता व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्म वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहस ॥

(अथर्ववेद ८।२।१८)

* आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्ट मनीषिभि ॥ (स्मृतिसग्रह)

अर्थात् 'हे बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिये बलदायक तथा पुष्टिकारक हो, क्योंकि ये दोनो वस्तुएँ यक्ष्मा-नाशक हैं तथा देवान्न होनेसे पापनाशक हैं।'

इस संस्कारके अन्तर्गत देवोंको खाद्य-पदार्थ निवेदित कर अन्न खिलानेका विधान बताया गया है। अन्न ही मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है, उसे भगवान्‌का कृपाप्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये।

(८) वपनक्रिया (चूडाकरण-संस्कार)—इसका फल बल, आयु तथा तेजकी वृद्धि करना है। इसे प्राय तीसरे, पाँचवे या सातवे वर्ष अथवा कुलपरम्पराके अनुसार करनेका विधान है। मस्तकके भीतर ऊपरको जहाँपर बालोका भँवर होता है, वहाँ सम्पूर्ण नाडियो एव संधियोका मेल हुआ है। उसे 'अधिपति' नामक मर्मस्थान कहा गया है, इस मर्मस्थानकी सुरक्षाके लिये ऋषियोने उस स्थानपर चोटी रखनेका विधान किया है। यथा—

नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ (यजु० ३।६३)

'हे बालक! मैं तेरे दीर्घ आयुके लिये तथा तुम्हें अन्नके ग्रहण करनेमे समर्थ बनानेके लिये, उत्पादन-शक्ति-प्राप्तिके लिये, ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये, सुन्दर सतानके लिये, बल तथा पराक्रम-प्राप्तिके योग्य होनेके लिये तेरा चूडाकरण (मुण्डन)-संस्कार करता हूँ।' इस मन्त्रसे बालकको सम्बोधित करके शुभमुहूर्तमे कुशल नाईसे बालकका मुण्डन कराये। बादम सिरमे दही-मक्खन लगाकर बालकको स्नान कराकर माङ्गलिक क्रियाएँ करनी चाहिये।

(९) कर्णवेधन—पूर्ण पुरुषत्व एव स्त्रीत्वकी प्राप्तिके लिये यह संस्कार किया जाता है। शास्त्रोमे कर्णवेधरहित पुरुषको श्राद्धका अधिकारी नहीं माना गया है। इस संस्कारको छ माससे लेकर सोलहवे मासतक अथवा तीन पाँच आदि विषम वर्षमे या कुलक्रमागत आचारको मानते हुए सम्पन्न करना चाहिये। सूर्यकी किरण कानोंके छिद्रसे प्रविष्ट होकर बालक-बालिकाको पवित्र करती हैं और तेज-सम्पन्न बनाती हैं। यद्यपि ब्राह्मण और वैश्यका रजतशलाका (सूई)-से, क्षत्रियका स्वर्णशलाकासे तथा शूद्रका लौहशलाकाद्वारा कान छेदनेका विधान है तथापि वैभवशाली पुरुषोको स्वर्णशलाकासे ही यह क्रिया सम्पन्न करानी चाहिये। पवित्र स्थानमे शुभ समयमे देवताओका पूजन कर सूर्यके सम्मुख बालक अथवा बालिकाके कानोका निम्नलिखित मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रण करना चाहिये—

भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायु ॥

(यजु० २५।२१)

फिर बालकके प्रथम दाहिने कानमे तदनन्तर बाये कानमे सूईसे छेद करे। बालिकाके पहले बाये फिर दाहिने कानके वेधके साथ बायीं नासिकाके वेधका भी विधान मिलता है। इन वेधोंमें बालकोको कुण्डल आदि तथा बालिकाको कर्णाभूषण आदि पहनाने चाहिये। कर्णवेधके नक्षत्रसे तीसरे नक्षत्रमें लगभग तीसरे दिन अच्छी तरहसे उष्ण-जलसे कानको धोना और स्नान कराना चाहिये। कर्णवेधके लिये जन्मनक्षत्र, रात्रि तथा दक्षिणायन निषिद्ध समय माना गया है।

(१०) उपनयन (व्रतादेश)-संस्कार—इस संस्कारसे द्विजत्वकी प्राप्ति होती है। शास्त्रों तथा पुराणोम तो यहाँतक कहा गया है कि इस संस्कारके द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यका द्वितीय जन्म होता है। विधिवत् यज्ञोपवीत धारण करना इस संस्कारका मुख्य अङ्ग है। इस संस्कारके द्वारा अपने आत्यन्तिक कल्याणके लिये वेदाध्ययन तथा गायत्री-जप और श्रौत-स्मार्त आदि कर्म करनेका अधिकार प्राप्त होता है।

शास्त्रविधिसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरु बालकके कन्धा तथा हृदयका स्पर्श करते हुए कहता है—

'मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥'

मैं वैदिक तथा लौकिक शास्त्रोके ज्ञान करानेवाले वेदव्रत तथा विद्याव्रत—इन दो व्रतोको तुम्हारे हृदयमे स्थापित कर रहा हूँ। तुम्हारा चित्त—मन या अन्त करण मेरे अन्त करणका ज्ञानमार्गमे अनुसरण करता रहे अर्थात् जिस प्रकार मैं तुम्हे उपदेश करता रहूँ, उसे तुम्हारा चित्त ग्रहण करता चले। मेरी बाताको तुम एकाग्र-मनसे समाहित होकर सुनो और ग्रहण करो। बुद्धि-विद्याके स्वामी बृहस्पति तुम्हे मेरी विद्याओसे सयुक्त करे।

इसी प्रकार वेदाध्ययनके साथ-साथ गुरुद्वारा बालक (वटु)-को कई उपदेश प्रदान किये जाते हैं। प्राचीन कालमे केवल वाणीसे ही ये शिक्षाएँ नहीं दी जाती थीं, प्रत्युत गुरुजन तत्परतापूर्वक शिष्योसे पालन भी करवाते थे।

(११) वेदारम्भ-सस्कार—उपनयन हो जानेपर *बालकका वेदाध्ययनमे अधिकार प्राप्त हो जाता है।* ज्ञानस्वरूप वेदाके सम्यक् अध्ययनसे पूर्व मेधाजनन नामक एक उपाङ्ग-सस्कार करनेका विधान है। इस क्रियासे बालककी मेधा प्रज्ञा, विद्या तथा श्रद्धाकी अभिवृद्धि होती है और वेदाध्ययन आदिमे विशेप अनुकूलता प्राप्त होती है तथा विद्याध्ययनमे कोई विघ्न नहीं होने पाता। ज्योतिर्निबन्धमे कहा गया है—

विद्यया लुप्यते पाप विद्ययाऽऽयु प्रवर्धते।
विद्यया सर्वसिद्धि स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

'वेदविद्याके अध्ययनसे सारे पापाका लोप होता है, आयुकी वृद्धि होती है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यहाँतक कि उसके समक्ष साक्षात् अमृत-रस अशन-पानके रूपमे उपलब्ध हो जाता है।'

गणश और सरस्वतीकी पूजा करनेके पश्चात् वेदारम्भ—विद्यारम्भमे प्रविष्ट होनेका विधान है। शास्त्रामे कही गयी निषिद्ध तिथियाम वेदका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। अपने गुरुजनोसे अङ्गोंसहित वेदो तथा उपनिपदोका अध्ययन करना चाहिये। तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कराना ही इस सस्कारका परम प्रयोजन है। 'वेदव्रत' नामक सस्कारमे महानाम्नी, महान्, उपनिषद् एव उपाकर्म चार व्रत आते हैं। उपाकर्मको सभी जानते हैं। यह प्रतिवर्ष श्रावणमे होता है। शेप प्रथम महानाम्नीमे प्रतिवर्षान्त सामवेदके महानाम्नी आर्चिककी नौ ऋचाओका पाठ हाता है। प्रथम मुख्य ऋचा इस प्रकार है—

विदा मघवन् विदा गातुमनुशꣳसिषो दिश ।
शिक्षा शचीना पते पूर्वीणा पुरूवसो॥

(साम० ६४१)

इसका भाव हे—'अत्यन्त वैभवशाली, उदार एव पूज्य परमात्मन्! आप सम्पूर्ण वेद-विद्याआके ज्ञानसे सम्पन्न हैं एव आप सन्मार्ग और गम्य दिशाओको भी ठीक-ठीक जानते हें, हे आदिशक्तिके स्वामिन्! आप हमे शिक्षाका साङ्गोपाङ्ग रहस्य बतला दे।'

द्वितीय तथा तृतीय वर्षोमे क्रमश 'वैदिक महाव्रत' तथा 'उपनिषद्-व्रत' किया जाता है, जिसमे वेदाकी *ऋचाओ तथा उपनिपदोका श्रद्धापूर्वक पाठ किया जाता हे* और अन्तमे सावित्री-स्नान होता है। इसके अनन्तर वेदाध्यायी स्नातक कहलाता हे। इसमे सभी मन्त्र-सहिताओका गुरुमुखसे श्रवण तथा मनन करना होता हे। यह वेदारम्भ मुख्यत ब्रह्मचर्याश्रम-सस्कार है।

(१२) केशान्त-सस्कार (गोदान)—वेदारम्भ-*सस्कारमे ब्रह्मचारी गुरुकुलमे वेदोका स्वाध्याय तथा* अध्ययन करता है। उस समय वह ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है तथा उसके लिये केश और श्मश्रु (दाढी), मौञ्जी-मेखलादि धारण करनेका विधान है। जब विद्याध्ययन पूर्ण हो जाता है तब गुरुकुलमे ही *केशान्त-सस्कार सम्पन्न होता है।* इस सस्कारमे भी आरम्भमे सभी सस्कारोकी तरह गणेशादि देवोका पूजन कर तथा यज्ञादिके सभी अङ्गभूत कर्मोका सम्पादन करना पडता है। तदनन्तर श्मश्रु-वपन (दाढी बनाने)-की क्रिया सम्पन्न की जाती है इसलिये यह श्मश्रु-सस्कार भी कहलाता है।

'केशानाम् अन्त समीपस्थित श्मश्रुभाग इति व्युत्पत्त्या केशान्तशब्देन श्मश्रूणामभिधानात् श्मश्रुसस्कार एव

केशान्तशब्देन प्रतिपाद्यते। अत एवाश्वलायनेनापि 'श्मश्रूणीहोन्दति'। इति श्मश्रूणा संस्कार एवात्रोपदिष्ट ।'

(संस्कारदीपक भाग २ पृ० ३४२)

पूर्वोक्त विवरणमे यह स्पष्ट किया गया है कि केशान्त शब्दसे श्मश्रु (दाढी)-का ही ग्रहण होता है, अत मुख्यत श्मश्रु-संस्कार ही केशान्त-संस्कार है। इसे गोदान-संस्कार भी कहा जाता है, क्योकि 'गौ' यह नाम केश (बालो)-का भी है और केशोका अन्तभाग अर्थात् समीपस्थित श्मश्रुभाग ही कहलाता है—

'गावो लोमानि केशा दीयन्ते खण्ड्यन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या गोदानं नाम ब्राह्मणादीना षोडशादिषु वर्षेषु कर्तव्य केशान्ताख्य कर्मोच्यते।'

(रघुवंश ३।३३ पद्यकी मल्लिनाथव्याख्या)

'गौ अर्थात् लोम-केश जिसमें काट दिये जाते हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गोदान' पद यहाँ ब्राह्मण आदि वर्णोके सोलहवे वर्षमें करनेयोग्य केशान्त नामक कर्मका वाचक है।'

यह संस्कार केवल उत्तरायणमे किया जाता है तथा प्राय षोडशवर्षमे होता है।

(१३) समावर्तन (वेदस्नान)—समावर्तन विद्याध्ययनका अन्तिम संस्कार है। विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेके अनन्तर स्नातक ब्रह्मचारी अपने पूज्य गुरुकी आज्ञा पाकर अपने घरमें समावर्तित होता है—लौटता है। इसीलिये इसे समावर्तन-संस्कार कहा जाता है। गृहस्थ-जीवनम प्रवेश पानेका अधिकारी हो जाना समावर्तन-संस्कारका फल है। वेद-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे भरे हुए ८ कलशोंसे विशेष विधिपूर्वक ब्रह्मचारीको स्नान कराया जाता है इसलिये यह वेदस्नान-संस्कार भी कहलाता है।

समावर्तन-संस्कारकी वास्तविक विधिके सम्बन्धमे आश्वलायन-स्मृतिके १४वे अध्यायमें पाँच प्रामाणिक श्लोक मिलते हैं जिनके अनुसार केशान्त-संस्कारके बाद विधिपूर्वक स्नानके अनन्तर वह ब्रह्मचारी वेदविद्याव्रत-स्नातक कहलाता है। उसे अग्निस्थापन परिसमूहन तथा पर्युक्षण आदि अग्निसंस्कार कर ऋग्वेदके दसवे मण्डलके १२८वें सूक्तकी सभी ९वो ऋचाओसे समिधाका हवन करना चाहिये। फिर गुरुदक्षिणा देकर, गुरुके चरणोका स्मरण कर, उनकी आज्ञा ले स्विष्टकृत् होमके अनन्तर निम्न मन्त्रद्वारा वरुणदेवसे मौञ्जी-मेखला आदिके त्यागकी कामना करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये—

'उदुत्तम मुमुग्धि नो वि पाश मध्यम चृत। अवाधमानि जीवसे॥' (ऋग्वेद १।२५।२१)

इसका भाव है—हे वरुणदेव! आप हमारे कटि एव ऊर्ध्वभागके मौञ्जी, उपवीत एव मेखलाको हटाकर सूतकी मेखला तथा उपवीत पहननेकी आज्ञा दें और निर्विघ्न अग्रिम जीवनका विधान करे। इसके बाद गुरुजन घर आते समय उसे लोक-परलोक-हितकारी एव जीवनोपयोगी शिक्षा देते हैं—'सत्य बोलना। धर्मका आचरण करना। स्वाध्यायमे प्रमाद न करना। आचार्यके लिये प्रिय धन लाकर देना। सतान-परम्पराका उच्छेद न करना। सत्यम प्रमाद न करना। कुशल-कर्मोमे प्रमाद न करना। ऐश्वर्य देनेवाले कर्मोमे प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचनम प्रमाद न करना। देवकार्यों और पितृकार्योम प्रमाद नहीं करना। माता-पिता, आचार्य तथा अतिथिको देवता माननेवाले होओ। जो अनिन्द्य कर्म हैं, उन्हींकी ओर प्रवृत्ति होनी चाहिये, अन्य कर्मोकी ओर नहीं। हमारे जो शुभ आचरण हैं, तुम्हे उन्हींका आचरण करना चाहिये, दूसरोका नहीं।'

जो हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उनका आसनादिके द्वारा तुम्हें आश्वासन (आदर) करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये। अपने ऐश्वर्यके अनुसार देना चाहिये। लज्जापूर्वक देना चाहिये। भय मानते हुए देना चाहिये। मित्रतापूर्वक देना चाहिये। यदि तुम्हे कर्म या आचरणके विषयमें कोई सदेह उत्पन्न हो जाय तो वहाँ जो विचारशील, कर्ममे स्वेच्छासे भलीभाँति लगे रहनेवाले धर्ममति ब्राह्मण हो उस विषयमे वे जैसा व्यवहार करते हो वैसा तुम्हे भी करना चाहिये।

इसी प्रकार जिनपर सशययुक्त दोषारोपण किया गया हो, उनके विषयमे भी वहाँ जो विचारशील, स्वेच्छासे कर्मपरायण, सरल-हृदय, धर्माभिलाषी ब्राह्मण हो, वे जैसा व्यवहार करे, वेसा तुम्हे भी करना चाहिये। यह आदेश हे, यह उपदेश हे, यह वेदका रहस्य और ईश्वरकी आज्ञा है। इसी प्रकार तुम्हे उपासना करनी चाहिये। ऐसा ही आचरण करना चाहिये।

इस उपदेश-प्राप्तिके अनन्तर स्नातकको पुन गुरुको प्रणामकर मौञ्जी-मेखला आदिका परित्याग करके गुरुसे विवाहकी आज्ञा लेकर अपने माता-पिताके पास आना चाहिये और माता-पिता आदि अभिभावकाको उस वेद-विद्याव्रत-स्नातकके घर आनेपर माङ्गलिक वस्त्राभूषणोसे अलकृतकर मधुपर्क आदिसे उसका स्वागत-सत्कारपूर्वक अर्चन करना चाहिये।

(१४) विवाह-सस्कार—पुराणाके अनुसार ब्राह्म आदि उत्तम विवाहासे उत्पन्न पुत्र पितरोको तारनेवाला होता है। विवाहका यही फल यताया गया है। यथा—

ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूत पितॄणा तारक सुत ।
विवाहस्य फल त्वेतद् व्याख्यात परमर्षिभि ॥

(स्मृतिसग्रह)

विवाह-सस्कारका भारतीय सस्कृतिम अत्यधिक महत्त्व है। जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्यजातिके स्त्री-पुरुषोका विवाह-सस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना दुर्विज्ञेय है। कन्या और वर दोनाके स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा शास्त्रोने नहीं प्रदान की है। इसके लिय कुछ नियम और विधान यने हैं, जिससे उनकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण होता है।

पाणिग्रहण-सस्कार देवता और अग्निके साक्षित्वम करनेका विधान है। भारतीय सस्कृतिम यह दाम्पत्य-सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तरतक माना गया है।

(१५) विवाहाग्निपरिग्रह—विवाह-सस्कारमें लाजा-होम आदि क्रियाएँ जिस अग्निम सम्पन्न की जाती हैं, वह 'आवसथ्य' नामक अग्नि कहलाती है। इसीका विवाहाग्नि भी कहा जाता है। उस अग्निका आहरण तथा परिसमूहन आदि क्रियाएँ इस सस्कारमे सम्पन्न होती हैं। शास्त्राम निर्देश है कि किसी वहुत पशुवाले वैश्यके घरसे अग्निको लाकर विवाह-स्थलकी उपलिप्त पवित्र भूमिमे परिसमूहन तथा पर्युक्षणपूर्वक उस अग्निकी मन्त्रासे स्थापना करनी चाहिये और उसी स्थापित अग्निमे विवाह-सम्बन्धी लाजा-होम तथा ओपासन होम करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा कर स्विष्टकृत् होम तथा पूर्णाहुति करनेका विधान है। कुछ विद्वानोंका मत है कि अग्नि कहीं बाहरसे न लाकर अरणि-मन्थनद्वारा उत्पन्न करनी चाहिये।

विवाहके अनन्तर जब वर-वधू अपने घर आने लगते हैं, तब उस स्थापित अग्निको घर लाकर किसी पवित्र स्थानमे प्रतिष्ठित कर उसमे प्रतिदिन अपनी कुलपरम्परानुसार साय-प्रात हवन करना चाहिये। यह *नित्य-हवन-विधि* द्विजातिके लिये आवश्यक बतायी गयी है और नित्य-कर्मोमे परिगणित है। सभी वैश्वदेवादि स्मार्त-कर्म तथा पाक-यज्ञ इसी अग्निमे अनुष्ठित किये जाते हैं। जैसा कि याज्ञवल्क्यने भी लिखा है—

'कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यह गृही।'

(या०स्मृति आचाराध्याय ५।९७)

(१६) त्रेताग्निसग्रह-सस्कार—

'स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौत वैतानिकाग्निषु'

(व्यासस्मृति २।१७)

स्मार्त या पाकयज्ञ-सस्थाके सभी कर्म वैवाहिक अग्निम तथा हविर्यज्ञ एव सोमयज्ञ-सस्थाके सभी श्रौत-कर्मानुष्ठानादि कर्म वैतानाग्नि (श्रौताग्नि-त्रेताग्नि)-में सम्पादित होते हैं।

इससे पूर्व विवाहाग्निपरिग्रह-सस्कारके परिचयम यह स्पष्ट किया गया है कि विवाहम घरमे लायी गयी आवसथ्य अग्नि प्रतिष्ठित की जाती है और उसीमें स्मार्त कर्म आदि अनुष्ठान किये जाते हैं। उस स्थापित अग्निसे अतिरिक्त तीन अग्नियों (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय)-की स्थापना तथा उनकी रक्षा आदिका विधान भी शास्त्रमें

निर्दिष्ट है। ये तीन अग्नियाँ त्रेताग्नि कहलाती हैं, जिसमे श्रौतकर्म सम्पादित होते हैं।

भगवान् श्रीराम जब लङ्का-विजय कर सीताके साथ पुष्पक-विमानसे वापस लौट रहे थे तब उन्होने मलयाचलके ऊपरसे आते समय सीताको अगस्त्यजीके आश्रमका परिचय देते हुए बताया कि यह अगस्त्य मुनिका आश्रम है, जहाँके त्रेताग्निमे सम्पादित यज्ञोके सुगन्धित धुएँको सूँघकर मैं अपनेको सभी पाप-तापासे मुक्त अनुभव कर रहा हूँ।

अन्त्येष्टिक्रिया

कुछ आचार्योंने मृत-शरीरकी अन्त्येष्टिक्रियाको भी एक सस्कार माना है, जिसे पितृमेध, अन्त्यकर्म, अन्त्येष्टि अथवा श्मशानकर्म आदि नामोसे भी कहा गया है। शास्त्रोंमें इस क्रियासे सम्बद्ध सभी विषयोका वर्णन है तथा यह क्रिया अत्यन्त महत्त्वकी है। यहाँ इसका सक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है, परतु इसके पूर्व मृत्युसे पूर्व (मरणासन्नावस्थामें) किये जानेवाले कार्योंका निरूपण करना भी आवश्यक है—

गोबर, जलसे भूमिको लीपकर कुशाओंसे ढक दे और काले तिलोंको फैला दे। उस भूमिपर मरनेवालेको उत्तरकी ओर सिर करके सीधा—चित्त करके लिटा दे। तुलसीपत्रसहित गङ्गाजल धीरे-धीरे मुखमें डाले। यथाशक्ति आतुरकालीन दान तथा दीपदान कराया जाय। उपस्थित सभी मनुष्य हरिस्मरण और हरिनामसकीर्तन करे—

'गोमयोदकेन भूमिमुपलिप्य, कुशैराच्छाद्य, कृष्णतिलान् विकीर्य, उत्तराशाशिरस्क, भूमौ उत्तानशायिन महाप्रयाणपथिक विदध्यात्। शनै गङ्गोदक सतुलसीदलमाचामयेत्। यथाशक्ति आतुरदान दीपदान च कारयेत्। समुपस्थिता हरिस्मरण हरिनामकीर्तन च कुर्यु ।'

इस सस्कारमे मुख्यत सस्कृत अग्निसे दाहक्रियासे लेकर द्वादशाहतकके कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। मृत व्यक्तिके शरीरको स्नान कराकर, वस्त्रासे आच्छादित कर, तुलसी-स्वर्ण आदि पवित्र पदार्थोंको अर्पित कर शिखासूत्र-सहित उत्तरकी ओर सिर करके चितामे स्थापित करना चाहिये और फिर औरस पुत्र अथवा सपिण्डी या सगोत्री व्यक्ति सुसस्कृत अग्निसे मन्त्रसहित चितामे अग्नि दे। अग्नि देनेवाले व्यक्तिको बारहवे दिनतक सपिण्डनपर्यन्त सारे कर्म करने चाहिये। तीसरे दिन अस्थिसचयन करके दसवे दिन दशाह कर तिलाञ्जलि देनी चाहिये। दस दिनतक आशौच रहता है, उसमे कोई नैमित्तिक कार्य नहीं करने चाहिये। बौधायनीय पितृमेधसूत्रोंमें इस क्रियाकी विशिष्ट विधि दी गयी है।

अन्त्येष्टि-क्रियाके रहस्यपर कुछ सक्षिप्त विचार इस प्रकार है—मृत्युके अनन्तर मृत शरीरको अग्नि प्रदान करके वैदिक मन्त्रोंद्वारा दाह-क्रिया सम्पन्न की जाती है। वर्ण और आश्रमके अनुसार दशगात्र-विधान, षोडशी-श्राद्ध, सपिण्डीकरण आदि क्रियाएँ भी इसी सस्कारके अन्तर्गत हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राणवायु, मन और बुद्धि इन सत्रह वस्तुओंका सूक्ष्मशरीर लेकर जीव स्वकर्मानुसार षाट्कौशिक स्थूलशरीरमे प्रवेश करता है। वहाँ प्रारब्धको समाप्त कर जब उपर्युक्त सत्रह वस्तुओको लेकर स्थूलशरीरसे वह निकलता है, उस समय जीवको सूक्ष्मशरीरके रक्षार्थ एक वायवीय शरीर मिलता है। इसीसे वह अपने कर्मानुसार कृष्ण या शुक्ल गतिको प्राप्त होता है। षाट्कौशिक स्थूलशरीरसे निकलते ही तत्काल वह वायवीय शरीरको ग्रहण करता है। इसी समय जीवकी प्रेत-सज्ञा पडती है अर्थात् वह अधिक चलनेवाला और हलका जीव बन जाता है। स्थूलशरीरमे अधिक समयतक निवास होनेके कारण शरीरके साथ उसका विशेष अभिनिवेश हो जाता है। अतएव जीव बारम्बार वायुप्रधान शरीरके द्वारा पूर्वशरीरके सूक्ष्मावयवो (परमाणुओ)-की तरफ रहनेकी चेष्टा करता रहता है। इसलिये इसी प्रेतत्वसे मुक्तिके लिये दशगात्रादि श्राद्धक्रियाएँ शास्त्रोमे बतलायी गयी हैं। मूर्ख, विद्वान् सभीके लिये **'प्रेतत्वविमुक्तिकाम '** ऐसा श्राद्ध-प्रकरणमे पढा जाता है। मृतककी वासना जमीनमे गडे हुए तथा कहीं गन्धयुक्त पडे हुए पूर्व शरीरपर न जाय और उससे जीवकी मुक्ति हो जाय इसलिये हिन्दुओमे मृत शरीरको

जलानेकी प्रथा प्रचलित हुई है। अग्निसंस्कारसे मृत शरीरका पार्थिवतत्त्व कण-कण जलकर रूपान्तर ग्रहण करता है। फिर भस्मरूप (फूल) पार्थिवतत्त्व भगवती भागीरथीकी पावन वारिधारामे प्रवाहित कर दिया जाता है। वह परम पवित्र जल उन भस्मकणोको स्वस्वरूपमे परिवर्तित कर लेता है। फिर मृतका सम्बन्ध पूर्व-शरीरसे विच्छिन्न हो जाता है और शास्त्रविहित श्राद्धादिक क्रियाके द्वारा प्रदत्त जलादि सामग्रीसे तृप्त होकर वह प्रेत-शरीरको छोड देता है। सन्यासियोके मृत शरीरके लिये अग्निसंस्कार शास्त्रमे नहीं बतलाया गया है, क्योकि कामनानुबन्धी कर्मोको तथा कृतकर्म-फलाको त्यागनेसे और श्रीभगवच्चरणारविन्दोम गाढ अनुराग होनेसे शरीर स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादिकी वासना जीवन-दशामे ही छूट जाती है। अतएव शरीरसे निकली हुई सन्यासियोकी आत्मा शीघ्रातिशीघ्र शुक्ल गतिसे प्रयाण कर जाती है। मृत शरीरकी ओर आकर्षण करनेवाली सामग्री ही नहीं रह जाती, इसलिये सन्यासियोके लिये श्राद्धादिकी कल्पनाएँ नहीं की गयी हैं। हिन्दुओमे छोटे बालकोका शरीर भी नहीं जलाया जाता। उसे भूमिके अदर गाड दिया जाता है। सूक्ष्मशरीरके साथ स्थूलशरीरमे प्रविष्ट आत्माका गाढ सम्बन्ध (अभिनिवेश) स्थूलशरीरमे अल्प दिनोमे नहीं होता। अतएव बालकोकी मृत आत्मा पूव-शरीरका सम्बन्ध शीघ्रातिशीघ्र त्यागकर सञ्चित कर्मानुसार अपर शरीरको प्राप्त करती है। इसी कारण अल्पवयस्क बालकोके लिये यह संस्कार नहीं बतलाया गया है। मृत आत्माओका प्रगाढ अन्वय (वासना) पूर्व-शरीरके ऊपर अवश्य रहता है। इसी आधारपर मुसलमान और ईसाई जातियोमें भी जहाँपर शरीर गाडा जाता है, वहींपर की जानेवाली कुछ क्रियाएँ उनके धर्मग्रन्थामे बतलायी गयी हैं। उन्हीं जातियोमे यह भी सिद्धान्त बतलाया गया हे कि जबतक प्रलय नहीं होता तबतक जीव मृत शरीरके पास ही सुख-दु ख भोगा करता है।

प्रेतयोनि—प्रसङ्गत यहाँपर यह भी कह देना उचित है कि चौरासी लाख योनियोम एक प्रेतयोनि भी मानी गयी है। कुछ पापाका परिणाम भोगनेके लिये प्रेतयोनि मिलती है। जलम डूबकर, अग्निमे जलकर, वृक्षसे गिरकर, किसीके ऊपर अनशन करके मरनेवाले मनुष्य प्रेतयोनिमे जाते हैं। वहाँपर भी मृत आत्माआके लिये वायु-प्रधान शरीर मिलता है। प्रेतोके हृदयम यह इच्छा सर्वदा बनी रहती है कि जहाँपर उनका धन है, उनके शरीरके पार्थिव परमाणु हैं, उनके शरीर-सम्बन्धी परिवार हैं, वहींपर रह, अपने सम्बन्धियोको अपनी तरह बनाय। सभी भौतिक पदार्थोंका सचय करनेकी सामर्थ्य वायुतत्त्वमे रहती है। यही कारण है कि प्रेत वायु-शरीर प्रधान होनेसे जिस योनिकी इच्छा करता है, साँप बैल भैंस आदि उसी शरीरको ग्रहण कर लेता है, परतु कुछ ही समयतक वह शरीर ठहर सकता है, पीछे सब पार्थिव परमाणु शीघ्र ही बिखर जाते हैं। जिसका अन्त्येष्टि-संस्कार शास्त्रविहित क्रियाओसे नहीं किया जाता, वह प्राणी कुछ दिनाके लिये प्रेतयोनि प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त विधिसे जब उसका प्रेतसस्कार, दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध सपिण्डन-विधान किया जाता है, तब वह प्रेत-शरीरसे छूट जाता है। मनुष्यसे इतर योनियोमे जीवके ऊपर पञ्चकोशोका विकास पूर्णरूपसे नहीं रहता है। इसलिये पशु-पक्षियोकी आत्मा पूर्व-शरीरके साथ गाढ सम्बन्ध (अभिनिवेश) नहीं कर पाती, वहाँपर प्रकृतिमाताके सहारेसे शीघ्रातिशीघ्र अन्य योनिको जीव प्राप्त कर लेता है। अतएव तिर्यक्-योनियोके लिये दाहादि संस्कार नहीं बतलाये गये हैं।

उत्तम संस्कारोके कुछ सामान्य नियम

१ प्रात काल सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। उठते ही भगवान्का स्मरण करना चाहिये।

२ शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्की उपासना सध्या, तर्पण आदि करने चाहिये।

३ बलिवैश्वदेव करके समयपर सात्त्विक भोजन करना चाहिये।

४ प्रतिदिन प्रात काल माता, पिता गुरु आदि बडोको प्रणाम करना चाहिये।

५ इन्द्रियोंके वश न होकर उनको वशमे करके उनसे यथायोग्य काम लेना चाहिये।

६ धन कमानेमे छल, कपट, चोरी, असत्य और बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें यथायोग्य सभीका अधिकार समझना चाहिये।

७ माता-पिता, भाई-भौजाई बहन-फूआ स्त्री-पुत्र आदि परिवार सादर पालनीय हैं।

८ अतिथिका सच्चे मनसे सत्कार करना चाहिये।

९ अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। पडोसियों तथा ग्रामवासियाको सदा सत्कारपूर्ण सेवा करनी चाहिये।

१० सभी कर्म बडी सुन्दरता, सफाई और नेकनीयतीसे करने चाहिये।

११ किसीका अपमान तिरस्कार और अहित नहीं करना चाहिये।

१२ अपने किसी कर्मसे समाजमे विशृङ्खलता और प्रमाद नहीं पैदा करना चाहिये।

१३ मन, वचन और शरीरसे पवित्र, विनयशील एव परोपकारी बनना चाहिये।

१४ सब कर्म नाटकके पात्रकी भाँति अपना नहीं मानना चाहिये परतु करना चाहिये ठीक सावधानीके साथ।

१५ विलासितासे बचकर रहना चाहिये—अपने लिये खर्च कम करना चाहिये। बचतक पैसे गरीबाकी सेवामें लगाने चाहिये।

१६ स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, अपने जीवनका भार दूसरेपर नहीं डालना चाहिये।

१७ अकर्मण्य कभी नहीं रहना चाहिये।

१८ *अन्यायका पैसा, दूसरेके हकका पैसा* घरमे न आने पाये, इस बातपर पूरा ध्यान देना चाहिये।

१९ सब कर्मोंको भगवान्‌की सेवाके भावसे—निष्कामभावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

२० जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।

२१ किसीके घरमे जिधर स्त्रियाँ रहती हा (जनानेम), नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोको किसी प्रकारस सूचना देकर जाना चाहिये।

२२ जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हो *या जिस* रास्तेसे स्त्रियाँ ही जाती हो, उधर नहीं जाना चाहिये।

२३ भूलसे अपना पैर या धक्का किसीको लग जाय तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।

२४ कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेम स्वयको कष्ट भी क्यो न हो।

२५ दूसरोकी सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब निष्काम-भावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।

२६ भगवत्प्रार्थनाके समय आँख बद रखकर मनको स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय 'भगवान्‌के चरणोंमे बैठा हूँ' ऐसी भावना अवश्य होनी चाहिये।

२७ किसी स्थानमे जायँ, जहाँ अपना आदर-सत्कार हो और अपने साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो उसे भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-सत्कारमे सम्मिलित कर लेना चाहिये।

सस्कारसारसर्वस्व—भगवत्प्राप्ति

सस्कार-समन्वित जीवनचर्याका अन्तिम लक्ष्य है—भगवत्प्राप्ति। वास्तवमे आत्मा ईश्वरका अश होनेके कारण सच्चिदानन्दस्वरूप है, परतु ससारके पदार्थोंसे तादात्म्य हो जानेसे और उसके गुण-धर्मको अपना मान लेनेके कारण वह जीवभावको प्राप्त कर लेता है, ससारी बन जाता है। ऐसी अवस्थामें आत्माके कल्मपको स्वच्छ करनेके लिये अपेक्षित सस्कारोंकी नितान्त आवश्यकता है। यह कार्य व्यक्ति स्वय कर सकता है। अपना उद्धार मनुष्य स्वय करता है, उसे किसी अन्यपर आश्रित होनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भगवद्गीता (६।५)-मे भगवान्‌ने कहा है—

उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन ॥

व्यक्ति अपने द्वारा अपना उद्धार करे, स्वयको अधोगतिमे न डाले, क्योकि मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और स्वय ही अपना शत्रु है।

अनादिकालसे जीवके साथ उसक अपने पूर्वजन्मक शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार शुद्ध-अशुद्ध वासनाएँ जुडी रहती हैं। मनुष्य सत्कर्मानुष्ठान करता है, इससे उसे पुण्य तो होता है, पर साथ ही शुद्ध वासनाएँ भी उसके साथ सलग्न हो जाती हैं। इसी प्रकार अशुभ कर्मोके अनुष्ठानसे दु ख और मलिन वासनाओंका जन्म होता है। मलिन वासनाओसे उसके अन्त करण और बाह्यकरण प्रभावित हो जाते हैं अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त अशुद्ध हो जाते हैं। अत व्यक्ति अपने आत्मोद्धारके लिये किये जानेवाले सत्कर्मोको छोडकर असत्-मार्गको ग्रहण कर लेता है, जो उसके जन्म-मरणके बन्धनका कारण बनता है। अत जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये तथा अपना कल्याण करनेके लिये अन्त करण और बाह्यकरणोके सस्कारकी अत्यन्त आवश्यकता है। इसीलिये आचार-विचार, यज्ञ तीर्थ-यात्रा, दान, व्रत एव उपवास आदि तथा विभिन्न शास्त्रोक्त सस्कार अन्त करण तथा बाह्यकरणोको पवित्र करनेके साधन हैं।

वस्तुत सच्चिदानन्दस्वरूप जीवात्माको अपन स्वरूपम अवस्थित रहनेके लिये अपने शास्त्रोमे कर्म उपासना और ज्ञानका मार्ग निर्देशित किया है, किंतु इसी जीवनमे भगवत्प्राप्तिका एकमात्र सरल उपाय है—'भगवच्चरणारविन्दकी ध्रुवानुस्मृतिरूप रागात्मिका भक्ति।' यह रागात्मिका भक्ति क्या है ? हमारे जीवनके सम्पूर्ण कार्य-कलाप भगवान्की प्रसन्नताके लिये तथा भगवान्की प्रीति प्राप्त करनेके लिये होने चाहिये। हम एक क्षणके लिये भी भगवान्की ध्रुवानुस्मृतिसे विलग न हों।

भगवत्प्रेमी भक्तको अपने इष्टदेवका क्षणभरका वियोग भी असह्य होता है। अत नित्य-निरन्तर अपने इष्टके प्रति उसकी सेवा-पूजा-आराधना चलती रहती है। इसके बदलेमे उसे *अपने आराध्यसे कुछ चाहिये नहीं। वह तो अपने* आराध्यके सुखमे सुखी, पसन्नतामे प्रसन्न रहता है। वह मात्र अपने आराध्यकी प्रीति और प्रेमका आकाङ्क्षी होता है। इस प्रकारके साधक निष्काम होते हैं। वे भगवान्से कोई लौकिक वस्तु प्राय नहीं माँगते परतु सामान्यत ससारमे अज्ञान-परवश मनुष्य स्वाभाविक रूपमें भौतिक सुखोकी आकाङ्क्षा रखते हैं। लौकिक सुख-सुविधाओके प्रति उनके मनमे आकर्षण रहता ही है। यह आकर्षण सत्सङ्ग, भगवद्भक्ति और उपासनासे ही समाप्त होता है। अत पुराण और शास्त्र सम्पूर्ण उपासनाका सविस्तार वर्णन करते हैं। इसमे उनका तात्पर्य यही है कि सासारिक सुखामे और भौतिक वस्तुआमे प्रीति रखनेवाले लोग भी किसी प्रकार भगवदुन्मुख तो हो जायँ। भगवान्से उनका सम्बन्ध तो जुडे। उन्हे भगवदाराधनसे लौकिक सुखोकी प्राप्ति तो होगी ही, पर जब साथ ही सत्सङ्ग आदिके द्वारा भगवत्तत्त्वका ज्ञान हो जानेपर क्षणभरमे भगवत्प्राप्तिकी सम्भावना भी प्रबल हो जायगी, तब उनका आत्मकल्याण भी हो सकेगा। परतु यह स्थिति भी साधनोकी अपेक्षा भगवान्की कृपासे ही सम्भव है भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवान्की शरणागति ही एकमात्र उपाय है। इसके लिये हमे भगवान्की आज्ञाके अनुरूप आचरण करनेका सङ्कल्प लेना होगा तथा भगवान्के चरणामें अपने कार्पण्यका निवेदन और आत्मसमर्पण करना होगा। शरणागतिके छ प्रकार बतलाये गये हैं—(१) भगवान्के सर्वथा अनुकूल बननेका सङ्कल्प (२) प्रतिकूलताका अभाव, (३) प्रभुसे रक्षा-प्राप्तिमे विश्वास, (४) रक्षकके रूपमे उनका वरण करना, (५) अत्यन्त दैन्यकी भावना तथा (६) पूर्ण आत्मसमर्पण।

आनुकूल्यस्य सङ्कल्प प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति ॥

—राधेश्याम खेमका

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और संस्कारतत्त्व-विमर्श

सदाचार, धर्माचरण, ज्ञान, वैराग्य, तप, क्षमा और सहिष्णुताके प्रतिमान महर्षि वसिष्ठका नाम सर्वविश्रुत है। ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र तथा भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। वेदो तथा पुराणेतिहास आदिमे इनका पावन चरित्र वर्णित हुआ है। योगवासिष्ठमे महर्षि वसिष्ठजीने अपने आविर्भावकी बात बताते हुए श्रीरामजीसे कहा—'रघुकुलभूषण राम! पिताजी (ब्रह्माजी)-ने मुझे आविर्भूत कर अपने कमलासनपर बैठाकर कहा—वत्स! तुम मेरे ही सदृश, मेरे आत्मरूप हो, तुम प्राणियोपर अनुग्रह

करनेके लिये भूलोकमे जम्बूद्वीपके मध्यभागमें स्थित भारतवर्षम जाओ, वहाँ जो लोग कर्मकाण्डपरायण हों, उन्हें कर्मकाण्डके क्रमसे शिक्षा देना और जो लोग विवेकशील, विरक्तचित्त तथा महाबुद्धिमान् हों, उन्हे परमानन्ददायक ज्ञानका उपदेश करना। श्रीराम! तदनुसार मैं भूलोकम निवास कर रहा हूँ और जबतक यह सृष्टि-परम्परा रहेगी तबतक यहाँ रहूँगा।'

इस प्रकार धर्मकी मर्यादा ज्ञानोपदेश, आचार-परम्पराके सरक्षण और सस्कारोंकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीका भूलोकमें अवतरण हुआ। महर्षि वसिष्ठ गृहस्थ-धर्मके आदर्श हैं। देवी अरुन्धती इनकी धर्मपत्नी हैं, जिनका पातिव्रत्य पतिव्रताओंके लिये सदा ही अनुकरणीय रहा है। सप्तर्षिमण्डलमें महर्षि वसिष्ठजीके साथ देवी अरुन्धती भी सदा विराजमान रहती हैं।

महर्षि वसिष्ठजीने अपने तपोबल एव ऋतम्भरा प्रज्ञासे वैदिक मन्त्रोंका दर्शन किया, इसीलिये ये मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाते हैं। ऋग्वेदके सप्तम मण्डलके मन्त्रोंका दर्शन आपकी ही कृपासे प्राप्त हुआ, इसलिये यह मण्डल 'वासिष्ठमण्डल' कहलाता है, इस मण्डलमें अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंकी स्तुतियाँ हैं तथा उन देवताओंसे महर्षिने बार-बार यह प्रार्थना की है कि आप हम सभीका सदा कल्याण करें—

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥'

(ऋक्० ७।१।२०)

इस प्रकार सबका हितचिन्तन, सबका कल्याण तथा सबका पारमार्थिक कल्याण करना ही महर्षि वसिष्ठजीका मूल उद्देश्य रहा है। मृत्युनिवारक त्र्यम्बकमन्त्र ('त्र्यम्बकं यजामहे०' ऋक्० ७।५९।१२) भी हमें वसिष्ठजीकी कृपासे प्राप्त है।

इसीके साथ ही [illegible] धर्मशास्त्रीय [illegible] वसिष्ठधर्मसूत्र [illegible] कल्याणकारी हैं। [illegible] बडा ही [illegible] कहते हैं कि [illegible] आचरण ही [illegible] १।३)। [illegible] धर्मका [illegible] पवित्र [illegible] देते हैं [illegible] गये हैं—

* इनके आविर्भावकी अनेक कथाएँ हैं, यहाँ ये [illegible] उद्धृत किये गये हैं, कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं।

आचारहीन न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीता सह षड्भिरङ्गै ।
छन्दास्येन मृत्युकाले त्यजन्ति नीड शकुन्ता इव जातपक्षा ॥

(वसिष्ठधर्मसूत्र ६।३)

महर्षि वसिष्ठने ओर्ध्वदैहिक क्रिया-सस्कारकी अवश्यकरणीयताका प्रतिपादन करके श्राद्धकर्मके विवरणमे बताया है कि श्राद्धमे दौहित्र (लडकीका पुत्र), कुतपकाल (दिनमे ११ बजकर ३६ मिनटसे १२ बजकर २४ मिनटतकका समय) तथा तिल—ये तीन अत्यन्त पवित्र हैं और बाह्याभ्यन्तर शौच, क्राधशून्यता तथा जल्दबाजी न करना—ये तीन बाते अत्यन्त प्रशसनीय हैं—

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्र कुतपस्तिला ।
त्रीणि चात्र प्रशसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥

(वसिष्ठधर्मसूत्र ११।३२)

वसिष्ठजीने सस्कार-सम्पन्नताको अति आवश्यक बताया है और वसिष्ठस्मृतिमे उन्हाने सस्कारविधि-विधानका विस्तारसे वर्णन किया है। जातकर्म, नामकरण निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण तथा उपनयन-सस्काराका उसमे विशेष वर्णन हुआ हे। वे बताते हैं कि चार मासम निष्क्रमण-सस्कार करना चाहिये। बालकको घरसे बाहर ले जाकर सूर्यमण्डलमे नारायणका ध्यान करते हुए सूर्यमन्त्रोका जप करना चाहिये और बालककी रक्षा तथा उसमे ज्ञानज्योतिकी प्रतिष्ठा करानेके लिये उसे सूर्यदर्शन कराना चाहिये—

'कुमारमीक्षयेद्भानु जपन् वै सूर्यदैवतम्॥'

(वसिष्ठस्मृति ३।६)

बालकका अनप्राशन-सस्कार छठे मासमे करना चाहिये—

'अथान्नप्राशन कुर्यात् षष्ठे मासि विधानत ।'

(वसिष्ठस्मृति ३।९)

आठवें मासमें विष्णुपूजन तथा तीसरे वर्षमें चूडाकरण-सस्कारकी प्रक्रिया वर्णित है। वसिष्ठजी बताते हैं कि जन्मसे आठवें या आधानकालसे आठवें वर्षम ब्राह्मणबालकका यज्ञोपवीत-सस्कार करना चाहिये—

आधानादष्टमे वर्षे ब्राह्मणस्योपनायनम्।
जन्माष्टमे वा कर्तव्य ..... ॥

(वसिष्ठस्मृति ३।३७)

तदनन्तर विस्तारसे यज्ञोपवीत-सस्कारकी विधि वर्णित है और ब्रह्मचर्याश्रमके कर्तव्यो और ब्रह्मचारीके दैनिक आचारोका वर्णन है। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह विद्याध्ययन कर गुरुकी आज्ञासे स्नातक व्रताका सम्पादन करे और समावर्तन-सस्कारके बाद नवीन वस्त्राभूषणाको धारणकर वापस घरमे आये। यदि वह विरक्त होना चाहे तो निवृत्तिमार्गका आश्रयणकर वनकी ओर प्रस्थान करे और यदि गृहस्थाश्रमम रुचि हो तो विवाहकर गृहस्थधर्मका पालन करे—

'विरक्त प्रव्रजेद्विद्वाननुरक्तो गृहे विशेत्॥'

(वसिष्ठस्मृति ४।१)

इसके अनन्तर महर्षि वसिष्ठजीने विस्तारसे विवाह-सस्कारका विधान बतलाया है। पातिव्रत्य-धर्मकी महिमा बताते हुए वे कहते हैं कि शील (सदाचारका परिपालन) ही स्त्रीका प्रथम कर्तव्य है और पति ही उसका देवता, बन्धु तथा परम गति है, उसकी आज्ञाके उल्लघनसे स्त्रीको नरककी प्राप्ति होती है—

शीलमेव तु नारीणा प्रधान धर्म उच्यते॥
पतिर्हि दैवत नार्या पतिर्बन्धु पतिर्गति ॥
तस्याज्ञा लङ्घयित्वैव नारी नरकमाप्नुयात्।

(वसिष्ठस्मृति ५।१—३)

आचार्य वसिष्ठजीने जिस प्रकार सस्कारोंद्वारा शरीर-शुद्धिका विधान बताया है, ऐसे ही द्रव्यशुद्धि तथा भावशुद्धिपर भी उन्होंने बहुत जोर दिया है। वे अन्त करणकी शुद्धिको ही मुख्य शुद्धि मानते हैं तथा आध्यात्मिक सस्कारोंको पारमार्थिक कल्याणका मुख्य हेतु बताते हैं। उनके द्वारा श्रीरामको उपदिष्ट श्रीयोगवासिष्ठ आध्यात्मिक सस्कारोके प्रतिपादनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। महर्षि वसिष्ठजी श्रीरामसे कहते हैं—शम विचार, सतोष और सत्सगति—ये ही चारो मनुष्योके लिये भवसागरसे तरनेके साधन हैं। मोक्षके द्वारपर निवास करनेवाले ये चार द्वारपाल हैं। इनमे सतोष परम लाभ है, सत्सगति परम गति है, विचार उत्तम ज्ञान है और शम परमोत्कृष्ट सुख है जिन्होने इनका भलीभाँति सेवन किया, समझना चाहिये कि वे मोहजालसे परिपूर्ण भवसागरसे पार हो गये। इनमेंसे एक ही साधनका

अभ्यास हो जानेपर शेष तीनो भी अभ्यस्त हो जाते हैं—

'एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वश यत ॥'

(योगवासिष्ठ)

अपने एक महत्त्वपूर्ण उपदेशमे महर्षि वसिष्ठ सावधान करते हुए कहते हैं—

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्य वदत नानृतम्।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्व पर पश्यत माऽपरम्॥

(वसिष्ठस्मृति ३०।१)

उपदेशका भाव यह हे कि धर्मका ही आचरण करो—अधर्मका नहीं, सदा सत्य ही बोलो—असत्य मत बोलो दूरदर्शी बनो अर्थात् सोच-विचारकर विवेकपूर्वक धर्माधर्मका निर्णय करो, ह्रस्व अर्थात् सकीर्ण न बनो, उदार बनो। जो परसे भी परात्पर तत्त्व है, उसी तत्त्वपर सदा दृष्टि रखो, तदतिरिक्त अर्थात् परमात्मासे भिन्न मायामय किसी भी वस्तुपर दृष्टि मत रखो।

महर्षि वसिष्ठ सूर्यवशी राजाआके कुलगुरु तथा पुरोहित रहे हैं। अत उन्होने ही इस राजवशके राजाओके सस्कार करवाये तथा राज्यसचालनकी शिक्षा-दीक्षा प्रदान की। महर्षि वसिष्ठजीके साथ ही महर्षि वामदेव तथा महामुनि विश्वामित्रजीका भी सूर्यवशसे विशेष सम्बन्ध रहा है। ब्रह्माजीने जब वसिष्ठजीको सूर्यवशी राजाओका पौरोहित्य करनेकी आज्ञा दी, तब इन्होने उस कार्यमे हिचकिचाहट प्रकट की। फिर ब्रह्माजीने समझाया कि इसी वशम आगे चलकर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतार होनेवाला है, तब इन्होंने सहर्ष पौरोहित्य-कर्म स्वीकार कर लिया।

महर्षि वसिष्ठजीने गो-सेवाके सस्कारको बहुत ही महत्त्वका बताया है। इनके आश्रममे सुरभि-पुत्री नन्दिनी नामक गौ रहती थी। देवी अरुन्धतीजीके साथ ये स्वय गोमाताकी सेवा किया करते थे। देवी अरुन्धती शील और शक्तिमें महात्मा वसिष्ठजीके समान ही थीं—

'समानशीला वीर्येण वसिष्ठस्य महात्मन ।'

(महा०, अनु० १३०।२)

एक बार देवताओं तथा ऋषि-महर्षियोंने देवी अरुन्धतीके पास जाकर पूछा—भद्रे! हम आपके मुँहसे धर्मका रहस्य सुनना चाहते हैं, उसे बतानेकी कृपा करे।

इसपर देवी अरुन्धतीने उन्हें गोकी महिमा ही बतायी और कहा—सबेरे उठकर कुश और जल हाथमें लेकर गौओके बीचमे जाय। वहाँ गौओके सींगपर जल छिडके और सींगसे गिरे हुए जलको अपने मस्तकपर धारण करे। साथ ही उस दिन निराहार रहे—ऐसे पुरुषको जो धर्मका फल मिलता है, उसे सुनो—तीनो लोकोम सिद्ध, चारण ओर महर्षियोसे सेवित जो कोई भी तीर्थ सुने जाते हैं, उन सबमें स्नान करनेका जो फल मिलता हे, वही फल गायोके सींगके जलसे (शृङ्गोदकसे) अपने मस्तकको सींचनेसे प्राप्त होता है—

कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृह्य दर्भान् सहोदकान्।
निषिञ्चेत गवा शृङ्गे मस्तकेन च तज्जलम्॥
प्रताच्छेत निराहारस्तस्य धर्मफल शृणु।
श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु कानिचित्॥
सिद्धचारणजुष्टानि सेवितानि महर्षिभि ।
अभिषेक समस्तेषा गवा शृङ्गोदकस्य च॥

(महा० अनु० १३०।९—११)

महर्षि वसिष्ठजी तो पग-पगपर गोसेवाकी महिमा बताते हैं। पुराणामे इस सम्बन्धमे अनेक प्रकरण हैं। महाभारतके अनुशासनपर्वमें इन्होंने इक्ष्वाकुवशी राजा सौदासको बडे विस्तारसे गोसेवा तथा गोदानका महत्त्व बतलाया है और कहा है कि गौओका नाम-कीर्तन बडा कल्याणकारी है। अत उनका नाम-कीर्तन किये बिना सोये नहीं। उनका स्मरण करके ही उठे और सबेरे-शाम उन्हे नमस्कार करे, इससे मनुष्यको पुष्टिकी प्राप्ति होती है। यदि बुरे स्वप्न दिखायी दे तो गोमाताका नाम ले, इससे सभी अशुभोका निवारण हो जाता है—

नाकीर्तयित्वा गा सुप्यात् तासा सस्मृत्य चोत्पतेत्।
सायप्रातर्नमस्येच्च गास्तत पुष्टिमाप्नुयात्॥
अनिष्ट स्वप्नमालक्ष्य गा नर सम्प्रकीर्तयेत्॥

(महा० अनु० ७८।१६ १८)

इस प्रकार ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीका ब्रह्मज्ञान आचार-निरूपण और उनके उपदेश बडे ही कल्याणकारी तथा भगवान्की आर ले जानेवाले हैं।

महर्षि गौतम और उनकी संस्कार-निष्ठा

प्राचीनतम धर्माचार्योंमे महर्षि गौतमका नाम बडे ही आदरसे लिया जाता है। आचार्य याज्ञवल्क्यने अपनी स्मृतिमे यह निरूपित किया है कि धर्म और सदाचार-मीमासाके प्रतिपादन तथा परिपालनम महर्षि गौतम विशेषरूपस प्रतिष्ठित हैं (याज्ञ०स्मृ० १।५)। पुराणोमे निर्दिष्ट है कि महर्षि गौतम ब्रह्माजीकी मानसी-सृष्टिसे उद्भूत हैं और देवी अहल्या इनकी पत्नी हैं। महर्षि गौतमका चरित्र अत्यन्त दिव्य तथा तप पूत साधनासे परिपूर्ण है, सर्वभूतहित-चिन्तन ही इनकी साधनाका परमोद्देश्य रहा है। ये भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय पात्र रहे हैं। सनातनधर्मकी मर्यादाके स्थापन तथा उसके परिपालनमे ही इनका समूचा जीवन अनुस्यूत रहा है। दीर्घकालीन सन्ध्योपासना तथा भगवती गायत्रीकी आराधना इनका अभीष्ट रहा है। महाभारतम उल्लेख है कि महर्षि गौतमने पारियात्र पर्वतपर साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी और इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर साक्षात् धर्म इनके आश्रमपर पधारे थे। महर्षि गौतम-जैसा त्याग वैराग्य तप धर्माचरण तथा सस्कारित जीवन अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। ये न्याय-दर्शनक आचार्य भी हैं। महर्षि गौतमने धमतत्त्वको मुख्य माना है और इसी धमतत्त्वका निरूपण करनेके लिय उन्हाने अनेक सूत्राकी रचना की है जिसमे जीवन कैसे आचारनिष्ठ तथा सस्कार-सम्पन्न हो और कैसे उस भगवद्भावसे अनुप्राणित किया जा सके—इन तथ्याका बडी ही सूक्ष्मरीतिसे निरूपण किया गया है। ये सूत्र उन्हींक नाम अर्थात् 'गौतमधर्मसूत्र' नामसे प्रसिद्ध हैं। इस धर्मसूत्रका सम्बन्ध विशेषरूपसे सामवेदसे बताया जाता है। आचार्य हरदत्त तथा आचार्य मस्करी आदि द्वारा इस धर्मसूत्रपर महत्त्वपूर्ण सस्कृत भाष्य हुए हैं। इस धर्मसूत्रमे छोटे-छोटे २९ अध्याय हैं और अध्यायांके अन्तर्गत सूत्र हैं, जो बडे ही उपयोगी और जीवनमे काम लाने योग्य हैं। महर्षि गौतमने अपने सूत्रामे अनेक बाताका निरूपण किया है, किंतु यहाँपर उनकी सस्कार-निष्ठाके प्रतिपादनको सक्षेपमे प्रस्तुत किया जा रहा है—

महर्षि गौतमने अपने धर्मसूत्रके प्रारम्भमे ही आचारका निरूपण किया है और आचारकी मर्यादाम वे बताते हैं कि वेद ही धर्माचारका मूल है—**'वेदो धर्ममूलम्'**। तदनन्तर गृहस्थधर्मसम्बन्धी मुख्य सस्कार-कर्मोका निरूपण करते हुए महर्षि बताते हैं कि गृहस्थको नित्य देव, पितृ मनुष्य आदि पञ्चमहायज्ञोको करना चाहिये और अतिथि, बालक रोगी, गर्भिणी स्त्री, सौभाग्यवती स्त्री, वृद्ध तथा बच्चाको भोजन करानेके बाद ही भोजन करना चाहिये—

'भोजयेत् पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणी-सुवासिनीस्थविरान् जघन्याश्च।' (गौतमधर्मसूत्र अ० ५)

महर्षि गौतम सदाचरण आदिमे किसका अनुकरण किया जाय इसे बताते हुए कहते हैं—जिस कर्मको आत्मज्ञानी वृद्धजन, विनयसम्पन्न दम्भ लोभ, मोहसे रहित तथा वेदके जाननेवाले विद्वान् करनेयोग्य कर्तव्य बताय उसी कर्मको करे, अन्यको नहीं अर्थात् मनमाना कर्म न करे—

'……यच्चात्मवन्तो वृद्धा सम्यग्विनीता दम्भलोभ-मोहवियुक्ता वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत्।'

(गौतमधर्मसूत्र अ० ९)

महर्षि गौतम बताते हैं कि व्यक्तिको चाहिय कि वह सत्यके सस्कारसे अनुप्राणित रहे, श्रेष्ठजनाके आचारका परिपालन करे, अहिंसाव्रतपरायण रह मृदुव्यवहार रखे सत्सङ्कल्पकी पूर्णताम दृढतासे लगा रहे इन्द्रियापर निग्रह रखे दान-धर्मका पालन करे तथा शील एव विनयसे सम्पन्न रहे—

'सत्यधर्मा आर्यवृत्त'' अहिंस्रो मृदुर्दृढकारी दमदानशील०।' (गौतमधर्मसूत्र अ०९)

महर्षि गौतमने गोसेवाको धर्मसेवनका सर्वोपरि सहज उपाय बताया है और विस्तारसे गौकी महिमा निरूपित की है। उन्होने गौके विश्वरूपका वर्णन करते हुए गौके शरीरम सभी देवताओ तथा तीर्थोंका निवास बताया है—(वृद्ध गौतमस्मृति अ० १०)। वृषभको पितारूप तथा गौको मातृरूप बताते हुए उन्होने कहा है कि इनकी पूजा करनेसे माता-पिताकी भी पूजा हो जाती है—

पितरो वृषभा ज्ञेया गावो लोकस्य मातर ।
तासा तु पूजया राजन् पूजिता पितृमातर ॥
(वृद्धगौतमस्मृति १३।२२)

महर्षि गौतमने सस्काराका तो विस्तारसे निरूपण किया ही है, किंतु इनकी सस्कारोपर विशेष निष्ठा दिखलायी पडती है, इसीलिये इन्होने ४८ सस्कारोंकी गणना की है जो अन्य आचार्योकी गणनासे अधिक है। इनमे गर्भाधानादि सस्कार तो हैं ही २१ सस्कार और बताये हैं, जो सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ तथा सात सोमयज्ञके रूपमें निर्दिष्ट हैं, इन सबको मिलाकर सस्कारोकी सख्या चालीस हो जाती है। महर्षि गौतमने स्थूल करणोके साथ-ही-साथ सूक्ष्म करणोके सस्कारको भी आवश्यक बताया है, इसके लिये उन्हाने आठ सस्कार और गिनाये हैं, जिन्ह वे आत्मगुण नामसे प्रतिपादित करते हैं, 'अष्टावात्मगुणा ।' वे आठ आत्मगुण इस प्रकार हैं—

'दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति।' अर्थात् दया, क्षान्ति अनसूया, शौच अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य तथा अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण नामक सस्कार हैं। महर्षि गौतम बताते हैं कि गर्भाधानादि चालीस सस्कारोसे स्थूल शरीरका सस्कार हो जाता है, किंतु सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीरके सस्काराके लिये सात्त्विक भावोंकी प्रतिष्ठा, अन्त करणके मलका अपसारण तथा पञ्चम पुरुषार्थरूप भगवत्सम्बन्ध होना आवश्यक है, तभी जीवका वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होता है। स्थूल सस्कारासे जीवम योग्यता प्राप्त होती है और वह धीरे-धीरे अन्त करणको पवित्र करता हुआ भगवान्से अपना नित्य सम्बन्ध बना लेता है। इस प्रकार महर्षि गौतमद्वारा प्रतिपादित सस्कार-मीमासा अत्यन्त सूक्ष्म तथा कल्याणकर है। उन्होने जो दया आदि आठ आत्मगुणरूपी सस्कार बताये हैं, उनका अन्यत्र भी पारिभाषिक रूपसे निर्देश हुआ है। महर्षि अत्रि तथा आचार्य बृहस्पतिने भी किञ्चित् नामान्तरसे इन्हें परिभाषित किया है, अति महत्त्वका होनेसे उसे यहाँ समग्ररूपसे दिया जा रहा है—।

(१) दया—सम्पूर्ण चराचर जगत्म तथा सभी प्राणियोमे अपने समान ही सुख-दु खकी प्रतीति करते हुए सबमे आत्मभाव—परमात्मभाव रखकर दूसरेके श्रेय तथा कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक जो व्यवहार निरन्तर किया जाता है—इस प्रकारका समग्र वर्तन 'दया' कहा गया है—

आत्मवत्सर्वभूतेषु यद्धिताय शिवाय च।
वर्तते सतत हृष्ट कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता॥

(२) क्षमा—दूसराके द्वारा बाह्य शरीरमे तथा अन्त शरीरम दु ख पहुँचानेपर भी प्रतीकारस्वरूप न तो कोप करना और न मारनेकी चेष्टा करना—ऐसा भाव क्षमा कहा गया है अर्थात् किसी भी प्रकारसे न तो स्वय उद्विग्न होना और न दूसरेको उद्वेलित करना—इस प्रकार समतामे स्थित रहनेका भाव 'क्षमा' है—

बाह्ये चाभ्यन्तरे चैव दु ख उत्पादिते परै ।
न कुप्यति न वा हन्ति सा क्षमा परिकीर्त्तिता॥

(३) अनसूया—वेदज्ञान आदि सद्गुणामे महिमा-बुद्धिके कारण द्यूत और चौर्य आदि दुर्गुणोसे युक्त व्यक्तिको पीडित न करना, अल्पगुणोंकी भी बहुत अधिक प्रशसा करना तथा दूसरेके दोष-दर्शनम प्रीति न रखना—इस प्रकारके भावको 'अनसूया' कहा गया है—

न दुर्गुणान् गुणैर्हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि।
नान्यदोषेषु रमते साऽनसूया प्रकीर्त्तिता॥

(४) शौच—अभक्ष्यभक्षणका परित्याग, निन्दित व्यक्तियाका ससर्ग न करना तथा स्वधर्मम स्थित रहना—इस प्रकारका भाव-सस्कार 'शौच' कहलाता है—

अभक्ष्यपरिहारश्च ससर्गश्चाप्यनिन्दितै ।
स्वधर्मेषु व्यवस्थान शौचमेतत्प्रकीर्त्तितम्॥

(५) अनायास—जिस विहित कर्मके द्वारा भी

शरीरको अत्यन्त कष्ट प्राप्त होता हो, ऐसे कर्मको अधिक न करना अथवा उसका वर्जन करना अर्थात् सहजभावसे जो आसानीपूर्वक किया जा सके, उसे करनेका भाव 'अनायास' कहलाता है—

शरीर पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा।
अत्यन्त वर्जयेत्तत्तु सोऽनायास प्रकीर्त्तित ॥

(६) मङ्गल—श्रेष्ठ व्यक्तियाका तथा शास्त्रमर्यादित आचरणका नित्य व्यवहार और निन्दनीय आचरणका परित्याग—इसे तत्त्वज्ञानी ऋषियाके द्वारा 'मङ्गल' कहा गया है—

प्रशस्ताचरण नित्यमप्रशस्तविवर्जनम्।
एतद्धि मङ्गल प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ॥

(७) अकार्पण्य—'प्रत्येक दिन दान देना कर्तव्य है'—यह समझकर अपने स्वल्पमसे भी अन्तरात्मासे प्रसन्न होकर प्रयत्नपूर्वक यत्किचित् भी देना—यह भाव-सस्कार 'अकार्पण्य' कहलाता है—

स्तोकादपि हि दातव्यमदीनेनान्तरात्मना।
अहन्यहनि यत्किचित्तदकार्पण्यमुच्यते ॥

(८) अस्पृहा—व्यक्तिको चाहिये कि वह विषयोके सेवनमे सदा ही असतोषका वर्जन करे अर्थात् विषयोके सेवन न करनेमे सतुष्ट रहे, बिना यत्न किये जो प्राप्त है, उसीमे सतोष रखे और परद्रव्यकी अभिलाषा न रखे—इस प्रकारकी भावनाको विद्वानाने 'अस्पृहा' कहा है—

विवर्जयेदसतोष विषयेषु सदा नर ।
परद्रव्याभिलाष च सास्पृहा कथ्यते बुधै ॥

इस प्रकार आठ आत्मगुणोंसे सस्कारित होनेको महर्षि गौतमजीने विशेष महत्त्व दिया है और बताया है कि जिसके गर्भाधानादि चालीस सस्कार नहीं होते और जो आठ आत्मगुणात्मक सस्कारासे सम्पन्न नहीं है, उसे कुछ फल प्राप्त नहीं होता उसका जीवन व्यर्थ है, कितु जो इन सस्कारासे सस्कृत होता है, वह ब्रह्मलोकमे वास करता है और ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त करता है—

'यस्यैते न चत्वारिंशत्सस्कारा न चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मण सायुज्य सालोक्य च गच्छतीति।'

इसी भावको महर्षि अत्रिजी अत्रिसहितामे बताते हुए कहते हैं—इन दया आदि अष्ट सस्कारयुक्त लक्षणासे सम्पन्न सद्गृहस्थ द्विज अपने उत्तम आचरणसे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लेता है और फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपि भवेद् द्विज ।
स गच्छति पर स्थान जायते नेह वै पुन ॥
(अत्रिसहिता ४२)

महर्षि वेदव्यास-प्रतिपादित सस्कार-मीमांसा

महर्षि वेदव्यासजी भगवान्‌के चौबीस अवतारोमे परिगणित हैं। अत भगवान्‌के अवतरणके जो भी प्रयोजन हैं वेदव्यासजीमे उन सबकी प्रतिष्ठा स्वाभाविक है, वे वाङ्मयावतार कहे जाते हैं। वेदव्यासजी वसिष्ठजीके प्रपौत्र शक्ति ऋषिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र तथा महाभागवत शुकदेवजीके पिता हैं। वेदज्ञानका प्रसार तथा वेदज्ञानका आख्यानशैलीमे पुराणोमे प्रतिपादन—यह वेदव्यासजीका अपूर्व कौशल है। वेदसहिताका ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व—इन चार रूपामे उनके ही द्वारा विभाजन हुआ और अठारह पुराणा तथा उपपुराणोके रचयिता भी वे ही हैं। महाभारत-जैसा विशाल ग्रन्थ हमे उन्हींकी कृपासे प्राप्त हुआ जिसके विषयमे प्रसिद्ध है कि 'यन्न भारते तन्न भारते' अर्थात् जो महाभारतमे नहीं कहा गया है वह भारतवर्षमे अन्य किसीके भी द्वारा नहीं कहा गया है। इसके साथ ही

वेदान्तका आर्ष ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र व्यासजीने हमे प्रदान किया है। इस प्रकार समस्त विद्याएँ, ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य प्रदान करनेवाले व्यासजीका हमपर महान् उपकार है।

महर्षि वेदव्यासजीकी समस्त जीवनचर्या धर्म, सदाचार, ज्ञान, वैराग्य, तप, सतोष, अपरिग्रह आदिपर प्रतिष्ठित रही है और इन्हींकी प्रतिष्ठाके लिये उन्होने अवतार धारण किया। उन्होने अपने वाङ्मयद्वारा इन सभी बातोंको बतलाया तथा स्वय अपने जीवनमे उतारकर दिखलाया है। वेदो तथा ब्रह्मसूत्रमे उन्होने शुद्ध परमात्मतत्त्वका निरूपण कर ज्ञानमार्ग तथा कर्ममार्गका उपदेश दिया है, वहीं पुराणोमे सम्पूर्ण आचारधर्मका निरूपण किया है। नित्य, नैमित्तिक विधिप्रतिपादित कर्मों तथा निष्काम कर्मकी जैसी मीमासा वेदव्यासजीने प्रस्तुत की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके द्वारा रचित धर्मशास्त्रके दो मुख्य ग्रन्थ हैं, जो उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हैं। यथा—१-व्यासस्मृति तथा २-लघुव्याससहिता।

वेदव्यासजीकी मान्यता है कि भगवान्की प्राप्तिके लिये अन्त करणकी शुद्धि परमावश्यक है और इस शुद्धिमे मुख्य हेतु है व्यक्तिका अन्तर्बाह्य—सभी प्रकारसे शुद्ध पवित्र एव सस्कारसम्पन्न होना। इसीलिये वेदव्यासजीने अन्त तथा बाह्यकी शुद्धिके लिये सस्कारोसे सस्कृत होनेका विशेष परामर्श दिया है। महर्षि वेदव्यासजीका समस्त जीवन सस्कारामे ही पोषित हुआ है। सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्मकी प्रशस्तिमे वेदव्यासजीने बहुत कहा है और इसकी अनिवार्य आवश्यकता बतलायी है। इसीलिये अपने सम्पूर्ण कृतित्व विशेषरूपसे स्मृतियो तथा पुराणोंमे वेदव्यासजीने सस्काराका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण व्यासस्मृतिमें मुख्यरूपसे धर्माचरण, सदाचार, सस्कारतत्त्व, पातिव्रत्यधर्म नित्यकर्मोंकी महिमा, गृहस्थधर्म तथा दानधर्मका प्रतिपादन हुआ है। सस्कारोकी अवश्यकरणीयतापर विशेष बल देते हुए व्यासजीने १६ सस्कारोका परिगणन किया है, जो इस प्रकार हैं—

गर्भाधान पुसवन सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशन वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधि ।
केशान्त स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रह ॥
त्रेताग्निसग्रहश्चेति सस्कारा षोडश स्मृता ।

(व्यासस्मृति १।१३—१५)

व्यासजी बताते हैं कि गर्भाधानसे कर्णवेधतक जो ९ सस्कार कहे गये हैं, वे स्त्रियोके अमन्त्रक किये जाते हैं, परतु विवाह-सस्कार समन्त्रक होता है। शूद्रके ये दसो सस्कार बिना मन्त्रके ही सम्पादित होते हैं—

नवैता कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं क्रिया स्त्रिया ॥
विवाहो मन्त्रतस्तस्या शूद्रस्यामन्त्रतो दश।

(व्यासस्मृति १।१५-१६)

आगे स्मृतिम इन १६ सस्कारोका क्रिया-विधान भी दिया है।

लघुव्याससहिता तो सम्पूर्ण रूपसे नैत्यिक सस्कारोके प्रतिपादनमें पर्यवसित है, वेदव्यासजी बताते हैं कि सस्कारासे सम्पन्न होना तो उत्तम पक्ष है ही, किंतु उसके साथ ही दैनिक आचारका पालन परम आवश्यक है। दैनिक नित्यकर्मोसे सम्पन्न होनेपर ही व्यक्ति सुसस्कृत और सदाचारवान् होता है, इसलिये स्नान, सन्ध्या-वन्दन, जप, देवपूजन, बलिवैश्वदेव तथा अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोको नित्य यथाविधि करना चाहिये। व्यासजी बताते हैं कि सन्ध्याविहीन व्यक्ति नित्य अपवित्र ही रहता है, वह सभी विहित कर्मोके अयोग्य रहता है, वह जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे प्राप्त नहीं होता—

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्ह सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलमाप्नुयात्॥

(लघुव्यास० १।२७)

वेदव्यासजीने पुराणोमें पद-पदपर सस्कारोंके अनुपालन तथा सदाचारके सेवनपर विशेष बल दिया है। भागवत, पद्म स्कन्द, मत्स्य, वामन, नारद आदि पुराणामे यह विषय विशेषरूपसे आया है। इनमे न केवल शरीरके सस्कार अपितु मन, बुद्धि, चित्त, अहकारकी शुद्धिके लिये भी विशेष सस्कार प्रतिपादित हैं। वेदव्यासजीने भावशुद्धिपर बहुत बल दिया है। वे बताते हैं कि भावशुद्ध हुए बिना स्थूल सस्कारोंका कोई तात्पर्य नहीं रहता। मुख्य सस्कार तो भगवान्के नाम-सकीर्तनका ही है, सभी सस्कारोंका

पर्यवसान भगवान्‌की भक्ति प्राप्त करना है, अत उन्हीं भगवान्‌के पवित्र नामोका सकीर्तन करना चाहिये। यह कल्याणका सर्वोपरि साधन है। व्यासजी कहते हैं—

नामसङ्कीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दु खशमनस्त नमामि हरि परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

अर्थात् जिन भगवान्‌के नामोका सकीर्तन सारे पापोको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोमे आत्मसमर्पण, उनके चरणोमे प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारसे दु खोको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

भगवद्भक्तिका सस्कार दृढ करनेके लिये व्यासजी नारदपुराणमे बताते हैं कि जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर वास करते हैं, वह पुनरावृत्तिरहित श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है—

जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥

नारदपुराणके पूर्वभाग अध्याय २५मे वेदव्यासजीने सस्कारो तथा उनके नियत कालोका विशेष विवरण दिया है। विवाह-सस्कारके भेद बताते हुए वे कहते हैं कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच— ये आठ विवाहके भेद हैं। इनमें ब्राह्म विवाह ही प्रशस्त है, दैव तथा आर्ष मध्यम हैं शेष पाँच विवाह निन्दित हैं। आगे विस्तारसे सदाचार तथा शौचाचारकी मीमासा की गयी है तथा सन्ध्योपासनाकी विधि दी गयी है। तीनो कालकी गायत्रीदेवीके ध्यानमन्त्र दिये गये हैं।

महर्षि व्यासजी दैनिक आचारकी मीमासा करते हुए बताते हैं—पृथ्वी हमारी माता है, माताको पैरसे स्पर्श करना निषिद्ध है, किंतु प्रात शय्यासे उठनेके अनन्तर हमें विवशतावश भूमि (पृथ्वीमाता)-पर पैर रखना पडता है, इसलिये निम्न मन्त्रसे भूदेवीसे क्षमा-याचना करनी चाहिये—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले॥
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।

(नारदपु०पूर्व० ६६।१-२)

वेदव्यासजी बताते हैं कि सस्कारोंके विधि-विधान बिना पवित्र जलके हो नहीं सकते। अत स्नान, आचमन, सङ्कल्प आदिके लिये गङ्गा आदि नदियोंके पवित्र जलका यथाशक्ति उपयोग करना चाहिये। इसकी महिमामें वे कहते हैं—जिनके सम्पूर्ण कृत्य सदा गङ्गाजलसे ही सम्पन्न होते हैं, वे मनुष्य शरीर त्यागकर भगवान् शिवके समीप आनन्दका अनुभव करते हैं—

सर्वाणि येषा गङ्गायास्तोयै कृत्यानि सर्वदा।
देह त्यक्त्वा नरास्ते तु मोदन्ते शिवसंनिधौ॥

(नारदपु० उत्तर० ३८।५३)

पद्मपुराणमे उपनयन-सस्कारके प्रकरणमें गायत्रीजपकी विशेष महिमा प्रतिपादित है और बताया गया है कि गायत्री वेदोकी जननी है, गायत्री सम्पूर्ण ससारको पवित्र करनेवाली है। गायत्रीसे बढकर दूसरा कोई जपनेयोग्य मन्त्र नहीं है, यह जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है—

गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
गायत्र्या न पर जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥

(पद्म० स्वर्ग० ५३।५८)

वेदव्यासजीरचित पद्मपुराणके पातालखण्डमे वर्णन आया है कि जब सीतामाता महर्षि वाल्मीकिके आश्रममे पर्णशालामें रहती थीं तो समय आनेपर उन्होने दो पुत्रोंको जन्म दिया जो आकृतिमे श्रीरामचन्द्रजीके समान तथा अश्विनीकुमारोकी भाँति मनोहर थे। इस समाचारको जानकर महर्षि वाल्मीकिको बडी प्रसन्नता हुई। वे मन्त्रवेत्ताओंमे श्रेष्ठ थे। अत उन बालकोके जातकर्म आदि सस्कार उन्होंने ही सम्पन्न किये। महर्षि वाल्मीकिने उन बालकोके सस्कार-सम्बन्धी सभी कर्म कुशो और उनके लवों (टुकडो)-द्वारा ही किये थे। अत उन्हींके नामपर उन दोनोका नामकरण किया—कुश और लव।

विष्णुपुराणमे जातकर्म नामकर्म, उपनयन तथा विवाह आदि सस्कारोंका वर्णन है। जातकर्मके विषयमे व्यासजी बताते हैं कि पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको चाहिये कि उसका जातकर्म आदि समस्त क्रियाकाण्ड और आभ्युदयिक श्राद्ध करे—

जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषत ।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्ध चाभ्युदयात्मकम्॥

(विष्णुपुराण ३।१०।४)

आगे बताया है कि उपनयन-सस्कार हो जानेपर गुरुगृहमे रहकर विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे—

ततोऽनन्तरसस्कारसस्कृतो गुरुवेश्मनि।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद्विद्यापरिग्रहम्॥
(विष्णुपुराण ३।१०।१२)

विवाह-सस्कारके विवरणमे व्यासजी बताते हैं कि मातृपक्षसे पाँचवीं पीढीतक और पितृपक्षसे सातवीं पीढीतक जिस कन्याका सम्बन्ध न हो, गृहस्थ पुरुषको नियमानुसार उसीसे विवाह करना चाहिये—

पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम्।
गृहस्थश्चोद्वहेत्कन्या न्यायेन विधिना नृप॥
(विष्णुपुराण ३।१०।२३)

महर्षि वेदव्यासजी माता-पिताकी सेवाको पारमार्थिक सस्कारके रूपमे बताते हुए उसकी महिमामे कहते हैं—

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमय पिता।
मातर पितर तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
(पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ५२।११)

इसका भाव यह है कि मातामे सभी तीर्थोंका अधिष्ठान है अथवा सभी तीर्थोंका जो पावनत्व है, उससे भी अधिक पवित्र माता है, इसी प्रकार पितामे सभी देवता प्रतिष्ठित हैं। अत सभी प्रकारके प्रयत्नसे माता-पिताकी सेवा-पूजा करनी चाहिये।

श्रीव्यासजी ऐसे सदाचारसम्पन्न, सस्कारवान्, धर्मात्मा पुरुषको देवस्वरूप बताते हैं, जो जितेन्द्रिय दुर्गुणोसे मुक्त, नीतिशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला तथा ऐसे ही उत्तम गुणासे पवित्र होता है, वह चाहे स्वर्गलोकका निवासी हो चाहे मनुष्यलोकका, यदि पुराणो तथा आगमोंमें निर्दिष्ट सदाचरणरूप पुण्यकर्मोंका पालन करता है तो इस पृथ्वीका उद्धार करनेमे समर्थ हो जाता है—

यो दान्तो विगुणैर्मुक्तो नीतिशास्त्रार्थतत्त्वग ।
एतैश्च विविधै पूत स भवेत्सुरलक्षण ॥
पुराणागमकर्माणि नाकेष्वत्र च वै द्विज ।
स्वयमाचरते पुण्य स धरोद्धरणक्षम ॥
(पद्म० सृष्टि० ७८।१३४-१३५)

महर्षि वेदव्यासप्रणीत अग्निपुराण तो समस्त विद्याओ, कलाओ तथा ज्ञान-विज्ञानका कोष ही है। स्वय व्यासजी कहते है—

'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्या प्रदर्शिता ॥'
(अग्निपु० ३८३।५१)

तदनुसार इसमे सस्कारोका सूक्ष्म किंतु महत्त्वपूर्ण वर्णन हुआ है। गृहस्थधर्मके प्रकरणमे व्यासजी बताते हैं कि गर्भाधानके अनन्तर गर्भका स्पष्टरूपसे ज्ञान हो जानेपर गर्भस्थ शिशुके हिलने-डुलनेके पहले ही 'पुसवन-सस्कार' होता है। तत्पश्चात् छठे या आठवे मासम सीमन्तोन्नयन किया जाता है। बालकका जन्म होनेपर नाल काटनेके पहले ही उसका जातकर्म-सस्कार करना चाहिये। सूतक निवृत्त होनेपर नामकरण-सस्कार करना चाहिये—

'अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते।'
(अग्निपु० १५३।४)

उक्त सस्कारके समय पत्नी स्वामीकी गोदमे पुत्रको दे और कहे—'यह आपका पुत्र है'।

'बाल निवेदयेद् भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत॥'
(अग्निपु० १५३।६)

फिर कुलाचारके अनुसार चूडाकरण करके उपनयन-सस्कार करे। ब्राह्मणवटु भिक्षा माँगते समय वाक्यके आदिमे '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे, वह माताके पास जाकर कहे—'**भवति भिक्षा मे देहि मात** ।' इसी प्रकार क्षत्रियवटु वाक्यके मध्यमें तथा वैश्यवटु अन्तमे '**भवत्**' शब्दका प्रयोग करे। यथा—क्षत्रियवटु कहे—'**भिक्षा भवति मे देहि**', वैश्यवटु कहे—'**भिक्षा मे देहि भवति**।' व्यासजीने सक्षेपमे इस बातका निदर्शन करते हुए कहा है—

'आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम्॥'
(अग्निपु० १५३।११)

उपनयन करके गुरु ब्रह्मचारीको शौचाचार, सदाचार, अग्निहोत्र तथा सन्ध्योपासनाकी शिक्षा प्रदान करे—

उपनीय गुरु शिष्य शिक्षयेच्छौचमादित ।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च॥
(अग्निपु० १५३।१३)

निम्बार्क-सम्प्रदायके पञ्चसस्कार

आदिवैष्णवाचार्य, सुदर्शन चक्रावतार अनन्तश्री जगद्गुरु भगवान् निम्बार्काचार्यने मोक्षप्राप्तिके लिये ब्रह्मकी साधना प्रवर्तित की। इनके मतसे अमूर्त उपासनाकी अपेक्षा प्रकाशित मूर्तरूपकी उपासना जीवके लिये सहज साध्य एव अधिक कल्याणकारी है। अतएव साधकके लिये सत्त्वगुणाधिपति भगवान् श्रीकृष्णकी युगलमूर्तिकी उपासनाका ही विधान किया गया है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने जो उपासना प्रचलित की, वह सार्वभौम थी। आचारपालन उनकी उपासनाकी आधारशिला थी। सदाचारसम्पन्न व्यक्ति ही ईश्वरके समान महान् गुणोवाला हो सकता है। यही उनका सिद्धान्त था। यदि मनुष्यको अपनेमे दैवीगुणाको एकत्र करना है तो उसे आध्यात्मिक भक्तियोगकी साधना करनी चाहिये। सयम और साधना ही सफल जीवनकी कुञ्जी है और इसीलिये आचारकी प्राथमिकता मानी गयी है। श्रीनिम्बार्कने जो पञ्चसस्कार प्रचलित किये थे वे व्यावहारिक और सार्वभौम हैं। वास्तवमें ये सस्कार जीवका परिमार्जन करनेवाले हैं। इन सस्कारोकी महत्ताको सभी वैष्णवाचार्योंने स्वीकार किया है। आचार्यश्रीके परम प्रिय शिष्य श्रीनिवासाचार्यजीने आचार्यजीको 'पञ्चसस्कारदायी' कहा है—

> ताप पुण्ड्र तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चम ।
> अमी हि पञ्च सस्कारा पारमैकान्त्यहेतव ॥
>
> (नारदपाञ्चरात्र २।२)

नारदपाञ्चरात्रके अनुसार आचार्यश्रीक प्रतिपादित ताप पुण्ड्र नाम, मन्त्र और याग—ये पाँच सस्कार हैं। अत वृत्तियोंका सयमित करनके लिये इनकी परम आवश्यकता है।

ताप अर्थात् तप-सस्कारका सर्वोपरि महत्त्व है। तपके अनेक प्रकार हैं। भारतीय सस्कृतिके मूलम ही तप है। सृष्टिके आदिकालसे ही तपकी विशेपता रही है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने व्रत (उपवास)-का ही प्रधान तप कहा है। दीर्घकालीन व्रतका कोई विधान स्वीकार नहीं किया। माहम केवल दो व्रताकी विशेपता बतलायी। एकादशीव्रतद्वारा शरीरकी ग्यारह इन्द्रियोंको सयमित करना चाहिये। आचार्यश्रीने द्वादशोसे स्पृष्ट एकादशीव्रतका विशेप महत्त्व कहा है, जिसका तात्पर्य होता है कि ग्यारह इन्द्रियोके साथ अहङ्कारका भी सयमन करना चाहिये, क्योकि तैजस अहङ्कार दस इन्द्रियोकी वृत्तिका कारण है। अहङ्कारका स्थान हृदयमे माना गया है। हृदयमें प्रभुका चिन्तन करनेके लिय हृदयको शुद्ध किया जाय, यह अति आवश्यक है। व्रत ही उस स्थलकी शुद्धि करनेका सुलभ साधन है। जैसे अग्निसे तपाकर स्वर्ण शुद्ध किया जाता है, वैसे ही व्रत-साधनसे शरीरस्थ वैश्वानर (जठराग्नि)-का उद्दीपन होता है और अन्त करणकी शुद्धि होती है तथा इन्द्रियाकी वृत्तियाँ सयमित हो जाती हैं।

इन्द्रियाकी वृत्तियाँ तो उपवाससे शान्त हो जाती हैं, परतु सासारिक विपयोकी ओरसे एकदम आसक्ति छूटने लगती हा—ऐसा नहीं समझना चाहिये। सासारिक राग (रस) तो तभी छूट सकता है, जबकि वह पर रसका अनुगामी हो जाय। पर रसको हृदयमे साक्षात् करनेके बाद ही सासारिक रससे छुटकारा मिलता है। अत पर सुखको जाननेहेतु तप (व्रत)-क अतिरिक्त अन्य सस्कारोकी भी आवश्यकता होती है।

गोपीचन्दनका तिलक मस्तक आदि शरीरके बारह अवयवामे लगाया जाय, इसे पुण्ड्र-सस्कार कहते हैं। शरीरम सात चक्राकी कल्पना की गयी है। उनमे पाँचो चक्रों (नाभिके मणिधारचक्रसे लेकर सिरके सहस्रारचक्रतक)-मे तथा इडा, पिङ्गला, यशस्विनी, पयस्विनी, पूपा, शङ्खिनी, सरस्वती और वरुणा नामक इन चक्रासे सम्बद्ध नाडियोमे ऊर्ध्वगामी खडी दो रेखाओको लगानका विधान है। इन

स्थलोपर चन्दनका लेप करनेसे शीतलता, तेज, कान्ति एव स्फूर्तिका सञ्चार होता है तथा भगवच्चिन्तनमे सलग्नता होती है। मिट्टीकी शक्ति प्राकृतिक दृष्टिसे सम्मान्य है। गोपीचन्दनकी मिट्टी विशेष शक्तिसम्पन्न है। नाडियोम प्रवाहित होनेवाले रक्तकी शुद्धि चन्दनके लेपसे होती है। इसी प्रकार तुलसीकी मालाको कण्ठमे धारण करनेका विधान है जो वैज्ञानिक है। तुलसीवृक्षका प्रत्येक अवयव गुणकारी कहा गया है। विजातीय कीटाणुओका सहनन, कफका शमन, वायुका सयमन, पित्तका समीकरण आदि तुलसीके विशेष गुण हैं। कण्ठ शरीरके अन्य अवयवोमे सर्वाधिक सवेदनशील सन्धिस्थल है। शरीरमे होनेवाले विषाक्त विकारोकी सूचना सर्वप्रथम कण्ठसे निकलनेवाली ग्रन्थियोसे मिल जाती है। इसीलिये तुलसीकी कण्ठीको धारण करनेसे देहकी सर्वाधिक शुद्धि होती है।

नाम-सस्कारका बडा प्रभाव है। नामसे व्यक्ति और समुदायकी प्रवृत्ति तथा सस्कृतिका परिज्ञान हो जाता है। वैष्णवोने नाम-सस्कारको भी अपनी उपासनाका एक अङ्ग माना है। उसका कारण है उनकी एकनिष्ठता और भगवन्नामके प्रति गाढानुराग। वैष्णव चाहते हैं कि उनकी वाणीसे, शरीरसे या मनसे अपने उपास्यके अतिरिक्त न कुछ कहा जाय और न किया जाय, न सोचा जाय। सासारिक जीवन उपास्यमय हो जाय—यही एकमात्र ध्येय होता है। श्रीमद्भागवतकी अजामिलकी कथामे इसका महत्त्व दिखलाया गया है। वैष्णवका नाम उपास्यमय हो, उनका कर्म उपास्यमय हो, तभी वे उपास्यके स्वरूपको प्राप्त कर सकते हैं। अनुकरणसे अनुरूपता स्वाभाविक रूपसे आ ही जाती है। जैसे कि आज अधिकाश व्यक्ति प्रत्येक कार्यम पाश्चात्योका अनुकरण करनेकी चेष्टा करते हैं, जिससे वे भाषा-भूषा, आहार-व्यवहारम वैसे ही प्रतीत होते हैं। उसी प्रकार वैष्णव भी ब्रह्मके स्वरूप और गुणका अनुकरण कर उनके समान होना चाहते हैं। समानता प्राप्त करना ही श्रीनिम्बार्काचार्यके मतमें भगवद्भावकी प्राप्ति नामक मुक्तिका स्वरूप है। जीवकी जैसी प्रवृत्ति होती है, वैसी ही उसकी प्रकृति बनती है अथवा या समझ कि प्रकृतिके अनुसार ही प्रवृत्ति होती है। प्रकृति और प्रवृत्तिका घनिष्ठ सम्बन्ध है। कथनी और करनीका एक होना ही कार्यसिद्धिकी प्रथम सीढी है। न केवल कहनेसे कुछ हो सकता है और न केवल करनेसे ही। जीवात्माका ज्ञान ही कर्मकी ओर प्रवृत्त करता है। ज्ञान और कर्मका सयोग ही भक्तियोगका आधारस्थल है, जिस स्थलसे भक्तियोगका उदय होता है। ज्ञान और कर्मके सतत अभ्याससे नैष्कर्म्य-स्थिति होती है, जिस स्थितिमें जीवात्मा कहते हुए भी नहीं सुनता, जानते हुए भी नहीं जानता। यही परमात्माके साथ जीवात्माकी साम्यावस्था है। सासारिक दृष्टिमे यह पागलपन है तो साधककी दृष्टिमे यह सिद्धावस्था है। सासारिक बन्धनोकी अवस्था सहज (स्वाभाविक) है। वस्तुत यह पागलपन नहीं है। पागलपनमें तो अन्त करणकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ अपनी अस्वाभाविक पराकाष्ठापर पहुँच जाती हैं। जैसे कि क्रोध करना जीवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है, वह तो किन्हीं कारणवश जीवके स्वभावमे उत्पन्न होती है। पागलपनमे यही प्रवृत्ति अपनी सीमा पार कर जाती हे, जिससे पागल व्यक्ति ऐसे कुकृत्य कर बैठता है जो कि हानिकारक होते हे। भक्तोकी वह सिद्धावस्था है, उसमे अन्त करणकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ अपने स्वाभाविक रूपमे रहती हैं। उनके क्रोधसे किसीकी हानि सम्भव नहीं है।

सस्कारोम पुण्ड्र [चिह्न=तिलक और कण्ठी] तथा नाम—ये दोनो बाह्य सस्कार हैं। तप बाह्य और आभ्यन्तर, दोनो प्रकारका है। मन्त्र और याग आभ्यन्तर सस्कार हैं।

मन्त्र-सस्कारका सम्बन्ध मनसे है। मन्त्रके अविच्छिन्न अभ्यासको 'जप' कहते हैं। जपके तीन प्रकार कहे गये हैं—वाचिक उपाशु और मानस। वाचिक जपमे वाणीके द्वारा मन्त्रका उच्चारण होता रहता है। उपाशु जपम शब्दका उच्चारण तो नहीं होता, परतु जीभ और ओठ इत्यादि हिलते रहते हैं। मानस जपम मन्त्रका अभ्यास मनमे ही चलता रहता है। मन्त्रके स्वरूपमे भगवान्का चिन्तन करनेसे विघ्नोंका अभाव और जीवात्माके स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। मन्त्रके प्रभावसे मनकी शक्ति अपार हो जाती है। मनका समाधान हो जानेसे सारी इन्द्रियोका समाधान हो जाता है। मनसे ही परमात्मतत्त्वको जाना

जा सकता है। इसलिये मन्त्रके द्वारा मनको सयमित किया जाता है। हृदय ही मन है। सम्पूर्ण वस्तुआको जाननेकी शक्ति, आज्ञा देनेकी शक्ति, सब पदार्थोको विभिन्नरूपसे जाननेकी शक्ति, तत्काल ज्ञानकी शक्ति, वेग, स्मरणशक्ति, धारण करनेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, धैर्य, बुद्धि, मननशक्ति, सकलनशक्ति मनोरथशक्ति, प्राणशक्ति, कामनाशक्ति—ये सब शक्तियाँ मनसे उत्पन्न होती हैं। मनसे ही सम्पूर्ण सृष्टि होती है। इसलिये मनको मन्त्रके अभ्यासद्वारा वशीभूत कर लेनेसे मनकी सम्पूर्ण शक्ति प्रबल हो जाती है। तन्त्रशास्त्रमें जैसी शक्तिको बढानेकी इच्छा होती है वैसे ही मन्त्रका विधान किया गया है। इन्हे प्राप्त कर लेना सिद्धि है। इन सकाम मन्त्राके अनुष्ठानकी विधियाँ हैं।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी निष्काम मन्त्रानुष्ठानकी आज्ञा देते हैं। निष्काम मन्त्रानुष्ठानसे परमात्माके समान महान् शक्ति प्राप्त होती है। सर्वसामर्थ्य प्राप्त हो जाता है मन स्वच्छतम हो जाता है और मनकी अपार शक्तिम इच्छा आदि सारी शक्तियाँ डूबकर विलीन हो जाती हैं। मन्त्रद्वारा उपास्यका ध्यान करनेसे मन स्थिर हो जाता है।

याग-सस्कारका तात्पर्य है भगवच्चर्चा अर्थात् इन्द्रियोकी सम्पूर्ण भोगवृत्तियोको भगवान्मे समर्पण कर देना। श्रुति (वेद)-म विष्णुको ही यज्ञ कहा गया है। श्रीनिम्बार्काचार्यजीने इन्द्रियोकी सूक्ष्म अणुरूप वृत्तियाको सगठितरूपसे मनसे सयोग कर जीवात्मामे सयुक्त कर दनको मोक्षकी प्रथम अवस्था कहा है। सम्पूर्ण वृत्तियासे सगठित उपासककी मनोवृत्तिका ईश्वरमे तन्मय हो जाना ही भक्तियोग है। आचार्यचरणने इस आत्महवनसे जीवात्माको कृतकार्य माना है और सासारिक बन्धनासे मुक्तिका प्रधान साधन कहा है। यह तन्मययोग भगवान्की प्रतीकोपासनासे होता है। भगवान्की प्रतिमाकी अर्चनासे इन्द्रियकी वृत्तियाका एकीकरण होने लगता है। इस योगका अभ्यास आभ्यन्तर और बाह्य दोनो प्रकारसे किया जा सकता है। बाह्य अभ्यासक लिये प्रतिमापूजनका विधान है। आभ्यन्तर अभ्यासमें मनको ही प्रतिमा मानकर पूजन किया जाता है। आचार्यश्रीने आभ्यन्तर उपासनापर अधिक यल दिया है। प्राथमिक श्रेणीके साधकोके लिये बाह्य अर्चनाका ही अभ्यास करना उचित है। आभ्यन्तर उपासना तो उच्च श्रेणीके साधकासे साध्य है। इन सस्कारासे चित्तकी सारी वृत्तियाँ एकरस होकर प्रवाहित होती हैं।

मनसहित इन्द्रियोंकी पाँच प्रकारकी वृत्तियाँ होती हैं। १-विषयोकी ओर झुकावसे ग्रहणवृत्ति, २-इन्द्रियाके अपने स्वाभाविक गुणोसे स्वरूपवृत्ति, ३-सारी इन्द्रियाके अहङ्कारसे सम्बन्धित हो जानेसे अस्मितावृत्ति ४-सत्त्व, रज और तम—इन तीनो गुणाके सयोगके प्रकट होनेसे अन्मयवृत्ति, ५-भोगकी कामनाआसे अर्थवत्त्ववृत्ति होती है। इन पाँचो प्रकारकी वृत्तियोका सयमन ही इन्द्रियविजय है। तप-सस्कारसे इन्द्रियाँ विषयाकी ओरसे हट जाती हैं। यही ग्रहणवृत्तिका सयम है। पुण्ड्र-सस्कारसे इन्द्रियोकी जो देखना, सुनना आस्वाद आदि स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं, ये सब निर्विकारभावको प्राप्त हो जाती हैं। यही स्वरूपवृत्तिका सयम है। इन्द्रियाके उपभोगमे जीवके अहकारका सयोग हो जानेसे 'मैं देखता हूँ', 'मैं सूँघता हूँ'—ऐसा अनुभव हो जाता है। नाम-सस्कारसे 'मैं' का प्रयोग भगवान्के नामम ही होता है। जैसे कि कृष्ण देखता हे, कृष्ण सुनता है आदि। इस प्रकार अहङ्कारका कृष्णमय हो जाना ही अस्मितावृत्तिका सयम है। मन्त्रजपसे सत्त्व, रज और तम—इन तीनो गुणाके जो सस्कार हैं, उनका निराकरण होता है। मनकी निर्मल स्थिति होती है। यही अन्मयवृत्तिका सयम है। इन्द्रियोके भोगकी कामनाओंको पूर्णरूपसे भगवान्को अर्पणकर देना ही याग-सस्कार है। इसीको अर्थवत्त्ववृत्तिका सयम समझना चाहिये।

वैष्णवीय पाँच सस्कारोसे इन्द्रियापर पूर्ण विजय प्राप्त होती है। उसक फलस्वरूप इन्द्रियोकी मनके समान सूक्ष्म गति, सर्वज्ञता और प्रकृतिपर अधिकार प्राप्त हो जाता है। मनके समान गतिको मनोजवसिद्धि कहते हैं। ताप-सस्कारसे मनोजवित्व प्राप्त होता है। पुण्ड्रसस्कारसे सर्वज्ञतासिद्धि प्राप्त होती है तथा नाम मन्त्र और याग-सस्कारसे प्रकृतिपर अधिकार प्राप्त होता है।

इन सस्काराके फलस्वरूप सासारिक विषयासे मन विरत हो जाता है और परमात्मापर अपार श्रद्धा हो जाती है। (निम्बार्कवेदान्त) [प्रेषक—श्रीअनुजजी अग्रवाल]

~~ o ~~

वल्लभकुलकी आचार-परम्परामें संस्कारोंका अवदान

भारतवर्षके विभिन्न वैष्णव-मतोंमें वल्लभ-सम्प्रदायका विशिष्ट स्थान माना जाता है। इस सम्प्रदायके प्रमुख आराध्य श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजी हैं। नन्दनन्दन प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा और उसके माध्यमसे जीवनमें शुभ सस्कारोका अवतरण इस सम्प्रदायकी अपनी विशेषता है। इस पुष्टि-मार्गमे प्रभु-सेवा ही मुख्य सस्कार है। प्रभुकी दैनन्दिन-सेवा प्रत्यूषकी वेलासे ही प्रारम्भ हो जाती है और सेवाएँ भी ऐसी जो प्रत्येक दर्शन, प्रत्येक झाँकी एव विभिन्न भोग-रागोंमे सन्निहित होती हैं। प्रभुकी सेवाएँ एक ओर भगवदानन्दकी भागीरथी बहाती हैं तो दूसरी ओर शुभ सस्कारोकी सरस्वतीका प्रवाहन कर देती हैं। जिन्हें इस भगवत्-सेवाके रसका चसका लग जाता है, उनका सम्पूर्ण जीवन शुभ सस्कारोसे सम्पृक्त हो उठता है। प्रभुसेवासे सद्विचारोकी कलिमलहारिणी कालिन्दी प्रवाहित हुए बिना नहीं रहती। भगवत्-सेवाके उपरान्त व्यक्ति भगवच्चरणानुरागके शुभ विचारोसे आलोडित होता रहता है और देखते-ही-देखते दिनका अवसान हो जाता है। निरर्थक चिन्तनका उसे अवसर ही नहीं मिलता, जिससे उसका जीवन कदाचारकी कालिमासे कलुषित नहीं होने पाता। भगवत्-सेवासे सद्विचार और शुभ सस्कार उसके जीवनमे गहरे पैठ जाते हैं। जितने दिनतक ऐसा व्यक्ति भूतलपर रहता है, सर्वत्र अपने सदाचारके सौरभसे सुवासित रहता है और जीवनान्त होनेपर एक आदर्श सेवा-सस्कारसम्पन्न भक्तके रूपमे प्रतिष्ठित हो जाता है।

आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने पुष्टिमार्गमे प्रभुसेवाके द्वारा ही जनमानसमे अनेक मनोद्वेगोका शमन कर सदाचरण करते हुए सुख-शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेकी शिक्षा दी है। प्रात मरीचिमालीकी मयूखोके उदयसे पूर्व प्रभु श्रीनाथजीको जगाया जाता है। प्रभुके दर्शनार्थ मन्दिर पहुँचनेवाले असख्य भक्तोको प्रभुदर्शनार्थ पहले ही जगना पडता है, ताकि वे मङ्गलाके दर्शन कर सके। इस सेवासे जीवनमे प्रात शीघ्र जगनेके सस्कार सहज ही मिल जाते हैं। ब्राह्ममुहूर्तमें जगना स्वास्थ्यके लिये लाभदायक माना जाता है।

तदनन्तर प्रभुको स्नानादि कराया जाता है। उन्हे नये-नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। आभूषण-अलङ्कार पहनाकर उन्हे सुसज्जित किया जाता है। हमारे नन्दलाल भुवनमोहन बन जाते हैं। इस शृङ्गारकी झाँकीसे प्रत्येक माँको अपने नन्हे शिशुको नहलाने-धुलाने एव वस्त्रालङ्कारोसे विभूषित करनेके सस्कार मिलते हैं। शृङ्गार होनेके पश्चात् प्रभुकी रूपमाधुरीके दर्शन अत्यन्त नयनानन्ददायक होते हैं। भक्त कवि श्रीसूरदासजीके शब्दोंमे—

चारु कपोल लोल लोचन छबि गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुहि पिये॥
कठुला कठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौपल या सुख का सत कल्प जिये॥

सेवाके क्रमको सस्कारोकी पाठशाला ही समझना चाहिये।

ठाकुरसेवामें 'ग्वालकी झाँकी' का भी अपना महत्त्व है। पुष्टिमार्गीय भावनानुसार इस समय प्रभु यशोदामैयासे आज्ञा लेकर वनमे गोमाताओको चराने जाते हैं। माँ अपने बालकको भूख न सताये, अत दही-भात बनाकर साथमे दे देती है। इस ग्वालरूपके दर्शन समग्र ससारको श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीकी गोप्रियता दिखा रहे हैं। सृष्टिके स्वामी—शेषशय्यापर शयन करनेवाले—जिनके पलक झपकनेमात्रसे सृष्टिका प्रलय हो जाय—वे ईश्वर सच्चिदानन्दघन

प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र श्रीनाथजी अपने ग्वाल-बालाको साथ लेकर गोचारणको वनमे पधार रहे हैं। आजक युगम गोमाताओपर होनेवाले अत्याचारके समयम गोरक्षा और गोसेवाके पुनीत सस्काराका पुञ्जीभूत यह वैष्णवमत वल्लभ-सम्प्रदाय है। आज भी प्रभु श्रीनाथजीकी सेवाम तीन हजार गोमाताएँ विराजमान हैं। प्रभुके मन्दिरम नित्य नन्दमहोत्सव हो रहा है। प्रभु श्रीनाथजीम दही-दूध और नवनीतकी कमी नहीं है। भगवान्‌को भोगके रूपम इसे प्रचुरमात्राम अरागाया जा रहा है। प्रभुके अरोग लेनेके बाद वैष्णवजन उसे शिरोधार्य कर महाप्रसादके रूपमे ले रह हैं। आज भी दीपावली एव अन्नकूटपर्वपर गोमाताआको पैराम पैंजनिया सिरपर मारपखका मुकुट, गलेम घटियाँ तथा शृङ्गापर चाँदीकी शृङ्गी चढाकर एव पूरे श्रीअङ्गम महावर सजाकर श्रीगोवर्धन-पूजाके समय श्रीमन्दिरम ठाकुर श्रीनवनीतप्रियजीके समक्ष पधराया जाता है। ऐसा गोपालन—गोसेवा और गोप्रियताका उदाहरण भारतवर्षम कदाचित् ही कहीं देखनेको मिले। इस सम्प्रदायम गोसेवाकी महती प्रधानता देखते ही बनती है। इससे गोसेवा तथा प्रभुभक्तिका सस्कार प्राप्त होता है।

प्रात की सेवामे सबसे बडे दर्शन 'राजभोग' के होते हैं। इसमे आनन्दकन्द प्रभुके परमानन्ददायक दर्शनाके पूर्व प्रभुको राजभोग अरोगाया जाता है। हमारे नन्दराजकुमार प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रनाथजी यशोदोत्सगलालित बालभावसे सेवा स्वीकारते है। वल्लभाधीश प्रभु श्रीनाथजी अपनी अष्टयामकी सेवामे दर्शनके पूर्व कुछ-न-कुछ अरोगते ही रहते हैं। सद्य स्नात बालकको तीव्र भूख लगती है, अत प्रभु श्रीनाथजी शृङ्गारमे पक्वान्न अरोगते हैं तो राजभोगमे सकडी-प्रसाद। प्रत्येक माँको चाहिये कि बालकको स्नान कराते ही उसके लिये कुछ भोजन आदिका प्रबन्ध रखे और उसके कुछ देर बाद पूरे भोजनका। शृङ्गार-ग्वालमे थोडा-बहुत अरोगनेके बाद अब प्रभु राजभोग अरोगते हैं। चूँकि आप राजाधिराज हैं, अत राजभोग कोई छोटा-मोटा नहीं होता। बालककी भावनाके अनुरूप राजभोग तैयार होता है। बालकके समक्ष अनेक सुस्वादु पक्वान्न बनाकर रख दीजिये लेकिन वह खायेगा वही जिसपर उसकी रुचि होगी। राजभागकी इस महती सवाम एक आर बालमनोविज्ञानकी शिक्षा छिपी है तो दूसरी ओर नाना प्रकारके पक्वान्न बनानेकी अनूठी सीख इस सम्प्रदायसे ली जा सकती है। आज भी वैष्णवजन प्रभु श्रीनाथजीक सकडी-महाप्रसादको ग्रहण करनेक लिये लालायित रहते हैं और जो लेते हैं वे रसास्वादन करनेसे अघाते नहीं हैं। इन्हीं अनेक विशिष्टताआस सम्पन्न वल्लभ-सम्प्रदायको रससम्प्रदाय कहा जाता है।

अपराह्नमें प्रभुका विश्रामके पश्चात् उठना 'उत्थापन' कहलाता है। उनींदेनयन अल्प शृङ्गारम यह प्रभुकी मनोमोहक झाँकी है। अन्तिम दर्शनको 'शयन'के नामसे सम्बोधित किया जाता है। प्रभुका शयन करना और नींद नहीं आना एव माता यशोदाका लोरी गाकर बालकको सुलाना भारतीय सस्कृति है। इसम माँके प्यारका प्राञ्जलस्वरूप देखते ही बनता है। महाकवि श्रीसूरदासजीके शब्दोंमें—

जसोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल कौ आउ निदरिया काहैं न आनि सुवावै।
तू काहे नहि बेगहि आवै, तोकौ कान्ह बुलावै॥

(सूरसागर ६६१)

प्रभुसेवार्थ इस सम्प्रदायमे विभिन्न प्रकारके वस्त्र तैयार किये जाते हैं। उनकी सिलावट, वस्त्रनिर्माणकी सस्कृति, फूलोके अनोखे-अनोखे हार, बँगले-बगीचे—ये पुष्पसज्जाके विविध आयाम शुभ विवाहकी झाँकी कभी डोल तिबारीम यमुनाजी तो कभी गङ्गाजीके भावसे जल भरना और भक्तोका इसमें अवगाहन करना—ये सभी भारतीय सस्कृतिके अन्तर्गत अमूल्य सस्कारोकी शिक्षा देनेवाले हैं। साथ-ही-साथ सगीत और वाद्ययन्त्राकी सुरीली तान कर्णप्रिय कीर्तनपरम्परा, सगीतपरम्पराके अन्तर्गत कीर्तन एव शास्त्रीय पद्धति दोनाका समावेश है। वाद्ययन्त्राकी गूँज प्रत्येक दर्शनार्थीका मन मोह लेती है। यहाँ श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामे भोगकी भागीरथी शृङ्गारकी कलिन्दजा और सगीतकी सरस्वती अहर्निश प्रवाहित हो रही हैं। यहाँ प्रभुसेवामे शुभ सस्कारोके जीवन्त दर्शन होते हैं।

इस सम्प्रदायकी आचारपरम्पराम प्रभुसेवाको तो सर्वोपरि माना ही गया है, लेकिन ज्ञानकी दृष्टिसे भी हमारी भारतीय सस्कृतिमें इसका अपना कीर्तिमान है। ग्रन्थ सब भगवदाश्रयी हैं। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी 'सुबोधिनी' श्रीमद्भागवतके कतिपय अध्यायाकी व्याख्या है। इसके अध्ययनसे ही पता चल जाता है कि श्रीमहाप्रभुजीका आचार्यत्व बारम्बार प्रणम्य है। उसके पश्चात् उनके यशस्वी सुपुत्र गुसाँईजी श्रीविट्ठलनाथजीका 'शृङ्गाररसमण्डन' सस्कृतसाहित्यकी बेजोड रचना है। इसी सम्प्रदायने भारतीय सस्कृतिको अष्टसखा दिये हैं, जो स्वय श्रेष्ठतम कवि, उच्च कोटिके गायक और भगवच्चरणानुरागी प्रभु श्रीनाथजीके अनन्य भक्त थे। वल्लभ-सम्प्रदायका भक्तिरूपी सरोवर साहित्यसुधासे लहरा रहा है और उसमे सस्कारोके अनेक सरसीरुह खिले हुए हैं तथा जिनके मधुर मकरन्दसे असख्य भावुक श्रीकृष्णभक्त सुवासित होकर आनन्दविभोर हो रहे हैं।

पर्वो, त्योहारों ओर उत्सवोमे होनेवाले सस्कारों तथा उल्लासका जैसा विलास श्रीनाथजीका है, शायद ही कहीं होता हो। जन्माष्टमी प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रका जन्मदिवस है। वल्लभ-सम्प्रदायमें इसका आकर्षण बडा ही अनूठा है। द्वापरयुगके समान ही मध्य रात्रिमे प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म, दूसरे दिन नन्द-यशोदा बने प्रभुसेवकोद्वारा प्रभुको पालना-झुलाना और बाहर दधिकाँदाकी भारी चहल-पहल देखते ही बनती है—यह सब प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति प्रीति एव भक्तिका परिचायक है। इससे प्रभु-प्रीतिका सस्कार दृढ होता है। इसी प्रकार दीपावली एव अन्नकूटमहोत्सव हमे लक्ष्मी तथा गोधनकी पूजाका अमर सदेश देते हैं। प्रभुके समक्ष गोवर्धनपूजा-चौकम बडी धूमधामसे श्रीगोवर्धनजीकी पूजा की जाती है। यह सेवा भगवत्स्वरूपा गोमाताआके प्रति असीम श्रद्धाका सस्कार जगाती है।

भारतीय सस्कृतिम आरती उतारने तथा नीराजन करनेकी विधि वर्षोसे चली आ रही है। प्रभु श्रीनाथजीमे, प्रात प्रभुके जगनेपर मङ्गला-आरती होती है। उसके बाद ग्वालके दर्शनोमे धूपकी आरती होती है। यह आरती गोचारणहेतु प्रभुके प्रस्थान करनेके पूर्व उतारी जाती है। उसके बाद मध्याह्नमे राजभोगके दर्शनान्तर्गत चक्रवर्ती राजाधिराजके रूपमे जब अपने जन-मन-विमोहन रूपका प्रभु दर्शन देते हैं, तब बडी आरती उतारी जाती है। इसके बाद भोग-आरतीके दर्शनोंमें श्रीश्यामसुन्दर अपने ग्वालबालोके साथ वनसे गोमाताओको चराकर घर लौट रहे हैं। तब यशोदामैया आरती उतारकर अभिनन्दन करते हुए उन्हे घरमें ले जाती हें। तदनन्तर प्रभुके पौढनेके पूर्व शयनकी आरती की जाती हे। यदा-कदा बहुमूल्य और चित्ताकर्षक शृङ्गार धराये जानेपर प्रभुको कुदृष्टिदोपसे बचानेके लिये राई और नमक भी उतारा जाता है। सम्प्रदायके अन्तर्गत पूरी-की-पूरी सेवाएँ भारतीय सस्कृतिके समग्र शुभ सस्कारोंका ही गुम्फन हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वल्लभ-सम्प्रदायमे प्रभुसेवाके साथ ही शुभ सस्कारोका शिक्षण प्राप्त होता है। इन सेवा-सस्कारोकी सम्पन्नतामे मनुष्यके काम-क्रोध, लोभ-मोह और मात्सर्य आदि दबे रहते हैं तथा सद्‌गुणाका स्फुरण होता है। प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रका चरणावलम्बन लेनेपर दुर्विचार आ ही नहीं पाते हैं ओर दुर्विचार यदि नहीं आ पायगे तो व्यक्ति जीवनमे अनेक दोषोसे बच जायगा, उसके मानसिक मलोका अपाकरण हो जायगा शुभ-सस्कार सहज ही सध जायँगे, उसमे सच्चरित्रका अभ्युदय होगा तथा अर्जित सुसस्कारोकी शुचितासे उसका जीवन कुदनके समान होकर चमक उठेगा।

[श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यालङ्कार]

~~ o ~~

जो अपना परिचय ईश्वर-ज्ञानी कहकर देता है, वह मूर्ख है। जो यह कहता है कि मै उसे नहीं जानता, वही ज्ञानी है।

सारी दुनिया तुझे अपना ऐश्वर्य और स्वामित्व भी सौंप दे तो फूल न जाना और सारी दुनियाकी गरीबी भी तेरे हिस्सेमे आ जाय तो उससे नाराज न होना। चाहे जैसी हालत हो, उसे प्रभुका मङ्गल-विधान समझकर प्रसन्न रहना।

~~ o ~~

चैतन्योपदिष्ट दीक्षा-संस्कार और सदाचार

जब पन्द्रह सौ अडतालीस वैक्रमीयकी फाल्गुनी पूर्णिमाकी सान्ध्य विभावरी वेलाम चन्द्रोपरागजनित हरिनाम-ध्वनिसे नवद्वीपका कमनीय जाह्नवीकूल झंकृत हो रहा था, तब भगवान् श्रीगौरचन्द्रका आविर्भाव हुआ। नवद्वीपमें ही उन्होने दिग्विजयता प्राप्त की । वे पिताके निधनके पश्चात् गयाधाम गये और वहाँ ईश्वरपुरीसे दीक्षा प्राप्त कर नवद्वीप प्रत्यावर्तित हुए। अब उनका मन ससारसे विरक्त हो गया। अन्तमें माताका स्नेह एव पत्नीका प्रणय-बन्धन त्यागकर वे सन्यास लेकर लोक-कल्याणकी भावनासे जन-जनको भक्तिरससे अभिसिञ्चित करनेकी दिशामे अग्रसर हुए।

इधर भगवान् चैतन्यदेव भ्रमण करते हुए कावेरीतीरस्थ श्रीरङ्गम् पहुँचे। वहाँ गोदा रङ्गमन्नारकी अपूर्व रूपमाधुरीका अवलोकन कर वे भाव-विभोर हो उठे। श्रीचैतन्यके उद्दाम सकीर्तनसे श्रीरङ्गनाथके प्रधान अर्चक वकटभट्ट अत्यन्त प्रभावित हुए और भिक्षा-ग्रहणकी प्रार्थना की। भिक्षा-ग्रहणके पश्चात् वेकटभट्टने प्रभुसे प्रार्थना की—इस समय राज्य-विप्लव तथा वर्षाके कारण राजपथ निरापद नहीं है, अत चातुर्मास्यपर्यन्त मेरे आवास-स्थानपर रुककर हम लोगोंको अनुगृहीत करें। यह कहकर अपने पुत्र गोपालभट्टको प्रभुकी सेवामे नियुक्त कर दिया।

प्रभुकी सनिधि एव अनुकम्पासे मेधावी गोपालभट्टके बुद्धि-विलासम अपरिमित वृद्धि हुई। प्रभुके दक्षिण देशसे विदा होनेके पश्चात् उनकी आज्ञासे कुछ वर्षों बाद वे वृन्दावन आये और रासस्थलीम विराजित होकर अनेक ग्रन्थोका उदाहरण देते हुए उन्होने 'हरिभक्तिविलास' ग्रन्थकी रचना अपनी अपरिमित स्मृतिके बलपर की।

उस ग्रन्थके सस्कार-प्रकरणम दीक्षाके महत्त्वको स्पष्ट करते हुए यह कहा गया—

जब जीव अनेक योनियोमे परिभ्रमण करता हुआ अत्यन्त दुर्लभ मानव-देह प्राप्त करता है, किंतु कर्म-विपाकके कारण वह निरन्तर दु खोको सहन करता है, इतनेपर भी उसे परलोकमे शान्ति नहीं मिलती, तब दु खोकी निवृत्तिके लिये वह सहज उपायोके अन्वेषणमे लग जाता है। उसे अब सद्गुरुकी शरणागतिमे ही अपने लक्ष्यपूर्तिका साधन दिखलायी देता है।

गुरुजी शिष्यकी एक वर्षपर्यन्त परीक्षा लेनेके पश्चात् मन्त्रोमे श्रेष्ठ गोपालमन्त्रका विधिपूर्वक उसे उपदेश देते हैं। गोपालमन्त्र सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण मोक्षका मुख्य साधन है। इस मन्त्रके द्वारा दु खाका निराकरण होता है और सम्पूर्ण इच्छाओकी पूर्ति होती है। मन्त्रके दस सस्कार आवश्यक हैं, किंतु गोपालमन्त्रमे इन सस्कारोकी अपेक्षा नहीं की गयी है।

दिव्य ज्ञान यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य सक्षयम्।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ॥

(ह०वि० २।१८)

जिस अनुष्ठानके द्वारा दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति और पापोका नाश होता है, उसको तत्त्ववेत्ता दीक्षा कहते हैं।

जिस प्रकार रसायनप्रक्रियाद्वारा काँसा स्वर्णके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार सस्काराद्वारा दीक्षित व्यक्ति द्विजत्व प्राप्त कर लेता है।

दीक्षाग्रहणके पश्चात् मनुष्यको सदाचारकी आवश्यकता होती है। सदाचारके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। आचारहीन मनुष्यको कभी भी सुखकी प्राप्ति नहीं होती। दोषरहित सज्जन व्यक्ति ही सदाचारी कहलाता है और उसका आचरण ही सदाचार है। सदाचारसे ही धर्मकी उत्पत्ति है और सदाचारसे विहीन व्यक्ति सदा अपवित्र रहता है। सदाचारके

विषयमे १०४ आचरण बतलाये गये हैं। उनमे कुछ मुख्य सदाचाराका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। प्रात भगवन्नामका स्मरण, दैनन्दिनी क्रिया, तिलक और मुद्राका धारण, अपना मन्त्र किसीसे नहीं कहना, वैष्णवों तथा आचार्योंमे विशेष श्रद्धा, सूर्य-चन्द्र, गौ, अग्नि, पीपल और ब्राह्मणमें भगवान्‌का स्वरूप विद्यमान है—यह जानना। सन्ध्याको सोना, बिना मिट्टीके शौच जाना, खडे होकर पानी पीना, असत्-शास्त्रोका श्रवण, पूजाके समय असत्-वार्ता, एक हाथसे प्रणाम आदिका निषेध सदाचारमे आता है। इसपर साधकको विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

[डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराणदर्शनतीर्थ, आयुर्वेदशिरोमणि]

जातकर्म-संस्कारका महत्त्व

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज)

शास्त्रानभिज्ञता और पाश्चात्य आचार-विचारके अन्धानुकरणका भयकर परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू-समाज अपनी उन उज्ज्वल परम्पराओको भी हेय समझने लगा, जो मनुष्यको देवत्वकोटिमे पहुँचा सकती हैं। आधुनिक शिक्षितवर्ग प्राय सम्यक् परीक्षण किये बिना ही धार्मिक प्रथाओका उपहास करनेमें प्रगतिशीलता मानने लगा है।

हिंदुओकी 'सस्कार' प्रथा भी इन आधुनिकोकी उक्त अवैज्ञानिक वृत्तिका शिकार बन गयी है। सतानके विधिवत् सस्कार करवानेका महत्त्व लोग भूलते जा रहे हैं। फलस्वरूप जातीय ह्रास भी तीव्र गतिसे हो रहा है। नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ बल, वीर्य, प्रज्ञा और दैवी गुणोंके प्रस्फुटनके लिये शास्त्रोक्त सस्कार-विधिसे बढकर अन्य कोई साधन नहीं हो सकता। शास्त्रमे इसके महत्त्वके सम्बन्धमें लिखा है—

चित्रकर्म यथाऽनेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनै ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् सस्कारैर्विधिपूर्वकै ॥

'तूलिकाके बार-बार फेरनेसे शनै -शनै जैसे चित्र अनेक रङ्गोंसे निखर उठता है, वैसे ही विधिपूर्वक सस्कारोंके अनुष्ठानसे ब्राह्मणत्वका विकास होता है।' यहाँ 'ब्राह्मणत्व' शब्द ब्रह्म-वेदनके अर्थमे प्रयुक्त हुआ है।

'सस्कार' शब्दका अर्थ ही है दोषोंका परिमार्जन करना। जीवके दोषों और कमियोको दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन पुरुषार्थ-चतुष्टयके योग्य बनाना ही सस्कार करनेका उद्देश्य है। सस्कार किस प्रकार दोषोका परिमार्जन करता है, कैसे किस रूपमें उनकी प्रतिक्रिया होती है—इसका विश्लेषण करना कठिन है, परतु प्रक्रियाका विश्लेषण न भी किया जा सके तो भी उसके परिणामको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आमलकके चूर्णमे आमलकके रसकी भावना देनेसे वह कई गुना शक्तिशाली बन जाता है, यह प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है। सस्कारोंके प्रभावके सम्बन्धमे यही समझना चाहिये। अदृष्ट बातोके सम्बन्धमे त्रिकालज्ञ महर्षियोके शब्द प्रमाण हैं। श्रद्धापूर्वक उनका पालन करनेसे विहित फल प्राप्त किया जा सकता है। भगवान् मनुका कथन है—

वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥

'वेदोक्त गर्भाधानादि पुण्यकर्मोंद्वारा द्विजगणका शरीर-सस्कार करना चाहिये। यह इस लोक और परलोक दोनोमें पवित्रकारी है।'

सामान्यरूपसे सस्कारके महत्त्वके सम्बन्धमें अङ्गुलिनिर्देश करके जातकर्म-सस्कारके महत्त्वपर किञ्चित् प्रकाश डालना है। अधिकारानुसार कर्म करनेसे सम्यक् फलकी प्राप्ति होती है। सस्कार-कर्ममें भी किसका अधिकार है, इसे समझ लेना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है—

ब्रह्मक्षत्रियविड्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजा ।
निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषा वै मन्त्रत क्रिया ॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इनमें प्रथम तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त इनकी समस्त क्रियाएँ वैदिक मन्त्राके द्वारा होती हैं।' उपनयनादि सस्कारोको छोडकर शेष सस्कार शूद्रवर्ण बिना मन्त्रके करे। यमसहितामें कहा गया है—

'शूद्रोऽप्येवंविध कार्यो विना मन्त्रेण संस्कृत ॥'

'शूद्रवर्णके भी ये सब संस्कार बिना मन्त्रके होने चाहिये।' जातकर्म-संस्कार शूद्रवर्णको भी करना चाहिये।

संतानके भूमिष्ठ होते ही जातकर्म-संस्कार किया जाता है। इस संस्कारके कृत्य नाल-छेदनके पहले ही हो जाने चाहिये, क्योंकि नाल-छेदनके बाद आशौच लग जाता है। जातकर्म-संस्कारमें वैदिक मन्त्रोंद्वारा संतानके दीर्घजीवी और मेधावी होनेकी मङ्गल-कामना की जाती है। मनुष्य-शरीर पाकर जीव उचित पुरुषार्थद्वारा साक्षात् ब्रह्म हो सकता है, लौकिक अभ्युदयकी तो बात ही क्या। अतः दीर्घ जीवन और प्रखर प्रज्ञा प्राप्त होनेका उपाय करना ही चाहिये।

मन्त्रमें अचिन्त्य शक्ति होती है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियोंने प्रत्यक्ष उनका अनुभव करके जीवके कल्याणके लिये उनका अनुष्ठान करनेका आदेश दिया है। जातकर्म-संस्कारान्तर्गत आयुष्यकरण-क्रियाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ १॥ सोम आयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ २॥ ॐ ब्रह्मायुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ३॥ ॐ देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ४॥ ॐ ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ५॥ ॐ पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ६॥ ॐ यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ७॥ ॐ समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ८॥

'अग्नि वनस्पतिके द्वारा आयुष्मान् है, उसके आयुके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् (दीर्घायु) करता हूँ। चन्द्रमा ओषधियोंके द्वारा आयुष्मान् है, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। ब्रह्म (वेद) ब्राह्मणोंके द्वारा आयुष्मान् है, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। देवगण अमृतके द्वारा आयुष्मान् हैं, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। ऋषि व्रतके द्वारा आयुष्मान् हैं, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। पितर स्वधाके द्वारा आयुष्मान् हैं, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। यज्ञ दक्षिणाके द्वारा आयुष्मान् है, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ। समुद्र नदियोंके द्वारा आयुष्मान् है, उसके द्वारा मैं तुम्हें आयुष्मान् करता हूँ।'

इन मन्त्रोंके साथ पिता पुत्रकी पूर्णायुकी कामना करता हुआ उसके हृदयको स्पर्श करता है।

अग्नि, सोम, ब्रह्म (वेद), देवता, ऋषि, पितर, यज्ञ एवं समुद्रका चिरायु होना प्रसिद्ध है। मन्त्रोंमें उनके चिरायु होनेका हेतु भी दिया हुआ है। उनका स्मरण करते हुए उनकी-जैसी आयुद्वारा पुत्रके चिरायु होनेकी कामना की गयी है। इस प्रक्रियासे शिशुके अन्तःकरणपर एक संस्कार पड़ता है। उक्त संस्कारके बलसे वह समय आनेपर तत्तत् कर्मोंके सम्यगनुष्ठानसे दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। आज समाज अल्पायु होता जा रहा है। अकाल-मृत्यु और बाल-मृत्युकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इसके अन्य कारण भी हैं, परंतु उक्त संस्कारका लोप होते जाना भी एक कारण है। प्राचीन इतिहास उठाकर देखा जाय तो स्पष्ट पता चलता है कि जबतक समाजमें संस्कारोंका यथाविधि पालन होता रहा, तबतक लोग दीर्घजीवी और बल-बुद्धि-सम्पन्न होते थे।

जातकर्म-संस्कारमें पिता पहले जौ और चावलके द्वारा तत्पश्चात् सुवर्णद्वारा घिसे हुए मधु और घृतको लेकर सद्योजात संतानकी जिह्वामें लगाता है। इस समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसका भाव यह है—'यह अन्न ही प्रज्ञा है, यही आयु है, यही अमृत है। तुमको ये सब प्राप्त हों। मित्रावरुण तुम्हें मेधा दें। अश्विनीकुमार तुम्हें मेधा दें। बृहस्पति तुम्हें मेधा दें।'

मनुष्य-शरीरका पोषण अन्नसे होता है। यह अन्न प्रज्ञा आयु एवं अमृतरूप होकर पुत्रकी वृद्धि करे—ऐसी कामना की जाती है। इसके अतिरिक्त पुत्र मेधावी बने, यह भी देवगणोंसे प्रार्थना की जाती है। सर्वसाधारणका भी यह अनुभव है कि कोई भी सदाचारी पुरुष सच्चे हृदयसे किसीके लिये शुभ कामना करे तो वह कुछ-न-कुछ शुभ परिणाम उत्पन्न करती ही है—व्यर्थ नहीं जाती। स्पर्शनिदान

सकल्पमे बल आता है। इसी प्रकार मन्त्रबलसे प्रेरित होकर तत्तत् मन्त्रोके देवता विहित फल देते हैं, यह ऋषियोका अनुभव है। इसमे सदेह नहीं।

तात्पर्य यह हे कि जातकर्म-सस्कारसे सतानकी आयु और प्रज्ञा बढती है। दीर्घजीवी एव प्रज्ञावान् पुरुषोद्वारा समाजकी भी उन्नति सम्भव है। रुग्ण, निर्बल, अल्पायु एव मन्दबुद्धि पुरुषोसे राष्ट्रका ह्रास होता है। जगत्का शासन बुद्धिमान् लोग ही कर सकते हैं। अत व्यष्टि और समष्टि—दोनोकी दृष्टिसे जातकर्म-सस्कार करना नितान्त उपयोगी है।

जातकर्म-सस्कारका एक यह भी लाभ है कि इससे माताके गर्भमें आहार-रस-पानका दोष नष्ट हो जाता है। स्मृतिका वचन है—

'गर्भाम्बुपानजो दोषो जातात् सर्वोऽपि नश्यति।'

आहार-रसका प्रभाव न केवल स्थूलशरीरपर अपितु सूक्ष्मशरीरपर भी पडता है। सूक्ष्मशरीरका सस्कार हुए बिना नैतिकता एव आध्यात्मिकताका स्तर ऊँचा नहीं हो सकता। जातकर्म-सस्कारसे सतानपर पडे हुए माताके गर्भकालीन आहार-विहारके प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार उन्नतिका एक प्रतिबन्धक सहज ही हट जाता है। उपर्युक्त बातोपर विचार करते हुए यदि लोग पुन सस्कार-कर्ममे आस्था रख और उनका पालन करे तो अवश्य ही कुछ कालमे देश और समाजकी उन्नति हो सकती है। पारमार्थिक दृष्टिसे तो सस्कार अनिवार्य हैं ही।

~~~ o ~~~

सत्सङ्गसे ही संस्कार मिलते है

[सत श्रीउडियाबाबाजी महाराजके सदुपदेश]

१-अच्छे व्यक्तियोका सङ्ग करके मानव अनेक सद्गुणोसे युक्त होता है, जबकि दुर्व्यसनी एव दुष्टोका सङ्ग करके वह कुमार्गी बन जाता है। सत्पुरुषों या सतो अथवा परमात्माके सङ्गको सत्सङ्ग कहते हैं। सत, महात्मा तथा विद्वान् हमेशा लोक-परलोक या कल्याण करनेवाली बाते बताकर लोगोंको सस्कारित करते हैं, जबकि व्यसनी अपने पास आनेवालेको अपनी तरहके व्यसनमे लगाकर उसका लोक-परलोक बिगाड देता है। इसीलिये धर्मशास्त्रामे कहा गया है कि भूलकर भी व्यसनी नास्तिक तथा कुमार्गीका एक क्षणका भी सङ्ग नहीं करना चाहिये।

आदर्श माता-पिता वे हैं, जो अपने सतानको सदाचार सत्याचरण एव धर्माचरणके सस्कार देते हैं। जबसे हमने सतानको सदाचार, सत्याचरण और धर्माचरणके सस्कार देने बद किये हैं, तभीसे पतन शुरू हुआ है। अत सस्कारोपर विशेष बल दिया जाना जरूरी हे। इस जन्मके ही नहीं पिछले जन्मोके सस्कार भी अपना प्रभाव अवश्य दिखाते हैं।

हमारी माताएँ तथा सत बालको एव युवकोंको पग-पगपर सत्प्रेरणा देते रहते थे। सन्ध्या-समय भोजन नहीं करना चाहिये, भोजनके समय बोलना नहीं चाहिये, भोजनसे पहले हाथ-पैर धोने चाहिये, पवित्र स्थानमे पूर्वमुख होकर भोजन करना चाहिये, तामस भोजन सर्वदा वर्जनीय हे—जैसी प्रतिदिनकी बाते हमे सस्काररूपमे ज्ञात हो जाती थीं, किंतु अग्रेजी भाषाके कुप्रभावने तथा भौतिक सुखोकी बढती चाहने हमारी युवा पीढीको सस्कारहीन बनाना शुरू कर दिया है। इसीलिये बालकोको, युवकोंको देववाणी सस्कृतकी शिक्षा दिलानी चाहिये। उन्हे विदेशी भाषा, विदेशी वेश-भूषा तथा विदेशी खान-पानके मोहसे दूर रखनेके प्रयास किये जाने चाहिये।

सत्सङ्गसे ही सस्कारोकी प्राप्ति होती है। सत्सङ्ग करनेसे भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखलायी पडता है। जिस मार्गसे सत्पुरुष गये हैं, उसी मार्गपर चले बिना हमे भगवत्प्राप्तिका मार्ग नहीं मिल सकता। दुर्व्यसनीके कुछ पलके सङ्गसे हमारे सञ्चित सस्कारतक लुप्त हो जाते हैं। वह सहजहीमे दुर्व्यसनोकी ओर आकर्षित करनेमें सफल हो जाता है। अत भूलकर भी दुर्व्यसनी, नास्तिक तथा हर समय सासारिक प्रपञ्चोमे फँसे रहनेवाले व्यक्तिका सङ्ग कदापि नहीं करना चाहिये।
~~~

२-भक्ताको भगवल्लीलाआको बडी श्रद्धासे देखना चाहिये और लीलाके पात्राको शुद्ध भगवदीय भाव समझकर उनका आदर करना चाहिये। इन लीलाओसे भगवान्के प्रति भक्तिका उदय होता है, मनमे भगवत्प्रेमकी वृद्धि होती है और भगवान्के आदर्श चरित्रोंसे हम पावन एव कल्याणकारी शिक्षा मिलती है। अत सभीको रासलीला-रामलीला आदिको बडे प्रेमसे देखना चाहिये।

३-भक्तोको नित्य किसी भी भगवदीय श्रीविग्रहके दर्शन अवश्य ही करने चाहिये और मूर्तिके सम्मुख अपनी मानसिक श्रद्धाके पुष्प चढाने चाहिये। ऐसा करनेसे भगवान्मे विश्वास बढता है।

४-भक्तोको साधु-महात्माआका सत्सङ्ग निश्चय ही करना चाहिये। ऐसे लोगाका सङ्ग करनेसे उन्हे भगवच्चर्चा और मानव-जीवनके उत्थानविषयक ठोस उपक्रम सुनायी देगे। कुसङ्गसे बचकर सत्सङ्गका ठीक अर्थ समझकर जो महात्माओका सङ्ग करते हैं, वे ही वास्तवमे धन्य हैं।

५-साधकको चाहिये कि वह अधिक-से-अधिक समय भगवन्नाम-जप तथा कीर्तन करनेम बिताये। मुखसे भगवन्नाम निकलनेसे मानवके समस्त लौकिक पाप नष्ट होते हैं और भक्तका मन भगवान्की ओर आकर्षित होता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि नाममे नामीसे अधिक शक्ति होती है।

६-भगवत्प्रेमियोको धर्ममे रुचि पैदा करनेके लिये और अपनेको वास्तवम आस्तिक बनानेके लिये सद्ग्रन्थोंका अध्ययन नित्य करना चाहिये। रामायण, भागवत महाभारत आदि ग्रन्थोका बडे ध्यानसे पाठ करना चाहिये। जो इन ग्रन्थोको ठीक-ठीक न पढ सकते हो, उन्ह जहाँ उपर्युक्त धार्मिक ग्रन्थाकी कथा होती हो, वहाँ नित्य जाकर बडे ध्यानसे कथा सुननी चाहिये। भगवन्नाम-जप ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र सरल साधन है। इस कलिकालमें नाममें ही अनन्त गुण हैं। नाम लेनेम समयका कोई विचार नहीं है। शौच, अशौच, चलते-फिरते, सोते-जागते जब भी जैसे बने भगवत्स्मरण करते रहना चाहिये। अखण्ड कीर्तनोंका भी आयोजन सब जगह होना चाहिये।

७-चित्तशुद्धिके लिये दो बाताकी विशेष आवश्यकता है—विवेक और ध्यान। केवल आत्मा-अनात्माका विवेक होनेपर भी यदि ध्यानके द्वारा उसकी पुष्टि नहीं की जायगी तो वह स्थिर नहीं रह सकता। इसके सिवा इस बातकी भी बहुत आवश्यकता है कि हम दूसराके दोष न देखकर निरन्तर अपने चित्तकी परीक्षा करते रह। जिस समय चित्तम राग-द्वेषका अभाव हो जाय और चित्त किसी भी दृश्य-पदार्थम आसक्त न हो उस समय समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हुआ, परतु राग-द्वेपसे मुक्त होनेके लिये परमात्मा और महापुरुषोंके प्रति राग होना तो परम आवश्यक है।

८-भगवान्को सर्वस्व समझकर उनसे प्रेम करना और शास्त्रोक्त वैधव्य-धर्मका पालन करते हुए जीवन-निर्वाह करना—यह विधवा स्त्रीका धर्म है। स्त्रियोके लिये सेव्य-सेवकभाव ही उत्तम है। यह सबके लिये उत्तम है, किंतु स्त्रियाके लिये तो इसके सिवा कोई भी भाव उपयोगी नहीं है। दूसरे भावामें तो पतनकी सम्भावना है, इस भावमें भय रहता है इसलिये पतनकी सम्भावना नहीं है। यह सेव्य-सेवकभाव ही सबके लिये सर्वोत्तम है।

सत्सङ्ग, भगवत्सेवा, श्रीमद्भागवतका पाठ और भगवन्नाम-कीर्तन—ये भगवत्प्राप्तिके मुख्य साधन हैं।

[गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी]

अनमोल बोल

इन चार बातोके बारेम आत्मपरीक्षा करते रहना—(१) कोई भी शुभ कर्म करते समय तुम निष्कपट हो न? (२) जो कुछ बोल रहे हो नि स्वार्थ भावसे ही न? (३) जो दान-उपकार कर रहे हो बदलेकी आशाके बिना ही न? (४) जो धन सञ्चय कर रहे हो कृपणता छोड़कर ही न?

प्रभुको सदा सर्वत्र उपस्थित समझकर यथाशक्ति उनका ध्यान, भजन और आज्ञापालन करते रहना। इस मायावी ससारने आजतक असख्य जनोका सहार किया है, उसी प्रकार तुम्हारा भी विनाश न हो जाय, इसका ध्यान रखना।

'संस्कार, संस्कृति और धर्म'

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ भारतीय सस्कृतिकी रक्षा और उसके प्रचारकी चर्चा चल पडी। वास्तवमे किसी देश या राष्ट्रका प्राण उसकी सस्कृति ही है, क्योकि यदि उसकी अपनी कोई सस्कृति नहीं तो ससारमे उसका अस्तित्व ही क्या? परतु सस्कृतिका क्या अर्थ है और भारतीय सस्कृति क्या है, यह नहीं बतलाया जाता। अग्रेजी शब्द 'कल्चर' का अनुवाद 'सस्कृति' किया जाता है, परतु 'सस्कृति', सस्कृत भाषाका शब्द है, अत सस्कृत-व्याकरणके अनुसार ही इसका अर्थ होना चाहिये—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे भूषण अर्थमे 'सुट्' आगमपूर्वक 'क्तिन्' प्रत्यय होनेसे 'सस्कृति' शब्द सिद्ध होता है। इस तरह लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदयके उपयुक्त देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा अहकारादिकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ एव हलचले ही सस्कृति हैं।

सस्कृति और सस्कार

सस्कार या सस्करणका भी सस्कृतिसे मिलता-जुलता अर्थ होता है। सस्कार दो प्रकारके होते हैं—'मलापनयन' और 'अतिशयाधान'। दर्पणपर कोई चूर्ण घिसकर उसका मल साफ करना 'मलापनयन-सस्कार' है। तेल, रगद्वारा हस्तीके मस्तक या काष्ठकी किसी वस्तुको चमकीला तथा सुन्दर बनाना 'अतिशयाधान-सस्कार' है। नैयायिकोकी दृष्टिसे वेग, भावना और स्थितिस्थापक—ये ही त्रिविध सस्कार हैं। अनुभवजन्य स्मृतिका हेतु 'भावना' है। अन्यत्र किसी भी शिल्पादिम बार-बार अभ्यास करनेसे उत्पन्न कौशलकी अतिशयता ही भावना मानी गयी है—

> तत्तज्ञात्युचिते शिल्पे भूयोऽभ्यासेन वासना।
> कौशलातिशयाख्या या भावनेत्युच्यते हि सा॥

स्वाश्रयकी प्रागुद्भूत अवस्थाके समान अवस्थान्तरोत्पादक अतीन्द्रिय धर्म ही 'सस्कार' है—

'स्वाश्रयस्य प्रागुद्भूतावस्थासमानावस्थान्तरोत्पादकोऽतीन्द्रियो धर्म सस्कार ।'

योगियोकी दृष्टिमें न केवल मानस सङ्कल्प विचार आदिसे ही, अपितु देह, इन्द्रिय मन बुद्धि, अहकार आदिकी सभी हलचलो, चेष्टाओ, व्यापारोसे सस्कार उत्पन्न होते हैं।

सस्कारोका प्रभाव

सस्कारोसे आत्मा या अन्त करण शुद्ध होता है। इसलिये उत्तम और निकृष्ट सस्कार—इस रूपसे सस्कारोमे उत्कृष्टता या निकृष्टताका भी व्यवहार होता है। षोडश एव अष्टचत्वारिंशत् सस्कारोद्वारा आत्मा अथवा अन्त करणको सस्कृत करना चाहिये—यह भी शास्त्रका आदेश है—

'यस्यैते अष्टचत्वारिंशत् सस्कारा भवन्ति स ब्रह्मण सायुज्य सलोकता प्राप्नोति।'

'सम्' की आवृत्ति करके 'सम्यक् सस्कार' को ही सस्कृति कहा जाता है। इन सम्यक् सस्काराका पर्यवसान भी मलापनयन एव अतिशयाधानम होता है। कुछ कर्मोंद्वारा पाप, अज्ञानादिका अपनयन और कुछ द्वारा पवित्रता, विद्या आदि अतिशयताका आधान किया जाता है। साधारणत दार्शनिकोके यहाँ यह सब आत्मामे होता है, पर वेदान्तकी दृष्टिसे अन्त करणम। आत्मा तो सर्वथा असग ही रहता है। मोटे तौरपर कह सकते हैं कि जैसे खानसे निकले हुए हीरक एव मणि आदिमे सस्कारद्वारा चमक या शोभा बढायी जाती है, वैसे ही अविद्या-तत्कार्यात्मक प्रपञ्चमग्न स्वभावशुद्ध अन्तरात्माकी शोभा सस्कारोद्वारा व्यक्त की जाती है तथा आत्माको प्राकृत—निम्न स्तरोसे मुक्त करक क्रमेण ऊपरी स्तरासे सम्बन्धित करने या प्रकृतिके सभी स्तरासे मुक्त करके उसे स्वाभाविक अनन्त आनन्द-साम्राज्य-सिहासनपर समासीन करनेमे आत्माका सस्कार है। ऐसे सस्काराके उपयुक्त कृतियाँ ही 'सस्कृति' शब्दसे कही जा सकती हैं। जैसे वेदोक्त कर्म और कर्मजन्य अदृष्ट—दोनों ही 'धर्म' शब्दसे व्यवहृत होते हैं वैसे ही सस्कार और सस्कारोपयुक्त कृतियाँ—दोनो ही 'सस्कृति' शब्दसे कही जा सकती हैं। इस तरह सासारिक निम्नस्तरकी सीमाआमें आबद्ध आत्माके उत्थानानुकूल सम्यक् भूषणभूत कृतियाँ ही 'सस्कृति' हैं।

सस्कृति और सभ्यता

सस्कृति और सभ्यताम कोई खास अन्तर नहीं है। सम्यक् कृति ही सस्कृति है और सभाम साधुता ही सभ्यता है। आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चाल आदिकी साधुताका निर्णय शास्त्रसे ही हो सकता है। वेदादि शास्त्रोंद्वारा निर्णीत सम्यक् एव साधु चेष्टा ही सभ्यता है और वही सस्कृति भी है।

विभिन्न सस्कृतियाँ

विभिन्न देशो और जातियोकी विभिन्न सस्कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। सस्कृतियोमे प्राय सघर्ष भी चलता है—कहीं तो सस्कृतियोकी खिचडी बन जाती है और कहीं एक सबल सस्कृति दुर्बल सस्कृतिका नाश कर देती है। सस्कृतिका भूमिके साथ सम्बन्ध होनेसे ही उसम विभिन्नता आती है। किसी देशकी जलवायुका प्रभाव वहाँके निवासियाके आचार-विचार, वेश-भूषा, भाषा, साहित्यपर पडता ही है। कुछ पाश्चात्य विद्वानाने तो इसी प्रभावको प्राधान्य दिया है। कुछ विद्वानाका मत है कि किसी राष्ट्रके किसी असाधारण बडप्पनके गर्वको ही सस्कृति कहना चाहिये। उदाहरणार्थ—इग्लैण्डके लोगोंको सबसे बडा गर्व अपनी ससदीय शासनप्रणालीके आविष्कारके लिये है। अमेरिकाको गर्व है कि उसने ससारमें स्वतन्त्रताकी पताकाको फहराया और दो महायुद्धोंमें विश्वको स्वतन्त्रताका वरदान दिया। हिटलरने जर्मनीमे आर्यत्वके विशुद्ध रुधिरका गर्व उत्पन्न किया। अत उनकी ये विशेषताएँ ही उनकी सस्कृतिका आधार हैं। किसी अशमे ये सब भाव ठीक हैं, परतु सस्कृतिकी ऐसी परिभाषाएँ अन्धोंद्वारा किये गये हाथीके वर्णन-जैसी हैं।

धर्म और सस्कृति

धर्म और सस्कृतिमे इतना ही भेद है कि धर्म केवल शास्त्रैकसमधिगम्य है और सस्कृतिमे शास्त्रसे अविरुद्ध लौकिक कर्म भी परिगणित हो सकता है। युद्ध-भोजनादिमे लौकिकता अलौकिकता—दोनो ही हैं। जितना अश लोकप्रसिद्ध है उतना लौकिक है, जितना शास्त्रैकसमधिगम्य है उतना अलौकिक है। अलौकिक अश धर्म है धर्माविरुद्ध लौकिक अश धर्म्य है। सस्कृतिमें दोनाका अन्तर्भाव है।

सस्कृतिका आधार

एक परिभाषा, लक्षण एव आधार स्वीकृत किये विना सस्कृति क्या है—यह समझमें नहीं आ सकता। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि सस्कृतिका लक्ष्य आत्माका उत्थान है। जिसके द्वारा इसका मार्ग बतलाया जाय, वही सस्कृतिका आधार हो सकता है। वह विभिन्न जातियोंके धर्मग्रन्थाद्वारा ही बतलाया जाता है। उनके अतिरिक्त किन्हीं भी चेष्टाओकी भूषणता, दूषणता, सम्यक्ता या असम्यक्ताका निर्णायक या कसौटी और हो ही क्या सकती है। यद्यपि सामान्यरूपसे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायाके धर्मग्रन्थोके आधारपर विभिन्न सस्कृतियाँ निर्णीत होती हैं, तथापि अनादि अपौरुषेय ग्रन्थ वेद ही हैं। अत वेद एव वेदानुसारी आर्ष धर्मग्रन्थोंके अनुकूल लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय एव नि श्रेयसोपयोगी व्यापार ही मुख्य सस्कृति है और वही हिन्दू सस्कृति वैदिक सस्कृति अथवा भारतीय सस्कृति है। सनातन परमात्माने अपने अशभूत सनातन जीवात्माओको सनातन अभ्युदय एव नि श्रेयस—परमपद प्राप्त करानेके लिये जिस सनातन मार्गका निर्देश किया है, तदनुकूल सस्कृति ही सनातन वैदिक सस्कृति है और वह वैदिक सनातन हिन्दू सस्कृति ही सम्पूर्ण सस्कृतियोंकी जननी है। डेढ-दो हजार वर्षोकी अर्वाचीन विभिन्न सस्कृतियाँ भी इसी सनातन सस्कृतिके कतिपय अशोंको लेकर उद्भूत हुई हैं। यही कारण है कि विभिन्न देशाकी विभिन्न सस्कृतियामे वैदिक सस्कृतिके विकृत एव अविकृत अनेक रूप उपलब्ध हैं। उसी सनातन सस्कृतिका पूजक हिन्दू है। जैसे इस्लाम-सस्कृति और मुस्लिम जातिका आधार 'क़ुरान' है, वैसे ही वैदिक सनातन सस्कृति एव हिन्दू जातिका आधार वेद एव तदनुसारी आर्ष धर्मग्रन्थ हैं।

भारतीय सस्कृति

इसमे सदेह नहीं कि भारतमे कई विदेशी जातियाँ आयीं और यहीं बस गयीं। भारतीयोके आचार-विचार, रहन-सहन आदिपर उनका कुछ प्रभाव भी पडा, पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय सस्कृतिका आधार ही बदल गया। भारत हिन्दुओका देश है, अत उन्हींकी

संस्कृति 'भारतीय संस्कृति' है, जिसके मूलस्रोत वेदादि शास्त्र हैं। अतएव लौकिक, पारलौकिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक उन्नतिका वेदादि शास्त्रसम्मत मार्ग ही भारतीय संस्कृति है। दर्शन, भाषा, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, इतिहास, कला आदि संस्कृतिके सभी अङ्गोपर वेदादिशास्त्रमूलक सिद्धान्तोंकी ही छाप है। बाहरी प्रभाव उससे पृथक् दीख पड़ता है। इस सम्बन्धमे एक बात और विचारणीय है। संसारके प्राय सभी देशाकी प्राचीन संस्कृतियोमें भारतीय संस्कृतिकी कितनी ही बात विकृतरूपमे पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ—किसी-न-किसी रूपमें वर्णव्यवस्था सभी जगह मिलती है। विभिन्न देशोके प्राचीन ग्रन्थामे यज्ञ-यागादिकी भी चर्चा आती है। दर्शनशास्त्र तो व्यापक रूपमे फैला हुआ है। ये सब बात वहाँ कैसे पहुँचीं, यह दूसरा प्रश्न है। पर इतना तो सिद्ध ही है कि इन सबका सम्बन्ध हिन्दू संस्कृतिसे है—एतावता यह भी सिद्ध हो जाता है कि वह हिन्दू संस्कृति है। भारतकी भूमिसे भी उसका सम्बन्ध है। जो बडप्पनके गर्वकी बात कही जाती है, उसका भी अनुभव उसी संस्कृतिमे होता है। इस प्रकार सभी दृष्टियोसे यही मानना पडता है कि हिन्दू संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। यह मान लिया जाय तो विवादका अवसर ही नहीं रहता, क्योंकि हिन्दू संस्कृतिकी सीमा हिन्दू-धर्मशास्त्रामें निर्धारित है, उनके द्वारा हमे उसके आधारभूत सिद्धान्तो और उसके विकसित रूपका सम्पूर्ण चित्र मिल सकता है।

हिन्दू

आजकल वास्तविकतासे दूर हटकर अधिकाधिक संख्या बढानेकी दृष्टिसे 'हिन्दू' शब्दकी परिभाषा की जाती है। अतएव कई लोग वेद न माननेवालोको भी 'हिन्दू' सिद्ध करनेके लिये—

आसिन्धो सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृत ॥

—ऐसी परिभाषा करते हैं, किंतु इस परिभाषाकी अतिव्याप्ति होती है। इसके अतिरिक्त भावनाकी दृढताका कोई आधार नहीं रहता।

गोषु भक्तिर्भवेद्यस्य प्रणवे च दृढा मति ।
पुनर्जन्मनि विश्वास स वै हिन्दुरिति स्मृत ॥

—यह परिभाषा अभीष्ट समाजोमे अनुगत हो जाती है। गोमातामे जिसकी भक्ति हो, प्रणव जिसका पूज्य मन्त्र हो, पुनर्जन्ममे जिसका विश्वास हो—वही हिन्दू है। यह सिख, जैन, बौद्ध, वैदिक—सबमे घट जाती है। परंतु वेदोके **'सिन्धव '**, **'सप्त सिन्धव '** इत्यादि प्रयोगो और 'सरस्वती' 'हरस्वती' आदि प्रयोगोकी दृष्टिसे तथा 'कालिकापुराण', 'मेदिनीकोष' आदिके आधारपर वर्तमान 'हिन्दू ला' के मूलभूत आधारोके अनुसार वेदप्रतिपादित रीतिसे वैदिक धर्ममे विश्वास रखनेवाला हिन्दू है। हिन्दू संस्कृतिकी दृष्टिसे अनादि परमेश्वरसे अनेक प्रकारका संकोच और विकास रहता है। ईश्वररहित जड विकासवाद, जिसके अनुसार जड प्रकृतिसे ही चैतन्यका विकास होता है और जिस विकासवादकी दृष्टिसे अभीतक सर्वज्ञ ईश्वर और शास्त्र विकसित ही नहीं हुआ, वह सर्वथा अमान्य है। आध्यात्मिकता और धार्मिकतासे विहीन साम्यवाद, समाजवाद आदि भी हिन्दू संस्कृतिमें नहीं खप सकते।

खिचड़ी संस्कृति

आजकलके कुछ नेता कई संस्कृतियो, विशेषत हिन्दू-मुस्लिम-संस्कृतिके मिश्रितरूपको ही भारतीय संस्कृति मानते हैं। इसीको 'हिन्दुस्तानी संस्कृति' का नाम भी दिया जाता है, किंतु इसे भारतीय संस्कृति कदापि नहीं कहा जा सकता। न इसका कोई आधार है न कोई स्पष्टरूप। प्राय देखा तो यह गया है कि जहाँ-जहाँ भारतीय संस्कृतिके किसी अङ्गपर विदेशी प्रभाव पडा, वहीं उसमे निकृष्टता आ गयी। दर्शन कला साहित्य आदि सभीमे यह दिखलाया जा सकता है। नेताओने 'इण्डियन यूनियन' (भारतसंघ)-को सेक्यूलर स्टेट (धर्मनिरपेक्ष राज्य) घोषित करके अनेक बार यह आश्वासन भी दिया है कि सबकी संस्कृतिकी रक्षा की जायगी, किसी संस्कृतिपर हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। कई नेताओने यह भी कहा है कि 'रंग-बिरंगे पुष्पो या हीराद्वारा जैसे मालाकी शोभा बढती हे, वैसे ही अनेक धर्मो और संस्कृतियोका यदि एक सूत्रमें संग्रथन हो तो उससे राष्ट्रकी शोभा बढेगी, घटेगी नहीं। अत किसी पुष्प हीरक या उसके रंगके बिगाडनेकी अपेक्षा नहीं।' ऐसी स्थितिमें संस्कृतिकी खिचडी कहाँतक ठीक है? हिन्दू जाति, हिन्दू

संस्कृति, हिन्दू धर्म, वेदादि शास्त्र, मन्दिर और राम-कृष्ण आदि समझमें आ सकते हैं, उसी तरह कुरान, मस्जिद इस्लाम, अरबी-उर्दू भाषा भी समझमें आ सकती है, परंतु इन दोनोंको बिगाड़कर वेद-पुराण, कलमा-कुरान, मन्दिर-मस्जिद, अल्लाह-राम आदिको मिलाकर हिन्दुस्तानी संस्कृति, हिन्दुस्तानी भाषा आदि कथमपि समझमें नहीं आती। राम भी अच्छा, खुदा भी अच्छा, परंतु 'रमखुदैया' खतरेसे खाली नहीं। दीनदार, ईमानदार, हिन्दू या मुसलमान—दोनों ही ठीक, बेदीन, बेईमान—दोनों ही खतरनाक हो सकते हैं। अपने-अपने मूल धर्मों, संस्कृतियों एवं मूल शास्त्रोंपर विश्वास न रहेगा तो कृत्रिम संस्कृतियों और उनके कृत्रिम आधारोंपर विश्वास होना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

एक संस्कृति

कुछ दिनोंसे 'एक संस्कृति' का नारा लगाया जा रहा है। यहाँ भी वही प्रश्न होता है कि कौन संस्कृति—हिन्दुस्तानी, खिचड़ी या विशुद्ध हिन्दू संस्कृति? तथाकथित हिन्दुस्तानी संस्कृतिमें क्या सर्वसाधारण हिन्दू या मुसलमानको कभी पूरी श्रद्धा हो सकती है? तब फिर यदि एक संस्कृति हिन्दू संस्कृति ही मानी जाय तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि मुसलमान उसे स्वीकार कर लेंगे? कुछ लोग कहते हैं—'मुसलमान कलमा-कुरान और मस्जिदका आदर और अपनी भाषा तथा वेश-भूषा रखते हुए भी भारतीय संस्कृतिके रूपमें हिन्दू संस्कृतिका पालन कर सकते हैं।' फिर आचार-विचार, रहन-सहन, इतिहास-साहित्य, दर्शन, धर्म आदिसे भिन्न संस्कृति कौन-सी वस्तु होगी, जिसे मानकर मुसलमान उसपर गर्व करेगा? कुछ लोग तो यहाँतक कहते हैं कि 'एक संस्कृति हिन्दू संस्कृति ही है, वही सबको माननी पड़ेगी, जो ऐसा नहीं करेंगे उन्हें भारत छोड़ना होगा।' किंतु ऐसा कहना सरकारद्वारा घोषित सेक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष) नीतिके ही विरुद्ध नहीं, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्तके ही विपरीत है। हिन्दू धर्म तो प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्तिको स्वधर्मानुसार चलनेकी स्वतन्त्रता देता है। '**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**' उसका सिद्धान्त है। अतः उसे कभी भी अभीष्ट नहीं कि येन-केन-प्रकारेण सभी हिन्दू बना लिये जायँ। हिन्दू संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है, इस दृष्टिसे एक संस्कृतिका नारा ठीक है, पर इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि देशमें अल्पसंख्यकोंकी संस्कृतियोंका संरक्षण न हो। यह भारतकी ही विशेषता है कि वह भिन्नतामें भी एकता देखता है। एक सूत्रमें गुँथे हुए मणियोंकी मालाका उदाहरण भी इसीमें घटता है।

कर्मणा वर्णव्यवस्था

संस्कृतिके प्रसंगमें ही 'कर्मणा वर्णव्यवस्था' की बात उठती है। सोचा यह जाता है कि 'कर्मणा वर्णव्यवस्था मान लेनेसे अन्य धर्मावलम्बियोंको हिन्दू समाजमें सुविधा होगी। मौलवी, मुल्ला, अध्यापक आदि बुद्धिजीवी ब्राह्मण बन जायँगे। सैनिक आदि बलजीवी क्षत्रिय, व्यापारी वैश्य और सेवापरायण शूद्रकोटिमें आ जायँगे। बहुतोंको इसका प्रलोभन रहेगा।'

यद्यपि यह ठीक है कि भारतमें वैदिकोंका बाहुल्य होनेसे वैदिक संस्कृति ही '**बाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति**'—इस न्यायसे भारतीय संस्कृति कही जा सकती है। वेद और वेदानुसारी आर्ष धर्मग्रन्थोंके अनुसार आचार-विचार, उपासना-कर्म आदिका 'हिन्दू' संस्कृतिमें समावेश है। *अहिंसा, सत्य, भगवदुपासना, तत्त्वज्ञान* आदि तीस धर्म ऐसे हैं, जिनसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है। उन धर्मोंका पालन करनेवाला कोई भी 'हिन्दू' कहला सकता है, तथापि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्णव्यवस्था जन्मना ही है। वर्णोंका कर्मणा उत्कर्ष अवश्य होता है, जैसे बीज और क्षेत्र—दोनों ही अङ्कुरके कारण होते हैं, वैसे ही जन्म और कर्म—दोनों वर्णके मूल हैं। प्राक्तन गुणकर्मानुरूप जन्म लेकर वर्ण और फिर समुचित गुणकर्मसे उसका उत्कर्ष होता है। गुणकर्मविहीन अधम और गुणकर्मयुक्त उत्तम ब्राह्मणादि होते हैं। जन्मप्राप्तिमें भी प्राक्तन कर्म अपेक्षित होते ही हैं। जैसे जन्मना शौर्य, क्रौर्य आदि गुण-कर्मसे युक्त मुख्य सिंह होता है और गुण-कर्मके बिना जन्ममात्रसे जाति सिंह—जन्मके बिना गुण-कर्ममात्रसे मनुष्यको भी शौर्यादि गुण-कर्मसे सिंह कहा जाता है, पर वह गौण प्रयोग है। उसी तरह जन्म और कर्मसे मुख्य ब्राह्मणादि, गुण-कर्मके बिना केवल

जन्मसे जाति-ब्राह्मणादि तथा जन्मके बिना गुण-कर्मादिसे गौण ब्राह्मणादिका व्यवहार होता है। जैसे माता-भगिनी आदिको उद्दिष्ट करके उनके कर्तव्योंका शास्त्रोमे उपदेश है, वैसे ही ब्राह्मणादिको उद्दिष्ट करके उनके कर्तव्योका। इसी तरह सुव्यवस्था भी रह सकती है, अन्यथा पत्नीका कर्म करनेसे दुहिता या भगिनी भी पत्नी हो जायगी। इसीलिये '**ब्राह्मणो यजेत्**' आदि विधान है—'**य ब्राह्मणो भवितुमिच्छेत् स यजेत्**' या '**यो यजेत् स ब्राह्मण** ' ऐसा विधान नहीं है। कर्मणा वर्णव्यवस्था माननेपर दिनभरम ही अनेक बार वर्ण बदलते रहेगे, फिर व्यवस्था क्या होगी? अत उपनयन, वेदाध्ययन, अग्निहोत्रादि कर्मानुष्ठान, भोजन विवाहादि सभी सांस्कृतिक कर्म जन्मना ब्राह्मणादिके आपसमे ही हो सकते हैं। जन्मना ब्राह्मण और कर्मणा ब्राह्मण मुसलमान आदिमें भोजन, विवाह आदिमें सम्बन्ध तथा जन्मना वर्णोंसे भिन्न लोगोंको उपनयन, अग्निहोत्रादि कर्मोंका अधिकार सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है। हम सभीको अपनी संस्कृतिको रक्षा, उन्नति और उसका प्रचार अभीष्ट है। इसमे सभीका सहयोग अपेक्षित है। यह तभी सम्भव है, जब पहले यह निश्चित कर लिया जाय कि भारतीय और हिन्दू संस्कृति क्या है? वस्तुत आजकल प्रमेय, फल, साधनादिपर तो विचार किया जाता है, परतु प्रमाणकी परवाह नहीं की जाती। यदि उसके आधारपर विचार किया जाय तो सब बात स्पष्ट हो जाय। भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमे विभिन्न मत रखनेवाले विद्वानोको एक साथ मिलकर विचार-विनिमय करना चाहिये। यदि भारतीय संस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्त और उसका रूप निश्चित हो जाय तो विवादके लिये अवकाश ही न रहे। अत सभी विद्वानासे हमारा अनुरोध है कि वे इस ओर ध्यान दे। यह प्रश्न टाला नहीं जा सकता, क्याकि इसीके उचित समाधानपर हमारा भविष्य निर्भर है। जब एक दिन इसका निर्णय करना ही है तो फिर विलम्ब क्यो किया जाय—'**शुभस्य शीघ्रम्।**'

~~0~~

पूर्वजन्म और संस्कार

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

जीवात्माका यदि वर्तमान जन्मसे पूर्व अस्तित्व न माना जाय तो वर्तमान जन्मकालमे ही होनेवाले सुख-दु खका कारण सिद्ध न होनेसे 'अकृताभ्यागम' रूप दोष आता है। उसी प्रकार यदि वर्तमान जन्मके पश्चात् भी उसका अस्तित्व न माना जाय तो इस जन्ममे अनुष्ठित पुण्य एव पाप, जिनका अभी किञ्चित् भी फल नहीं हुआ है, बिना भोगे ही नष्ट हो जानेसे 'कृतविप्रणाश' दोष आता है। जीवाकी विविध प्रयोजननिमित्त प्रवृत्तिका उच्छेदन हो जानेपर लोकयात्रा ही समाप्त हो जायगी, जो कि दृष्टिविरुद्ध है।

बृहदारण्यकश्रुति (४।४।६)-मे कहा गया है—

तदेव सक्त सह कर्मणैति लिङ्ग मनो यत्र निषक्तमस्य। प्राप्यान्त कर्मणस्तस्य यत्किञ्चेह करोत्ययम्। तस्माल्लोकात् पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मण इति।

इसका भावार्थ यह है कि मरणसमय लिङ्गान्तर्गत मन जिस शुभ और अशुभ कर्मवासनासे वासित होता है, उसीसे स्वर्ग अथवा नरकम पुण्य तथा पापका फलोपभोग कर इस भूलोकम पुन कर्मानुष्ठानके निमित्त लौटता है।

'तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वा··· पुनर्निवर्तन्ते।'

—ऐसा छान्दोग्यश्रुति (५।१०।५) कहती है अर्थात् परलोकमे कर्मफलोपभोगपर्यन्त रहकर पुनरावृत्ति होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता (९।२०-२१)-म भी—

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥
ते त भुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति।

इस प्रकार पुनर्जन्मका उल्लेख है।

कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टिस्मृतिभ्या ययेतमनेव च। वर्णाश्रमाश्च प्रेत्य स्वकर्मफलमनभूय विशिष्टदेशकालादिषु सम्भवन्ति॥

यह सूत्र भी एतदर्थका ही उपोद्बलक है।

इस प्रकार प्रबल युक्तियो, प्रमाणशिरोभूता भगवती श्रुति तथा स्मृतियाके वचनासे पुनर्जन्म यद्यपि सिद्ध ही हे तथापि समय-समयपर जातिस्मर व्यक्ति प्रकट होकर इस श्रुति-स्मृतियुक्तिसिद्ध पुनर्जन्म-सिद्धान्तको स्वानुभूतिद्वारा पुष्ट करते रहते हैं, जिससे आस्तिक जनता परलोकमे विश्वास कर पाप-परिवर्जनपूर्वक पुण्यानुष्ठानद्वारा सद्गतिलाभ करनेम समर्थ हो।

प्रकृत लेखमे एक ऐसे ही व्यक्तिका वर्णन प्रस्तुत किया गया है—

पूर्वकालम श्रीनर्मदातटपर एक शोभन-आश्रम था। वह बहुवृक्षसमाकीर्ण, सिंह, व्याघ्र, गो, महिष आदि वन्य पशुआसे निवेशित, मुनिभोग्य कन्द, मूल तथा फलसे पूर्ण और मुनिवृन्दोसे सुशोभित था। उस आश्रमस्थित मुनिवृन्दके साथ मुनिवर्य श्रीगालव वहाँ निवास करते थे, जो सत्यपरायण, तपोनिधि, शान्त तथा दान्त थे। चिरकालतक तप करते-करते उनके पवित्र गृहमे एक शिशुका जन्म हुआ, जिसका नाम उन्होने भद्रशील रखा। वह जातिस्मर होनेके कारण बाल्यकालसे ही श्रीनारायणपरायण हुआ। क्रीडामे ही वह महामति शिशु विशुद्ध मृत्तिकाकी श्रीविष्णुकी प्रतिमाका निर्माण कर पूजा करता हुआ सहचारि शिशुवर्गको

भी यही उपदेश करता था कि हे वत्सगण! मनुष्याको निजकल्याणार्थ सदा श्रीविष्णुका पूजन एव एकादशीव्रत करना चाहिये। इस प्रकार बोधित हुए शिशुगण कभी मिलकर और कभी पृथक्-पृथक् श्रीहरिकी प्रतिमा बनाकर भद्रशीलोक्त प्रकारसे पूजनमे निरत हुए। पूजनानन्तर वे यह भावना करते थे—

'नमो विष्णवे, सर्वेषा स्वस्ति भूयात्।'

भगवान् विष्णुको नमस्कार है, सम्पूर्ण जगत्का कल्याण हो।

जिस दिन एकादशीव्रत होता, भद्रशील सबसे व्रतका सकल्प कराकर श्रीविष्णुको समर्पण कर देता। इस प्रकारकी बालक्रीडा आश्रमस्थ मुनिगणाको ज्ञात हुई। अन्वेषण करनेसे पता चला कि शिशुगणका सुचरित श्रीगालवके सुपुत्र भद्रशीलकी प्रेरणाका फल है। श्रीगालव अपने पुत्रका यह सुचरित श्रवण कर विस्मयाविष्ट हो निज अङ्कम बैठाकर उससे प्रेमपूर्वक प्रश्न करने लगे—

'हे सौम्य! तुमने अपने भद्रशील नामको सार्थक किया। इस अवस्थामे तुम्हारा यह लोकोत्तर, योगिदुर्लभ चरित तुम्हे कहाँसे प्राप्त हुआ, जो तुम सदा हरिपूजापरायण, एकादशीव्रतनिष्ठ, श्रीहरिके ध्यानमे निमग्न, निषिद्धाचारशून्य, निर्द्वन्द्व निर्मम, शान्त और सर्वभूतहितकी भावना रखते हो। महत्सेवासे ही दुर्लभा हरिभक्ति सुलभ होती है, क्याकि जन्मसे ही जीवकी प्रवृत्ति अविद्या, कामके अधीन रहती है। यहाँतक कि सत्सङ्गसे भी जिनका पूर्वपुण्यातिरेक होता हे वे ही लाभ उठा सकते हैं, परतु तुम्हारी यह लोकोत्तर कृति हमको विस्मयाविष्ट कर रही है। अतएव प्रेमपूर्वक कहो कि तुमको यह बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई है?'

इस प्रकार पिताके प्रश्न करनेपर जातिस्मर सुकृति भद्रशील स्वानुभूत पूर्ववृत्तका वर्णन करने लगे और बोले—हे तात! पूर्वजन्मकी स्मृतिद्वारा स्ववृत्त आपको सुनाता हूँ। मैं पूर्वजन्ममे सोमकुलोद्भव धर्मकीर्तिसज्ञक राजा था। मैंने श्रीदत्तात्रेयजीसे शासित होकर नौ सहस्र वर्षोंतक राज्य किया। पृथ्वीपालनके समयमे धर्म एव अधर्म बहुत होते रहे। अन्तत पाखण्डजनाके ससर्ग-दोष तथा ऐश्वर्यमदसे प्रमत्त हो अधर्ममे प्रवृत्तिका आधिक्य हो गया। पाखण्डजनके सिद्धान्त—

'न दातव्य न होतव्य न यष्टव्य कदाचन' को हृदयगत कर मैंने सनातन वेदमार्गका परित्याग कर दिया। इसका परिणाम हुआ—**'यथा राजा तथा प्रजा।' 'राजा कालस्य कारणम्'**—इस नीतिके अनुसार मेरे देशकी प्रजा

भी वेदमार्ग (वर्णाश्रमधर्म)-का परित्याग कर सदैव अधर्ममे निरत रहने लगी।

इस प्रकार व्यसनासक्त तथा पापनिरत रहता हुआ एक दिन मैं मृगयाके निमित्त सैन्यसहित गहन वनको प्राप्त हो अनेक मृग-व्याघ्रादिका हनन करता हुआ सैन्यसे रहित हो श्रीनर्मदातटपर पहुँचा। उस समय सूर्यके आतपसे सतप्त, क्षुधा-पिपासासे पीडित एकाकी श्रीनर्मदामे स्नानकर स्थित ही था कि पूर्वजन्मोपार्जित सुकृतके परिपाकवश क्या देखता हूँ कि रेवातीरनिवासी ब्राह्मणादि भक्तमण्डल एकादशीव्रत-परिपालनार्थ श्रीहरिपूजन एव कीर्तन, रात्रिजागरण आदिके निमित्त वहाँ उपस्थित हुए हैं। उनकी देखा-देखी मैं उस समाजमें सम्मिलित हुआ। दिनमें अशन-पान हुआ ही न था, रात्रिको जागरण करते हुए श्रीहरिपूजन एव कीर्तन होता रहा, दैवयोगसे जागरणान्त ही मृत्युके वशमे हुआ तो क्या देखा कि यमदूत पाशबद्ध करके अनेक क्लेशप्रदमार्गसे ले जा रहे हैं।

यमलोकगत होकर दष्ट्राकरालवदन श्रीयमका चित्रगुप्तसहित दर्शन हुआ। श्रीयम चित्रगुप्तसे मेरे कर्मका विवरण पूछने लगे। चित्रगुप्त बोले—'हे धर्मराट्! यह आजन्म पापनिरत रहता हुआ भी अन्त समयमें श्रीएकादशी-उपवास, रात्रिजागरण, श्रीहरिपूजन और कीर्तन करता हुआ श्रीनर्मदातटस्थ हो मृत्युको प्राप्त हुआ है। अत **'एकादश्या निराहार सर्वपापै प्रमुच्यते, धर्मेण पापमपनुदति।'** अर्थात् एकादशीको निराहार रहनेसे व्रती सब पापासे मुक्त हो जाता है और धर्मके द्वारा पापको दूर करता है—इस शास्त्रप्रमाणसे निष्पाप हो यह सद्गतिका अधिकारी हो चुका है।

चित्रगुप्तके इस उत्तरको श्रवण कर श्रीधर्मराजने अनुकम्पितहृदय हो मुझको निर्मुक्तबन्धन कर दिया, आसनपर बैठाकर भक्तिभावसे मेरी पूजा की और दण्डवत् प्रणाम कर वे तल्लोकस्थ निज दूतगणोको मेरे समक्ष खडा करके उन्हे आदेश देने लगे—

शृणुध्व मद्वचो दूता हित वक्ष्याम्यनुत्तमम्।
धर्ममार्गरतान्मर्त्यान्मानयध्व ममान्तिकम्॥

अर्थात् हे दूतगणो! हमारा उत्तम आदेश श्रवण करो—'धर्ममार्गनिरत प्राणिवर्गको हमारे निकट मत लाया करो।'

यमदूत कहने लगे—भगवन्! धर्ममार्गनिरत प्राणियोके तथा अधर्मनिरतोके क्या लक्षण हैं?

इसपर श्रीधर्मराजने धर्मनिरत प्राणिवर्गके लक्षणाको बताते हुए कहा—

ये विष्णुपूजनरता प्रयता कृतज्ञा-
श्चैकादशीव्रतपरा विजितेन्द्रियाश्च।
नारायणाच्युत हरे शरण भवेति
शान्ता वदन्ति सतत तरसा त्यजध्वम्॥

हे दूतगण! जो शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, श्रीविष्णुपूजनमे निरत, एकादशीव्रत-परिपालक और हे नारायण, हे अच्युत, हे हरे! हमको शरणमे लीजिये—इस प्रकार सतत वदनशील हो, उनका अवश्य परित्याग कर देना।

नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो
पद्मेश पद्मजपित शिवशकरेति।
नित्य वदन्त्यखिललोकहिता प्रशान्ता
दूराद्भटास्त्यजत तान्न ममेषु शिक्षा॥

हे दूतगण! जो प्रशान्तचित्त, निखिललोकहितनिरत नित्य हे नारायण! अच्युत, जनार्दन, कृष्ण, विष्णो, लक्ष्मीपते, स्वयम्भूजनक, हे शिवशकर! ऐसा कीर्तन करते हैं! उनपर हमारा शासन नहीं है, उनको दूरसे ही त्याग देना।

नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाज
स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकाश्च।
सत्पात्रदाननिरताश्च सुदीनपालान्
दूरास्त्यजध्वमनिश हरिनामसक्तान्॥

जो अपने सर्वकृत्य श्रीनारायणको अर्पित करते हैं, स्वाचारनिष्ठ, गुरुसेवी, सत्पात्रमे दानशील, दीनरक्षक, श्रीहरिके नामकीर्तन तथा भक्तिमे आसक्त हो, उनको दूरसे त्याग देना।

पाखण्डसङ्गरहितान् द्विजभक्तिनिष्ठान्
सत्सङ्गलोलुपतराश्च तथातिथेयान्।
शम्भौ हरौ च समबुद्धिमतस्तथैव
दूतास्त्यजध्वमुपकारपराङ्गनानाम्॥

हे दूतगण! जो पाखण्डजनके ससर्गसे रहित, ब्राह्मणाके भक्त, सत्सङ्गके लोलुप अतिथिसेवक, श्रीसदाशिव एव श्रीहरिम समबुद्धि रखनेवाले तथा परोपकारपरायण हो, उनको त्याग देना।

इस प्रकार धर्मनिरत प्राणियोंके लक्षणका निरूपण कर श्रीयमराज अब अधर्मनिरत यममार्गके पथिकाका निरूपण करने लगे—

ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च
नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च ।
विप्रेन्द्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टा-
स्तान्पापिनो मम भटा गृहमानयध्वम्॥

हे दूतगण! जो पापी श्रीहरिकथामृतसेवनसे तथा श्रीनारायणस्मृतिपरायण भक्तजनके ससर्गसे वर्जित है, जो श्रोत्रिय, सदाचारी, विप्रेन्द्रके पादप्रक्षालन आदि सेवासे अप्रसन्न होते हैं, उनको हमारे लोकमे लाया करो।

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च
लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च।
देवस्वलोभनिरताञ्जननाशकर्तॄ
नत्रानयध्वमपराधपराश्च दूता ॥

हे दूतगण! जो माता-पिता आदि गुरुजनोंकी कोपपूर्वक भर्त्सना करनेवाले, लोककण्टक, लोकहितपरायणजनाका अहित करनेवाले, देवद्रव्यके लोलुप तथा लोकनाशमे उद्यत हो, ऐसे अपराधपरायण जनाको यहाँ लाया करो।

एकादशीव्रतपराङ्मुखमुग्रशील
लोकापवादनिरत परनिन्दक च।
ग्रामस्य नाशकरमुत्तमवैरयुक्त
दूता समानयत विप्रधनेपुलुब्धम्॥

हे दूतगण! जो एकादशीव्रतरहित, उग्रस्वभाव, लोकापवादनिरत, परनिन्दक, ग्रामम परस्पर विद्वेषद्वारा अशान्ति फैलानेवाले तथा ब्राह्मणके द्रव्यके लोलुप हो, ऐसे पापियोको यहाँ लाया करो।

ये विष्णुभक्तिविमुखा प्रणमन्ति नैव
नारायण हि शरणागतपालक च।
विष्ण्वालय च नहि यान्ति नरा सुमूर्खा-
स्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य ॥

जो श्रीविष्णुभक्तिविमुख शरणागतपालक नारायणको प्रणाम न करनेवाले गृहकार्यासक्त रहते हुए देवमन्दिरम न जानेवाले हों ऐसे अतिपापरत मूर्खजनाको बलात् लाया करो।

भद्रशील बोले—हे तात! इस प्रकार यमादेश श्रवण कर मैं अपने निन्दित कर्मका स्मरण कर पश्चात्ताप करने लगा। इस प्रकार पश्चात्ताप तथा श्रीयममुखनि सृत सद्धर्मश्रवणके प्रतापसे मेरे पाप नष्ट हो गये। उसी समय मैं दिव्य विग्रहयुक्त हो गया, जिसे देख यमदूत चकित हुए और श्रीयमादिष्ट भगवद्धर्मम अति विश्वस्त हुए।

तदनन्तर श्रीयमने मुझे विमानारूढकर श्रीविष्णुधामको भेजा। वहाँ श्रीहरिकी अनुकम्पासे अनेक कल्प निवास कर इन्द्रलोकद्वारा भूलोकमे श्रीहरिके भक्त तथा सद्धर्मपरायण आपके कुलमे मैंने जन्म प्राप्त किया है। जातिस्मरताके प्रतापसे यह सब हमको ज्ञात है। अब मेरा ऐसा विचार है कि मैं बाल्यकालसे ही सद्धर्माचरणपूर्वक श्रीविष्णुभक्तिमे पूर्ण प्रयत्नशील होऊँगा, जिससे पुनरावृत्तिरहित कैवल्यपद प्राप्त हो। इसमे प्रमाण है—

एकादशीव्रत यत्तु कुर्वन्ति श्रद्धया नरा ॥
तेषा तु विष्णुभवन परमानन्ददायकम्।

इस प्रकार पुत्रके यथार्थ वाक्यको श्रवणकर श्रीगालव अति सतुष्ट होकर बोले—आप-जैसे विष्णुभक्तको पुत्ररूपमें प्राप्तकर हमारा जन्म और वश सफल हुआ।

तदनन्तर उन्होने भद्रशीलको शास्त्रोक्त विधिसे हरिपूजाविधानका उपदेश दिया और तदनुसार आचरण करके भद्रशील कृतार्थ होकर श्रीविष्णुधामको प्राप्त हुए।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि पूर्वजन्मका सस्कारोसे सीधा सम्बन्ध है और जन्मान्तरीय सस्कार अवान्तर जन्मम भी फलीभूत होते हैं। पूर्वजन्मके राजा धर्मकीर्ति ही दूसरे जन्मम महर्षि गालवके पुत्रके रूपमे उत्पन्न हुए, जिनका नाम भद्रशील हुआ। पूर्वजन्मके राजा धर्मकीर्तिद्वारा मृत्युसे पूर्व अन्तिम समयमे अनजानमे एकादशीव्रत सध गया और उन्हें विष्णुभक्तोंका दर्शन हो गया था इसी तिथिको रात्रिजागरणमें उनकी मृत्यु भी हो गयी थी। तात्पर्य यह कि उनका विष्णुभक्तिका सस्कार बन गया था। फलत दूसरे जन्ममें भी उसी भावना—सस्कारके प्रभावसे उनका उत्तम ऋषिकुलमे जन्म हुआ तथा इसी कारण वे जन्मसे ही विष्णुभक्त एव जातिस्मर हुए और उनका विष्णुभक्तिका सस्कार अन्ततक बना रहा। इसी सस्कारके प्रभावसे उन्हे विष्णुधाम प्राप्त हुआ। अत प्रयत्नपूर्वक अच्छे सस्काराको अपनेम प्रतिष्ठित करना चाहिये जो इहलोक तथा परलोक—दोनोके लिये कल्याणकारी हो।

[प्रेषक—प्रो० श्रीबिहारीलालजी टाटिया]

संस्कृति और सस्कार

(ब्रह्मलीन पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीनिरजनदेवतीर्थजी महाराज)

'सस्कृति' शब्द सस्कृत भाषाका है। पर दु ख है कि आजकल इसका प्रयोग 'कल्चर' शब्दके अनुवादके रूपमे किया जा रहा है, जिससे सस्कृति शब्दका वास्तविक अर्थ कभी समझमे नहीं आता। **'सम्'** उपसर्गपूर्वक **'कृ'** धातुसे **'क्तिन्'** प्रत्यय होकर **'सपरिभ्या करोतौ भूषणे'** इस पाणिनिसूत्रसे भूषण—सुट्का आगम होनेपर सस्कृति शब्द बनता है। इसका अर्थ है—मानवका वह कर्म, जो भूषणस्वरूप—अलङ्कारस्वरूप है। मनुष्यद्वारा किये जानेवाले ऐसे कार्य जिससे उसे लोग अलकृत और सुसज्जित समझे, उन कर्मोका नाम है—सस्कृति।

प्रकारान्तरसे देखा जाय तो सस्कृति शब्दका शुद्ध अर्थ है **'धर्म'**। अग्रेजी भाषा तो क्या विश्वकी किसी भाषामे इस शब्दका वास्तविक अर्थ बतानेवाला कोई भी समानान्तर शब्द नहीं है। अग्रेजी भाषाका 'कल्चर' शब्द कल्टसे बनता है। इसके अनुसार किसी भी देशके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान क्रीडा, कला-कौशल, सगीत, नृत्य और गीतका अन्तर्भाव उसमे होता है। सस्कृति शब्दका इन सबसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सस्कृति शब्दका दूसरा वाचक शब्द हमारे यहाँ सस्कार है। वह भी **'सम्'** उपसर्गपूर्वक **'कृ'** धातुसे **'घञ्'** प्रत्यय होकर **'सपरिभ्या करोतौ भूषणे'** सूत्रसे **'सुट्'** का आगम होकर बनता है। सस्कार हमारे यहाँ मुख्यरूपसे गर्भाधानादि-अन्त्येष्टिपर्यन्त १६ हैं। कुछ आचार्योके मतमे ४२ सस्कार भी हैं। ये सारे-के-सारे सस्कार व्यक्तिकी जाति और अवस्थाके अनुसार किये जानेवाले धर्मकार्योका प्रतिस्थापन करते हैं। गर्भाधान, पुसवन और सीमन्त—ये तीन सस्कार तो पैदा होनेके पहले होते हैं। इनसे मनुष्यमे पिताके वीर्यजन्य जो दोष और माताके रजजन्य जो दोष हैं, उनकी निवृत्ति होती है। रज-वीर्यसे जीवकी उत्पत्ति होती है। ये दोनो माता-पिताके मल-मूत्रस्थानापन्न हैं। इन दोषाकी निवृत्तिके लिये सस्कार होते हैं। मनुस्मृति (२।२७)-मे कहा गया है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

गर्भाधान, पुसवन और सीमन्त-सस्कारके समय होनेवाले जो होम होते हैं, उनके द्वारा माता-पिताके मल-मूत्रस्थानापन्न आये रज-वीर्यके दोषोका अपनयन होता है। नौ मासतक माताके गर्भमे जो जीव रहता है, वहाँ मल-मूत्रका भण्डार रक्त आदि तथा माताके खाये हुए अपवित्र पदार्थोका सचयन रहता है, उसमे जीव पडा रहता है। उस दोषकी निवृत्तिके लिये पैदा होनेके बाद जातकर्मसे चूडाकर्म (मुण्डन)-पर्यन्त सस्कार होते हैं। इसके बाद गोदान, यज्ञोपवीत विवाह—इन सस्कारोसे व्यक्ति सुसज्जित एव भूषित होता है।

सस्कार अथवा सस्कृति दो प्रकारके होते हैं। एक है दोषापनयन और दूसरा है गुणाधान। ससारकी कोई जड-चेतन वस्तु नहीं है, जो बिना सस्कार किये हुए मनुष्यके उपयोगमे आती हो। उदाहरणके लिये हम अन्न खाते हैं। खेतमे जैसा अन्न होता है, वैसा-का-वैसा नहीं खाते। पहले उसको रौंद करके दाना निकाला जाता है और भूसी अलग की जाती है। उसमे जो दोष हैं, उनको दूर करके, छान-बीन करके मिट्टी, ककड आदि निकाले जाते हैं। ये भी दोषापनयन-सस्कार हैं। इसके बाद गुणाधान-सस्कार होता है। उसे चक्कीमे पीसकर आटा निकाला जाता है। जो गुण उसमे नहीं थे, उसे लाया जाता है। फिर उसमे पानी मिलाकर उसका पिण्ड बनाकर, रोटी बेलकर तवेपर सेककर खानेयोग्य बनाया जाता है। ये सभी गुणाधान-सस्कार हैं। कोई भी चीज सस्कारसे हीन होनेपर सभ्य समाजमें प्रयोग लायक नहीं होती।

उत्तम-से-उत्तम कोटिका हीरा खानसे निकलता है। उस समय वह मिट्टी आदि अनेक दोषोसे दूषित रहता है। पहले उसे सारे दोषोसे मुक्त किया जाता है। फिर तराशा जाता है, तराशनेके बाद कटिंग की जाती है। यह क्रिया गुणाधान-सस्कार है। तब वह हारमें पहनने-लायक होता है। जैसे-जैसे उसका गुणाधान-सस्कार बढता चला जाता है, वैसे ही मूल्य भी बढता चला जाता है। सस्कारोद्वारा ही उसकी कीमत बढी। सस्कारके बिना कीमत कुछ भी

नहीं। इसी प्रकार संस्कारोंसे विभूषित होनेपर ही व्यक्तिका मूल्य और सम्मान बढ़ता है। इसीलिये हमारे यहाँ संस्कारका माहात्म्य है।

संस्कार और संस्कृतिमें जरा-सा भी भेद नहीं है। भेद केवल प्रत्ययका है। इसीलिये संस्कार और संस्कृति—दोनों शब्दोंका अर्थ है—धर्म। धर्मका पालन करनेसे ही मनुष्य मनुष्य है, अन्यथा खाना, पीना, सोना, रोना, धोना, डरना, मरना, संतान पैदा करना—ये सभी काम पशु भी करते हैं। पशु और मनुष्यमें भेद यह है कि मनुष्य उक्त सभी कार्य संस्कारके रूपमें करता है। गाय, भैंस, घोड़ा, बछड़ा आदि जैसा खेतमें अनाज खड़ा रहता है, वैसा ही खा जाते हैं। लेकिन कोई मनुष्य खड़े अनाजको खेतमें ही खानेको तैयार नहीं होता। खायेगा तो लोग कहेंगे—पशुस्वरूप है। इसीलिये संस्कार, संस्कृति और धर्मके द्वारा मानवमें मानवता आती है। बिना संस्कृति और संस्कारके मानवमें मानवता नहीं आ सकती।

हमारे यहाँ प्रत्येक कर्मका संस्कृतिके साथ सम्बन्ध है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त और प्रातःकाल शय्या त्यागकर पुनः शय्या-ग्रहणपर्यन्त हम जितने कार्य करें, वे सभी वैसे हों, जिनसे हमारे जीवनका विकास ही नहीं हो बल्कि वे अलंकृत सुशोभित और विभूषित भी करें। ऐसे कर्म कौन-से हैं, उनका ज्ञान मनुष्यको अपनी बुद्धिसे नहीं हो सकता। सामान्यतया बुद्धिमान् व्यक्ति सोचता है कि वह वही कार्य करेगा, जिससे उसे लाभ हो। लेकिन मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपने लाभ और हानिका ज्ञान कर ही नहीं सकता। अन्यथा कोई मनुष्य निर्धन और दुःखी नहीं होता। अपने प्रयत्नोंसे ही उसे हानि भी उठानी पड़ती है। इसीलिये कहा जाता है कि हमने अपने हाथोंसे अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मार ली। अतः मनुष्यको कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान शास्त्रोंद्वारा हो सकता है। शास्त्रोंद्वारा बताये गये अपने-अपने अधिकारानुसार कर्तव्य कर्म और निषिद्ध कर्मको जानकर आचरण करना ही संस्कृति है।

वास्तवमें आजकल कल्चरल-प्रोग्राम या सांस्कृतिक-कार्यक्रमका अर्थ केवल नाचना, गाना, बजाना ही रह गया है, जबकि इसका अर्थ बड़ा व्यापक है, जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्यके पूरे व्यक्तित्वसे है, जो इहलोक और परलोक—दोनोंसे जुड़ा है। आज भी बहुत लोग हैं जो शास्त्रोंद्वारा बताये गये कर्म करते हैं और निषिद्ध कर्मोंका त्याग करते हैं। यह ध्यान देनेकी बात है कि आधुनिक चाकचिक्य और भौतिकताके व्यापक प्रचार-प्रसारके बावजूद हमारी संस्कृतिका बीज नष्ट होनेवाला नहीं है। वर्तमान समयमें हमारे देशमें जो संस्कृतिका संकट है, उसका कारण है—विदेशी संस्कृतिसे प्रभावित लोग। लोग विदेश जाकर संस्कारित होते हैं और आकर उसका प्रचार भी करते हैं। इसीसे हमारी संस्कृति और पहचान नष्ट हो रही है। कितनी हास्यास्पद बात है कि विदेशी अपनी संस्कृतिसे ऊबकर हमारी संस्कृति अपना रहे हैं और हम उनकी मरती हुई संस्कृतिकी तरफ ललचाई दृष्टिसे देख रहे हैं। रूस और चीनमें आजकल जो हो रहा है, वह उनकी संस्कृतिसे मुक्त होनेकी छटपटाहटका लक्षण है। विदेशी संस्कृतिका त्याग ही भारतको पूर्ण गौरवकी ओर उन्मुख कर सकता है।

पहले भारतीय संस्कृति विश्वकी संस्कृतियोंको नियन्त्रित करती थी, क्योंकि हमारे आचार-विचार, धर्म-संस्कार ऐसे थे कि उसीसे सुख, शान्ति, शक्ति, समृद्धि और सम्मान मिलता था। स्थिति यह थी कि हम इतने बलशाली थे कि हमारी बात माने बिना कोई रह नहीं पाता था। संसार हमारा लोहा मानता था। आज हम इतने निर्बल हो गये हैं कि छोटे-से-छोटा देश भी हमें आँख दिखा देता है। इतने निर्धन हो गये हैं कि हमारा अर्थशास्त्र दूसरे देशोंपर आश्रित होता जा रहा है। जिसके राज्यमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता था वे हमारे कर्जदार थे। हम सोनेकी चिड़िया कहे जाते थे। लेकिन आज अरबों-खरबोंका कर्ज लेकर आत्मसम्मानसे जीनेका ढोंग करते हैं। कभी पूरा विश्व ज्ञान सम्पत्ति दर्शन कला, धर्म संस्कृति-संस्कारमें हमारा कर्जदार था। आज हम उधार और कर्जकी तकनीकी जानकारी, ज्ञान विज्ञान, शिक्षा व्यवस्था

सस्कार, भाषा, खान-पान आदिको लेकर एक शताब्दीसे दूसरी शताब्दीमें जानेका दु स्वप्न देख रहे हैं। क्या इससे हमारा अस्तित्व बचेगा? क्या हम अपनी पहचान सुरक्षित रख पायगे? आखिर हमारा देश कैसे निर्बल होता गया? यह सब अपने सस्कारसे च्युत होनेके कारण हैं। हम अपनी सस्कृतिको पहचान ही नहीं पा रहे हैं। नयी पीढीको सस्कृति शब्दका सही अर्थ ही नहीं मालूम है। इसीलिये अपने यहाँ अपनी परम्पराओ और सस्कृतिपर शोध नहीं होता। इस क्षेत्रमें विदेशियोंके शोधको हम मान्यता देते हैं, जो हमारे शास्त्रोका सही अर्थ ही नहीं जान पाये। वे सस्कृतिको कल्चर कहते हैं, कल्चर तो रहन-सहन है, सभ्यता कहते हैं, जो सिविलाइजेशन है। वास्तवमें निर्बलता सबसे बडा पाप है जो भारतमें हर मोर्चेपर दिखायी पड रही है। अपने शास्त्रोंके आधारपर सस्कारित होनेका गर्व करनेपर ही हम पुन बलशाली हो सकते हैं, दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

[प्रेषक—प्रो० श्रीबिहारीलालजी टाटिया]

~~~o~~~

चरित्र-निर्माणमे संस्कारोकी समष्टि

[स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके विचार]

स्वामी श्रीविवेकानन्दजीद्वारा चरित्र-गठनके सदर्भमे सस्कारोके मूल्यवान् विचार यहाँ प्रस्तुत हैं—

हमारा प्रत्येक कार्य, प्रत्येक अङ्ग-सचालन, प्रत्येक विचार हमारे चित्तपर एक प्रकारका सस्कार छोड जाता है। यद्यपि ये सस्कार ऊपरी दृष्टिसे स्पष्ट न हो, तथापि ये अवचेतनरूपसे अदर-ही-अदर कार्य करनेमे पर्याप्त समर्थ होते हैं। हम प्रतिमुहूर्त जो कुछ होते हैं, वह सस्कारोंके समुदायद्वारा ही निर्धारित होता है। मैं इस मुहूर्तमें जो कुछ हूँ, वह मेरे अतीत जीवनके समस्त सस्काराका प्रभाव है। यथार्थत इसे ही चरित्र कहते हैं। प्रत्येक मनुष्यका चरित्र इन सस्कारोकी समष्टिद्वारा ही नियमित होता है। यदि भले सस्कारोका प्राबल्य रहे तो मनुष्यका चरित्र अच्छा होता है और यदि बुरे सस्कारोका प्राबल्य हो तो बुरा। एक मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे तो उसका मन भी बुरे सस्कारोसे पूर्ण हो जायगा और बिना उसके जाने ही वे सस्कार उसके समस्त विचारा तथा कार्योंपर अपना प्रभाव डालते रहेगे और फिर वह एक बुरा आदमी बन जायगा। इसी प्रकार कोई व्यक्ति अच्छे विचार रखे और सत्कार्य करे तो उसके इन सस्काराका उसपर प्रभाव भी अच्छा होगा।

यदि तुम सचमुच किसी मनुष्यके चरित्रको जाँचना चाहते हो तो उसके बडे कार्योंसे उसकी जाँच मत करो, हर मूर्ख किसी विशेष अवसरपर बहादुर बन सकता है, मनुष्यके अत्यन्त साधारण कार्योंकी जाँच करो और असलमे वे ही ऐसी बाते हैं, जिनसे तुम्हे एक महान् पुरुषके वास्तविक चरित्रका पता लग सकता है। आकस्मिक अवसर छोटे-से-छोटे मनुष्यको भी किसी-न-किसी प्रकारका बडप्पन दे देते हैं, परतु वास्तवमे महान् तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओमे महान् तथा सम रहता है।

मनुष्यकी इच्छाशक्ति चरित्रसे उत्पन्न होती है। हमारे चारों ओर जो कुछ हो रहा है, वह सब मनकी अभिव्यक्ति है, मनुष्यकी इच्छाशक्तिका प्रकाश है। कल-पुर्जे, यन्त्र, नगर, जहाज, युद्धपोत आदि सभी मनुष्यकी इच्छाशक्तिके विकासमात्र हैं। चरित्र कर्मोंसे गठित होता है। जैसा कर्म होता है, इच्छाशक्तिकी अभिव्यक्ति भी वैसी ही होती है। ससारमे प्रबल इच्छाशक्ति-सम्पन्न जितने महापुरुष हुए हैं, वे सभी महान् आत्मावाले थे। उनकी इच्छाशक्ति ऐसी जबरदस्त थी कि वे ससारको भी उलट-पुलट सकते थे और यह शक्ति उन्हे युग-युगान्तरतक निरन्तर कर्म करते रहनेसे प्राप्त हुई थी।

आश्चर्यकी बात है कि कितने ही लोग सफलता
~~~

प्राप्त करते हैं और कितने ही असफल हो जाते हैं। मूल बात तो यह है कि विशेष परिश्रमसे ही चरित्रका गठन होता है। मन निर्मल, सत्त्वगुणयुक्त और विवेकशील हो, इसके लिये निरन्तर अभ्यास करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक कार्यसे मानो चित्तरूपी सरोवरके ऊपर एक तरग खेल जाती है। यह कम्पन कुछ समय बाद नष्ट हो जाता है, फिर क्या शेष रहता है—केवल सस्कार-समूह। मनमे ऐसे बहुत-से सस्कार पडनेपर वे इकट्ठे होकर आदतके रूपमे परिणत हो जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि आदत ही द्वितीय स्वभाव है। केवल द्वितीय स्वभाव ही नहीं, वरन् प्रथम स्वभाव भी है। हमारे मनमे जो विचारधाराएँ बह जाती हैं, उनमसे प्रत्येक अपना एक चिह्न—सस्कार छोड जाती है। हमारा चरित्र इन सब सस्कारोंकी समष्टिस्वरूप है। केवल सत्कार्य करते रहो, सर्वदा पवित्र चिन्तन करो, इस प्रकार चरित्र-निर्माण ही बुरे सस्कारोको रोकनेका एकमात्र उपाय है। अग्रेजीमें एक कहावत है, जिसका हिन्दी अनुवाद है—'यदि धन नष्ट होता है तो कुछ भी नष्ट नहीं होता, यदि स्वास्थ्य नष्ट होता है तो कुछ अवश्य नष्ट होता है, पर यदि चरित्र नष्ट होता है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है।'

वास्तवम चरित्र ही जीवनकी आधारशिला है उसका मेरुदण्ड है। राष्ट्रकी सम्पन्नता चरित्रवान् लोगोकी ही देन है। जो राष्ट्र सम्पन्न हैं, प्रगतिके रास्तेमे आगे बढ रहे हैं, वहाँके नागरिक अवश्य चारित्रिक धनसे भी सम्पन्न होगे। इसी प्रकार जहाँके निवासी चारित्र्यसे विभूषित होते हैं, वह राष्ट्र प्रगत होगा ही। राष्ट्रोत्थान और व्यष्टि-चरित्र—ये दोनो अन्योन्याश्रित हैं। चरित्रकी जडोको सुखानेवाला सबसे प्रबल तत्त्व है—स्वार्थ। स्वार्थकी भावना ही अहताका मूल कारण है। जहाँ व्यक्ति केवल अपने लिये जीता है, वहाँ किसी प्रकारके नैतिक मूल्योंकी प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। नैतिक मूल्यरूपी जलके सिचनसे ही चरित्रका पौधा लहलहाता है। नैतिकताका सरल अर्थ है—'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अपन ही समान सबको जानना। एसी वृत्तिको भारतमें धर्मकी वृत्ति कहा गया है। धर्मकी सरल तथा सर्वग्राह्य व्याख्या करते हुए महर्षि वेदव्यास कहते हैं कि जो आचरण अपने प्रतिकूल हो वैसा दूसरेके प्रति कभी न करे, यही धर्मका सर्वस्व है—

श्रूयता धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्॥

स्वामी विवेकानन्द नीतिसगत एव नीतिविरुद्धको परिभाषा करते हुए कहते हैं कि जो स्वार्थपरायण हैं, वे नीतिविरुद्ध हैं और जो नि स्वार्थ हैं, वे नीतिसगत हैं। चरित्रवान् व्यक्ति ही वास्तवमे आनन्दका अधिकारी होता है और चरित्रवान् वह है, जिसने अपने स्वार्थको अकुशमें रखा है। हमारी इन्द्रियाँ कहती हैं—अपनेको आगे रखो, पर नीतिशास्त्र कहता है कि अपनेको सबसे अन्तमे रखो। इस प्रकार नीतिशास्त्रका सम्पूर्ण विधान त्यागपर ही आधारित है। उसकी पहली माँग है कि भौतिक स्तरपर अपने व्यक्तित्वका हनन करो, निर्माण नहीं।

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं—उपयोगितावाद मनुष्यके नैतिक सम्बन्धोकी व्याख्या नहीं करता क्योकि पहली बात तो यह है कि उपयोगिताके आधारपर हम किसी भी नैतिक नियमपर नहीं पहुँच सकते। उपयोगितावादी हमसे असीम अतीन्द्रिय गन्तव्य स्थलके प्रति सघर्षका त्याग चाहते हैं, क्योकि अतीन्द्रियता अव्यावहारिक है, निरर्थक है। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि नैतिक नियमोका पालन करो, समाजका कल्याण करो। भलाई करनेकी बात तो गौण है, मुख्य है—एक आदर्श। नीतिशास्त्र स्वय साध्य नहीं है, प्रत्युत साध्यको पानेका साधन है।

स्वामीजीकी दृष्टिम चरित्रहीनता ही राष्ट्रकी मृत्युका कारण थी। देशकी मृत्युका चिह्न अपवित्रता या चरित्रहीनताके भीतरसे होकर आया है। यह चारित्र्य-दोष किसी देशमे प्रवेश कर जाता है तो समझना कि उसका विनाश निकट आ गया। बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु है। कापुरुष कभी चरित्रवान् नहीं हो सकता। सत्य तो यह है जो शक्ति दे हृदयके अन्धकारको दूर करे और यह सत्य ही चरित्र-निर्माणका वास्तविक एव स्थायी आधार है।

सस्कारासे ही चरित्र बनता है।

[प्रेषक—श्रीहरिकृष्णजी नीखरा]

श्रीअरविन्दके पूर्णयोगमें संस्कार

श्रीअरविन्दजीका कहना है—'सस्कार अधिकाशत निर्माणकारी साकेतिक तत्त्व हैं, जो मानसपर सचेतन और अचेतन अवस्थाओमे कार्य करते हैं तथा इन तत्त्वोके पीछे अवस्थित महत्तर एव शाश्वत तत्त्वोका मर्म समझनेके लिये प्रस्तुत करते हैं।'

अध्यात्म-जीवनकी ओर उन्मुख सभी साधनमार्गोमे सस्कारको प्रगतिका उपाय माना गया है। इसीके द्वारा सृष्टिमे चैतन्यका जागरण होता है। इसीके माध्यमसे सृष्टि प्रगति करती है। अन्तर यही है कि प्रारम्भमे सस्कारका चैतन्य अचित्मे अचेतन रीतिसे कार्य करते हुए जीवको सृष्टिकी उस अवस्थाको प्राप्त कराता है, जिसे चित् कहा जाता है और जीवमे चित्के विकासके द्वारा वह स्वयको सचेतन बनाता है। विभिन्न स्मृतियाँ सस्काराकी व्याख्या इसी परिप्रेक्ष्यमे करती हैं।

श्रीअरविन्दके योगमे सस्कार जीवके अस्तित्वके साथ प्रारम्भ होते हैं, मानवके रूपम जीवका जन्म तो बहुत बादम होता है। सस्कार ही जीवके आध्यात्मिक विकासपथपर पाथेय हैं। जीव सस्कारका ही सहारा लेकर अध्यात्मके सोपानोंपर आरोहण करता है। अत सस्कार सूक्ष्म, आन्तरात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाके प्रतीक भी बन जाते हैं।

जीव अपने जीवनके लक्ष्यकी प्राप्तिहेतु अतीतके सस्कारों और आग्रहोको लेकर सृष्टिमे प्रवेश और प्रतिक्रिया करता है। श्रीअरविन्दके पूर्णयोगमे सस्कार जीवके क्रम-विकासमे आरोहणहेतु सोपान हैं। वे मन और इन्द्रियोको अवरोधित और सीमित नहीं करते तथा अहके साथ तादात्म्य स्थापित कर सत्ताकी स्वतन्त्र-स्थितिका भ्रम भी नहीं उत्पन्न करते। सस्कार जीवको आत्मतत्त्वकी उपलब्धि करानेके लिये पथप्रदर्शक हैं। आत्मामें ही क्षमता है कि वह मनके माध्यमसे प्रतिक्रिया कर सके।

सस्कारोंके फलको ग्रहण करनेके लिये मनका व्यवस्थित होना आवश्यक है और सस्कार मनको व्यवस्थित करनेके साधन हैं। मन अवचेतनकी गहराइयोका बीजरूपमे सग्रह कर लेता है और उनका उपयोग करते हुए वर्तमान जन्मम जन्म-जन्मान्तरके सस्कारोंद्वारा तबतक प्रगति करता है जबतक भगवत्कृपासे उसमे भगवान्के प्रति प्रेम न जग जाय। पार्थिव जीवन इस द्विविध प्रक्रियाका जन्मस्थल है। इसे ही कहा गया है—'मनोमय प्राणशरीरनेता' (मुण्डकोपनिषद् २।२।७)।

श्रीअरविन्द जन्म-जन्मान्तरके सस्कारोको वर्तमान भौतिक जीवनमे योगके द्वारा परिशोधित और विकसित करते हुए उसे उसकी वैज्ञानिक परिणतितक ले जानेका मार्ग पूर्णयोगके माध्यमसे प्रस्तुत करते हैं।

पार्थिव मानव सचित सस्कारोके आधारपर ही अध्यात्ममार्गपर आरोहण कर सकता है। जिस जगत्मे मानव निवास करता है, उसकी अवस्थाके अनुसार ही वह वैश्वसत्ताकी मन शक्तिको अभिव्यक्त करता है। वह पृथ्वीपर विश्वात्माकी अभिव्यक्तिका प्रकट रूप है। इसे वह अपनी आत्मामें स्थित तप - शक्तिसे सस्कारित करता हुआ उच्चतर चेतनाकी ओर आरोहण कराता है। सस्कारोके पीछे यह तप शक्ति ही है, जो जगत्की विधायिका और विराट् चेतनाकी आह्लादकारिणी शक्ति है।

सस्कार धर्मकी परिपुष्टिका साधन भी है। धर्म ही मानवको पशुसे अलग करता है। अत इन्हे आध्यात्मिक अनुशासन भी कहा जाता है। शास्त्र कहते हैं कि अनुशासनसे आगे बढकर सस्कारोसे द्विजत्वकी प्राप्ति होती है। इसके लिये सस्कार उन साधनों और क्रियाओको सहज उपलब्ध कराके भागवज्जन्मको सम्भव बनाते हैं।

श्रीअरविन्दके अनुसार शरीरका त्याग और पुनर्जन्म सस्कारोके वैज्ञानिक विधि-विधानमे पर्यवसित है। सस्कार कारणपुरुष या आत्माके नहीं होते, जीवके होते हैं। कारणपुरुष या आत्मा साक्षी होते हैं। जीव ही भोक्ता है, जो सस्कारोको वहन करते हुए सृष्टिके क्रम-विकासमे प्रगति करता है, अन्यथा यह प्रक्रिया केवल एक मासपेटिकासे निकलकर दूसरी मासपेटिकामे प्रवेश करके बद हो जानेके समान हो जाती।

भौतिक सत्ताके आधारपर ही सस्कार उपयोगी होते हैं। इसके त्रिविध रूप हैं—१ शरीरधारी मन प्रारम्भबिन्दु है, २ विश्वव्यापी आत्मा इसका अन्तरात्मा है तथा ३ वैयक्तिक अन्तरात्माकी—विश्वात्माकी प्राप्तिहेतु जन्मके पूर्व और जन्मके पश्चात् संस्कारोके माध्यमसे प्रगति होती है।

सस्कार इन तीनों स्तरोंपर आत्माके आरोहणम सहायक हैं, चेतनकी ओर ले जानेवाले विकासपथके पाथेय हैं। ये मानवयोनिमे अस्तित्वके नियमके लिये नहीं हैं, बल्कि अध्यात्म-पुरुषके लिये साधनमात्र हैं। मानवका उच्चतर मन केवल अस्तित्व और शुभके लिये सत्य और ज्ञानकी

खोजकी ओर उन्मुख होता है तो उसमे शुभ सस्कारोका अनुभव और सचय होता है।

फलितार्थ यह है कि सत्ताके विकासम सस्कार जन्म-जन्मान्तरोंसे प्रकृतिके स्तरपर सचित होकर पुरुपकी अभिव्यक्तिके साधन बन जाते हैं। जब मानवयोनिम पुरुप प्रकृतिसे अधिक सचेतन होकर पदार्पण करना चाहता है तो सस्कारोका सचेतन व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है और पुरुपके लिये सस्कार जन्मसे ही विकासके साधन बन जाते हैं।

यहींसे मानवके वेदिक भापामे सप्तविध अज्ञानके स्तरासे सप्तविध ज्ञानकी ओर महामार्गका प्रदर्शन हो उठता है। सस्कार योग अर्थात् भगवत्-तत्त्वकी प्राप्ति और अभिव्यक्तिके साधन बन जाते हैं—'**अज्ञानभू सप्तपदा ज्ञभू सप्तपदैव हि॥**' (महोपनिषद् ५।१)

ज्ञानके सात पद वे सस्कार हैं, जो सप्तविध अज्ञानसे मुक्त करके आगे ले जाते हैं—'**इमा धिय सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजाता बृहतीमविन्दत्।**' (ऋक्० १०।६७।१)

जन्मके बाद सस्कारासे ही जीव मानव बनता है। इसके आगे प्रगतिहेतु मानवको सस्कारोके माध्यमके आगे योगके माध्यमसे पुरुप बनना होगा। शरीरमे जब परमात्मतत्त्व सचेतन हो जाता है तो मानव पुरुप हो जाता हे। इसीलिये परमात्मतत्त्व और मानव—इन्हीं दोनाको पुरुप कहा गया है। श्रीअरविन्दके पूर्णयोगम इसी पुरुपकी अभिव्यक्तिके लिये सस्कार साधनस्वरूप हैं।

ज्ञानके स्तर और उससे ऊपर विकासहेतु तथा दैहिक जन्म-मृत्युसे ऊपरकी साधना सस्कारसे ही उद्भूत होती है।

सस्कारके कारण ही मानव सूक्ष्मतर और उच्चतर सत्ता, चेतना शक्ति और आनन्दका अनुभव करनेम समर्थ होता है एव भूतशुद्धि और मनोशुद्धिको साधित कर सकता है। सस्कार सिखाते हैं कि दिव्य जीवनक लिये मनका विकास पर्याप्त नहीं हे। अवचेतनको प्रकाशित करनेके लिये सस्कार अपरिहार्य हैं। यह कार्य किसी अन्य योनिमे सम्भव ही नहीं है। यही उदाहरण अन्तश्चेतनको परिमार्जित करनेके लिय भी है। हमारे भीतर जो दिव्यनिवासी (**सर्वभूताधिवास**) हैं उनसे सयुक्त होनेका प्रयास भी सस्कार-सम्भव ही है।

सस्कारका अन्य नाम है, सचेतनके आध्यात्मिक विकासका विधान। इसीके द्वारा जीवनका ऋत्-चित् आत्माके दिव्य-जीवनमे रूपान्तरित होता है—

'**यत् सानो सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥**' (ऋक्० १।१०।२)

[प्रेपक—श्रीदेवदत्तजी]

नित्यकी सस्कारसम्पन्न उपासना

(महामना प० श्रीमदनमोहनजी मालवीय)

ध्येय सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायण सरसिजासनसन्निविष्ट ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्र ॥

प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय सभीको प्रात काल स्नान कर और सायकाल हाथ-मुँह-पैर धोकर सूर्यके सामने खडे होकर सूर्यमण्डलमे विराजमान सारे जगत्के प्राणियोके आधार परब्रह्म नारायणको '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रसे अर्घ्य देना चाहिये। यदि जल न मिले तो यो ही हाथ जोडकर मनको पवित्र और एकाग्र कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक १०८ बार या २८ बार या कम-से-कम १० बार प्रात काल '**ॐ नमो नारायणाय**' और सायकाल '**ॐ नम शिवाय**' इस मन्त्रका जप करना चाहिये तथा जपके उपरान्त परमात्माका ध्यान कर नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिये—

'ॐ नमो नारायणाय'

सब देवनके देव प्रभु सब जगके आधार।
दृढ राखौ मोहि धर्ममे बिनवौ बारंबार॥
चन्दा सूरज तुम रचे रचे सकल संसार।
दृढ राखौ मोहि सत्यमे बिनवौं बारबार॥
घट-घट तुम प्रभु एक अज अविनाशी अविकार।
अभय दान मोहि दीजिये बिनवौ बारंबार॥
मेरे मन मन्दिर बसौ करौ ताहि उँजियार।
ज्ञान भक्ति प्रभु दीजिये बिनवौ बारबार॥
सत चित आनद घन प्रभु सर्व शक्ति आधार।
धनबल जनबल धर्मबल दीजे सुख ससार॥
पतित उधारन दुख हरन दीन बन्धु करतार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ करहु बिनवौ बारबार॥

जिमि राखे प्रहलादको लै नृसिंह अवतार।
तिमि राखौ अशरण शरण बिनवौ बारबार॥
पाप दीनता दरिद्रता और दासता पाप।
प्रभु दीजे स्वाधीनता मिटै सकल संताप॥
नहिं लालच बस लोभ बस नाहीं डर बस नाथ।
तजौ धरम बर दीजिये रहिये सदा मम साथ॥
जाके मन प्रभु तुम बसौ सो डर कासो खाय।
सिर जावै तो जाय प्रभु मेरो धरम न जाय॥
उठौं धर्मके काममे उठौं देशके काज।
दीन बन्धु तव नाम लै नाथ राखियो लाज॥

संतानकी प्रार्थना

आर्य संतानमेसे प्रत्येक युवतीको और युवाको जिनका विवाह हो गया है और जो चाहते हैं कि उनके संतान देशभक्त, वीर, धीर, विद्वान् और धर्ममे दृढ हो, उन्हें प्रतिदिन स्नानके उपरान्त सूर्यके सामने खडे होकर परमात्माका ध्यान कर नीचे लिखी प्रार्थना करनी चाहिये—

प्रार्थना

रवि शशि सिरजनहार प्रभु मैं बिनवत हौ तोहि।
पुत्र सूर्य सम तेज युत जग उपकारी होहि॥
होय पुत्र प्रभु राम सम अथवा कृष्ण समान।
वीर धीर बुध धर्म दृढ जगहित करै महान॥
जो पै पुत्री होय तो सीता सती समान।
अथवा सावित्री सदृस धर्म शक्ति गुन खान॥
रक्षा होवै धर्मकी बढ़ै जातिको मान।
देश पूर्ण गौरव लहै जय भारत संतान॥
मै दुर्बल अति दीन प्रभु पै तुव शक्ति अपार।
हरहु अशुभ शुभ दृढ करहु बिनवौ बारबार॥

जन्म-संस्कार

संतानका जन्म होते ही नालच्छेदनके पहले हर एक बच्चेके दोनो कानोमें तीन-तीन बार परमात्माका सबसे उत्तम नाम 'राम' इस महामन्त्रको कहकर उसको नीचे लिखे श्लोक या दोहोसे आशीर्वाद देना चाहिये और जबतक बच्चा स्वयं 'राम-राम' कहने न लगे, तबतक माताको नित्य एक बार ऐसा ही करना चाहिये—

रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यो हि राम प्रकीर्त्यते॥
तस्यैवांशोऽसि जीव त्वं सच्चिदानन्दरूपिण।
देहे निरामये दीर्घं वस धर्मे दृढो भव॥

× × × ×

थावर जंगम जीवमे घट-घट रमता राम।
सत चित आनँद घन प्रभु सब विधि पूरण काम॥
अंश उसीके जीव हो करो उसीसे नेह।
सदा रहो दृढ धर्म चिर बसो निरामय देह॥

मानव-जीवनमें संस्कारकी अनिवार्यता

[ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृतोपदेश]

फूलोमें जो स्थान सुगन्धका है, फलोमें जो स्थान मिठासका है, भोजनमें जो स्थान स्वादका है, ठीक वही स्थान जीवनमें सम्यक् संस्कारका है।

मानव अपने पूर्वजोंके जीवन और उदाहरणोंको देखकर भी अपना जीवन तदनुकूल नहीं बनाता और न उनके बताये हुए मार्गपर चलता है। शास्त्रमे वर्णित संस्कारोंकी प्रतिष्ठासे तथा यमो और नियमोका पालन करनेसे ही यह देश किसी समय इतना महान् था। इसके विपरीत आज उनकी अवहेलना कर लोग दिनानुदिन नीची स्थितिको प्राप्त कर रहे हैं। यह भलीभाँति स्पष्ट है।

किसी देशका आचार-विचार ही उस देशकी संस्कृति कहलाती है, परंतु आचार-विचार उसका बाह्यरूप है। उसका अन्तरङ्गरूप तो मानवका शेष प्रकृतिके साथ तादात्म्य है।

आजकल विद्वान् जिसे संस्कृति कहते हैं, वह तो सभ्यताका ही परिष्कृतरूप है। हमारे देशमे संस्कृति और संस्कारमे कोई भेद नहीं है। जिस प्रकार संस्कार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धिके साधन हैं, उसी प्रकार संस्कृति भी शरीर और मनकी शुद्धिद्वारा मनुष्यको अध्यात्ममे प्रतिष्ठित करती है। अत धर्मानुकूल जीवन-चर्याके लिये जब संस्कारोदय हो, तब मनुष्यको सच्चा भाग्योदय समझना चाहिये। आचार-व्यवहार, संस्कार और संस्कृतिमें गहरा तादात्म्य है। संस्कार-प्रतिष्ठा भगवत्प्रतिष्ठाके समतुल्य है।

[प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री 'मानस-किंकर']

संस्कारसे संस्कृतिका उद्भव

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषाका है। इसकी व्युत्पत्ति व्याकरणकी रीतिसे ऐसे होती है—सम् माने सँवारना और कृत, कृति माने जो कुछ हम करते हैं अर्थात् किसी भी वस्तु, कर्म या व्यक्तिको सँवारनेके लिये जो क्रिया होती है या कृतिको सँवारनेके लिये जो प्रक्रिया होती है उसको 'संस्कृति' कहते हैं। 'संस्कार' शब्द भी संस्कृत भाषाका है, यह भी सम् उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातुसे 'घञ्' प्रत्यय तथा सुट्के योगसे बनता है।

इसे इस तरह समझा जा सकता है—एक सज्जन खेतीके लिये अपना खेत खोद रहे थे। उसमें उनको एक हरा-हरा पत्थर मिला। उन्हें वह बहुत बढ़िया, बहुत सुन्दर लगा। उसको लेकर वे जौहरीके पास गये, उसे दिखाया। उसने कहा—अच्छा है और बीस रुपये देकर उनसे ले लिया। फिर, उसमें मिट्टी लगी हुई थी, उसे साफ किया। बेडोल था, सुडौल बनाया। पालिश करके चमकाया और उसको आभूषणमें धारण करनेयोग्य बना दिया। फिर उसका आभूषण बन गया और इस तरह उस बीस रुपयेके पन्नेकी कीमत पहले बीस हजार और फिर दो लाख हो गयी। इसको कहते हैं—संस्कार। यह बात एक जौहरीने स्वयं मुझे बतायी थी।

'संस्कार' शब्दका अर्थ हिन्दीमें सँवारना होता है। जैसे कोई पौधा हो—बेडोल हो तो उसकी छँटाई कर देते हैं, उसमें फूल-पत्ते ठीक न आते हों तो खाद दे देते हैं और उसके फल स्वादु न होते हों तो उसको स्वादु बनानेका प्रयास करते हैं। यह सब क्या हुआ कि यह सब पौधेका संस्कार हुआ। अतः सामान्यरूपसे किसी वस्तुको सँवारनेका नाम संस्कार होता है।

हमारे जितने भी शास्त्र हैं और इनमें गीता-शास्त्र भी सम्मिलित है—ये सब हमारे जीवनका संस्कार करनेके लिये हैं। यहाँतक कि उपनिषद् भी अविद्या-निवृत्तिके द्वारा हमारे ज्ञानका संस्कार ही करते हैं। वहाँ संस्कारमें गुणाधान नहीं होता, केवल दोषापनयन ही होता है—अविद्यारूपी जो दोष है, उसकी निवृत्ति ही ज्ञानकी सिद्धता है—ज्ञानमेंसे अज्ञान निकल जाना, यही उसकी सिद्धि है।

संस्कारके लिये अलग-अलग लोगोंका अलग-अलग मत है—वेदान्ती लोग इस बातपर जोर देते हैं कि केवल ज्ञानका संस्कार कर लिया जाय, योगी लोग इस बातपर ज्यादा जोर देते हैं कि विक्षेपको मिटा दिया जाय, उपासक लोग इस बातपर ज्यादा जोर देते हैं कि वासनाएँ मिटा दी जायँ और धार्मिक लोग इस बातपर ज्यादा बल देते हैं कि हमारे जीवनमें जो दुश्चरित्रता है, उसको मिटा दिया जाय।

यदि साधन-क्रमका निश्चय करना हो तो साधनका क्रम यह होता है कि वह नीचेसे ऊपरकी ओर ले जाय—द्रव्य-शुद्धि, भोग-शुद्धि, क्रिया-शुद्धि और वाक्-शुद्धि। हमारे घरमें जो धन आवे, वह शुद्ध हो, हम जो अपनी इन्द्रियोंके द्वारा भोग करें, वह शुद्ध हो, हम जो कर्म करें, वह शुद्ध हो और हम जो बोलें, वह भी शुद्ध हो। संस्कारकी यह प्रक्रिया जीवनमें सबसे पहले स्थूलरूपसे आती है।

संस्कार केवल पदार्थोंका ही नहीं होता, मनुष्योंका भी होता है। श्रीमनुजी महाराज कहते हैं कि मनुष्यमें अनेक प्रकारके विकार होते हैं—कुछ पुरानी परम्परासे आये हुए होते हैं, कुछ नाना-नानीसे, कुछ दादा-दादीसे, कुछ माँ-बापसे, कुछ पूर्वजन्मसे, कुछ गर्भावस्थामें माताके खान-पान, रोने-हँसनेसे। यानी कुछ विकार बीजमें और कुछ गर्भमें होते हैं और फिर जन्म लेनेके बाद भी खाना-पीना, सङ्ग-साथसे ही मनुष्यका जीवन बनता है। पर हमारी प्रणाली यह है कि ये विकार चाहे पूर्वजन्मसे आये हुए हों, चाहे नाना-नानी, दादा-दादी, माँ-बापसे आये हुए हों—इनको दूर करनेके लिये धार्मिक संस्कार करने चाहिये—

'बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।'

(मनु० २।२७)

संस्कारके द्वारा बीजगत और गर्भगत दोषोंका निवारण किया जाता है।

मनुस्मृतिके अनुसार संस्कारके तीन रूप होते हैं—

दोषापनयन, गुणाधान और हीनाङ्गपूर्ति। माने—अपने जीवनमे जो दोष हैं उनको दूर करनेके लिये, जो गुण नहीं हैं उनको लानेके लिये और जिस चीजकी कमी है उसको पूरा करनेके लिये। ये हमारी प्रत्येक क्रियाके साथ जुडे रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे जीवनसे दोषोको निकालनेके लिये, गुणोको लानेके लिये ओर जो कमी है उसको पूर्ण करनेके लिये सस्कारकी अपेक्षा होती है।

सस्कारोकी अनेक पद्धतियाँ हैं—सम्पूर्ण विश्वकी मानवताके लिये सस्कार, यूरोपीय सस्कार, एशियाई सस्कार, भारतीय सस्कार, उसमे भी उत्तर भारतीय सस्कार, दक्षिण-भारतीय सस्कार और इनके अलावा युग-भेदसे सस्कार जाति-भेदसे सस्कार और इनके अलावा अपने यहाँ ऐसे सस्कार भी माने जाते ह जो खगोलिक दृष्टिसे होते हैं कि किस व्यक्तिके साथ किस ग्रहका अधिक सम्बन्ध जुडता है या कि नहीं जुडता है—इसके लिये सस्कार। इस तरह हम देखते हैं कि हमारे यहाँ सस्कारकी अनेक पद्धतियाँ हैं और उसके अनुसार मनुष्यके शरीरको, उसके चरित्रको, उसकी विद्याको, उसकी बुद्धिको और उसके जीवनकी प्रणालीको सँवारनेके लिये जो क्रिया-कलाप किये जाते हैं—उन सबको सस्कार, सस्कृति कहते हैं। इसका विस्तृत वर्णन हमारे सनातनधर्ममे है—कहीं विधिके द्वारा कहीं निषेधके द्वारा और कहीं उपेक्षाके द्वारा।

इसके भी अनेक भेद होते हैं, जैसे—आपके घरमे चावल नहीं हैं तो खेती करके पैदा कर लीजिये, यदि उनमे कुछ गदगी है तो उसको साफ कर लीजिये और यदि कच्चे हैं तो उनको पका लीजिये। तो—बना लेना, पा लेना स्वच्छ कर लेना और परिपक्व कर लेना—ये सस्कार-सस्कृतिके भेद हैं और यह मैं केवल चावलके लिये ही नहीं कह रहा हूँ, समग्र जीवनके लिये कह रहा हूँ। सस्कृतिका यह रूप किस दृष्टिकोणसे है, उसका यदि आप पहले मनन करके, जो समर्थक दृष्टिकोण है, उसको नहीं समझ लेंगे और हँसी-खेलकी वस्तु समझकर उडा देगे तो वह आपके लिये उपकारक नहीं और हानिकारक हो जायगा। इसलिये प्रत्येक क्रियामे, परम्परामें सनातनधर्ममें जो उत्कृष्ट दृष्टि है—उसको समझनका प्रयास करना चाहिये।

हमारी सस्कृतिके अनुसार विवाह एक सस्कार है। यह भोग नहीं है, यह रजिस्ट्री भी नहीं है। यह एक धर्म-सस्कार है कि एक पत्नीके जीवनमे एक ही पति रहे, एक ही पुरुषके साथ उसका सम्बन्ध रहे, एक पतिके साथ एक ही पत्नी रहे और उसीके साथ उसका सम्बन्ध रहे। विवाहके द्वारा, देवताके समक्ष, अग्निकी परिक्रमा करके, मन्त्र पढकर दोनोके हृदयमे यह सस्कार डाला जाता है कि यह मेरा पति है और यह मेरी पत्नी है। जब मन्त्र पढते हैं कि हमारा और तुम्हारा हृदय एक है, हमारे और तुम्हारे विचार एक हैं और हम जीवनभर एक-दूसरेसे मिलकर चलेगे—'**मया पत्या जरदष्टिर्यथास**' (ऋक्० १०। ८५। ३६)। हम एक साथ बूढे हो—तो साथ रहनेकी भी कामना ओर दीर्घायु, वृद्धावस्थाकी भी कामना—ये सब कामनाएँ विवाह-सस्कारके द्वारा मनमे भर दी जाती हैं। विवाह-सस्कार पूरी विधिके साथ होना चाहिये, इस सम्बन्धमे हम एक घटना बताते हैं—

पहले जब हम गृहस्थाश्रममें रहते थे, तब विवाह करानेके लिये जाया करते थे। हमको विवाह-पद्धति कण्ठस्थ थी। हमने सैकडा विवाह कराये होगे। जब विवाह करानेके लिये जाते, तब लोग हमसे कहते—'महाराज! विवाह जरा जल्दी-जल्दी करा देना, क्योकि लोगोको खिलानेमे बडी देर हो रही है।' अरे बाबा! विवाहके लिये ही तो सारे बाराती आये हैं। तुम विवाह ही बिगाड दोगे तो फिर बारातको खिलानेका क्या मजा है? विवाह-सस्कार तो ठीक-ठीक होना चाहिये। विवाह-सस्कार तो बहुत बढिया चीज है। है तो यह पति-पत्नीका सम्बन्ध, परतु यह भोगसे मुक्तिका तरीका है। विवाह भोग नहीं अपितु योग है। यह वर-वधूका सम्बन्ध आसक्तिमे भक्ति है। यह सिमटनेमे विस्तार है। बडा विलक्षण है। आजकल लोग कायदेसे तो कोई बात सीखते नहीं हैं। बडी हडबडी रहती है। जल्दी सुनाओ, जल्दी सुनाओ। जो लोग जल्दी करते हैं, वे सीख नहीं पाते। परिणाम आपके सामने ही है।

और-तो-और! पहले तो गर्भाधानके दिन भी सस्कार हुआ करता था, मन्त्र पढे जाते थे हवन होता था। काशीमें महामहोपाध्याय श्रीलक्ष्मण शास्त्रीके यहाँ हमने देखा था।

किसी कामसे में वहाँ गया था। मैंने देखा—खूब आनन्द हो रहा है, मङ्गल गाया जा रहा है। पूछा क्या है ? तो पता चला कि श्रीराजेश्वर शास्त्रीका विवाह हुआ है और आज गर्भाधान-सस्कार है। फिर दूसरे-तीसरे महीनेमे पुसवन-सस्कार होता है ताकि पुत्रकी उत्पत्ति हो और सातवे महीनेमें सीमन्तोन्नयन-सस्कार होता है, जिसमे पति पत्नीकी पूरी सेवा करके—उसके सिरमे तेल लगाकर, कघी कर उसे आश्वस्त करता है कि जब तुम्हारे बच्चा होनेका समय आयेगा और तुम स्वय अपना काम करनेयोग्य नहीं रह जाओगी, तब मैं तुम्हे बिलकुल ठीक-ठाक रखूँगा।

बालकका जन्म होनेपर जातकर्म-सस्कार होता है। मन्त्र पढे जाते हैं—

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरद शतम्॥

(पार०गृह्यसूत्र १।१८।२)

बेटा! तुम मेरे एक-एक अङ्गके रससे पैदा हुए हो, मेरे हृदयके पिण्ड हो। मेरे ही हृदयके विचार, आचार, सस्कार तुम्हारे जीवनमे आये हैं। मेरे ही आत्माका नाम अब पुत्र रखा जा रहा है। तुम्हारे रूपमे मैं ही प्रकट हुआ हूँ। तुम सौ वर्षतक जीते रहना।

इसके बाद नामकरण-सस्कार होता है। पूर्वजोंके नामपर बालकका नाम रखा जाता है, जैसे—भरत। यदि भरत नाम रखा जायगा तो जब वह बडा होगा और पता लगायेगा कि मेरा नाम भरत क्यो रखा गया तो उसको भरतकी कथा सुननी पडेगी कि ऋषभदेवके पुत्र थे भरत। कितना बडा उनका साम्राज्य था, कैसे लोकोपकारी राजा थे अथवा श्रीरामचन्द्रजीके भाईका नाम भरत था, जो अपने बडे भाईसे कितना प्रेम करते थे, अपने छोटे भाईसे कितना प्रेम करते थे या दुष्यन्तके पुत्रका नाम भरत था और वह इतना वीर था कि उसने बाल्यावस्थामे ही सिहको बाँधकर रख लिया था और उसने पचासो यज्ञ-याग किये थे। इसके अलावा नामकरण-सस्कार मास, सवत्सर, नक्षत्र एव तिथिके हिसाबसे भी होता है।

इस तरह ये सस्कार आगे चलकर मनुष्यके जीवनमें अपना प्रभाव दिखाते हैं। इन्हींको अपनी शास्त्रीय रीतिसे, सनातन-धर्मकी रीतिसे 'सस्कृति' कहते हैं। इसमे देशका प्रभाव, कालका प्रभाव, परम्पराका प्रभाव पूर्वजन्मका प्रभाव, विद्याका प्रभाव, कर्मका प्रभाव और प्रज्ञाका प्रभाव—सब आता है और किसी प्रकारकी सकीर्णता शास्त्रीय दृष्टिसे नहीं रहती है।

सारे सस्कारोका जो मूल है वह हमारे इसी साढे तीन हाथके शरीरमें है—पाँवसे लेकर सिरतक जो यह हमारा शरीर है—इसीमे धर्म-सस्कारका मूल है, उपासना-सस्कारका मूल है, योग-सस्कारका मूल है, यहींसे सारा-का-सारा विज्ञान निकलता है।

उपासना हमको तैजस-आत्मासे एक करती है, योग हमको प्राज्ञ-ईश्वरसे एक करता है। जहाँ योगमे स्थिति है, ऐश्वर्यमे स्थिति है, वहाँ परम-प्रियतम परमेश्वरमे अपनी वासनाओको लीन करनेके लिये उपासनाकी,- भक्तिकी स्थिति है और अविद्याका सस्कार करनेके लिये अथवा अविद्याका निवारण करनेके लिये तत्त्वज्ञान है।

[प्रेषक—श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी]

मृत्युसे भय क्यों ?

भगवान्‌का आश्रय लेनेवाला भयमुक्त हो जाता है।

मृत्युको सुधारना हो तो प्रत्येक क्षणको सुधारो।

वासना ही पूर्वजन्मका कारण होती है।

ध्यान करते समय मन एकाग्र न हो तो पुन -पुन भगवान्‌के नामका चिन्तन करो।

मानव-जीवनकी अन्तिम परीक्षा मृत्यु है। जिसका जीवन सुधरा हुआ है, उसकी मृत्यु भी सुधर जाती है। मृत्यु तब सुधरती है, जब प्रत्येक क्षण सुधरता है। जीवन उसका सुधरता है, जिसका समय सुधरा हुआ है। समय उसीका सुधरता है, जो समयका मूल्य जानता है, इसलिये क्षण-क्षण और कण-कणका सदुपयोग करो।

गृहस्थाश्रमके संस्कार

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

गृहस्थधर्म भोगके लिये नहीं है, साधनाके लिये है। कर्म-वासनाएँ अनादि हैं। मिथुनसुखका अनुभव करनेकी प्राणिमात्रकी इच्छा होती हे। पुरुषोमे अपवाद भी होते हैं, किंतु अपवादोंकी नियमोंमें गणना नहीं होती। इसीलिये प्रत्येक व्यक्तिका गृहस्थी बनना परम धर्म है। जिसका विवाह नहीं हुआ, जिसने पुत्रका मुख नहीं देखा उसके पितर पानीके बिना छटपटाते रहते हैं और उसे भी नरकोंमें जाना पडता है। महाभारतमें इस विषयका एक बडा ही शिक्षाप्रद इतिहास वर्णित है—

जरत्कारु नामक एक ऋषि थे। ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त करके भी उन्होंने विवाह नहीं किया था। वे सदा निराहार रहकर तपस्यामें तत्पर रहते थे। निद्राको भी उन्होंने जीत लिया था। तपस्वियोंका-सा उनका अत्यन्त कृश शरीर था। वे तीर्थयात्राके उद्देश्यसे पृथ्वीपर विचरण करते रहते थे। एक गाँवमे एक दिन ही निवाह करते। एक दिन घूमते-घूमते उन्होंने एक अन्धे कुएँको देखा। उसमें लम्बी-लम्बी घास थी। उस घासको पकडे कुछ दुर्बल मनुष्य उलटे लटक रहे थे। चूहे उस खस घासकी जडोको खोद रहे थे।

महामुनि जरत्कारुको उनपर बडी दया आयी और उन्होंने पूछा—'आपलोग कौन हैं और यहाँ ऐसे उलटे क्या लटक रहे हैं?'

उन्होंने कहा—'हम यायावर नामके तपस्वी हैं, हमारा वंश अब लुप्त ही होना चाहता है। जिस दिन हमारा वंश लुप्त हो जायगा, उसी दिन हम नीचे गिर पडेंगे।'

महामुनि जरत्कारुने पूछा—'आपके वंशमें कोई है क्या?'

निराशाके स्वरमें वे पितरगण बोले—'हमारे वंशमें अब केवल एक ही व्यक्ति रह गया है, वह भी नहींके बराबर है। वह तपस्वी हो गया है और उसका नाम जरत्कारु है। उसने तपस्याके लोभसे हमें संकटमें डाल दिया है, वह वंश चलानेका प्रयत्न ही नहीं करता। उसके आगे हमारा वंश नष्ट हो जायगा, फिर हम बिना पिण्ड-जलके नीचे गिर जायँगे। वह भी नरकमें जायगा।' पितरोकी बात सुनकर जरत्कारुको बडा शोक हुआ। हाथ जोडकर उन्होने कहा—'पितरो! मेरा ही नाम जरत्कारु है, आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं?'

पितरोंने कहा—'बेटा! तुम हमारा उद्धार करना चाहते हो तो अपना विवाह करके वंश चलानेका प्रयत्न करो।'

इसपर जरत्कारु मुनिने कहा—'अच्छी बात हे, जब आपलोगोंकी ऐसी आज्ञा है तो मैं विवाह कर लूँगा, किंतु दो बात होंगी तभी मैं विवाह करूँगा।'

पितरोने कहा—'कौन-सी दो बात?'

मुनिने कहा—'एक तो जो लडकी हो, वह मेरे ही नामवाली हो और दूसरी, वह लडकी भिक्षारूपमें मुझे मिल जाय तो मैं उसके साथ विवाह करके संतान उत्पन्न करूँगा।'

जरत्कारु मुनिको वासुकि नागकी बहन मिल गयी,

उसका भी नाम 'जरत्कारु' था। वासुकिने मुनिको भिक्षामें उसे दे दिया। उसीसे मुनिको 'आस्तीक' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्होंने जनमेजयके सर्पयज्ञमें सर्पोंकी रक्षा की थी। जरत्कारु मुनिने वासुकिसे ठहराव करा लिया कि एक तो मैं इसका भरण-पोषण नहीं करूँगा, दूसरा, जहाँ इसने मेरी आज्ञाके विरुद्ध कार्य किया, वहीं इसे त्याग दूँगा। वासुकिको तो अपना प्रयोजन सिद्ध करना था। उसने सब स्वीकार कर लिया। आस्तीक जब गर्भमें ही थे, तभी मुनि एक छोटी-सी बातपर कुपित होकर सदाके लिये वन चले गये। सारांश यह है कि जिसे स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा हो, उसे विवाह अवश्य करना चाहिये।

विवाहके अनन्तर गृहस्थ आश्रममें किस प्रकारसे रहना चाहिये इस सम्बन्धमे सूतजी कहते हैं—'मुनियो! भगवान्

श्रीकृष्ण उद्धवजीको गृहस्थाके धर्म बताते हुए कहते हैं— उद्धव! गृहस्थधर्म भोगनेके लिये नहीं है, त्यागकी शिक्षा लेनेके लिये है। ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त करके द्विजाति-बालक गुरुको दक्षिणा दे, तब ब्रह्मचर्यव्रतकी समाप्तिका स्नान करे। उस स्नानके करते ही वह स्नातक हो जाता है। स्नातक होकर वह अपने घर आये और फिर अपने सदृश कुलकी लडकीसे यथाविधि विवाह करे। उसी कुलकी लडकीके साथ विवाह करना चाहिये, जो अपने वर्णकी हो। जिस कुलके लोगोके आचार-विचार शुद्ध न हो, जो सर्वभक्षी हो, जिनके यहाँ वैदिक मर्यादा न मानी जाती हो वहाँ विवाह न करे, जो कन्या सदाचारी कुलकी, सुन्दर, सुशील, मधुरभाषिणी तथा गुणवती हो, उसके साथ विवाह करे।

सभी गृहस्थोको, जो आचार-विचारसे रहते हैं, अपने घरमे भोजन बनाते हैं, उनको नित्य पाँच प्रकारके पाप स्वाभाविक ही लगते हैं—चूल्हेमे, झाड़ूमे, चक्कीमे, ओखली-मूसलमे तथा पानीके रखनेके स्थानमें।[1] कितना भी बचाओ, हिसा हो ही जाती है। रोटी बना रहे हैं लकडीम ही कोई जीव-जन्तु चला गया कण्डेम ही चला गया। कहाँ-तक देखा जा सकता है? भोजनके समय कोई जीव-जन्तु मर गया। झाड़ू दे रहे हैं, उसीमें बहुत-से जीव मर गये। अन्न पीस रहे हैं, उसमें ही बहुत-से घुन आदि जीव पिस गये। बर्तन मल रहे हैं, धान कूट रहे हैं, कोई छिपा हुआ जीव रह गया, रगड लगनेसे मर गया। बर्तन रखनेके स्थानपर जीव आ जाते हैं, पानी लेते समय निकालते समय या पानीम ही जीवोंकी हिसा हो जाती है इन हिसाओसे कोई कितना भी बचना चाहे, बच नहीं सकता।

इन पाँच दोषोंकी निवृत्तिके लिये पाँच महायज्ञ नित्य करने चाहिये। वे पाँच यज्ञ हैं—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ। इन पाँचों यज्ञोंके करनेसे उपर्युक्त पाँच दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है।[2]

'वेदका अध्ययन-अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ तर्पण-श्राद्ध पितृयज्ञ, नित्य अग्निहोत्र करना देवयज्ञ बलिवैश्वदेव-कर्मान्तर्गत गोग्रास कुत्ता आदि भूतोंके लिये अन्न निकाल देना भूतयज्ञ और घरमें जो भी अतिथि आ जाय, उसे सत्कारपूर्वक भोजन करा देना अतिथियज्ञ है। इन कार्योंका यथाशक्ति नित्य करना चाहिये।

जो गृहस्थ अपने ही लिये भोजन बनाकर बिना भगवान्को निवेदित किये खा लेता है, वह मानो पापको ही खाता है। इसलिये गृहस्थको अपने ही निमित्त कभी भोजन नहीं बनाना चाहिये। जहाँतक हो, हिसासे सदा बचते रहना चाहिये। बिना प्रयोजन वृक्षाकी डालीको काटना नहीं चाहिये।

गृहस्थको ऋतुकालके अतिरिक्त कभी भार्यागमन नहीं करना चाहिये। ऋतुकालमे भी धर्मभावनासे गमन करे। अपनी ही पत्नीमे सदा सतुष्ट रहना चाहिये। जो दूसराकी पत्नी हो, उन्हे माताके समान, जो बच्ची हा उन्ह अपनी पुत्रीके समान और जो बडी हों, उन्हें बहिनके समान मानना चाहिये।

यदि अपने घरम अतिथि आ जाय तो उसकी यथाशक्ति पूजा करे। अतिथिकी कोई जाति नहीं—ब्राह्मण हो, चाण्डाल हो, जो भी अपने घर अन्नकी इच्छासे आया हो, उसे अन्न अवश्य देना चाहिये। ब्रह्मचारी-सन्यासी जो भोजन नहीं बनाते, जो गृहस्थोंके ही ऊपर निर्भर रहते हैं, उन्हें तो सबसे पहले भोजन देना चाहिये। यज्ञशेष तथा अपने पोष्यवर्गके भोजन कर लेनेपर जो बचे, उसीको सद्गृहस्थको खाना चाहिये। गृहस्थका सबके प्रति कर्तव्य होता है—

(१) माता-पिताके प्रति—माता-पिता जिन्होने हमारे शरीरको उत्पन्न किया है, वे हमारे जनक हैं, प्रत्यक्ष देवता हैं, जङ्गमतीर्थ हैं, उनकी प्राणपणसे सेवा करे। उनकी सब आज्ञाओका पालन करे। उन्हे भोजन कराकर तब भोजन करे। उनसे सदा मधुर भाषण करे। अपनी स्त्रीसे भी ऐसा ही कराये।

(२) आचार्य पुरोहितके प्रति—ये ज्ञानदाता गुरु हैं। समय-समयपर इनकी पूजा करे। इन्हें भोजन कराये। धर्मसम्बन्धी प्रश्न पूछे। धार्मिक कृत्योंको इनके द्वारा कराये। यथासाध्य-यथासमय इन्ह दान-दक्षिणासे सतुष्ट भी करे।

(३) जातिवालाके प्रति—जातिवाले अपनी जातिम किसीको बढता देखत हैं तो उससे आशा लगाय रहते हैं इसलिये यथाशक्ति जातिवालोंकी सहायता करे उनके

१-पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्कर। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥ (मनुस्मृति ३।६८)
२-तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभि। पञ्च क्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥ (मनुस्मृति ३।६९)

हर्षमे, शोकमें सम्मिलित हो। जातिमे किसीके विवाह हो तो उनके यहाँ जाय। तन-मन-धनसे, जैसे भी जितनी भी सहायता दे सके, दे। उनके यहाँ कोई बीमार हो, मर गया हो तो भी सहानुभूति प्रदर्शित करने जाय।

(४) भाइयोके प्रति—जो अपने बडे भाई हों, उन्हे पिताके समान और भाभीको माताके समान समझे। छोटे भाइयोंको पुत्रके समान, उनकी पत्नियोंको पुत्रवधूके समान समझे। कदाचित् भाई-भाईमें बँटवारा हो तो उनसे झगडा न करे। यदि भाई अधिक ही ले ले तो कोई बात नहीं, है तो भाई ही। जहाँतक हो भाई-भाईमे कलह न होने पावे, इसे गृहस्थ सदा बचाता रहे। भाई-भाईकी लडाई अच्छी नहीं होती।

(५) बहनोके प्रति कर्तव्य—बहन दयाकी पात्री है, सदा उसके प्रति दयाके भाव रखे। उत्सव-पर्वोपर उसे सम्मानके साथ बुलाये और यथाशक्ति दान-मानसे उसका सदा सत्कार करता रहे।

(६) पत्नीके प्रति कर्तव्य—आर्य धर्मशास्त्रमें स्त्रीको अर्धाङ्गिनी बताया गया है। स्त्री अपनी आत्मा ही है, आधा शरीर है। पुरुष स्वय ही स्त्रीके गर्भसे पुत्ररूपमे पुन उत्पन्न होता है, अत उसकी 'जाया' सज्ञा है, वह घरकी स्वामिनी है। जो भी कार्य करे, उसकी सम्मतिसे करे। धर्मके जितने इष्टापूर्त कर्म हैं, वे पत्नीके बिना नहीं हो सकते, इसीलिये उसका नाम सहधर्मिणी है। धर्मकी कामनावाले सदा स्त्रीका सम्मान करे। वह गृहकी स्वामिनी होनेसे गृहिणी कहलाती है। गृहिणीके बिना न तो घर है न गृहस्थ-धर्म ही है। गृहस्थ-धर्मकी मूल पत्नी है। जो सदा दान, मान, सम्मानसे अपनी पत्नीको प्रसन्न रखता है, उसे सभी शुभ कर्मोंके फल स्वत ही प्राप्त हो जाते हैं और देवता-पितर उसपर प्रसन्न होते हैं। अत गृहस्थका मुख्य कर्तव्य यह है कि अपनी आत्माकी भाँति प्रत्येक कार्यमें पत्नीका सदा ध्यान रखे।

(७) पुत्रोके प्रति कर्तव्य—आत्मा ही पुत्र बनकर उत्पन्न होता है। अत अपनेमें और पुत्रामे कोई भेद नहीं। पिताके पश्चात् उसकी सम्पूर्ण सम्पत्तिके अधिकारी पुत्र ही होते हैं। अत पुत्रोंका पालन सदा कर्तव्य-बुद्धिसे करे। सदा यही कामना करे—मेरे पुत्र ससारमे सर्वश्रेष्ठ हों। मनुष्य सबसे पराजित होनेमे दु खी होता है, किंतु पुत्रसे पराजित होनेमे उसे परम प्रसन्नता होती है। पुत्रोंमे किसी प्रकारका भेदभाव न करे। जो बुद्धिहीन हो, अपङ्ग हों या अन्य प्रकारसे असमर्थ हो, उनकी भी रक्षाका प्रबन्ध करे। पुत्राको सब प्रकारसे योग्य बनाना पिताका कर्तव्य है।

(८) पुत्रियाके प्रति कर्तव्य—पुत्री गौके समान पूजनीया और दयाकी पात्री है। पुत्रीका योग्य वरको दान करना सैकडो यज्ञोके समान है। पुत्रीके पुत्र अपने नानाके वशजोको जलदान देते हैं। पुत्रीका अधिकार जीवनभर लेनेका होता है। विवाहके समय उसे भलीभाँति वस्त्राभूषणोंसे अलकृत करके तथा समस्त गृहस्थोपयोगी वस्तुओको शक्तिके अनुसार देकर विदा करे। पर्वोपर उसके यहाँ कुछ-न-कुछ सदा भेजता रहे।

(९) सम्बन्धियोके प्रति कर्तव्य—सम्बन्धी दो प्रकारके होते हैं—एक तो स्वय आप जिनके लिये मान्य हैं, जैसे अपने ससुरालवाले, ननसालवाले। उनके यहाँ समय-समयपर जाय। वे जो प्रेमसे दें उसे सदा स्वीकार करे। दूसरे—जो अपने मान्य होते हैं, जिनके यहाँ अपनी बुआ, बहन, पुत्री या भतीजी आदि विवाही हों। उन मान्य सम्बन्धियोका सदा सम्मान करे, उन्हे पर्वोपर स्मरण करे और यथाशक्ति दे। सम्बन्धियोके सम्बन्धियोसे भी प्रेमका सम्बन्ध रखे।

(१०) सर्वभूतोके प्रति कर्तव्य—चींटीसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त सभी जीव गृहस्थसे कुछ-न-कुछ आशा रखते हैं। अत यथाशक्ति सबका सम्मान करे। कोई भी घरपर भूखा आ जाय, उसका अन्नसे, जलसे, आसनसे और कुछ न हो तो मधुर वाणीसे ही सत्कार करे। यह कभी न सोचे कि हम तो निर्धन हैं, हम किसीका क्या सत्कार कर सकते हैं। बैठनेको भूमि, पिलानेको पानी और हृदयको हर्षित करानेके लिये मधुर वाणी ससारमे किसके पास नहीं है। अतिथि इन्हींसे परम सतुष्ट होता है। सभीका यथाशक्ति यथासामर्थ्य सदा सत्कार करे। अपने द्वारसे कोई अपूजित—निराश होकर न लौटने पाये। चींटियाको भी कुछ अन्न देवे। कुत्तोको भी डाल दे। जो खायँ उसीमेसे गोग्रास निकाल दे। साराश यह है कि सदा देनेकी, दूसरोकी सेवा करनेकी चेष्टा करता रहे।

अन्य नियम—१-गृहस्थ जो भी कर्म करे, भगवान्की सेवा समझकर ही करे। मनमे यही सोच ले—मेरे इस कार्यसे सर्वान्तर्यामी प्रभु प्रसन्न होगे।

२-भागवती कथाओंको सदा महापुरुषोंके मुखसे नियमपूर्वक सुना करे। यदि कोई सुनानेवाला न हो तो स्वय ही पढे। वह दिन व्यर्थ समझे, जिस दिन भगवान्‌की और भक्तोंकी कथाएँ सुननेको न मिलें।

३-इस बातको सदा विचारता रहे कि ये स्त्री, पुत्र, घर, परिवार मेरे नहीं हैं। भगवान्‌ने मुझे निमित्त बना दिया है। यही सोचकर उनमे अधिक आसक्ति न रखे। केवल प्रयोजनभर उनसे सम्बन्ध रखे। भीतरसे विरक्त बना रहे।

४-जो भी धन यज्ञ करानेसे, पढानेसे खेतीसे व्यापारसे, परिश्रमसे या किसी भी कार्यसे आये, उस सब दान-पुण्यमे और गृहस्थीके काममें ही लगा दे। जितना पेटमे चला जाय उतना तो अपना है और सब तो जिस निमित्त आता है, चला जाता है। उस धनमे अधिक ममता न करे।

५-स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त न हो। स्त्रियोमें अत्यन्त आसक्ति होनेसे कामवासना बढती है। ससारमें कामवासनाकी अभिवृद्धिसे बढकर दूसरा कोई पाप नहीं है। कामी जो चाहे सो पाप कर सकता है। इसीलिये एकान्तमें कामवासनासे स्त्रीके अङ्गोका चिन्तन न करके सदा परमात्माकी महिमाका चिन्तन करते रहना चाहिये।

गृहस्थ जो भी हवन, यज्ञ, श्राद्ध तर्पण, बलिवैश्वदेव, अन्नदान, अतिथिपूजन आदि करे, सब प्रभुप्रीत्यर्थ ही करे। ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य तथा चराचर समस्त जीवोमे भगवान्‌को मानकर भगवद्भावनासे उनका आदर-सत्कार करे। जो अपने आश्रित हो, उनका सदा ध्यान रखे, उन्हे किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये। न्यायसे उपार्जित धनसे ही गृहस्थीके समस्त कार्य चलाये। जो भी प्रारब्धवश प्राप्त हो जाय, उसे प्रभुप्रसाद समझकर उसीमे सन्तुष्ट हो जाय।

घरमे रहे तो समझे—हम धर्मशालामे ठहर गये हैं। कुटुम्बी भी आकर इसमे ठहर गये हैं, हमारा इसम कुछ भी नहीं है। इस प्रकार निरन्तर भगवान्‌का पूजन-चिन्तन करता हुआ गृहस्थाश्रममे रहे। भगवान्‌के भजनमे सभीका समान अधिकार हे और सभीको समान फल मिलता है।

[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]

स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरका सुधार

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

सत्सङ्गका अर्थ है—सत्यका सङ्ग करना, यानी अपने जीवनमें सत्यनिष्ठाको धारण करना अर्थात् सत्यका व्रत लेना। सत्यका सङ्ग करनेके लिये साधकको पहले तो श्रमरहित होना पडेगा।

शरीरसे काम न करनेका नाम श्रमरहित होना नहीं है। श्रमरहित होनेका अर्थ है कि सङ्कल्परहित होना। करने और पानेके जो सङ्कल्प हैं, यही साधकके जीवनम श्रम है।

मनुष्य करने और पानेमें ही उलझा रहता है। इसलिये सङ्कल्परहित होना बहुत जरूरी बात है। प्रश्न होता है कि हम श्रमरहित कैसे बनें?

श्रमरहित होनेका यह उपाय है—जो काम करने-लायक हो उसको फलासक्ति छोडकर सही ढगसे पूरा करके रागरहित हो जायँ और पानेका लालच छोडकर चाहरहित हो जायँ और करनेकी रुचिका भी त्याग करके कर्तृत्वके अभिमानसे रहित हो जायँ।

ये तीनों बातें चाहे तो कर्तव्यपरायण होकर कर लें चाहे असङ्ग होकर कर ले और चाहे भगवान्‌की शरण होकर कर ले। इन तीनो बातोंके होनेपर ही मनुष्य श्रमरहित हो सकता है।

श्रमरहित होनेपर ही सत्यका सङ्ग होता है और तभी सत्यकी प्राप्ति होती है। यही मानव-जीवनका उद्देश्य है।

साधन सभी अवस्थाओंम किया जा सकता है। जो परिस्थितिविशेषकी अपेक्षा रखता है, उसको तो साधन ही नहीं कह सकते।

शरीरसे काम कर देने तथा वस्तु दे देनेका नाम ही सेवा नहीं है। सेवा तो हृदयका भाव है, जो हर परिस्थितिमें मानव भली प्रकार कर सकता है।

सेवाका मूल-मन्त्र यह है कि जो हमको मिला है, वह मेरा नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है। यहाँसे सेवाका आरम्भ होता है।

अपनेको जो मिला है उसको पर-सेवाम लगा देना सेवा है। सबसे बडी सेवा तो अपनेको सदाचारी

और सयमी बना लेना है अथवा किसीको बुरा न मानना और किसीका बुरा नहीं चाहना है, अथवा सुखीको देखकर प्रसन्न और दु खीको देखकर करुणित होना है।

अपना सुधार कर लेना ही सच्ची सेवा है। जिसने अपना सुधार कर लिया, उसको सारे विश्वकी पूरी सेवासे उत्पन्न होनेवाले फलकी प्राप्ति होती है।

अपना सुधार क्या है? शरीरको श्रमशील और सदाचारी बना लेना—स्थूल शरीरका सुधार है।

मनको सयमी और सङ्कल्परहित बना लेना बुद्धिको विवेकवती तथा इन्द्रियज्ञानपर विजयी बना लेना, चित्तको अनुरागी और व्यर्थ चिन्तनसे रहित तथा अहको सब प्रकारके अभिमानसे रहित बना लेना—सूक्ष्म शरीरका सुधार है।

सर्वप्रकारकी वासनाओका त्याग करके असङ्ग हो जाना कारण शरीरका सुधार है।

इस प्रकार जिसने अपने तीनों शरीरोका सुधार कर लिया, उसको सारे विश्वकी सेवाका फल मिलता है।

उसके शरीरके परमाणुओंद्वारा सारे विश्वका हित होता है और सबका हित करना तथा चाहना ही सबसे उत्तम सेवा है।

जो दीख रहा है, वह मेरा नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है—यह भजनका मूल मन्त्र है।

सेवा और भजन—दोनोंसे ही प्रेमकी प्राप्ति होती है।

~~o~~

आर्य-सस्कृतिके संस्कार

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी)

आर्यजातिमें १६ सस्कारोका महत्त्व सुप्रसिद्ध है। भारतीय सनातनधर्मकी यह मान्यता है कि एक बार माताके गर्भसे जन्म होता है और दूसरा जन्म होता है इन सस्कारोंसे। इसी आधारपर वैदिक सस्कार जिसक हुए हो, उसे द्विज अर्थात् दो बार जन्म लेनेवाला कहा जाता है। ये सस्कार हिन्दूजातिकी एक बडी विशेषताके रूपमें माने गये हैं। यहाँ सस्कारोंके विज्ञानपर कुछ विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

सस्कारोम दो प्रकारकी वस्तुएँ देखनेमे आती हैं—प्राकृत एव सस्कृत। प्रकृतिने जिस रूपमें जिस वस्तुको पैदा किया, वह उसी रूपम यदि बनी रहे तो उसे प्राकृत वस्तु कहेगे, जैसे—पर्वत, जगलके वृक्ष, नदी आदि, किंतु प्रकृतिके द्वारा पैदा की हुई वस्तुका अपने उपयोगमे लानेके लिये जब हम सुधार कर लेते हैं, तब उस सुधरी हुई वस्तुको सस्कृत कहा जाता है। वह सुधार ही सस्कार है, जो कि तीन प्रकारसे होता है—१-दोपमार्जन, २-अतिशयाधान और ३-हीनाङ्गपूर्ति। मनुष्यम उपयुक्त गुण लाकर उसे समाजके लिये पूर्ण उपयोगी बना देना ही इन सस्कारोका उद्देश्य रहा है।

जिस प्रकार अन्न कपास, लोहा आदि अपने उत्पत्तिस्थानके दोप अपने साथ लाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी उत्पादक सामग्री या उत्पत्तिस्थानके दोपोसे अत्यन्त दूपित रहता है। उन दोपाको हटाना पहले आवश्यक है। उसीके लिये जन्म क्या, गर्भमें आते ही उनके सस्कारोका आरम्भ हो जाता है। स्मृतिकाराने स्पष्ट लिखा है कि इन सस्कारोके द्वारा बीज और गर्भके दोप दूर किये जाते हैं—**'बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥'** (मनु० २। २७), **'एवमेन शम याति बीजगर्भसमुद्भवम्'** (याज्ञवल्क्य)। सस्कारोंके सकल्पमें भी बोला जाता है कि **'बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा परमेश्वरप्रीत्यर्थमित्यादि।'** एनस् शब्द पाप वा दोपका वाचक है।

यो तो सस्काराकी बहुत बडी सख्या भी धर्मशास्त्रोंमें मिलती है। गौतमसूत्रके ८वें अध्यायमे अडतालीस सस्कार लिखे गये हैं—**'अष्टचत्वारिंशता सस्कारै सस्कृत '** इत्यादि। जैसे—(१) गर्भाधान, (२) पुसवन (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) अन्नप्राशन, (७) चौल, (८) उपनयन, (९—१२) चार वेदव्रत (क-महानाम्नीव्रत ख-उपनिपद्व्रत, ग-महाव्रत और घ-गोदान), (१३) स्नान, (१४) विवाह (१५—१९) पञ्च महायज्ञ (क-ब्रह्मयज्ञ, ख-देवयज्ञ ग-पितृयज्ञ,

घ-भूतयज्ञ और ड-मनुष्ययज्ञ), (२०—२६) सप्त पाकयज्ञ (क-अष्टका, ख-पार्वण, ग-श्राद्ध, घ-श्रावणी, ड-आग्रहायणी, च-चैत्री और छ-आश्वयुजी), (२७—३३) सप्त हविर्यज्ञ (क-अग्न्याधान, ख-अग्निहोत्र, ग-दर्शपूर्णमास घ-चातुर्मास्य ड-आग्रायणेष्टि, च-निरूढपशुबन्ध और छ-सौत्रामणी), (३४—४०) सप्त सोमयज्ञ (क-अग्निष्टोम, ख-अत्यग्निष्टोम, ग-उक्थ्य घ-षोडशी ड-वाजपेय च-अतिरात्र और छ-आप्तोर्याम), (४१) दया (४२) क्षमा, (४३) अनसूया, (४४) शौच (४५) अनायास, (४६) मगल (४७) अकार्पण्य और (४८) अस्पृहा। सुमन्तुने पचीस सस्कार लिखे हैं, किंतु इनके द्वारा निर्दिष्ट अधिकतर सस्कार अतिशयाधानरूप हैं। उन्हे दैव-सस्कार कहा गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि देवता बना देनेके उपयोगी इन अडतालीस सस्कारोमे वेदके सब यज्ञ आदि भी सम्मिलित हो जाते हैं, जिनके द्वारा मनुष्यमे एक दैवात्मा उत्पन्न कर दिया जाता है और वह आत्मा उसे अवश्य देवताओमे सम्मिलित कर देता है। भगवान् व्यासने अपनी स्मृतिमे इस युगके उपयोगी तो सोलह सस्कार लिखे हैं, जिनकी आज भी हिन्दू-समाजमे चर्चा है। वे भी सब-के-सब आज समाजके बहुत अल्प अशमे प्रचलित हैं, किंतु कुछ सस्कार सभी द्विजोमे चलते हैं।

धर्म-ग्रन्थोंमें ये सस्कार आडम्बरशून्य वैज्ञानिक विधियोंके रूपमें हैं, किंतु आज जो सस्कार प्रचलित भी है, उनमे बाह्याडम्बरने अधिक स्थान ले लिया है। वैज्ञानिक विधियोपर बहुत कम ध्यान रह गया है।

इन सस्कारोकी शास्त्रीय पद्धतिपर ध्यान दिया जाय, तो विचारसे स्पष्ट भाषित होगा कि ये विधियाँ वैज्ञानिक हैं। इनमे अधिकाशका सम्बन्ध मनोविज्ञानसे है। भौतिक विज्ञानके आधारपर भी बहुत-से कार्य उत्तम होते हैं। बालकको सामने बैठाकर माता-पिता वेदमन्त्राकी सहायतासे मनम यह भाव रख कि हम इसका दोपमार्जन या अतिशयाधान कर रहे हैं तो उस मनोवृत्तिका प्रभाव शिशुके कोमल अन्त करणपर अवश्य पडता है। यह मनोविज्ञानकी बात है जो कि सभी सस्काराम अनुवर्तमान रहती है। इसके अतिरिक्त जैसे पुसवन और सीमन्तोन्नयन—इन गर्भावस्थाके सस्कारोमे गर्भिणीके समक्ष वीणावादन और सुललित गायनका विधान सूत्राम देखा जाता है, उससे भी गर्भिणीके अन्त करणमे एक प्रकारका प्रमोद या हर्ष होना स्वाभाविक है और उसका प्रभाव गर्भस्थित बालकपर पडना मनोविज्ञानकी बात है। बालकके उत्पन्न होनेपर सबसे पहले जातकर्म-सस्कारमे सुवर्णका अश घृत और मधु उसे चटानेकी विधि है। भौतिक विज्ञानद्वारा सिद्ध है कि ये तीनो ही पदार्थ शोधक हैं। ये दोष दूर कर एक प्रकारकी शुद्धता या पवित्रता देते हैं। इसी कारण व्रत, देवपूजा आदिमे सब जगह इनका प्रयोग विशेषरूपसे आवृत्त हुआ है। जातमात्र बालकके अदर पहले ही इन पदार्थोंको प्रविष्ट कराना, जहाँ शोधनकी योजना करेगा, वहाँ उसके कोमल अवयवाको पुष्ट और सुदृढ बनानेमे भी सहायता देगा। आगे नामकरण-सस्कारमे किसका कैसा नाम रखा जाय, इसकी व्यवस्था होती है। शास्त्रोने विधान किया है कि सामाजिक-व्यवस्था भी वर्ण-विभागके अनुसार, जिससे जैसा काम लेनेकी आगे व्यवस्था होगी, तदनुकूल ही पहलेसे उसका नाम रखना चाहिये। जैसा कि ब्राह्मणके नामम मङ्गल या विद्याका सम्बन्ध हो। क्षत्रियके नाममे वीरोचित प्रभाव प्रतीत होता हो और वैश्यके नाममें धन-समृद्धिकी बात आती हो। जब ऐसे नामोसे वह अपने जीवनमे बार-बार सम्बोधित होगा तो उन शब्दोद्वारा उन गुणोपर उसका चित्त निरन्तर आकृष्ट होता रहेगा और उसका प्रभाव बार-बार चित्तपर पडनेसे उन गुणाकी समृद्धि या उज्ज्वलता उसमे होती रहेगी। यह भी मनोविज्ञानका विषय है। स्त्रियाके नाम ऐसे होने चाहिये, जिनके उच्चारणमे वर्णोंकी कठिनताका अनुभव न हो जिनमे क्रूरताका भाव बिलकुल न हो और अन्तमे दीर्घ वर्ण आवे—जैसे सुसङ्गता यशोदा आदि। यह मानी हुई बात है कि स्त्रियोमे पुरुषोकी अपेक्षा बहुत अधिक मृदुता होती है। उस कोमलताका आभास उनके नामोम ही मिल जाना चाहिये और परस्पर व्यवहारमें उसका बार-बार स्मरण होनेपर मृदुता स्थिर रहेगी।

आगे अन्नप्राशनमे भी जैसा स्वभाव बनाना है उसके उपयुक्त ही अन्न आरम्भ में खिलानेका विधान है, जो स्पष्ट

ही पदार्थ-विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। आगे चूडाकरण या मुण्डन-सस्कारका समय आता है। हमारे शरीरके सब अवयवोंमे एक प्रकारकी शरीराग्नि निरन्तर भ्रमण करती रहती है और वही उन अङ्गोका शोधन करती है, किंतु केश और नख उस अग्निकी व्याप्तिसे बाहर निकल जाते हैं। इसका स्पष्ट ही प्रमाण है कि केशो या नखोका छेदन करनेपर भी कोई व्रण नहीं होता। इसी कारण उनके दोषाका शोधन शरीराग्नि नहीं करती। उनके दोष तो तभी दूर हो सकते हैं, जब उनका छेदन कर दिया जाय या अङ्गपरसे उसे हटा दिया जाय। यही दोषमार्जन मुण्डन-सस्कारका लक्ष्य है। साथ ही, उसम ऐसी वस्तुओका लेपन मस्तकपर बताया गया है, जिससे उस कोमल मस्तकमे कोई व्रण भी न होने पावे और केशोके स्थानकी पवित्रता भी हो जाय। मन्त्रपूर्वक हवनका भी इस सस्कारसे ही आरम्भ हो जाता है जो कि बाह्य-शुद्धि और भीतरकी शुद्धिका भी एकमात्र उपाय है। इस सस्कारम अन्य केशोको हटाकर एक शिखा रख दी जाती है। यह शिखा हिन्दू-जातिका एक विशेष चिह्न माना गया है। इसका वैज्ञानिक तत्त्व यह है कि ब्रह्मरन्ध्रके ठीक ऊपर शिखा रखी जाती है। सूर्यका प्राण ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा ही हमारे भीतर आता रहता है और भीतरके प्राण उसी रन्ध्रसे सूर्यकी ओर जाते रहते हैं। हमने कर्म या उपासनाके द्वारा अन्त करणम जो अतिशय उत्पन्न किया, वह यदि सूर्यके आकर्षणसे सूर्यमे चला जाय तो हमारे पास कुछ न रहेगा और हमारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। केश विद्युत्-शक्तिको रोकनेवाले हैं। यह वैज्ञानिक परीक्षणसे सिद्ध है। अतएव कर्म या उपासनाके समय ग्रन्थिबद्ध शिखा ब्रह्मरन्ध्रपर स्थापित रहनेसे हमारा अतिशय निकलकर बाहर न जा सकेगा तथा अतिशयद्वारा हम कृतकार्य होगे।

अब बडे सस्कार—यज्ञोपवीत और विवाहका अवसर आता है। यज्ञोपवीत-सस्कार दोष-मार्जन भी करता है और अतिशयाधान भी। विद्या पढनेका आरम्भ इसी सस्कारके अनन्तर होता है इसलिये बुद्धिको पहलेसे सात्त्विक विद्याके प्रवेशके लिये विकसित कर देना और स्मरण-शक्तिको बढा देना या दृढ करना आवश्यक है। वह काम इस सस्कारके द्वारा किया जाता है। इसमे सूर्यके उपस्थान अर्थात् आराधनाकी प्रधानता रखी गयी है। हमारे शास्त्रोका सिद्धान्त है कि बुद्धि सूर्यका ही एक अश है। इसकी पुष्टि (विकास) सूर्यकी आराधनासे ही हो सकती है। अग्नि-हवन आदि तो इस सस्कारमे प्रधान हैं ही, जो कि बुद्धिको विशदरूपसे परिमार्जित करते हैं, किंतु इनके अतिरिक्त पलाशका उपयोग इस सस्कारमे विशेषरूपसे माना गया है। पलाशका ही दण्ड हाथमें रहता है। पलाशकी ही समिधाओंका हवन होता है। भोज्यादि पदार्थ रखनेके लिये पलाशके ही पत्ते हैं, आदि-आदि। वस्तु-विज्ञानके आधारपर शास्त्रोका निश्चय है कि पलाश स्मरण-शक्ति बढाने या दृढ करनेमे बहुत सहायता देता है। पलाशकी शाखाका बार-बार सेवन करना यज्ञोपवीतके समय या उसके अनन्तर आवश्यक माना गया है। साथ ही ब्रह्मचर्यकी रक्षाके उपयोगी मूँज आदिका भी उपयोग इस सस्कारमे है। ये सब पदार्थ-विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली बाते हैं। इसी प्रकार यज्ञसूत्र या यज्ञोपवीत जिस वटुको पहनाया जाता है, उसम भी बडा रहस्य है। भारतीय सभ्यताके अनुसार उसको वेदका अध्ययन करना है। वेद परब्रह्म या ईश्वरका प्रधानरूपसे वर्णन करता है। ईश्वरने सृष्टि किस प्रकार की, इसका विवरण अति सक्षेपमे इस प्रकार है कि ईश्वरने तेज, अप् (जल) और अन्न (पृथ्वी)—इन तीना तत्त्वोको सूक्ष्मरूपमें उत्पन्न किया, किंतु ये पृथक्-पृथक् रहकर जब आगे सृष्टि बनानेमे समर्थ न हो सके, तब तीनाको आपसमे मिलाकर प्रत्येकको त्रिवृत्त (तीन लड) कर दिया और उनमे शक्तिरूपसे स्वय प्रविष्ट हुआ। बस, इसी तत्त्वका एक स्वरूप यज्ञोपवीतके रूपमे बनाया जाता है। पहले तीन जगह तीन-तीन धागे रखकर उन तीनोंको बटकर तीन-तीनका एक-एक बना लेते हैं और उन तीनाको इकट्ठा कर उनमे ईश्वरकी स्थितिका सङ्केत देनेकी एक ब्रह्मग्रन्थि लगा देते हैं—इस प्रकार यज्ञोपवीत सदा गलेमे पडा रहनेसे निरन्तर उस वटुका ध्यान ईश्वरकी सृष्टि-रचनापर जाता रहेगा और उससे वेदविद्याके सीखनेम शीघ्र कृतकार्य होगा।

विवाह-सस्कार भी अतिशयाधानरूप है, वह स्त्रीम दूसर कुलसे सम्बद्ध होनेका अतिशय उत्पन्न करता है तथा

स्त्री और पुरुष—दोनोको मिलाकर एकरूप बना देनेके कारण हीनाङ्गपूर्ति भी करता है, जिससे एकरूपता प्राप्त कर दोना पति-पत्नी गृहस्थाश्रम चलाने और यज्ञ-यागादि सम्पादित करनेके उपयोगी बन जाते हैं। पत्नीके देह, प्राण, मन आदिका दृढ सम्बन्ध पतिके देह, प्राण, मनसे जोड देना ही इस संस्कारका लक्ष्य है, जिसकी विधियाँ भी बहुत वैज्ञानिक हैं।

परस्पर योग-निर्माणमे और उसको दृढ करनेमें जिन जल और अग्निकी शक्ति मानी जाती है, उनका उपयोग विवाह-संस्कारमे पूर्णरूपसे किया जाता है। एक-दूसरेसे परस्पर हाथ मिलानेसे परस्परकी विद्युत्का सयोग होता है, यह भी विज्ञान-सिद्ध है। अत वर वधूका पाणिग्रहण करता है ओर वधूका पिता उस समय उन दोनोंके मिले हुए हाथापर जलप्रक्षेप करता है। इससे दोनों विद्युताका सश्लेपण कर अग्नि-हवनके द्वारा उसे दृढ कर दिया जाता है। विवाहमे जो मन्त्र पढे जाते हैं, उनका भी अर्थ यही है कि इन दोनोंके मन, प्राण, बुद्धि आदि सम्मिलित होकर एक हो जायँ। यह मनकी भावना भी अन्त करणके परस्पर सश्लेपणमें बहुत बडा काम देती है। इसी आधारपर वैदिक मन्त्रोमे माना गया है कि वधूका सश्लेष अपने गोत्रसे हटकर वरके साथ जुड जाता है और उस दिन वह वरके गोत्रकी ही बन जाती है। इन बातोसे सिद्ध है कि अन्यान्य जातियोंकी तरह भारतीयाका विवाह केवल मनमाना सम्बन्ध नहीं, अपितु एक वैज्ञानिक दृढ सम्बन्ध है, जो जन्मान्तरतक भी बना रहता है। [प्रेषक—डॉ० श्रीसजयजी चतुर्वेदी]

~~o~~

शुद्ध संस्कारोंसे पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि

(गोलोकवासी परम भागवत संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

चार पुरुषार्थोंमे पहले धर्म है और अन्तमे मोक्ष। बीचमे अर्थ और काम हैं। इस क्रमको लगानेमें भी रहस्य है। धर्म और मोक्षके बीचमे काम और अर्थको रखा गया हे। यह क्रम बतलाता है कि अर्थ ओर कामको धर्म और मोक्षके अनुसार प्राप्त करना है। धर्म और मोक्ष—ये दोनो पुरुषार्थ मुख्य हैं। बाकीके दोनो—अर्थ और काम—गोण हैं। धर्मके विरुद्ध कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता। धर्मका हमेशा स्मरण रखो। सबसे पहला पुरुषार्थ धर्म हे। धर्मानुसार ही अर्थ और कामकी प्राप्ति करनी है।

पैसा मुख्य नहीं है, धर्म ही मुख्य है। मानव-जीवनमे धर्म ही प्रधान है। धनसे सुख नहीं मिलता। सुख मिलता है अच्छे सस्कारोंसे, सयमसे और सदाचारसे। प्रभुभक्तिसे और त्यागसे सुख मिलता है। धर्मसे धन कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता। धर्म इहलोक और परलोकम सुख देता है। मरनेके बाद धन साथ नहीं जाता, धर्म ही साथ जाता है। अत धनसे धर्म श्रेष्ठ है। जबसे लोग अर्थको महत्त्व देने लगे हैं तबसे जीवन बिगड गया है, जीवनके सस्कार बिगड गये हैं। जब मनुष्य धर्मको धनसे विशेष समझता है तब जीवन सुधरता है और सुसस्कृत हो जाता है।

अर्थको धर्मानुकूल रखो। जो अर्थ धर्मानुकूल नहीं होता, वह अनर्थ है। देशको सम्पत्तिकी जितनी जरूरत है इससे अधिक अच्छे सस्कारोकी जरूरत है। तुम अपने जीवनमे धर्मको सबसे पहला स्थान दो। जीवनमे जब कामसुख और अर्थ गौण बनता है तभी जीवनमें दिव्यता आती है। दिव्यताका अर्थ है देवत्व।

धर्मकी गति सूक्ष्म है। धर्म भी अनेक बार अधर्म बन जाता है। सद्भावनाके अभावमे किया गया धर्म सफल नहीं होता। सत्का अर्थ है ईश्वर। ईश्वरका भाव जो सबमे प्रत्यक्ष सिद्ध करे, उसीका धर्म पूर्णत सफल होता है।

मनुष्योके शत्रु बाहर नहीं हैं, वे तो मनके अदर ही हैं। अदरके शत्रुआको मारोगे तो जगत्मे तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा।

धर्मक्रिया सद्भावके बिना सफल नहीं होती। जगत्के किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखोगे तो वह जीव तुम्हारे प्रति भी कुभाव ही रखेगा।

सभी क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे परमात्मा बसे हुए हैं, इसलिये किसी भी जीवके प्रति कुभाव रखना ईश्वरके प्रति कुभाव रखनेके बराबर है। शास्त्रमे तो यहाँतक कहा गया है कि किसी जीवके साथ तो क्या, किसी जड पदार्थके प्रति भी कुभाव नहीं रखना चाहिये। कहा गया है—'सुहृद

सर्वभूतानाम्'। ऐसा नहीं कहा गया कि 'सुहृद सर्वजीवानाम्'। जड पदार्थोंके साथ भी प्रेम करना है। सबमें सद्भाव रखो अर्थात् जड पदार्थोंके प्रति भी प्रेम रखो।

मनुष्यमे जब स्वार्थबुद्धि जागती हे तब वह दूसरेका विनाश करनेके लिये तत्पर होता है। तुम यदि दूसरेके प्रति कुभाव रखोगे तो उसके मनम भी तुम्हारे प्रति कुभाव जागेगा।

इसपर विचार करनेयोग्य एक दृष्टान्त है। एक देशम वहाँके राजा और नगरसेठ घनिष्ठ मित्र थे। दोनो सत्सङ्ग करते थे। दोनोका एक-दूसरेपर खूब प्रेम था। उस नगर-सेठका व्यापार चन्दनकी लकडी बेचनेका था। उसका धन्धा अच्छा नहीं चल रहा था। चार-पाँच सालतक घाटा हुआ। आखिर मुनीमजीने बताया कि अब तो लकडीमें दीमक लग गयी। बिगडा हुआ माल कोई लेता नहीं है। यदि इस साल पूरे प्रमाणम चन्दन नहीं बिकेगा तो व्यापार ठप्प हो जायगा। अब चन्दन-जैसी कीमती लकडी ज्यादा प्रमाणमे राजाके सिवा और कौन लेता?

स्वार्थ मनुष्यको पागल बना देता है। मनुष्यके मनमे जब स्वार्थ जागता है, तब वह दूसरेका विनाश करनेको भी तैयार हो जाता है। दूसरेका नुकसान करनेवालेको कभी फायदा नहीं होता। मनुष्यके हृदयमे जब स्वार्थ जागता है, तब विवेक नहीं रहता। प्रत्येक मनुष्यके हृदयमे स्वार्थ तो रहता ही है, मगर उसम विवेक तो रखना ही चाहिये। जिसे बोलनेमे शर्म आये वैसा सोचना भी नहीं चाहिये। नगरसेठने सोचा कि इस राजाको कुछ हो जाय तो बहुत अच्छा हो। वह मर जायगा तो उसको जलानेके लिये चन्दनकी लकडीकी जरूरत पडेगी। इस प्रकार मेरा सारा चन्दन बिक जायगा और व्यापार ठीक चलेगा। इस तरह सेठके मनमे राजाके प्रति कुभाव उत्पन्न हुआ।

इस कुभावका यह परिणाम हुआ कि राजाके मनमे भी सेठके प्रति कुभाव जाग उठा। उस दिन जब वह सेठ राजासे मिलनेके लिये आया, तब राजाके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि यह सेठ नि सतान है, यह यदि मर जाय तो इसका सारा धन राज्यभण्डारमे आ जाय। रोजके नियमानुसार सत्सङ्ग हुआ तो सही मगर किसीको आनन्द नहीं आया।

दो-तीन दिनके बाद राजाके मनमे विचार पैदा हुआ कि जो पहले कभी नहीं उत्पन्न हुआ था, ऐसा दुष्ट विचार मुझे नगरसेठके बारेमे कैसे उत्पन्न हुआ?

मनुष्य पापको मनमे छुपाये रखता है, जिससे उसका जीवन बिगडता है। राजाने सारी हकीक़त सेठसे कह दी। राजाने कहा तुम्हारे बारेमे मेरे मनमे बुरे विचार कभी नहीं आये। इसका कोई कारण मेरी समझम नहीं आ रहा है। क्या तुमने भी मेरे बारेमे कुछ बुरे विचार किये थे।

सेठने कहा कि मेरा चन्दनका व्यापार चलता नहीं है। सबका पोपण करना है। कोई माल लेता नहीं है, सो मैंने विचार किया कि यदि आप मर जायँ तो कितना अच्छा हो। आप मरेगे तो आपको जलानेके लिये चन्दनकी जरूरत पडेगी और मेरा सारा चन्दन बिक जायगा। राजाने सेठको उलाहना दी कि खराब विचार तुमने क्यों किया? वैष्णव होकर ऐसे दुष्ट विचार करते हो, यह वैष्णवको शोभा नहीं देता। तुम्हारे मनमे ऐसा विचार क्यो न आया कि राजा अपने महलके दरवाजे चन्दनके बनवाये और इसलिये चन्दन खरीद ले। राजा ठाकुरजीके लिये चन्दनका झूला बनवाये और मेरा चन्दन बिक जाय। इस प्रकार राजाका भी मन शुद्ध हो गया और नगर सेठका मन भी। इसके बाद दोनोमे एक-दूसरेके प्रति शुभभावना जागी और दोनो सुखी हो गये।

भावशुद्धि सबसे बडा तप है। मानव-जीवन तपके लिये ही है। जगत्‌के किसी भी जीवके प्रति वैर मत रखो। शुद्धभावनासे रहित किया गया सत्कर्म भी किसी कामका नहीं होता। उससे कई बार धर्म भी अधर्म बन जाता है। सत्कर्म करनेमे यदि हेतु शुद्ध नहीं हो तो वह सत्कर्म भी पाप बन जाता है।

दक्षप्रजापतिने शिवजीके प्रति कुभाव रखा, अत उसका धर्म अधर्ममे बदल गया। उसका यज्ञ उसको ही मारनेवाला हो गया।

प्रत्येक मनुष्यके प्रति सद्भाव रखनेसे कार्य सफल होता है। सबका कल्याण हो—यही सत्य और सत्कार्य है—'सत्य भूतहित प्रोक्तम्'।

~~~○~~~
~~~

संस्कारित जीवनमें पालनीय आवश्यक बाते

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

१-प्रत्येक यज्ञोपवीतधारी द्विजको कम-से-कम दोना कालकी सन्ध्या ठीक समयपर करनी चाहिये, समयपर की हुई सन्ध्या बहुत ही लाभदायक होती हे। स्मरण रखना चाहिये कि समयपर बोये हुए बीज ही उत्तम फलदायक हुआ करते हैं। ठीक कालपर सन्ध्या करनेवाले पुरुपके धर्म-तेजकी वृद्धि महर्पि जरत्कारुके समान हो सकती है।

२-वेद और शास्त्रमें गायत्री-मन्त्रके समान अन्य किसी भी मन्त्रका महत्त्व नहीं बतलाया गया, अतएव शुद्ध होकर पवित्र स्थानमे अवकाशके अनुसार अधिक-से-अधिक गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। कम-से-कम प्रात और साय १०८ मन्त्रोकी एक-एक मालाका जप तो करना ही चाहिये।

३-हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस पोडश नामके मन्त्रका जप सभी जातियाके स्त्री-पुरुप सब समय कर सकते हैं। यह बहुत ही उपयोगी मन्त्र है। कलिसन्तरणोपनिपद्‌म इस मन्त्रका बहुत माहात्म्य बतलाया गया है।

४-श्रीमद्भगवद्गीताका पठन और अध्ययन सबको करना चाहिये। बिना अर्थ समझे हुए भी गीताका पाठ बहुत लाभकारी है, परतु वास्तवमे बिना मतलब समझकर किये हुए अठारह अध्यायके मूल पाठकी अपेक्षा एक अध्यायका भी अर्थ समझकर पाठ करना श्रेष्ठ है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको यथासाध्य गीताके एक अध्यायका अर्थसहित पाठ तो अवश्य ही करना चाहिये।

५-प्रत्येक मनुष्यको अपने घरमें अपने भावनानुसार भगवान्‌की मूर्ति रखकर प्रेमके साथ प्रतिदिन उसकी पूजा करनी चाहिये। इससे भगवान्‌में श्रद्धा और प्रेमकी वृद्धि होती है शुभ सस्कारोंका सञ्चय होता है और समयका सदुपयाग होता है।

६-मनुष्यको प्रतिदिन (गीता अध्याय ६ श्लोक १० स १३ के अनुसार) एकान्तमें बैठकर कम-से-कम एक घंटे अपनी रुचिके अनुसार साकार या निराकार भगवान्‌का ध्यान करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे पाप और विक्षेपोका समूल नाश होता है और कल्याण-मार्गमे बहुत उन्नति होती हे।

७-प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करके भोजन करना चाहिये, क्योंकि गृहस्थाश्रमम नित्य होनेवाले पापोके नाशके लिये जिन पञ्चमहायज्ञोका विधान है, वे इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

८-मनुष्यको सब समय भगवान्‌के नाम और स्वरूपका स्मरण करते हुए ही अपने धर्मके अनुसार शरीर-निर्वाह और अन्य प्रकारकी चेष्टा करनी चाहिये। (गीता ८।७)

९-परमात्मा सारे विश्वमे व्याप्त है, इसलिये सबकी सेवा ही परमात्माकी सेवा है, अतएव मनुष्यको परम सिद्धिकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण जीवोको उन्हें ईश्वररूप समझकर अपने न्याययुक्त कर्तव्य-कर्मद्वारा सुख पहुँचानेकी विशेप चेष्टा करनी चाहिये। (गीता १८।४६)

१०-अपने द्वारपर आये हुए याचकको कुछ देनेकी शक्ति या किसी कारणवश इच्छा न होनेपर भी उसके साथ विनय, सत्कार और प्रेमका बर्ताव करना चाहिये।

११-सम्पूर्ण जीव परमात्माका अश होनेके कारण परमात्माके ही स्वरूप हैं, अतएव निन्दा, घृणा द्वेष और हिंसाको त्यागकर सबके साथ नि स्वार्थभावसे विशुद्ध प्रेम बढानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

१२-धर्म और ईश्वरमे श्रद्धा तथा प्रेम रखनेवाले स्वार्थ-त्यागी, सदाचारी सत्पुरुपाका सङ्ग कर उनकी आज्ञा तथा अनुकूलताके अनुसार आचरण करते हुए सङ्गका विशेप लाभ उठाना चाहिये।

१३-भक्ति, ज्ञान वैराग्य और धर्मकी वृद्धिके लिये श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रोंके पठन-पाठन और श्रवण-मननके द्वारा उनका तत्त्व समझकर अपनी आत्माको उन्नत बनाना चाहिये।

१४-वास्तविक बात यह है कि सत्सङ्गमें जितनी बातें बतलायी जाती हैं, यदि उनकी धारणा कर ले, उनका नियम-सा कर ल ता अवश्य सुधार हा जायगा।

१५-रसोई पवित्रतासे बनानी चाहिये। बालक आदि रसोईघरमे न जाने चाहिये। रसोई बनाते समय धुले हुए वस्त्र धारण करे। आहार शुद्ध होनेसे मन भी शुद्ध होता है—*'जैसा खावे अन्न तैसा बने मन।'* मुख्यतासे अन्न तीन प्रकारसे पवित्र होता है—सात्त्विक कमाईसे, पवित्रतापूर्वक तैयार करने तथा सात्त्विक भोजन होनेसे।

१६-वाणीके सयमपर खूब ध्यान रखना चाहिये। सदा विचारकर बोले। वाणीके तपका बहुत बडा महत्त्व है। नेत्रोके सयमकी भी बडी आवश्यकता है। ससारी पदार्थोंकी ओर नेत्रोको न जाने दे, ऐसा न हो तो स्त्रियोकी ओर तो उनकी प्रवृत्ति होने ही न दे। यदि चले जायँ तो उपवास करे। ऐसा करनेसे अच्छा सुधार हो सकता है। हाथोका भी सयम करे, उनसे कोई कामोद्दीपक कुचेष्टा न करे, कामवृत्तिको जडसे उखाड डाले। क्रोधको तो ऐसा जीते कि सामनेवाला मनुष्य कितना ही उत्तेजित हो जाय, स्वय शान्त ही रहे।

१७-दूसरोका उपकार करनेकी आदत डालनी चाहिये। यह बडे महत्त्वकी बात है कि अपनेसे किसीका उपकार बन जाय, किंतु वह उपकार होना चाहिये उदारता और दयाबुद्धिसे।

१८-प्रत्येक मनुष्यके साथ जो व्यवहार किया जाय, उसमे स्वार्थदृष्टिको त्याग देना चाहिये। व्यवहार स्वार्थसे ही बिगडता है। एक स्वार्थके त्याग देनेसे ही व्यवहार सुधर जाता है।

१९-लोगासे छोटे-छोटे जीवोकी बहुत हिसा होती है। हमें चलने, हाथ धोने, कुल्ला करने तथा मल-मूत्र त्याग करनेमे इस बातका ध्यान रखना चाहिये। हम इन जीवोके जीवनका कुछ मूल्य नहीं समझते, किंतु स्मरण रखना चाहिये कि इस उपेक्षाके कारण बदलेमे हमे भी ऐसी ही निर्दयताका शिकार होना पडेगा। जो मनुष्य जीवोके हिसाका कानून बनाता है, उसे तरह-तरहके कष्ट उठाने पडेगे। यदि कोई पुरुष कुत्तेको रोटी देना बद करेगा तो उसे भी कुत्ता बनकर भूखो मरना पडेगा। यदि किसीने म्युनिसिपलिटीमे कुत्तोको मारनेका कानून बनाया तो उसे भी कुत्ता बनकर निर्दयतापूर्वक मृत्युका सामना करना पडेगा। कसाइयोकी तो बडी ही दुर्दशा होगी, धन्य है, उन राजाओको जिनके राज्यमे हिसा नहीं थी।

२०-व्यापारमे नियम कर ले कि मुझे झूठ या कपटका व्यवहार नहीं करना है। खानेको न मिले तो भी कोई परवा मत करो। मेरा तो विश्वास है कि सचाईका व्यवहार जैसा चलता है, वैसा झूठ-कपटका कभी नहीं चल सकता। पहले मिथ्या-भाषण किया है, इसलिये आरम्भमें लोग विश्वास नहीं करते, सो कोई चिन्ता नहीं, पहले कियेका प्रायश्चित्त भी तो करना ही चाहिये। यदि यह सूत्र याद रखा जाय कि **'लोभ ही पापका मूल है'** तो व्यवहारमे पाप नहीं हो सकता।

२१-हमारे साथ पथप्रदर्शकरूपसे गीतादि शास्त्रोके रहते हुए भी यदि हमारी दुर्गति हो तो बडी लज्जाकी बात है। श्रीमद्भगवद्गीताकी ध्वजा फहरा रही है, फिर हमारी अवनति क्यो होनी चाहिये? हमें भजन करनेकी स्वतन्त्रता है, फिर ससारमे भगवान्‌का नाम रहते हुए भी हमारी दुर्गति क्यो हो?

२२-कुसङ्ग कभी न करना चाहिये। जो पुरुष विषयी, पामर, दुराचारी पापी या नास्तिक हैं, उनका सङ्ग कभी न करे और न उन्हे अपने पडोसमे ही बसाये। उनसे सर्वदा दूर रहे। वे प्लेगकी बीमारीके समान हैं, इसलिये उनके आचरण और दुर्गुणोसे घृणा करे, किंतु उनसे घृणा न करे।

२३-किसी भी प्रकारका न्याय करना हो तो समदृष्टि रखे यदि विषमता करनी हो तो अपने पक्षमें पौने सोलह आने रखे और विपक्षके लिये सवा सोलह आने।

२४-यदि कोई कठिन कार्य आकर प्राप्त हो तो उसे स्वय करनेको तैयार हो जाय।

२५-हानि-लाभ, जय-पराजय एव सुख-दु खादिमें समानरूपसे ईश्वरकी दयाका दर्शन करे।

२६-ईश्वरकी प्राप्तिमे खूब विश्वास रख। ऐसा विचार करे कि मेरे और कोई आधार नहीं है केवल भगवान्‌की दयालुता देखकर मुझे पूरा भरोसा है कि वे अवश्य मेरी सुधि लेंगे।

संस्कारोंकी सम्पन्नतामें पवित्रताका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

पवित्रता साधारणत दो प्रकारकी होती है—बाहरकी और भीतरकी। दोना ही आवश्यक हैं। बाह्य शौचसे शरीरकी पवित्रता बनी रहती है, दूसरोके रोग तथा पापाके परमाणु सहसा अपने अदर प्रवेश नहीं कर सकते एव आन्तर शौचसे मन पवित्र होकर परमात्माका साक्षात्कार करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है। मनुष्यजीवनका लक्ष्य है—'भगवत्प्राप्ति।' इसी उद्देश्यको सामने रखकर भारतके त्रिकालदर्शी ऋषि-मुनियोंने धर्मशास्त्रोकी ऐसी रचना की थी कि जिससे मनुष्यकी प्रत्येक क्रिया नदीके सागराभिमुखी प्रवाहकी तरह स्वाभाविक ही भगवदभिमुखी हो। आज हम न तो प्राय शास्त्रोको मानते हैं और न हमारी शास्त्रवचनामे श्रद्धा ही है। कई तो स्पष्टरूपसे शास्त्राका विरोध करते हैं और शास्त्रकारोपर अनर्गल आक्षेप करते हैं। कुछ लोग जो अपनेको शास्त्रका अनुयायी बतलाते हैं, वे भी प्राय मनमाना अर्थ गढकर शास्त्रोंको अपने मतके अनुकूल ही बनाना चाहते हैं। इसीलिये इतनी विशृङ्खलता हो रही है और इसीलिये भारत सुख, समृद्धि स्वतन्त्रता और नीरोगतासे वञ्चित होकर परमुखापेक्षी तथा दु खित हो रहा है और ऐसे लोग शुभ सस्कारासे वञ्चित हो रहे हैं, फलस्वरूप आज यह ब्रह्मनिष्ठ त्यागी महात्माओंकी प्रिय आवासभूमि—ब्रह्मानन्दरसपूर्ण विकसित पुष्पाकी यह प्राचीन सुरम्य वाटिका मुरझायी और सूखी हुई-सी प्रतीत होती है।

शरीरकी शुद्धि—शरीरकी शुद्धि भी दो प्रकारकी होती है—एक बाहरी और दूसरी भीतरी। अस्पृश्य पदार्थोको स्पर्श न करना जल-मृतिका और गोमय आदिसे शरीरको स्वच्छ रखना बाहरी शुद्धि है और न्यायोपार्जित पवित्र पदार्थोंके भक्षणसे शरीरके साधक रस-रुधिरादि सप्त धातुओंको शुद्ध रखना भीतरी पवित्रता है। आजकल इस विषयमें प्राय अवहेलना की जाती है। शरीरकी शुद्धिको अधिकाश लोग अन्याय अव्यवहार्य व्यर्थ और आडम्बर समझते हैं। अस्पृश्यता-सम्बन्धी न्यायानुमोदित शास्त्रोक्त बाते तो सुनना ही नहीं चाहते। किसी भी समय किसी भी पदार्थके स्पर्श करने तथा परस्पर परमाणुओंके आदान-प्रदान करनेमें कोई हानि नहीं समझते। गर्भकालमें माताके देखे-सुने और स्पर्श किये हुए पदार्थोंके परमाणु गर्भके अदर बालकपर अपना प्रभाव डालते हैं, यह बात प्राय सभीको स्वीकार है, परतु बिना किसी रुकावटके एक-दूसरेके स्पर्शमे और खान-पानमे कुछ भी पक्तिभेद न रखनेमे उन्हे कोई दोष नहीं दीखता। कई लोग तो ऐसा करनेमे उलटा गौरव समझते हैं। समयकी बलिहारी है।

गोमय और मृत्तिका आदिसे शरीरको धोना, पोंछना तो धीरे-धीरे असभ्यता और जगलीपन माना जाने लगा है। पशुओकी चर्बीसे बना हुआ साबुन लगानेमे तथा सुगन्धित द्रव्योके नामसे शरीरपर विदेशी मदिरा लेपन करनेमें कोई हानि नहीं समझी जाती। परतु मिट्टीके नामसे ही बाबुआकी नाक-भौं सिकुडने लगती है। कारण स्पष्ट है। लोगोंमे ऊपरसे सुन्दर सजनेका जितना खयाल है, उतना वास्तविक पवित्रताका नहीं। इसीलिये साबुन आदिके बुरे परमाणु जो शरीरके अदर जाते हैं, उनकी कोई परवा नहीं की जाती। जलशुद्धिका विचार प्राय छूट ही गया है। स्पर्शास्पर्शका विचार रखना अन्याय्य और अव्यवहार्य तथा जल-मृत्तिकाका व्यवहार व्यर्थ और आडम्बर माना जाता है। यह तो शारीरिक बाह्य शुद्धिकी बात हैं। अन्त शुद्धि इस प्रकार है—

शरीरकी आन्तरिक शुद्धि—अन्त शुद्धि प्रधानत आहारकी शुद्धिसे ही होती है परतु इस ओर तो आजकल लोगोंका बहुत ही कम खयाल है। देशमें खासकर बडे शहरोंमे ऐसा द्रव्य बहुत कठिनतासे मिल सकता है, जो सर्वथा न्यायापार्जित हो। धनोपार्जनमे न्यायान्यायका विचार प्राय छोड दिया गया है। असत्य और चोरीका व्यवहार बडे-बडे व्यापारिक समुदायमें आवश्यक साधन-सा माना जान लगा है। इतना अध पतन हा गया है कि लाखों-करोडोंकी सम्पत्ति होनपर भी व्यापारमें दस-पाँच रुपयेकी

आमदनीके लिये लोग अन्यायका आश्रय ले लेते हैं। पाप-पुण्यका विचार करनेकी मानो आवश्यकता ही नहीं रही। प्राचीन कालमे साधुलोग सुनारोका अन्न प्राय नहीं खाते थे। लोगोकी ऐसी धारणा थी कि सुनारोंके यहाँ सोने-चाँदीकी कुछ चोरी हुआ करती है, यद्यपि सभी सुनार ऐसे नहीं होते थे। परतु आजकल तो ऐसी कोई जाति ही नहीं देखनेमे आती, जो धन कमानेम पापका आश्रय सर्वथा न लेती हो। कुछ व्यक्ति बचे हुए हों तो दूसरी बात है। इस प्रकार जब धन ही अन्यायोपार्जित है, तब उसके द्वारा खरीदे हुए अन्नमे पवित्रता कहाँसे आ सकती है? जिस प्रकारका अन्न भक्षण किया जाता है, प्राय उसी प्रकारका मन बनता है और जैसा मन होता है, वैसी ही क्रियाएँ होती हैं, यों उत्तरोत्तर पापका प्रवाह बढता चला जाता है। इसीलिये आर्य ऋषियाने आहारकी शुद्धिपर विशेष जोर दिया है।

आहारकी शुद्धि—केवल यही नहीं देखना चाहिये कि भोजन कैसे स्थानपर और किसके हाथका बना हुआ है। यद्यपि भोजन पवित्र स्थानमे पवित्र मनुष्यके द्वारा पवित्रताके साथ पवित्र सामग्रियासे बनना चाहिये, परतु इनमें सबसे अधिक आवश्यकता है अन्नशुद्धिकी। न्याय-अन्यायके विचारसे रहित करोडों रुपयेके व्यापार करनेवाले बडे-से-बडे प्रसिद्ध पुरुषके द्रव्यसे पवित्र चौकेकी सीमाके अदर ब्राह्मणके हाथसे बना हुआ भोजन उस भोजनकी अपेक्षा सर्वथा निकृष्ट है जो एक गरीब मेहनती सच्चे मजदूरके द्रव्यसे बनता है। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि ऐसे पवित्र हृदयका मनुष्य यदि नीचवर्णका हो तो उनके यहाँ उच्च वर्णका पुरुष शास्त्रमर्यादाको भङ्ग कर उसके साथ उसके हाथसे खाये। ऐसे पवित्र पुरुष तो ऐसा आग्रह ही नहीं रखते कि लोग हमारे हाथका बनाया हुआ खायँ। अतएव सबसे अधिक ध्यान इस विषयपर देना चाहिये कि जिससे द्रव्य शुद्ध रहे। अशुद्ध द्रव्यका उपार्जन करनेवाला अपना अनिष्ट तो करता ही है, साथ ही वह घर, परिवार और अतिथिवर्गके मनोमें भी अपवित्र भावोकी उत्पत्तिका कारण बनता है।

आजकल भोजनकी सामग्रियोमे अभक्ष्य और अपेय पदार्थोका समावेश भी बढ रहा है। अग्रेजोके ससर्ग और अग्रेजी शिक्षाके अधिक विस्तारसे खान-पानके पदार्थोंमें रुकावट बहुत कम हो चली है। इस मर्यादानाशका परिणाम बहुत ही बुरा दीखता है। अतएव सबको सावधान हो जाना चाहिये।

~~~o~~~

उत्तम संतानके लिये माता-पिताके शुद्धाचरणकी आवश्यकता

(मानसराजहंस पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी)

भगवान् वासुदेवने कहा है कि—

'नाय लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य कुरुसत्तम॥'

'यज्ञरहित पुरुषके लिये यह लोक ही सुखदायक नहीं है, फिर परलोककी चर्चा ही क्या है?' तथा—

सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

'यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि करके प्रजापतिने पहले कहा कि इसीसे तुमलोग बढो और यह तुमलोगोंके लिये कामधेनु हो।'

उस यज्ञरूपी कामधेनुके चरणोके त्यागसे ही ससार विपत्तिके गर्तमे पडा हुआ है और हजार प्रयत्न करनेपर भी उसके कल्याणका मार्ग निर्गल नहीं हो रहा है। जिस सतानके लिये पूर्वपुरुषोने बडी-बडी तपस्याएँ की हैं, उसी सतानकी वृद्धिसे ससार ऊब उठा है, सतानोके आचरणसे अत्यन्त असतुष्ट है, यहाँतक कि गर्भनिरोधके लिये नयी-नयी ओषधियोका तथा उपचारोका आविष्कार किया जा रहा है और उनके प्रचारके लिये सब ओरसे प्रोत्साहन भी मिल रहा है। अब प्रश्न यह है कि क्या इस उपायसे अभीष्टकी प्राप्ति सम्भव है? क्या इस कृत्रिम उपायसे गर्भनिरोध गर्भपातनके समकक्षका पाप नहीं है (शुक्रका व्यर्थीकार भी तो सामान्य पाप नहीं है*), क्या इससे कुसतान और सुसतानकी समस्या हल हो सकती है?

* 'व्यर्थीकारेण शुक्रस्य ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्। (आश्वलायनोक्ति)
~~~

कहना होगा कि कदापि नहीं। सतान-बाहुल्य शास्त्रसम्मत है। कुसतानका होना ही दोषावह है और यह रोका जा सकता है। भगवान् देवकीनन्दनने कहा है कि—

'यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽय कर्मबन्धन ।'

अर्थात् यज्ञके लिये ही कर्म होना चाहिये। जितने कर्म हैं, उनका अनुष्ठान यज्ञरूपसे ही होना चाहिये। इसीसे हिन्दूके धर्मभे नहाना, खाना, सोना सब यज्ञरूप है।

छान्दोग्य श्रुति कहती है—

'पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गारा श्रोत्र विस्फुलिङ्गा ॥ तस्मिन्ने-तस्मिन्नग्नौ देवा अन्न जुह्वति तस्या आहुते रेत सभवति॥'

'योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्त करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गा ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भ सभवति॥'

'हे गौतम! पुरुष अग्नि है, उसकी वाणी ही समित् है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, आँख अङ्गारे हैं, कान चिनगारियाँ हैं, उसी अग्निमे देवता अन्नका होम करते हैं, उस आहुतिसे वीर्य होता है।'

'हे गौतम! स्त्री अग्नि है, उसका उपस्थ समित् है, जो उस समय बात करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है, प्रसङ्ग अङ्गारा है, सुख चिनगारी है, उसी अग्निमे देवतालोग वीर्यका होम करते हैं। उस आहुतिसे गर्भ होता है।'

इस भाँति भोजन भी यज्ञ है, इसका अनुष्ठान विहित देश-कालमे होना चाहिये, केवल शुद्ध अन्नकी आहुति देनी चाहिये, इससे शुद्ध वीर्य उत्पन्न होता है। जहाँ जो मिला, उसे खा लेनेसे यज्ञ नष्ट हो जाता है और **'न हि यज्ञसमो रिपु '** वही यज्ञ अपना शत्रु हो जाता है और नाना प्रकारके अनर्थका कारण होता है। एव स्त्रीप्रसङ्ग अथवा गर्भाधान भी यज्ञ है यह विहित देश-काल तथा पात्र पाकर ही करना चाहिये नहीं तो इसका परिणाम अतीव भयकर होता है, शरीरमें दारुण व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, कुसतानकी उत्पत्तिसे कुल कलकित होता है और यावज्जीवन अत्युग्र यातनाएँ भोगनी पडती हैं।

सतानकी कुण्डलीकी बडी चिन्ता माता-पिताको होती है, परतु कुण्डलीके मूलाधार गर्भाधानकालकी कोई चिन्ता ही नहीं होती। बच्चोके आठ सस्कार गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल और उपनयन—माता-पिताको करने पडते हैं। इन सबके लिये उत्तम-से-उत्तम मुहूर्त बडे-से-बडे ज्योतिषीसे दिखलाया जाता है, परतु सबसे मुख्य और प्रथम सस्कार, जिसे गर्भाधान कहते हैं, हँसी-खेलकी वस्तु समझा जाता है। सभ्य समाजमे उसकी चर्चा भी उठायी नहीं जा सकती, उसका नाम लेना अश्लीलता है। उचित तो यह था कि उसके नियम मनुष्यमात्रको हस्तामलक होते, स्त्री-पुरुष सब उनसे परिचित होते और उनके उल्लङ्घन करनेमे सौ बार विचार करना पडता।

किस कार्यके लिये कौन मुहूर्त शुभ है और कौन अशुभ है, इसका विज्ञान ही पृथक् है, जिसे फलित शास्त्र कहते हैं। आजकल फलित शास्त्रकी खिल्ली उडानेवाले भी कम नहीं हैं, पर काम पडनेपर मुहूर्त दिखलाकर ही सब लोग कार्य करते हैं। औरगजेब-जैसा मुतअस्सिब बादशाह भी मुहूर्त दिखलाकर ही सिहासनारूढ हुआ। फलाफलके तारतम्यके विचारमे भले ही कभी चूक हो जाय पर ग्रह-नक्षत्रगणका प्रभाव तो पृथ्वीपर स्थूल दृष्टिसे भी उपलक्षित होता है। शिशुके भूमिष्ठ होनेके समय जैसी ग्रहस्थिति होती है, उसका जैसा प्रभाव नवजात शिशुपर पडता है, वह यावज्जीवनके लिये उसका साथी हो जाता है, पर इसका भी मूल कारण गर्भाधानका समय है। अत गर्भाधान भूलकर भी अविहित समयमे नहीं होना चाहिये। गर्भाधानकालके दोषसे ही कश्यपजीके द्वारा दिति देवीके गर्भसे हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु-सरीखे क्रूरकर्मा दैत्य उत्पन्न हुए थे।

बहुत कालसे यह भावना नष्ट हो गयी है। इसको जाग्रत् करनेके लिये बहुत समय और आयासकी अपेक्षा है, पर यदि ससारमें सुख-शान्ति लानी है तो इसे जाग्रत् करना ही पडेगा। पारस्कर-गृह्यसूत्र तथा निर्णयसिन्धु

आदि धर्मग्रन्थोंमे इसका बडा विस्तार है, पर मुहूर्तचिन्तामणिके दो श्लोकोमे सक्षेपरूपसे सभी कुछ कह दिया गया है—

गण्डान्त त्रिविध त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तक
दास्त्र पौष्णमथोपरागदिवस पात तथा वैधृतिम्।
पित्रो श्राद्धदिन दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवन जन्मर्क्षत पापभम्॥
भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्या
भौमार्कार्कीनाद्यरात्रीश्चतस्त्र ।
गर्भाधान त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्र-
ब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत्॥

'नक्षत्र, तिथि तथा लग्नके गण्डान्त, निधन-तारा, जन्म-तारा, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती, ग्रहण-दिन, व्यतीपात, वैधृति, माता-पिताका श्राद्ध-दिन, दिनके समय, परिघयोगके आदिका आधा भाग, उत्पातसे दूषित नक्षत्र, जन्मराशि या जन्मनक्षत्रसे आठवाँ लग्न, पापयुक्त नक्षत्र या लग्न, भद्रा, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, सक्रान्ति, सन्ध्याके दोनों समय, मङ्गलवार, रविवार और शनिवार, रजोदर्शनसे आरम्भ करके चार दिन—ये सब पत्नीगमनमें वर्जित हैं। शेष तिथियाँ, सोमवार, बृहस्पति, शुक्र, बुधवार, तीनो उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती श्रवण, धनिष्ठा और शततारका—ये गर्भाधानके लिये शुभ हैं।'

इसमें सदेह नहीं कि ऋतुदानके समय-निर्णयके लिये थोडेसे ज्योतिषज्ञान या किसी ज्योतिषीकी सहायताकी अपेक्षा है, परतु इससे जितना बडा अपना हित, वशका हित, राष्ट्रका हित सम्भव है, उतना हित अन्य किसी उपायसे सम्भव नहीं है। गर्भनिरोधके प्रचारसे व्यभिचारके मार्गको निरर्गल करनेके इच्छुकोको, विषयके गीधोको नि सदेह यह सुझाव नि सार, अश्लील और अव्यवहार्य मालूम पडेगा, परतु उन लोगोको मालूम होना चाहिये कि यह लाभदायक प्रथा किसी समय भारतमे प्रचलित थी और इसीके लोपसे देशका जगद्गुरुके पदसे पतन हो गया। बडे-बडे असम्भव कार्योंको सम्भव कर दिखलानेवाले देशके कर्णधार इस ओर ध्यान दें, बडे-बडे ब्रह्मचर्याश्रम खोलनेवाले देशके महोपदेशक इसका प्रचार करे, कम-से-कम 'कल्याण' के पाठकोमसे ही कुछ लोगोंके हृदयमें यदि इस विषयकी उपादेयता जम जाय तो भी बहुत कुछ कल्याण हो सकता है।

भगवद्गीताका प्रचार भगवत्प्रेरणासे इस समय बढ रहा है, उसी भगवद्गीताको आँख खोलकर देखनेकी आवश्यकता है। यदि गीताध्यायी अपने कर्मोंको यज्ञरूपमे परिणत नहीं कर सका, अपने भोजन-शयनादि व्यवहारको यज्ञका रूप नहीं दे सका तो उसका गीताध्ययन ही व्यर्थ है। गीताके कारण तो युद्ध भी यज्ञरूपमें परिणत हो गया—'**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ**' कहकर भगवान्ने तो सीधे-सीधे गर्भाधानको 'यज्ञ' का रूप दिया है, नहीं तो 'काम' को शत्रु बतलाया है और उससे सावधान रहनेके लिये आदेश है, यथा—'**विद्ध्येनमिह वैरिणम्**' यह वैरी सर्वनाश करता है, कुसतानकी बाढसे जगत् व्याकुल हो उठता है।

शास्त्रविहित देश, काल और पात्रका विचार रखनेसे ही काम ईश्वरकी विभूति हो जाता है, उससे अचिन्त्य कल्याण होता है, लोक-परलोक सब बन जाता है, सदाचारी होकर यश प्राप्त करता है, सुसतान उत्पन्न करके आत्महित, वशहित तथा राष्ट्रहित करता है। अत माता-पिताका सदाचार ही उत्तम सतानोत्पत्तिका कारण होता है।

~~~०~~~

सभी स्थितियोमें प्रभु और प्रभुभक्तोका दास होकर रहना ही अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति करना है। अपने प्यारेके श्रवण, मनन, कीर्तन आदिमे जो बाधाएँ है, उन्हे दूर करना सच्चे प्रभुप्रेमका चिह्न है। भीतरसे प्रभुकी गाढ भक्ति करना, कितु बाहर उसे प्रसिद्ध न होने देना साधुताका मुख्य चिह्न है।

ईश्वरकी उपासनामें मनुष्य ज्यो-ज्यो डूबता जाता है, त्यो-त्यो प्रभु-दर्शनके लिये उसकी आतुरता बढती जाती है। यदि एक पलके लिये भी उसे प्रभुका साक्षात्कार हो जाता है तो वह उस स्थितिकी अधिकाधिक इच्छामे लीन हो जाता है।

~~~०~~~

बालकोके लिये संस्कार-माला

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

१-सबको सूर्योदयसे पहले उठना चाहिये।

२-उठते ही भगवान्‌का स्मरण करना तथा—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये।

३-अपनेसे बडोको प्रणाम करना चाहिये।

४-शौच-स्नान करके दण्ड-बैठक, दौड-कुश्ती आदि शारीरिक और आसन-प्राणायाम आदि यौगिक व्यायाम करना चाहिये।

५-प्रात काल *'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'*—इस मन्त्रकी कम-से-कम एक माला अवश्य जपनी चाहिये और जिनका यज्ञोपवीत हो चुका है, उनको सूर्योदयसे पूर्व सध्या और कम-से-कम एक माला गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

६-श्रीमद्भगवद्गीताके कम-से-कम एक अध्यायका नित्य अर्थसहित पाठ करना चाहिये। इसके लिये ऐसा क्रम रखा जाय तो अच्छा है कि प्रतिपदा तिथिको पहले अध्यायका, द्वितीयाको दूसरेका, तृतीयाको तीसरेका—इस तरह एकादशी तिथिको ११वे अध्यायतक पाठ करके द्वादशीको १२वें और १३वे अध्यायका, त्रयोदशीको १४वे और १५वेका चतुर्दशीको १६वें और १७वेका तथा अमावास्या या पूर्णिमाको १८वे अध्यायका पाठ कर ले। इस प्रकार पद्रह दिनोमे अठारहा अध्यायोका पाठ-क्रम रखकर एक महीनेमे सम्पूर्ण गीताके दो पाठ पूरे कर लेने चाहिये। तिथिक्षय हो तब ७व और ८वे अध्यायका पाठ एक साथ कर लेना तथा तिथि-वृद्धि होनेपर १६वे और १७वे अध्यायका पाठ अलग-अलग दो दिनमे कर लेना चाहिये।

७-विद्यालयमें ठीक समयपर पहुँच जाना और भगवत्स्मरणपूर्वक मन लगाकर पढना चाहिये। किसी प्रकारका ऊधम न करते हुए मौन रहकर भगवान्‌के नामका जप और स्वरूपकी स्मृति रखते हुए प्रतिदिन जाना-आना चाहिये।

८-विद्यालयकी स्तुति-प्रार्थना आदिमे अवश्य शामिल होना और उनको मन लगाकर प्रेमभावपूर्वक करना चाहिये।

९-पिछले पाठको याद रखना और आगे पढाये जानेवाले पाठको उसी दिन याद कर लेना उचित है, जिससे पढाईके लिये सदा उत्साह बना रहे।

१०-पढाईको कभी कठिन नहीं मानना चाहिये।

११-अपनी कक्षामें सबसे अच्छा बननेकी कोशिश करनी चाहिये।

१२-किसी विद्यार्थीको पढाईमें अग्रसर होते देखकर खूब प्रसन्न होना चाहिये और यह भाव रखना चाहिये कि यह अवश्य उन्नति करेगा तथा इसकी उन्नतिसे मुझे और भी बढकर उन्नति करनेका प्रोत्साहन एव अवसर प्राप्त होगा।

१३-अपने किसी सहपाठीसे डाह नहीं करनी चाहिये और न यही भाव रखना चाहिये कि वह पढाईमे कमजोर रह जाय, जिससे उसकी अपेक्षा मुझे लोग अच्छा कहें।

१४-किसी भी विद्या अथवा कलाको देखकर उसमें दिलचस्पीके साथ प्रविष्ट होकर समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि जानने और सीखनेकी उत्कण्ठा विद्यार्थियोका गुण है।

१५-अपनेको उच्च विद्वान् मानकर कभी अभिमान न करना चाहिये क्याकि इससे आगे बढनेमे बडी रुकावट होती है।

१६-नित्यप्रति बडोंकी तथा दीन-दु खी प्राणियोंकी कुछ-न-कुछ सेवा अवश्य करनी चाहिये।

१७-किसी भी अङ्गहीन दु खी, बेसमझ, गलती करनेवालेको देखकर हँसना नहीं चाहिये।

१८-मिठाई, फल आदि खानेकी चीजें प्राप्त हा तो उन्हे दूसरोको बाँटकर खाना चाहिये।

१९-न्यायसे प्राप्त हुई चीजको ही काममें लाना चाहिये।

२०-दूसरेकी चीज उसके देनेपर भी न लेनेकी चेष्टा रखनी चाहिये।

२१-हर एक आदमीके द्वारा स्पर्श की हुई मिठाई आदि अन्नकी बनी खाद्य वस्तुएँ नहीं खानी चाहिये।

२२-कोई भी अपवित्र चीज नहीं खानी चाहिये।

२३-कोई भी खाने-पीनेकी चीज ईश्वरको अर्पण करके ही उपयोगमे लेनी चाहिये।

२४-भूखसे कुछ कम खाना चाहिये।

२५-सदा प्रसन्नतापूर्वक भोजन करना चाहिये।

२६-भोजनके समय क्रोध शोक, दीनता द्वेष, हिंसा

आदि भाव मनमे लाना उचित नहीं है, क्योंकि इनके रहनेसे भोजन ठीक नहीं पचता।

२७-भोजन करनेके पहले दोनो हाथ, दोनो पैर और मुँह—इन पाँचोको अवश्य धो लेना चाहिये।

२८-भोजनके पहले और पीछे आचमन जरूर करना चाहिये।

२९-भोजनके बाद कुल्ले करके मुँह साफ करना उचित है, क्योंकि दाँतोंमें अन्न रहनेसे पायरिया आदि रोग हो जाते हैं।

३०-चलते-फिरते और दौडते समय एव अशुद्ध अवस्थाम तथा अशुद्ध जगहमे खाना-पीना नहीं चाहिये, क्योंकि खाते-पीते समय सम्पूर्ण रोम-कूपोसे शरीर आहार ग्रहण करता है।

३१-स्नान और ईश्वरोपासना किये बिना भोजन नहीं करना चाहिये।

३२-लहसुन, प्याज, अण्डा, मास, शराब, ताडी आदिका सेवन कभी नहीं करना चाहिये।

३३-लैमनेड, सोडा और बर्फका सेवन नहीं करना चाहिये।

३४-उत्तेजक पदार्थोंका सेवन कदापि न करे।

३५-मिठाई, नमकीन, बिस्कुट, दूध, दही, मलाई, चाट आदि बाजारकी चीजें नहीं खानी चाहिये, क्योंकि दूकानदार लोभवश स्वास्थ्य और शुद्धिकी ओर ध्यान नहीं देते, जिससे बीमारियाँ होनेकी सम्भावना रहती है।

३६-बीडी, सिगरेट, भाँग, चाय आदि नशीली चीजोका सेवन कभी न करे।

३७-अन्न और जलके सिवा, किसी और चीजकी आदत नहीं डालनी चाहिये।

३८-दाँतोसे नख नहीं काटना चाहिये।

३९-दातुन कुल्ले आदि करनेके समयको छोडकर अन्य समय मुँहम अँगुली नहीं देना चाहिये।

४०-पुस्तकके पन्नेको अँगुलीमें थूक लगाकर नहीं उलटना चाहिये।

४१-किसीका भी जूठन खाना और किसीको खिलाना निषिद्ध है।

४२-रेल आदिके पाखानाके नलका अपवित्र जल मुँह धोने कुल्ला करने या पीने आदिके काममे कदापि न लेना चाहिये।

४३-कभी झूठ न बोले। सदा सत्य भाषण करे।

४४-कभी किसीकी कोई भी चीज न चुराये। परीक्षामें नकल करना भी चोरी ही है तथा नकल करनेमे मदद देना, चोरी कराना है। इससे सदा बचना चाहिये।

४५-माता, पिता, गुरु आदि बडोकी आज्ञाका उत्साहपूर्वक तत्काल पालन करे। बडोके आज्ञा-पालनसे उनका आशीर्वाद मिलता है, जिससे लौकिक और पारमार्थिक उन्नति होती है।

४६-किसीसे लडाई न करे।

४७-किसीको गाली न बके।

४८-अश्लील गन्दे शब्द उच्चारण न करे।

४९-किसीसे भी मार-पीट न करे।

५०-कभी रूठे नहीं और जिद्द भी न करे।

५१-कभी क्रोध न करे।

५२-दूसरोकी बुराई और चुगली न करे।

५३-अध्यापको एव अन्य गुरुजनोकी कभी हँसी-दिल्लगी न उडाये, प्रत्युत उनका आदर-सत्कार करे तथा जब पढानेके लिये अध्यापक आवे और जायँ, तब खडे होकर और नमस्कार करके उनका सम्मान करे।

५४-समान अवस्थावाले और छोटोसे प्रेमपूर्वक बर्ताव करे।

५५-नम्रतापूर्ण, हितकर, थोडे और प्रिय वचन बोले।

५६-सबके हितकी चेष्टा करे।

५७-सभामे सभ्यतासे आज्ञा लेकर नम्रतापूर्वक चले। किसीको लाँघकर न जाय।

५८-सभा या सत्सङ्गमे जाते समय अपने पैरका किसी दूसरेसे स्पर्श न हो जाय, इसका ध्यान रखे, अगर किसीको पैर लग जाय तो उससे हाथ जोडकर क्षमा माँगे।

५९-सभामें बैठे हुए मनुष्योके बीचमे जूते पहनकर न चले।

६०-सभामे भाषण या प्रश्नोत्तर सभ्यतापूर्वक करे तथा सभामे अथवा पढनेके समय बातचीत न करे।

६१-सबको अपने प्रेमभरे व्यवहारसे सतुष्ट करनेकी कला सीखे।

६२-आपसी कलहको पास न आने दे। दूसरोंके कलहको भी अपने प्रेमभरे बर्ताव ओर समझानेकी कुशलतासे निवृत्त करनेका प्रयत्न करे।

६३-कभी प्रमाद और उद्दण्डता न करे।

६४-पैर, सिर और शरीरको बार-बार हिलाते रहना आदि आदते बुरी हैं। इनसे बचे।

६५-कभी किसीका अपमान या तिरस्कार न करे।

६६-कभी किसीका जी न दुखाये।

६७-कभी किसीकी दिल्लगी न करे।

६८-शौचाचार, सदाचार और सादगीपर विशेष ध्यान रखे।

६९-अपनी वेश-भूषा अपने देश और समाजके अनुकूल तथा सादी रखे। भडकीले, फैशनदार और शौकीनीके कपडे न पहने।

७०-इत्र, फुलेल, पाउडर और चर्बीसे बना साबुन, वैसलीन आदि न लगाये।

७१-जीवन खर्चीला न बनाये अर्थात् अपने रहन-सहन, खान-पान, पोशाक-पहनाव आदिमे कम-से-कम खर्च करे।

७२-शरीरको और कपडोको साफ तथा शुद्ध रखे।

७३-शारीरिक और बौद्धिक बल बढानेवाले सात्त्विक खेल खेले।

७४-जूआ, ताश, चौपड, शतरज आदि प्रमादपूर्ण खेल न खेले।

७५-टोपी और घडीका फीता, मनीबेग, हैंडबेग, बिस्तरबन्ध, कमरबन्ध और जूता आदि चीजे यदि चमडेकी बनी हो तो उन्हे प्रयोगमें न लाये।

७६-सिनेमा-नाटक आदि न देखे, क्योकि इनसे जीवन खर्चीला तो बनता ही है, शौकीनी, अभक्ष्य-भक्षण, व्यभिचार आदि अनेक दोष आ जानेसे पापमय भी बन जाता है।

७७-बुरी पुस्तको और गन्दे साहित्यको न पढे।

७८-अच्छी पुस्तकोंको पढे और धार्मिक सम्मेलनोम जाय।

७९-गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थोका अभ्यास अवश्य करे।

८०-पाठ्य-ग्रन्थ अथवा धार्मिक पुस्तकोंको आदरपूर्वक ऊँचे आसनपर रखे भूलसे भी पैर लगनेपर उन्हे नमस्कार करे।

८१-अपना ध्येय सदा उच्च रखे।

८२-अपने कर्तव्यपालनमें सदा उत्साह तथा तत्परता रखे।

८३-किसी भी कामको कभी असम्भव न माने, क्याकि उत्साही मनुष्यके लिये कठिन काम भी सुगम हो जाते हैं।

८४-किसी भी कामको करनेमें भगवान् श्रीरामको आदर्श माने।

८५-भगवान्‌को इष्ट मानकर और हर समय उनका आश्रय रखकर कभी चिन्ता न करे।

८६-अपना प्रत्येक कार्य स्वय करे। यथासम्भव दूसरोसे अपनी सेवा न कराये।

८७-सदा अपनेसे बडे और उत्तम आचरणवाले पुरुषोंके साथ रहनेकी चेष्टा करे तथा उनके सद्गुणोका अनुकरण करे।

८८-प्रत्येक कार्य करते समय यह याद रखे कि भगवान् हमारे सम्पूर्ण कार्योंको देख रहे हैं और वे हमारे अच्छे और बुरे कार्योंका यथायोग्य फल देते हैं।

८९-सदा प्रसन्नचित्त रहे।

९०-धर्मपालन करनेमे प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहे।

९१-न्याययुक्त कार्य करनेमें प्राप्त हुए कष्टको तप समझे।

९२-अपने-आप आकर प्राप्त हुए सङ्कटको भगवान्‌का कृपापूर्वक दिया हुआ पुरस्कार समझे।

९३-मनके विपरीत होनेपर भी भगवान्‌के और बडोंके किये हुए विधानमे कभी घबराये नहीं, अपितु परम सतुष्ट रहे।

९४-अपनेमें बडप्पनका अभिमान न करे।

९५-दूसरोको छोटा मानकर उनका तिरस्कार न करे।

९६-किसीसे घृणा न करे।

९७-अपना बुरा करनेवालेके प्रति भी उसे दु ख पहुँचानेका भाव न रखे।

९८-कभी किसीके साथ कपट, छल, धोखेबाजी और विश्वासघात न करे।

९९-ब्रह्मचर्यका पूरी तरहसे पालन करे। ब्रह्मचारीके लिये शास्त्रोमें बतलाये हुए नियमोका यथाशक्ति पालन करे।

१००-इन्द्रियोंका सयम करे। मनमे भी किसी बुरे विचारको न आने दे।

१०१-अपनेसे छोटे बालकम कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसको समझाये अथवा उस बालकके हितके लिये अध्यापकको सूचित कर दे।

१०२-अपनेसे बडेमे कोई दुर्व्यवहार या कुचेष्टा दीखे तो उसके हितैपी बडे पुरुपको नम्रतापूर्वक सूचित कर दे।

१०३-अपनी दिनचर्या बनाकर तत्परतासे उसका पालन करे।

१०४-सदा दृढप्रतिज्ञ बने।

१०५-प्रत्येक वस्तुको नियत स्थानपर रखे और उनकी सम्हाल करे।

१०६-सायकाल सध्याके समय भगवान्‌के *'हरे राम'* मन्त्रकी कम-से-कम एक माला अवश्य जपे और जिसका यज्ञोपवीत हो गया है, उसको सूर्यास्तके पूर्व सध्या-वन्दन तथा कम-से-कम एक माला गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

१०७-अपनेमेसे दुर्गुण-दुराचार हट जायँ और सद्गुण-सदाचार आयें, इसके लिये भगवान्‌से सच्चे हृदयसे प्रार्थना करे और भगवान्‌के बलपर सदा निर्भय रहे।

१०८-अपने पाठको याद करके भगवान्‌का नाम लेते हुए सोये।

संस्कारस्त्रोत

(सत श्रीविनोबा भावे)

हिन्दुस्तान कभी अशिक्षित और असस्कृत नहीं रहा। हर एकको अपने-अपने घरमे शुद्ध सस्कार प्राप्त हुए हैं। जो बडे-बडे पराक्रमशाली लोग हुए, उनके कुलके सस्कार भी अच्छे थे। कुछ गुदडीके लाल भी निकलते हैं, क्योंकि उनकी आत्मा स्वभावत महान् और बडी विलक्षण होती है। इस तरह कुछ अपवादोको छोड दे तो सभी सतामे उनके कुलके सस्कार दिखायी पडते हैं। सस्कारोंसे जो शिक्षण प्राप्त होता है, वह और किसी पद्धतिसे नहीं। कुलपरम्परामें ज्ञानके सस्कारकी तरह भक्तिका भी सस्कार हो सकता है। श्रीतुकारामजीने कहा है—*'भक्ति पथ बहु सोथ।'* समाजमें किस तरह भक्तिभाव स्थापित होगा? भक्तिके लिये मुहूर्त, शुभ काल आदिका कोई प्रश्न नहीं। तत्परता या लगनसे सेवामें खप जाना चाहिये, छोटी-बडी सब तरहकी सेवा करनी चाहिये। यह बात परिवारमें सिखलाना सम्भव है। दोना हाथोसे काम करनेकी सेवाकी भक्तिका अर्थ है—घट-घटमे भगवान्‌को देखनेकी इच्छा। इसके लिये स्कूलमें भी ये सस्कार दिये जा सकते हैं, लेकिन ये बातें बचपनमे ही होनी चाहिये। पालनेसे ही भक्तिका पाठ पढाना चाहिये। माँके दूधके साथ ही कर्तव्य-बोध होना चाहिये। उसके बिना सर्वोदयका शुभ काम नहीं हो सकता। पहलेके भक्तशिरोमणियों, वैष्णवोंमें परम स्नेह पाया जाता था। सेवकोंमें भी हमें यह प्राप्त होना चाहिये। इसीलिये सर्वत्र 'सर्वोदय-पात्र'की योजना की गयी है। उसके आधारपर सेवकवर्ग खडा करना है यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि छोटे बच्चेके हाथसे प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज डालना। यह मुट्ठी परलोकके लिये नहीं है, बल्कि इसके द्वारा समाजकी सेवाकी भावना दृढ हो, इसी इच्छासे ऐसी योजना है। समाजके नीचेके स्तरमे ऐसी व्यापक भक्ति-भावना है, लेकिन कार्यकर्ता ऊपरके स्तरमे ही सचार करते हैं। वे अगर उनके बीच जायँ तो देशकी गुप्तशक्ति प्रकट हो उठे। हमारी आध्यात्मिक शक्ति समाजसेवामें प्रकट होनी चाहिये। गाँधीजीने शराब-बदी-आन्दोलनके समय शराबकी दूकानोपर सत्याग्रह करनेके लिये स्त्रियाको भेजा। सुननेवालोको क्षणभर तो यह बडे आश्चर्यकी, बेतुकी-सी बात मालूम हुई, लेकिन अँधेरा मिटानेके लिये प्रकाशको ही आगे लाना पडता है। कुल एव शीलहीन शराबियोंको उससे निवृत्त करनेके लिये कुल-शीलवती स्त्रियाँ ही विशेष काम आ सकती हैं। स्त्रीसुधारके प्रमुख नेता श्रीअण्णासाहेब तो कहते हैं कि जो काम हमलोग इतने दिन श्रम करके भी नहीं कर सके, वह गाँधीजीने कर दिखाया। हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंमे कितना दिव्य तेज है, यह उन्होंने दिखला दिया। साराश, इसी तरह हिन्दुस्तानकी शक्ति छिपी हुई है, उसे बाहर निकालनेके लिये कुलका सस्कार और भक्तिका प्रचार होना चाहिये। सर्वोदय-यात्राका काम करनेके लिये सेवकोंको भक्तिभावसे भरा होना चाहिये। अगर वे भक्तिभावसे भर जायँगे, एक-दूसरेस प्रेम करना सीखगे तो उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा कि हिन्दुस्तानकी यह कितनी विलक्षण शक्ति है। [साभार—संस्कार-सौरभ]

सस्कारोकी स्वरूप-मीमांसा

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

हिन्दू-जीवन सस्कारोंको बहुत महत्त्व देता है। षोडश सस्कार तो प्रसिद्ध हैं ही, पर इन्हींकी तरह और भी सस्कार होते हैं, जो नियतकालिक न होकर अवसरविशेष या यज्ञविशेषके लिये अपेक्षित होते हैं जैसे सात पाकयज्ञ, सात हविर्यज्ञ, सात सोमयज्ञ। अशौचनिवृत्तिहेतु किये गये अनुष्ठान भी एक विशेष प्रकारके दीक्षात्मक सस्कार हैं। कुछ लोग वानप्रस्थ और सन्यासको भी सस्कार मानते हैं, क्योंकि उनके द्वारा जीवनकी प्रक्रियामे नया मोड लाना सम्भव होता है। सस्कारमे दो बातें सम्मिलित होती हैं—एक तो अनुष्ठान करते समय विश्वास कि यह अनुष्ठान अभीष्ट पुरुषार्थकी पूर्तिमें सहायक होगा, दूसरे, यह बोध होना कि यह अनुष्ठान जीवनसे सम्बद्ध सोपानका प्रतीक है।

षोडश सस्कारोमें गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन और कुछ लोगोके मतसे विष्णुबलि भी जन्मसे पूर्व किया जानेवाला सस्कार है। यहाँ सक्षेपमें इनकी चर्चा प्रस्तुत है—

गर्भाधान-सस्कार—इस सस्कारमें प्रजापतिके व्याहृति मन्त्रोके उच्चारणद्वारा प्रजापतिके आह्वानका विधान है। इसका अर्थ यह है कि प्रजननका कार्य तीनो लोकोमें आत्म-विस्तारका कार्य है और इस भावनासे सस्कृत होकर प्रजननका व्यापार एक पवित्र व्यापार है।

पुसवन-सस्कार—यह सस्कार गर्भके तीसरे मासमे पुत्र-सतान उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे किया जाता है। पितृसत्तात्मक हिन्दू-समाजमे 'पुत्र' सतानका महत्त्व अधिक रहा है, इसलिये इस सस्कारका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सस्कार हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य—इनमेसे किसी एक नक्षत्रमें पति या उसके वशका कोई पुरुष सम्पन्न करता है। वह दूधवाले वृक्षकी टहनी स्त्रीकी दाहिनी नाकमे डालकर जीव-पुत्र मन्त्रका उच्चारण करता है तथा प्रजापतिकी प्रार्थना करता है।

सीमन्तोन्नयन-सस्कार—इस सस्कारमें पुरुष दूबके तीन तिनकोसे या फलयुक्त गूलरकी टहनीसे स्त्रीकी माँग बीचमेसे विभाजित करता है और व्याहृति मन्त्रका उच्चारण करता है। इसके साथ-ही-साथ वीणा-वादन होता रहता है और पुरुष अपने क्षेत्रमें बहनेवाली नदीका नाम लेता है, फिर स्त्रीके सिरमे जौके नये अङ्कुर बाँध दिये जाते हैं और वह नक्षत्र दिखायी देनेतक मौन रहती है। फिर तारे दिखायी देनेपर पुरुष स्त्रीके साथ पूर्व दिशामें जाकर एक बछडेका स्पर्श करता है, तब स्त्री मौन तोडती है।

विष्णुबलि-सस्कार—यह सस्कार गर्भसे आठवें महीनेमे किया जाता है, इसम पद्म या स्वस्तिकाकार वेदी बनाकर भात (ओदन)-की चौंसठ आहुतियाँ विष्णुको दी जाती हैं। यह सस्कार पोषणकर्ता विष्णुके प्रति अभ्यर्थनाके निमित्त किया जाता है।

जातकर्म-सस्कार—पुत्र-जन्मपर यह सस्कार होता है, जिसमे आगमे सरसोकी धूनी दी जाती है और पुत्रका पिता पृथ्वीसे प्रार्थना करता है कि वह सतानसे वियोग न होने दे। साथ ही एक पत्थरपर कुल्हाडी और उसपर सोना रखा जाता है, फिर उसे उलट दिया जाता है, जिससे पत्थर ऊपर आ जाता है और इस पत्थरपर नवजात शिशुको रखकर कहा जाता है—पत्थरकी तरह दृढ, लोहेकी तरह रक्षक और कञ्चनकी तरह तपानेपर भी कान्तिमय बने रहो, सौ वर्ष जियो—

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तुत भव।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरद शतम्॥

नामकरण-सस्कार—नामकरण-सस्कार दसवे या बारहवे दिन प्रसूतिकाके तीन स्नानके बाद सम्पन्न किया जाता है। इस समय अग्नि स्थापित की जाती है और उसमें आहुति देकर पृथ्वी तथा वरुणकी प्रार्थना की जाती है। इसके बाद दो या चार अक्षरका नाम दिया जाता है। दो प्रकारके नाम दिये जाते हैं—एक जन्म-नक्षत्रका नाम जो गुह्य होता है। दूसरा, पुकारका नाम व्यवहारके लिये है। किसा-किसी गृह्यसूत्रके अनुसार कन्याका नाम तीन या पाँच अक्षरका होना चाहिये। नामको सस्कार मानना हिन्दू-चिन्तनका द्योतक है। इसके लिये नाम केवल शब्द हा नहीं, एक कल्याणमय विचार भी है। नाम देते समय यह

भी ध्यान दिया जाता है कि सतानके पिता या पितामहके एकाध नामाक्षर भी उसमे आ जायँ, जिससे कि वह नाम एक सातत्यका सूचक हो। 'कृत्' प्रत्ययमे नामका अन्त होना चाहिये, जिससे क्रियाशीलता बच्चेके जीवनमे आये।

निष्क्रमण-सस्कार—निष्क्रमण-सस्कार लोकाचार ही अधिक है। प्राय घरसे बाहर नवजात शिशुको खुलेमे ले जानेका सस्कार है। आँगन या घरके सामने सफाई करके उसपर स्वस्तिक-चिह्न बनाया जाता है, धानके लावे बिखेरे जाते हैं, तब उस स्थानपर बच्चा लाया जाता है और उसे सूर्य-दर्शन कराया जाता है। इसका अभिप्राय असत्के गर्भसे सत्के प्रकाशमें बच्चेको लाना है।

अन्नप्राशन-सस्कार—प्राय छठे महीनेमे बच्चेको सबसे पहले अन्न दिया जाता है और वह अन्न प्राय दूधमे पके चावलकी खीर होती है। इसमे तीन मन्त्र पढे जाते हैं, जिनका अर्थ है—हमे शक्ति मिले, भोजनका स्वाद मिले, सुगन्धिका आनन्द मिले। इस सस्कारका उद्देश्य यह है कि अन्न हिन्दूके लिये स्वय एक पवित्र वस्तु है, इसलिये उसका प्रथम आस्वाद कराते समय उसके माधुर्यका परिचय कराना, उसके रसका परिचय कराना, उसकी गन्धका परिचय कराना और उसके तेजका परिचय कराना तथा उसके उष्ण स्पर्शका परिचय कराना है और इस मन्त्र-शक्तिकी ध्वनिका परिचय कराना—ऐन्द्रिक अनुभवके भरे-पूरे ससारमे उसे दीक्षित करनेके लिये है। आजकल जातकर्म, नामकरण और निष्क्रमण एक ही साथ सम्पन्न होते हैं तथा अन्नप्राशन अलग सम्पन्न होता है। इन सभी सस्कारोके साथ पितरोका श्राद्ध, देवपूजन और बन्धु-बान्धवो तथा पुरोहितको भोजन भी कराया जाता है।

चौलकर्म-संस्कार—यह पहले, तीसरे, पाँचवें वर्षमे जन्मकालिक केशोका मुण्डन-सस्कार है। ये केश एक प्रकारसे पूर्वकालिक अशुचिताके अवशेष माने जाते हैं और इनके मुण्डनका उद्देश्य स्वास्थ्य तथा शरीरका नया सस्कार ही है। इसी समय शिखा भी रखी जाती है। इसकी प्रक्रिया यह है कि तीन बार ठण्डे और गर्म जलकी धार बच्चेके केशोंपर छोडकर वायुकी आराधना की जाती है और दही तथा जलसे बाल धोये जाते हैं तथा अदितिकी स्तुति की जाती है। बालोंको कुशासे बाँधे रखते हैं और एक-एक बार उन लटोको काटते हुए शमी वृक्षकी पत्तियोके साथ केश काटनेवाला बालककी माताको सौंपता जाता है और इसके बाद वह उनको गोबरसे चिपका देती है। छुरेकी धार पोछते हुए यह कहा जाता है कि इसका सिर पवित्र हो, यह दीर्घजीवी हो। बालकोके चोटी छोड दी जाती है। पहले एक शिखासे पाँचतक गोत्रानुसार छोडते थे, अब एक छोडी जाती है। कहीं-कहीं पहले मुण्डनमें नहीं वरन् दूसरी बारके मुण्डनमे शिखा छोडते हैं। यह मुण्डन बालिकाओका भी होता है, किंतु उनकी शिखा नहीं छोडी जाती।

विद्यारम्भ या अक्षरारम्भ-सस्कार—यह प्राय चौलकर्मके साथ ही होता है। इसमे विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, ऋषियो और कुलदेवताकी स्तुति की जाती है और विष्णु, लक्ष्मी तथा सरस्वतीको घृतकी आहुति दी जाती है। बिखेरे हुए पीले चावलोपर सोनेकी लेखनी या किसी फलवाले वृक्षकी टहनीसे '**ॐ सरस्वत्यै नम , श्रीगणेशाय नम , ॐ नम सिद्धाय**' बालककी उँगली पकडकर लिखाये जाते हैं। श्रुतिसे इतर विद्याकी शिक्षा इसी समयसे शुरू हो जाती है।

कर्णवेध-सस्कार—जन्मसे लेकर पाँचवें-छठे वर्षके भीतर कभी भी करनेका विधान है। वस्तुत कर्णवेध आयुर्वेदका एक विधान है, कई रोगोंके लिये यह निवारकका काम करता है। इसीलिये यह बालक तथा बालिका—दोनोंके लिये है।

उपनयन-संस्कार—उपनयनका अर्थ होता है, गुरुके पास ले जाना। अथर्ववेदमें उल्लेख आता है—आचार्य ब्रह्मचारीका उपनयन करते हुए मानो उसे गर्भमे धारण करता है। तीन रात अपने उदरमे रखता है, बाहर आनेपर उसे देखनेके लिये देवताओकी भीड जमा हो जाती है। इसका महत्त्व सबसे अधिक इसलिये है कि यह मनुष्यके आध्यात्मिक जीवनमें प्रवेशका द्वार है। इसके बाद उसका पुनर्जन्म होता है, एक प्रकारसे प्राकृत शरीरकी मृत्यु और उसमेसे एक नये भावका आविर्भाव होता है। एक प्रकारसे स्वच्छन्दतामें स्वतन्त्रताके सक्रमणका यह प्रारम्भिक बिन्दु है। स्वच्छन्दताका अर्थ है, बन्धन अस्वीकारना और स्वतन्त्रताका अर्थ है, आत्मसयमसे अपनी तथा समष्टिकी इच्छाको जोडना। इसके बाद ही वेदाध्ययनका अधिकार है। इसके पूर्व अपरा या लोकविद्या तो अर्जित की जा सकती थी, पर परा या लोकोत्तर नहीं। यह दीक्षा

सावित्रीदीक्षा है, उस सविताकी दीक्षा है, जो अपने बाहरी प्रकाशसे भीतरी प्रकाशको सक्रिय बनाते हैं और उस भीतरी प्रकाशको सक्रिय बनाकर मनुष्यको अपने प्रकाशसे विश्वको आलोकित करनेके लिये प्रेरित करते हैं। इसीलिये यह सवितासे प्रेरित मन्त्र—गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा है। इस उपनयनके साथ-ही-साथ यज्ञोपवीत, मेखला, मृगचर्म तथा दण्ड धारण भी होता है।

यज्ञोपवीतके तीन सूत्र होते हैं—और प्रत्येक सूत्रम पुन तीन सूत्र होते हैं। इसमे तीन गाँठे रखी जाती थीं और इन गाँठोको सोमकी नीवि (गाँठ) कहा जाता है। वस्तुत यज्ञकी दीक्षा लेते समय ही यह मेखला बाँधी जाती थी और मेखला बाँधते समय यज्ञकर्ता प्रजापतिके रूपमे अपनी अवधारणा करता था। वह प्रजापतिकी पूरी वेश-भूषा धारण करता था और इस रूपमे उसका नया जन्म होता था, उसके पूर्व शरीरकी मृत्यु हो गयी मानी जाती थी। उपनयनके साथ यज्ञोपवीतको जोडनेका यही अर्थ है कि जैसे बच्चा अपने नालसूत्रसे पोषण करनेवाली मातासे सम्बद्ध रहता है और उसके छेदनसे वह स्वतन्त्र हो जाता है, वैसे यज्ञ-ब्रह्मसे सम्बन्ध बनाये रखनेके लिये एक सूत्र आवश्यक होता है और जब उसके पोषणकी आवश्यकता नहीं रह जाती, अहता और ममताका त्याग हो जानेपर सन्यासमे प्रवेशके पूर्व इस सूत्रका भी त्याग कर देना होता है। यह सूत्र एक प्रकारसे प्रजापतिके साथ तादात्म्यका स्मरण दिलानेवाला है, देवकार्य करते समय दाहिना कन्धा मुक्त रखा जाता है, पितृकार्य करते समय बायाँ कन्धा और दिव्य-मनुष्य-तर्पण करते समय इसे मालाकी तरह धारण किया जाता है। अपसव्य या पितृकार्यमे यज्ञोपवीतका दाये कन्धेपर रखनेका अर्थ सम्भवत देवगति (बायेसे दाये)-का पूरक बनना है (दायेंसे बायें), एक आगे जाना है, एक पीछे देखना है। यज्ञोपवीतके लिये कन्धे बदलना एक प्रतीकात्मक सङ्केतमात्र है। मल-मूत्र-त्यागके समय इसे दाहिने कानपर धारण किया जाता है, इसके पीछे वृत्ति-निरोधकी ही भावना सम्भवत हो सकती है। उपनयनमें यज्ञोपवीतके बाद ब्रह्मचर्य-आश्रममें प्रवेशका अधिकार होता है। ब्रह्मचर्यका अर्थ ब्रह्म (प्रजापति) होकर कार्य करना, जिसमें स्वाध्यायके साथ-साथ सारे विश्वसे भिक्षा माँगनेका भाव निहित है, क्योंकि सबसे लेनसे ही अध्ययनमे उदार दृष्टि, आगेकी बात सोची जा सकती है।

वेदारम्भ-सस्कार—इसमे चार प्रकारके वेदव्रताका आरम्भ सम्मिलित है। महानाम्नी, महाव्रत, उपनिषद् और गोदान—ये चार व्रत कहे गये हैं। इस सस्कारके समय गुरु शिष्यको अग्निके पास बैठाता है और निर्दिष्ट देवताके लिये उससे घृतकी आहुति दिलवाता है। इसके साथ ही वेद-राशिरूपी आलोकित ज्ञानके लिये और प्रजापतिके लिये होम भी किया जाता है, तदनन्तर सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्की तथा व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, शिक्षा, कल्प, निरुक्त—इन वेदाङ्गाकी शिक्षा आरम्भ होती है।

केशान्त या गोदान-सस्कार—पहले यह दाढी-मूँछके केश दीखनेपर किया जाता था और यह प्राय सोलहवे वर्षमे सम्पन्न होता था। इस समय एक बार केशवपन होता, तदनन्तर गोदान करके किशोर नयी अवस्थामे प्रवेश करनेका सङ्कल्प लेता था। पहले अध्ययनका कार्य बारहसे सोलह वर्षतक रहता था और अध्ययनके बीचमे ही यह सस्कार सम्पन्न होता था, पर अब यह भी यज्ञोपवीतके साथ प्रतीकात्मक रूपमें कर दिया जाता है।

समावर्तन-सस्कार—समावर्तनका अर्थ घर लौटना है। गुरुकुलसे लौटनेपर पहला स्नान करके व्यक्ति ब्रह्मचारीके परिधानका त्याग करता है और गृहस्थपरिधान धारण करनेका उपक्रम करता है। इसका मुख्य अनुष्ठान था स्नान। अत लौटनेवाला 'स्नातक' कहा जाता था अर्थात् विद्यारूपी प्रवाहमे स्नान कर वह लौट रहा है, यह भाव रहता था। विद्यार्थी इस सस्कारके अवसरपर छाता, जूता, छडी, माला, पगडी, आभूषण धारण करता है और गुरुको भी भेटमे यही देता है। इस सस्कारमे मित्र और वरुण देवताओकी स्तुतिका विधान है। इनके साथ-साथ स्तुतिके कई सूक्त ऋग्वेदमे मिलते हैं।

विवाह-सस्कार—विवाह इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण सस्कार है, क्योकि यही एक ऐसा सस्कार है जो सभी वर्णोंमे समानरूपसे विशद अनुष्ठानके साथ सम्पन्न होता है और इसकी विधिकी पूर्णताकी चिन्ता सबको रहती है। विवाह स्त्री-पुरुष-सम्बन्धको सामाजिक मान्यता तो प्रदान करता ही है, साथ ही गृहस्थाश्रममें प्रवेशके लिये स्त्री-पुरुषके साहचर्य और सहधर्माचरणकी भूमिका भी तैयार

करता है। विवाहके लिये कई शब्दोंका प्रयोग मिलता है—उद्वाह—इसका अर्थ है कन्याको ऊपर ले जाना, विवाह—इसका अर्थ है कन्याको विशेष प्रयोजनसे ले जाना, परिणय—इसका अर्थ है किसीके साथ परिक्रमा करना और पाणिग्रहण—इसका अर्थ है हाथ पकडना। हिन्दूविवाह-संस्कारके कर्मकाण्डके विशद होनेके पीछे चार भावनाएँ काम करती हैं—पहली तो यह कि विवाहके द्वारा दो कुल सम्बद्ध होते हैं और विवाहसे उत्पन्न होनेवाली संतान दोनो कुलोको आगे बढानेवाली होती है।

दूसरी भावना यह है कि स्त्री-पुरुष मिलकर, पूर्ण इकाई बनते हैं और यज्ञ, वह चाहे वैदिक हो, चाहे स्मार्त या पूरा जीवन यज्ञरूपमें भावित क्यो न हो, बिना सहधर्मचारिणीके नहीं किया जा सकता। हिन्दू-धर्ममे सौभाग्यकी देवता गौरी, शिवके आधे अङ्गके रूपमें स्थित मानी जाती हैं, इसीलिये स्त्रीको अर्द्धाङ्गिनी माना जाता है, इसीमें उसकी शोभा है और पुरुषकी भी शोभा है, कोई भी अर्धभाग बेहतर या बदतर नहीं है, दोनों समान हैं।

तीसरी भावना यह है कि विवाह एक आहुतिकी तैयारी है, जिसमे पति-पत्नी दोनों सहभागी होते हैं, जिसमें परिवार, गाँव, जनपद, देश, विश्वके प्रति उत्सर्ग करनेकी भावना प्रारम्भ करते हैं। चौथी भावना यह है कि विवाह एक स्थायी सम्बन्ध है। विवाहके समय ध्रुवका दर्शन कराना, अरुन्धतीका दर्शन करानेके पीछे यही एक अभिप्राय निहित रहता है। विवाहका विधिवत् संस्कार तो मात्र ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य—इन चार प्रकारोंमें ही होता है और इस विधिवत् संस्कारमे मुख्य हैं—वाग्दान, मण्डप-निर्माण और देवपूजा, आभ्युदयिक या वृद्धि-श्राद्ध, वर-पूजन, गोत्रोच्चारपूर्वक कन्यादान और पाणिग्रहण, अग्नि-प्रदक्षिणा, लाजाहोम, सप्तपदी, अश्मारोहण, हृदयस्पर्श, ध्रुवदर्शन। कहीं-कहीं सिन्दूर-दान, त्रिरात्रव्रत और चतुर्थीकरण भी जुडते हैं। इनमें भी चार अत्यन्त आवश्यक हैं, इनके बिना विवाह अपूर्ण माना जाता है। ये चार हैं—कन्याका पाणिग्रहण, जिसमें पिता वरसे कहता है, तुम अपनी विवाहितासे धर्म, अर्थ, कामका छल नहीं करोगे और वर प्रतिज्ञा करता है—'छल नहीं करूँगा'। इसी समय पिता कन्याका हाथ वरके हाथमें देता है और वर तथा कन्याकी तीन पीढियोंका स्मरण करते हुए दोनों कुलोको याद किया जाता है।

लाजाहोम—इसमे भुने हुए धानके लावासे तीन आहुतियाँ दी जाती हैं। तीन दाये और एक बायें और इसी समय वर-वधू प्रदक्षिणा करते हैं।

सप्तपदी—वेदीपर स्थापित अग्निसे उत्तरकी ओर चावलकी सात ढेरियोपर वर-वधू एकके पीछे एक पैर रखते तथा सात प्रतिज्ञा करते हैं। एकके बाद दूसरी प्रतिज्ञा एक-दूसरेके तादात्म्यके स्तरोकी भावनाके लिये की जाती है। सातवीं प्रतिज्ञा उनके पूर्णरूपसे तादात्म्यकी होती है, बिना इस क्रियाके विवाह पूर्ण नहीं माना जाता। आजकल सप्तपदी और अग्नि-परिक्रमाको मिलाकर सात भाँवरोंके रूपमे कर दिया गया है, पर सप्तपदी वस्तुत सात प्रतिज्ञाओका ही द्योतक है। इनके अलावा और अनुष्ठान हैं, उनमें जहाँतक चतुर्थीकर्मका प्रश्न है, वह अब लुप्तप्राय है, इसका प्रयोजन खीरकी आहुति देकर वर-वधूको खिलाना है, जिसके बाद ही उनका शारीरिक सम्बन्ध होना काम्य है। तीन दिनतक इस प्रकारके एकीकरणके पूर्व व्रत करना होता है, जिससे सूचित होता है कि विवाह उद्दाम भोगके क्षेत्रमें प्रवेश नहीं है, यह संयत जीवनके आनन्दकी दीक्षा है।

विवाहके साथ-ही-साथ अधिकतर वधू विदा होती है और उसका प्रथम प्रवेश पतिगृहमें माङ्गलिक विधिसे होता है, उसका स्वागत घरकी लक्ष्मी तथा गृहस्वामिनीके रूपमें किया जाता है। इसी एक भावनाके कारण हिन्दूसमाजमें पुरुषकी प्रधानता होते हुए भी गृह-क्षेत्रमें नारीका सम्मान अधिक है, क्योंकि वह गृहक्षेत्रमें सम्राज्ञी रूपमे है। यही भावना मन्त्रोंद्वारा भरी जाती है और यही भावना हिन्दू-विवाह-सम्बन्धको स्थायी, पवित्र और संतुलित बनाये रखती है।

कुछ लोग वानप्रस्थ और सन्यासको भी संस्कार मानते हैं, पर वानप्रस्थके लिये कोई विशेष विधान नहीं है, केवल घर छोडकर पति-पत्नी भोगविरत होकर वनमें रहकर देवपूजन करनेका एक सङ्कल्प लेते हैं और परिवारका दायित्व प्राय बडे लडके या कुलके नये कर्ताको सौंप देते हैं।

सन्यास-आश्रम वस्तुत निर्वर्णताकी स्थितिका प्रारम्भ है, इसीलिये शिखा-सूत्र—सबका परित्याग करना होता है। सन्यासी होनेके विधानमें सबसे पहला यह है कि मनुष्य अपने शरीरको शव मान लेता है और वह व्यक्तिके रूपमें,

शरीरके रूपमे मृत होकर नारायणके साथ आत्मरूप होकर विचरणका सङ्कल्प लेता है। उसके नियमोमे काषाय वस्त्र, दण्ड-धारण और परिव्रजन आवश्यक हैं। वह किसी एक व्यक्ति या परिवारपर आश्रित नहीं रहता—पूरे समाजके लिये पूरे समाजपर आश्रित रहता है। वह प्रत्येक व्यक्तिमे नारायणको देखता है और अग्रिका स्पर्श नहीं करता। अग्रिका स्पर्श करनेका अर्थ है—कर्मका स्पर्श और वह कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ, दोनोको ज्ञानकी अग्रिमे झाककर ही सन्यास लिया जाता है। इसीलिये सन्यासीका अग्रि-सस्कार नहीं होता, उसका शव प्रवाहित कर दिया जाता है।

अन्त्येष्टि-सस्कार—अन्त्येष्टि शब्दका अर्थ है, अन्तिम यज्ञ। हिन्दूधर्म जीवनकी निरन्तरतामें विश्वास करता है, इसलिये मृत्युको वह एक अर्द्धविराममात्र मानता है, अवसान नहीं मानता, इसे दूसरे जन्ममे प्रवेशका द्वार मानता है, जीवनकी समाप्ति नहीं मानता। हाँ, उसे स्थूल-शरीरकी समाप्ति मानता है और मृत्युके बाद स्थूल-शरीरको वह अशुचि मानता है, उसे छूनेमे अपवित्रताका ससर्ग मानता है। मृत शरीरका दाह या प्रवाह करनेके पीछे भावना यही है कि कारण-शरीरके छोड देनेपर स्थूल-शरीर हेय है, वह पञ्चतत्त्वोंका बना है, उसे पञ्चतत्त्वोको सौंप देना चाहिये। अग्रि पावक है, पवित्र करती है, अत अग्रिको सौंपनेसे अधिक शुद्धरूपमे शरीरके तत्त्व वितरित हागे, इसी भावनासे दाह ही मुख्य विधि है। प्रवाह, सन्यासीके शरीरका ही प्राय होता है। उसका प्रयोजन यह है कि सन्यासी शुद्धरूपसे दूसरोके लिये जीता है। वह पवित्र है, उसका मृत शरीर भी जलचर प्राणियोके काम आये, इसलिये उसे प्रवाहित किया जाय। दूसरे यह भी है कि सन्यासी सन्यास आश्रममे प्रवेश करनेके पूर्व अग्रि-परित्याग कर चुका होता है, एक प्रकारसे उसका तप शान्त हो गया होता है, वह अग्रिके व्यक्तरूपको छोडकर जलके अव्यक्तरूपमे प्रविष्ट हो चुका होता है, वह सनातन प्रवाह हो चुका होता है इसलिये भी उसके शरीरको जलम प्रवाहित करनेकी सगति है।

अग्रि-सस्कारके बाद जो भी अनुष्ठान होते हैं वे पिण्डदानात्मक हैं, दस दिनातक निरन्तर एक-एक पिण्ड दिया जाता है, दाहतक ६ पिण्ड शवयात्राके दौरान दिये जाते हैं और इन सोलहके द्वारा कारण-शरीरका पुन सयोजन और पोषण प्रयोजित होता है। इसके बाद सपिण्डीकरण श्राद्धके द्वारा मृत व्यक्तिको पितराकी श्रेणीमे प्रवेश दिलाया जाता है, सपिण्डीकरणके पूर्व उसकी 'प्रेत' सज्ञा रहती है। वह शरीर और भावनारूप अस्तित्वके बीचमे लटका रहता है, पितर होते ही वह एक भावनात्मक अस्तित्व बन जाता है, प्रेतदशामे उसकी आसक्ति शरीरसे बनी रहती है। प्रेतत्वमुक्तिका अर्थ है—जीवको सचरणके लिये मुक्ति दिलाना। इसके बाद उस जीवकी स्मृति एक ऐसी शक्तिके रूपमे सुरक्षित की जाती है, जो चार पीढियोतकके मानवीय अस्तित्वके साथ सहभोक्त्री हो सके, सहपिण्ड-भागी या सपिण्ड हो सके। सपिण्डीकरण अनुष्ठानमे इसीलिये प्रेत-पिण्डको पितरोके पिण्डके साथ मिलाया जाता है। ये प्रतीकात्मक अनुष्ठान उन पीढियोंके साथ अपना एकीकरण स्थापित करनेके लिये हैं, जिनके जीवकोश (gene) व्यक्तिमे सक्रान्त हुए है। हिन्दूधर्म सूक्ष्मको स्थूलमे और स्थूलको सूक्ष्ममे मन्त्रभावनासे रूपान्तरित करनेमे विश्वास करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह सूक्ष्मको स्थूल या स्थूलको सूक्ष्म देखता है। इसका प्रमाण यह है कि हिन्दूधर्म स्थूल पिण्ड भी इस सूक्ष्म भावनासे देता है कि इसका सूक्ष्म रस सूक्ष्मभावसे वर्तमान पितृसत्ताको मिलेगा और उस समय उसके लिये यदि पिता स्थूल आकार ग्रहण करके आये भी तो वे वास्तविक रूपसे पिण्डके भागी नहीं होगे अपितु पिण्डभागी होगी आसनपर भावनाद्वारा उपस्थापित सूक्ष्म उपस्थिति। श्राद्धकर्म जिस तृप्ति और पोषणके लिये किया जाता है, उस तृप्तिका हिस्सेदार श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति स्वय होता है, इसीसे श्राद्धपिण्डको अन्तमे सूँघनेका विधान है। श्राद्ध-सस्कार एक परम्पराकी पूर्णताकी अनुस्मृतिका अनुष्ठान है।

हिन्दूधर्मका स्वरूप बाह्य दिखता है पर वस्तुत वह बाह्य न होकर आभ्यन्तर है, वह परोक्षका प्रत्यक्ष अनुभव है।

~~~0~~~
~~~

विवाह-संस्कार

[अपने शास्त्रोमे अनेक सस्कारोका वर्णन है। ससारमे जीवन-यापनकी दृष्टिसे सर्वसाधारण विवाह-सस्कारको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करते है। भारतीय सस्कृतिमे विवाह कामाचार एव भोगका साधन नहीं, यह दो आत्माओका पवित्र मिलन है, जो देवता और अग्निकी साक्षीमे सम्पन्न होता है। विवाह-संस्कारपर कुछ महापुरुषोके विचार उपलब्ध है, जिन्हे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—सं०]

विवाह-संस्कार

(शृङ्गेरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

परस्परतपस्सम्पत्फलायितपरस्परौ ।
प्रपञ्चमातापितरौ आद्यौ जायापती स्तुम ॥

मनुष्यके लिये धर्माचरणपूर्वक जीवन बिताकर परम लक्ष्य—परम तत्त्वको प्राप्त करनेमे अपनी स्थितिके अनुसार चार आश्रमोंकी आवश्यकता बतलायी गयी है। ये चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास हैं। हर एक आश्रम भी भगवत्प्राप्तिमें सहायक होता है। ब्रह्मचर्यमे विद्या सीखनी है। सीखी हुई विद्याकी अनुभूति और पितृ-ऋण-विमोचनार्थ सतति-प्राप्ति गृहस्थाश्रममे करनी है। वानप्रस्थमें भगवच्चिन्तन करते-करते मनके सारे वेगोको नष्टकर तीव्र वैराग्य प्राप्त करना है और सन्यासमें आत्मस्वरूपको जानकर परमानन्द-सागरमे विलीन होना है।

आजकल लोग उपनयन और विवाहको केवल एक उत्सव मान बैठे हैं। उन सस्कारोका तात्पर्य बहुत-से लोग नहीं समझते। गृहस्थाश्रमको तो विषय-सुखका साधनमात्र समझते हैं और उस सुखमे अन्तर पडनेपर परस्पर परित्यागतक करनेको तैयार हो जाते हैं। इस स्थितिमे किसीको भी शान्ति नहीं मिल सकती और जीवन विषमय एव अधर्ममय होनेसे जन्मान्तरमें भी वे सुख-प्राप्ति नहीं कर पायँगे।

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें सीताजीके विवाहके अवसरपर श्रीजनकजी कहते हैं—

इय सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥
प्रतीच्छ चैना भद्र ते पाणि गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥
(बालकाण्ड ७३। २६-२७)

'यह मेरी बेटी सीता तुम्हारी सहधर्मचरी है। 'सहधर्मचरी' शब्दसे यह भाव प्रतीत होता है कि आजतक तुम अकेले धर्म कर रहे थे। अबसे तुम्हारे धर्मकार्योंमे मेरी पुत्री सीता सहकार देनेवाली हो गयी है, इससे तुम्हारे धर्मकार्य सुचारुरूपसे सरस सम्पन्न होगे।' बहुत-से धर्मकार्य—जैसे अतिथि-सत्कार, भगवत्पूजा, घरके बडे लोगोकी सेवा इत्यादि अकेले नहीं किये जा सकते। उनमे दूसरोकी सहायताकी आवश्यकता होती है। इन धर्मोंके निर्वाहके उद्देश्यसे ही विवाह करना है, विषय-सुख विवाहका उद्देश्य नहीं होना चाहिये। वह तो अपने-आप ही मिल जायगा। हम आमका पेड लगाते हैं फलकी इच्छासे, किंतु छाया और सुगन्ध भी अपने-आप मिलेगे ही। वैसे ही धर्माचरण करनेवालेको अर्थ-काम अपने-आप मिलेंगे। महाकवि कालिदासने गृहस्थाश्रमको सर्वोपकारक्षम आश्रम कहा है। शेष तीनो आश्रम गृहस्थका सहारा लेकर ही पनपते हैं। अत इस आश्रममें आनेवालोंके लिये दूसरोका परिपालन करना ही धर्म है। इसीमे इसका महत्त्व है।

विवाह एक सस्कार है। सस्कारका अर्थ है—दोषोका नाश करनेवाला और गुणोंको जन्म देनेवाला कर्म। विवाह-सस्कारसे आत्माकी उन्नति होती है। इस सस्कारके द्वारा पति-पत्नीमे उत्पन्न होनेवाला प्रेम पवित्र होता है। सतान धर्मनिष्ठ बनती है। इस सस्कारसे बँधे हुए पति और पत्नी धर्म, अर्थ और कामरूपी पुरुषार्थोंमें मर्यादाका कभी भी अतिक्रमण नहीं कर पाते। विवाहके समय अग्निदेवताके समक्ष मन्त्रोच्चारणपूर्वक वे कहते हैं कि 'हम दोनोका हृदय एक है। हम धर्मार्थकाममे कभी

मर्यादाका अतिक्रमण नहीं करेगे।' इस पवित्र सस्कारसे बँधे हुए पति-पत्नी—दोनो धर्मानुष्ठान करते हुए भगवान्‌की कृपाके पात्र बन सकते हैं—

प्रेयो मित्र बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामा सम्पदो जीवित च।
स्त्रीणा भर्ता धर्मदाराश्च पुसा-
मित्यन्योन्य वत्सयोर्ज्ञातमस्तु॥

वर और वधू समझ ले कि सुख, मित्र, सारे बन्धुवर्ग, सारी कामनाएँ, सम्पदाएँ और जीवन भी वरके लिये वधू और वधूके लिये वर ही है।

~~~o~~~

आर्य-विवाह-संस्कारके उद्देश्य और रहस्य

(सर्वदर्शननिष्णात तर्कवेदान्तशिरोमणि आचार्यप्रवर अनन्तश्री स्वामीजी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी महाराज)

आर्योंने पवित्र, सरल, स्थिर और सुखमय जीवन-यापनके उद्देश्यसे मानव और मानवीके लिये अपने जीवनको सयम, सदाचार, त्याग, तप, सेवा, शान्ति एव धर्म आदि अनेक कल्याण-गुणोसे परिष्कृत करने एव अविनय, कदाचार तथा विलासिता आदि दुर्गुणोंसे दूर रहनेके लिये 'विवाह-सस्कार' को आवश्यकतम माना है। उनके विज्ञानमें इस पवित्रतम सस्कारके बिना इन आवश्यक कल्याण-गुणोका विकास एव दुर्गुणोंका उच्छेद दु शक्य ही नहीं, अपितु असम्भव है।

इस सस्कारका प्रथमरूपसे उल्लेख विश्वके सर्वप्रथम ग्रन्थ ऋग्वेदमें सूर्या और सोमके विवाहरूपमें उपलब्ध होता है। विवाह-सस्कारकी आवश्यकता एव 'विवाह' शब्दके अर्थका भी प्रथमरूपसे उल्लेख ऋग्वेदके ब्राह्मणग्रन्थ 'ऐतरेय' में पृथिवी और सूर्यके विवाहरूपमे हुआ है।

विवाह-सस्कारकी आवश्यकता

'विवाह-सस्कार' की आवश्यकताका आकलन करते हुए इतराके पुत्र महीदासने रहस्यका वर्णन करते हुए कहा है कि विश्वमें जबतक पृथिवी और सूर्य 'विवाह-सस्कार'-से सस्कृत होकर परस्पर सयत नहीं हुए थे, तबतक परस्पर अपूर्ण होनेके कारण दोनों ही 'नावर्षन्न समतपत्' न तो सूर्य वर्षा करनेमें समर्थ हो सके और न पृथिवी ही औष्ण्य प्रदानमें समर्थ हो सकी। इससे देव-मनुष्यादि पाँच प्रकारकी प्रजाएँ निश्चेष्ट और निश्चेतन होकर उच्छिन्न होने लगीं। इस आपत्तिसे त्राण पानेके लिये देवोंकी प्रार्थनापर विश्वकल्याणके लिये सूर्य और पृथिवी 'तौ संयन्तौ एतं देवविवाहं व्यवहेताम्' 'विवाह-सस्कार' से सस्कृत हो गये। इससे दोनाकी शक्तियोका परस्परम विवहन (सम्मेलन) हो गया, जिससे पृथिवी 'रथन्तर' शक्तिसे सूर्यकिरणोंमें ताप (औष्ण्य) पहुँचाने लगी। सूर्य 'बृहत्' शक्तिसे वर्षाद्वारा पृथिवीका प्रीणन करने लगा। दोनोके इस दाम्पत्यभावसे विश्व सुखी, शान्त और समृद्ध होकर प्रकाशित हो गया।

'विवाह' शब्दका अर्थ

वेद-भाष्यकार सर्वश्री सायणाचार्यजीने 'ऐतरेय' ब्राह्मणका भाष्य करते हुए 'विवाह' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार की है—'तदिद विपर्यासेन सम्बन्धनयनं विवाहम्' परस्पर विरुद्ध-स्वभाव दो मौलिक शक्तियोंका विश्व-कल्याणके उद्देश्यसे अन्योन्य-सम्बन्ध-स्थापन 'विवाह' है। ऋषिका तो यहाँतक आवेदन है कि इस सस्कारसे सस्कृत होकर ही स्वय प्रजापति भी वेद, लोक, प्रजा और धर्म—इन चार सृष्टियोंके सर्जनमें समर्थ हो सके हैं।

आर्य-विवाह-सस्कारका महत्त्व

आर्य-विवाह-सस्कारके लक्षण, उद्देश्य और रहस्य ही इसकी महत्ताको प्रकट कर रहे हैं। वैदिक ब्राह्मणग्रन्थोंमें पदे-पदे कहा गया है कि 'देवानुकारा वै मनुष्या' आर्योंकी आचारसहिता प्राकृत आचार-सहितापर अवलम्बित है। अत आर्योंका विवाह-सस्कार भी निसर्गके नियमों और रहस्योंपर अवलम्बित है, यह उसके लक्षणोंसे ही स्पष्ट हो रहा है।

विवाह-सस्कारके लक्षण, उद्देश्य और रहस्य

१-'विवाह-सस्कार' वह संस्कार है, जिससे संस्कृत होकर मानव विशेषत आर्यप्रजावर्ग वेद, लोक, प्रजा और
~~~

धर्म—इन चार भावोकी कृतकृत्यता सम्पादन करनेमे समर्थ होता है।

बिना विवाह-सस्कारके न तो इसे वेदमूलक यज्ञधर्मका ही अधिकार है, न लोकप्रतिष्ठा ही है, न प्रजा-समृद्धि है और न धर्मसग्रह ही है।

२-जिस सस्कारके बलसे मानव अपने अध्यात्म-प्रपञ्चको अधिभूत-प्रपञ्चके द्वारा अधिदैवत-प्रपञ्चके साथ सयुक्त करनेम समर्थ होते हैं—वही सस्कार 'विवाह-सस्कार' है।

यजुर्वेदके 'शतपथ' ब्राह्मणग्रन्थमें भगवान् याज्ञवल्क्यका विज्ञान है कि बिना 'विवाह-सस्कार' के मानव 'अर्धेन्द्र' अर्थात् अपूर्ण हैं। पूर्ण पुरुप प्रजापतिके साथ सायुज्यप्राप्ति करनेके लिये इसकी 'अर्धेन्द्रता' की 'पूर्णेन्द्रता' म परिणति आवश्यक है। अर्धेन्द्र पुरुषकी वह पूर्णता एक पत्नीके सयोगपर ही निर्भर है। यही पत्नी इसके अर्धांशको पूर्ण करती है, इसे पूर्ण पुरुषके समकक्ष बनाती है। इन सब प्रकृतिसिद्ध कारणोंसे ही आर्योंने इस सस्कारको आवश्यकतम माना है।

पुरुष अथवा स्त्री अर्धेन्द्र (अपूर्ण) इसलिये हैं कि विषुवत् वृत्तका आधा दृश्यभाग ही पुरुषमे आता है, अदृश्य आधाभाग स्त्रीका उत्पादक बनता है। पूरे विषुवत् वृत्तमें ९०-९०-९०-९० इस क्रमसे चार पाद हैं। इसलिये सवत्सर प्रजापति भी चतुष्पाद है। इसके दो पाद अग्निप्रधान हैं तथा दो पाद सोमप्रधान हैं। अतएव अग्निप्रधान पुरुष भी द्विपाद है और सोम-प्रधाना स्त्री भी द्विपदा है। जबतक चारो मिल नहीं जाते, तबतक इसमे चतुष्पाद ब्रह्मकी पूर्णता नहीं आती।

खगोल (सवत्सर)-का सूर्यप्रधान आधा दृश्यभाग बाह्य सस्थासे सम्बन्ध रखता है। अतएव तत्प्रधान पुरुष बाह्य सस्थाका सचालक माना गया है। रात्रिप्रधान आधे अदृश्यभागका अभ्यन्तर सस्थासे सम्बन्ध है। अतएव सोमप्रधाना स्त्री घरकी प्रतिष्ठा है। गृह-सस्थाका सचालन एकमात्र स्त्रीपर ही अवलम्बित है। सीमानुगता होनेसे लज्जा, शील, विनय, सेवा, त्याग एव पतिवर्त्यानुगता आदि इसके नैसर्गिक धर्म हैं। सौम्यधर्मानुगता स्त्री एव उग्रकर्मानुगत पुरुष दोनों जबतक विवाहसूत्रसे सीमित नहीं हो जाते, तबतक दोनों ही अर्धेन्द्र हैं, अपूर्ण हैं।

३-जिस सस्कारसे सस्कृत होनेपर शरीरोंके पृथक्-पृथक् रहनेपर भी सस्कृत दो व्यक्तियोका आत्मा एक बन जाता है, वही सस्कार 'विवाह-सस्कार' है। अतएव लोकान्तरमे भी इस दाम्पत्यभावका प्रवाह प्रवाहित रहता है।

स्थूलदृष्टि अबुद्ध मानवोके ज्ञानकी तो कुछ कीमत नहीं है। उनकी दृष्टिमे तो विवाह एक लौकिक कर्म है, वैषयिक तृप्तिका साधनमात्र है, परतु एक प्रबुद्ध मानवकी दृष्टिमें तो 'विवाह' एक अलौकिक सम्बन्ध ही है। उनकी दृष्टिमें विवाह एक ऐसा धार्मिक सम्बन्ध (सस्कार) है, जो कभी किसी भी उपायसे विच्छिन्न नहीं किया जा सकता।

४-जिस सस्कारके बलसे मानव मानवीमात्रमे निसर्गत प्रवृत्त अपने रागको एक मानवीमे और मानवी मानवमात्रमे निसर्गत प्रवृत्त अपने रागको एक मानवमें सयत (नियन्त्रित) करनेमें समर्थ हो सके, वही सस्कार 'विवाह-सस्कार' है।

शतपथमें महर्षि याज्ञवल्क्यका विज्ञान है कि एक ही तत्त्व स्त्री-पुरुषरूप दो भागोंमें विभक्त हो गया, अत इनमे परस्पर आकर्षण निसर्गजन्य है। सर्वत प्रवृत्त इस रागको एकमे नियन्त्रित करना आवश्यक है। इसका सर्वोत्तम और सरल उपाय 'विवाह-सस्कार' ही है।

५-जिस सस्कारके बलसे लौकिक रागको दिव्य राग (भक्ति)-मे परिणत किया जा सकता है, वही दिव्य सस्कार 'विवाह-सस्कार' है। लौकिक प्रेम ही आसक्ति है, अलौकिक प्रेम ही भक्ति है। लौकिक आसक्ति ही ससार है। ईश्वरमे आसक्ति ही भक्ति है। भक्ति ही मुक्ति है। लौकिक आसक्तिका तिरोभाव एव अलौकिक आसक्तिका आविर्भाव ब्रह्मचर्य, सयम, सेवा और सदाचार आदि दिव्य गुणोसे ही सम्भव है। इन दिव्य गुणोंके उत्पादनमे विवाह ही सहकारी माना गया है। अत विवाह-सस्कारको भी

महर्षि वात्स्यायन मुक्तिका परम्परया कारण मानते हैं। उनका आदेश है—

तदेतद् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना।
विहितो लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य सविधि ॥
एवमर्थं च काम च धर्मं चोपाचरन्नर।
इहामुत्र च नि शल्यमत्यन्त सुखमश्नुते॥

नियन्त्रित कामका सेवन भगवदुपासना है। यह गीता और ऐतरेय ब्राह्मण दोनाका आदेश है।

६-जिस सस्कारसे सस्कृत होकर मानव-मानवी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, उसके द्वारा कुटुम्ब-स्वातन्त्र्य, उसके द्वारा समाज-स्वातन्त्र्य, उसके द्वारा राष्ट्र-स्वातन्त्र्य और उसके द्वारा विश्व-स्वातन्त्र्यकी रक्षा करनेमे समर्थ हो सकते हैं, वही विश्व-रक्षक सस्कार 'विवाह-सस्कार' है।

तन्त्र शब्दका अर्थ वेदोमे 'मर्यादा' है। अपनी-अपनी नैसर्गिक मर्यादा ही अपना-अपना स्वातन्त्र्य है। उच्छृङ्खलता ही पारतन्त्र्य है। अत व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यका अर्थ हुआ व्यक्ति-मर्यादा। अनुशासन (धर्म), विनय, विद्या, सरलता, त्याग, तप, सेवावृत्ति एव जितेन्द्रियता आदि ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य हैं। इस प्रकारका स्वतन्त्र व्यक्ति ही राष्ट्ररक्षा और विश्वरक्षामे सहयोगी बन सकता है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य (मर्यादित जीवन)-का विवाह-सस्कार मूल है। जैसा कि कहा गया है—

रक्षन् धर्मार्थकामाना स्थिति स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रिय ॥

—जितेन्द्रियता ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य है।

७-जिस सस्कारसे सस्कृत मानव तीन ऋणोंसे छुटकारा पानेका अधिकारी हो जाता है, वही सस्कार 'विवाह-सस्कार' है।

मानवमात्र जन्मना ही देव-ऋण, पितृ-ऋण एव मनुष्य-ऋण—इन तीन ऋणोंसे ऋणी रहता है। इनको हटाये बिना इसका कल्याण सम्भव नहीं है। इन तीनों ऋणोंका क्रमश यज्ञ, प्रजोत्पत्ति और अतिथि-सत्कारसे निराकरण होता है। अत प्रत्येक दशाम 'विवाह-सस्कार' आवश्यक हो जाता है।

जातिगोत्र-मर्यादा

विवाह-सस्कारसे सम्बन्ध रखनेवाले जाति, गोत्र एव वय आदिकी सुरक्षासे ही प्रजाका वर्णधर्म सुरक्षित रहता है। वर्ण नाम रगका है। यहाँपर वैश्वानर आत्माके निसर्गसिद्ध और जन्मजात विभिन्न प्रकारके रग (प्रकाश) ही वर्ण-शब्दसे अभिहित हैं। वर्णधर्म आर्यप्रजाका सर्वस्व है। स्व-स्व-जात्यनुगत शुद्ध रजोवीर्यसे उत्पन्न सताने ही बल, वीर्य, पराक्रमवती बन सकती हैं, ऐसी ही सताने राष्ट्रके अभ्युदयमें कारण बन सकती हैं।

लौकिक कर्म मानना भ्रम

जो महानुभाव ससर्गदोपजनित प्रवाहमे पडकर इसे एक लौकिक कर्ममात्र माननेकी भूल करते हुए अन्तरजातीय विवाह, विवाह-विच्छेद आदिके समर्थक बनते हैं, वे अवश्य ही आर्यधर्म, आर्यसभ्यता और आर्यसस्कृतिके अन्यतम शत्रु हैं। वे लोग प्रकृतिविरुद्ध आचरण करते हुए मानव-समाज और व्यष्टि-समष्टिकी उन्नति, सुख, शान्ति एव प्राणिमात्रके कल्याणके विनाशक हैं। परमात्मा उनके हृदयको वेदके गूढज्ञान-दीपसे प्रकाशित कर।

आर्यकन्याके लिये उपदेश

विवाह-सस्कारोत्तर आर्यकन्या किन-किन उपचारोंसे पति-परमेश्वरकी उपासना करे, उनका विस्तारसे वर्णन धर्मशास्त्रोमे है। उनका सक्षेपत निर्देश इस श्लोकमे किया गया है—

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरर्चनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यै पुत्रि निवेदित कुलवधूसिद्धान्तसारागम ॥

इसका भाव है—गृहपतिके बाहरसे आनेपर खडा हो जाना, उनसे बोलते समय नम्रताका व्यवहार, उनके चरणाकी ओर दृष्टि रखना, उनका पूजन करना तथा उनकी सेवा-शुश्रूपा अपने हाथासे करना, उनके सो जानेपर ही स्वय लेटना और उनके जागनेसे पूर्व ही चारपाई छोड देना—बेटी! प्राच्यदेशवासी आर्योंने कुलवधूके आचरणका साररूप यही बताया है।

गृहस्थाश्रम और विवाह-संस्कार

(पूज्यचरण आचार्य त्रिदण्डीस्वामी श्रीभक्तिकमल पर्वतजी महाराज)

विश्व-समाजमे हिन्दूके धर्म, ऐतिह्य और संस्कार एक आश्चर्यजनक सामाजिक, धार्मिक और पारमार्थिक वैशिष्ट्यको लिये हुए आजतक अपने पूर्ण गौरवसे गौरवान्वित हुए खडे हैं।

जहाँ अन्यान्य प्राचीन सभ्यताएँ और धर्मव्यवस्थाएँ कालके कराल मुखका ग्रास बनकर अपने-अपने ऐतिह्यको खो चुकी हैं, वहाँ एकमात्र हिन्दू-समाज ही ऐसा है, जो आज भी प्राचीन धर्मव्यवस्थाको अक्षुण्ण बनाये रखनेमे समर्थ है।

इस हिन्दू-समाजके प्राचीन ऋषि-मुनियोने अपने-अपने तपस्यापूर्ण त्याग-वैराग्य और उपासनाके फलस्वरूप परात्पर वस्तु भगवान्का सानिध्य प्राप्त किया था। वे सामाजिक जीवनम परोपकारकी वृत्तिसे अपना समय लगाते थे। आदर्श सामाजिक जीवनका पालन करनेपर समाजका, जातिका, देशका और विश्वका आत्यन्तिक कल्याण होता है—यह समझकर उन ऋषि-मुनियाने समाज-व्यवस्थाको वर्णाश्रममें विभक्त करके प्रत्येक वर्ण और आश्रमके धर्मको एक धर्म-व्यवस्थामें स्थापित कर दिया था। उसी दैव-वर्णाश्रमधर्मकी भित्तिपर आस्था रखकर आजतक हिन्दू-समाज विभिन्न प्रकारके सामाजिक आचार तथा कर्तव्योका पालन कर हिन्दूधर्मकी एकता और विशेषताकी मर्यादाका सरक्षण करनेमें समर्थ हो सका है।

वर्णाश्रमधर्म—चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) एव चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास)-मे विभक्त है।

धर्म-व्यवस्थाके माध्यमसे विवाह-सस्कारमें आबद्ध वर-वधू किस प्रकारसे हिन्दूधर्मके प्रधान स्तम्भके रूपमें स्थित होकर समाजको कल्याणके मार्गपर ले जा रहे हैं—इस विषयपर यहाँ यत्किञ्चित् विचार किया जाता है।

पारस्करगृह्यसूत्रमें हिन्दू-विवाहके लिये जिन अनुष्ठानो और सस्कारोका निर्देश किया गया है, उनपर किञ्चित् विचार करनेपर हिन्दूधर्ममें विवाहकी मौलिकता और विशिष्टताके सम्बन्धमें हमे कुछ परिचय प्राप्त हो सकता है।

मधुपर्क—कन्याके घरपर आये हुए वरको सबसे पहले आसन प्रदान करके मधुपर्क दिया जाता है। इस प्रकार सम्मान ग्रहण करके वर सभामे उपस्थित व्यक्तियोमे अपनेको श्रेष्ठ वरणीय पुरुष होनेकी घोषणा कर कन्याके हृदयमे अपने सर्वश्रेष्ठ पुरुषत्वकी प्रतिष्ठा करता है।

वासपरिधान—इसके पश्चात् वर कन्याको वस्त्र प्रदान करता है। वस्त्र-प्रदानका रहस्य यह है कि विवाहके बाद वर अपनी वधूको आवश्यक वस्त्राच्छादनादि वस्तुएँ जीवनभर देता रहेगा। '**जरा गच्छ परिधत्स्व वास**'—मन्त्रके द्वारा वस्त्र प्रदान करनेका तात्पर्य यह है कि वर अपनी वधूके प्रति दीर्घजीवन प्राप्त कर दिये हुए वस्त्रादिका सद्व्यवहार करनेकी इच्छा प्रकट करता है।

इसके बाद वर-वधूके ऐक्य-स्थापनके लिये विविध मन्त्रोके माध्यमसे कार्य किये जाते हैं।

इसके पश्चात् वर कन्याको अङ्गीकार करनेकी इच्छा प्रकट करके मन्त्रके द्वारा अभिषिक्त करता है, तदनन्तर कन्या मन्त्रके द्वारा यह कहती है कि 'वह प्राप्तवयस्का है और विवाहके उपयुक्त पात्री है।'

वैवाहिक होमके मन्त्र विशेष ध्यान देनेयोग्य है—उच्चारित मन्त्रोके द्वारा देवताओका आह्वान करके उनके यज्ञभागकी आहुति देनेके समय उनसे आशीर्वाद माँगा जाता है। यज्ञस्थलको पवित्र मृत्तिका-गोमय आदिके द्वारा लीपे जानेपर विवाहमण्डपसे एक पवित्र भाव प्रकट होता है। गार्हस्थ्य-धर्मम अग्निकी विशेष प्रधानता प्रकट है। देवराज इन्द्रसे प्रार्थना की गयी है कि इस गार्हस्थ्य-धर्मके पालनमें वे हमारी ऐहिक वासनाको पूर्ण करें। उपयुक्त समयपर प्रचुर जलवर्षा करके हमें कृषिकार्यमे सफलता प्रदान करें। नवदम्पति अग्निसे प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें स्वास्थ्य, बल, पुत्र-पौत्र, धन-सम्पत्ति एव पारिवारिक सुख-शान्ति प्रदान करे। अबतक कन्या पितृगृहमें अग्निके आश्रयमें रहकर सुखसे जीवन बिता रही थी, अब वे देवता उसे स्वामीके घर जानेकी अनुमति दें और यह आशीर्वाद दें कि जिससे पिताके घरकी ममता उसे स्वामीके घरकी कर्तव्यपरायणतासे च्युत न कर दे। स्वामिगृहमें कठोर परिश्रम करके वह स्वामीके परिवारको

सुखी करनेकी शक्ति प्राप्त करे। कन्या मन्त्रोंके माध्यमसे अग्निदेवतासे इस आशीर्वादकी प्रार्थना करती है। उसकी अनन्य सेवासे सतुष्ट होकर उसका पति उसके साथ वास्तविक रूपमे प्रेम करे—यह भी कन्याकी प्रार्थना है।

पाणिग्रहण—इसके बाद वर कन्याके हस्तको ग्रहण करता है। हस्त-ग्रहण करनेका तात्पर्य है—'मिलन'। वर-वधूके यथार्थ मिलनसे सुखमय ससार सम्भव होता है। वर कन्याके अङ्गूठेसहित सम्पूर्ण हाथको ग्रहण करता है। अङ्गूठा व्यक्तित्व और आत्मसम्मानका प्रतीक है। यदि कन्याका व्यक्तित्व और आत्मसम्मान अपने पतिके प्रति निवेदित नहीं हो जाता और स्वतन्त्ररूपसे परिचालित होता है तो उस प्रकारके मिलनसे पारिवारिक सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। पाणिग्रहण-सस्कारके द्वारा यह विज्ञापित होता है कि अबसे कन्याने अपने व्यक्तित्व और स्वतन्त्र विचारको अपने पतिकी सेवाके लिये पूर्णतया समर्पण कर दिया है।

इसके बादके मन्त्रके द्वारा वर यह सूचित करता है कि उसकी वधू उसके गार्हस्थ्य-जीवनमे सर्वापेक्षा मूल्यवान् सम्पदा है और वधू भी अपने स्वामीके प्रति यही भाव प्रकट करती है। गृहस्थ-जीवनमे दोनो एक-दूसरेके सुख-दु खमें समानरूपसे भागीदार हो गये हैं। अबसे वे यही विज्ञापित कर रहे हैं।

अश्मारोहण एव ध्रुवदर्शन—अश्मारोहण करनेके समय वर जिस मन्त्रका उच्चारण करता है, उससे यह भलीभाँति प्रमाणित होता है कि जिस प्रकार शिला कभी लचकती नहीं, सुदृढ रहती है, इसी प्रकार वधूकी अपनी सतीत्वसम्बन्धी प्रकृति सुदृढ रहे, यही उसके पतिकी ऐकान्तिक इच्छा है। ध्रुवदर्शनका भी ऐसा ही एक प्रकारका अभिप्राय है। जैसे आकाशमे असख्य तारे इधर-उधर भ्रमण करते रहते हैं, परतु ध्रुव अपने स्थानसे विचलित नहीं होता वैसे ही पत्नी भी अपने शरीर और मनको अन्य किसीके भी समर्पण न करनेके सङ्कल्पमें ध्रुवकी भाँति अविचलित रहेगी। सरस्वतीके प्रति प्रार्थना करते समय पति अपनी पत्नीकी सौ वर्षकी आयु और सतीत्व-रक्षाके लिये आशीर्वाद चाहता है।

स्वामीकी अनुगामिनी होकर सप्तपद-परिक्रमाके समय भी इसी प्रकारकी इच्छाएँ व्यक्त की जाती हैं।

विवाह-सस्कारके कार्यो और अनुष्ठानो एव आचारोंको विशेषरूपसे देखनेपर पता लगता है कि प्राचीन मन्त्रद्रष्टा ऋषियोने विवाहसूत्रमे बाँधकर वर-वधूके भविष्य जीवनकी सुविधा-असुविधाके प्रति ध्यान रखते हुए, जिसमें वे गृहस्थजीवनको सुख-स्वच्छन्दताके साथ चला सकें, इसके लिये यज्ञानुष्ठान तथा अन्यान्य आनुषङ्गिक अनुष्ठानोके मन्त्रोंद्वारा विभिन्न देवताओसे पुन -पुन प्रार्थना की है। ये अनुष्ठान विशेषरूपसे वधूके कल्याणके लिये ही निर्दिष्ट हुए हैं, कारण हिन्दू-समाजमे कन्याका विवाह एक बार ही होता है और विधवाको ऐसे कार्योंमे योगदान करनेका अधिकार नहीं है।

विवाह-सस्कार सम्पन्न होनेके बाद तीन रात्रितक वर-वधू परिपूर्ण ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करेंगे, इससे यह प्रमाणित होता है कि केवल इन्द्रिय-भोग-सुखके लिये विवाह नहीं किया जाता, धर्मको केन्द्र बनाकर सयमित जीवन-यापन करनेपर ही गृहस्थजीवन सफल और सुखी होता है और गृहस्थजीवनके सुख-सम्पन्न होनेपर ही सामाजिक जीवन सुखी होता है। सामाजिक जीवनमे यदि धर्म केन्द्रस्थानमे रहता है तो समाजमें व्यभिचार और अधर्म निर्मूल हो जाते हैं और व्यक्ति अपने आदर्श तथा गौरवकी रक्षा कर सकता है।

हिन्दू-समाजमे 'विवाह' शब्दका तात्पर्य विशेष ध्यान देकर समझने योग्य है। वर और वधूको विवाह-सस्कारके माध्यमसे समाजमे एक अत्यन्त दायित्वपूर्ण अधिकार दिया जाता है। यज्ञ-मन्त्रोंमे अन्यान्य देवताओके आवाहन किये जानेपर भी भगवान् विष्णुको सर्वश्रेष्ठ आराध्य तत्त्वके रूपमें स्वीकार किया गया है। यज्ञानुष्ठानके मूल विषय-विग्रह विष्णु ही हैं। जिस प्रकार भगवान् विष्णु समस्त जीवोको ऊर्ध्वगति प्रदान करते हैं, सबका पालन, पोषण तथा धारण करते हैं, उसी प्रकार 'विवाह' के द्वारा स्वामी-स्त्री विष्णुरूप यज्ञके माध्यमसे परिणय-सूत्रमे बँधकर अपने परिवारके प्रत्येक जनका उपयुक्तरूपसे पालन पोषण, धारण और वर्धन करना स्वीकार करते हैं।

गृहस्थ-धर्म

(सत अनन्तश्री श्रीहरिबाबाजी महाराज)

इस मानव-जीवनका एकमात्र लक्ष्य तो भगवत्प्राप्ति ही है। अत शास्त्रोमे जितनी भी व्यवस्थाएँ हैं, वे सब इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हैं। यह विश्व भी श्रीभगवान्का व्यक्त विलास ही है। अत इसकी सेवा प्रभुकी सेवा ही है और वही उनकी प्राप्ति और प्रसन्नताका भी प्रमुख साधन है। गृहस्थाश्रम शेष तीन आश्रमोका उद्गम-स्थान है और उसीके द्वारा उनका भरण-पोषण भी होता है। इस प्रकार विश्वात्माकी सेवा ही गृहस्थाश्रमीका सहज धर्म है। इस सहज धर्मका यथावत् पालन करके गृहस्थ अपने चरम लक्ष्यको प्राप्त कर सकता है। इस मार्गमे सस्कारवश अनेक प्रकारके बाह्य एव आन्तर विघ्न आते ही हैं। अकेला साधक उन्हें पार करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है। उसे अपने एक अभिन्न सहधर्मीकी अपेक्षा होती है। इसी उद्देश्यसे दाम्पत्य-धर्मको स्वीकार किया जाता है। इस धर्मका यथावत् पालन करनेसे पति-पत्नी दोनो ही सुगमतासे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं। यही गार्हस्थ्य-धर्मकी बहुत बडी महत्ता है।

अत इस धर्ममे दीक्षित होकर वर और कन्या दोनोको परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हुए एक-दूसरेके व्यावहारिक और पारमार्थिक साधनोमे सहायक होना चाहिये तथा एक-दूसरेकी प्रसन्नतामे ही प्रसन्न रहना चाहिये। पतिको चाहिये कि पत्नीको प्रसन्न रखते हुए सब प्रकारसे उसका भरण, पोषण और रक्षण करे तथा पत्नी सर्वदा पतिके अधीन रहकर उसीको अपना सर्वस्व और आराध्य मानकर उसकी सेवामे तत्पर रहे। पत्नीके लिये भगवद्भावसे पतिकी आराधना करनेसे बढकर और कोई धर्म नहीं है। इस प्रकार वह सहजमें ही अपने जीवनका चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकती है।

अपने विचारसे सम्पूर्ण वैदिक सस्कारोका एकमात्र तात्पर्य समस्त प्राणिजगत्को निखिल ब्रह्माण्डनायक आनन्द-कन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके अनुस्मरणसे अनुप्राणित करना ही है।

विवाह-संस्कारकी पवित्रता

(स्वामी श्रीरङ्गनाथानन्दजी महाराज)

हिन्दू-ऋषियोंकी महान् शिक्षाओंमेंसे सर्वाधिक प्रेरणाप्रद शिक्षा यह है कि अपने वास्तविक स्वरूपमें मनुष्य भगवद्रूप है।

हिन्दू-सस्कृतिमें इस सत्यका साक्षात्कार ही मानव-जीवनका लक्ष्य माना गया है। आमोद-प्रमोद, लाभ एव सामाजिक नीतिको भी इस लक्ष्यकी प्राप्तिके निमित्त साधनके रूपमें ही स्वीकार किया गया है, इस लक्ष्यकी ओर मुँह कर देनेपर इन सभी मार्गोंका अनुसरण साभिप्राय और सार्थक बन जाता है। ऐसा किये बिना ये आत्मघातिनी क्रियाओंकी मालाका रूप धारण कर लेती हैं, मानो सख्या 'एक' के बिना केवल शून्योंकी कतार हो। श्रीरामकृष्ण परमहस कहते हैं कि पहले भगवान् फिर जगत्, पहले सख्या 'एक', तब शून्य अथवा शून्यसमूह। इसी पद्धतिसे ससार और उसके प्रपञ्च सार्थक तथा साभिप्राय साधनोंमें परिणत हो उठते हैं। वे मानव-आत्माके लिये रचनात्मक पथ एव आध्यात्मिक अनुशासन बन जाते हैं। इस प्रकार मानव-जीवनको ईश्वराभिमुख बनाकर हिन्दू-सस्कृतिने मनुष्यको अपने सम्पूर्ण जीवनको पावन बनानेकी शिक्षा दी है, उसके एक अशमात्रको नहीं।

वैवाहिक पवित्रताका उदय मनुष्य और उसके भविष्यकी इसी धारणासे होता है। नर अथवा नारीमें पूर्वसे ही वर्तमान भगवत्ताका प्राकट्य जीवन एव उसके व्यापारोंके क्षेत्रमें अनुष्ठित दीर्घकालीन तपस्या एव परिणाम है और मनुष्य-जातिके अधिकाश

यह क्षेत्र विवाह-सम्बन्धसे प्राप्त होता है, जिसके द्वारा जीवनकी सार्थकताकी खोजमे एक पुरुष और एक स्त्री घनिष्ठतम मानव-सम्बन्ध जोडकर एकत्र होते हैं। मनुष्य और उसके भविष्यको आध्यात्मिक दृष्टिकोणका स्पर्श मिलनेसे नर-नारीका केवल भौतिक एव शारीरिक सम्बन्ध और यौन-व्यापार एक आध्यात्मिक सौन्दर्य तथा मनमोहकतासे भर जाता है। विवाहित जीवन भी एक आश्रम, आध्यात्मिक साधना और प्रेरणाका एक क्षेत्र बन जाता है।

विवाह-सस्कारका यह स्वरूप दम्पतिके लिये आध्यात्मिक शिक्षा-सदन बन जाता है, राष्ट्रकी नैतिक मान्यताओकी लालन-शालाका रूप धारण कर लेता है और सामाजिक स्तूपके लिये एक स्थायी आधारका रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे दम्पतीके लिये 'ससारी' शब्द उपयुक्त नहीं होता। ससारमें रहते हुए भी वे हृदयम सासारिकता न घुसे, इसके लिये सचेष्ट रहते हैं। श्रीरामकृष्ण परमहसजी कहते हैं कि नाव जलमें रह सकती है, परतु जलको नावके भीतर नहीं आने देना चाहिये। योगीका **'कर्मसु कौशलम्'** और अध्यात्मवेत्ता व्यक्तिकी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता यही है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि निर्दोष क्रियाओम रत तथा आत्मनियन्त्रणसे युक्त व्यक्तियोके लिये घर 'तपोवन' का रूप धारण कर लेता है।

~~~ o ~~~

भारतीय विवाहकी महिमा

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

भारतीय सस्कृति प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके मञ्जुल सामरस्यपर आश्रित होनेवाली एक विशिष्ट सस्कृति है। पाश्चात्त्य सस्कृति प्रवृत्तिके ऊपर आधारित है तो श्रमणसस्कृति निवृत्तिको ही जीवनका सर्वस्व मानती है। ये दोनों ही सिद्धान्त एकाङ्गी हैं और दूषित हैं। इन दोनोसे विपरीत भारतीय सस्कृतिकी आधारशिला है—भोगाश्रित त्याग अथवा त्यागोन्मुखी भोग। इस सिद्धान्तको ईशावास्योपनिषद् **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा '**-के द्वारा अभिव्यक्त करता है। त्याग तथा भोगके सामरस्यको आश्रय देनेवाली भारतीय सस्कृति इस विशाल विश्वके भीतर अद्वितीय है—बेजोड है।

इस आदर्शका पालन आश्रम-चतुष्टयमें यथाविधि दृष्टिगोचर होता है। चार आश्रमोंमे मुख्य आश्रम दो ही हैं—

(१) गृहस्थाश्रम—जो भोगवृत्तिपर आधारित है तथा

(२) सन्यासाश्रम—जो त्यागवृत्तिके ऊपर आश्रित है।

अन्य दोनो आश्रम तो इन आदर्श आश्रमोंमे प्रविष्ट होनेकी योग्यता प्रदान करनेके कारण मानो शिक्षणभूमि हैं। ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्यके शिक्षणकी भूमिका है तो वानप्रस्थ सन्यासकी। इस प्रकार इन चार आश्रमोंकी प्रतिष्ठा समभावेन भारतीय सस्कृतिमें है, परतु यह निर्विवाद सत्य है कि गृहस्थाश्रम भारतीय समाजका मेरुदण्ड है। जैसे मेरुदण्ड वैयक्तिक शरीरके सीधे खडे रहने तथा रुचिर जीवननिर्वाहके निमित्त एक विशिष्ट आधारशिला है, गृहस्थाश्रम भी उसी प्रकार सामाजिक शरीरके सीधे खडे होने तथा विमल जीवन-यापनके लिये एक भौतिक आधारशिला है। इस आश्रमके आश्रयपर ही इतर आश्रम अपना अस्तित्व निर्वाह करते हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी—ये तीनो ही गृहस्थके द्वारा अर्जित द्रव्यका उपभोग कर अपना जीवन-यापन किया करते हैं। इसीलिये ही मनु महाराजने इस आश्रमकी तुलना उस माताके साथ की है, जो समान स्नेहसे अपनी सतानोका भरण-पोषण किया करती है।

गार्हस्थ्यका मुख्य साधन है—विवाह। भारतीय सस्कृतिमे विवाह-सस्कार पाश्चात्त्योकी कल्पनासे विपरीत एक आध्यात्मिक बन्धन है। विवाह-सस्कारके द्वारा दो भिन्नलिङ्गी प्राणी स्वेच्छासे अपने-आपको पवित्र सामाजिक बन्धनमें बाँधकर समाजके सामने पारस्परिक सहयोगका विमल आदर्श प्रस्तुत करते हैं और आध्यात्मिक सूत्रमें आबद्ध होकर यावज्जीवन अपना सामाजिक उत्तरदायित्व निभाते हैं। भारतवर्षमे विवाहके मूलमें है—व्यक्तिका पूर्ण
~~~

विकास। पत्नीके अभावमे न तो पतिका व्यक्तित्व खिल सकता है और न पुरुषके अभावमे नारीका ही व्यक्तित्व खिल सकता है। यथार्थमे पति-पत्नी एक-दूसरेके पूरक होते हैं। पति पूरक है पत्नीका और पत्नी पूरक है पतिकी। पति-पत्नीका सम्मिलित अभिधान है—दम्पती, जिसमे वैदिक 'दम्' शब्द (लैटिन शब्द डोमुसके रूपमें) गृहका वाचक है। इस प्रकार 'दम्पती' शब्दका स्वारस्य यह है कि पति और पत्नी दोनो ही गृहपति हैं—घरके मालिक हैं। भारतीय समाजकी चिरञ्जीविताका रहस्य पति-पत्नीके परस्पर प्रेम तथा सहयोगकी भावनामें अन्तर्निहित है। भारतीय नारीका आदर्श है वह सती, जिसने पतिके अपमानसे सतप्त होकर योगाग्निसे अपनेको भस्म कर डाला था। भारतीय ललनाका आदर्श है वह पार्वती, जिसने विशुद्ध प्रेम पानेके लिये अपने सुमन-सुकुमार शरीरको तपस्याकी अग्निमे जला डाला था। बिना तपस्याके स्नेह न तो गम्भीर होता है और न वह चिरस्थायी होता है। तपस्याका सुफल है कालिदासके शब्दोमे '**तथाविध प्रेम पतिश्च तादृश** ' (कुमारसम्भव), इसीलिये भारतीय कुमारीका आदर्श है—गौरी। गौरी तपस्याकी मूर्ति है, तभी तो उसे मृत्युञ्जय पति प्राप्त हुआ और पतिका दिव्य प्रेम मिला कि वह उनके हृदयदेशमें जाकर विराजने लगी।

भारतीय विवाहकी यही महिमा है—आध्यात्मिकताका विकास और पूर्ण व्यक्तित्वकी उपलब्धि। इस उपलब्धिको नव वर-वधू प्राप्त करे। विवाहको बन्धन न मानकर आत्माकी मुक्तिका मार्ग समझे।

~~o~~

विवाह—आध्यात्मिक सम्बन्ध

(पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र एम्०ए०)

धर्मशास्त्रानुसार विवाह केवल लौकिक ही नहीं, आध्यात्मिक सम्बन्ध भी है, कितने ही धार्मिक कृत्य बिना पत्नीके नहीं हो सकते। भगवान् रामको यज्ञ करनेके लिये जानकीमाताकी स्वर्ण-प्रतिमा बायीं ओर रखनी पडी। विवाहके साथ पति-पत्नी दोनों एक हो जाते हैं। पत्नी पतिकी अर्द्धाङ्गिनी है—स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका यह भाव अन्य किसी धर्ममें नहीं है। दोनोंका यह ऐक्य-सम्पादन करनेके लिये पत्नीके व्यक्तित्वका धर्मबुद्धि एव प्रेमभावसे पतिके व्यक्तित्वमें लय होना आवश्यक है। स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी समस्या हल करनेके लिये हिन्दू-धर्मशास्त्रोंकी ससारको यह विशेष देन है। भगवान्‌को आत्मसमर्पण कर देना ही सर्वोच्च भक्ति है। स्त्री पतिको आत्मसमर्पण करके प्रेमको पराकाष्ठापर पहुँचा देती है। वहाँ 'मेरे' और 'तेरे'-का भेद ही नहीं रहता फिर परस्पर कलह और बिलगावकी बात ही क्या! इस जन्मकी कौन कहे, हिन्दू-स्त्री तो यही अभिलाषा रखती है कि 'जन्म-जन्मान्तरमें भी उसका अपने पतिके साथ सम्बन्ध अटूट बना रहे।'

भारतीय जीवन-निर्वाह-प्रणालीमें जितनी व्यवस्थाएँ हैं, सबका चरम लक्ष्य भगवत्साक्षात्कार—'आत्मसाक्षात्कार' है। यही मानव-जीवनकी सफलता है। इसमे बाधक भावोको साधक बना देना धर्मव्यवस्थाकी विशेषता है। गृहस्थजीवन 'दुर्गका जीवन' है। शब्दादि विषय उसे लक्ष्यसे च्युत नहीं कर सकते। कई दृष्टियोंसे गृहस्थाश्रम सब आश्रमोका सिरमौर है। ससारमे स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरेके बिना आधे हैं। प्रकृति-पुरुषका जोडा है इसमे पुरुषकी तो महत्ता है ही, पर स्त्रीकी उससे भी अधिक है। वह धर्मपत्नी है। उसे '**तारिणीं दुर्गससार-सागरस्य कुलोद्भवाम्**' बतलाया गया है। वह पतिकृत-कर्मफल-भोक्त्री ही नहीं, अपितु अपने पातिव्रत्य-प्रभावसे स्वय लक्ष्मी बनकर पतिको साक्षात् विष्णु बना देनेमें समर्थ है—

या पति हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥

(श्रीमद्भागवत ७।११।२९)

यदि विधिवत् गृहस्थ-धर्मका पालन हो तो पास-पडोस ही नहीं, समग्र विश्व सुख-शान्तिमय बन सकता है।

~~o~~

हिन्दू-विवाह-संस्कारकी महत्ता

(पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश)

विवाह एक सासारिक अव्यवस्थाको दूर करनेवाला सस्कार है। इसीसे पुरुष सुसस्कृत, सभ्य एव धर्मात्मा बनता है। पुरुषकी अपने शरीरमे जितनी ममता होती है, उतनी अन्य वस्तुओंमें नहीं। विवाहके द्वारा उसकी ममता अपने शरीरसे ऊपर उठकर पत्नीमें और फिर पत्नीके सम्बन्धियोमे बँट जाती है। फिर सतान होनेपर वही ममता पुत्र-कन्या आदिमे बँट जाती है। वही प्रेम घरकी चारदीवारीसे प्रारम्भ होकर मुहल्ला, गली, ग्राम, नगर, प्रान्त, देश और फिर क्रमश समस्त विश्वमे व्याप्त हो जाता है। गृहस्थमें पति-पत्नीको एक-दूसरेके हितके लिये अपने स्वार्थका बलिदान, प्रतिकूल व्यवहारमे सहिष्णुता और क्षमा, अत्यन्त कष्टमे भी धैर्य आदि गुणोका प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। यही प्रेम विकसित होकर मनुष्यको सामाजिक क्षेत्रमें विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है। गृहस्थके इस महाविद्यालयमें त्याग-प्रेम आदिका पूर्ण अभ्यास कर जब पति-पत्नी उसी प्रेमभाव—त्यागभावका प्रयोग परमेश्वरकी दिशाकी ओर प्रवृत्त कर देते हैं, तब वे परमेश्वरके अत्यन्त निकट पहुँच जाते हैं। यही शास्त्रानुसार उनके जीवनका परम एव चरम लक्ष्य हुआ करता है।

हिन्दू-विवाहका परम लक्ष्य कामवासना-पूर्ति नहीं है, किंतु यज्ञमें अधिकार-प्राप्ति तथा सात्त्विक प्रेममे प्रवृत्ति और वेदादि शास्त्रमें प्रेम उत्पन्न करना है। वेदमन्त्रोसे विवाह शरीर और मनपर विशिष्ट सस्कार उत्पन्न करनेवाला होता है। इससे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षतककी प्राप्ति हुआ करती है। विवाहमें होनेवाली चार परिक्रमाएँ इन्हीं चारों वर्गोंको सङ्केतित करती हैं। इसमें काम अवान्तर वस्तु है। इसमे सतान उत्पन्न करना पितृ-ऋणका पूर्तिकर्ता और पितरोंका उद्धारकर्ता माना जाता है। अत उसमें ऋतुगमनके अतिरिक्त काम वर्जित रखा गया है। इसमें स्त्री वामाङ्गमें अधिकार पाकर पुरुषकी हृदयरूपा बन जाती है।

यदि विवाह-सस्कार न होता तो पुरुषकी न तो पत्नी ही होती, न माँ, न बहन और न उसकी कोई लडकी आदि सतान ही होती। विवाह-बन्धनके अभावमें पुरुष अपनी वासना पूर्ण करनेके लिये पशुओकी तरह स्त्रीमात्रके पीछे लगा रहता, छीना-झपटी करता, लडता, झगडता अपनी बुद्धिको दूसरेके विनाशमे लगाता और क्रोधके साम्राज्यको व्यापक बनाता। उससे उत्पन्न अवैध सतानोंकी कोई रक्षा न करता वे गली-गली ठोकरे खाती फिरतीं। न तब पुरुषका घर होता और न कोई विद्यालय होता। विवाहरहित राष्ट्र धर्म, शिक्षा, सस्कृति, कला, विज्ञान आदिसे सर्वथा शून्य एक पशु-राष्ट्र होता। इसी विवाह-सस्कारने मनुष्यको व्यवस्थित किया, परिवार दिया प्रेम दिया, घर बसानेकी और विद्या पानेकी प्रेरणा दी। विवाहसे ही यह सुवर्णमय ससार बस पाया।

हिन्दू-विवाहमें स्त्री केवल कामपूर्तिका यन्त्र नहीं बनती, किंतु धर्मपत्नी बनती है। इसीके द्वारा स्त्रीमें पातिव्रत्य इतना कूटकर भर दिया जाता है कि वह अपने पतिसे अतिरिक्त पुरुषोंको पिता, भ्राता या पुत्रकी दृष्टिसे देखती है। दूसरे जन्ममें भी वह स्त्री अपने पतिलोककी कामनामें निरत रहती है। जलसे जलके मेलकी तरह वह पतिसे अभिन्न हो जाती है। तब इसमे दुश्चरित्रता तो स्वप्नमें भी नहीं रह पाती। विवाहके विच्छेदका तो इसमें विचार ही नहीं रह पाता।

इसी हिन्दू-विवाहके परिणामस्वरूप भारतवर्षका पातिव्रत्यधर्म देश-विदेशमे सुप्रसिद्ध है। इसमें पति-पत्नी एक द्वारके दो किवाड हैं, एक मुखकी दो आँखें हैं, एक रथके दो चक्र हैं। इसी हिन्दू-विवाहसे दम्पती एक-दूसरेसे अविश्वस्त नहीं रहते, पक्का गठजोड रहता है। इस हिन्दू-विवाह-विधिमें देवताओंकी साक्षी होती है। इस सस्कारकी एक-एक विधिमे ऐसे ही भाव गर्भित होते हैं। अश्मारोहण, ध्रुवदर्शन, लाजाहोम आदि विधियाँ, 'मम व्रते ते हृदयं दधामि, मम चित्तमनुचित्तं तेऽस्तु' इत्यादि, तथा 'प्राणैस्ते प्राणान् संदधामि, अस्थिभिस्ते अस्थीनि सदधामि, मासैस्ते मासानि संदधामि, त्वचा ते त्वच संदधामि' आदि मन्त्र इस सम्बन्ध-सूत्रको और सुदृढ करते हैं। इससे हिन्दू-विवाह अन्य जातियोंके विवाहसे बहुत-सी विशेषताएँ रखता है—यह भिन्न सम्प्रदायवालोंको भी स्वत मानना पडता है।

संस्कार प्रेय और श्रेयके मार्ग हैं

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

अनादि सृष्टि-परम्पराके रक्षणहेतु परब्रह्म परमात्माने अखिल धर्ममूल वेदोको प्रदान किया है। अपौरुषेय वेद 'श्रुति' हैं और उनपर आधृत धर्मशास्त्र 'स्मृति' हैं। श्रुति-स्मृति-पुराणादिके आलय सर्वज्ञ भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यजीने श्रीमद्भगवद्गीताभाष्यके आरम्भमें स्पष्ट किया है कि उस भगवान्ने जगत्की सृष्टिकर उसकी स्थितिके लिये मरीचि आदिकी सृष्टिकर प्रवृत्तिलक्षण-धर्मका प्रबोध किया और सनक, सनन्दनादिको उत्पन्न करके ज्ञान, वैराग्यप्रधान निवृत्तिलक्षण-धर्मका मार्ग प्रशस्त किया। ये ही दो वैदिक धर्ममार्ग हैं—'**स भगवान् सृष्ट्वा इद जगत् तस्य च स्थिति चिकीर्षु मरीच्यादीन् अग्रे सृष्ट्वा प्रजापतीन् प्रवृत्तिलक्षण धर्मं ग्राहयामास वेदोक्तम्। तत अन्यान् च सनकसनन्दनादीन् उत्पाद्य निवृत्तिलक्षण धर्मं ज्ञान-वैराग्यलक्षण ग्राहयामास। द्विविधो हि वेदोक्तो धर्म प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च। जगत स्थिति-कारणम्**" ॥'

वेदाके सहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् भागामे प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण धर्मोका विशदीकरण द्रष्टव्य है। समुचित व्यवस्थाके अभावमें यह सृष्टि सम्पन्न नहीं हुई है। सृष्टिके वैविध्यको दृष्टिमे रखकर धर्माचरणकी व्यवस्था की गयी है। प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण धर्म एतदर्थ ही हैं। '**धर्मो रक्षति रक्षित** ' का अर्थ यही है कि इहलोक और पर-लोकके अभ्युदय तथा नि श्रेयसकी सिद्धिके लिये वेदोक्त धर्ममार्गका अनुसरण करना चाहिये। सबके हितको दृष्टिमें रखकर वेदोक्त धर्माचरणके निमित्त हमारे आदरणीय ऋषि-मुनियोने युगानुरूप अथवा देश, कालके अनुसार स्मृतिग्रन्थोंके प्रणयनद्वारा सरल और सुबोध रीतिसे धर्माचरण-विधानको स्पष्ट किया है। श्रुत्यर्थ-प्रतिपादक ये ही ग्रन्थ धर्मशास्त्रके ग्रन्थ हैं। पुराणोंमें भी श्रुति-स्मृतिसारभूततत्त्व निहित हैं। परमेश्वरने यह सृष्टि क्यों की है और इसका रहस्य क्या है? कई लोगोंके मनमें यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है। मनीषियोने नाना प्रकारसे इस प्रश्नका समाधान किया है। 'शिवानन्दलहरी' मे कहा गया है—

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिल क्रीडामृगास्ते जना
यत्कर्माचरित मया च भवत प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करण मच्चेष्टित निश्चित
नित्य मामकरक्षण पशुपते कर्तव्यमेव त्वया ॥

अर्थात् 'हे शम्भो! अखिल प्रपञ्च यानी जगत्की सृष्टि तुम अपनी क्रीडाके लिये करते हो एव यहाँके लोग तो तुम्हारी क्रीडाके मृग हैं। मुझसे जो कर्म आचरित हैं, वे तुम्हारी प्रीतिके लिये ही हैं। मुझद्वारा जो किया गया है, वह तुम्हारे कुतूहलका साधन है। अतएव हे पशुपते! मेरी नित्य रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य ही है।'

जिस सृष्टिकर्ताने इतनी व्यापक सृष्टि की है, क्या वह नहीं जानता कि यहाँके जीवोको कैसे रखना चाहिये? इसलिये मनुष्यकी सृष्टि उसकी प्रकृतिके अनुसार हुई है और इहलोक तथा परलोकमे श्रेयप्राप्तिकी दृष्टिसे सस्कारोका विधान निश्चित हुआ है। इन विधानोको कर्तव्य समझना चाहिये। जगत्मे जो भी वस्तु है, उसका सस्कार उसके सौन्दर्यका अथवा आकर्षणका कारण बनता है। प्राणियोमें सर्वश्रेष्ठ मानव सस्कारोंसे ही समाजयोग्य होता है, सस्कारोसे उसका आत्मविकास होता है और वह लक्ष्यप्राप्तिके पथपर अग्रसर हो सकता है। सस्कार माने क्या है? सस्कार तो विहितक्रियाजन्य तथा पापनाशक हैं। स्मृतिकारोंने 'सस्कार' के विषयमें कहा है—'**तत्रात्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष सस्कार । स च द्विविध , एकस्तावत् कर्मान्तराधिकारेऽनुकूल , यथोपनयनजन्यो वेदाध्ययनाद्यधिकारापादक । अपरस्तूत्पन्नदुरितमात्रनाशको यथा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणो जातकर्मादिजन्य ।**'

सस्कार तो आत्मशरीरान्यतरनिष्ठ विहितक्रियाजन्य अतिशय है। वह दो प्रकारका है। एक तो दूसरे कर्मोंकी योग्यताका हेतु है, जैसे—उपनयन आदिसे प्राप्त होनेवाला सस्कार वेदोंके अध्ययनकी योग्यताहेतु है। दूसरा जो पाप

प्राप्त होता है, उसका नाशक है। जैसे—जन्मग्रहण करनेसे पूर्व गर्भके कारण समुत्पन्न दुरितको दूर करनेके लिये किया जानेवाला जातकर्मादिसे प्राप्त होनेवाला संस्कार है। शास्त्रग्रन्थोंमें संस्कारकी विशेष आवश्यकता बतायी गयी है। संस्कारके अभावमें मनुष्यका जन्म व्यर्थ समझा जाता है। कहा गया है—'संस्काररहिता ये तु तेषां जन्म निरर्थकम्।'

लोकमें प्रसिद्धि है कि संस्कार षोडश हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

आधानपुंससीमन्तजातनामान्नचौलकाः ।
मौञ्जी व्रतानि गोदानसमावर्तविवाहकाः ॥
अन्त्यं चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते षोडशैव तु।

अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल (मुण्डन), उपनयन, व्रत (वेदव्रतचतुष्टय), गोदान, समावर्तन, विवाह और अन्त्यकर्म—ये सोलह संस्कार यहाँ बताये गये हैं। सीमन्तोन्नयन-प्रयोगके साथ पुंसवनप्रयोग भी सम्मिलित होता है।

मनुने गर्भाधानादि संस्कारोंके फलके विषयमें बताया है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

निषिद्धकाल तथा अशुद्धिजनित दोषसे युक्त गर्भको जातकर्मादि संस्कार परिशुद्ध करता है।

जो व्यक्ति वेदकी जिस शाखाका परम्परासे अध्ययन करनेवाला है, उसका कर्तव्य होता है कि वह पहले अपनी शाखाका अध्ययन करे। अपनी वेदशाखाका अध्ययन किये बिना दूसरी शाखाका अध्ययन करना उचित नहीं है। इसी प्रकार जो जिस सूत्रका है, उसको उस सूत्रके अनुसार अनुष्ठान भी सर्वथा कर्तव्य है। अङ्गिराका कथन है—

स्वे स्वे गृह्ये यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः ।
कर्तव्या भूतिकामेन नान्यथा सिद्धिमृच्छति॥

स्वगृह्यसूत्रमें कथित सभी संस्कार यथोक्त रीतिसे सम्पन्न करने चाहिये अन्यथा ऐहिकामुष्मिक फलकी प्राप्ति नहीं होती।

ऋषि-मुनियोंने स्वसूत्र-त्यागको दोष माना है—

स्वसूत्रोक्तं परित्यज्य यदन्यत् कुरुते द्विजः ।
अज्ञानादथवा ज्ञानात्तेन पतितो भवेत्॥

जान-बूझकर अथवा अज्ञानसे जो स्वसूत्रका परित्यागकर कर्माचरण करता है, वह उसके फलका भागी न होकर पतित होता है।

गौतम महर्षिने जो संस्कार बताये हैं, वे इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, स्नान, सहधर्मचारिणसंयोग अर्थात् विवाह, पञ्चयज्ञ-अनुष्ठान (देव-पितृ-मनुष्य-भूत-ब्रह्म) तथा अष्टका, पार्वण, मासिकश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्वयुजी—ये सात पाकयज्ञ, अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयण, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणी—ये सात हविर्यज्ञ, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम—ये सात सोमसंस्था कहलाते हैं। इन सबकी संख्या चालीस है।

उक्त संस्कारोंके अतिरिक्त आत्माके आठ गुण माने गये हैं। वे हैं—सर्वभूतदया, क्षमा, असूयाराहित्य शुचिता, अनायास, मङ्गल (प्रशस्ताचरण), अकार्पण्य और निःस्पृहता—

दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति। यस्यैते चत्वारिंशत् संस्कारा ""अष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छति।

विचार करनेपर विदित होगा कि गौतमोक्त संस्कार षोडश संस्कारोंके विस्तृत रूप हैं। षोडश संस्कार और आत्माके आठ गुण—ये सब मिलकर कुल चौबीस मनुष्य-जीवनकी प्रगतिके लिये सर्वथा आवश्यक माने गये हैं। कहा जा सकता है कि षोडश संस्कार आत्माके आठ गुणोंकी सिद्धिके लिये हैं। इस सिद्धिसे मनुष्य श्रेय प्राप्तकर सकता है।

सभी संस्कारोंके आचरणकालमें अवश्यमेव ध्यान देनेकी जो बातें होती हैं, उनके विषयमें यहाँ थोड़ा विचार करेंगे।

स्नातः कुर्वीतोपवीती सर्वं कर्म पवित्रवान्।
आचान्तः पुनराचामेत्तिलकी बद्धचूडकः ॥

उपर्युक्त वचनके अनुसार जो भी कर्म करे, पहले स्नानसे पूत होकर करना चाहिये। बिना स्नानके कोई कर्म नहीं करना चाहिये, जो देवता और पितरोंसे सम्बन्धित है। कहा गया है—'अस्नात्वा नाचरेत् कर्म दैवं पित्र्यमथापि वा।' द्विजके लिये शिखा-यज्ञोपवीत भी आवश्यक है। सन्ध्या और शुभ कर्माचरणके समय शिखा बाँधना भी

आवश्यक है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यज्ञोपवीत होना चाहिये। स्मृतिकारोने कहा है—

सदोपवीतिना भाव्य सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्॥

अर्थात् शिखा एव यज्ञोपवीतके बिना जो भी कर्म किया जाता है, वह कर्म फलदायक नहीं होता।

माधवीय शङ्करविजयमे एक सुन्दर प्रसग है। शास्त्रार्थकी इच्छासे भगवत्पाद शङ्कराचार्य जब मण्डनमिश्रके गृहके भीतर योगशक्तिसे पहुँचे, तब मण्डनमिश्र कपाट बद होनेपर भी दो ब्राह्मणोंके बीचमें बालसन्यासीको देखकर विचलित हुए और उन्होने रूक्षतासे ही पूछा— **'शिखायज्ञोपवीताभ्या कस्ते भारो भविष्यति।'** उसका जो उत्तर भगवत्पादने दिया वह अत्यन्त मार्मिक है— **'शिखायज्ञोपवीताभ्या श्रुतेर्भारो भविष्यति।'** परमहस सन्यासीके लिये शिखा और यज्ञोपवीतकी आवश्यकता नहीं है, परतु अन्य आश्रमके लोगोके लिये शिखा एव यज्ञोपवीत आवश्यक हैं।

'श्रुतिस्मृत्युदित कर्म न कुर्यादशुचि क्वचित्'— इस वचनके अनुसार श्रुति-स्मृतिमें जो कर्म बताये गये हैं, उनका आचरण शुचितासे ही करना चाहिये। अतएव धौत वस्त्र धारणकर कर्माचरण करना चाहिये। बिना उत्तरीय अर्थात् एक वस्त्र धारणकर कर्ममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। गीले कपडे भी नहीं पहनने चाहिये।

यह भी विधि है कि प्रत्येक कर्मारम्भमें सङ्कल्प करना चाहिये। महर्षि व्यासने बताया है कि बिना सङ्कल्पके किया गया कर्म सफल नहीं होता। स्नान-सन्ध्यादिमें भी पहले सङ्कल्प किया जाता है। शास्त्रोमे सर्वत्र इस बातका उल्लेख है। स्मृतिकारोने इसके अभावमें कर्मको फलप्रद नहीं माना है, कहा है—

फलाभिसन्धानबुद्धिस्थिरीकरणसिद्धये ।
सङ्कल्पस्तु पुरा कार्य श्रौते स्मार्ते च कर्मणि॥

शान्तिमयूखमे कहा गया है—

सर्वत्रैव च कर्तव्य स्नानदानव्रतादिकम्।
अन्यथा पुण्यकर्माणि निष्फलानि भवन्ति हि॥

स्नान-दान-व्रत आदिके समय सदा सङ्कल्प करना चाहिये अन्यथा पुण्यकर्म निष्फल हो जाते हैं। और भा कहा गया हे—

मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्ताना च सर्वश ।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत्॥

सङ्कल्पमें क्या-क्या कहना चाहिये ? इसके सम्बन्धमे कहा गया है कि मास, पक्ष, तिथि और निमित्तोंका उल्लेख करना चाहिये, ऐसा न करनेवाला करणीय कर्मका फलभागी नहीं होता।

नित्य-नैमित्तिक-काम्य—चाहे कोई भी कर्म हो, सदा उपवासपूर्वक ही करना चाहिये। वेदोमे यदि इसके लिये अपवाद हो तो दूसरी बात है—

'उपोषित कर्म कुर्याद्धिष्ण्यनुज्ञे विना सदा।'

हमें अपनी वेदशाखाके सूत्रकारके कथनोंका उल्लङ्घनकर कर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। कर्माचरण अन्यथा करनेसे प्रायश्चित्त करना पडता है। चक्षुरादि इन्द्रियोको भी अवैध नहीं होने देना चाहिये। यदि अकारण कुछ हो जाय तो जलस्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार दोष या पाप दूर करनेके लिये अनेक प्रायश्चित्तविधान बताये गये हैं।

सङ्कल्पके पूर्व आचमन और प्राणायाम अवश्य कर्तव्य हैं। शून्यललाट होकर इनका आचरण नहीं किया जाता। पितृकर्ममें विकल्प बताया गया है। सम्प्रदायानुसार त्रिपुण्ड्र या ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। भस्म धारण करते समय **'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म'** मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। अथवा **'त्र्यम्बक यजामहे'**, **'मानस्तोके तनये'** आदि मन्त्राका भी उच्चारण किया जा सकता है।

मार्कण्डेयमुनिने कहा है कि देवतार्चनादि कर्म और गुर्वभिवादनके समय द्विजको चाहिये कि वह आचमन करके कर्ममे प्रवृत्त हो—

देवार्चनादिकर्माणि तथा गुर्वभिवादनम्।
कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विज ॥

श्रुति भी है—**'अपोऽश्नात्यन्तरत एव मेध्यो भवति'** शुद्धिके लिये आचमन (जलका पान) किया जाता है।

याज्ञवल्क्यका कथन है कि दोनों करोको जानुओके बीचमे रखकर उत्तर या पूर्व दिशाकी ओर मुख करके शुचिस्थलमें बैठकर आचमन करना चाहिये—

अन्तर्जानु शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुख ।
प्राङ् वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्॥

(आचाराध्याय श्लोक १८)

यमका वचन है कि जो द्विज करनखोसे जल छूकर आचमन करता है, वह जल सुराके समान है—

अप करनखै स्पृष्ट्वा य आचमति वै द्विज ।
सुरा पिबति स व्यक्त यमस्य वचन तथा॥

खडे होकर या वामहस्तसे आचमन नहीं करना चाहिये। बैठकर तीन बार आचमन करना चाहिये। दो बार ओठोंका परिमार्जन करना चाहिये। उसके बाद दक्षिण हस्तसे प्रोक्षणकर यथोक्त रीतिसे पाद, सिर आदिका स्पर्श करना चाहिये। महर्षि व्यास, गौतम, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, हारीत, भरद्वाज आदिके ग्रन्थोमे विशद रूपसे आचमनविधि बतायी गयी है। जानुओसे ऊपर जल हो तो नदी आदि जलस्थानमे खडे होकर आचमन कर सकते हैं। स्मृतिचन्द्रिकामे कहा गया है—

जानुमात्रे जले तिष्ठन् आसीन प्राङ्मुखो स्थले।
सर्वतश्शुचिराचान्तस्तयोस्तु युगपत् स्थित ॥

'आदावन्ते च सन्ध्याया द्विर्द्विराचमन स्मृतम्'— वचनके अनुसार सन्ध्या-वन्दनके समय प्रारम्भ और अन्तमे दो बार आचमनकी बात कही गयी है। प्रत्येक कर्मके अन्तमें भी दो बार आचमनका विधान है—**'कर्मान्ते द्विराचामेत्'**। आचमन करना जब सम्भव नहीं होता तब दाँयें कानका स्पर्श करना चाहिये। यह माना जाता है कि द्विजके दक्षिण कर्णमें देवताओका निवास होता है—

महर्षि पराशरका कथन है—

प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्यास्सरितस्तथा।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सन्तीति मुनिरब्रवीत्॥
आदित्यो वरुणस्सोमो वह्निर्वायुस्तथैव च।
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्य तिष्ठन्ति देवता ॥

सभी कर्मोंमें कुशाका प्रयोग पवित्र और आवश्यक माना गया है। कहा गया है—

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये तु केशव ।
कुशाग्रे शंकरं विद्यात् सर्वे देवा समन्तत ॥

कुशासे 'पवित्र' बना करके अनामिकाके मध्यम पर्वमें धारणकर सभी कर्म किये जाते हैं परतु पवित्रके साथ आचमन नहीं करना चाहिये। **'ग्रान्थर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमन चरेत्'** ग्रन्थियुक्त पवित्रसे आचमन करनेपर उस पवित्रको त्यागकर पुन आचमन करना चाहिये। 'पवित्र' सभी दु खोको दूर करनेवाला और आनन्ददायक है— **'पवित्र सर्वदु खघ्न तथैवानन्ददायकम्'**। स्वर्ण या रजतका पवित्र धारण किया जा सकता है जो श्रेयस्कर है—**'हेम्ना रूप्येण वा धीमान् पवित्रं धारयेत् सदा'**। स्वर्णके पवित्रको अनामिकामें तथा रजत पवित्रको तर्जनीमें धारण करना चाहिये, ऐसा कहा गया है।

सङ्कल्पके पूर्व प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायामके सम्बन्धमे नारदजीने कहा है—

प्राणो वायुश्शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रह ।
प्राणायाम इति प्रोक्त द्विविध प्रोच्यते हि स ॥

अर्थात् शरीरमे जो प्राणवायु है, उसका निग्रह प्राणायाम कहलाता है।

देवकार्यमे दो दर्भवाले पवित्रको तथा पितृकार्यमें तीन दर्भवाले पवित्रको धारण करना चाहिये। दर्भ या कुश बहुत पवित्र माने गये हैं। कुश ब्राह्मणके हस्तके विभूषण हैं। गोभिलने कहा है—

वज्रो यथा सुरेन्द्रस्य शूल हस्ते हरस्य च।
चक्रायुध यथा विष्णो एव विप्रकरे कुश ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च ये चान्ये ब्रह्मराक्षसा ।
विप्राङ्गुलिकुशान् दृष्ट्वा दूर गच्छन्त्यधोमुखा ॥

भाव यह है कि जैसे देवेन्द्रके हाथमें वज्रायुध, शिवजीके हाथमें शूल और विष्णुके हाथमे चक्रायुध होता है, उसी प्रकार ब्राह्मणके हाथमें कुश होते हैं। ब्राह्मणके हाथकी अँगुलीमे स्थित कुशको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस सिर झुकाकर दूर चले जाते हैं। कुश पापनाशक है, इसलिये महर्षि मार्कण्डेयजीका वचन है—

कुशपाणिस्सदा तिष्ठेत् ब्राह्मणो दम्भवर्जित ।
स नित्य हन्ति पापानि तूलराशिमिवानल ॥

अर्थात् गर्वरहित होकर ब्राह्मणको सदा कुशहस्त होना चाहिये। जैसे अग्नि तूलराशिको जला देता है, वैसे ही कुश समस्त पापोको दूर कर देते हैं। पवित्र धारण करते समय **'पवित्रवन्त परिवाचमासते०'** आदि मन्त्रोंका उच्चारण किया जाता है। सभी वैदिक सस्कार मन्त्र-तन्त्रके साथ ही सम्पन्न होते हैं। ऐसे सदर्भमे बिना पवित्रके प्राणायाम भी नहीं किया जाता। कहा गया है कि देव-कार्य जप, होम, स्वाध्याय श्राद्धकर्म, स्नान दान और ध्यानके समय तीन बार प्राणायाम करना चाहिये—

देवार्चने जपे होमे स्वाध्याये श्राद्धकर्मणि।
स्नाने दाने तथा ध्याने प्राणायामास्त्रयस्त्रय ॥

सन्ध्या-वन्दनमें अर्घ्यप्रदानको छाडकर अन्य समयमें तीन बार प्राणायाम करना चाहिये—

आदावन्ते च गायत्र्या प्राणायामास्त्रयस्स्मृता ।
सन्ध्यायामर्घ्यदाने च स्मृत एकोऽनुसयम ॥

प्राणायाम करते समय मध्यमा और तर्जनीको छोडकर अङ्गुष्ठ, अनामिका और कनिष्ठिकाका प्रयोग करना चाहिये तथा प्रणव और व्याहृतिके साथ गायत्रीमन्त्रका तीन बार उच्चारण करना चाहिये—

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसयुक्ता त्रिरय प्राणसयम ॥

प्राणायामके पूरक, कुम्भक और रेचकके लक्षण याज्ञवल्क्य मुनिने इस प्रकार बताये हैं—

पूरक कुम्भको रेच्य प्राणायामस्त्रिलक्षण ।
नासिकाकृष्ट उच्छ्वास ध्मात पूरक उच्यते॥
कुम्भको निश्चितोच्छ्वासो रिच्यमानस्तु रेचक ।

प्राणायाम सयमियों और योगियोंका प्रबल साधन है। वह भी यज्ञका एक रूप है। श्रीमद्भगवद्गीता (४।२९)-मे कहा गया है—

अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपान तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणा ॥

गुरुके उपदेशको स्वीकारकर ज्ञानसाधनका अनुसन्धान करना, जगन्मिथ्यात्वकी अनुभूतिकर राग-द्वेषादिको छोडना और सदा सन्तुलित मानसयुक्त होकर स्वराज्यमे स्थिर रहना वस्तुत सच्चा पूरक, कुम्भक और रेचक है। लौकिक सिद्धि ही सस्कारोका लक्ष्य नहीं है, सस्कारोंके मूलमे पारमार्थिक दृष्टि सदा अनुसन्धेय है। सस्कारोंसे सुसस्कृत मानव जीवनके रहस्यको समझकर परमेश्वरके दर्शनकी परमानुभूतिसे ध्रुवपद प्राप्त कर सकता है।

~~o~~

आख्यान— क्षणभरका कुसङ्ग भी पतनका कारण होता है

किसी समय कन्नौजमें अजामिल नामका एक तरुण ब्राह्मण रहता था। वह शास्त्रोका विद्वान् था, शीलवान् था, कोमल स्वभावका, उदार, सत्यवादी, सयमी तथा सस्कारी था। गुरुजनोका सेवक था, समस्त प्राणियोका हितैषी था, बहुत कम और सयत वाणी बोलता था एवं किसीसे भी द्वेष या घृणा नहीं करता था।

वह धर्मात्मा ब्राह्मण युवक पिताकी आज्ञासे एक दिन वनमे फल, पुष्प, अग्निहोत्रके लिये सूखी समिधा और कुश लेने गया। इन सब सामग्रियोको लेकर वह लौटने लगा तो उससे एक भूल हो गयी। वह ऐसे मार्गसे लौटा, जिस मार्गमे आचरणहीन लोग रहा करते थे। यह एक नन्ही-सी भूल ही उस ब्राह्मणके पतनका कारण हो गयी।

ब्राह्मण अजामिल जिस मार्गसे लौट रहा था, उस मार्गमे एक शूद्र एक दुराचारिणी स्त्रीके साथ शराब पीकर निर्लज्ज विनोद कर रहा था। वह स्त्री शराबके नशेमे लज्जाहीन हो रही थी। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। अजामिलने पाससे यह दृश्य देखा। वह शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला आया, किंतु उसके मनमे सुप्त विकार उस क्षणभरके कुसङ्गसे ही प्रबल हो चुका था।

अजामिल घर चला आया, किंतु उसका मन उन्मत्त हो उठा। वह बार-बार मनको सयत करनेका प्रयत्न करता था, किंतु मन उस कदाचारिणी स्त्रीका ही चिन्तन करनेमें लगा था। अन्तत अजामिल मनके इस सघर्षमें हार गया। एक क्षणके कुसङ्गने धर्मात्मा सयमी ब्राह्मणको डुबा दिया पाप-सागरमे। उस कदाचारिणी स्त्रीको ही सतुष्ट करनेमे अजामिल लग गया। माता-पिता, जाति-धर्म, कुल-सदाचार और साध्वी पत्नीको भी उसने छोड़ दिया। लोक-निन्दाका कोइ भय उसे रोक नहीं सका। समस्त पैतृक धन घरसे ले जाकर उसने उसी कुलटाको सतुष्ट करनेमे लगा दिया और बात यहाँतक बढ़ गयी कि उसी स्त्रीके साथ अलग घर बनाकर वह रहने लगा।

जब एक बार मनुष्यका पतन हो जाता है, तब फिर उसका सम्हलना कठिन होता है। वह बराबर नीचे ही गिरता जाता है। अब अजामिलको तो उस कुलटा नारीको सतुष्ट करना था और इसका उपाय था उसे धन देते रहना। चोरी, जूआ, छल-कपट—जिस उपायसे धन मिले—धर्म-अधर्मका प्रश्न ही अजामिलके सामनेसे हट गया।

तनिक देरका कुसङ्ग कितना महान् अनर्थ करता है। एक धर्मात्मा सयमी एक क्षणके प्रमादसे आचारहीन घोर अधर्मी और कुसस्कारी बन गया। (श्रीमद्भागवत)

~~o~~

सामाजिक जीवनमे सच्चारित्र्य एवं सुसंस्कारसम्पन्नताकी अनिवार्यता

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

वेदोंमे चारित्र्य-निर्माण एव सुसस्कारसम्पन्नताके लिये कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीनों साधनोका प्रतिपादन हुआ है। मनुष्यका चारित्र्य पूर्णरूपसे निष्कलङ्क तभी होता है और वह तभी सुसस्कृत होता है, जब उसके अन्त करणमे रहनेवाले मल, विक्षेप एव आवरण—ये तीन दोष मिट जाते हैं। निष्काम कर्मयोगसे मल, उपासनासे विक्षेप एव ज्ञानसे आवरण-दोष दूर होता है। भाष्यकार भगवान् श्रीशकराचार्यने ज्ञानको ही मोक्षका साक्षात् साधन माना है। उन्होने ज्ञानको फलपर्यवसायी सिद्ध करनेके लिये पूर्वमीमासकाके बहुत-से विचारोका परीक्षण एव खण्डन कर अपने पक्षकी स्थापना की है।

पूर्वमीमासाका आधारसूत्र है—

'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्।'

'वेदके क्रियार्थक होनेके कारण उसमें पाये जानेवाले सिद्धपदार्थ-बोधक वाक्य निरर्थक या क्रियाविधिकी प्रशसा या निन्दा करनेवाले अर्थवादमात्र हैं।' शाब्दबोध भी क्रियार्थक वचनोसे ही होता है। प्रयोजक वृद्धने प्रयोज्य वृद्धसे कहा—**'गामानय'**, तब बालक प्रयोज्यवृद्धकी गौको ले जानेकी क्रिया देखकर **'गाम्'** और **'आनय'** इन दो पदोंका अर्थ जानता है। इसी प्रक्रियासे **'गा बधान, अश्वमानय'** इत्यादि वाक्योंमें क्रियापरक पदोंके सहकारसे ही सिद्धपरक पदाका अर्थ जाना जाता है। इसी तरह **'स्वर्गकामो यजेत्'** इत्यादि वेदवचनोंका तात्पर्य भी क्रियापरकतासे ही अवगत होता है। इस प्रकार—**'फलवदर्थावबोधकत्व वेदत्वम्'** का सिद्धान्त स्थापित होता है।

भगवान् शकराचार्यने **'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'** इस सिद्धान्तको मानते हुए भी कर्म और उपासनाकी उपादेयताको स्वीकार किया है। पर—**'व्यवहारे भाट्टनय'**। व्यवहारकी सिद्धिके लिये कुमारिल भट्टने जिन प्रमाणोंको माना उनको शकरने भी माना है। (सनातन-धर्मके इतिहासमें वेदके कर्मकाण्डभागका उद्धार कुमारिल भट्टने और ज्ञानकाण्ड-भागका उद्धार भगवान् शकरने किया।)

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'—इस ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखते हुए शकरने **'अथ'** शब्दका अर्थ साधनचतुष्टयसम्पन्न—ऐसा किया है। नित्यानित्य-वस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग तथा शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा और समाधान—ये छ साधनसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व—इन चाराको ब्रह्मविचारके पूर्व अनिवार्य माना है। ये साधन उसीके अन्त करणमें उत्पन्न होते हैं जो निष्काम कर्मानुष्ठान करता है—

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधन च भवेत् पुसा वैराग्यादिचतुष्टयम्॥

(अपरोक्षानुभूति ३)

अपने वर्ण एव आश्रमके लिये विहित कर्मरूप धर्मका तपस्याके भावसे अनुष्ठान करके श्रीहरिको सतुष्ट—प्रसन्न करनेवाले मनुष्यके अन्त करणमें ही वैराग्यादि चार साधन प्रकट होते हैं।

परतु आजकल बहुत-से लोग कर्मकी उपेक्षा करके उपासना और ज्ञानकी साधनामें प्रवृत्त होना चाहते हैं, जबकि यह नियम है कि क्रियाम शुद्धि नहीं है तो भाव और विचारकी शुद्धि टिक नहीं सकती। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि आपकी किसीसे मित्रता है, पर आप मित्रके परोक्षमे उसका अहित करते हैं या उसके अनिष्टकी बात सोचते हैं तो स्वाभाविकरूपसे आपकी मित्रताकी भावना समाप्त हो जायगी। आजके भारतीय जीवनमे विचारों और भावोंकी उच्चताकी चर्चामात्र होती है। हम उच्च कोटिके भावराज्यका चिन्तन करते हैं, यहाँतक कि कभी-कभी हम ब्रह्मविचार करने भी बैठ जाते हैं, किंतु चारित्रिक धरातलके निम्न रहनेके कारण यह सब मात्र कल्पनाकी उडान बनकर रह जाता है। इसलिये कठोपनिषद्मे कहा है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

'दुश्चरित्रसे विरत न होनेवाला, मन और इन्द्रियोंको सयममे न रखनेवाला, चित्तकी स्थिरताका अभ्यास न करनेवाला एव विक्षिप्त मनवाला मनुष्य केवल बुद्धिबलसे आत्माको प्राप्त नहीं कर सकता।'

इसलिये यह आवश्यक है कि हमारा चरित्र उज्ज्वल हो। जीवनमें दैवी सम्पत्तिके सस्कार प्रतिष्ठित हों। जो सिद्धोंका स्वभाव होता है वही साधकोंकी साधना बन जाता है। अत हम गीतामें स्थितप्रज्ञके लक्षण पढे। दैवीसम्पत्तिके लक्षण पढें। गुणातीत और भगवत्प्रियके लक्षण पढे। रामायणमें श्रीरामचरित्र पढते समय उनके गुणापर दृष्टिपात करें।

श्रीरामचरितमानसमें जो सतोंके लक्षण बताये गये हैं, उनको देखें और उन्हे अपना आदर्श बनाये। दर्पणको आदर्श कहते हैं। जैसे मनुष्य दर्पणके सामने खडे होकर स्वयको सजाता-सँवारता है, वैसे ही इन गुणोंको सम्मुख रखकर हमें अपने चरित्रको परिष्कृत करना चाहिये। आत्मसमीक्षा करके देखना चाहिये कि हम कहाँतक इन सद्गुणोंको अपने अन्त करणमें ला सके हैं—

प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मन ।
किनु मे पशुभिस्तुल्य कि वा सत्पुरुषैरिति॥

'मनुष्य प्रतिदिन अपने चरित्रकी परीक्षा करे कि वह मुझमे पशुओके तुल्य कितना है और कितना सत्पुरुषोके तुल्य है।'

हमारे उज्ज्वल चरित्रसे न केवल हमारा लाभ, अपितु समाज, राष्ट्र और विश्वका भी उससे अभ्युदय होगा। हमारा पवित्र जीवन, सुसस्कारोमे पला जीवन तथा उज्ज्वल चरित्र हमारे समाजका घटक होनेके नाते समाजका ही होगा— जैसे कि वृक्ष-वृक्षसे वन बनता है। यदि एक वृक्ष विकसित, पल्लवित, फलित होता है तो वह वनश्रीकी ही अभिवृद्धि करता है। इसी प्रकार समाजका एक-एक व्यक्ति चरित्रवान् होकर पूरे समाजको चरित्रवान् किवा सुसस्कृत बनानेमे योग दे सकता है। यदि उनसे प्रेरणा पाकर दूसरोंने भी अनुसरण करना प्रारम्भ किया तो वे पूरे समाजका कायापलट कर सकते हैं।

आजकल लोग शङ्का करते हैं कि 'वर्तमान सामाजिक परिस्थितिमे सच्चरित रहना, धर्मका पालन करना क्या सम्भव है? इस समय वातावरण ही ऐसा है कि मनुष्यको न चाहते हुए भी अधर्मके मार्गपर चलना पडता है।' किंतु यदि हमारी समझमें यह बात आती है कि यह अधर्मका मार्ग व्यक्तिके और समाजके कल्याणका नहीं है तो हमे दूसरोकी ओर न देखकर स्वय ही साहस करके सत्यके मार्गपर आगे बढना चाहिये और उसमे आनेवाली कठिनाइयोका सामना करना चाहिये। कठिनाइयाँ आयेंगी, किंतु यदि हमने अपने सत्यपथको न छोडा, तो वे सब समाप्त हो जायँगी। कदाचार, भ्रष्टाचार, अनैतिकताको समाप्त किये बिना न तो लौकिक अभ्युदय हो सकता है न पारमार्थिक कल्याण। यद्यपि धर्मका उद्देश्य तो महान् है, फिर भी आजकी समस्याओका हल अगर हो सकता है, चारित्रिक उत्थान हो सकता है, नैतिकता बढ सकती है तो धार्मिक भावनाओसे ही बढ सकती है। अत धार्मिक भावनाओके सस्कारकी प्राथमिक आवश्यकता है। चरित्र-साधनका यही प्रथम सोपान है।

आख्यान—

विषयोंमें दुर्गन्ध

कोई भक्त राजा एक महात्माकी पर्णकुटीपर जाया करते थे। उन्होने एक बार महात्माको अपने महलोमे पधारनेके लिये कहा, पर महात्माने यह कहकर टाल दिया कि 'मुझे तुम्हारे महलमे बड़ी दुर्गन्ध आती है, इसलिये मै नहीं जाता।' राजाको बड़ा अचरज हुआ। उन्होने मन-ही-मन सोचा—'महलमे तो इत्र-फुलेल छिड़का रहता है, वहाँ दुर्गन्धका क्या काम! महात्माजी कैसे कहते है, पता नहीं।' राजाने सकोचसे फिर कुछ नहीं कहा। एक दिन महात्माजी राजाको साथ लेकर घूमने निकले। घूमते-घामते चमारोकी बस्तीमे पहुँच गये और वहाँ एक पीपलवृक्षकी छायामे खड़े हो गये। चमारोके घरोमे कहीं चमड़ा कमाया जा रहा था, कहीं सूख रहा था तो कहीं ताजा चमड़ा तैयार किया जा रहा था। हर घरमे चमड़ा था और उसमेसे बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी। हवा भी इधरकी ही थी। दुर्गन्धके मारे राजाकी नाक फटने लगी। उन्होने महात्माजीसे कहा—'भगवन्! दुर्गन्धके मारे खड़ा नहीं रहा जाता—जल्दी चलिये।' महात्माजी बोले—'तुम्हींको दुर्गन्ध आती है? देखो चमारोके घरोकी ओर—कितने पुरुष, स्त्रियाँ और बाल-बच्चे है। कोई काम कर रहे हैं, कोई खा-पी रहे है, सब हँस-खेल रहे है। किसीको तो दुर्गन्ध नहीं आती, फिर तुम्हींको क्यो आने लगी?' राजाने कहा—'भगवन्! चमड़ा कमाते-कमाते तथा चमड़ेमे रहते-रहते इनका अभ्यास हो गया है। इनकी नाक ही ऐसी हो गयी है कि इन्हे चमड़ेकी दुर्गन्ध नहीं आती, पर मैं तो इसका अभ्यासी नहीं हूँ। जल्दी चलिये—अब तो एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहरा जाता।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई! यही हाल तुम्हारे राजमहलका भी है। विषय-भोगोंमे रहते-रहते तुम्हे उनमें दुर्गन्ध नहीं आती—तुम्हारा अभ्यास हो गया है, पर मुझको तो विषय देखते ही उल्टी-सी आती है। इसीसे मैं तुम्हारे घर नहीं जाता था।'

राजाने रहस्य समझ लिया। महात्मा हँसकर राजाको साथ लिये वहाँसे चल दिये।

संस्कारतत्त्वविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१ संस्कारका स्वरूप—संस्करणका नाम 'संस्कार' है। 'सम्' उपसर्गसे 'कृञ्' धातुको 'घञ्' प्रत्यय और 'सपरिभ्या करोतौ भूषणे' (पाणिनी०६।१।१३७) सूत्रसे भूषण अर्थमे 'सुट्' करनेपर 'संस्कार' शब्द बनता है। महर्षि जैमिनिप्रणीत 'द्रव्यगुणसंस्कारेषु बादरि' (३।१।३) सूत्रके भाष्यमे श्रीशबरपादमहाभागने संस्कारको परिभाषित करते हुए कहा है—'संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्य कस्यचिदर्थस्य' संस्कार वह होता है, जिसके उत्पन्न होनेपर पदार्थ किसी प्रयोजनके लिये योग्य होता है। तन्त्रवार्तिककार श्रीभट्टपादके अनुसार संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं—'योग्यता चादधाना क्रिया संस्कारा इत्युच्यन्ते'।

२ संस्कारके प्रभेद—मलापनयन, अतिशयाधान और हीनाङ्गपूर्ति-भेदसे संस्कार तीन प्रकारके होते हैं। विजातीय द्रव्यके योगसे मलिन सुवर्णको घर्षणादिके द्वारा निर्मल बनाना मलापनयन है। आभूषणके रूपमें स्थैर्य प्रदान करनेके लिये उसमें किञ्चित् ताम्रधातुका संनिवेश हीनाङ्गपूर्ति है। उसे आभूषणका रूप प्रदान कर उसमें यथास्थान हीरा, मोती आदिका योग अतिशयाधान है।

वैदिक संस्कारसम्पन्न ब्राह्मणादि द्विज होते हैं। मन्त्रोंका विनियोग संस्कारोंमें होता है—'संस्कारेषु मन्त्रा विनियुज्यन्ते'। इस मन्त्रसे यह संस्कार कर्तव्य है—'अनेन मन्त्रेणायं संस्कार कर्तव्य '—ऐसा बोध ब्राह्मणभागके द्वारा सम्भव है। इतिकर्तव्यता (सहायकव्यापार)-का परिज्ञान सूत्रोंसे होता है—'सूत्रेणेतिकर्तव्यतोच्यते'। सूत्रसे ब्राह्मणकी और ब्राह्मणसे मन्त्रकी सार्थकता सिद्ध होती है। वेदोंका कार्यकारित्व तीनोंके योगसे सम्भव है।

उपनिषदोमें कहा गया है—'मनसा संस्करोति ब्रह्मा' (छान्दोग्योपनिषद् ४।१६।२) अर्थात् 'ब्रह्मा यज्ञको मनसे सम्पन्न और संस्कृत करते हैं'। 'चतुश्चत्वारिंशत्संस्कार-सम्पन्न ' (नारदपरिव्राजकोपनिषद् १।१) आदि स्थलोमें चौवालीस संस्कारसम्पन्न संस्कृत और संस्कार शब्दोका प्रयोग प्राप्त है।

३ संस्कारोका प्रयोजन और महत्त्व—सर्वेश्वर 'सत्य, शिव और सुन्दरम्' है। उसमें मनोयोग सृष्टिका प्रयोजन है—'उपाय सोऽवताराय' (माण्डूक्यकारिका ३।१५)। सदोष और विषम शरीर तथा संसारसे मनको उपरतकर उसे निर्दोष एव समब्रह्ममें समाहितकर सर्गजय (पुनर्भवपर विजय) आध्यात्मिक और आधिदैविक दृष्टिसे संस्कारोका प्रयोजन है। बाह्याभ्यन्तर पदार्थोंको अभ्युदय और नि श्रेयसके युक्त बनाना संस्कारोंके द्वारा सम्भव है। पार्थिव, वारुण, तैजस और वायव्य बाह्य वस्तुएँ दृश्य, भौतिक, सावयव तथा परिच्छिन्न होनेसे संस्कार्य हैं। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणशरीर दृश्य और परिच्छिन्न होनेसे संस्कारयोग्य हैं। जो कुछ सदोष और विषम है, वह संस्कार्य है। ब्रह्मात्मतत्त्व विभु, निर्दोष और सम होनेसे असंस्कार्य है।

इहैव तैर्जित सर्गो येषां साम्ये स्थितं मन ।
निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय, स्वधर्म, संयम, सद्व्रत तथा संतानादिकी सार्थकता देहेन्द्रिय-प्राणान्त करणकी निर्मलता और निश्चलतारूप समाधिके सम्पादनमें संनिहित है—

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ता
परो हि योगो मनस समाधि ॥

(श्रीमद्भा० ११।२३।४६)

निर्मल और निश्चल दर्पणपर स्फुट अभिव्यक्त मुखचन्द्रके तुल्य शुद्ध और समाहित चित्तपर सच्चिदानन्दरूप सर्वात्मस्वरूप सर्वेश्वरका स्फुट अभिव्यञ्जन सुनिश्चित है।

वस्तु और व्यक्तिकी उपयोगिता संस्कारपर निर्भर करती है। लोटा, डोरी, पट, पात्र, यन्त्र भवन, भूषण, भोजन, आसनादिकी जीवन-यापनमें उपयोगिताका रहस्य इनके निर्माण और उपयोगके पीछे संनिहित संस्कार है। वैदिक रीतिसे संस्कृत भूमि, जल, अग्नि, वायु, अन्न, वस्त्र आवास, देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्त करणका अद्भुत महत्त्व है।

वेदोक्त कर्मोपासना-सुलभ संस्कारके बलपर ही मनुष्यको इन्द्रादि दिक्पाल, सूर्य, सोम, बृहस्पति, अनन्त, प्रजापति और ब्रह्माका पद सुलभ होता है—

'अग्निहोत्र जुहुयात्स्वर्गकामो यमराज्यमग्निष्टोमेनाभियजति सोमराज्यमुक्थेन सूर्यराज्य षोडशिनो स्वाराज्यमतिरात्रेण प्राज्यापत्यमासहस्त्रसम्वत्सरान्तक्रतुनेति। वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य सस्थिति । अन्तर्याण्डोपयोगादिमौ स्थितावात्मशुची तथा॥'

कर्मोपासनाके समुचित अनुष्ठानसे सुसस्कृत मनुष्य विपुल वैभवसमन्वित सार्ष्टिमोक्षरूप लोकपालोका पद प्राप्त करता है। श्रीसर्वेश्वरकी उपासनासे सुसस्कृत मानव सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य, सायुज्यसज्ञक चतुर्विध मोक्षलाभ कर सकता है—

'चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया भवेत्॥'

(मुक्तिकोपनिषद् १।२५)

अति दुर्लभ कैवल्यरूप परम पद पुरुषप्रयत्नसाध्य वेदान्तश्रवणजन्य समाधिसे सम्भव है। कामना और कर्मके वेगको शान्त करनेकी भावनासे फलाभिसन्धिविनिर्मुक्त पुण्यविशेषके सञ्चय और सुदृढ अभ्यासजन्य भावनाख्य सस्कारविशेषरूप सचिवसे समाधिमे ध्येयाकार वृत्तिकी अनुवृत्ति सम्भव है। समाधिसे सस्कृत चित्तका मलापनयन होता है और उसमे चिदानन्दस्वरूप आत्माका आविर्भाव होता है—

'पुरुषप्रयत्नसाध्यवेदान्तश्रवणादिजनितसमाधिना जीवन्मुक्त्यादिलाभो भवति।' (मुक्तिकोपनिषद् २।१)

वृत्तीनामनुवृत्तिस्तु प्रयत्नात्प्रथमादपि।
अदृष्टासकृदभ्याससस्कारसचिवाद्भवेत्॥

(पञ्चदशी १।५७)

समाधिनिर्धौतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुख भवेत्।
न शक्यते वर्णयितु गिरा तदा
स्वय तदन्त करणेन गृह्यते॥

दु खका हेतु जन्म है। जन्मका हेतु धर्माधर्मरूप प्रवृत्ति है। प्रवृत्तिका मूल राग-द्वेपरूप दोप है। दोपका बीज मिथ्याज्ञान है। जैसे कफके निवारणसे कफोद्भूत ज्वरका निवारण सुनिश्चित है, वैसे ही जन्मके निवारणसे दु खका, धर्माधर्मके निवारणसे जन्मका राग-द्वेपके निवारणसे धर्माधर्मरूपा प्रवृत्तिका और मिथ्याज्ञानके निवारणसे राग-द्वेपरूप दोपका निवारण सुनिश्चित है—

'दु खजन्मप्रवृत्तिदोपमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग ।' (न्यायदर्शन १।१।२)

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार मिथ्या ज्ञान अविद्या है। वही दु ख—दोपका परम कारण है। अवगतिपर्यन्त ब्रह्मात्मैकत्व-विज्ञानरूप विरोधीसे उसका निवारण सम्भव है। अविद्या-निवृत्तिसे ब्रह्मरूपाविर्भाव मोक्ष है—

'अविद्यानिवृत्त्या ब्रह्मरूपाविर्भावो मोक्ष ।'

(भामती १।१।४)

इस प्रकार अविद्यानिवृत्तिपर्यन्त सस्कारकी गति है।

कुयोगरूप कुसस्कारके कारण ही ग्रह, भेषज, जल, पवन और पट कुवस्तु होते हैं। सुयोगरूप सुसस्कारके कारण ये सुवस्तु होते हैं—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहि कुबस्तु सुबस्तु जग लखहि सुलच्छन लोग॥

(रा०च०मा० १।७ क)

जैसे पृथिवी (मिट्टी), जल, तेज, वायु, आकाश तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, सकल्प, निश्चय, स्मरण और गर्व (अहमिति)-के अनुकूल प्रयोगसे रोगकी निवृत्ति और स्वास्थ्यकी अभिव्यक्ति सम्भव है, वैसे ही इनके विधिवत् उपयोगसे देहेन्द्रियप्राणान्त करणका सस्कार सम्भव है।

४ **दार्शनिक विवेचन**—वैदिक सस्कार पञ्चभूत और पञ्चकोशके शोधक हैं। इनकी शुद्धिके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धि असम्भव है। अतएव इनके शोधनकी भावना व्यक्त की गयी है—

'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशा मे शुद्ध्यन्ताम्। अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयमात्मा मे शुद्ध्यताम्।'

अन्नमयकोशको स्थूल शरीर कहते हैं। प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमयकोशको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। आनन्दमयकोशको कारण शरीर कहते हैं। जङ्गमजीवोंका स्थूल शरीर विवक्षावशात् अष्ट धातुमय सप्त धातुमय अथवा षड् धातुमय अतएव षाट्कौशिक कहा जाता है। स्वोचित सस्कारोसे अष्ट धातुओंका शोधन होता है। अतएव इनके शोधनकी भावना व्यक्त की गयी है—

'त्वक्चर्ममासरुधिरस्नायुमेदोऽस्थिमज्जा मे शुद्ध्यन्ताम्।'

विविध आहारोंके सेवनसे मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय नामक छ रस बनते हैं। रससे रुधिर, रुधिरसे मास, माससे मेद, मेदसे स्नायु, स्नायुसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्रकी निष्पत्ति होती है। त्वक्, मास, शोणित, अस्थि, स्नायु और मज्जाकी प्रधानतासे पाञ्चभौतिक स्थूल शरीरको षाट्कौशिक कहा गया है—

'त्वङ्मांसशोणितास्थिस्नायुमज्जा षट्कोशा ।'

(मुद्गलोपनिषद्)

पिताके शुक्रकी प्रधानतासे पुत्र, माताके रुधिरकी अधिकतासे पुत्री तथा शुक्र और शोणित दोनोंके तुल्य होनेसे नपुसक सन्तान उत्पन्न होती है—

'पितू रेतोऽतिरेकात्पुरुषो मातू रेतोऽतिरेकात्स्त्री उभयोर्बीजतुल्यत्वान्नपुंसको भवति।' (गर्भोपनिषद् ३)

जिस प्रकार प्रकृति और पुरुषके आध्यासिक ससर्गसे चराचर जगत्‌की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री-पुरुषके ससर्गसे जङ्गमप्राणियोंकी उत्पत्ति सम्भव है। दोनोके पारस्परिक ससर्गसे एक-दूसरेके गुणोंका आश्रय लेकर ही किसी शरीरका निर्माण होता है। प्राय सभी शरीरोंकी यही स्थिति है। त्वक्, मास और रक्त मातृपरम्परासे प्राप्त त्रिधातु हैं। अस्थि, स्नायु और मज्जा पितृपरम्परासे प्राप्त त्रिधातु हैं—

अस्थि स्नायुश्च मज्जा च जानीम पितृतो गुणा ॥
त्वङ्मांसं शोणित चेति मातृजान्यपि शुश्रुम।

(महा० शान्ति० ३०५।५-६)

त्वचा, मास, रुधिर, मेद, पित्त, मज्जा, अस्थि और स्नायु—ये आठों वस्तुएँ वीर्यसे उत्पन्न हुई हैं। अतएव प्राकृत ही हैं—

त्वङ्मांसं रुधिरं मेद पित्तं मज्जास्थि स्नायु च।
अष्टौ तान्यथ शुक्रेण जानीहि प्राकृतानि वै॥

(महा० शान्ति० ३०५।२४)

प्राणियोंका सूक्ष्म शरीर कर्मेन्द्रियपञ्चक, प्राणपञ्चक, ज्ञानेन्द्रियपञ्चक और मन, बुद्धि, चित्त अहङ्काररूप अन्त करणका समवेत स्वरूप है। कर्मेन्द्रियपञ्चकसहित प्राणपञ्चकको प्राणमय कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियपञ्चकसहित मनको मनोमय कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियपञ्चकसहित बुद्धिको विज्ञानमय कहते हैं।

चित्तका अन्तर्भाव मनमें और अहम्‌का अन्तर्भाव बुद्धिमें होता है। विज्ञानमय ज्ञानप्रधान मनोमय इच्छाप्रधान और प्राणमय कर्मप्रधान है।

जीवोंका कारण शरीर मलिन सत्त्वगुणप्रधान अविद्यासञ्ज्ञक है। प्रिय, मोद और प्रमोदरूप फलात्मक आनन्दमयकोशका तथा अनुभाव्य आनन्दसामान्यरूप बीजात्मक आनन्दमय-कोशका अन्तर्भाव कारण शरीरमे है।

स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीरका और सूक्ष्म शरीर कारण शरीरका अभिव्यञ्जक है। कारण शरीर जीवका और जीव शिवस्वरूप सर्वेश्वरका अभिव्यञ्जक है।

ध्यान रहे, अभिव्यङ्ग्यकी अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जकके अधीन होती है। अभिव्यञ्जकके तारतम्यसे अभिव्यङ्ग्यकी अभिव्यक्तिमे तारतम्य होता है।

वैदिक सस्कारोसे तीनों शरीरोका शोधन होता है, लौकिक-पारलौकिक उत्कर्षरूप अभ्युदय सुलभ होता है तथा नि श्रेयसरूप मोक्षका मार्ग प्रशस्त होता है। अतएव इस लोकमें और मृत्युके बाद परलोकमें पवित्र करनेवाला ब्राह्मणादि वर्णोंका गर्भाधानादि शरीरसस्कार पवित्र वेदोक्त मन्त्रासे करना चाहिये—

वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥

(मनु० २।२६)

ध्यान रहे, गर्भशुद्धिकारक हवन, जातकर्म, चूडाकरण (मुण्डन), मौञ्जीबन्धन (उपनयन)-सस्कारोसे द्विजोंके वीर्य एव गर्भसे उत्पन्न दोष नष्ट होते हैं—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

(मनु० २।२७)

महर्षि हारीतके अनुसार सस्कारोकी दो कोटियाँ हैं—ब्राह्म एव दैव। गर्भाधानादि स्मार्त सस्कारोको ब्राह्म कहते हैं। इनसे सम्पन्न ऋषिसदृश होकर ऋषि-सायुज्य लाभ करते हैं। पाकयज्ञ (पकाये हुए भोजनकी आहुतियाँ), यज्ञ (होमाहुतियाँ) और सोमयज्ञादि दैव सस्कार कहे जाते हैं। विधिवत् गर्भाधानसे पत्नीके गर्भमें भगवत्तत्त्वम आस्थान्वित वेदार्थके अनुशीलनमें अभिरुचिसम्पन्न जीवका प्रवश होता है। पुसवनसस्कारसे गर्भको पुरुषभावसे भावित किया जाता है। सीमन्तोन्नयनके द्वारा माता-पितासे उत्पन्न दोष दूर किया जाता है। बीज रक्त तथा भ्रूणसे उत्पन्न दोष जातकर्म नामकरण अन्नप्राशन चूडाकर्म और समावर्तनसे दूर होते हैं। इस प्रकार

गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण और समावर्तनसे पवित्रताका सम्पादन होता है। उपनयनादि अष्टविध संस्कारोसे देव-पितृकार्योमे परम पात्रता प्राप्त होती है—

द्विविध एव सस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च। गर्भाधानादि स्नानान्तो ब्राह्म ।पाकयज्ञा हविर्यज्ञा सौम्याश्चेति दैव । ब्राह्मसस्कारसस्कृत ऋषीणा समानता सलोकता सायुज्य गच्छति। गर्भाधानवदुपेतो ब्रह्मगर्भ सदधाति। पुसवनात्पुसीकरोति। फलस्थापनान्मातापितृज पाप्मानमपोहति। रेतोरक्तगर्भोपघात पञ्चगुणो जातकर्मणा प्रथममपोहति। नामकरणेन द्वितीय प्राशनेन तृतीय चूडाकरणेन चतुर्थं स्नापनेन पञ्चममेतैरष्टाभि सस्कारैर्गर्भोपघातात् पूतो भवतीति। उपनयनादिभिरष्टाभिरन्तर्वतैश्चाष्टाभि स्वच्छन्दै सम्मिता ब्राह्मणा पर पात्र देवपितृणा भवन्ति। (सस्कारप्रकाश, सस्कारतत्त्व)

वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य व्रत, पूजा, सतानोत्पत्ति, पञ्चमहायज्ञो तथा वैदिक यज्ञासे ब्रह्माभिव्यञ्जक शरीरकी प्राप्ति होती है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ॥

(मनु० २।२८)

सस्काररूप आचारसे देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, द्रव्य, देश और क्रियाकी शुद्धि होती है—

पञ्चेन्द्रियस्य देहस्य बुद्धेश्च मनसस्तथा।
द्रव्यदेशक्रियाणा च शुद्धिराचार इष्यते॥

(शाण्डिल्यस्मृति १।११)

ध्यान रहे, श्रीहरि त्रिगुणमयी मायाके द्वारा काल, देश यज्ञादि क्रिया, कर्ता स्रुवादि करण, यागादि कर्म, वेदमन्त्र, शाकल्यादि द्रव्य और फल—इन नौ रूपोमे व्यक्त होकर निरूपित होते हैं—

कालो देश क्रिया कर्ता करण कार्यमागम ।
द्रव्य फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरि ॥

(श्रीमद्भा० १२।११।३१)

श्रौत-स्मार्तसम्मत सस्कारास जीवनमे सत्त्वगुणका उत्कर्ष होता है। सत्त्वगुणका उत्कर्ष होनेपर कालादिकी शुद्धि होती है। इनकी शुद्धिसे मन सविशेष और निर्विशेष परमात्मामे समाहित होता है। परमात्मतत्त्वमे चित्तक समाहित होनेपर जीवको ब्रह्मात्मतत्त्वका एकत्वविज्ञान सुलभ होता है। ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानसे अविद्यादि प्रतिबन्धोका निरास और निरावरण आत्माका प्रकाश होता है।

साख्य और साख्यगर्भित वेदान्तप्रस्थानके अनुसार सत्त्व, रजस् और तमस्—तीन गुण हैं। गुणानुरूप प्राणियोंकी गति, मति और स्थिति—शास्त्र, युक्ति ओर अनुभूतिसिद्ध है। विशुद्ध सत्त्वसे ध्यान, समाधि और अविप्लव विवेकख्याति तथा निर्वृतिरूपा मुक्ति सुलभ होती है। मलिन सत्त्वगुणसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणापर्यन्त निवृत्तियोग सुलभ होता है। रजोगुणसे अर्थ और कामपर्यवसायी धर्मानुष्ठानोमे प्रीति तथा प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। तमोगुणकी प्रगल्भतासे निद्रा, आलस्य, प्रमाद और हिसादि क्रूर कर्मोमे प्रवृत्ति होती है।

आगम (शास्त्र), अन्न-जल, प्रजा, देश काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और सस्कार—ये दस गुणमे हेतु हैं—

आगमोऽप प्रजा देश काल कर्म च जन्म च।
ध्यान मन्त्रोऽथ सस्कारो दशैते गुणहेतव ॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।४)

उक्त रीतिसे गुणभेदसे सस्कारकी त्रिविधता मान्य है। सात्त्विक सस्कारसे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है।

जिनका चित्त असस्कृत है, वे इस रहस्यको नहीं समझ पाते कि जीवकी ससृतिमे अविद्या, काम और कर्म हेतु हैं। सम्यग्दर्शनसम्पन्न तथा आत्मदर्शी ध्यानयोगी अविद्याकाम-मूलक कर्मबन्धसे विनिर्मुक्त होते हैं, न कि सम्यग्दर्शनविहीन कोई अन्य—

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभि ।
ध्यानयोगेन सपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मन ॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्न कर्मभिर्न निबध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु ससार प्रतिपद्यते॥

(मनु० ६।७३-७४)

प्रवृत्ति हो या निवृत्ति, सस्कारके बिना दोनोंकी सिद्धि असम्भव है। सनातन शास्त्राम कार्यात्मक स्थूल शरीर, करणात्मक सूक्ष्म शरीर और बीजात्मक कारण शरीर एव बाह्य पदार्थोके शोधनकी अद्भुत विधाका वर्णन है। नामरूप-कर्मात्मक जगत् अभ्युदय और नि श्रयसपर्यवसायी हो, तदर्थ नाम (शब्द, समाख्या), रूप (अर्थ) और कर्म (क्रिया, कार्य)-के सस्कारका विधान है। लौकिक अथवा

अलौकिक समाधानसे मन और मन सयुक्त नेत्रादि इन्द्रियोका सस्कार होता है। अञ्जनादिसे नेत्रसस्थानका सस्कार होता है। आलोकादिसे घटादिका सस्कार होता है। तेलादिका आतपादिसे सस्कार होता है। पृथिवीका जलसे सेचन करनेपर पुण्य गन्धकी निष्पत्ति विषयके सस्कारका युक्त उदाहरण है—

इन्द्रियस्यैव सस्कार समाधानाञ्जनादिभि ।
विषयस्य तु सस्कारस्तद्‌गन्धप्रतिपत्तये॥

(वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड ७९)

अभिप्राय यह है कि अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य तेजोरूप हैं, अतएव तेजसे इनकी शुद्धि सम्भव है। अधिभूत शब्द, अध्यात्म श्रोत्र और अधिदैव दिक् नभोरूप हैं, अतएव नभ (ह-बीज)-से इनकी शुद्धि सम्भव है। अधिभूत स्पर्श, अध्यात्म त्वक् और अधिदैव अशभूत वायु वायुरूप हैं, अतएव वायुसे इनकी शुद्धि सम्भव है। अधिभूत रस, अध्यात्म रसना और अधिदैव वरुण जलरूप हैं, अतएव जलसे इनकी शुद्धि सम्भव है। अधिभूत गन्ध, अध्यात्म नासिका और अधिदैव अश्विनी पृथिवीरूप हैं, अतएव पृथिवीसे इनकी शुद्धि सम्भव है। 'उपादेयकी अपेक्षा उपादानकी शुद्धता' शाश्वत सिद्धान्त है। देश, काल, वायु, अग्नि, जल, मिट्टी आदि द्रव्य, मन्त्र, वचन, सस्कार, कर्म और भगवत्स्मरण सनातन शोधक पदार्थ हैं। कर्ता करण और कर्म शोध्य पदार्थ हैं। शोधक और शोध्यके शुद्ध होनेपर धर्मका सम्पादन होता है। अभिप्राय यह है कि द्रव्य वचन, सस्कार, काल, महत्त्व और अल्पत्वसे वस्तुकी शुद्धि और अशुद्धिका परिज्ञान होता है। देश, काल पदार्थ, कर्ता मन्त्र और कर्म—इन छहाके शुद्ध होनेपर धर्मानुष्ठान सम्भव है—

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च।
सस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा॥
मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्।
धर्म सम्पद्यते षड्‌भिरधर्मस्तु विपर्यय ॥

(श्रीमद्भा० ११।२१।१० १५)

५ सनातन सस्कारोंका अधिकारानुरूप वर्गीकरण— धर्मशास्त्रोंके अनुशीलनसे अद्भुत प्रज्ञाका उदय होता है। देहातिरिक्त नित्य और चेतन आत्माके अस्तित्वमे आस्था धर्मका मूल है। धर्मानुष्ठानके लिये पूर्वजन्म, पुनर्जन्ममें तथा उत्क्रमण एव अधोगतिमे परम्पराप्राप्त आस्था और आगमिक युक्तियोके बलपर विश्वास आवश्यक है। धर्मानुष्ठानसे जन्म, उत्क्रमण, अधोगतिरहित आत्मस्थितिरूपा मुक्तिके लिये अपेक्षित बल, वेग तथा अभिरुचिरूपा अधिकारसम्पदा सुलभ होती है।

धर्मानुष्ठान और उसके लिये अपेक्षित सस्काराका मूल—सनातन वर्णव्यवस्थामें आस्था है। जिस वर्णव्यवस्थाको मानवताके लिये अभिशाप माना जा रहा है, वह वस्तुत वरदान है। पूर्व कर्मसापेक्ष जन्म, जन्मसापेक्ष वर्ण, वर्णनियन्त्रित आश्रम और वर्णाश्रमानुरूप कर्म—सनातन वर्णव्यवस्थाका मौलिक स्वरूप है। इसमे अनास्थाका कारण देहात्मवाद और प्रज्ञामान्द्य है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार यद्यपि सभी शरीरोमे आत्मा एक है। सभी शरीर पाञ्चभौतिक हैं, अतएव वर्णव्यवस्थाका औचित्य परिलक्षित नहीं होता। तथापि अवर वर्णोंके अपकर्षकी भावनासे भावित विद्वेषमूलक वर्णव्यवस्था नहीं है। सनातन वर्णवादमे अद्भुत दार्शनिकता और वैज्ञानिकता सनिहित है। यह सर्वहितकी भावनासे भावित है।

असीम दायित्वका निर्वाह और असख्य कर्मोका अनुष्ठान एक व्यक्तिसे सम्भव नहीं। वस्तुओके समान होनेपर भी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष और शुभ-अशुभका जो विधान किया गया है उसका अभिप्राय यह है कि पदार्थोंका ठीक-ठीक निरीक्षण-परीक्षण हो सके। उनमे सदेह उत्पन्न कर योग्य तथा अयोग्यकी परख जगाकर पतनकी ओर उन्मुख स्वाभाविकी प्रवृत्तिको नियन्त्रित किया जा सके—श्रेयोन्मुख बनाया जा सके। व्यक्ति उनके द्वारा धर्मसम्पादन कर सके, समाजका व्यवहार ठीक-ठीक चला सके और जीवन-निर्वाहमे भी सुविधा हो। इससे यह लाभ भी है कि मनुष्य अपनी वासनामूलक सहज प्रवृत्तियोंके जालमें न फँसकर शास्त्रानुसार अपने जीवनको नियन्त्रित और मनको समाहित कर सके। धर्ममार्गपर चलनेवाले कर्माधिकारियोंको इस अनुपम आचारका श्रीहरिने ही मन्वादिरूपसे उपदेश किया है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार धर्ममें निष्ठा रखना ही गुण है इसके

विपरीत अनधिकारचेष्टा दोष है। अभिप्राय यह है कि गुण और दोष—दोनोकी व्यवस्था अधिकारके अनुसार की जाती है, किसी वस्तुके अनुसार नहीं। इस गुण-दोष और विधि-निषेधके विधानसे यही तात्पर्य निकलता है कि किसी प्रकार विषयासक्तिका परित्याग हो सके। स्वभावसे सदोष और निबन्धक कर्म चित्तके शोधक और समाधिके अभिव्यञ्जक हो सके। कर्मोमें प्रीति और प्रवृत्तिका संकोच तथा त्याग हो सके, इस भावनासे शास्त्र कर्मोंका विधान करते हैं—

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुण परिकीर्तित ।
विपर्ययस्तु दोष स्यादुभयोरेष निश्चय ॥
शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ।
दर्शितोऽय मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहता धुरम्॥
कर्मणा जात्यशुद्धानामनेन नियम कृत ।
गुणदोषविधानेन सङ्गाना त्याजनेच्छया॥
(श्रीमद्भा० ११।२१।२—४ ११।२०।२६)

आत्मा एकरूप है। सबके शरीर पाञ्चभौतिक हैं। फिर भी लौकिक और विशेष धर्मोका विभाग भेद-भूमियोका सदुपयोग और निर्भेद आत्मस्थितिकी अभिव्यक्तिके लिये हैं—

पञ्चभूतशरीराणा सर्वेषा सदृशात्मनाम्॥
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरण कृतम्।
यथैकत्व पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तर ॥
(महा० अनु० १६४।११-१२)

अभिप्राय यह है कि जो सनातन वर्णधर्ममे आस्था नहीं रखते, वे प्रकृतिप्रदत्त भेदोका सदुपयोग करते हुए समस्त भेदभूमियोका अतिक्रमणकर निर्भेद आत्मस्थितिका लाभ नहीं कर सकते। वे भय, चिन्ता, भ्रम, चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा लम्पटता, जूआ और शराब—इन अठारह अनर्थोंसे अर्थ और कामको दूर रखकर पुरुषार्थ नहीं बना सकते। अहिंसा सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप यमसंज्ञक मानवधर्मको सनातन वर्णव्यवस्थाके बिना जीवनमें उतार पाना सर्वथा असम्भव है। इस प्रकार सनातन वर्णव्यवस्थाके प्रति आस्थाविहीन व्यक्ति पुरुषार्थविहीन एव पशुतुल्य जीवनयापन करनेके लिये बाध्य है। वह प्रवृत्तिको निवृत्ति और निवृत्तिको निर्वृति (मुक्तिपर्यवसायी) बना सके—यह सर्वथा असम्भव है। उक्त रहस्यको हृदयङ्गम किये बिना सनातन संस्कारोका अधिकारानुरूप वर्गीकरण असम्भव है।

६ संस्कारसंख्याविगानपरिहार—सनातन शास्त्रोमे संस्कारसंख्यामे विगानका समाधान तत्त्वोकी संख्यामे विगानपरिहारकी दृष्टिसे कर्तव्य है। कार्यका कारणमें अथवा कारणका कार्यमें अनुप्रवेश स्वीकारकर प्रसंख्यान (गणना)-मे न्यूनता मान्य है। उक्त अनुप्रवेश न स्वीकारकर संख्यामें अधिकता मान्य हे। एकार्थक शब्दोको लेकर नामभेद मान्य है। इस प्रकार विद्वान् मनीषियोकी दृष्टिमे संख्यामे विभेद अशोभन नहीं है। विवक्षावशात् परस्पर युक्तियुक्त विरुद्ध कथन भी सुसङ्गत ही हैं।

बहुधा प्रयोजन (अभीष्ट फल)-की प्रकारान्तरसे सिद्धिके कारण भी संस्कारादिकी संख्यामें विगीति (विकूलता, भेद)-की प्राप्ति होती है—

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वाना पुरुषर्षभ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम्॥
एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च।
पूर्वस्मिन् वा परस्मिन् वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वश ॥
पौर्वापर्यमतोऽमीषा प्रसंख्यानमभीप्सताम्।
यथा विविक्त यद्वक्त्र गृह्णीमो युक्तिसम्भवात्॥
इति नानाप्रसंख्यान तत्त्वानामृषिभि कृतम्।
सर्वं न्याय्य युक्तिमत्त्वाद् विदुषां किमशोभनम्॥
(श्रीमद्भा० ११।२२।७—९ २५)

७ उपसंहार—जैसे तूलिकासे अनेक प्रकारके रङ्गोको संयुक्त करनेसे चित्र बन जाता है, वैसे ही विधिपूर्वक किये गये गर्भाधानादि संस्कारोसे यह जीवन भी ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बन जाता है—

चित्रकर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनै ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकै ॥
(आङ्गिरसस्मृति (द्वितीय) ४।१०)

~~~ ० ~~~
~~~

आशीर्वचन

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी महाराज)

त्रयीधर्मबोधे सदा बद्धदीक्षा रमाकान्तभक्ति मुदा बोधयन्ती।
कृपापूर्णदृष्ट्या लसेच्चन्द्रमौळे सदा पत्रिकेय सुकल्याणनाम्नी॥

वेदो नित्यमधीयता तदुचित कर्म स्वनुष्ठीयतामिति जगद्गुरो भगवत्पादाना वचसा तथा कुर्वन्नेवेह कर्माणीति ईशोपनिषद्वाक्येन चार्षधर्मोक्तक्रियाकलापस्य अनुसरणाल्लब्धचित्तशुद्धय एव नरा ससाराब्धि तरन्ति, न कर्महीना इति स्पष्टम्। तदर्थमेव सनातनधर्मे उत्पादिता चित्तशुद्धिहेतुका क्रिया सस्कारनाम्ना व्यवह्रियन्ते। तादृशस्य सस्कार-स्योद्बोधनाय कल्याणाभिधानया पत्रिकया लोककल्याणार्थं सस्कारविषये विशेषाङ्कस्तन्यत इति विज्ञाय नितरा तुष्यत्यन्तरङ्ग न । श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसमेतश्रीचन्द्रमौळीश्वरकृपया विशेषाङ्कमिम पठित्वा जना शिष्टाचारा भवन्तु। पत्रिकेयमुत्तरोत्तराभिवृद्धि प्राप्नोतु। तथैवास्या कार्यकर्तारश्च ऐहिकामुष्मिकफलानि प्राप्नुवन्त्वित्याशास्महे। नारायणस्मृति ।

वेदत्रयीके तात्त्विक ज्ञानका बोध करानेहेतु सदैव तत्पर तथा लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी भक्तिका प्रसन्नतापूर्वक बोध करानेवाली 'कल्याण' नामक यह पत्रिका भगवान् शिवकी कृपादृष्टिसे सदा समुल्लसित रहे।

'वेदका नित्य अध्ययन करना चाहिये और उसमे प्रतिपादित उचित कर्मोका अनुष्ठान करना चाहिये'— भगवत्पाद जगद्गुरु शङ्कराचार्यके इस वचनसे और 'शास्त्रनियत कर्मोको करते हुए ही इस जगत्मे सौ वर्षोतक जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये'—इस ईशावास्योपनिषद्-वाक्यके पालनसे तथा आर्ष धर्मग्रन्थोंमें उल्लिखित क्रिया-कलापोंके अनुसरणके द्वारा ही मनुष्याका चित्त शुद्ध होता है और वे ससार-सागरको पार करते हैं, शुद्धाचरण-हीन मनुष्याका उद्धार नहीं होता—यह स्पष्ट है। उसी उद्देश्यकी प्राप्तिहेतु सनातनधर्ममें चित्तशुद्धिके लिये निर्मित क्रियाओंको 'सस्कार' नामसे व्यवहृत किया जाता है। उस प्रकारके सस्कारके उद्बोधनके लिये 'कल्याण' नामक पत्रिकाके माध्यमसे लोक-कल्याणको लक्ष्य करके सस्कार-विषयसे सम्बन्धित एक विशेषाङ्क प्रकाशित हो रहा है—यह जानकर हमारे मनको बडी प्रसन्नता हुई। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसहित श्रीचन्द्रमौलीश्वरकी कृपासे इस विशेषाङ्कका अनुशीलन करके लोग शिष्टाचार-सम्पन्न होवे, यह पत्रिका उत्तरोत्तर समुन्नति तथा अभिवृद्धिको प्राप्त हो तथा इस पत्रिकाकी सेवामे तत्पर लोगोको लोकिक तथा पारलौकिक फलोकी प्राप्ति हो—यही मेरी सत्कामना है। नारायणस्मृति।

~~~ O ~~~

दीर्घ जीवनका नही, पवित्र जीवनका मूल्य है

कितना लम्बा जीवन जीये ? यह कोई महत्त्वकी वस्तु नहीं है। कितना जियाके बजाय कैसा जीवन जिया—यह अधिक महत्त्वकी वस्तु है।

इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठाकी ओर दृष्टि करेगे तो कई ऐसी विभूतियोके दर्शन हागे, जिनका आयुष्य बहुत ही परिमित था, परतु उस परिमित आयुष्यमे भी वे ऐसा महान् कार्य करके गये है, जिसके कारण भले ही उनका भौतिक अस्तित्व इस दुनियामे नहीं है, परतु उनका उज्ज्वल यश दिग्दिगन्ततक फैला है।

सौ किलो लोहेसे भी एक किलो सोनेका मूल्य अधिक होता है और एक किलो सोनेसे भी दस-बीस ग्रामके हीरोंका मूल्य अधिक होता है। अत अपवित्र तथा कलकित जीवनके सौ वर्षके बजाय पचीस वर्षकी पवित्र जिन्दगीका मूल्य अधिक है।

पवित्र जीवन जीनेवाले, अल्प जीवन जीनेपर भी युगा-युगोतक अपना नाम अमर कर जाते है, जबकि दुष्ट पुरुष दीर्घ-कालतक जीये तो भी उसकी जिन्दगी अन्य जीवोके लिये दु खदायी एव भारभूत ही होती है। अत दुर्लभतासे प्राप्त मानव-जीवनको पवित्र बनानेके लिये अपने जीवनको सदाचारी और सुसस्कृत बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

~~~ O ~~~

संस्कारस्वरूप और प्रभेदविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)

सस्कारस्वरूप

वस्तुको भोग या योगके अनुरूप बनानेकी विधा सस्कार है। जगत् नाम, रूप और कर्मात्मक है। सनातन शास्त्रोमें रूप, क्रिया और समाख्याको सस्कृत करनेकी अपूर्व विधाका वर्णन है। देव ऋषि, पितर और परमेश्वरके प्रसादका तथा दैवी-सम्पद्का अभिव्यञ्जक कर्म तथा भाव सस्कार है। सत्ता, स्फूर्ति और सुखोपलब्धि उसका फल है।

सस्कार्य-कर्मता दो प्रकारकी होती है—१ गुणाधानसे तथा २ दोषापनयनसे। बीजपूर (बिजौरी नीबू)-के फूलको लाखके रससे तर कर देनेपर उसका फल अदरसे लाल हो जाता है। यह गुणाधान-सस्कार है—

कुसुमे बीजपूरादे यल्लाक्षाद्युपसिच्यते।
तद्रूपस्यैव सक्रान्ति फले तस्येति वासना॥

(प्रवाभा० पृ० ३५८)

मलिन दर्पणतलपर ईंटेका चूर्ण रगडनेसे दर्पण सस्कृत हो जाता है। यह दोषापनयनका उदाहरण है। आत्मा निर्गुण, निरश, निष्क्रिय निर्विकार, विभु, सच्चिदानन्द, ब्रह्मस्वरूप है। अतएव वह द्विविध सस्कारोका अविषय है। गर्भाधान, गर्भवृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था कुमारावस्था, युवावस्था, प्रौढावस्था वृद्धावस्था और मृत्यु—ये नौ अवस्थाएँ स्थूल शरीरकी हैं—

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम्।
वयोमध्य जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव॥

(श्रीमद्भा०११।२२।४६)

साकार (मूर्त) अन्न एव जलसे निराकार (अमूर्त) भूख तथा प्यासकी निवृत्ति सर्वानुभवसिद्ध है। मूर्त औषधिके सेवनसे अमूर्त रोगका निवारण भी सर्वानुभवसिद्ध है। तद्वत् स्थूल शरीरके सस्कृत होनेपर करणात्मक सूक्ष्म और बीजात्मक कारण शरीरकी शुद्धि अनुभवगम्य है। यमादि अष्टाङ्गयोगके सेवनसे त्रिविध शरीरकी शुद्धि आगम, उपपत्ति (युक्ति) तथा अनुभूति-सम्मत है। हिसा असतोषादि गर्हित भाव इन्द्रिय और अन्त करणनिष्ठ हैं। प्रतिपक्षी अहिसा, सतोषादिके सेवनसे उनका निवारण युक्तियुक्त है। मल, विक्षेपके हेतुभूत हिसादिके निवारणसे मन शुद्धि और स्थैर्य स्वानुभवसिद्ध हैं। इस सदर्भमे आगमप्रमाण इस प्रकार है—

अहिसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभि ।
तपसश्चरणैश्चोग्रै साधयन्तीह तत्पदम्॥

(मनु० ६।७५)

अर्थात् अहिंसा, इन्द्रियोंमें विषयोंकी अनासक्ति (इन्द्रिय-निग्रहरूप दम), वैदिक नित्यकर्म, यथासम्भव कृच्छ्र चान्द्रायणादि उपवासरूप उग्र तप सम्यग्दर्शनके सोपान हैं। इनको साधनेवाले ब्रह्मपदको सिद्ध कर लेते हैं।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण ससर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥

(मनु० ६।७२ श्रीमद्भा० ३।२८।११)

प्राणायामोसे राग-रोगादि दोषोको, धारणासे पापको, प्रत्याहारसे विषयससर्गको और ध्यानसे भगवान्से विमुख रखनेवाले जीवनिष्ठ अनैश्वर्य, अयशादि हेय गुणगणोंको जलावे।

आसनेन रुज हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकार मानस योगी प्रत्याहारेण मुञ्चति॥
धारणाभिर्मनोधैर्यं याति चैतन्यमद्भुतम्।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्त्वा कर्म शुभाशुभम्॥

(योगचूडामण्युपनिषद् [illegible])

आसनसे रोगका और प्राणायामसे पातक [illegible] होता है। प्रत्याहारसे योगी मनोविकारोंका [illegible] है। धारणाओंसे चिद्रूप आत्मामें मन [illegible] है। समाधिसे शुभाशुभ कर्मोंका [illegible] प्राप्त करता है।

[illegible]

नारदपरिव्राजक [illegible] सस्कार होते [illegible]। गौतमधर्मसूत्र ([illegible]) [illegible]

मे चालीस सस्काराका उल्लेख है—'**चत्वारिशत्सस्कारै सस्कृत** ''**चत्वारिशत्सस्कारसम्पन्न** '। गौतमस्मृति (अ० ८)-मे भी चालीस सस्कारोका ही उल्लेख है— '**चत्वारिशता सस्कारै सस्कृत** ।' वस्तुत नारदपरिव्राजकोपनिषद् और गौतमस्मृतिके अनुसार भी चालीस सस्काराकी सिद्धि होती है। शौच, सतोप, तप और स्वाध्यायरूप अतिरिक्त चार नियमोके योगसे और दया, शान्ति अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य, अस्पृहा—इन आठ अतिरिक्त आत्मगुणो (जीवनिष्ठ दिव्य गुणा)-के योगसे चालीस सस्काराकी सख्या अडतालीस हो जाती है—

'**अथाष्टावात्मगुणा दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति।**'

(गौतम अ० ८)

चालीस सस्कारोका विभागपूर्वक उल्लेख इस प्रकार है—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ विष्णुबलि, ५ जातकर्म ६ नामकरण, ७ उपनिष्क्रमण, ८ अन्नप्राशन, ९ चूडाकर्म, १० कर्णवेध ११ अक्षरारम्भ, १२ उपनयन १३ व्रतारम्भ, १४ समावर्तन, १५ विवाह, १६ उपाकर्म, १७ उत्सर्जन। **सप्त पाकयज्ञसस्था**— १८ हुत, १९ प्रहुत, २० आहुत, २१ शूलगव, २२ बलिहरण, २३ प्रत्यवरोहण २४ अष्टकाहोम। **सप्त हविर्यज्ञसस्था**—२५ अन्याधान २६ अग्निहोत्र, २७ दर्शपूर्णमास, २८ चातुर्मास २९ आग्रयणेष्टि, ३० निरूढपशुबन्ध, ३१ सौत्रामणी। **सप्त सोमयज्ञसस्था**—३२ अग्निष्टोम ३३ अत्यग्निष्टोम, ३४ उक्थ्य ३५ पोडशी ३६ वाजपेय ३७ अतिरात्र ३८ आप्तोर्याम। **आश्रमान्तर**—३९ वानप्रस्थ ४० सन्यास।

प्रकारान्तरसे चालीस सस्कार (गौतमधर्मशास्त्र अ० ८)—१ गर्भाधान, २ पुसवन ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नामकरण ६ अन्नप्राशन ७ चूडाकर्म ८ उपनयन,९—१२ चार वेदोके व्रत १३ समावर्तन और १४ विवाह। **पञ्च महायज्ञ**—१५ देवयज्ञ १६ पितृयज्ञ १७ अतिथियज्ञ १८ भूतयज्ञ १९ ब्रह्मयज्ञ। **सप्त पाकयज्ञसस्था**—२० श्राद्ध (पितृमेध पिण्डपितृयज्ञ), २१ अष्टकाश्राद्ध, २२ पार्वणस्थालीपाक, २३ श्रावणी, २४ आश्विनीकर्म (आश्वयुजी),२५ आग्रहायणी, २६ चैत्री। **सप्त हविर्यज्ञसस्था**—२७ श्रौत-स्मार्त-अग्न्याधान, २८ नित्याग्निहोत्र, २९ दर्शपौर्णमासयाग, ३० चातुर्मास्य (विश्वेदेव, वरुणप्रघास, शाकमेध, शुनासीरीय), ३१ आग्रयणेष्टि (नवान्नेष्टि), ३२ निरूढपशुयाग, ३३ सौत्रामणीयाग। **सप्त सोमयज्ञ-सस्था**—३४ अग्निष्टोम, ३५ अत्यग्निष्टोम, ३६ उक्थ्य ३७ पोडशी, ३८ वाजपेय ३९ अतिरात्र, ४० आप्तोर्याम।

पचीस सस्कार—सस्कारमयूख और सस्कारप्रकाश आदिमे समुद्धृत वचनोके अनुसार महर्षि अङ्गिराने जिन पचीस सस्काराका वर्णन किया है, वे इस प्रकार हैं—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ सीमन्त, ४ विष्णुबलि, ५ जातकर्म ६ नामकरण, ७ निष्क्रमण, ८ अन्नप्राशन ९ चूडाकर्म, १० उपनयन, ११—१४ चारो वेदोका आरम्भ, १५ स्नान (समावर्तन), १६ विवाह, १७ आग्रयण, १८ अष्टका, १९ श्रावणी, २० आश्विनी, २१ मार्गशीर्षी, २२ पार्वण, २३ उपाकर्म, २४ उत्सर्ग और २५ नित्यमहायज्ञ।

पोडश सस्कार—व्यासस्मृति (१।१३—१५)-के अनुसार सोलह सस्कार इस प्रकार हैं—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ सीमन्त, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८ वपन (चूडाकर्म), ९ कर्णवेध १० व्रतादेश (उपनयन), ११ वेदारम्भ १२ केशान्त, १३ स्नान (समावर्तन), १४ विवाह, १५ विवाहाग्निपरिग्रह (आवसथ्याधान) और १६ त्रेताग्निसग्रह (श्रौताधान)।

गर्भाधान पुसवन सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशन वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधि ।
केशान्त स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रह ॥
त्रेताग्निसग्रहश्चेति सस्कारा पोडश स्मृता ।

(व्यासस्मृति १।१३—१५)

श्रीजातूकर्ण्य और मार्कण्डेयस्मृतिके अनुसार सोलह

संस्कार इस प्रकार हैं—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ अन्नप्राशन, ७ चौल, ८ मौञ्जी, ९—१२ चतुर्वेद व्रत, १३ गोदान (केशान्त), १४ समावर्तन, १५ विवाह और १६ अन्त्य (पैतृमैधिक)—

गर्भाधान पुसवन सीमन्तो जातकर्म च।
नामान्नप्राशन चौल मौञ्जीव्रतचतुष्टयम्॥
गोदानिक तथा स्नान विवाह पैतृमैधिक।

(मार्कण्डेयस्मृति)

याज्ञवल्क्यस्मृतिके अनुसार सोलह संस्कार निम्नलिखित हैं—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ स्पन्दन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ सूर्याविक्षण (निष्क्रमण, उपनिष्क्रमण, निर्णयन), ७ अन्नप्राशन, ८ चूडाकरण, ९ कर्णवेध, १० ब्रह्मसूत्रोपनयन, ११ व्रत, १२ विसर्जन, १३ केशान्त, १४ विवाह, १५ चतुर्थीकर्म और १६ अग्निसग्रह—

गर्भाधान पुसवन स्पन्दन च निमित्तकम्।
जातकर्म च नाम च सूर्यावेक्षणकन्तथा॥
अन्नप्राशनचूडा च कर्णवेधस्तथैव च।
ब्रह्मसूत्रोपनयन व्रतविसर्जनमत परम्॥
केशान्तश्च विवाहश्च चतुर्थीकर्म एव च।
अग्निसग्रहणञ्चैव संस्काराणि च षोडश॥

(ब्रह्मोक्त याज्ञवल्क्यसहिता ८। ३५९—३६१)

दस संस्कार—वैष्णवधर्मशास्त्र (अ० २७)-मे १ निषेक, २ पुसवन, ३ स्पन्दन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामधेय, ७ आदित्यदर्शन, ८ अन्नप्राशन, ९ चूडाकरण, १० उपनयनका उल्लेख और विवाहका सकेत प्राप्त है—

गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने निषेककर्म। स्पन्दनात्पुरा पुसवनम् षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तोन्नयनम्। जाते च दारके जातकर्म। अशौचव्यपगमने नामधेयम्। चतुर्थे मास्यादित्यदर्शनम्। षष्ठेऽन्नप्राशनम्। तृतीयेऽब्दे चूडाकरणम्। एता एव क्रिया स्त्रीणाममन्त्रका। तासा समन्त्रको विवाह। गर्भाष्टमेऽब्दे ब्राह्मणस्योपनयनम्। गर्भैकादशे राज्ञ। गर्भद्वादशे विश।

श्रीमनुप्रोक्त षोडश संस्कार—मनुस्मृतिके अनुशीलनसे निम्नलिखित सोलह संस्कार सिद्ध होते हैं—

१ निषेक (गर्भाधान), २ पुसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूडाकरण, ९ कर्णवेध, १० उपनयन (वेदारम्भ ब्रह्मचर्यव्रत), ११ केशान्त, १२ स्नान (समावर्तन), १३ विवाह (स्मार्त और श्रौत अग्न्याधान), १४ वानप्रस्थ, १५ परिव्रज्या और १६ पितृमेध।

'**गार्भैर्होमै**' (मनु० २। २७) इस वचनसे गर्भसंस्कार, गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन सर्वसम्मत संस्कार हैं। '**प्राङ् नाभिवर्धनात्पुसो जातकर्म विधीयते**' (मनु० २। २९)-में जातकर्मका उल्लेख है। '**नामधेय दशम्या तु द्वादश्या वास्य कारयेत्**' (मनु० २। ३०)-मे नामकरण-संस्कारका वर्णन है। '**चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोर्निष्क्रमण गृहात्। षष्ठेऽन्नप्राशन मासि यद्वेष्ट मङ्गल कुले॥**' (मनु० २। ३४)-में निष्क्रमण तथा अन्नप्राशनका निरूपण है।

चूडाकर्म द्विजातीना सर्वेषामेव धर्मत।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्य श्रुतिचोदनात्॥

(मनु० २। ३५)

—इसमे चूडाकरणका उल्लेख है।

'**शुभे रौक्मे च कुण्डले**' (मनु० ४। ३६)-के अनुशीलनसे कर्णवेध चरितार्थ होता है। '**गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्**' (मनु० २। ३६) आदि वचनोंमे उपनयनका उल्लेख है। '**ब्रह्मारम्भेऽवसाने च**' (मनु० २। ७१) आदि स्थलोमे ब्रह्मारम्भका उल्लेख है। '**केशान्त षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते**' (मनु० २। ६५)-में केशान्तका वर्णन है। '**आ समावर्तनात्कुर्यात्**' (मनु० २। १०८)-में समावर्तनका चित्रण है। '**गृहस्थाश्रम-मावसेत्**' (मनु० ३। २)-मे गृहस्थाश्रमका निरूपण है। '**वने वसेत्तु नियत**' (मनु० ६। १) और '**त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत्**' (मनु० ६। ३३)-में परिव्रज्याका उल्लेख है। '**अन्त्यकर्मणि**' (मनु० ५। १६८), '**श्मशानान्त**' (मनु० २। १६) तथा '**पितृमेध समाचरन्**' (मनु० ५। ६५)-मे पितृमेधका वर्णन है।

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य-समुपदिष्ट पञ्च संस्कारोंका स्वरूप

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

मानव-जीवनमे सस्कारोकी बडी महत्ता है। जो मानव सुसस्कृत सस्कारोंसे समन्वित है, उसमे उज्ज्वलता पावनता, सरसता, मधुरता एव ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रस्फुटित होती है। हमारी भारतीय अनादि वैदिक सनातन सस्कृतिमें सस्कारोंका सर्वाधिक महत्त्व है। सस्कारहीन मानव उत्तमोत्तम गुणगणोसे वञ्चित रहता है, फलत उसका परिणाम हितावह नहीं होता, अतएव पावन सस्कारोंकी नितान्त अपेक्षा है। सुन्दर सस्कारोके अभावमे मानव पथविचलित होकर किंकर्तव्यविमूढ बन जाता है। इसीलिये हमारे तत्त्वद्रष्टा आप्त महापुरुषोंने उत्तम सस्कारयुक्त जीवनको ही परमोपादेय माना है। इसीलिये शास्त्रोमे षोडश सस्कारोका विधान विहित है। सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्यप्रवर जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यने अपने 'वेदान्त-कामधेनु दशश्लोकी' के अन्तिम श्लोकमें पञ्चार्थ-तत्त्वका विवेचन करते हुए विरोधी तत्त्वोसे सावधान रहनेकी प्रेरणा प्रदान की है। विरोधी तत्त्वोसे हमारी वृत्ति कलुषित होती है एव सस्कार विकारमय होते हैं। यथा—

उपास्यरूप तदुपासकस्य च
कृपाफल भक्तिरसस्तत परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्ते-
र्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभि ॥

(वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी १०)

अर्थात् उपासनीय परमात्मा श्रीकृष्णका स्वरूप उनके उपासक जीवका स्वरूप भगवान्‌की कृपाका फल तदनन्तर भक्तिरसका आस्वादन तथा भगवत्प्राप्तिके विरोधी भावका स्वरूप—इन पाँच वस्तुओंका श्रेष्ठ साधकोंको ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

श्रीनिम्बार्कभगवान्‌ने शास्त्रप्रतिपादित पञ्च वैष्णव सस्कारोका निरूपण किया है—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः ।
अमी हि पञ्च संस्काराः पारमैकान्त्यहेतवः ॥

([illegible])

(१) शङ्ख-चक्र-मुद्राओंसे भुजाओंपर धारण करना (२) गोपीचन्दनसे तिलक करना, (३) भगवत्सम्बन्धी नामसे सम्बोधित करना, (४) तुलसी-कण्ठी-धारण तथा (५) मन्त्रोपदेश-ग्रहण करना—ये पाँच सस्कार हैं। इन पञ्च सस्कारोंसे सुशोभित होकर श्रीहरिभजनमें परायण रहना चाहिये।

(१) शङ्ख-चक्र—

अङ्कित शङ्खचक्राभ्यामुभयोर्बाहुमूलयो ।
समर्च्चयेद्धरि नित्य नान्यथा पूजन भवेत्॥

(स्मृतिशास्त्र)

जिसकी दोनो भुजाओपर शङ्ख-चक्रके चिह्न अङ्कित हो, ऐसा साधक नित्य सर्वेश्वर श्रीहरिका सम्यक् प्रकार अर्चन-वन्दन करे, उसके द्वारा की गयी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती।

(२) तिलक—

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्र सर्वलोकेषु पूजित ।
विमानवरमारुह्य याति विष्णो पर पदम्॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड २२५।५)

ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक धारण करनेवाला विप्र किंवा साधक, जो सर्वत्र सम्पूजित होता है, वह इस पाञ्चभौतिक शरीरके त्यागनेपर दिव्य विमानमे सुशोभित होकर भगवान् विष्णु—वासुदेव श्रीकृष्णके नित्य धामको प्राप्त करता है।

(३) नाम—

वैष्णवोऽसि हरिदासोऽसीति शिष्य वदेत् गुरु ।
अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्या नाम कुर्याच्च वैष्णवम्॥
विना नाम धरन्धर्म रिक्तो भवति मन्दधी ।
मुकुन्दनामसस्कारविहीनस्तु बहिर्मुख ॥

(आगमशास्त्र)

श्रीगुरुदेव स्वय शिष्यको दीक्षा-दानके समय शङ्ख-चक्रसे अङ्कित कर वैष्णवपरक नामकरण कर इस प्रकार निर्देश करे कि तुम आजसे वैष्णवरूपमे तथा श्रीहरिके शरणागत दासरूपमें अवस्थित हो।

विना नाम-सस्कारके मन्दमति साधक धर्मका सेवन करनेपर भी उसके फलसे वञ्चित रहता है। मुकुन्द-नाम-सस्काररहित वह सदा ही बहिर्मुख है।

(४) तुलसी-कण्ठी—

तुलसीकाष्ठमालाञ्च कण्ठस्था वहते तु य ।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवैति न सशय ॥
(विष्णुधर्म०)

जो तुलसी-काष्ठकी मालाको अर्थात् तुलसी-कण्ठीको अपने कण्ठ-प्रदेशम सदा धारण करता है, वह अपवित्र एव आचारहीन भी हो तो नि सदेह मुझे ही प्राप्त करता है।

तुलसीकाष्ठसम्भूता माला यो वहते नर ।
तारित च कुल तेन यावद्रामकथा क्षितौ॥
(स्कन्दपुराण)

अर्थात् जो मानव तुलसी-काष्ठमाला (तुलसी-कण्ठी) धारण करता है, वह जबतक इस भूतलपर श्रीरामकथा विद्यमान है, तबतक अपने समस्त कुलको इस भवसिन्धुसे तार देता है।

(५) मन्त्र—

मन्त्रान् श्रीमन्त्रराजादीन् वैष्णवान् गुर्वनुग्रहात्।
सर्वैश्वर्यं जपन्प्राप्य याति विष्णो पर पदम्॥

श्रीगुरुदेवके परमानुग्रहसे उनसे प्राप्त मन्त्र एव मन्त्रराज— इन भगवदीय मन्त्रोके जप करनेपर साधक सर्वेश्वर विष्णुरूप भगवान् श्रीकृष्णके परम दिव्य धामको प्राप्त करता है।

सम्पूर्ण मन्त्रसमूहम भगवान् विष्णुपरक मन्त्र अति श्रेष्ठ होता है। विशेषत सर्वेश्वर श्रीकृष्णपरक मन्त्र समस्त ऐश्वर्य और भगवद्भावापत्ति रूप मोक्षको देनेवाला है।

नारायणमुखाम्भोजान्मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षर ।
आविर्भूत कुमारैस्तु गृहीत्वा नारदाय च॥
उपदिष्ट स्वशिष्याय निम्बार्काय च तेन तु।
एव परम्पराप्राप्तो मन्त्रस्त्वष्टादशाक्षर ॥

नारायण भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे आविर्भूत अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज है, जिसे महर्षिवर्य श्रीसनकादिकोंने प्राप्त किया ओर उनसे देवर्षिप्रवर श्रीनारदजीने तथा इन देवर्षिने अपने परम शिष्य सुदर्शनचक्रावतार श्रीनिम्बार्कभगवान्‌को प्रदान किया। इस प्रकार परम्परापूर्वक 'श्रीगोपालतापिन्युपनिषद्'-वर्णित अष्टादशाक्षर श्रीगोपालमन्त्रराज सर्वश्रेष्ठ है।

वस्तुत इन पञ्च संस्कारोको भगवन्निष्ठ परम धीर महामनस्वी प्रशस्त सद्गुरुदेवद्वारा शरणापन्न साधक प्राप्त कर लेता है तो उसका मानवजन्म परम सार्थक हो जाता है। संस्काररहित्य-जीवन इस भवाटवीके झञ्झावातोसे प्रताडित रहता है। इन पञ्च संस्कारोका विधान शास्त्रपरिवर्णित एव श्रीभगवन्निम्बार्काचार्योपदिष्ट है। इनके समाश्रयसे मानव शाश्वत परमानन्दरससुधासिन्धुमे अवगाहनपूर्वक नित्य नवयुगलकिशोर वृन्दावननिकुञ्जविहारी श्यामाश्याम श्रीराधा-कृष्णकी अनिवर्चनीय अनुकम्पाका भाजन हो जाता है। फलत इस भवार्णवके दु ख-द्वन्द्वासे रहित होकर सदा-सर्वदा उनके नित्य परिकरमे अवस्थित रहकर अनन्त रसामृतका पान करना चाहिये, जो मानव-जीवनका सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है।

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यकी आचार्यपरम्परामें रसिकराज-राजेश्वर श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी महाराजने अपने रसमय 'श्रीमहावाणी' ग्रन्थमें इन उत्तम संस्कारोको परिपुष्ट करनेके लिये इस भावपूर्ण पदमे द्वादश लक्षण एव दशविध सोपानका परम मननीय वर्णन किया है—

जो कोउ प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिटकावै॥
बिधि-निषेध के जे जे धर्म। तिनिको त्यागि रहे निष्कर्म॥
झूठ क्रोध निंदा तजि देही। बिन प्रसाद मुख और न लेही॥
सब जीवनि पर करुना राखै। कबहुँ कठोर बचन नहिं भाखैं॥
मन माधुर्य-रस माहि समोवै। घरी पहर पल वृथा न खोवै॥
सतगुरु के मारग पगु-धारै। हरि सतगुरु बिचि भेद न पारै॥
ए द्वादस-लच्छिन अवगाहैं। जे जन परा परम-पद चाहैं॥
जाके दस पैड़ी अति दृढि है। बिनअधिकारकौनतहाँ चढिहैं॥
पहले रसिक जनन को सेवै। दूजी दया हिये धरि लेवै॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है॥
पचमि पद पकज अनुरागै। षष्ठी रूप अधिकता पागै॥
सप्तमि प्रेम हिये विरधावै। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावै॥
नवमी दृढता निश्चै गहिबे। दसमी रसकी सरिता बहिबे॥
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं। सनै-सनै जगत निरबरहीं॥
परमधाम परिकर मधि बसहीं। श्रीहरिप्रिया हितू सँग लसहीं॥

जो रसिक भगवद्भक्त श्रीराधासर्वेश्वर प्रभुके चरण-कमलाश्रित होवे, वह जगत्‌के विकारमय आश्रयका परित्याग कर विधि-निषेधके धर्ममे अनासक्त होकर निष्काम-भावसे

निम्न द्वादश लक्षणोको अपने हृदयमे धारण करे, जिससे परम पदकी प्राप्ति ध्रुवरूपसे सिद्ध है। यथा—१-मिथ्या, २-क्रोध, ३-निन्दा और ४-कटुवचन—इनका त्याग करे, ५-भगवत्-प्रसादके अतिरिक्त अन्य वस्तुको ग्रहण न करे, ६-समस्त प्राणिमात्रपर करुणापूर्ण भाव हो, ७-अपने मनको मधुरतासे परिपूर्ण करे, ८-भगवत्परक रसमे अवगाहन करे, ९-समयको पलभर भी वृथा न जाने दे, १०-सद्गुरुद्वारा निर्दिष्ट पथका अनुगमन करे, ११, १२-श्रीहरि और सद्गुरुमे विभेद न करे।

इसी प्रकार दशविध सोपान हैं, जिन्हे पात्रताके बिना कैसे पार किया जा सकता है? ये दस सोपान इस प्रकारसे वर्णित हैं—यथा—१-भक्तका सत्सङ्ग, २-हृदयमे दयाका सञ्चार, ३-धर्ममे निष्ठा, ४-भगवत्कथा-श्रवण, ५-श्रीहरिपदकमलाम अनुराग, ६-भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा, ७-निज-मानसमें प्रेमाभक्ति, ८-भगवद्रूपका ध्यानपूर्वक गुणगान, ९-दृढभाव और १०-भगवद्रसकी सरिताका प्रवाह।

इन दशरूपात्मक वर्णित सोपान-पथपर जो अग्रसर होता है, वह शनै -शनै इस भवसागरसे उद्धार पा लेता है और श्रीप्रभुके दिव्य-धाम-परिकरम निवास करते हुए अनन्त परमानन्दका निश्चय ही अनुभव करता है।

उपर्युक्त पञ्च सस्काराको धारण करनेवाला साधक इस महनीय पदमे वर्णित नियमोंका परिपालन करता हुआ अपने मानव-जीवनको श्रेष्ठ सस्कारासे समन्वित कर परम सार्थक करे।

यद्यपि श्रीनिम्बार्क-सिद्धान्तमें पञ्च सस्कारोंका परिवर्णन बहुत ही विस्तृत है तथापि प्रस्तुत आलेखमे वह अत्यन्त सक्षिप्त रूपसे निर्दिष्ट हुआ है, जो साधकाके मानसमें सर्वदा अवधारणीय है।

~~o~~

आख्यान—

कथा-श्रवणका संस्कार

अवन्तीप्रदेशके कुरघर नगरमे साधु कोटिकर्ण पधारे थे। उनका प्रवचन सुनने नगरके श्रद्धालु जनोकी भीड़ एकत्र होती थी। श्राविका कातियानी भी नियमपूर्वक कथाश्रवण करती थी। चोरोने यह अवसर लक्षित कर लिया। एक दिन जब कातियानी कथा सुनने गयी, चोरोने उसके घरमे सेध लगायी और भीतर घुस गये। सयोगवश कातियानीने एक दासीको भेजा—'घर जाकर थोड़ा तेल ले आ। कथामे प्रदीप जलता ही है, मेरा तेल भी उसके उपयोगमे आ जायगा।' दासी घर गयी, किंतु सेध लगी देखकर घरके बाहरसे ही लौटती हुई दौड़कर अपनी स्वामिनीके पास आयी। वह कह रही थी—'आप शीघ्र घर चले! घरमे चोरोने सेध लगायी है।'

कातियानीने धीरेसे कहा—'चुपचाप बैठ। कथामे विघ्न मत कर। चोर धन ही तो ले जायँगे। मेरे प्रारब्धम धन होगा तो फिर मिलेगा, किंतु सत्पुरुषके द्वारा जीवनको पवित्र बनानेवाला ऐसा उपदेश फिर कहाँ प्राप्त होगा।'

कातियानीके घरमे सेध लगाकर चोर भीतर घुसे थे और उनका सरदार घरसे कुछ दूर खड़ा हुआ देख रहा था कि कोई आता तो नहीं है। कोई आशकाकी बात होनेपर साथियोको सावधान कर देना उसका काम था। दासी घरके पास जाकर जब लौटी, तब उस सरदारने छिपे-छिपे उसका पीछा किया और इस प्रकार वह भी कथा-स्थलतक गया। कातियानीकी बातें उसने सुनीं। उसे बड़ी ग्लानि हुई—'कहाँ तो यह धर्मात्मा नारी और कहाँ मैं अधम पापी कि इसीके घर चोरी करा रहा हूँ।'

चोरोका सरदार शीघ्र लौट पड़ा। उसने अपने साथियोको बिना कुछ लिये उस घरसे निकल चलनेका आदेश दिया। चोर वहाँसे निकल गये। परतु जब कातियानी कथासे लौट आयी, तब सब चोर अपने सरदारके साथ उसके घर फिर आये। वे हाथ जोड़कर बोले—'देवी! आप हमे क्षमा करे।'

कातियानीने कहा—'भाइयो! मैं तो आपलोगोको पहचानती ही नहीं। आपने तो मेरा कोई अपराध किया नहीं है।'

'हमने आपके घरमे सेध लगायी है। अब हम प्रतिज्ञा करते है कि चोरीका यह पाप फिर कभी नहीं करेगे।' चोर उस देवीके चरणोंपर गिर पड़े।

~~o~~

श्रीभगवद्भक्तिके सस्कार

(आचार्य श्रीकृपाशकरजी महाराज, रामायणी)

मनुष्यके जीवनमें सस्कारोंका अतिशय महत्त्व है। 'सस्कार' शब्दके अनेक अर्थ सम्भव हैं। जब व्यक्ति यज्ञ आदि सत्कर्म करनेके लिये प्रस्तुत होता है, तब सर्वप्रथम 'भू-सस्कार' की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार तत्तत् कर्मोंमें तत्तत् सस्काराकी आवश्यकता होती है। दासको तो सम्प्रति भक्तिके सस्कारकी चर्चा करना ही अभीष्ट है।

बालकाका अन्त करण मृत्तिकाके अभिनव पात्रके समान सर्वथा निर्मल होता है। जिस प्रकार नवीन मिट्टीके पात्रमे अङ्कित सस्कार—रेखादि चिह्न अन्ततक समाप्त नहीं होते और जिस प्रकार नवीन मृत्तिकाके पात्रको घृत, तैल आदि जिस पदार्थसे सस्कृत कर दिया जाता है अर्थात् उसमें जिस प्रकारका पदार्थ सर्वप्रथम रख दिया जाता है, उसी पदार्थकी सुगन्ध उसमें अन्ततक बनी रहती है, उसी प्रकार बालकोंके निर्मल मनमें आरम्भमें उपदेशद्वारा जिस प्रकारके सस्कार डाल दिये जाते हैं, वे सस्कार अन्ततक बने रहते हैं, जीवनपर्यन्त दूर नहीं होते हैं—

'यन्नवे भाजने लग्न सस्कारो नान्यथा भवेत्।'

इसलिये प्रत्येक माता, पिता, आचार्य आदि अभिभावकाका पुनीत कर्तव्य है कि वे बालकोंके मनको अच्छे सस्कारोसे सुसस्कृत करें। उनके मनमे धर्मके सस्कार, सदाचारके सस्कार और भगवद्भक्तिके सस्कार डालें। बाल्यावस्थाके सस्कार अमिट हो जाते हैं। भक्ति भी बाल्यावस्थासे ही करनी चाहिये।

महाभागवत श्रीप्रह्लादजीके चारो ओर उनके साथ अध्ययन करनेवाले दैत्याके बालक बैठे हुए हैं। उनको देख करके श्रीप्रह्लादके मनमे करुणा उत्पन्न हो गयी। उनके मनमें उनका कल्याण करनेकी अभिलाषा, उनको भक्तिके सस्कारोंसे सस्कृत करनेकी अभिलाषा जाग्रत् हो गयी। जीवमात्रका कल्याण भागवतधर्मका आचरण करनेमे है। अनन्त और स्थिर फल प्रदान करनेवाले ब्रह्मानन्दकी अनुभूतिका साधन भी भागवतधर्मका आचरण ही है।

श्रीप्रह्लादजी उस मङ्गलमय भागवतधर्मका उपदेश करके उनके मनमे—अपने सहाध्यायी दैत्यकुमाराके अन्त करणमे भगवद्भक्तिका सस्कार डालना चाहते हैं। ससारका ऐसा नियम है कि जो वस्तु जिसे अत्यन्त प्रिय होती है, उसे वह सर्वश्रेष्ठ समझता है। यदि वह उदार है तो उसके सेवनकी सबको सम्मति देता है। सबको उसका वितरण करता है, अवसर पाते ही उसीकी चर्चा करता है, उसीके प्रचार-प्रसारके लिये यथाशक्ति प्रयत्न करता है। यह व्यक्तिका सहज स्वभाव है।

श्रीप्रह्लादजी यह उपदेश किसी स्वार्थसे प्रेरित होकर नहीं करना चाहते हैं, अपितु दैत्य-बालकाकी कल्याण-कामनासे करना चाहते हैं, उनके अन्त करणको भक्तिके सस्कारोसे सस्कृत करना चाहते हैं, अपने सहज स्वभावसे करना चाहते हैं, अपनी अहैतुकी कृपासे करना चाहते हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(रा०च०मा० ७।४७।५)

भक्तहृदय श्रीप्रह्लादजीने कहा—हे मित्रो! मनुष्यजन्मको प्राप्त करके प्राज्ञ पुरुषको बाल्यावस्थासे ही भागवतधर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, क्योंकि मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। यह मनुष्यजन्म ही परम पुरुषार्थस्वरूप भगवत्प्रीतिका साधक है, परतु यह दुर्लभ मनुष्यशरीर अध्रुव—नश्वर है।

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुष जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥

(श्रीमद्भा० ७।६।१)

इस श्लोकमें **'कौमारे'**, **'प्राज्ञ '**, **'भागवतान् धर्मान्'** और **'अर्थदम्'** ये शब्द अत्यन्त भावपूर्ण हैं। एतावता इन शब्दोंपर सक्षेपमें विचार करना चाहिये।

'कौमारे'—भागवतधर्मका अभ्यास कुमारावस्थासे ही करना चाहिये। यह नहीं सोचना चाहिये कि जीवनमे यथेष्ट भोग करके—वैषयिक सुखोका आस्वादन करके, चतुर्थावस्थामें—वृद्धावस्थाम भजन कर लेंगे क्योंकि यह जीवन 'अध्रुव' है—अनिश्चित है—नश्वर है। यह सौ वर्षपर्यन्त भी रह सकता है और आज भी समाप्त हो सकता है। इसलिये एक क्षण भी व्यर्थ न व्यतीत करके कुमारावस्थासे ही भजनमे प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥

(रा०च०मा० १।१९८।३)

'प्राज्ञ '—(क) क्या हेय है, क्या उपादेय है, क्या अपकृष्ट है, क्या उत्कृष्ट है—इस विषयके ज्ञानवालेको यहाँ 'प्राज्ञ'

कहा गया है। (ख) यदि कुमारावस्थाके अन्त होते ही मृत्यु हो जाय तो क्या होगा? तब तो जीवन ही व्यर्थ हो जायगा। एतावता बाल्यावस्थासे ही भागवतधर्मका आचरण करना चाहिये। इस ज्ञानसे सम्पन्न पुरुषको ही इस प्रसङ्गमें 'प्राज्ञ' कहा गया है। 'यदि कौमारान्ते एव मृत्यु स्यात् तर्हि किं भवेदिति प्रकृष्टज्ञानवान्'। (ग) भागवतधर्मके आचरणसे आवागमनका चक्कर समाप्त हो जाता है अर्थात् अपुनरावृत्तिपदकी प्राप्ति हो जाती है। भागवतधर्मके अतिरिक्त आचरणसे अर्थात् अन्य धर्मोंके साधन करनेसे पुनरावृत्तिपदकी प्राप्ति होती है। इस मर्मके मर्मज्ञको 'प्राज्ञ' शब्दसे अभिहित किया गया है। **'भगवद्धर्माचरणे अपुनरावृत्तिपदप्राप्ति तदितरधर्माचरणे तु पुनरावृत्तिपदप्राप्ति इत्येव ज्ञानवानित्यर्थ ।'**

'भागवतान् धर्मान्'—(क) भगवान् श्रीहरिसे सम्बन्धित धर्म ही भागवतधर्म है। (ख) भगवत्प्राप्तिके साधनभूत धर्मको ही भागवतधर्म कहते हैं। (ग) श्रीठाकुरजीके श्रीचरणोमे जिस धर्मसे प्रीति उत्पन्न हो, उस साधन, भजन, नियम, जप, तप, स्तुति, ध्यान आदिको ही भागवतधर्म कहते हैं। (घ) हिंसावर्जित धर्मको भागवतधर्म कहते हैं।

'अर्थदम्'—वैसे तो यह शरीर अनित्य तथा नाशवान् है, परंतु इस मानव शरीरके द्वारा नित्य और शाश्वत वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है। अध्रुव देहसे ध्रुवस्वरूप श्रीहरिकी प्राप्ति हो सकती है। कौन भाग्यवान्, बुद्धिमान् इस परमलाभको न उपलब्ध करना चाहेगा?

श्रीप्रह्लादजी कहते हैं—हे मित्रो! इसलिये आपलोगोंको इसी जन्ममें, इसी अवस्थामें परमपुरुषार्थस्वरूप भगवत्पदप्रेमकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। दुर्लभ समयका दुरुपयोग न करके सदुपयोग करना चाहिये।

इस प्रकार महाभागवत श्रीप्रह्लादजीने अपने सतीर्थोंको दो अध्यायोंमें उपदेश दिया। परिणामस्वरूप उनके आसुरसंस्कार छिन्न-भिन्न हो गये—विनष्ट हो गये और उनके अन्तःकरणोंमें भगवद्भावके संस्कार जाग्रत् हो गये। असुर बालक भक्तिभावनासे भावित होकर श्रीप्रह्लादसे कहते हैं—हे भक्तप्रवर! आपने हमारे जन्मजन्मान्तरके प्रसुप्त संस्कारोंको जाग्रत् कर दिया है। हे भक्तश्रेष्ठ! अब तो अपने उपदेशका सार-सिद्धान्त समझा दीजिये। असुर बालकोंकी स्नेहसानी वाणी सुन करके श्रीप्रह्लादजी कहते हैं—हे मित्रो! मैं तो इस लोकमे सर्वश्रेष्ठ तत्त्वपूर्ण यही बात समझता हूँ—यही जीवका सर्वश्रेष्ठ स्वार्थ है, यही उत्तमोत्तम कर्तव्य है कि समस्त स्थावरजङ्गमात्मिका सृष्टिमें—समस्त प्राणियोंमें सर्वत्र अपने प्राणप्रियतम श्रीहरिका दर्शन करे—

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

(रा०च०मा० ७।९६।१)

यही अनन्य प्रेम है, यही ऐकान्तिक भक्ति है और यही परमेश्वरमें परानुरक्ति है। तत्त्वज्ञ मनीषियोंने इसका ही शास्त्रोंमें निरूपण किया है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥

(श्रीमद्भा० ७।७।५५)

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं—एकान्तभक्ति—अनन्यभक्तिका यही लक्षण है कि सर्वत्र श्रीहरिका दर्शन करे, भगवदीय भावनाके परिपाक होनेपर भक्त सर्वत्र अपने स्वामीका, अपने आराध्यका दर्शन करते हैं। जैसा कि कहा गया है—परमार्थी भक्तलोग समस्त संसारको नारायणमय देखते हैं। जैसे लोभी संसारको धनमय और कामी संसारको कामिनीमय देखते हैं, वैसे ही श्रीप्रह्लादजीने पाषाणस्तम्भमें भी अपने आराध्यका दर्शन किया था—

नारायणमयं धीराः पश्यन्ति परमार्थिनः।
जगद् धनमयं लुब्धाः कामुकाः कामिनीमयम्॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज अपनी भक्तिभावनाके अनुसार श्रीरामचरितमानसके अन्तमें अपने प्राणप्रियतम परमप्रेमास्पद जीवनाराध्य जीवनसारसर्वस्व करुणासागर श्रीरामचन्द्रजीसे बड़ी अनुरागमयी भक्तिरूप वरकी याचना करते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(रा०च०मा० ७।१३० (ख))

श्रीप्रह्लादजीका प्रेरक उपदेश श्रवण करनेके पश्चात् भोले-भाले सरल, निर्दोष बालकोंके निर्मल अन्तःकरणोंमें भगवद्भक्तिके संस्कार समुत्थ हो गये। वे शण्डामर्ककी शिक्षा तो भूल गये और श्रीप्रह्लादजीका भक्तिपूर्ण सत्सङ्ग करने लगे—

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम्।
जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम्॥

(श्रीमद्भा० ७।८।१)

~~~ ० ~~~
~~~

सत्सङ्गजन्य प्रेमा भक्तिके संस्कार

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी')

सद्घन-चिद्घन-आनन्दघन परमात्माका अंश होनेके नाते प्रत्येक जीवात्म चेतनमें भी उनके सत्-पने, चित्-पने तथा आनन्द-पनेका सहज संस्कार स्वाभाविकरूपमें विद्यमान है, किंतु—

सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
(रा०च०मा० ७।११७।३ ७।४४।५)

—माया (प्रकृति)-के वशमें होकर देहके प्रति अध्यस्त 'मैं-पन' तथा निकटवर्ती व्यक्तियों और पदार्थोंके प्रति अध्यस्त होकर वह जीव 'मेरापन' के कुचक्रमें पड़ गया है और कालका, कर्मका, प्रकृतिजन्य गुणका तथा योनिगत शरीरज स्वभावका बन्धन—आच्छादन प्राप्त करके संस्कारविहीन-जैसा लगने लगा है।

प्रकृति (माया)-के प्रायः तीन भेद बताये जाते हैं—(१) अन्तरङ्गा प्रकृति, (२) बहिरङ्गा प्रकृति तथा (३) तटस्था प्रकृति। इन्हींको श्रीमद्भगवद्गीताजीकी भाषामें अपरा, परा एवं परात्परा कहा जा सकता है। अपरा ही अष्टधारूपमें दृश्य जड-जगत् होकर चक्करमें डालती है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयम् ....।
(श्रीमद्भगवद्गीता ७।४-५)

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
(रा०च०मा० ३।१५।३)

एक सिरेपर तो यह दृश्यमान अपरा (बहिरङ्गा माया) मुँह बाये खड़ी है और ठीक इसके दूसरे सिरेपर परात्परा (अन्तरङ्गा) गोदमें लेनेको भुजा फैलाये प्रतीक्षारत है। यह परात्परा अथवा अन्तरङ्गा प्रकृति साक्षात् श्रीतत्त्व हैं। श्रीतत्त्वके द्वारा ही श्री-भू-लीला अथवा नीला रूपसे 'त्वमेव माता' की भूमिका निभायी जाती है। ये ही श्रीसीता, श्रीराधा अथवा श्रीमहालक्ष्मी हैं।

अब रही तटस्था प्रकृति, तो यही जीवात्म चेतन है। इसीको श्रीमद्भगवद्गीताजीमें परा प्रकृति कहा गया है—

इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(श्रीमद्भगवद्गीता ७।५)

इसी जीवात्माको सुसंस्कृत करनेके लिये वेद, पुराण, आगम, शास्त्र, संहिता तथा स्मृति ग्रन्थोंकी आवश्यकता पड़ती है।

अब प्रश्न उठता है कि सत्-पने, चित्-पने और आनन्द-पनेके सहज संस्कारसे सम्पन्न जीवात्म चेतनको कबसे और क्यों आवश्यकता आ पड़ी सुसंस्कारकी? क्या इसमें कुसंस्कारके कुछ मल-विक्षेप-आवरण एवं कषाय आदि आ चिपके हैं? तो कहना पड़ता है कि हाँ! तभी तो इन विकारोंके अपनोदन तथा सहज-स्वरूपकी प्रतिष्ठाहेतु अब सुसंस्कारकी दुहाई देनी पड़ रही है।

बात यह है कि जीवात्म चेतनकी द्विविध मनोगति हो जाती है, क्योंकि यह तटपर स्थित, तटस्था शक्ति है। इसके एक तरफ अन्तरङ्गा श्रीजी हैं और दूसरी ओर बहिरङ्गा माया है।

यह जीवात्म चेतन अधिकतर बहिरङ्गाकी ओर ताकता हुआ, उसकी पञ्चविषयात्मिका आकृतिपर लुब्ध—मुग्ध होता है और उसके द्वारा फेंके हुए फन्देमें आबद्ध हो जाता है तथा विषयाकाराकारित होकर कुसंस्कारमें सन जाता है। फिर तो विषयोंमें सना यह जीव चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता रहता है—

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
(रा०च०मा० ७।४४।४)

जीवकी इस स्थितिका दिग्दर्शन कराती हुई भगवती श्रुति कहती हैं कि स्वयं प्रकट होनेवाले परमेश्वरने समस्त इन्द्रियोंके द्वार बाहरकी ओर जानेवाले ही बनाये हैं, इसलिये (मनुष्य इन्द्रियोंके द्वारा) प्रायः बाहरकी वस्तुओंको ही देखता है, अन्तरात्माको नहीं—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भू-
स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
(कठोपनिषद् २।१।१)

ठीक इसके विपरीत यदि यह तटपर स्थित जीवात्म

चेतन अन्तरङ्गा प्रकृति अर्थात् श्रीजी (श्रीसीता, श्रीराधा अथवा श्रीमहालक्ष्मी)-की ओर मुड जाय और वे इसे अपनी गोदमे लेकर अपने कृपावारिसे प्रक्षालित कर इसके मायाजन्य विकारोका अपनोदन (निराकरण—दूरीकरण) करके और प्रभुको प्रिय लगनेवाले गुणा (ज्ञान-वैराग्य-सेवा-उपकार-क्षमा-दया-शम-दम आदि)-का इसमे आधानकर भक्तिभाजन बना दे तो यह सुसस्कारसम्पन्न ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, हनुमान्, विदुर, उद्धव एव देवहूति, शबरी, मदालसा, मीरा आदिका स्वरूप प्राप्तकर भगवत्पार्षदत्वका लाभ कर लेता है।

श्रीकरुणामयी अन्तरङ्गा श्रीजीकी इस करुणा-कृपा अथवा छोह-दुलारमयी प्रक्रियाका ही नाम है 'सस्कार', जो विविध ग्रन्थोमे विविध विधाओम वर्णित और आचरित होकर जीवात्म चेतनको परम कल्याणका भागीदार बना देता है। किसी (भाग्यशाली) बुद्धिमान् मनुष्यने ही अमर पदको पानेकी इच्छा करके चक्षु आदि इन्द्रियाको बाह्य विपयोकी ओरसे लौटाकर अन्तरात्माको देखा है—

'कश्चिद्धीर प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥'

(कठोपनिषद् २।१।१)

वैसे तो स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियाके अपने-अपने ढगके सस्कार होते हैं, जो अपने-अपने आश्रितोमे आधान किये जाते हैं, परतु हम यहाँ मानव शरीरमे आये हुए चेतनोके सस्कारकी चर्चा विशेषरूपसे कर रहे हैं। स्थूल शरीर (क्षिति, जल पावक, गगन एव समीरनिर्मित) तथा सूक्ष्म शरीर (मन-चित्त-बुद्धि एव अहङ्कारनिर्मित)—इनका भी प्रभाव आत्म चेतनपर दिखायी पडता है, क्याकि इनका पारस्परिक क्रमिक सम्पर्क है। स्थूल शरीर यदि सुसस्कारसे सम्पन्न है तो सूक्ष्म शरीरपर उसका प्रभाव होगा ही। यदि सूक्ष्म शरीर सत्त्वप्रधान हो रहा है तो उसके घेरेमे स्थित आत्माकी परिमार्जित दशा सहज भावसे अनुभवमे आयेगी।

स्थूल शरीरका सस्कार माता-पिताके खान-पान बुद्धि-विचार आदिके अनुसार निर्मित शुक्र एव रजके ऊपर निर्भर करता है अत हमारे यहाँ आहार-विहार एव गर्भाधानसे लेकर आगेके और्ध्वदैहिकतकके सस्कारोंको बडी सावधानीसे निभानेकी आवश्यकता बतायी गयी है।

सूक्ष्म शरीरका सस्कार मातृ-पितृ-वश-परम्परापर आधारित होनेपर भी वर्तमानशरीरमे खान-पान एव सग-साथपर विशेप निर्भर करता है, यथा—

हीयते हि मतिस्तात हीनै सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥

साधु समाजमे कहावत है—*'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन', 'जैसा करे सग, वैसा चढै रग'*। अव आवश्यकता है तनको शास्त्रसम्मत सुसस्कारोंसे सम्पन्न करते हुए वाणी, मन-चित्त एव बुद्धि आदिको उत्तम सस्कारसे सम्पन्न करे और उत्तमोत्तम आत्मस्थिति प्राप्त कर पुन अपने प्रभुके चरणोंम उपस्थित हा और उन सर्वेश्वरका प्यार प्राप्त कर। इसीम समस्त सस्कारोकी सफलता है, नहीं तो सब कुछ अधूरा है—

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविद सुमङ्गला ।
क्षेम न विन्दन्ति विना यदर्पण
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नम ॥

(श्रीमद्भा० २।४।१७)

कर्मकाण्डगत सस्कारासे स्वर्गादि पतनोन्मुख एव नश्वर लोकोतक पहुँच हो सकती है। ज्ञानकाण्डगत सस्कार मोक्षकी भूमिकातक पहुँचनेमें सहयोगी हो सकते हैं, किंतु सत्सङ्गजन्य भक्तिगत सस्कार सर्वेश्वर प्रभुकी कृपामयी सुखद गोदमे पहुँचा देते हैं। अत प्रबुद्ध साधकोको चाहिये कि शास्त्रवर्णित समस्त सुसस्कारोका सम्मान करते हुए सत्सङ्गके माध्यमसे प्रेमा भक्तिके सस्कार विशेषरूपसे प्राप्त करे और परम गन्तव्य प्रभुके श्रीचरणोमे प्राप्त हों—

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजात-
ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोह ।
हरि तदीहाकथनश्रुताभ्या
लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वन ॥

(श्रीमद्भा० ५।१२।१६)

रहि सत्सग सुभक्ति चहि गहि उत्तम सस्कार।
नारायण प्रभु प्रेम लहि, पहुँचे परली पार॥
गीता-प्रेस कल्याण को सस्कार प्रिय अंक।
सबको प्रक्षालन करै, कुसस्कार को पक॥

भगवत्प्राप्तिमें संस्कारोका योगदान

(पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री)

आत्मा ईश्वरका अश है—'ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन ' (गीता १५।७)। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माने अविद्या-वशीभूत होनेके कारण अपनी उपाधियासे तादात्म्य स्थापित कर लिया है, इसलिये अनात्म पदार्थोंमे स्वरूपाध्यासके कारण ही उपाधियोके गुण-धर्मको अपना मानता हुआ वह जीवभावको प्राप्त हो गया है और ससारी हो गया है। ऐसी स्थितिमे आत्माके इस कल्मषका अपसारण करनेके लिये अपेक्षित सस्कारोकी नितान्त आवश्यकता है, जिसे दूसरा कोई नहीं कर सकता, स्वय ही अपने उद्धारमे प्रवृत्त होना पडेगा—

उद्धरेदात्मनात्मान नात्मानमवसादयेत्।

(गीता ६।५)

मानवशरीर केवल इसीलिये प्राप्त हुआ है कि हम इस अत्यन्त दुर्लभ शरीरको प्राप्त करके भी अपना कल्याण नहीं कर सके तो हमें आत्माहनकी गति प्राप्त होगी—

नृदेहमाद्य सुलभ सुदुर्लभ प्लव सुकल्प गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरित पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा॥

(श्रीमद्भा० ११।२०।१७)

अर्थात् यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस ससार-सागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ नौका है। शरणग्रहणमात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका सञ्चालन करने लगते हैं और स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमे इसे लक्ष्यकी ओर बढाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा ससार-सागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने हाथो अपने आत्माका हनन—अध पतन कर रहा है।

अनादिकालीन मलिन और शुद्ध वासनाओंका एक विशाल दल विद्यमान है, जो अन्त करण और बाह्यकरणोको प्रभावित करता हुआ जीवकी सद्गति एव दुर्गतिमे हेतु बनता है। सत्कर्मानुष्ठानका फल पुण्य तो है ही, शुद्ध वासनाको जन्म देना भी उसका एक कार्य है। इसी प्रकार अशुभ कर्मोके अनुष्ठानसे दु ख और मलिन वासनाओका जन्म होता है। मलिन वासनाके कारण अशुद्ध अन्त करण एव बाह्यकरण (इन्द्रियाँ) अपने करणीय आत्मोद्धारके लिये की जानेवाली प्रवृत्तियोका परित्याग कर असत्-मार्गमे प्रवृत्त हो जाते हैं। इसी कारण अशुद्ध बुद्धि अशुद्ध निश्चय करती है, अशुद्ध मन अशुद्ध सङ्कल्प करता है, इसी प्रकार अशुद्ध चित्तमे बन्धनकारक चिन्तन होते हैं। इस प्रकार अन्त करण मलिन हो जाता है।

मलिन वासनाके कारण ही बाह्यकरण चक्षुरिन्द्रिय परकान्ता-दर्शन आदि अशुद्ध रूपका ग्रहण करती है, श्रवणेन्द्रिय निन्दा आदि अमङ्गलकारी श्रवणमे रस लेती है, घ्राणेन्द्रिय उद्वेजक और अशुद्ध गन्ध-ग्रहण करनेमें रुचि लेती है, त्वगिन्द्रिय स्रक्-चन्दन तथा वनिता आदिके अङ्गोके स्पर्शमे सुख लेती है, रसनेन्द्रिय अपवित्र और निषिद्ध रसोंके ग्रहणमें रुचि रखती है, वागिन्द्रिय परापवादादिका कीर्तन करनेमे रुचि रखती है। इसी प्रकार परिग्रह आदि अनेक निषिद्ध कर्मोंका आचरण हाथोंसे होता है, लोभ और लालचके कारण याचना आदिके तात्पर्यसे पैर दरवाजे-दरवाजे भटकते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण अन्त करण और बाह्यकरणरूप इन्द्रियाँ जीवको बन्धनमे डालनेके लिये ही तत्पर हैं जिसका एकमात्र कारण उनका असस्कृत होना अर्थात् सस्कारसम्पन्न न होना ही है।

इसी बातको गोस्वामी तुलसीदासजी विनय-पत्रिकाके इस पदमे बताते हैं—

यो मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो।
ज्यो छल छाँड़ि सुभाव निरतर रहत बिषय अनुराग्यो॥
ज्यो चितई परनारि, सुने पातक-प्रपच घर-घरके।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरग-निरमल गुनगन रघुबरके॥
ज्यों नासा सुगधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी।
राम-प्रसाद-माल जूठन लगि त्यों न ललकि ललचानी॥
चदन-चदबदनि-भूषन-पट ज्यो चह पाँवर परस्यो।
त्यो रघुपति-पद-पदुम-परस को तनु पातकी न तरस्यो॥
ज्यो सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेये बपु बचन हिये हूँ।
त्यों न राम सुकृतग्य जे सकुचत सकृत प्रनाम किये हूँ॥
चचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार-द्वार जग बागे।
राम-सीय-आस्रमनि चलत त्यों भये न स्रमित अभागे॥

सकल अग पद-बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—मेरा मन आपसे ऐसा कभी नहीं लगा, जैसा कि वह कपट छोडकर, स्वभावसे ही निरन्तर विपयामे लगा रहता है। जैसे मैं परायी स्त्रीको ताकता फिरता हूँ, घर-घरके पापभरे प्रपञ्च सुनता हूँ, वैसे न तो कभी साधुओंके दर्शन करता हूँ और न गङ्गाजीकी निर्मल तरङ्गाके समान श्रीरघुनाथजीकी गुणावली ही सुनता हूँ। जैसे नाक अच्छी-अच्छी सुगन्धके रसके अधीन रहती है और जीभ छ रसासे प्रेम करती है, वैसे यह नाक भगवान्‌पर चढी हुई मालाके लिये और जीभ भगवत्-प्रसादके लिये कभी ललक-ललककर नहीं ललचाती। जैसे यह अधम शरीर (त्वगिन्द्रिय) चन्दन चन्द्रवदनी युवती, सुन्दर गहने और (मुलायम) कपडोंको स्पर्श करना चाहता है, वैसे श्रीरघुनाथजीके चरणकमलाका स्पर्श करनेके लिये यह कभी नहीं तरसता। जैसे मैंने शरीर, वचन और हृदयसे बुरे-बुरे देवो और दुष्ट स्वामियाकी सब प्रकारसे सेवा की, वैस उन रघुनाथजीकी सेवा कभी नहीं की, जो (तनिक सेवासे) अपनेको खूब ही कृतज्ञ मानने लगते हैं और एक बार प्रणाम करते ही (अपार करुणाके कारण) सकुचा जाते हैं। जैसे इन चञ्चल चरणाने लोभवश, लालची बनकर द्वार-द्वार ठोकरे खायी हैं, वैसे ये अभागे श्रीसीतारामजीके (पुण्य) आश्रमोमे जाकर कभी स्वप्नमें भी नहीं थके। (स्वप्नमे भी कभी भगवान्‌के पुण्य आश्रमोम जानेका कष्ट नहीं उठाया)। हे प्रभो। (इस प्रकार) मेरे सभी अङ्ग आपके चरणोसे विमुख हैं। केवल इस मुखसे आपकी नामकी ओट ले रखी है (और यह इसलिये कि) तुलसीको एक यही निश्चय हे कि आपकी मूर्ति कृपामयी है। (आप कृपासागर हानेके कारण, नामके प्रभावसे मुझे अवश्य अपना लेगे)।

सस्कारोंके बिना दुर्दान्त इन्द्रियोंका दुर्धर्प विपयाभिनिवेश ऐसा हो जाता है कि ये यत्न करनेमे तत्पर और विचक्षण पुरुपके मनको हठात् अपनी ओर आकर्पित कर लेती हैं और इन्द्रियोके सग तथा राग-रगमे रचा-पचा मन बुद्धिको भी अशुद्ध निश्चय करनेके लिये उसी प्रकार विवश कर देता है, जिस प्रकार वायु जलमे नौकाका अपहरण कर लेती है—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुपस्य विपश्चित ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन ॥
इन्द्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि॥
(गीता २।६० ६७)

अस्तु, यह स्पष्ट है कि सच्चिदानन्दस्वरूप जीवको स्व-स्वरूपावस्थितिके लिये स्थूल शरीर एव सूक्ष्म शरीर—अन्त करण और बाह्यकरणोंका सस्कार किया जाना नितान्त अपेक्षित है। अन्त करणादिके सस्कारके लिये कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डके अधिकारी आचार्योने अपने-अपने ढगसे इन्हे सस्कृत करनेकी पद्धतिका निर्धारण किया है, जिनमसे हमे अपनी योग्यताके अनुसार एक पद्धति चुनकर अन्त करणादिको सस्कृत करनेके लिये अविलम्ब प्रवृत्त हो जानेकी आवश्यकता है। यह दुर्लभ शरीर हमे प्राप्त हो गया है, इस शरीरकी प्राप्तिमात्रसे कृतकृत्यता होनेवाली नहीं है। यह नितान्त अनित्य है, किंतु धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप प्रसिद्ध पुरुपार्थचतुष्टय तथा शास्त्रकाराके द्वारा गोपनीयतापूर्वक सुरक्षित भगवच्चरणारविन्दकी ध्रुवानुस्मृतिरूप रागात्मिका-भक्ति—पञ्चम पुरुपार्थको देने म सक्षम है।

अन्त करणकी परिशुद्धि करनेमे प्रवृत्त होनेके पूर्व पवित्र आहार एव उपनयनादि सस्कारोसे स्थूल शरीरको शुद्ध करनेकी अपेक्षा है। पवित्र आहारसे तात्पर्य है न्यायापार्जित धर्माविरुद्ध पदार्थोंको पवित्र भावसे परमात्माको समर्पित करके भगवत्प्रसादको ही स्थूल शरीरके सरक्षणके लिये आहाररूपमें ग्रहण करना। इसीको दूसरे शब्दामे द्रव्यशुद्धि भावशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि कहा जाता हे। धर्मसे नियन्त्रित अर्थ ही पुरुपार्थकी कोटिम परिगणित है, अन्यथा उस अर्थकी अनर्थ सज्ञा हो जायगी। यह अर्थशुचिता ही द्रव्यशुद्धि किंवा द्रव्य-सस्कार है। इन्द्रियोको तृप्त करनेकी बुद्धिसे नहीं प्रत्युत भगवान्‌को समर्पित करनेकी ही बुद्धिसे विशुद्ध सात्त्विक पदार्थोंका निर्माण भावशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि है। इस प्रकार स्थूल शरीरको सस्कारसम्पन्न करके स्थूल शरीरके ही धर्म—वर्ण और आश्रमके लिये निर्धारित आचारोका पालन करना ही भगवान्‌की प्रीतिका एकमात्र उपाय है।

वर्ण और आश्रम-धर्मका शास्त्रकी मर्यादाके अदर रहकर पालन करना—यह भगवान्‌की कृपा प्राप्त करनेका

सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसके अतिरिक्त उनकी सन्तुष्टिका और कोई साधन नहीं है—

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥

(विष्णुपुराण ३।८।९)

भगवान्‌की कृपाका अवलम्ब लेकर प्रयत्नपूर्वक सूक्ष्म शरीरके संस्कारमें प्रवृत्त होना चाहिये। सूक्ष्म शरीरके संस्कारके सन्दर्भमें यह ध्यातव्य है कि अन्तःकरण और इन्द्रियोंका अशुद्ध आहारमें स्वाभाविक अनुराग होनेके कारण ही इनमें अयोग्यता प्राप्त हुई है। यदि सांसारिक विषयरूप अशुद्ध आहारसे विरतकर इन्हें भगवद्विषयरूप पवित्रतम आहारकी ओर प्रवृत्त कर दिया जाय तो यही लिङ्गशरीर जीवात्माके उद्धारमें हेतु बन जायगा। भगवद्विषयरूप पवित्र आहारके ग्रहण करनेसे सत्त्वकी शुद्धि प्रतिष्ठित होती है। सत्त्वशुद्धि होनेके कारण भगवान्‌की ध्रुवानुस्मृति हो जाती है। भगवद्ध्रुवानुस्मृतिसे जीव सारे बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार बन्धनमुक्त जीव अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, भगवान्‌की स्वारसिक प्रीतिरूप पञ्चम पुरुषार्थको प्राप्त कर लेता है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः । (छान्दो० ७।२६।२)

भक्तिसम्प्रदायमें अशुद्ध अन्तःकरणादिके संस्कारके लिये बड़े सीधे, सरल एवं सर्वजनग्राह्य उपाय बताये गये हैं, यथा—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥

(श्रीमद्भा० २।८।५)

इसका भाव यह है भगवान्‌के मङ्गलमय नाम तथा लीलाकथाको सुननेसे कर्णरन्ध्रके माध्यमसे हृदयमें प्रवेश करके परमात्मा सारे कल्मषोंको उसी प्रकार धो डालते हैं, जैसे शरद् ऋतु सलिलके दोषोंका अपनोदन कर देती है।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य
त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्
धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥

(श्रीमद्भा० ११।५।४२)

तात्पर्य यह है कि अन्य अवलम्बका परित्याग करके भगवान्‌के चरणारविन्दके भजनमें लगे हुए भगवत्प्रियजनके कुसंस्कारों और असद्वासनाओंको भगवान् समाप्त कर देते हैं और उसके विकर्मोंका मार्जन करके उसके आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

दूषित कर्णवाले मनुष्योंकी कर्णेन्द्रिय शास्त्राध्ययन, दान, तप आदि क्रियाओंसे वैसी शुद्धि नहीं हो पाती, जैसी विष्णुगानके सुननेसे होती है—

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां
विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-
सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात्॥

(श्रीमद्भा० ११।६।९)

अर्थात् स्तुति करनेयोग्य परमात्मन्! जिन मनुष्योंकी चित्तवृत्ति राग-द्वेषादिसे कलुषित है, वे उपासना, वेदाध्ययन, दान, तपस्या और यज्ञ आदि कर्म भले ही करें, परंतु उनकी वैसी शुद्धि नहीं हो सकती, जैसी श्रवणके द्वारा सम्पुष्ट शुद्धान्तःकरण सज्जन पुरुषोंकी आपकी लीलाकथा, कीर्तिके विषयमें दिनोंदिन बढ़कर परिपूर्ण होनेवाली श्रद्धासे होती है।

श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्॥

(श्रीमद्भा० १२।३।४६)

अर्थात् भगवान्‌के रूप, गुण, लीला, धाम और नामके श्रवण सङ्कीर्तन, ध्यान, पूजन और आदरसे वे मनुष्यके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं और एक-दो जन्मोंके पापोंकी तो बात ही क्या, हजारों जन्मोंके पापके ढेर-के-ढेर भी क्षणभरमें भस्म कर देते हैं।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥

(श्रीमद्भा० ६।२।११)

तात्पर्य यह है कि बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषियोंने पापोंके बहुत-से प्रायश्चित्त—कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं, परंतु उन प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी जड़से

शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान्‌के नामोच्चारणसे होती है, क्योंकि भगवन्नामकीर्तन पवित्रकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका भक्तमें आधान करा देता है।

अविस्मृति कृष्णपदारविन्दयो
क्षिणोत्यभद्राणि शम तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धि परमात्मभक्ति
ज्ञान च विज्ञानविरागयुक्तम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१२।५४)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी ध्रुवानुस्मृति सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देती है और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्त करण शुद्ध हो जाता है, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है एव परवैराग्यसे युक्त भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है।

भक्तशिरोमणि गोस्वामीजी महाराजने मोह (अविवेक)-को ही अन्त करण और बाह्यकरणके मालिन्यमे हेतु कहा है। अविवेकके कारण उत्पन्न मल, पूर्वके अनेकानेक जन्मासे अभ्यस्त होनेके कारण अधिक सुदृढ हो गया है।* इस मलके अपसारणके लिये व्रत, दान, ज्ञान, तप आदि उपाय श्रुतियोंमे कहे गये हैं, किंतु भगवच्चरणानुरागरूपी नीरमें अवगाहन किये बिना मलकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती—

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास-निरत चित, अधिक अधिक लपटाई॥
नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन बिषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना-मान-मद, जीव सहज सुख त्यागे॥
परनिंदा सुनि श्रवन मलिन भे बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ-चरन बिसराये॥
तुलसिदास ब्रत-दान, ग्यान-तप सुद्धिहेतु श्रुति गावै।
राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै॥
(विनय-पत्रिका ८२)

मोहसे उत्पन्न जो अनेक प्रकारका (पापरूपी) मल लगा हुआ है वह करोडो उपायोसे भी नहीं छूटता। अनेक जन्मोंसे यह मन पापमें लगे रहनेका अभ्यासी हो रहा है, इसलिये यह मल अधिकाधिक लिपटता ही चला जाता है। पर-स्त्रियोंकी ओर देखनेसे नेत्र मलिन हो गये हैं विषयोका सग करनेसे मन मलिन हो गया है और वासना, अहकार तथा गर्वसे हृदय मलिन हो गया है तथा सुखरूप स्व-स्वरूपके त्यागसे जीव मलिन हो गया है। परनिन्दा सुनते-सुनते कान और दूसरोका दोष कहते-कहते वचन मलिन हो गये हैं। अपने नाथ श्रीरामजीके चरणोंको भूल जानेसे ही यह मलका भार सब प्रकारसे मेरे पीछे लगा फिरता है। इस पापके धुलनेके लिये वेद तो व्रत, दान ज्ञान, तप आदि अनेक उपाय बतलाता है, परतु हे तुलसीदास! श्रीरामके चरणोंके प्रेमरूपी जल बिना इस पापरूपी मलका समूल नाश नहीं हो सकता। यहाँ 'अति नास' का तात्पर्य है—सम्पूर्णरूपसे सदाके लिये अशुद्ध वासनाका निवृत्त हो जाना।

—इन सदर्भोंसे यह स्पष्ट है कि भगवद्भक्तिरूप साधन जीवके अन्त करण आदिकाकी अशुद्धि एव असद्वासनाओंका निराकरण करके जीवको परम पुरुषार्थ प्राप्त करानेमे पूर्णतया सक्षम है। इसलिये पूरी शक्ति लगाकर समस्त अन्त करण एव बाह्यकरणोंका सम्बन्ध भगवान्‌से स्थापित कर देना चाहिये, यही परमपुरुषार्थ होगा। इसी पुरुषार्थसे भगवान्‌में स्वारसिक प्रीति एव भगवत्प्राप्ति सम्भव है। इसी बातको श्रीमद्भागवत (१०।१०।३८)-मे इन शब्दोंमे कहा गया है—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथाया
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्न।
स्मृत्या शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टि सता दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

प्रभो! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथामे लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामे और मन आपके चरणकमलोंकी स्मृतिमे रम जायँ। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवासस्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। सत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखे उनके दर्शन करती रहे।

यह भगवद्भक्ति भगवान्‌की कृपाके बिना प्राप्त होना सम्भव नहीं है और भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये जीवको श्रुति-स्मृतिरूप भगवदाज्ञाके अनुसार कर्म करके उसका पालन करना पडेगा, भगवान् कहते हैं—जो मेरी आज्ञाका

* जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या ससारवासना। सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्॥ (मुक्तिकोपनिषद् २।१४)

उल्लङ्घन करता है, वह मेरा द्वेषी है तथा वैष्णव होनेपर भी वह मेरा प्रिय नहीं है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लघ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी वैष्णवोऽपि न मे प्रिय ॥

यदि किसी धन्य जीवको भगवान्‌की महिमा और लीलाकथामे अनुराग हो जाय तो यह समझना चाहिये कि उसके हजारों जन्मोंके पाप नष्ट हो गये है और पुण्यकर्मोंका फल परिपक्व हो गया है—

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभि ।
नराणा क्षीणपापाना कृष्णे भक्ति प्रजायते॥

असद्वासनाओके कारण होनेवाली अनर्थपरम्पराका निवारण करनेके लिये जीवको पुरुषार्थके माध्यमसे अपनी वृत्तियोंको सद्वासनाओंका अवलम्ब देना होगा। यह पुरुषार्थ शास्त्रित-पुरुषार्थ कहा जाता है और इसी शास्त्र-समर्थित पुरुषार्थसे जीव अपनी अशुद्ध बुद्धि आदि अन्त करणों तथा बाह्य करणोंको सस्कृत करके परमार्थको प्राप्त कर सकता है—

उच्छास्त्र शास्त्रित चेति पौरुष द्विविधं मतम्।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्॥
शुभाशुभाभ्या मार्गाभ्या वहन्ती वासनासरित्॥
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि।—

(मुक्तिकोपनिषद् २।१ ५-६)

प्राय आधुनिक युगमे सत्पुरुषकी कोटिमे मान्य व्यक्तियोके द्वारा भी शास्त्रविरुद्ध (उच्छास्त्र) पुरुषार्थ हो रहे हैं, जो बन्धनको और अधिक दृढ करनेवाले हैं। अत निष्कृष्ट अर्थ यह है कि सस्कारके नामसे प्रसिद्ध सारे क्रिया-कलापाका शुभ पर्यवसान तभी है, जब उन सस्कारोंसे सस्कृत होकर स्थूल और सूक्ष्म (करणादि) उपाधियाँ पवित्र हो जायँ और जीवभावकी समाप्ति तथा उसकी स्व-स्वरूपावस्थितिमें सहायक हो। सावधान रहनेकी आवश्यकता है। यह साधनाका क्षेत्र है, इसमें अपने पुरुषार्थके बलपर मानवजीवनके चरमोद्देश्यकी प्राप्ति बहुत कठिन है, इसके लिये भगवान्‌की कृपा ही प्रधान कारण है। भगवत्कृपाकी प्राप्तिके लिय भगवान्‌की शरणागति ही एकमात्र उपाय है। इमे भगवान्‌की आज्ञाके अनुरूप आचरण करनेका सङ्कल्प लेना होगा भगवदाज्ञास्वरूप शास्त्रके विरुद्ध आचरणसे निवृत्त होना पडेगा, अपने कल्याणके लिये सभी ओरसे निराश होकर भगवान्‌का ही अपने एकमात्र रक्षकके रूपमे वरण करना पडेगा और भगवान्‌के चरणोंमें अपने कार्पण्यका निवेदन एव आत्मसमर्पण करना पडेगा—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्प प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरण तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागति ॥

~~~ ० ~~~

आख्यान—

संसर्गसे गुण-दोष

एक राजा घोड़ेपर चढा वनमें अकेले जा रहा था। जब वह डाकू भीलोंकी झोपड़ीके पाससे निकला, तब एक भीलके द्वारपर पिजड़ेमे बद तोता पुकार उठा—'दौड़ो! पकड़ो! मार डालो इसे! इसका घोड़ा छीन लो! इसके गहने छीन लो!'

राजाने समझ लिया कि वह डाकुओकी बस्तीमे आ गया है। उसने घोड़ेको पूरे वेगसे दौड़ा दिया। डाकू दौड़े सही, किंतु राजाका उत्तम घोड़ा कुछ ही क्षणमें दूर निकल गया। हताश होकर उन्होने पीछा करना छोड़ दिया।

आगे राजाको मुनियोका आश्रम मिला। एक कुटीके सामने पिजड़ेमे बैठा तोता उन्हे देखते ही बोला—'आइये राजन्! आपका स्वागत है। अरे! अतिथि पधारे है! अर्घ्य लाओ! आसन लाओ!'

कुटीमेसे मुनि बाहर आ गये। उन्होने राजाका स्वागत किया। राजाने पूछा—'एक ही जातिके पक्षियोके स्वभावमे इतना अन्तर क्यों?'

मुनिके बदले तोता ही बोला—'राजन्! हम दोनो एक ही माता-पिताकी सतान है, किंतु उसे डाकू ले गये और मुझे ये मुनि ले आये। वह हिंसक भीलोंकी बाते सुनता है और मै मुनियोके वचन सुनता हूँ। आपने स्वय देख ही लिया कि किस प्रकार सङ्गके कारण प्राणियोम गुण या दोष आ जाते हैं।'

~~~ ० ~~~

'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'

[गर्भावस्थाके सस्कार मिटते नहीं]

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

मिट्टीके बनते हुए बर्तनमे जो चित्र खींच दिया जाता है, वह चित्र कभी नहीं मिटता। इसी तरह मनुष्यके बचपनमें या गर्भमे स्थित रहनेपर जो सस्कार डाला जाता है, वह अमिट हो जाता है। इस सम्बन्धम यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। एक है अभिमन्युका और दूसरा है महाभागवत प्रह्लादका।

(१) अभिमन्युका चरित्र

देवताओने चन्द्रमासे कहा था कि पृथ्वीपर आसुरी भाव फैलानेके लिये कलियुग दुर्योधनके रूपमे और उसके सौ भाई पुलस्त्यके वशमें उत्पन्न राक्षसाके अशसे उत्पन्न हुए हैं, अत देवता भी मनुष्यके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं और हो रहे हैं, ऐसी स्थितिम आप पृथ्वीपर स्वय या अपने पुत्रको मनुष्यके रूपमे उत्पन्न कर। चन्द्रमाके पुत्रका नाम वर्चा था। चन्द्रमा अपने पुत्रको बहुत प्यार करते थे। उन्हाने कहा—'विश्वके हितके लिये अपने पुत्र वर्चाको हम पृथ्वीपर भेज रहे हैं, किंतु हमे यह अत्यन्त प्यारा है, इसे देखे बिना हमारा मन नहीं लगता, इसलिये सोलह वर्षसे अधिक यह पृथ्वीपर न रहने पाये। सोलहवें वर्षमे फिर वर्चाके रूपमे हमारे पास आ जाय।' यही वर्चा अर्जुनकी प्रिय पत्नी सुभद्रासे अभिमन्युके रूपमे उत्पन्न हुआ था।

सुभद्राका रूप-लावण्य इतना आकर्षक था कि उसे देखते ही अर्जुन मोहित हो गये। कृष्ण तो चाहते ही थे कि हम अपनी बहन सुभद्राका विवाह अर्जुनसे करे। अत उन्होने अर्जुनको राय दी कि तुम सुभद्राको लेकर चले जाओ, यह क्षत्रियोंके लिये शोभादायक विवाह है। अन्ततक भगवान् श्रीकृष्णने सुभद्राका अर्जुनके साथ विवाहमे पूर्ण सहयोग दिया। सुभद्रा अर्जुनके साथ हस्तिनापुर चली गयी। वहाँ वह गर्भवती भी हो गयी। अर्जुन चाहते थे कि सुभद्राके गर्भमें जो शिशु आया है वह हमारी तरह ही महान् पराक्रमी बने। युद्धमे अनेक व्यूह बनाये जाते हैं, जिसम चक्रव्यूहका भेदन अत्यन्त कठिन होता है। अत उन्होने चक्रव्यूहके भेदनकी सब विधियाँ बता दीं, किंतु भवितव्यतासे उन्हे नींद आ गयी और वे चक्रव्यूहसे निकलनेकी विधि न बता सके।

इस तथ्यको अर्जुनने अपने बडे भाई युधिष्ठिरको सुनाया था। स्वय अभिमन्युने भी युधिष्ठिरसे कहा था— पिताजी! हम चक्रव्यूहका भेदन तो जानते हैं, किंतु निकलनेका मार्ग हमको नहीं मालूम है—

उपदिष्टो हि मे पित्रा योगोऽनीकविशातने।
नोत्सहे हि विनिर्गन्तुमहं कस्याचिदापदि॥

(महा० द्रोण० ३५।१९)

यही कारण है कि सोलहवे वर्षमे अभिमन्युको पृथ्वी छोडकर फिर चन्द्रलोकमे अपने पिताके पास जाना पडा। चक्रव्यूहके भेदनमे अभिमन्युने जो पराक्रम दिखलाया वह इतिहासके पन्नोमे अमिट बना हुआ है। स्वय द्रोणाचार्यजी युद्धभूमिमें उसकी प्रशसा करते हुए कहते हैं—

नास्य युद्धे सम मन्ये कञ्चिदन्य धनुर्धरम्।
इच्छन् हन्यादिमां सेना किमर्थमपि नेच्छति॥

(महा० द्रोण० ३९।१३)

मैं दूसरे किसी धनुर्धर वीरको युद्धभूमिमे इसके समान नहीं मानता। यदि यह चाहे तो इस सारी सेनाको नष्ट कर सकता है, परतु न जाने यह क्यों ऐसा चाहता नहीं है।

इस तरह गर्भावस्थामे चक्रव्यूह-भेदनकी सीखी हुई अभिमन्युकी इस सस्कार-कथासे हमें प्रेरणा मिलती है कि

हमलोग भी किसी जीवके गर्भमे आ जानेपर उसपर अच्छे-से-अच्छा सस्कार डाले।

(२) गर्भावस्थामे देवर्षि नारदके उपदेशसे प्रह्लादका महाभागवत होना

देवर्षि नारदजीको प्रजापति दक्षके शापसे निरन्तर चलना पडता था, इसलिये नारदजी प्रत्येक क्षण चाहे पृथ्वी हो, चाहे आकाश हो, चाहे पाताल हो—सर्वत्र भ्रमण करते हुए भगवान्‌का गुणानुवाद करते रहते थे। एक बार नारदजी भगवान्‌का गुणकीर्तन करते हुए पृथ्वीसे देवलोककी ओर जा रहे थे। उस समय हिरण्यकशिपुका बोलबाला था, उसका अत्याचार बढा हुआ था। उसके आदेशसे देवलोक खाली हो गया था। अत देवता मनुष्य बनकर पृथ्वीपर विचरण किया करते थे। हिरण्यकशिपुने दैत्योसे कहा—तुम लोग पृथ्वीपर जाओ और वहाँ जो लोग तपस्या, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत और दानादि शुभकर्म कर रहे हों, उन सबको मार डालो—

'सूदयध्व तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिन ॥'

(श्रीमद्भा० ७।२।१०)

दैत्य तो स्वभावसे ही लोगोको सताकर सुखी होते हैं, उनके तो मनकी हो गयी। हिरण्यकशिपुकी आज्ञा पाकर दैत्य लोग पृथ्वीपर आकर बडे उत्साहसे यह खोजा करते थे कि कहीं कोई भगवान्‌का नाम तो नहीं ले रहा है। उसी समय उन्होने नारदजीको पकड लिया और पूछा—क्या कह रहे हो? नारदजी हिरण्यकशिपुकी प्रत्येक गतिविधियोसे परिचित थे, इसलिये उन्होंने गोल-मोल शब्दोमें कहा—'जो सबका ईश्वर है, उसका गुणगान कर रहा हूँ।' दैत्योने समझा—सबका ईश्वर तो हमारा ही मालिक है, अत उन्होने उन्हे छोड दिया।

अब नारदजीने विचार किया कि हिरण्यकशिपु अपनी तपस्याके बलपर प्रत्येक लोकपालाको वशमे करके विधाताके पदको लेना चाहता है और ऐसा विधान बनाना चाहता है जो शास्त्रके बिलकुल उलटा हो। वह तो अपनी तपस्यासे पाप-पुण्यादिके नियमोको ही पलट देना चाहता है। वह तो यह चाहता है कि पुण्य करनेवालोको नरक मिले और पाप करनेवालोंको स्वर्ग—**'अन्यथेद विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा'** (श्रीमद्भा० ७।३।११)।

ऐसा जानकर नारदजी बहुत चिन्तित हुए और सोचने लगे कि विषम परिस्थितिसे कैसे रक्षा हो? उनके मनमे विचार आया कि हिरण्यकशिपु तो विधाताके विधानको बदलनेके लिये तपस्या करने चला गया है और उसकी पत्नी कयाधू गर्भवती है, अत गर्भस्थ शिशुपर ऐसा सस्कार डाल कि वह महाभागवत हो। वेद-पुराण आदि शास्त्र ईश्वरके स्वरूप होते हैं, इसलिये वह उनका भी भक्त हो।

देवर्षि नारद इस अवसरकी प्रतीक्षामे थे कि कयाधूको कहाँ पाये। इसी बीच उन्होने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञासे देख लिया कि सारे देवता खूब तैयारीके साथ हिरण्यकशिपुके नगरमे घुस गये हैं और सभी दैत्य तथा दैत्योके सेनापति भी जान बचाकर भाग निकले हैं, घरमे कोई नहीं बचा। देवराज इन्द्रने कयाधूको भी पकड लिया। कयाधू मारे डरके कुररी पक्षीकी तरह बहुत जोरसे चिल्लाने लगी। तब नारदजीने अच्छा अवसर देखा और वहाँ पहुँच गये। उन्होने देवराजसे कहा—'यह पतिव्रता है, साध्वी परनारीका

तिरस्कार पाप है। कयाधूको छाड दे'—**'मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम्॥'** (श्रीमद्भा० ७।७।८)

देवता अन्तर्यामी होते हैं। देवराज इन्द्रने देखा कि कयाधूके गर्भमें हिरण्यकशिपुका बीज है, यह भी हिरण्यकशिपु ही होगा। हिरण्यकशिपुने तीनो लोकामें हाहाकार मचा रखा है, इसका बच्चा भी वही करेगा।

इन्द्रने नारदजीसे कहा—कयाधूसे हमारा कोई वैर

नहीं है। यह प्रसवपर्यन्त हमारे पास रहे। इसे हम तब छोडेंगे जब इसके बच्चेको मार डालेंगे।*

इसपर देवर्षि नारदजी बोले—इसके गर्भसे महाभागवत उत्पन्न होनेवाला है, यह तुम्हारे मारे न मरेगा। तुम इसे छोड दो। इसका गर्भस्थ शिशु भगवान्‌का साक्षात् परम प्रेमी भक्त और सेवक, अत्यन्त बली और निष्पाप महात्मा है—

अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान्।
त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली॥

(श्रीमद्भा० ७।७।१०)

नारदजीकी आज्ञाको इन्द्रने सिर झुकाकर स्वीकार किया और कयाधूकी परिक्रमा की, क्योंकि उसके गर्भमें महाभागवत था।

देवर्षि नारदजीके इस क्रिया-कलापसे कयाधू उनकी ऋणी-जैसी हो गयी और उनके पैरोंपर गिर पडी। देवर्षि नारदजी तो यह चाहते ही थे। उन्होंने कहा—'पुत्री! तुम चिन्ता न करो, हमारे आश्रममें सुखसे तबतक रहो, जबतक तुम्हारे पति तपस्यासे वापस न आ जायँ। मेरे आश्रममें तुम्हें कोई भी देवता परेशान नहीं करेंगे।'

इसके बाद देवर्षि नारदने सबसे पहले अपने जीवनकी घटना कयाधूको सुनायी कि भगवान् कितने उदार और कृपालु हैं, उन भगवान्‌को मैंने देखा है। इसके बाद अपने अन्य भाइयोंकी घटनाएँ सुनायीं कि कैसे उन्होंने भगवान्‌को देखा और फिर उनका कितना अच्छा अभ्युदय हुआ।

कयाधू भी अन्य लोगोंकी तरह अपने पतिको ही ईश्वर समझती थी, किंतु वह भी ईश्वरको मानने लग गयी और नारदजीने यह तर्क दिया था कि ईश्वर वह होता है जो सृष्टि-स्थिति और संहार करता है। हिरण्यकशिपुने सृष्टि नहीं की है, वह तो सृष्टिसे उत्पन्न हुआ है।

नारदजीकी शिक्षासे गर्भस्थ शिशु महाभागवत बना जिनका नाम 'प्रह्लाद' हुआ। बचपनसे ही वे ईश्वरको छोडकर और किसीकी चर्चा करते ही नहीं थे।

हिरण्यकशिपु तपस्यासे जब वापस लौटा तो नारदजीने कयाधूको वापस भेज दिया। पुत्रको देखकर हिरण्यकशिपु बडा खुश था। उसने सोचा—इसे कहाँ पढाया जाय फिर उसने शुक्राचार्यके पुत्र शण्डामर्कको नियुक्त किया। हिरण्यकशिपुने शण्डामर्कके गुरुकुलमें प्रह्लादको भेज दिया। प्रह्लाद प्रतिक्षण ईश्वरका चिन्तन करते थे, किंतु गुरुके सम्मानके लिये जो अर्थनीति आदिकी बात वे बताते थे, याद कर उन्हें सुना देते थे, किंतु जब गुरु कहीं बाहर हट जायँ तो प्रह्लादजी असुरबालकोंको—अपने सहपाठी साथियोंको बैठाकर नारदजीकी शिक्षाके संस्कार सुना देते थे। दैत्यबालकोंने कहा—हमारे जो गुरुदेव हैं वे ही तुम्हारे भी हैं, गुरुजीने तो ऐसी बातें बतायी नहीं, फिर तुम यह सब कहाँसे सीख गये कैसे जान गये? जैसे हम माताके गर्भसे उत्पन्न होकर पढने सीधे यहाँ आये हैं, वैसे ही तुम भी सीधे यहाँ आये हो, फिर तुमने यह सब कहाँसे सीखा।

प्रह्लादने कहा—मित्रो! हमने यह सब देवर्षि नारदजीके मुखसे सुना, उन्हींका उपदेश हम सुना रहे हैं। असुरबालक बोले—तुम्हें नारद कहाँ मिले और कैसे तुम्हें यह उपदेश मिला? तब प्रह्लादजीने सारी घटना सुना दी कि किस तरह मेरी माँको देवराज इन्द्र जबरदस्ती ले जा रहे थे और किस तरह नारदजीने उन्हें छुडाकर अपने आश्रममें रखा और किस तरह गर्भावस्थामें उपदेश दिया। वही उपदेश मैंने सुना। लेकिन मेरी माताका पहला संस्कार इतना दृढ हो चुका था कि नारदजीकी बातें उन्हें याद नहीं रहीं, भूल गयीं, किंतु मेरे पास कोई संस्कार था नहीं, उनके उपदेशसे मुझमें संस्कार प्रतिष्ठित हुआ और वही संस्कार हम तुम सभीको सुना रहे हैं।

इस प्रकार प्रह्लादजीके चरित्रसे सारी दुनिया परिचित है। इसलिये मैं उसे नहीं लिख रहा हूँ।

उपदेश—श्रोता दो, उपदेश एक और उस उपदेशके प्रभाव भी दो।

देवर्षि नारजीने एक ही वचन एक ही उपदेश कयाधू और गर्भस्थ शिशुको सिखाया था, किंतु उसके प्रभाव दो हुए। गर्भस्थ शिशुको तो उपदेशने महाभागवत बनाया, किंतु उन्हीं शब्दोंने कयाधूको प्रह्लाद नहीं बनाया, क्योंकि उसका संस्कार पहलेसे ही अनीश्वरवादी था। उस कुसंस्कारको नारदजीका उपदेश भी नहीं मिटा पाया।

~~~ ० ~~~

* आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः। आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः॥ (श्रीमद्भा० ७।७।९)
~~~

संस्कार-साधना

(डॉ० श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एम्०ए० डी० लिट्०)

भारतीय शास्त्रकारोने जीवनका एक ध्येय निश्चित किया था और उसतक पहुँचनेके लिये अनेक साधनोका आविष्कार भी। सस्कार भी एक इसी प्रकारका साधन है। उन्होने जीवनकी सामग्रियोंको दो भागोम बाँटा है। एक तो वह, जिसको लेकर मनुष्य उत्पन्न होता है, दूसरा वह, जिसका सचय वह अपने वर्तमान जीवनमे परिस्थितियोके अनुकूल करता है। शास्त्रकारोका मत है कि नवजात शिशुका मस्तिष्क कोरी पट्टीके समान नहीं है, जिसपर बिलकुल नया लेख लिखना है, इसके विरुद्ध इसपर उसके अनेक पूर्वजन्मोके सस्कार अङ्कित हैं। साथ-ही-साथ उनका यह भी विश्वास है कि नवीन सस्कारोद्वारा पुराने सस्कारोंको प्रभावित, उनम परिवर्तन, परिवर्धन और उनका उन्मूलन भी किया जा सकता है। प्रतिकूल सस्काराका विनाश और अनुकूल सस्कारोका निर्माण ही साधकका प्रयास है।

सस्कार क्या है? इसको केवल बाहरी धार्मिक आडम्बर समझना भूल है। इसमे बाहरी कृत्य अवश्य हैं, किंतु ये आन्तरिक आध्यात्मिक सौन्दर्यके बाह्य दृष्टरूप हैं और इसीमे सस्कारकी महत्ता है। आध्यात्मिक जीवनसे विच्छेद होनेपर ये मृत अस्थिपञ्जरके समान हैं, जिसमे गति और जीवन नहीं है। 'सस्कार' शब्दका प्रयोग कई अर्थोंम किया गया है। कौषीतकि,[1] छान्दोग्य[2] और बृहदारण्यकादि[3] उपनिषदोने इसका प्रयोग (सस्करोति) उनति करनेके अर्थमे किया है। महर्षि पाणिनि[4]ने इस शब्दका प्रयोग तीन विभिन्न अर्थोंमें किया है—१ उत्कर्ष करनेवाला (उत्कर्षसाधन सस्कार), २-समवाय अथवा सघात और ३-आभूषण। ब्राह्मण और सूत्रग्रन्थाने 'सस्कार' शब्दका व्यवहार यज्ञकी सामग्रियोको पवित्र करनेके अर्थमे किया है। बौद्ध त्रिपिटकोंमें निर्माण, आभूषण, समवाय, प्रकृति, कर्म और स्कन्धके अर्थमे इस शब्दका प्रयोग पाया जाता है। बौद्धदर्शनने सस्कारको भवचक्रकी बारह शृङ्खलाओमसे[5] एक माना है। हिन्दूदर्शनोम इसका प्रयोग कुछ भिन्न अर्थमे हुआ है। यहाँ सस्कारका अर्थ भोग्य पदार्थोकी अनुभूतिकी छाप है। हमारे अव्यक्त मनपर जितने अनुभवाकी छाप है, अनुकूल अवसर पानेपर उन सबका पुनरावर्तन होता है। इस अर्थमे सस्कार 'वासना' का पर्यायवाची है। अद्वैतवेदान्तमे आत्माके ऊपर मिथ्या अध्यासके रूपम सस्कारका प्रयोग हुआ है। वैशेयिकोने चौवीस गुणोमेसे इसको एक माना है। सस्कृत-साहित्यम बडे व्यापक अर्थमें 'सस्कार' शब्द व्यवहृत हुआ है—शिक्षण,[6] चमक, सजावट आभूषण,[7] छाप, आकार, साँचा, क्रिया, प्रभावस्मृति,[8] पावक कर्म, विचार, धारणा, पुण्यादि।[9] धर्मशास्त्रियोने मानव-जीवनको पवित्र और उत्कृष्ट बनानेवाले समय-समयपर होनेवाले षोडश धार्मिक कृत्योको सस्कार माना है। प्राय इसी अर्थमे 'सस्कार' शब्दका प्रयोग किया गया है। सस्कारमे अनेक प्रकारके भावा और अर्थोंका समावेश है। इसीलिये किन्हीं विद्वानाने इसको एक विचित्र अनिर्वचनीय पुण्य उत्पन्न करनेवाला धार्मिक कृत्य कहा है।[10]

धर्मशास्त्रियोने जीवनका ध्येय आध्यात्मिक निश्चित किया है, किंतु उनकी यह भी धारणा है कि शरीर धर्म,

---

१ २।६ २ ४।१६ २।३।४ ३ ६।३।१ ४ ६।१।१३७

५ अविद्या सस्कार विज्ञान नामरूप षडायतन स्पर्श वेदना तृष्णा उपादान भव जाति और जरा-मरण।

६ निसर्गसस्कारविनीत इत्यसौ नृपेण चक्रे युवराजशब्दभाक्॥ (रघुवश ३।३५)

७ स्वभावसुन्दर वस्तु न सस्कारमपेक्षते। (शकुन्तला ७।२३)

८ सस्कारजन्यं ज्ञान स्मृति। (तर्कसग्रह)

९ फलानुमेया प्रारम्भा सस्कारा प्राक्तना इव। (रघुवश १।२०)

१० आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष सस्कार। (वीरमित्रोदय सस्कारप्रकाश)

अर्थ, काम और मोक्षका साधन है। इसलिये वे आत्माके पुजारी होते हुए भी शरीरकी अवहेलना नहीं करते। इसके विपरीत वे शरीरको आत्माके अवतरण और प्रकाशके लिये योग्य माध्यम बनाना चाहते हैं। इनका मार्ग घोर भौतिकवादियों और एकान्त निवृत्तिमार्गियोके बीचका है। भौतिकवादी शरीरको ही मानव-जीवनका सर्वस्व समझते हैं। उसके आगे और ऊपर किसी आदर्शमे उनका विश्वास नहीं होता। इसलिये आत्माके अन्तस्तलमे निहित आनन्दसे वे वञ्चित रह जाते हैं। निवृत्तिमार्गी आत्माकी खोजमे शरीरका पूर्ण तिरस्कार करनेकी चेष्टा करते हैं, जो पार्थिव जगत्म शरीरत असम्भव और विडम्बनामात्र है। सस्कारशास्त्रियाका यह सिद्धान्त है कि मानव-जीवन और शरीर कोई आकस्मिक घटना और निष्प्रयोजन पिण्डमात्र नहीं है। शरीरका प्रादुर्भाव एक निश्चित क्रमके अनुसार होता है। वह आत्माका वाहन है। उसे योग्यतम वाहन बनाना चाहिये, जिससे आध्यात्मिक जीवन सरलतापूर्वक बिताया जा सके। भगवान् मनुके मतानुसार 'गर्भाधान, जातकर्म चौल और उपनयन-सस्कारद्वारा बीज और गर्भसम्बन्धी दोष दूर होते हैं। शारीरिक सस्कार इस लोक और परलोक दोनोंको पवित्र करते हैं। स्वाध्याय व्रत, होम, वेदाध्ययन, यज्ञ, पुत्रोत्पत्ति, महायज्ञ और अन्य यज्ञासे शरीर ब्रह्मानुभूतिके योग्य बनाया जाता है।'[१] इससे स्पष्ट है कि यद्यपि सस्कारोंका तात्कालिक उपयोग शारीरिक कल्याणमे था फिर भी उनका अन्तिम उद्देश्य ब्रह्मकी प्राप्ति ही था। मनुपर टीका लिखते हुए मेधातिथि कहते हैं—'इनसे सस्कृत हुआ मनुष्य आत्मोपासनाका अधिकारी होता है।'[२]

सस्कारोंकी सहायतासे मानवचरित्रके निर्माण और व्यक्तित्वके विकासका प्रयत्न किया जाता है। अङ्गिराके अनुसार, 'जिस प्रकार अनेक रगोंसे चित्रकार चित्र बनाता है, उसी प्रकार विधिपूर्वक किये गये सस्काराद्वारा ब्राह्मण्य (ब्राह्मणत्व अथवा ब्रह्मत्व) सम्पादित होता है।'[३] प्राचीन ऋषियोने इस बातका अनुभव किया था कि मनुष्यको निरुद्देश्य इधर-उधर भटकने देनेके बदले उसको सावधानीके साथ निश्चित साँचेमे ढालना चाहिये। सस्कारोंको अनिवार्य बनाकर हिन्दूसमाज-शास्त्रियाने समान आदर्श, आचार और सस्कृतिवाले लोगाकी एक जाति बनानेकी चेष्टा की थी। उनको इस काममे काफी सफलता भी मिली। हिन्दुओंकी एक विशेष प्रकारकी जातीयता और सास्कृतिक आधारशिला है। इसीके बलपर उन्होने उन सब जातियोंपर अपनी छाप डाली, जो उनके सम्पर्कमें समय-समयपर आती रहीं। हिन्दुओका सस्कार इतना दृढ था कि अनेक राजनीतिक और सामाजिक क्रान्तियोके होते हुए भी उन्हाने अपना जातीय अस्तित्व नहीं खोया। आज भी जीवनके दृष्टिकोण तथा आचार-व्यवहारको देखकर आसानीसे कहा जा सकता है कि अमुक व्यक्ति हिन्दू है।

सस्कार समस्त जीवनको और मृत्युके उपरान्त अपर लोकको भी सस्कृत करते हैं। मानव-जीवनमें वे इस प्रकार रखे गये हैं कि समयानुसार अनुकूल वातावरण उपस्थित कर सके। सस्कार व्यक्तिके विकासके अनुसार उसका पथप्रदर्शन करते हैं। इनके सरक्षणम अपनी शक्ति और वृत्तियाको निर्दिष्ट और सोद्देश्य मार्गसे सचालित करता हुआ मनुष्य अपना सर्वाङ्गीण पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है।

सर्वप्रथम गर्भाधान-सस्कार किया जाता है। वैसे तो समस्त जीवधारियोंमें कामुक वासना और शारीरिक आकर्षणके कारण पुरुष और स्त्रीवर्गमे सहवास होता है, जिसका परिणाम प्राय सतानोत्पत्ति होती है। किंतु यह मैथुनी सृष्टिका पशुधरातल है। यदि मनुष्य इस धरातलसे ऊपर न उठा तो वह पशुतुल्य ही है, मानव नहीं। पशुसे मानव बननेके लिये पाशविक वृत्तियोपर धार्मिक सस्कार करना आवश्यक है। केवल रति और सतानोत्पत्ति ही पर्याप्त नहीं हैं। रति धार्मिक सस्कारसे सीमित और सतान आध्यात्मिक भावनासे अङ्कित होना चाहिये। गर्भाधान-सस्कारका अनुष्ठान उस समय होता हे, जब पति और पत्नी दोना सतानोत्पत्तिके योग्य और स्वस्थ होते हैं जब वे एक-दूसरेके हृदयको

---

१ गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै । बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥ (२। २७)
कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥ (२। २६)
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ॥ (२। २८)

२ एतैस्तु सस्कृत आत्मोपासनास्वधिक्रियते। (मनु० २। २८ पर भाष्य)

३ चित्रकर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनै । ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्सस्कारैर्विधिपूर्वकम्॥

जानते हैं और जब उन्हे सतान उत्पन्न करनेकी प्रबल इच्छा होती है। उनकी सारी शक्ति प्रजनन-क्रियामें केन्द्रित और सम्पूर्ण मन धार्मिकभावसे रञ्जित होता है। इस समय यज्ञ और मन्त्रोके द्वारा उपयुक्त वातावरण उपस्थित होता है। इस अवसरपर मालूम होता है कि स्त्री-पुरुषका प्रसङ्ग पशुक्रिया नहीं अपितु एक यज्ञ है, जिसको करके मनुष्य अपने पैतृक ऋणसे मुक्त हो जाता है।[१]

पत्नीके गर्भिणी होनेपर दो सस्कार होते हैं—पुसवन और सीमन्तोन्नयन। गर्भसचालनसे लेकर जन्मके पूर्वतक गर्भस्थ शिशु तथा माताके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये जितनी बातोकी आवश्यकता होती है, उन सबका विधान इन सस्कारोंमे किया गया है। वास्तवमे शिशुके शरीर ओर मनका सगठन उसके जन्मके उपरान्त नहीं, अपितु गर्भावस्थासे ही प्रारम्भ हो जाता है। इतनी बात तो जननशास्त्रके जाननेवाले भी मानते हैं। सस्कारोमे विशेषता यह है कि वे जननशास्त्रके नियमाका पालन कराते हुए अपने अन्तिम ध्येयको दृष्टिमें रखकर धार्मिक और आध्यात्मिक छाप लगाना भी जारी रखते हैं।

जन्मोपरान्त सबसे पहले जातकर्म-सस्कार होता है। इसके दो मुख्य अङ्ग हैं, एक प्रज्ञाजनन और दूसरा आयुष्य। सतानके सम्बन्धमे माता-पिताकी पहली चिन्ता यह होती है कि सतान मेधावी हो, दूसरी चिन्ता उसके दीर्घ जीवनकी। मानव-जीवनको सफल और पूर्ण बनानेके लिये ये दोनो बातें आवश्यक हैं। अन्तमे पिता प्रार्थना करता है कि सतान वज्रके समान दृढ, परशुके समान तीक्ष्ण और सुवर्णके समान कान्तिवाला हो।[२] बाल्यावस्थाम विकासके एक-एक क्रमपर दूसरे सस्कारोका विधान है। जातकर्मके बाद दूसरा सस्कार नामकरण है। आजकल धार्मिक उदासीनता और दुर्व्यवस्थाके कारण माता-पिता बालकका नाम प्राय ऊटपटाँग रख देते हैं, किंतु सस्कार नामको ऐसी तुच्छ_बात नहीं समझते। बृहस्पतिका कथन है कि 'नाम सम्पूर्ण व्यवहारोका कारण, कल्याणकारी और भाग्यप्रदाता है, नामसे ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है। इसलिये नामकरण एक प्रशस्त कार्य है।'[३] नाम एक ऐसा मन्त्र है, जिसका सम्बन्ध मनुष्यकी सारी चेतना और व्यक्तित्वसे होता है। इसलिये इस सस्कारने ऐसे नामोकी रचनाका विधान किया है, जो उच्चारणम सरल, सुननेमे मधुर और व्यक्तिगत तथा सामाजिक महत्त्वाकाङ्क्षाओके द्योतक हो। शैशवका तीसरा सस्कार 'निष्क्रमण' है। शिशुके शारीरिक विकासके साथ-साथ उसके ससारका भी विस्तार होता है। इसलिये उसको घरके सीमित घेरेसे बाहर निकालकर बाहरी ससारसे परिचय कराना आवश्यक होता है। किंतु सस्कार केवल शारीरिक माँगकी पूर्ति और मानसिक जिज्ञासाकी तृप्ति ही नहीं करता है, अपितु बालकके वर्धमान हृदयपर विश्वकी विशालता और ईश्वरके लीलावैचित्र्यकी छाप भी डालता है। बालकका चौथा सस्कार 'अन्नप्राशन' है, जो दाँत निकलनेके बाद ठोस, परिमित और सुपाच्य भोजनकी आवश्यकतापर जोर देते हुए अन्नतत्त्वका रहस्य बतलाता हे। पाँचवाँ सस्कार 'चूडाकरण' बालकके आयुष्य, सौन्दर्य और कल्याणके लिये किया जाता है।[४] छठा सस्कार 'कर्णवेध' है। इसका आविष्कार आभूषण धारण करने और अन्त्रवृद्धिरोगके निवारणके लिये हुआ था।[५] इस अवसरपर केशव, हर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र और दिग्देवताओकी पूजा होती है और प्रार्थना की जाती है कि कानोमे भद्रवचन ही सुनायी पडे। इन सस्कारोके साथ शैशवका अन्त होता है और बालकके नैतिक जगत्‌की सीमा भी बढ जाती है। शास्त्रकाराने कृतचूड (जिसका चूडाकरण-सस्कार हो गया है)-के पथप्रदर्शनके लिये बहुत-से नियम-उपनियम बनाये हैं, जिनका पालन करके वह अपने भावी जीवनक लिये तैयार हो सके।

शैशवके अन्तके साथ बालकका शिक्षणकाल प्रारम्भ होता है। शास्त्रकारोने इस कालके उपयुक्त विद्यारम्भ,

---

१ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्य प्रजया पितृभ्य । (तैत्तिरीयसहिता ६।३।१०।५)

२ अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तुत भव। (पारस्करगृ० सू० १।१६।१४)

३ नामाखिलस्य व्यवहारहेतु शुभावह कर्मसु भाग्यहेतु । नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्तत प्रशस्त खलु नामकर्म॥

४ तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये। (आश्वलायनगृ० सू० १।१७।१२)

५ रक्षाभूषणनिमित्त बालस्य कर्णौ विध्येते। (सुश्रुत सूत्रस्थान १६।१)

शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा यत्नेन सेवनीम्। व्यत्यासाद्वा सिरा विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये॥ (सुश्रुत चिकित्सा० १९।२४)

उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त और समावर्तन-सस्कारका विधान किया है। विद्यारम्भमे अक्षरज्ञान कराया जाता है। बालकको साक्षरताके साथ-साथ शील और विनयकी शिक्षा दी जाती है। उपनयन तो मनुष्यका दूसरा जन्म ही माना गया है। जिस प्रकार मिट्टीमे मिला हुआ सोना भट्टीकी आगमें तपकर दीप्त काञ्चन हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी उपनीत होकर व्रत और विद्याकी अग्निसे तपाया हुआ खरे सोनेके समान चमक उठता है। इसके बाद ही ब्रह्मचारीको पूर्ण धार्मिक और सामाजिक अधिकार मिलते हैं। प्राचीन आर्योंने शिक्षाको समाजमे प्रवेश करनेकी शर्त बनाकर अपने सास्कृतिक गौरवका परिचय दिया था। उपनीतके लिये 'ब्रह्मचारी' शब्दका प्रयोग बडा ही महत्त्वपूर्ण है। 'ब्रह्म' शब्द केवल वेदपरक ही नहीं, अपितु परमतत्त्वसूचक भी है। उपनीत केवल विद्याव्यसनी ही नहीं, ब्रह्मपरायण भी होता है। ब्रह्मचर्यमे ही वेदारम्भ और केशान्त—दो अलग-अलग सस्कार होते हैं। वेदारम्भसे वेदोंका अध्ययन आरम्भ होता है और केशान्त उस समय किया जाता है जब कि ब्रह्मचारीको मूँछ और दाढी निकलती है और वह यौवनमे प्रवेश करता है। इस क्रान्तिसूचक अवसरपर इस बातकी आवश्यकता होती है कि उसको उपनयनके समयपर धारण किये हुए व्रतका एक बार फिर स्मरण कराया जाय। ब्रह्मचर्यकालके समाप्त होनेपर समावर्तन या स्नान-सस्कार होता है। इसका अर्थ है गुरुके आश्रममें विद्या और व्रतको समाप्त करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके लिये पिताके घर लौट आना। गृहस्थाश्रममे प्रवेश करना व्यक्तिगत इच्छा या सुविधापर अवलम्बित नहीं है। शास्त्रोकी स्पष्ट आज्ञा है कि प्रवृत्तिप्रधान ब्रह्मचारी (ऐसे ब्रह्मचारियोकी सख्या सदा अधिक होती है)-को गुरुकी आज्ञा लेकर विवाह करके सामाजिक उत्तरदायित्वको स्वीकार करना चाहिये जो स्नातक आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी होना चाहता है और निवृत्तिमार्गी है अथवा जो शारीरिक या अन्य किसी अयोग्यताके कारण विवाहित जीवन नहीं बिता सकता उसको गुरुकुलमें रहकर विद्यासेवन और तपश्चर्यामें ही अपना जीवन खपा देना चाहिये।[1] इस विधानमें असमजस और सामाजिक स्वच्छन्दताका बिलकुल स्थान नहीं है।

विवाह-सस्कार सबसे प्रधान माना गया है, क्योंकि इसका सम्बन्ध न केवल पति और पत्नीसे है अपितु भावी सतानसे भी। यहींपर वर्तमान और भविष्यत्‌की सन्धि होती है। इसी घटनाके ऊपर पारिवारिक और सामाजिक सुख अवलम्बित है। यही कर्म और धर्मका उद्गम है। यह सस्कार सबसे पहले इस बातकी ओर ध्यान दिलाता है कि विवाह शारीरिक आकर्षण और रागका परिपाक नहीं है, अपितु एक धार्मिक बन्धन है, इसका विच्छेद हम व्यक्तिगत असुविधासे नहीं कर सकते, अपितु इसका निर्वाह आजीवन नियम और निष्ठाके साथ करना होगा।[2] दूसरी बात जो इस सस्कारसे स्पष्ट प्रकट होती है, वह यह है कि विवाहित जीवन स्त्री-पुरुषके आमोद-प्रमोद और सुख-सम्पत्तिका साधनमात्र नहीं है, अपितु सामाजिक उत्तरदायित्वके वहन करनेकी प्रतिज्ञा है, क्योंकि सारा समाज गृहस्थके ऊपर ही आश्रित है। विवाह-सस्कारके मुख्य अङ्ग ये हैं—१ पति-पत्नीका शारीरिक स्वास्थ्य और सतानोत्पत्तिकी क्षमता, २ शारीरिक और मानसिक मेल, ३ जीवनमें एक नया बन्धन, ४ विवाह एक सामाजिक क्रान्ति, ५ उत्तरदायित्वकी स्वीकृति और ६ विवाहित जीवन एक महान् प्रलम्ब यज्ञ। इन सस्कारोंको लेकर ब्रह्मचारी विवाहित जीवनमे प्रवेश करता है।

सासारिक जीवनका अवसान मृत्युमे और सस्कारोंकी परिसमाप्ति अन्त्येष्टिमे होती है। हिन्दू-शास्त्रकार इस लोकका महत्त्व समझते हैं, किंतु उनके सामने परलोक और परमार्थका महत्त्व इससे कहीं बढकर है। इस लोकको सुखमय और धार्मिक बनानेकी चेष्टा साधनरूपसे है। जीवनको पवित्र करनेवाले सस्कार लौकिक कल्याणके साथ-साथ परलोककी भी चिन्ता रखते हैं। अन्त्येष्टि-सस्कार परलोकपरक है। इस सस्कारमें आत्माके महाप्रस्थानको सुखमय और सफल बनानेकी चेष्टा की गयी है। बौधायनके अनुसार जातकर्मसे मनुष्य इस लोकको जीतता है और अन्त्येष्टिसे परलोककी विजय करता है।[3]

अध्यात्म हिन्दूधर्मकी सर्वप्रधान विशेपता है, इसलिये

१ मनु० २।२४३ २ अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिक । एप धर्म समासेन ज्ञेय स्त्रीपुसयो पर ॥ (मनु० ९।१०१)

३ जातसंस्कारेणेम लोकमभिजयति मृतसस्कारेणामु लोकम्। (बौधायन-पितृमेधसूत्र ३।१।४)

हिन्दू-शास्त्रकारोंने अपने सम्पूर्ण शास्त्रों और संस्थाओंको आत्माके रंगमें रँग डाला है। संस्कारमय जीवन आध्यात्मिक साधनाकी दृढ़ भूमिका है। संस्कारोंके द्वारा आध्यात्मिक जीवनका क्रमशः विकास होता है। संस्कृत व्यक्ति अनुभव करता है कि उसका सारा जीवन एक महान् यज्ञ है और जीवनकी प्रत्येक भौतिक क्रियाका सम्बन्ध आध्यात्मिक तत्त्वसे है। संस्कारोंके द्वारा ही कर्मप्रधान सांसारिक जीवनका मेल आध्यात्मिक अनुभवसे होता है। इस प्रकार संस्कृत जीवनसे शरीर और उसकी विविध क्रियाएँ पूर्णताकी प्राप्तिमें बाधक न होकर साधक होती हैं। शास्त्रोक्त संस्कारोंको नियमपूर्वक करता हुआ मनुष्य भौतिक बन्धन और मृत्युको पार करके अमृतत्वको प्राप्त करता है।

संस्कार-सर्वस्व

(दण्डीस्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'संस्कार' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—सम्+कृ+घञ्, इसका अर्थ है—अच्छा करना, शुद्ध करना, सुन्दर करना, वस्तुमेंसे वैगुण्यदोषका निवारण करके उसको नया आकर्षकरूप प्रदान करना आदि। सामान्यतः जिस क्रियाके योगसे मनुष्यमें सद्गुणोंका विकास एवं संवर्धन होता है, उस क्रियाको संस्कार कहते हैं। संस्कार एक मूल्यवर्धक प्रक्रिया है।

जीवनमें संस्कारोंका बड़ा महत्त्व है। वे मनुष्यकी शारीरिक एवं मानसिक स्थितिके द्योतक हैं। संस्कारके कारण मनुष्यको योग्य एवं उचित प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अनेक आरम्भिक विचार, धार्मिक क्रिया-कलाप, उनके साथ आनेवाले कई नियम एवं आचार्यपद्धति—इनका संस्कारोंमें समावेश है। इन सबका उद्देश्य केवल औपचारिक देह-संस्कार करना ही नहीं है, अपितु संस्कार्य व्यक्तिके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका परिष्कार कर उसे शुद्धि और पूर्णताकी प्राप्ति कराना भी है।

वेदोंमें संस्कारोंके जो मूल बीज उपलब्ध हैं, उन्हींका विस्तार गृह्यसूत्रोंमें किया गया है। संस्कार गृह्यसूत्रोंका प्रधान विषय है। गृह्यसूत्रोंमें सामान्यतः विवाहसे प्रारम्भ करके समावर्तनपर्यन्त दैहिक संस्कारोंका निरूपण किया गया है। कुछ गृह्यसूत्रोंमें अन्त्येष्टि-संस्कारका उल्लेख नहीं है। पारस्करगृह्यसूत्र, आश्वलायनगृह्यसूत्र, बौधायनगृह्यसूत्र इत्यादिमें अन्त्येष्टिका वर्णन है। गृह्यसूत्रोंकी संस्कार-संख्या भिन्न-भिन्न है, नामोंमें भी थोड़ा अन्तर है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें ११, पारस्कर, बौधायन एवं वाराहगृह्यसूत्रोंमें १३ तथा वैखानसगृह्यसूत्रमें १८ संस्कारोंका उल्लेख है।

गौतमधर्मसूत्रमें ४८ संस्कारोंका वर्णन है—४० संस्कार एवं ८ आत्मगुण मिलकर ४८ संस्कार होते हैं। इन ४८ संस्कारोंके नाम इस प्रकार हैं—१ गर्भाधान २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ अन्नप्राशन, ७ चौलकर्म, ८ उपनयन, ९—१२ चार वेदव्रत, १३ समावर्तन-स्नान, १४ विवाह, १५ देवयज्ञ, १६ पितृयज्ञ, १७ मनुष्ययज्ञ, १८ भूतयज्ञ, १९ ब्रह्मयज्ञ, २० अष्टका (माघकृष्ण अष्टमीका श्राद्धकर्म), २१ पार्वण, २२ मासिकश्राद्ध, २३ श्रावणी, २४ आग्रहायणी, २५ चैत्रीकर्म, २६ आश्वयुजी, २७ अग्न्याधान, २८ अग्निहोत्र, २९ दर्शपूर्णमास, ३० आग्रयण, ३१ चातुर्मास्य, ३२ निरूढपशुबन्ध, ३३ सौत्रामणी, ३४ अग्निष्टोम (सोमयाग), ३५ अत्यग्निष्टोम, ३६ उक्थ्य, ३७ षोडशी, ३८ वाजपेय, ३९ अतिरात्र, ४० आप्तोर्याम तथा ८ आत्मगुण संस्कार।

गौतमके कहे हुए ८ आत्मगुण इस प्रकार हैं—

'दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मङ्गलमकार्पण्यमस्पृहेति।'

१ प्राणिमात्रपर दया, २ क्षमा, ३ अनसूया (निर्मत्सरता) ४ शौच (अन्तर्बाह्यशुचिर्भूतता), ५ अनायास (क्षुद्र कामके लिये देहको कष्ट न देना), ६ मङ्गल (सदा उत्साही एवं आनन्दी मनोवृत्ति), ७ अकार्पण्य (कदापि दीनवाणी उच्चरित न करना एवं कृपणता न करना), ८ अस्पृहा (परकी वस्तुकी आशा—अभिलाषा न करना)।

व्याসस्मृतिमें १६ संस्कारोंके नाम दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—१ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन,

४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूडाकर्म, ९ कर्णवेध, १० उपनयन, ११ वेदारम्भ, १२ केशान्त (गोदान), १३ समावर्तन, १४ विवाह, १५ विवाहाग्निग्रहण और १६ अग्निहोत्रग्रहण।

इन सस्कारोमेसे पुसवन एव सीमन्तोन्नयन—ये गर्भिणी स्त्रीके सस्कार प्रथम गर्भधारणके समय किये जाते हैं।

सस्कार मुख्यत त्रैवर्णिकोके लिये कहे हुए हैं। स्त्री, शूद्र आदिकाके लिये अमन्त्रक सस्कार निर्दिष्ट हैं। गूँगो और पागलोके सस्कार न करे—ऐसा शङ्खस्मृतिमे आया है। गर्भाधान-सस्कारसे उत्पन्न हुए पुत्रको ब्रह्मविद्याका अधिकार प्राप्त होता है। पुसवनसे गर्भ पुँलिङ्गम परिणत होता है। सीमन्तोन्नयनसे माता-पिताद्वारा प्राप्त पाप शिशुको भोगने नहीं पडते। रेत, रक्त, गर्भाशय इत्यादिसे उत्पन्न हुए पञ्चविध पाप जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन इत्यादि सस्कारोसे नष्ट होते हैं। गर्भाधानादि अष्ट सस्कारासे द्विज पवित्र होते हैं।

सस्कारके विधायक अङ्ग

सस्कार मनुष्यके अन्तरकी श्रद्धा-भावना, मानवी स्वभाव और अति मानवशक्तिसे सम्बन्धित हैं। सस्कार विविध सत्त्वके मिश्रण हैं। अग्नि, प्रार्थना, आशीर्वाद अभिषेक, दिशानिर्देश, प्रतीकत्व, कालज्ञान और सामाजिक आशय—ये सस्कारके विविध अङ्ग हैं। इनकी सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

१ **अग्नि**—प्रत्येक सस्कार अग्निकी साक्षीमें होता हे। भारतीय दैवतशास्त्रमें इन्द्रके साथ अग्निका महत्त्व है। ऋग्वेदमे अग्निको गृहपति, अतिथि और देव एव मानवको जोडनेवाला कहा गया है। अग्नि मानवद्वारा दिया हुआ हविर्भाग देवताओको पहुँचाते हैं। अत सस्कारोंमे प्रथम स्थण्डिलपर अग्निस्थापन करते हैं। प्रत्येक सस्कारके अग्निके नाम भिन्न-भिन्न हैं। अग्निमुखसम्बन्धी कृत्य होनेपर प्रधान देवताके लिये हवन करके सस्कारोके अग्रिम कृत्य सम्पन्न होते हैं।

२ **प्रार्थना**—सस्कारके प्रसङ्गमे जिस देवताकी पूजा की जाती है एव जिम देवताके निमित्त होम किया जाता है, उस देवताकी प्रार्थना की जाती है। उपनयनमें ब्रह्मचारी सद्गुणोंकी प्राप्ति और दुर्गुणोंके निवारणार्थ प्रार्थना करता है। वेदोक्त सुप्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र भी सविताकी प्रार्थना ही है। बटु अग्निमे आहुति देते समय अग्निको सम्बोधित करते हुए कहता है—'हे अग्ने! तुम मुझे मेधा प्रदान करो, बुद्धि दो मुझे तेजस्वी करो, दीप्तिमान् बनाओ।' विवाह-सस्कारम वर जिस समय वधूके साथ सप्तपदी करता है, उस समय वह विष्णुकी प्रार्थना करता है कि 'वधूका प्रथम पदन्यास ईशके लिये, दूसरा पदन्यास ऊर्जाके लिये, तीसरा पदन्यास समृद्धिके लिये समर्थ हो' इत्यादि। गर्भाधान-सस्कारमें भी देवोंकी प्रार्थना की जाती है कि 'पत्नीके गर्भधारणमे सहायता करे।' प्रत्येक शिशु-सस्कारमे शिशुको आयुष्य, आरोग्य, अभिवृद्धि इत्यादि बात मिले, अत उन-उन देवताओकी प्रार्थना होती है।

३ **आशीर्वाद**—प्रत्येक सस्कारमे गुरुजनों एव ब्राह्मणोका आशीर्वाद लिया जाता है। इस आशीर्वादका शुभ परिणाम होता है। सस्कार व्यक्तिको ही नहीं, अपितु उसके परिवारको भी आयु-आरोग्य आदिका लाभ कराते हैं। पत्नीको वस्त्र भेट करते समय पति उसको आशीर्वाद देता है कि तुम दीर्घायु होओ, वैभव और सततिसम्पन्न होओ। जातकर्मके समय पिता अपने पुत्रको आशीर्वाद देता है—**'अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्रुत भव।'** (पा०गृ०सू० १।१६।१४) अर्थात् हे शिशो! तुम पत्थर-जैसे सुदृढ, परशु-जैसे सुतीक्ष्ण ओर सुवर्ण-जैसे कान्तिमान् होओ।

४ **अभिषेक**—ब्राह्मणोद्वारा मन्त्रोंके उच्चारणके साथ यजमानके मस्तकपर किया हुआ जलका प्रोक्षण सामान्यरूपसे अभिषेक कहलाता है। स्नानको भी अभिषेक कहा जाता है। स्नानको पुण्यप्रद एव जीवनदायक माना गया है। पवित्र जलमे दिव्य शक्ति निहित रहती है। उसमें अशुभ प्रभाव और भूत-पिशाचका निराकरण करनेकी क्षमता होती है।

जातकर्म चूडाकर्म और उपनयन-सस्कारके पूर्वमें बटुको स्नान कराना अति आवश्यक माना गया है। समावर्तन-सस्कार भी एक प्रकारका स्नान-सस्कार है। वर-वधूको विवाहसे पूर्व माङ्गलिक स्नान कराया जाता है। वह स्नान उनके भावी शुभ मङ्गलार्थ होता है। सस्कार समाप्त होनेपर ब्राह्मण पुरोहित सस्कारित व्यक्तिका कलशजलसे अभिषेक करते हैं, यह यश, श्री विद्या और ब्रह्मवर्चसकी प्राप्तिके लिये होता है।

५ दिशानिर्देश—भिन्न-भिन्न दिशाओमे विभिन्न देवताओका आधिपत्य होता है, ऐसा पुराणग्रन्थोमे वर्णित है। पूर्व दिशा प्रकाश, उष्णता, जीवन, सुख और समृद्धिकी दिशा है। पश्चिम दिशा अन्धकार, शीत, मृत्यु और विनाशकी दिशा है। दक्षिण दिशा यमदेवकी दिशा है। उत्तर दिशा अध्यात्म और मरणोत्तर स्वर्गगतिकी दिशा है। आसन कैसे रखे और कौन-सी दिशाकी ओर मुख करके संस्कार करे—इसका विचार मङ्गल कार्योंमे अवश्य किया जाता है, संस्कार्य व्यक्तिको पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख करके आसनपर बिठाया जाता है। इसका आशय बैठनेवालेको जीवन एव प्रकाशकी प्राप्ति कराना है। प्रदक्षिणामे सूर्यमार्गका अनुसरण किया जाता है। ऐसी प्रदक्षिणा पूर्वसे लेकर पश्चिमकी ओर होती है, मृतककी अन्त्यक्रियामे प्रदक्षिणाकी गति विपरीत होती है।

६ प्रतीकत्व—संस्कारमे प्रतीकवाद स्थान-स्थानपर दिखता है। प्रतीकवादका उद्देश्य भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुणाकी प्राप्ति है। यह मुख्यत सादृश्यपर आधारित है। सादृश्य वस्तुद्वारा सादृश्य बात उत्पन्न होती है। संस्कारमें जलपूर्ण कलशकी स्थापना करते हैं। यह कलश पूर्ण जीवनका प्रतीकरूप है। पत्थरको दृढताका प्रतीक माना गया है, अत वधूको विवाह-होमके समय एक पत्थरपर खडा करके इस मन्त्रका उच्चारण किया जाता है—'**इममश्मानमारोहाश्मेव त्व स्थिरा भव**'। हे वधू! तू इस पत्थरपर आरोहण कर और मेरे जीवनम एव ससारमे पत्थर-जैसी स्थिर होओ। वधूको ध्रुवदर्शन कराते हैं। यह शुभ कार्य उसके परिवारके लिये तथा अपने ध्रुवत्वके लिये होता है। लावा और चावल—ये बहुसतति-सम्पत्तिके प्रतीक हैं। वर घृतपात्रमे अपने दक्षिण हस्तका अङ्गुष्ठ डुबाकर वधूके हृदयप्रदेशपर घृतका टीका करता है, जिसको समञ्जन कहते हैं। यह स्नेह और प्रेमका प्रतीक है। हृदयस्पर्श अनुचित्तका प्रतीक है। उपनयन-संस्कारम पिता अपने पुत्रके हृदयपर हाथका स्पर्श करके कहता है—'**मम व्रते ते हृदय दधामि मम चित्तमनुचित्त ते अस्तु**' (पा०गृ०सू० १।८।८)। अर्थात् मैं अपने व्रतके स्थानपर तेरा अन्त करण रखता हूँ। तेरा यह चित्त मेरे चित्तका अनुसरण करनेवाला हो। इसी प्रकार आरती करना आयुष्य एव माङ्गल्यका प्रतीक है। इस प्रकार विविध कर्मोंके प्रतीक विविध शुभ फलोका प्रतिनिधित्व करनेवाले हैं।

७ कालज्ञान—संस्कारकृत्याके लिये तिथि, नक्षत्र इत्यादि दिनशुद्धि अपेक्षित होती है। ग्रहोकी अनुकूलता भी आवश्यक होती है। विशिष्ट कृत्यके लिये उस कृत्यका आशय ध्यानमे रखकर विशिष्ट तिथि, वार, नक्षत्र इत्यादि शुभ माने जाते हैं। देवनक्षत्र शुभ संस्कारके लिये स्वीकार्य हैं, किंतु मृत्यु, यमघट इत्यादि अशुभ योग वर्ज्य हैं। बटुको अपने उपनयनके लिये गुरुबलकी आवश्यकता होती है। विवाहके पूर्व 'वर-वधू-पत्रिका-मेलन' भी ग्रह-नक्षत्रपर आधारित है। विवाह लग्नके अष्टम स्थानमें पापग्रह न हो ऐसा कहा गया है। उपनयन और विवाह—इन संस्कारोमे गुरु और शुक्रका अस्त निषिद्ध है। उपनयनमे अनध्याय-तिथि वर्जित है। कृष्णपक्षमें चतुर्दशी और अमावास्या तिथि विवाहमे अनुक्त है। इस प्रकार विविध संस्कारोंके लिये मुहूर्तसम्बन्धी कई विधान शास्त्रोमे कहे गये हैं।

८ सामाजिक आशय—संस्कारके प्रारम्भमे गृहको स्वच्छ, अलकृत एव संस्कारसम्पन्न बनाना शुभ होता है। गृहद्वारपर गणेशजीके चित्रकी स्थापना करे, तोरण बाँधे, द्वारके समक्ष माण्डव बाँधकर सजाये। भूमि स्वच्छ करके उसपर शुद्ध जलसे प्रोक्षण कर विविध रगोसे रगोली बनाये। कुमकुमसे स्वस्तिक, कमल, शङ्ख इत्यादि शुभ चिह्नोकी रगोली चित्रित करे। संस्कार्य व्यक्तिको नूतन वस्त्रालङ्कारोसे विभूषित करे। अन्य जन भी माङ्गलिक वस्त्रादि धारण करे। ये सब कार्य सामाजिक और माङ्गलिक कृत्य हैं। ऐसे कृत्यसे संस्कार-समारम्भका वातावरण आनन्दप्रद रहता है।

संस्कारोका प्रयोजन—प्रत्येक संस्कार भिन्न-भिन्न उद्देश्य लिये हुए होते हैं। संस्कारोका धर्मशास्त्रीय प्रयोग समान होनेपर भी उसके कतिपय लौकिक अङ्ग भी होते हैं। संस्कारमें संस्कार्य व्यक्तिको अनेक शुभ फल प्राप्त हो तथा अशुभ फलाका निवारण हो, इसलिये संस्कारप्रयोगमें विविध कृत्य ग्रथित हैं।

अशुभ प्रभावका प्रतिकार—शुभ कार्योंमें अमङ्गलकी भी आशङ्का रहती है, अत अशुभ प्रभावके निवारणके लिये संस्कारामें कुछ विशेष कृत्य भी किय जाते हैं,

जीवनमूल्य और स्थायीभाव कहेगे।

सस्कारद्वारा उचित प्रकारसे सस्कृत होकर जीव अपनेको भगवत्प्राप्तिके योग्य बना सकता है और सस्कार ही वे तथ्य हैं, जो जीवनको गतिशील बनाते हैं।

भारतके ऋषि-मुनि, सत, साधकों और तपस्वियोंने समाधिके द्वारा उस विराट्का साक्षात् किया तथा मनुष्यके सस्कारोका विधान व्यापक पृष्ठभूमिमे प्रतिष्ठित किया है। यहाँ भारतीय हिदुआके सस्कार-विमर्शपर विचार करना प्रासङ्गिक है।

'मेदिनीकोश' के अनुसार 'सस्कार' शब्दका अर्थ है—प्रतियत्न, अनुभव अथवा मानसकर्म। 'न्यायशास्त्र' के मतानुसार गुणविशेषका नाम सस्कार है, जो तीन प्रकारका होता है—वेगाख्य सस्कार, स्थितिस्थापक सस्कार और भावनाख्य सस्कार।

काशिकावृत्तिके अनुसार उत्कर्षक आधानको सस्कार कहते हैं—**'उत्कर्षाधान सस्कार ।'** सस्कारप्रकाशके अनुसार अतिशय गुणको सस्कार कहा जाता है—**'अतिशयविशेष सस्कार ।'** सस्कारकी तीन प्रक्रियाएँ हैं—दोषमार्जन, अतिशयाधान और हीनाङ्गपूर्ति।

अन्नमेसे भुसके तिनको, खरपतवारके दानो और मिट्टीके कणाको निकालना दोषमार्जन है। कूटना-पीसना तथा अग्निपर पकाना अतिशयाधान है एव नमक या मीठा मिलाना हीनाङ्गपूर्ति है। इसी प्रकार कपासमेसे मिट्टी, बिनौला आदि निकालना दोषमार्जन है। सूत कातना, कपडा बुनना तथा काट-छाँटकर सिलाई करना अतिशयाधान है। बटन आदि लगाना हीनाङ्गपूर्ति हे।

जीवनमे सस्कारोका इतना महत्त्व है कि महर्षि आश्वलायनने तो यहाँतक कह दिया है कि—**'सस्काररहिता ये तु तेषा जन्म निरर्थकम्।'** अर्थात् जिसे सस्कार प्राप्त नहीं हो सके, उसका जन्म निरर्थक है। जीवनको सार्थक बनानेके लिये सस्कार आवश्यक हैं। सस्कारके अभावमे मनुष्य पशुके समान जीता है। सस्कार व्यक्तिके सम्पूर्ण व्यक्तित्वको प्रभावशाली बनाते हैं।

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे विचार करे तो सस्कार मनमें प्रस्थापित आदर्श हैं, जो जीवन-व्यवहारके नियामक और प्रेरक होते हैं। मनुष्य अपने जीवनमे सत्-असत्का निर्णय इन आदर्शोंके आधारपर ही करता है। मानवोचित गुण-कर्म-स्वभावकी प्रेरणा इन्हीं स देन है। यदि चरित्र वृक्ष है तो सस्कार उसका अवचेतन मन सस्कार नामक इस बीजका क्षेत्र अनुकूल परिवेश उसका हवा-पानी तथा धूप प्रकार हम कह सकते हैं कि अवचेतन मनम सकल्पका नाम सस्कार है। इस सकल्पमे अ सम्भावनाएँ निहित होती हैं। ये सकल्प इतने शा होते हैं कि केवल एक जन्मम ही नहीं, जन्मान्त गतिशील होते हैं। सस्कार मनका उदात्तीकरण एव कर्मशुद्धि भावशुद्धि और विचारशुद्धिके स अभ्युदय तथा नि श्रेयसके हेतु होते हैं।

सस्कारके महत्त्वको जान लेनेके बाद अब प्र है कि सस्कारोका स्रोत क्या है और ये मनुष्यको प्राप्त होते हैं? सस्कारोका एक महत्त्वपूर्ण स्रोत आनुव है। आनुवशिकता चरित्रका निर्णायक तत्त्व माना ज

माता-पितासे केवल शरीर ही प्राप्त नहीं हो भी प्राप्त होता है और सस्कार भी प्राप्त होते हैं आचार-विचार, प्रवृत्ति-अभ्यास आस्था तथा आदते पिताकी होती हैं, प्राय वैसा ही स्वभाव और सतानमे भी देखी जाती हैं तो उसे 'आनुवशिक-स कहा जाता है।* योद्धाका बेटा योद्धा हो सक भजनानन्दी माँ-बापके सस्कार उनकी सतानपर हो हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद-जैसे विपरीत उदाहरण भी दे हैं, परतु प्रह्लादको भक्तिके सस्कार माता कयाधूसे कयाधूको नारदसे मिले। इस प्रकार सस्कारोका एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हमारे समक्ष माँके रूपमे स्पष्ट हो जा

जब बालक माँके गर्भमे आता हे, तभीसे माँ सत्सकल्पासे बालकके सस्कारोकी रचना करने लग है। मनोवैज्ञानिकोका 'सामाजिक समायोजन' माँके सकल्पके आगे कुछ बौना-सा प्रतीत होता है। इस कार कि मनोवैज्ञानिक जीवका मौलिक स्वरूप उसकी प्रवृ देखते हैं। प्रवृत्तिको प्राणीका मूलरूप बतलाते हैं, उ भारतकी मेधा और समाधि सूक्ष्म अनुभूति कहती है जीवात्मा शुद्ध-बुद्ध-चैतन्य है जो दोष हैं, वे तो माय

* जातिगत सस्कार आनुवशिकताकी श्रेणीमें ही आते हैं। आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी सस्कारका स्रोत 'गुणसूत्र' बतलाती है।

हैं, मिथ्या आरोप है, जिसे वह सच मान रहा है।

इस तथ्यको हम इस पौराणिक कथाके माध्यमसे अधिक स्पष्टरूपमे समझ सकते है। महाराज कुवलयाश्वका जब विवाह हुआ तो उनकी पत्नी मदालसाने एक शर्त रख दी कि मैं जो भी करूँ, आप मुझे टोकना मत। राजाने शर्त मान ली। कालान्तरम महारानीके बेटा हुआ। रानीका पुत्र रो रहा था तब उसे चुप करानेके लिये माँ लोरी गा रही है—रे तात, तू रो रहा है।

बावले! कौन-सा अभाव है, जिसके कारण तू रो रहा है दैन्य प्रकट कर रहा है दु ख मान रहा है। तू सपनेको सच समझ रहा है। जिसे तू जागना समझता है, वह तो मोहकी निद्रा है। मोहकी नींदसे जागेगा तो तू अपनेको पहचान लेगा कि तू तो पूर्ण है, तू तो शुद्ध-बुद्ध है, तू निरञ्जन है, निर्विकार है। तू मायासे भिन्न है, मायिक नहीं है। तू पञ्चतत्त्वोंसे निर्मित देह नहीं है यह नाम तो काल्पनिक है इसलिये हे वत्स! चुप रह और इन बातोंपर विचार कर—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम
　　कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति
　　नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतो ॥
　　　　(मार्क०पु० २५। ११)

लोरी गा-गा करके ही माँने संस्कार दे दिये। संस्कार क्या है? माँका संकल्प है, जिसे वह बालकके अन्तर्मनमे प्रतिष्ठित कर रही है। बालकके संस्कार बन गये, बडा हुआ तो आत्मतत्त्वका साक्षात्कार पानेके लिये वह राजमहल छोडकर चल दिया।

मदालसाके दूसरा बेटा हुआ फिर तीसरा बेटा हुआ। माँ मदालसाकी वे ही लोरियाँ और वे ही संस्कार। दूसरे और तीसरे पुत्र भी वनको चले गये। इसे मनोवैज्ञानिक सामाजिक समायोजनमात्र कहेंगे। क्या यह मात्र सामाजिक सरोकार है?

मदालसाने तीन पुत्रोको आत्मसाक्षात्का संस्कार दिया। महाराज कुवलयाश्व विचलित हो गये, चौथा पुत्र हुआ तो वे हाथ जोडकर महारानीके सामने खडे हो गये—कल्याणि! मुझे तुम्हारी शर्त याद है। परतु प्रिय! मुझे अपने राज्यकी चिन्ता सता रही है। यदि चौथा पुत्र भी विरक्त हो गया, तब इसका क्या होगा? मदालसाने पतिकी चिन्ता समझी और मुसकरा दी। माँ चौथे पुत्रको पालनेमे झुलाती तो लोरी गाती—वत्स! क्यो रोता है? ससारमे जो भी कुछ है—तेरा ही तो है, तू राजा है, इस सबका स्वामी है। तुझे क्या कमी है? मदालसा लोरी गाती—वत्स! रोना नहीं, राज्य करते हुए सुहृदोको प्रसन्न रखना साधुओकी रक्षा करना, यज्ञोका सम्पादन करना दुष्टोका दमन करना तथा गो-ब्राह्मणोकी रक्षाके लिये प्राणोका उत्सर्ग करनेकी जरूरत हो तो प्राणोका भी मोह मत करना—

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथा
　　साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथा ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये
　　गोविप्रार्थे वत्स मृत्यु व्रजेथा ॥
　　　　(मार्क०पु० २६। ४१)

प्रत्येक माँके अपने बालकके सम्बन्धमे कुछ सकल्प होते हैं, इसमे कोई सदेह नहीं कि माँके इन सकल्पोके द्वारा गर्भस्थ शिशुके संस्कार बनते हैं। प्रह्लादका भक्ति-संस्कार माँके गर्भमे हुआ था एवं अभिमन्युका शौर्य-संस्कार भी माँके गर्भमे हुआ था।

कंसके भयसे सतायी हुई माँ देवकीने अपने गर्भमे 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' के संकल्पको

देखा था। भागवत दशम स्कन्ध, तीसरे अध्यायके श्लोक ३१मे देवकी ओर वसुदेव—दोनोके ये सकल्प अध्ययन करने योग्य हे—'**बिभर्ति सोऽय मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बन हि तत्॥**' वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह कैसी अद्भुत बात है।

एक पुरानी उक्ति कही जाती है, जिसमे बताया गया है कि आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच चीज गर्भमे ही रच जाती हैं—

आयु कर्म च वित्त च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन ॥

इस विचारसे गर्भम रचे गय सस्कारोको जीवनका निर्णायक माना गया है। गर्भिणी माँका सकल्प इतना महिमामय है। '

पुराणोमे ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि माँ सस्कारके रूपमे जीवनकी आधारशिलाको प्रतिष्ठित करती है। ध्रुवकी माँ सुनीतिने छोटेसे बालकको कितना प्रबल सस्कार दिया था। जीजाबाईका नाम इतिहासमे इसीलिये प्रसिद्ध है कि उसने छत्रपति शिवाजीम ऐसे सस्कार रचे थे। बौद्धधर्मके क्षेत्रमे कुमारजीवका नाम प्रसिद्ध है। इनके पिता कुमारायण, किसी देशके राजाक अमात्य थे। किसी बातपर वे राजासे रुष्ट हो गये तो भारतवर्षकी सीमा छोडकर कूचा देश (मध्य एशिया) पहुँचे। वहाँका राजा उनस इतना प्रभावित हुआ कि अपनी बहन 'जीवा' की शादी उनके साथ कर दी। जीवा हीनयानके सर्वास्तिवाद-सम्प्रदायकी विदुषी थी। अपने बेटेको वह उद्भट बौद्ध आचार्य बनाना चाहती थी। यह बेटा आगे चलकर कुमारजीव (पिता कुमारायणका कुमार तथा माँ जीवाका जीव शब्द) नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसकी साधना और प्रतिभाका प्रसार कश्मीरसे मध्य एशियातक हुआ। चीनके बौद्ध दार्शनिक भी उससे प्रभावित हुए।

आनुवशिकता और माँके अतिरिक्त सस्कारका तीसरा स्रोत बालकका वह प्राकृतिक तथा सामाजिक परिवेश है जिसम वह जन्म लेता है, पलता है और बढता है। प्राकृतिक (भौगोलिक) परिवश उसके आहार-व्यवहार शरीरके रूप-रगका निर्णायक होता है आदत बनाता है। सामाजिक परिवेशक अन्तर्गत परिवार, मुहल्ला, गाँव और विद्यालयके साथी, सहपाठी, मित्र, पडोसी तथा अध्यापकगण आते हैं। बालक समाजमे जैसे आचरण और स्वभावकी सङ्गतिमे आता है, वैसे ही सस्कार उसके मनपर बद्धमूल हो जाते हे। प्रत्येक समाजकी एक जीवन-पद्धति होती है, जिसके पीछे उस समाजकी परम्परा और इतिहास होते हैं। यह समाज रीति-रिवाज बनाता है, सास्कृतिक प्रशिक्षण देता है, स्थायीभाव जगाता है, अन्तश्चेतना तथा पाप-पुण्यकी अवधारणाकी रचना करता है। उसी क्रममे भारतवर्षमे सोलह सस्काराकी परम्परा है, जो मनुष्य और मनुष्यके बीच, मनुष्य और प्रकृतिके बीच सम्बन्धसूत्र बुनते हैं। प्रत्येक धर्म-सस्कृतिम विवाह आदिके विधान वहाँके परिवेश और इतिहासकी देन होते हैं और इस विधानके पीछे धार्मिक आस्था जुडी हुई होती है। पवित्र भावा और आस्थाका यह सूत्र अपने पूवजोके प्रति कृतज्ञता और पूज्यभावसे प्रेरित होता है। यह सूत्र सामाजिक आचरणका नियमन करता है।

साहित्य-सस्कृतिके विविध रूप, तीर्थ आदि, अनुष्ठान, महान् ग्रन्थ, महापुरुषो और सतोके उपदेश भी परिवेशसे प्राप्त सस्काराकी श्रेणीमे ही आते हैं। वर्तमानमे सचार-माध्यमोका बाजारीकरण और सचार-माध्यमाके द्वारा बाजारका हस्तक्षेप भी सस्कार और सस्कृतिपर आक्रमण ओर आघातके रूपमे उपस्थित हुआ है। बाजार न तो मनुष्यको मननशील मानता है ओर न सामाजिक, नरसे नारायणत्वकी यात्राका पथिक हाना भी उसकी दृष्टिमे नहीं है। धर्म, धर्मपूर्वक अर्थ धर्मार्थपूर्वक काम और धर्मार्थकामपूर्वक मोक्ष-जैसे पुरुषार्थ बाजारके लिये बेईमानी हैं। बाजारका एकमात्र पुरुषार्थ हे—मुनाफा और मनुष्य उसके लिये उपभोक्तामात्र है। यही सस्कार और सस्कृति बाजार-सघर्षका कारण है। जो लाग सत्ताके शीर्षपर हैं वे किसी-न-किसी कारणसे बाजारकी सत्ताके आगे नतमस्तक हो चुके हैं। बाजार उच्छृङ्खल है—*'परम स्वतत्र न सिर पर कोई।'* यह परिवेश-प्राप्त सस्काराकी पृष्ठभूमि है।

अब सस्काराक एक और महत्त्वपूर्ण स्रोतपर विचार कर। एक ही माता-पिताक अनक सतान हाती हैं जिन्ह

परिवेश भी एक-जैसा ही मिलता है, परतु उनके अभ्यास, आचरण और स्वभावम भिन्नता क्या है? इसका कारण पूर्वजन्मक सस्कारके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? इस प्रकार पूर्वजन्म सस्कारोका एक और महत्त्वपूर्ण स्रात है।

सस्कार आरोपित नहीं होते। लेनिनने सोचा था कि ब्रेनवाशिग करके चरित्रको ढाला जा सकता है परतु सस्काराकी रचना बाहरस आरोपित करके सम्भव होती तो सोवियत साम्राज्य एसे भडभडाकर क्या गिर पडता? सस्कार बलपूर्वक या तर्क-वितर्कसे नहीं बनाय जा सकते। आचरण ही आचरणको प्रेरित करता है। डॉ० सम्पूर्णानन्दने अपने एक लेखम लिखा था कि समाज और राज्यका दायित्व है कि वे ऐसी परिस्थितियाकी रचना करे, जिनम सत्सकल्प, सदाशयता और सदाचार फूले-फले और कुत्सित भाव नष्ट हो सक।

सस्कार ही मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य और प्रकृतिके बीच भाव-सम्बन्धकी रचना करते हैं। अपने स्वजन, परिवार, समाज और राष्ट्रपर न्योछावर होनेका भाव सस्कारासे ही प्राप्त होता है। सैनिक वीरताक साथ युद्ध करता है, यह ऊर्जा सस्कारसे ही तो मिलती है। कलाकौशल, ज्ञान-विज्ञानका अधिष्ठान सस्कार ही करते हैं। सस्कार ही समाजको अपराधसे बचाते हैं। अज्ञान, अभाव, अन्यायके विरुद्ध सघर्षके सकल्पका स्मरण करानके लिये ही तो यज्ञोपवीतके तीन तन्तु और उनकी ग्रन्थि हाती है।

सस्काराको हम धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक तथा सौन्दर्यबोधक रूपम वर्गीकृत कर सकते हैं। दया, करुणा, शान्ति अहिसा, सत्य धर्म, पापबोध, सहिष्णुता, समानता साहस, साधना श्रम, सतोष विनय, स्वाध्याय, अभय आत्मसम्मान, अतिथि-सत्कार, इन्द्रियनिग्रह, विराग धैर्य, क्षमा, अस्तेय, अक्रोध, परदु खकातरता, वीरता, प्रेम आदि सस्कारजन्य गुण हैं। विद्या, काव्य कला-कौशल आदि अतिशयाधानरूप सस्कारकी श्रेणीम आत हैं।

~~~○~~~

आदर्श जीवनकी विशाल पृष्ठभूमि—हमारे वैदिक सस्कार

(आचार्य श्रीश्रीकान्तमणिजी शास्त्री विकल, साहित्याचार्य एम्०ए०)

मानव-जीवनको परिष्कृत बनानेवाली वैदिक विधि-विशेषका नाम 'सस्कार' है। जैसे तूलिकाके बार-बार फेरनेस चित्र सर्वाङ्गपूर्ण बन जाते है, उसी भाँति विधिपूर्वक सस्काराक अनुष्ठानद्वारा शम-दमादि गुणोका विकास होता है। सस्काराका मूलोद्देश्य तीन रूपामे परिलक्षित होता है—(१) दोषमार्जन, (२) अतिशयाधान तथा (३) हीनाङ्गपूर्ति। खानसे निकला हुआ लोहा अत्यन्त मलिन होता है। प्रथमत सफाईद्वारा उसका 'दोषमार्जन' करते हैं, फिर आगकी नियमित आँच (ताप)-मे तपाकर उससे इस्पात तैयार किया जाता है और उस इस्पातसे फिर अभिलषित वस्तुओका निर्माण किया जाता है, जिसे 'अतिशयाधान' कहते हैं। फिर उस वस्तुमे प्रयोगमे आने लायक जो कमी होती है, उसकी पूर्ति की जाती है। यह क्रिया 'हीनाङ्गपूर्ति' कहलाती है।

ठीक इन्हीं उद्देश्योकी पूर्तिहेतु हमारे महर्षियोने जीवनको अपने लक्ष्य (मोक्ष)-तक पहुँचानेहेतु विविध सस्काराकी शास्त्रीय व्यवस्था दी है।

गर्भाधान जातकर्म, अन्नप्राशन आदि सस्कारोसे दोषमार्जन उपनयन, ब्रह्मव्रत आदि सस्कारासे अतिशयाधान एव विवाह, अग्न्याधानादि सस्कारासे हमारे जीवनकी हीनाङ्गपूर्ति होती है। इस प्रकार सस्कारोंकी अनेक विधियोद्वारा मानव अपने लक्ष्यतक पहुँचनेमे समर्थ होता है।

सस्कारोकी विविध सख्याएँ

सस्कारोकी गणनाम विभिन्न मत देखे जाते हैं—महर्षि गौतमने ४०, अङ्गिराने २५ तथा स्मृतिकार व्यासने १६ सस्कार बतलाये है, किंतु १६ सस्कार सम्पन्न करनेका अन्तर्निवेश बहुधा प्राप्त होता है जो निम्न है—

आधान पुसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण अन्नप्राशन चौल उपनयनम्। ब्रह्मव्रत वेदव्रत समावर्तनमुद्वाह, अग्न्याधान दीक्षा महाव्रत सन्यास ॥ (मीमासादर्शन)

इन सस्कारोमे गर्भाधानसे लेकर उपनयनपर्यन्त ८ सस्कार प्रवृत्तिमार्गी एव शेष ब्रह्मव्रतसे सन्यासपर्यन्त ८
~~~

सस्कार निवृत्तिमार्गी हैं। भगवान् मनुजीके स्पष्ट वचन हैं—

वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ॥

(मनु० २।२६—२८)

अर्थात् द्विजातियाक शरीर-सस्कार वेदोक्त पवित्र विधियाद्वारा अवश्य करने चाहिये, क्याकि ये सस्कार तो इस मानवलोकक साथ-साथ परलोकम भी परम पावन हैं, गर्भावस्थाके आधान, पुसवन एव सीमन्तोन्नयन तथा जन्मके पश्चात् जातकर्म चूडाकर्म और उपनयनादि सस्कारोके समय प्रयुक्त हवनादि विधियाद्वारा जन्मदाता पिताके वीर्य एव जन्मदात्री माताके गर्भजन्य समस्त दोपाका शमन हा जाता है तथा वेदमन्त्राके प्रभावस नवजात शिशुके अन्त करणम शुभ विचारो तथा प्रवृत्तियाका उदय होता है। इसके साथ ही उपनयनके प्रयोजनीय वेदारम्भादि सस्काराद्वारा विविध हवनीय विधियासे त्रयी विद्या (ऋक्०, यजु०, सामवेद)-के स्वाध्याय गृहस्थाश्रमम पुत्रोत्पादनद्वारा तीन ऋणा (पितृ ऋपि एव देव)-क अपाकरण तथा पञ्च महायज्ञ एव अग्निष्टोमादि यज्ञाके अनुष्ठानसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति (सद्गति या मोक्ष)-का अधिकारी बनाया जाता है। यहाँ इन सस्काराके मूलोद्देश्य एव विधियाका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

(१) गर्भाधान, (२) पुसवन, (३) सीमन्तोन्नयन—'गर्भाधान' पहला सस्कार है। गर्भाधानके पश्चात् तीसरे चौथे एव छठेसे आठव महीनेके मध्य गर्भ विनष्ट होनेके ये दो समय अति प्रबल होते हैं। अत इन दोना क्षणाम गर्भिणीके गर्भरक्षाकी नितान्त आवश्यकता होती है। गर्भग्रहणके तीसर माससे दस दिनक मध्य 'पुसवन-सस्कार' सम्पन्न होता है क्याकि गर्भाशयस्थित भ्रूणम पुत्र है या पुत्री? इसका निश्चय प्राय चौथे महीनेतक नहीं हाता अतएव वशपरम्पराके अभिलापी दम्पती वृद्धिश्राद्ध माङ्गलिक हवनादि करते हैं। पुरुप पत्नीको गर्भम पुत्र होनेका निश्चय कराता हुआ कहता है कि 'मित्रावरुण अश्विनीकुमार, अग्नि, वायु आदि देव सभी पुरुप हैं, तुम्हारे गर्भम भी पुरुप आया है' आदि पतिवाक्य सुनकर गर्भिणीका मानस खिल उठता है और उसके उस समयके वमन, आलस्य, अवसाद आदि समस्त दोप अपने-आप मिटने लगते हैं और उसकी पावन कोखम पुरुप जातिका आविर्भाव होता है। गर्भग्रहणके बाद छठे मासम सीमन्तोन्नयन-सस्कारका विधान है। चरुपाक, वृद्धिश्राद्धके पश्चात् उदुम्बर (गूलर)-के दो फल (टहनी वृन्तसहित) लेकर दूर्वा रोचन, तुलसीपत्र, सरसा आदि माङ्गलिक द्रव्याक साथ रेशमी वस्त्रम बाँधकर पत्नीके गलेमे बाँधता हुआ पति कुशगुच्छसे पत्नीके सीमन्त (माँग)-को विभाजित करता है और पत्नीको आश्वस्त करता है—'तुम्हारी आनेवाली सतान दीर्घजीवी हागी' आदि।

(४) जातकर्म—शिशुक भूमिष्ठ होनेपर इस सस्कारको करनेका विधान है। इस सस्कारद्वारा मातृ-पितृज शारीरिक दोपाका शमन होता है, पिता सुवर्णद्वारा घिसे मधु और घृतको शिशुको प्राशन कराता हुआ पुत्रके कानके पास अन्न-प्रशस्तिपरक मन्त्र पढता है जिसका भाव है—अन्न ही आयु, बल और तेज है, बृहस्पति आदि देव तुझे दीर्घ जीवन दे आदि।

(५) नामकरण—दस रात्रियोके बीत जानेपर इस सस्कारके करनेका विधान है। देवपूजा, ग्रह-शान्तिके पश्चात् कुलपुरोहित एव कुलवृद्ध या पिताद्वारा यह सस्कार सम्पन्न किया जाता है। पिता आदि जातकके कानमे नाम सुनाते हैं। 'जन्माङ्गचक्र' भी इस अवसरपर प्रस्तुत किया जाता है तथा बालकको सूर्यदर्शन भी कराया जाता है। सूर्यदर्शनसे जातकका अखण्ड तेज एव बल मिलता है।

(६) अन्नप्राशन—छठा सस्कार 'अन्नप्राशन' है। पुत्रका छठे आठवे—सम मासामे एव कन्याका पाँचवे, सातव—विषम मासामे अन्नप्राशन किया जाता है। पूजन-हवनादि माङ्गलिक विधियाके पश्चात् कुलवृद्ध, पितामह पिता शिशुको अपनी गोदम लेकर स्वर्ण-रजत मुद्राआद्वारा क्षीरादि मिष्टान्न (भोज्य पदार्थ) शिशुके मुखम प्राशन कराते (चटाते) हैं।

(७) चौल या चूडाकरण—इस संस्कारकी सम्पन्नतार्थ हमारे ज्योतिषग्रन्थोंमें अनेक विधि-निषेधक नियम बताये गये हैं, यथा—उत्तरायण सूर्यकी उपस्थिति तथा शुक्र, गुरुकी बाल-वृद्धत्वनिवृत्ति आदि।

गर्भावस्थामें शिशुके सिरपर जो केश उत्पन्न होते हैं उन्हें उस्तरेसे छीलकर चूडाकरणके समय शिशुको संस्कारसम्पन्न बनाते हुए हवन होता है एवं मन्त्रद्वारा सूर्य-प्रार्थना की जाती है, जिसका भाव है—'जिस क्षुधिति (छुरे)-द्वारा सूर्यने बृहस्पतिका एवं पवनदेवने इन्द्रका मुण्डन (संस्कार) किया था, उसी ब्रह्मरूपी क्षुधितिसे मैं तुम्हारा केशमुण्डन कर रहा हूँ। सभी सूर्य इन्द्र पवनादि देव तुझे चिरायु, बल और तेज प्रदान करें।'

(८) उपनयन—प्राचीन कालमें द्विजातिके बालक इसी संस्कारके द्वारा गुरुकुलमें उपनीत हो (आचार्यके समीप उपस्थित होकर) वेदारम्भ (ज्ञानार्जन) करते थे।

याज्ञवल्क्यस्मृति (१।२।३९)-में निर्देश है—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनात्।
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः॥

ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यका प्रथम जन्म माताके गर्भसे और द्वितीय जन्म उपनयन-संस्कारद्वारा होता है, अतएव वे द्विज (**'द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जातः'**) कहे जाते हैं। गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं विविध ज्योतिषग्रन्थोंमें प्रत्येक द्विजवर्णकी प्रकृतिके अनुसार उपनयन करनेके निर्देश मिलते हैं। यथा—

'वसन्ते ब्राह्मणं ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्।'
'गर्भाष्टमेऽब्दे ब्राह्मणं गर्भैकादशे राजन्यं गर्भद्वादशे वैश्यम्।'

शमदमादिस्वभावयुक्त ब्राह्मणके लिये आठवें वर्ष वसन्तमें, शौर्य-तेज-चण्डादिस्वभाववाले क्षत्रियवर्णके लिये ग्रीष्मकालमें गर्भसे ग्यारहवें वर्षमें तथा कृषि-गोरक्षा-वाणिज्यरत वैश्यके लिये गर्भसे बारहवें वर्ष शरत्कालमें उपनयन करनेका विधान है।

यज्ञोपवीत—यज्ञसूत्र निरन्तर हमें अपने धर्म जाति एवं प्रवर ऋषियों पुरुषोंके उपकारका स्मरण दिलाते हैं। हमारे यज्ञसूत्रमें सभी देवोंका निवास होता है, अतएव यथाधिकार यज्ञोपवीत धारण करना परमावश्यक है।

(९) ब्रह्मव्रत—गुरुकुलमें गुरुसेवार्थ धारण किया जानेवाला (अन्तेवासी शिष्यका) यह अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत है। इस संस्कारमें उपनीत वटु आचार्यगृहमें गुरुका अन्तेवासी बनकर अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता हुआ परमात्मपथमें अग्रसर होनेके लिये अपने पुरुषार्थ (नियम-संयम)-की प्रतिज्ञा करता है। इस कार्यमें वटुकके लिये (१) ब्रह्मचर्य-पालन एवं (२) गुरुसेवा (शुश्रूषा) प्रमुख होते हैं। सनत्सुजातीयमें गुरुसेवाके चार पाद कहे गये हैं—

(क) प्रथम पाद—

शिष्यवृत्तिक्रमेणैव विद्यामाप्नोति यः शुचिः।
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथमः पाद उच्यते॥

भीतर-बाहरकी शुचिताका अवलम्बन कर शिष्यवृत्तिद्वारा आचार्यसे जो विद्यार्जन किया जाता है, वही ब्रह्मचर्यव्रतका प्रथम पाद है।

(ख) द्वितीय पाद—

यथा नित्यं गुरौ वृत्तिर्गुरुपत्न्यां तथाऽऽचरेत्।
तत्पुत्रे च तथा कुर्वन् द्वितीयः पाद उच्यते॥

गुरुके समान ही गुरुपत्नी एवं गुरुपुत्रमें भी सद्वृत्ति (सदाचार)-का पालन करना, [ब्रह्मचर्यव्रतका] द्वितीय पाद है।

(ग) तृतीय पाद—

आचार्येणात्मकृतं विजानन् ज्ञात्वा चार्थं भावितोऽस्मीत्यनेन। यन्मन्यते तं प्रति हृष्टबुद्धिः स वै तृतीयो ब्रह्मचर्यस्य पादः॥

आचार्यद्वारा अपने प्रति उपकारको समझकर एवं उनके द्वारा प्राप्त वेदज्ञानसे अपनेको सम्भावित (सम्मानित) समझकर हृदयमें उत्पन्न हर्ष, प्रसन्नता और कृतार्थता (-का मूलभाव) ही ब्रह्मचर्य [व्रत]-का तृतीय पाद है।

(घ) चतुर्थ पाद—

आचार्याय प्रियं कुर्यात् प्राणैरपि धनैरपि।
कर्मणा मनसा वाचा चतुर्थः पाद उच्यते॥

प्राण, धन मन, वाणी एवं सत्कर्मके द्वारा आचार्यका प्रिय (आदर, सम्मान), हित करना ही [ब्रह्मचर्यव्रतका] चतुर्थ पाद है।

(१०) वेदारम्भ या वेदव्रत—षोडश संस्कारोंमें दसवें संस्कारका नाम 'वेदव्रत-संस्कार' है। प्राचीन कालमें यह वेदाध्ययन करनेका एक अति प्रशस्त भारतीय संस्कार था।

महर्षि वसिष्ठका स्पष्ट निर्देश है—

पारम्पर्यागतो येषा वेद सपरिबृहण ।
यच्छाखाकर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययन तथा॥

अर्थात् जिस कुलम जो शाखा तथा जा गृह्यसूत्र व्यवहार-परम्परासे चल रहा हो, उस वशम उसी शाखासे वेदारम्भ होना चाहिये।

(११) समावर्तन—यह सस्कार आचार्य-गृह (गुरुकुल)-म विद्या समाप्तकर गृहस्थाश्रमम प्रवेशके समय एक विशेष अनुष्ठानके रूपमे किया जाता है। श्रुतिका आदेश है—**'आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी ।'**

आचार्य (वेदकी शिक्षा देनवाले)-का दक्षिणारूपम यथाशक्ति (यथोचित) धन देकर प्रजातन्त्र (सतानपरम्परा)-की रक्षाके लिये स्नातक 'द्विज' गृहस्थाश्रमम प्रवश कर। इस विषयम महर्षि याज्ञवल्क्यका भी स्पष्ट निर्देश है—

वद व्रतानि वा पार नीत्वा ह्युभयमेव वा॥
अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्या स्त्रियमुद्वहेत्।

(याज्ञ० १।३।५१-५२)

समग्र अथवा एक या दो वेद अध्ययन कर अस्खलित ब्रह्मचारी सुलक्षणा स्त्रीस उद्वाह (विवाह) कर।

समावर्तन (गृह-प्रत्यागमन)-के समय शिष्यके लिये दिया गया आचार्यका उपदश आज भी गुरुकुल (विश्वविद्यालया)-के लिये एक आदर्श अनुकरणीय शिक्षा है। यथा—**'सत्य वद'**—सत्य बोलो **'धर्मं चर'**—अपने कर्तव्या—धर्मोका पालन करो आदि।

(१२) विवाह—मनुसहिताक निर्देशानुसार अस्खलित ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञासे यथाविधि समावर्तनका व्रत-स्नान कर द्विज स्नातक होकर सुलक्षणा एव सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण करे—

गुरुणानुमत स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥

(मनु० ३।४)

विवाह गृहस्थाश्रमका सर्वप्रमुख सस्कार है। इस सस्कारके प्रमुख तीन उद्देश्य होते हैं—(१) अनर्गल प्रवृत्तिका निरोध (२) पुत्रात्पादनद्वारा वशकी रक्षा एव (३) भगवत्प्रेमका अभ्यास।

मनुजीने कहा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवशयत्।
अनपाकृत्य मोक्ष तु सवमानो व्रजत्यध ॥
अधीत्य विधिवद्वदान् पुत्राश्चोत्पाद्य धर्मत ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयत्॥

(मनु० ६।३५ ३६)

ऋषि-ऋण देव-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन ऋणाका शोधन कर अपना चित्त मोक्षमें लगाना चाहिये। तीन ऋणोस बिना छुटकारा पाये मुक्तिमार्गका आश्रय लनसे मानवका पतन हो जाता है। अतएव स्वाध्यायद्वारा ऋषि-ऋण, यज्ञ-साधनद्वारा दव-ऋण और पुत्रोत्पत्तिद्वारा पितृ-ऋणसे सद्गृहस्थ मुक्त हात हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारीके समस्त ऋण ज्ञानयज्ञम लय हो जाते हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्यन कहा है—

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्या स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विका कान्तामसपिण्डा यवीयसीम्॥

(याज्ञ० १।३।५२)

गृहस्थ बननेके लिये मनके अनुरूपा, भिन्नगोत्रीया अपनेसे अल्पवयस्का एव अनन्यपूर्विका (पहले किसीके साथ अविवाहिता) कन्याका पाणिग्रहण करे। इस सदर्भम मनु आदि अनेक आचार्योके वचन प्राप्त होते हैं।

सभी देश-जातियामे वैवाहिक विधियोमे बहुत ही असमानता दिखायी पडती है। उनम भोगवृत्तिकी प्रमुखता और अतिनिकटताका अनार्ष नियम भी अपनाया जाता है किंतु भारतीय सस्कृतिमे विवाह गुरु देव अग्नि और ऋषि-महर्षियोका आशीर्वचन प्राप्त कर उनकी प्रदक्षिणा करक शाखोच्चार, प्रतिज्ञा, सूर्य-ध्रुवदर्शन सप्तपदी-प्रदक्षिणा एव सिन्दूर-दान-सदृश अतिविशिष्ट वैदिक विधियोद्वारा जीवनपर्यन्त अटूट बन्धनके रूपमे सम्पन्न होते हैं। ऋषियोने धर्मशास्त्रोंमे आठ प्रकारके विवाह गिनाये हैं, जिनमे प्रथम चार विवाह उत्तम और पश्चात् चार विवाह अधम या निम्न स्तरके कहे गये हैं—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्ष प्राजापत्यस्तथासुर ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम ॥

(मनु० ३।२१)

(१) ब्राह्म (२) दैव (३) आर्ष (४) प्राजापत्य

(५) आसुर (६) गान्धर्व, (७) राक्षस और (८) पैशाच —ये ८ प्रकारके विवाह हैं। इनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

(१) ब्राह्म विवाह—कन्याको यथाशक्ति वस्त्रालङ्कारसे सज्जितकर विद्यासम्पन्न और शीलवान् वरको घरपर बुलाकर वैदिक विधिपूर्वक कन्यादान करना 'ब्राह्म विवाह' है।

(२) दैव विवाह—ज्योतिष्टोमादि यज्ञमें कर्मकर्ता ऋत्विक्‌को अलङ्कारादिसे विभूषिता कन्याका दान 'दैव विवाह' है।

(३) आर्ष विवाह—यज्ञादि धर्मकार्योंके लिये एक या दो जोड़ी गाय अथवा बैल लेकर ऋत्विक्‌को कन्यादान करना 'आर्ष विवाह' है।

(४) प्राजापत्य विवाह—'तुम दोनों मिलकर गृहस्थ-धर्मका पालन करो'—इस प्रकार कहकर कन्यार्थी वरको शास्त्रविधिसे कन्यादान करना 'प्राजापत्य विवाह' है।

(५) आसुर विवाह—कन्या या उसके कुटुम्बियोंको धन-सम्पत्ति देकर कन्याका क्रय करना 'आसुर विवाह' है।

(६) गान्धर्व विवाह—वर और कन्याके पारस्परिक प्रेम और शर्त (शपथ)-पर जो विवाह सम्पन्न होता है, उसे 'गान्धर्व विवाह' कहते हैं। स्वयंवर-प्रथा इसीके अन्तर्गत है।

(७) राक्षस विवाह—कन्याका बलपूर्वक हरण कर विवाह करना 'राक्षस विवाह' है।

(८) पैशाच विवाह—निद्रिता, मद्यपानसे विह्वला या किसी अन्य प्रकारसे उन्मत्ता-प्रमत्ता कुमारीके साथ एकान्तमें सम्बन्धद्वारा किया गया विवाह 'पैशाच विवाह' है।

मनुजीने कहा है—

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत्॥

(मनु० ३।४२)

अर्थात् अनिन्दित (प्रशस्त) स्त्री-विवाहसे अनिन्दित (उत्तम) संतान और निन्दित (कलङ्कित) विवाहसे कलङ्कित संतानें ही उत्पन्न होंगी। अतएव निन्दित विवाहोंका परित्याग करना चाहिये।

(१३) अग्न्याधान—इस संस्कारमें द्विजदम्पती सायं-प्रातः श्रौताग्निमें हवनकर अग्निदेवका पूजन करते हैं। भगवान् मनुने कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥

(मनु० ३।७६)

अर्थात् अग्निमें दी हुई सविधि आहुति सूर्यदेवको प्राप्त होती है और उनसे वृष्टि, वृष्टिसे अन्न तथा अन्नसे प्रजाकी उत्पत्ति होती है। यज्ञ-हवनादि कर्मसे प्रसन्न हुए इष्ट देवता यजमान गृहस्थको अभिलषित पदार्थोंकी पूर्ति करते हैं—जैसा गीता (३।१२)-में कहा गया है—'**इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।**' इन्हीं अनेक कारणवश गृहस्थाश्रमीको 'अग्न्याधान-संस्कार' द्वारा अग्निदेवसे बल, तेज एवं दीर्घ आयु प्राप्त करनेका विधान है।

(१४) दीक्षा—गुरुद्वारा गृहस्थाश्रमी शिष्यको किसी शुभ मुहूर्तमें इष्ट देवताके पूजन, ध्यान एवं जपका सविधि उपदेश देनेको 'दीक्षा-संस्कार' की संज्ञा दी जाती है।

(१५) महाव्रत—पंद्रहवें संस्कारका नाम महाव्रत है। गुरुदीक्षाके पश्चात् वानप्रस्थके नियम-संयमोंका पालन करनेहेतु धारण किया जानेवाला सङ्कल्पपूर्वक किया गया व्रतादि अनुष्ठानविशेष 'महाव्रत-संस्कार' कहा जाता है।

(१६) संन्यास—ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमोंके धर्मोंका अनुपालन कर द्विजके लिये चतुर्थाश्रम—संन्यास धारण करनेकी विधि है। संन्यास आश्रमके पृथक् धर्म हैं, जिनका अनुपालन उसके लिये आवश्यक होता है। ऐसे क्षीणकल्मष मुमुक्षुके लिये विधि-निषेधका प्रपञ्च बाधक नहीं, बाह्य पूजोपचारकी अनिवार्यता नहीं। गृहस्थ-वानप्रस्थाश्रमोंके शिखा-सूत्रादि ज्ञानके समस्त बाह्य साधन उनके लिये गौण हो जाते हैं। ऐसे ब्रह्मीभूत आत्मज्ञानी सर्वत्र सभीमें प्रभुसत्ताका दर्शन करते हैं—वे कर्मफलकी समस्त वासनाएँ भूल कर विश्वप्राणियोंके कल्याणमें संलग्न हो जाते हैं और फिर कुटीचक, बहूदक एवं हंसकी श्रेणियाँ क्रमशः पार करते हुए जीवन्मुक्त 'परमहंस' की कोटिमें पहुँचे संन्यासी ब्रह्मकी निर्मल ज्योतिमें अपना पृथक् अस्तित्व विलीन कर देते हैं।

इस प्रकार हमारे संस्कार हमें मानवकी कोटिसे बहुत ऊँचाईपर ले जाकर देवत्व और फिर ईश्वरत्वकी उच्चकोटितक पहुँचानेमें समर्थ हैं।

~~○~~

आख्यान—

दूसरोंका अमङ्गल चाहनेमे अपना अमङ्गल पहले होता है

'देवराज इन्द्र तथा देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि दधीचिने देह-त्याग किया। उनकी अस्थियाँ लेकर विश्वकर्माने वज्र बनाया। उसी वज्रसे अजयप्राय वृत्रासुरको इन्द्रने मारा और स्वर्गपर पुनः अधिकार किया।' ये सब बातें अपनी माता सुवर्चासे बालक पिप्पलादने सुनीं। अपने पिता दधीचिके घातक देवताओंपर उन्हें बड़ा क्रोध आया। 'स्वार्थवश ये देवता मेरे तपस्वी पितासे उनकी हड्डियाँ माँगनेमें भी लज्जित नहीं हुए!' पिप्पलादने सभी देवताओंको नष्ट कर देनेका सङ्कल्प करके तपस्या प्रारम्भ कर दी।

पवित्र नदी गोतमीके किनारे बैठकर तपस्या करते हुए पिप्पलादको दीर्घकाल बीत गया। अन्तमें भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने पिप्पलादको दर्शन देकर कहा—'बेटा! वर माँगो।'

पिप्पलाद बोले—'प्रलयङ्कर प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपना तृतीय नेत्र खोलें और स्वार्थी देवताओंको भस्म कर दें।'

भगवान् आशुतोषने समझाया—'पुत्र! मेरे रुद्ररूपका तेज तुम सहन नहीं कर सकते थे, इसीलिये मैं तुम्हारे सम्मुख सौम्यरूपमें प्रकट हुआ। मेरे तृतीय नेत्रके तेजका आह्वान मत करो। उससे सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जायगा।'

पिप्पलादने कहा—'प्रभो! देवताओं और उनके द्वारा सञ्चालित इस विश्वपर मुझे तनिक भी मोह नहीं। आप देवताओंको भस्म कर दें, भले विश्व भी उनके साथ भस्म हो जाय।'

परमोदार मङ्गलमय आशुतोष हँसे। उन्होंने कहा—'तुम्हें एक अवसर और मिल रहा है। तुम अपने अन्तःकरणमें मेरे रुद्ररूपका दर्शन करो।'

पिप्पलादने हृदयमें कपालमाली, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् रुद्रका दर्शन किया। उस ज्वालामय प्रचण्ड स्वरूपके हृदयमें प्रादुर्भाव होते ही पिप्पलादको लगा कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है। उनका पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा। उन्हें लगा कि वे कुछ ही क्षणोंमें चेतनाहीन हो जायँगे। आर्तस्वरमें उन्होंने फिर भगवान् शङ्करको पुकारा। हृदयकी प्रचण्ड मूर्ति अदृश्य हो गयी। शशाङ्कशेखर प्रभु मुसकराते हुए सम्मुख खड़े थे।

'मैंने देवताओंको भस्म करनेकी प्रार्थना की थी, आपने मुझे ही भस्म करना प्रारम्भ किया।' पिप्पलाद उलाहनेके स्वरमें बोले।

शङ्करजीने स्नेहपूर्वक समझाया—'विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहींसे प्रारम्भ होता है, जहाँ उसका आह्वान किया गया हो। तुम्हारे हाथके देवता इन्द्र हैं, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, मनके चन्द्रमा। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय तथा अङ्गके अधिदेवता हैं। उन अधिदेवताओंको नष्ट करनेसे शरीर कैसे रहेगा। बेटा! इसे समझो कि दूसरोंका अमङ्गल चाहनेपर पहले अपना ही अमङ्गल होता है। तुम्हारे पिता महर्षि दधीचिने दूसरोंके कल्याणके लिये अपनी हड्डियाँतक दे दीं। उनके त्यागने उन्हें अमर कर दिया। वे दिव्यधाममें अनन्त कालतक निवास करेंगे। तुम उनके पुत्र हो। तुम्हें अपने पिताके गौरवके अनुरूप सबके मङ्गलका चिन्तन करना चाहिये।'

पिप्पलादने भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें मस्तक झुका दिया।

संस्कारका अर्थ एवं उसकी उपादेयता

(डॉ० श्रीजितेन्द्रकुमारजी)

'संस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे भाव और करणमें 'घञ्' प्रत्यय करके भूषण अर्थमें 'सुट्' का आगम करनेपर सम्पन्न होता है। मण्डित, भूषित, अलंकृत करनेके लिये अथवा सुन्दर, व्यवस्थित गुणवान् एवं सुदृढ बनानेके लिये या सजाने और सँवारनेके लिये अथवा दोषोंको दूर करके गुणोंका आधान करनेके लिये किया जानेवाला कर्म, क्रिया, विधि पद्धति सरणि या कार्य संस्कार कहलाता है। आचार्य चरक कहते हैं—'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते' (चरकसंहिता, विमान० १।२७) अर्थात् दुर्गुणों दोषोंका परिहार तथा गुणोंका परिवर्तन करके भिन्न एवं नये गुणोंका आधान करनेका नाम संस्कार है। निर्गुणको सगुण बनाना विकारों एवं अशुद्धियोंका निवारण करना तथा मूल्यवान् गुणोंको सम्प्रेषित अथवा संक्रमित करना संस्कारोंका कार्य है। निम्न उदाहरणसे यह बात समझी जा सकती है—

जंगलमें एक शुष्क वृक्षका ठूँठ निर्जीव खड़ा रहता है। लकड़हारा उसको काट लाता है और उसे बढ़ईको सस्ते मूल्यमें बेच देता है। बढ़ई उसको काटता है छीलता है तराशता है और उसके समस्त दोषों एवं गाँठोंको दूर करके अपने उपादानोंसे उसमें गुणोंको सँजोता है, उसे संस्कार देता है उसकी गुणवत्ता बढ़ाता है, उसको प्रयोगके योग्य बनाता है उसकी उपादेयता एवं आवश्यकताको सिद्ध करता है तथा उसका मूल्य बढ़ाता है। कुछ दिन पूर्व जो निर्जीव-सा पड़ा था अब वह जीवन्त हो उठता है सजीव लगने लगता है उसमें मानो प्राणोंका संचार होने लगता है। ऐसे ही संस्कारित वस्तु आकर्षक और ग्राहक लगने लगती है। संस्कृत करनेकी यह क्रिया ही संस्कार नामसे जानी जाती है। किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तुके अवगुणों और अशुद्धियोंको अपास्त करके उसमें गुणोंका सम्प्रेषण या संक्रमण करना उसकी उपयोगिता और मूल्यका संवर्धन करना संस्कार कहा जाता है।

लोहा ताँबा चाँदी सोना आदि सभी धातुएँ यहाँतक कि पत्थर भी खदानमेंसे लानेपर तुरंत प्रयोग करनेयोग्य नहीं होते किंतु जब वे ही पाषाण तथा धातु शिल्पीके पास आते हैं तो वह उन्हें काटकर छीलकर, तराशकर, अग्निमें तपाकर सुन्दर सुयोग्य, चमकदार तथा आकर्षक मूर्ति अथवा आभूषण बना देता है, तब वे उपादेय हो जाते हैं, मूल्यवान् और अमूल्य हो जाते हैं। संस्कारित हो जानेसे उनकी गुणवत्ता बढ़ जाती है। जब यही अर्थ मानवके साथ प्रयुक्त होता है तो मानव संस्कारोंसे गुणवान्, मूल्यवान् एवं उपयोगी बन जाता है।

व्यष्टिमें जो कार्य संस्कारका है, समाजमें वही कार्य संस्कृतिका है। संस्कार व्यष्टिको सुधारते हैं तो संस्कृति समष्टिको सुधारती है। पशुसे मानव बनानेका कार्य संस्कार करते हैं और समूहसे समाजमें परिवर्तित करनेका कार्य संस्कृति करती है। संस्कृति समष्टिमें परिष्कार करती है तथा संस्कार व्यष्टिमें। बिना व्यष्टिके समष्टि सम्भव नहीं इसलिये संस्कारोंके अभावमें संस्कृतिका स्थान और आधार भी कुछ नहीं हो सकता। अतः संस्कृतिको जीवित रखनेके लिये संस्कारोंकी अपरिहार्यरूपसे आवश्यकता है। संस्कार संस्कृतिके आधारभूत केन्द्र अथवा उद्गम-स्थल या मूलस्रोत अथवा उत्स हैं। दार्शनिक भाषामें इनका सम्बन्ध अन्वय और व्यतिरेकका सम्बन्ध है जिसके होनेपर जो हो वह अन्वय और जिसके न रहनेपर जो न रहे, वह व्यतिरेकीभाव-सम्बन्ध कहलाता है। संस्कारोंके रहनेपर संस्कृति रहेगी और संस्कारोंके न रहनेपर संस्कृति भी नहीं रहेगी यह सुनिश्चित तथ्यगत सत्य है। अतः संस्कार नींवके पत्थर हैं जिनकी आधारशिलापर संस्कृतिका विशाल भवन खड़ा किया जाता है। संस्कृतिका अस्तित्व संस्कारोंसे अनुप्राणित है।

मीमांसादर्शनके (३।१।३) सूत्रकी व्याख्यामें शबर स्वामीने 'संस्कार' शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—'संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य' अर्थात् संस्कार वह है जिसके होनेसे कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्यके योग्य हो जाता

है। तन्त्रवार्तिकके अनुसार '**योग्यता चादधाना क्रिया संस्कारा इत्युच्यन्ते**' अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ तथा रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं। वह योग्यता दो प्रकारकी होती है—१-पापमोचनसे उत्पन्न योग्यता तथा २-नवीन गुणोंसे उत्पन्न योग्यता। संस्कारोंसे नवीन गुणोंकी प्राप्ति तथा तप एवं संस्कारोंसे पापोंका मार्जन और परिष्कार होता है।

वीरमित्रोदयमें संस्कारकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है—'यह एक विलक्षण योग्यता है, जो शास्त्रविहित क्रियाओंके करनेसे उत्पन्न होती है। वह योग्यता दो प्रकारकी है—१-जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य क्रियाओंके योग्य हो जाता है। यथा—उपनयन-संस्कारसे वेदारम्भ होता है तथा २-दोषसे मुक्त हो जाता है। यथा—जातकर्म-संस्कारसे वीर्य एवं गर्भाशयका दोषमोचन होता है।'

मनुष्य माताके गर्भसे शिशुके रूपमें जब जन्म लेता है, तब वह अपने साथ दो प्रकारके संस्कारोंको लेकर आता है। एक प्रकारके संस्कार वे हैं, जो वह जन्म-जन्मान्तरोंसे अपने साथ लेकर आता है और दूसरे प्रकारके संस्कार वे हैं, जिन्हें वह अपने माता-पितासे संस्कारोंके रूपमें वंशानुक्रमसे प्राप्त करता है। ये संस्कार अच्छे और बुरे—दोनों हो सकते हैं। वैदिक विचारधारामें मनुष्य-जन्मका उद्देश्य शुभ संस्कारोंद्वारा अन्तः एवं बाह्य—दोनों प्रकारके मैलोंको धोना है, उसे निखारते जाना है। पिछला मैल कैसे धोया जाय और नया रंग कैसे चढ़ाया जाय—यह सब-कुछ इस जन्मके संस्कारोंद्वारा हो सकता है। इस जन्ममें शरीरके साथ सम्बद्ध होकर ही तो आत्मा पकड़में आती है। जिस समय जिस क्षण आत्मा शरीरके बन्धनको प्राप्त हुई उसी समयसे उसी क्षणसे वैदिक विचारधारा उसपर उत्तम संस्कार डालना शुरू कर देती है और उस क्षणतक डालती रहती है जबतक 'आत्मतत्त्व' शरीरका छोड़कर फिर तिरोहित नहीं हो जाता। यदि शुभ-संस्कारोंकी व्यवस्था नहीं होगी तो अशुभ-संस्कार तो स्वतः पड़नेकी प्रतीक्षाभर कर रहे होते हैं। जैसे ही व्यक्ति शिथिल हुआ वे अशुभ-संस्कार अपना प्रभाव और प्रताप दिखाने लगते हैं। अतः हमारे ऋषियों और मुनियोंद्वारा जीवनके बीजवपन और अंकुरणसे लेकर मृत्युपर्यन्त अर्थात् गर्भाधान-संस्कारसे अन्त्येष्टि-संस्कारतककी व्यवस्था सुनिश्चित की गयी है। मानव-धर्मशास्त्रके प्रवर्तक महर्षि मनुने लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥

(मनु० २।१६)

मनुष्योंके शरीर और आत्माको उन्नत करनेके लिये मन्त्रोच्चारणपूर्वक यथाविधि निषेकसे लेकर श्मशान अर्थात् गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त जिसके संस्कार होते हैं, वही शास्त्रका अधिकारी होता है।

वस्तुतः बालकके निर्माणकी प्रक्रिया गर्भाधानसे प्रारम्भ हो जाती है। जैसे—मकान बनानेसे पहले उसकी योजना बनाकर उसके लिये अपेक्षित उत्तम प्रकारकी सामग्रीका होना नितान्त आवश्यक है, वैसे ही-उत्तम संतान प्राप्त करनेके लिये उसके उपादान रज-वीर्यका उत्तम कोटिका होना नितान्त आवश्यक है। चरकसंहितामें उक्त बातको निम्न प्रकारसे व्यक्त किया गया है—

'**यथा हि बीजमनुपतप्तमुप्तं स्वां स्वां प्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्रीपुरुषावपि यथोक्तं हेतुविभागमनुविधीयेते॥**' (शारीरस्थान ८।२०)

अर्थात् जिस प्रकारका अच्छा या बुरा बीज बोया जायगा फल भी वैसा ही होगा। जैसे व्रीहिको बोनेसे व्रीहि और जौको बोनेसे जौ उत्पन्न होता है, वैसे ही स्त्री-पुरुषका रज-वीर्य जैसा होगा, वैसी ही शुभाशुभ संतान होगी।

गर्भाधान-संस्कार बालक नहीं, अपितु सुयोग्य बालक बनानेका संस्कार है। इसलिये इस संस्कारमें धर्मका भाव यथावत् आवश्यकरूपसे बना रहना चाहिये। गर्भाधानकी क्रियाके समय माता-पिताकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति जैसी शुद्ध और पवित्र होगी बालकका शरीर और मन भी वैसा ही बनेगा। अतः गर्भाधानके समय माता-पिताके मनका स्वस्थ एवं धर्मान्वित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसीको लक्ष्य कर सुश्रुतसंहितामें लिखा गया है—

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभि समन्वितौ।
स्त्रीपुसौ समुपेयाता तयो पुत्रोऽपि तादृश ॥

(शारीरस्थान २।४६)

अर्थात् स्त्री-पुरुष जैसे आहार-विहार और चेष्टा आदिसे युक्त हाकर परस्पर समागम करते हैं, सतान भी वैसी ही होती है। इसलिय स्त्री-पुरुषको सतानोत्पत्तिके लिये गर्भाधानम सर्वथा निर्दोष हो प्रवृत्त होना चाहिये।

गर्भाधान एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एव सूक्ष्म प्रभावोत्पादक सस्कार है। इतिहासमे आता ह कि अपने समान गुणयुक्त सतान उत्पन्न करनेके लिये सपत्नीक श्रीकृष्णने बदरिकाश्रमम बारह वर्षतक तप किया था—

'व्रत चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।'

(महा० अनु० १३९।१०)

इस तपके कारण उन्हे प्रद्युम्न-जैसा पुत्र प्राप्त हुआ जो दूसरे श्रीकृष्णके समान ही था।

अभिमन्युको गर्भावस्थाम ही चक्रव्यूह तोडनेका ज्ञान पिता अर्जुनद्वारा गर्भस्थ माताको सुनाते हुए प्राप्त होनेकी कथा प्रसिद्ध है और चक्रव्यूहसे बाहर निकलनेकी बात सुनते हुए माताके सो जानेके कारण अभिमन्युको इसका ज्ञान नहीं हा सका तथा वही अभिमन्युकी मृत्युका कारण भी बना।

इससे स्पष्ट है कि अपेक्षित गुणोसे युक्त सतान उत्पन्न करना माता-पिताके उत्तम भावापर निर्भर है।

महाकवि कालिदास रघुवशमे राजा रघुके अनेक गुणाका वर्णन करते हुए सबसे प्रथम—जन्मकी शुद्धिको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानकर कहते हे—'**सोऽहमाजन्मशुद्धानाम्**' जो जन्मसे जीवनपर्यन्त शुद्ध और पवित्र हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ। जन्मशुद्धि क्या है? गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन-प्रभृति शिष्ट क्रियाआ-प्रक्रियाओसे उत्पन्न सस्कार ही जन्मशुद्धिके कारक तत्त्व हैं। इनके अभावम जन्मशुद्धि पूर्ण नहीं होती। जन्मपूर्वक सस्कारविशेषके द्वारा समुद्भूत शुद्धि ही यहाँ कालिदासको विवक्षित है। उद्भवके पश्चात् परिवेशजन्य एव परिवारद्वारा प्रदान किये जानेवाले सस्कार भी शुद्धिको सम्पादित करनेमे अथवा अलकृत करनेम समर्थ होते हैं।

इस प्रकार जन्मसे पुनीत पुत्र '**पुनातीति पुत्र**' पवित्र करनेवाला होनेक कारण पुत्र ह—इस प्रकारकी व्युत्पत्ति तथा '**पुम्**' नामक नरकस त्राण करानेवाला होनके कारण पुत्र है—ऐसा निर्वचन प्राप्त होता है। इसलिये सभी गृहस्थजनाको जन्मशुद्धिकी आशास उत्तम सतानके लिये प्रयत्न करना चाहिये और स्वय माता-पिताको भी जन्मसे शुद्ध होना चाहिये। इसी बातका दूसरे शब्दाम महान् दार्शनिक प्लेटोने अभिव्यक्त किया है—'यदि किसी बच्चेको सुधारना चाहते हो ता उसक दादाका सुधारा।' तभी उत्पन्न होनेवाली सतान आजन्म शुद्ध, वशप्रतिष्ठाको बढानेवाली तथा दायित्वनिर्वहणम दक्ष हा सकती है। इस प्रकार जन्मशुद्धिकी अपेक्षा रखनवाले जागरूक लोगाको कुलकी स्त्रियोकी भी दख-भाल और रक्षा बडे प्रयत्नसे करनी चाहिये, तभी सभी प्रकारसे सरक्षित, पालित-पोषित कुलकी स्त्रियाँ शुद्ध होकर पतिका अनुगमन करती हुई भावदोष एव स्पर्शदोषके नितान्त अभावसे सर्वथा पिताके समान ही पुत्रको उत्पन्न करनेमे सफल होती है—

रूप तदोजस्वि तदेव वीर्यं
तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम्।
न कारणात्स्वाद्बिभिदे कुमार
प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्॥

(रघुवश ५।३७)

अर्थात् जैस एक दीपकसे जलाये जानेपर दूसरे दीपकामे भी ठीक वैसी ही लौ और ज्योति होती है, वैसे ही अज भी रूप गुण और बल—सभी बातोम रघु-जेसे ही थे वे किसी भी बातम कम नहीं थे।

वैदिक साहित्यम विवाहका उद्देश्य उत्तम पुत्र-प्राप्तिको स्वीकार किया गया है न कि भोग-विलासको। तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीके ग्यारहव अनुवाकम आचार्य वद पढाकर अन्तेवासीको उपदेश करते है कि आचार्यके लिये प्रिय धनको प्राप्त करके प्रजासूत्रका व्यवच्छेदन न कर—'**वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छेत्सी।**'

मनुष्यके उत्पन्न होनेमात्रसे कुलका कोई उपकार

नहीं होता। सर्वप्रथम उसे ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याका भलीभाँति अभ्यास करना चाहिये। तब आचार्यसे अनुज्ञा लेकर यौवनकालमे युवती पत्नीका सतानके लिय वरण करना चाहिय। फिर सतान प्राप्तकर पितृ-ऋणसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। तदनन्तर वानप्रस्थधर्मका पालन करके, अन्तमे योगका आश्रय ग्रहण कर शरीरका त्यागकर माक्षरूप चतुर्थ पुरुषार्थको सिद्ध करना चाहिये। पिताके ऋणको पुत्रकी जन्मशुद्धिसे उतारकर मनको मोक्षम लगाना चाहिये। तीनो ऋणोको चुकानेके लिये ही तीन उपाय बताये गये हैं। अध्ययनसे ऋषि-ऋण, यज्ञसे देव-ऋण और सतानोत्पत्तिसे पितृ-ऋण चुकाया जा सकता है। इन तीनो ऋणोसे छूटते हुए मोक्षलक्ष्यकी आराधना—साधना करनी चाहिये।

निष्कर्षरूपमें यह तथ्य सामने आता है कि सस्कारके बिना जीवनम गुणोकी अभिवृद्धि, मूल्योका सवर्धन, जीवनकी उपयोगिता मनुष्यत्वका बोध, परार्थका भाव तथा धर्म, अर्थ, काम एव मोक्षकी साधनाको सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस लक्ष्यकी सिद्धिम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधक तत्त्व यदि कोई है, ता वह है—गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सोलह सस्कारोंका विधिवत् सम्पादन। मनुष्यका स्वभाव बहुधा तात्कालिक सुखको तिलाञ्जलि देकर स्थायी सुख प्राप्त करनेम दिखायी देता है, परतु अज्ञानतावश, स्वार्थवश एव इन्द्रियजन्य दुर्वलतावश और सङ्कल्पशक्तिकी हीनतावश वह तत्काल प्राप्त होनेवाले परिणाम या सुखपर केन्द्रित होता हुआ दु खके समुद्रमें डूब जाता है। इससे निकलनेका और इसमे न फँसनेका एकमात्र उपाय सस्कारसम्पन्नता ही है। य सस्कार मनुष्यको मनुष्य बनाते हैं, दु ख-दारिद्र्यका हरण करते हैं, चित्तकी शुद्धि करते हैं, मनकी मलिनता धोत हैं और 'मोक्ष' तक पहुँचानेमे सहायक हाते हैं।

~~~०~~~

सस्कारतत्त्व-विमर्श

(श्रीशशिनाथजी झा, वेदाचार्य)

'सस्कार' शब्दकी सिद्धि '**सम्**' उपसर्गपूर्वक '**कृञ्**' धातुम '**घञ्**' प्रत्यय लगनेसे हुई है। इसका प्रयोग शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुशीलन, सस्करण, सस्मरण, प्रत्यास्मरण, परिष्करण आभूषण शोभा सस्कृति, स्वरूप स्वभाव, सौजन्य प्रभाव छाप शुद्धिक्रिया, अभिषेक, धार्मिक अनुष्ठान विचार, भावना धारणा कार्यका परिणाम तथा क्रियाकी विशेषता आदि विभिन्न अर्थोंम होता है।

मीमासादर्शन सस्कारका आशय यज्ञीय पुरोडाश आदिकी सविधि शुद्धि मानता है—'**प्रोक्षणादिजन्यसस्कारो यज्ञाङ्ग-पुरोडाशेषु।**' अद्वैतवेदान्तके अनुसार जीवपर शारीरिक क्रियाओका मिथ्या आरोप सस्कार है—'**स्नानाचमनादि-जन्या सस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते।**' न्यायदर्शनके अनुसार भावाको व्यक्त करनेकी आत्मव्यञ्जक शक्ति 'सस्कार' है। वीरमित्रोदय-सस्कारप्रकाशके अनुसार सस्कारकी परिभाषा है—'**आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष सस्कार**'। सस्कारका अर्थ होता है—परिशुद्धि या सफाई। पाँच कर्मेन्द्रिया और पाँच ज्ञानेन्द्रियोसहित शरीरतत्त्व और मनस्तत्त्वके साथ जीवात्म-तत्त्वकी परिशुद्धि जिस क्रियाकलापसे सम्पन्न हो, उस सस्कार कहते हैं।

यद्यपि सस्कृति और सस्कार पर्यायवाचक शब्द हैं फिर भी दोना भिन्नार्थक हैं। अभ्युदयमूलक उत्तम कर्म ही सस्कृति है और सत्-असत्कर्ममूलक उत्पन्न मनोवृत्ति या आत्मवृत्ति सस्कार है। जैसे सस्कारक द्रव्यके द्वारा हीरा मणि आदिमे चमक या शोभा पैदा की जाती है, उसी तरह सत्-सस्कारके द्वारा अन्तरात्मामे शोभा या अन्तस्तेज अभिव्यक्त किया जाता है।

दर्शनशास्त्रके अनुसार सस्काररूपी बीजके अनुरूप कर्मरूपी वृक्ष उत्पन्न होते हैं और तदनुरूप फल भी देते हैं। वे फल आनन्दमय एव दु खमय—दोना प्रकारके होते हैं। हमारे पूर्वसस्कार जैसे-जैसे हागे, वैसे-वैसे ही हमारे कर्म भी बनगे। सत्-सस्कारका फल है सत्कर्म और
~~~

असत्-संस्कारका फल है असत्कर्म।

योगियोंकी दृष्टिमें केवल मानस सङ्कल्प, विचार आदिसे ही नहीं, अपितु देह, इन्द्रिय आदिकी सभी चेष्टाओं या व्यापारसे संस्कार उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टिसे सम्यक् या असम्यक्—सभी प्रकारके कर्मोंसे संस्कार उत्पन्न होते हैं। इस प्रकारके विचारसे अर्थात् योगमतमें कर्म ही संस्कारके जनक होते हैं और अन्य दर्शनोंके मतमें कर्मके जनक संस्कार होते हैं। दोनों मत बीज-वृक्षन्यायसे सत्य हैं।

संस्कारका अर्थ धार्मिक अनुष्ठान भी होता है, जिसे हम यज्ञ भी कहते हैं। कालिकापुराणके अनुसार यह सम्पूर्ण संसार यज्ञमय है—'सर्वं यज्ञमयं जगत्।' इस यज्ञमय जगत्में होनेवाले समस्त कर्म यज्ञमय हैं, जो सदा-सर्वदा सनातनरूपसे यत्र-तत्र-सर्वत्र होते रहते हैं, जैसे—सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देवपूजा, अतिथि-सत्कार, व्रत, जप, तप, स्वाध्याय, खान-पान, शयन, जागरण आदि नित्यकर्म तथा उपनयन, विवाह आदि नैमित्तिक कर्म एवं पुत्रेष्टि, राज्यप्राप्ति आदि काम्य कर्म—ये सभी व्यवहार यज्ञस्वरूप ही हैं। अतः उन सभी यज्ञों (संस्कारों)-का अनुष्ठान सविधि और सनियम करना चाहिये, जिससे वे मानवमात्रके लिये कल्याणकारी बनें। जो लोग यज्ञों (संस्कारों)-के प्रति श्रद्धा नहीं रखते, वे अनेक अनर्थोंके शिकार होते हैं।

इस संसारमें मनुष्यमात्रकी हार्दिक इच्छा होती है कि जीवनभर सुखी रहूँ और मरनेके बाद भी स्वर्गापवर्गकी प्राप्ति हो, किंतु कोई भी पूर्वपुण्य-प्रभावके बिना ऐहलौकिक और पारलौकिक सुखविशेषकी प्राप्ति कथमपि नहीं कर सकता। वह पुण्य धर्म ही है, जिसे संस्कारसे युक्त व्यक्ति सत्कर्मानुष्ठानके द्वारा प्राप्त करता है। [illegible] अनेक प्रकारके कुत्सित कर्मोंसे मलिन हो [illegible] निर्मल बनानेके लिये सत्कर्मोंका किया [illegible] है। सत्कर्म कराना ही वैदिक कर्मका [illegible]

प्राचीन भारतमें व्यक्तिका [illegible] संस्कारोंसे संस्कृत होता रहता था। [illegible] वेदसे ही सुनायी देती है। [illegible] अपने-आपमें सर्वमान्य एवं [illegible]

हमारे देशके विशाल भू-भाग, विविध भाषाएँ [illegible] तथा बहुविध जातियोंकी आचार-प्रथाएँ रही हैं [illegible] संस्कारोंका निरूपण 'संस्कार' के नामसे [illegible] यज्ञनामसे हुआ है। वहाँ संस्कार शब्द [illegible] भू-संस्कार' आदिके रूपमें है, [illegible] भूमिका मार्जन, अभिषिञ्चन आदि [illegible]

आचार्य पारस्करने संस्कारोंका [illegible] किया है, जिनकी चार श्रेणियाँ हैं—[illegible] और प्राशित। हुतके अन्तर्गत [illegible] संस्कार सम्मिलित हैं। [illegible] अहुतमें अन्तर्भूत हैं। [illegible] समावेश प्रहुतमें है [illegible] होता है, होम [illegible] प्राशित कहलाते हैं।

परलोकमे कल्याणकी इच्छा रखनेवाले विप्रादि वर्णोको अपने-अपने वर्णके अनुसार अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सस्कारकर्म सम्पादित करने चाहिये—

सस्कारेण विना देवि देहशुद्धिर्न जायते।
नासस्कृतोऽधिकारी स्याद्दैवे पैत्र्ये च कर्मणि॥
अतो विप्रादिभिर्वर्णै स्वस्ववर्णोक्तसस्क्रिया।
कर्तव्या सर्वथा यत्नैरिहामुत्र हितेप्सुभि ॥

सस्कारासे सम्बद्ध मन्त्रा, कृत्या एव परम्पराआका विवेचन करनेपर विद्वद्वरेण्याको उनम निमलिखित उद्देश्य प्रतीत हुए हैं—

१-प्रतिकूल प्रभावाकी परिसमाप्ति।

२-अभिलपित प्रभावाका आकृष्ट करना।

३-शक्ति, समृद्धि बुद्धि आदिकी प्राप्ति।

४-जीवनम होनेवाले सुख-दु खकी इच्छाआको व्यक्त करना।

५-गर्भ तथा बीजसम्बन्धी दोपाको दूर करना।

६-धार्मिक विशेपाधिकार प्राप्त करना, जैसे—उपनयन-सस्कारसे वेदाध्ययन एव धार्मिक कृत्याके अनुष्ठानका अधिकार प्राप्त होता है।

७-पुरुपार्थचतुष्टयकी प्राप्ति।

आचार्य शङ्खके अनुसार सस्कारासे सस्कृत तथा अष्ट गुणासे युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक पहुँचकर ब्राह्मपदको प्राप्त करता है और फिर वह कभी च्युत नहीं होता—

सस्कारै सस्कृत पूर्वैरुत्तरैरनुसस्कृत ।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्राह्मलौकिक ॥
ब्राह्म पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुन ।

८-चारित्रिक विकास।

९-व्यक्तित्व-निर्माण।

१०-समस्त शारीरिक क्रियाआको आध्यात्मिक लक्ष्यसे परिपूरित कराना।

त्रैवर्णिकोके मुख्य सस्कारोम सर्वप्रथम उपनयन है। उपनयन-सस्कार होनेपर ही त्रैवर्णिक बालक द्विज कहलाता है। शास्त्रोका मत है कि इस सस्कारसे बालकका विशुद्ध ज्ञानमय जन्म होता है। इस ज्ञानमय जन्मके पिता आचार्य हैं तथा माता गायत्री हैं। जिस प्रकार अच्छे बीजसे अच्छे अन्नकी उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार ज्ञानमय जन्मम अच्छे विद्वान् आचार्य रहनेपर विशुद्ध ज्ञान होता है। महर्षि आपस्तम्बने भी कहा है—'**तमसा वा एप तम प्रविशति यमविद्वानुपनयत यश्चाविद्वानिति हि ब्राह्मणम्**' (आ०ध० १।१।११) अर्थात् जिसका अविद्वान् आचार्य (गुरु)-क द्वारा उपनयन-सस्कार कराया जाता है, वह अन्धकारसे अन्धकारम ही जाता है। अतएव निरुक्तकार यास्कन आचार्य शब्दका निर्वचन करते हुए लिखा है कि '**आचार्य कस्मात्? आचार ग्राहयति आचिनोत्यर्थान् आचिनाति वुद्धिमिति वा।**'

वस्तुत वेदम वर्णित सस्कारविधिके द्वारा यदि माता-पिता अपने बच्चाको सुसस्कृत कर ता वह बालक वास्तविक मानव वन सकता है। वदविरुद्ध आचरण होनेपर मानवका मानवधर्म निभाना असम्भव है। मनुष्यकी मनुष्यता वेदानुकूल आचरण करनेम ही सिद्ध हाती है। योगवासिष्ठका यह श्लाक इस तथ्यको सम्पुष्ट करता है—

येपा गुणेष्वसन्तोपो रागो येपा श्रुत प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नरा पशवोऽपरे॥

अत '**आचारहीन न पुनन्ति वेदा**' कहनेका आशय यह है कि आचारहीन व्यक्ति न पवित्र होते हैं और न पवित्र आचरण करते हैं क्योकि '**यन्नवे भाजने लग्न सस्कारो नान्यथा भवेत्।**' बाल्यावस्थाम जो सस्कार प्राप्त होता है वह अमिट होता है परतु आजकल बालकोको गुरुकुल-आश्रमाम भी सुसस्कार मिलने धीरे-धीरे बद हो रहे हें क्योकि प्राय वहाँका वातावरण भी बिगडता जा रहा है जो अत्यन्त दु खकी बात है। आज भी यदि वेदविहित आचरण कराये जायँ तो मानवका अभ्युत्थान होना सुनिश्चित है। धन-दौलत बढानेसे मानवकी अभ्युन्नति नहीं होगी। रावणके पास सोनेकी लङ्का थी, किंतु सस्कारहीन होनेसे लङ्काका एव उसके सम्बन्धियाका विनाश हो गया। उसी परिवारमे विभीषण सुसस्कारी था अतएव उसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका सानिध्य मिला और जब परमप्रभु परमात्माका सानिध्य मिल गया तो समझिये कि जीवन कृतकृत्य हो गया तथा प्रभुका अनुग्रह प्राप्त हो गया।

प्रमुख सस्कार

(डॉ० श्रीचन्द्रपालजी शर्मा, एम०ए०, पी एच०डी०)

सस्कारसे आशय—'सम्+कृ+घञ्' के सयोगस निर्मित सस्कार शब्द मूलत 'सस्कृत' शब्दसे सम्बन्धित है। 'क्त' प्रत्यय लगनेसे सस्कृत एव 'घञ्' प्रत्यय लगनेसे सस्कार शब्द बनता है। दोनाके अर्थम भी बहुत समानता हे। दोना ही परिष्कृत, अभिमन्त्रित, पवित्रीकृत आदि अर्थोक द्यातक हैं। सस्कृत इस देशकी सास्कृतिक भापा है। अत सस्काराका भी भारतीय हिन्दूसमाजम विशेष महत्त्व है। सस्कार शब्दसे पूर्ण करना, सस्कृत करना, मन शक्ति, विचार अलकरण आदि अनक अर्थ निकलते हैं, किंतु मुख्य अर्थ है—मानवके आध्यात्मिक अभ्युदय एव वस्तुआकी शुद्धिक लिये समय-समयपर किये जानेवाले वे अनुष्ठान-विशेष जिनके करनेसे शरीर और अन्त करण शुद्ध एव पवित्र होते हैं।

सस्काराकी सख्या—भारतीय धर्मशास्त्रके प्राचीनतम एव सर्वप्रमुख ग्रन्थ मनुस्मृतिमे सस्काराका विशद वर्णन हुआ है। ये सस्कार कब-कब और किस-किस प्रकार आयोजित हा वहाँ यह भी बताया गया है। कुछ ग्रन्थाने सोलह सस्कार बताये हैं। मनुस्मृतिके कुछ भाष्यकाराने भी सोलह सस्कारोकी ही बात कही है। विविध ग्रन्थोंके आधारपर सोलह सस्कार ही समाजमे मान्य हैं, ये हैं—गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन या चूडाकर्म, उपनयन वेदारम्भ केशान्त, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ सन्यास तथा अन्त्यष्टि-सस्कार। 'हिन्दूधर्मकाश'ने वानप्रस्थ एव सन्यासको सस्कार न मानकर विद्यारम्भ तथा कर्णवेध दो अन्य सस्कार बताये हैं। आज मुख्यत नामकरण विवाह और अन्त्यष्टि-सस्कार ही प्रचलित रह गये हैं। कुछ परिवारोम अभी भी अन्नप्राशन, मुण्डन तथा उपनयनको भी सस्कारके रूपम मनाया जाता है। उत्तर प्रदेशका वेश्यसमाज कर्णवेधको **'परोजन'** नामसे बडा धूम-धामस मनाता है। शेष सस्काराका न तो समाजको ज्ञान है और न इनकी महत्ता ही उनको स्वीकार्य है, जबकि इनका शास्त्रीय और वैज्ञानिक महत्त्व है। यहाँ कुछ मुख्य सस्कारोका सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

गर्भाधान—गर्भाधान-सस्कार धार्मिक पक्षमें विवाहकी पूर्णताका व्यक्त करता है। स्त्रीका गर्भधारण प्रत्येक परिवारम सुखद एव आह्लादकारक हाता है, क्याकि नारीकी महत्ता मातृत्वम ही है। सृष्टिके विकासक्रमको बनाय रखनेवाल इस सस्कारकी पवित्रताको पुष्ट करनेकी दृष्टिसे शास्त्रने अत्यधिक सतर्कताकी अपेक्षा करते हुए निर्देश किया—**'ऋतुकाले दाराभिगमन कार्यम्।'** अर्थात् ऋतुस्नानके बाद पतिको पत्नीसे सम्बन्ध जोडना आवश्यक हे। शास्त्रने गर्भाधानके लिये आयु तथा समयका भी निश्चय किया है। सुश्रुतके अनुसार—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक्॥

पचीस वर्षका पुरुष एव सोलह वर्षकी नारी रजादर्शनकी चार रात्रियाके बाद आगेकी बारह रात्रिया (निषिद्ध समय छोडकर)-मे गर्भाधानके आशयस सम्बन्ध बनाये। धर्मग्रन्थोने गर्भाधानसे पूर्व कुछ नियमो एव पूजादिके अनुष्ठानका भी वर्णन किया है।

मनुके मतसे निषिद्ध तिथियो अर्थात् अमावास्या, पौर्णमासी, अष्टमी एव चतुर्दशी तथा रजोदर्शनके बादकी ग्यारहवीं एव तेरहवीं रात्रिको छोडकर ऋतुकालके शेष दिनामे नारीसहवास करनेवाले गृहस्थ भी ब्रह्मचारी ही कहलाते हैं—

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

पुसवन—स्त्रीमे गर्भाधानक चिह्न प्रकट होनेपर दूसरे या तीसरे मासम परिष्कारात्मक या शुद्धिकरणसम्बन्धी वह सस्कार जो पुत्रोत्पत्तिके उद्देश्यसे किया जाता है पुसवन

कहलाता ह। पारस्करगृह्यसूत्रके अनुसार—

'अथ पुसवन पुरा स्पन्दत इति मास द्वितीये तृतीय वा।'

वस्तुत यह सस्कार भ्रूणपुष्टिके लिये किया जाता है।

सीमन्तोन्नयन—गर्भिणी स्त्रीके मनको सन्तुष्ट करन शरीरके आरोग्य एव गर्भकी स्थिरता और उत्कृष्टताके निमित्त सीमन्तोन्नयन नामक तीसरा सस्कार गर्भाधानके बाद चाथे, छठे या आठव मासम किया जाता है। आश्वलायन-गृह्यसूत्रने चौथे मासकी बात कही है—

'चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्।'

इस सस्कारम पति गर्भस्थ शिशुके स्वास्थ्यकी कामना करता हुआ अपनी पत्नीके बालाको सँवारता है। सौभाग्यवती वृद्धा एव कुलीन स्त्रियाँ गर्भिणीको आशीर्वाद देती हैं। इस अवसरपर खिचडी खानेका रिवाज है।

जातकर्म—यह सस्कार शिशुके जन्मके बाद नाल काटनेसे पहलेका है। मन्त्राको पढत हुए असमान-मात्रामे मिले हुए घी तथा शहदको सोनेकी शलाकासे शिशुको चटाया जाता है। उसी शलाकासे बालककी जीभपर मधु एव घृतके मिश्रणसे 'ॐ' लिखना चाहिये तथा उसके दाय कानमे पिता 'वेदोऽसीति' (तेरा गुप्त नाम वेद) है, ऐसा कहे। इस सम्कारमे पिता नाल-छेदन करता है, शिशुको आशीर्वाद देता है, उसका सिर सूँघता हे आर कहता है कि मेरे अङ्ग-अङ्गसे तुम्हारा जन्म हुआ है हृदयसे तुम उत्पन्न हुए हो, पुत्र नामसे तुम मेरी आत्मा हो, सो वर्षतक जीवित रहो—

अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतम्॥

पिता बार-बार आशीर्वाद देता हे—पत्थरक समान दृढ हो परशुके समान शत्रुआके लिये ध्वसक बनो शुद्ध सानेके समान पवित्र रहो—

अश्मा भव, परशुर्भव, हिरण्यमस्तुत भव।'

नामकरण—नाम व्यक्तिकी पहचान है। जन्मक दसव बारहव या किसी भी शुभ दिन बालकका नामकरण-सस्कार किया जाता है। मनुजी (२।३०-म) कहत हैं—

नामधेय दशम्या तु द्वादश्या वाऽस्य कारयत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्र वा गुणान्वित॥

कुछ ग्रन्थ दसव दिन [अशौचनिवृत्तिक अनन्तर] नामकरणकी बात कहते हैं—'दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति।'

जीवनम नामका विशप महत्त्व है। अत बहुत साच-विचारकर सुन्दर सार्थक, माङ्गलिक एव प्रभावशाली नाम रखना चाहिय। धर्मशास्त्राने नामका समस्त व्यवहाराका हतु बताया है। नाम शुभका वहन करनवाला तथा भाग्यका कारण है। मनुष्य नामस ही कीर्ति प्राप्त करता है। अत नामकरणकी क्रिया बहुत महत्त्वपूर्ण है—

नामाखिलस्य व्यवहारहतु
शुभावह कर्मसु भाग्यहेतु।
नाम्नैव कीर्तिर्लभते मनुष्य-
स्तत प्रशस्त खलु नामकर्म॥

निष्क्रमण—जन्मके कुछ मासतक बालकको घरसे बाहर नहीं निकाला जाता है। अत जब जन्मसे दूसर या चाथे मासमे बालकको पहली बार सूर्यदर्शनके लिये घरसे बाहर निकालते हैं, तब उस आयाजनको निष्क्रमण-सस्कार कहते हैं—

'चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति।'

इस सस्कारके समय बालकको अपने बडाका आशीर्वाद मिला करता था—'त्व जीव शरद शतम्।' अब इस सस्कारका महत्त्व इसलिय घट गया क्याकि अधिकतर बालकाका जन्म प्राय घरके बाहर ही हाता है।

अन्नप्राशन—पाँचवसे आठवे महीनेक मध्य जब बालकको पहली बार विधिवत् अन्नयुक्त भोजन कराया जाता है तब किये जानेवाले इस धार्मिक आयोजनको अन्नप्राशन-सस्कार कहते हैं। मनु चौथे मासम निष्क्रमण तथा छठे मासम अन्नप्राशनका आदेश करते हैं—

चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोर्निष्क्रमण गृहात्।
षष्ठेऽन्नप्राशन मासि यद्वेष्ट मङ्गल कुले॥

आश्वलायन भी छठ महीनेम दहा शहद एव घीमिश्रित भाजन खिलानेकी बात कहत हैं—

'षष्ठे मासि अन्नप्राशनम्। दधिमधुघृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत्॥'

मुण्डन या चूडाकर्म—प्रथम या तृतीय वर्षमें बालकके प्रथम बार सिरके बाल उतारनेके अनुष्ठानको चूडाकर्म-संस्कार कहते है। इसे किसी देवी-देवताके स्थान या पवित्र नदियोंके तटपर सम्पन्न करनेकी परम्परा है। विभिन्न धर्मशास्त्रोंमें प्रथम या तृतीय वर्षमें मुण्डन करनेपर जोर दिया गया है। यथा—'**तृतीये वर्षे चौलम्। सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्।**'

मनु प्रथम या तृतीय वर्षमे मानते हुए इसे द्विजातियोंके लिये वेदानुकूल धार्मिक संस्कार मानते हैं—

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥

(मनु० २।३५)

कर्णवेध या कर्णछेदन—इस संस्कारमें बालकोंके कान तथा बालिकाओंके कान और नासिकाका वेधन किया जाता है। यह संस्कार तीसरे या पाँचवें वर्षमें किया जाता है—

'कर्णवेधो वर्षे तृतीये पञ्चमे वा।'

उपनयन—इसे यज्ञोपवीत-संस्कार भी कहते हैं। 'उपनयन' शब्दका अर्थ समीप ले जाना है। जब बालकको गुरुके समीप ले जाते थे तब गुरु उसका उपनयन-संस्कार करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यबालकका क्रमशः आठवें, ग्यारहवें तथा बारहवें वर्षमें यह संस्कार होना चाहिये। यह समय गर्भाधान तथा जन्म दोनोंमेसे किसीसे भी गिना जा सकता है—

'अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। एकादशे क्षत्रियम्। द्वादशे वैश्यम्।'

मनु पाँचसे चौबीस वर्षकी अवस्थातक इस संस्कारका हो जाना आवश्यक मानते हैं। तदनन्तर उसकी 'व्रात्य' संज्ञा होती है।

वेदारम्भ—गुरुके पास बैठकर वेदोंका अध्ययन प्रारम्भ करनेका कार्य ही इस संस्कारका प्रयोजन है।

केशान्त—मनुके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको क्रमशः सोलहवें, बाईसवें तथा चौबीसवें वर्षमें केशान्तकर्म अथवा क्षौर (मुण्डन) कराना चाहिये—

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥

आजकल इस संस्कारका आयोजन प्रायः नहीं दीखता है।

समावर्तन—विद्याध्ययनके उपरान्त विद्यार्थीके घर लौटनेके समय यह संस्कार आचार्यके घर अथवा गुरुकुलमें ही होता था। आजकलका दीक्षान्तसमारोह समावर्तन-संस्कारका ही अनुकरण-सा है। इसके बाद शिष्यको गृहस्थाश्रममें जानेकी अनुमति मिल जाती थी। स्नातक उपाधि-प्राप्त शिष्यका यह कर्तव्य होता था कि वह अपनी सामर्थ्यके अनुरूप गुरुदक्षिणा दे।

विवाह—पचीस वर्षकी आयु होनेके बाद गृहस्थाश्रममें जानेके लिये स्त्री एवं पुरुषके सम्बन्धोंको धार्मिक और सामाजिक वैधता प्रदान करनेवाले संस्कारको विवाह कहते हैं। विवाहोपरान्त गृहस्थधर्मका पालन करते हुए संतानोत्पत्ति करना शास्त्रीय नियम है। मानवके जीवनमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार है। भारतीय परम्परामें ब्राह्म आदि आठ प्रकारके विवाह बताये गये हैं।

अन्त्येष्टि—यह मानवका अन्तिम संस्कार है। मृत व्यक्तिकी दाहक्रियासे लेकर तेरहवें दिनतककी समस्त क्रियाएँ इसी संस्कारके अन्तर्गत आती हैं। प्रारम्भिक संस्कार जहाँ ऐहिक जीवनको पवित्र और सुखी बनानेके निमित्त किये जाते हैं वहाँ यह अन्तिम संस्कार परलोकसुधारके लिये किया जाता है।

उपसंहार—आजके व्यस्त जीवन एवं वैज्ञानिक सोचने अनेक संस्कारोंको पूर्णतः भुला दिया है। यह महान् भयकी सूचना है। नामकरण, विवाह एवं अन्त्येष्टि-जैसे कुछ संस्कार आज भी पूरी श्रद्धा तथा सामर्थ्यके अनुसार मनाये जाते हैं। संस्कारोंके आयोजनका एक निश्चित विधि-विधान है उसे जाननेके लिये जिज्ञासुओंको गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों तथा मन्वादि स्मृतियोंका अवलोकन करना चाहिये।

'सस्कार जगाओ-संस्कृति बचाओ'

(सुश्री गीताजी मूँदडा)

किसी पेडके पत्तो एव फूलाकी सफाईसे वह पेड हरा-भरा नहीं होता बल्कि उसकी जडाको पोपण मिलनेपर ही पेड वडा हागा, फूलेगा-फलेगा। एसे पल्लवित पुष्पित एव विकसित वृक्षके नीचे पथिक कुछ देर विश्राम करता है, उसके फलासे पथिकको भूख मिटती है ठीक इसी प्रकार व्यक्तिको समाजका अच्छा नागरिक बनानके लिये अगर बचपनसे ही उसके क्रिया-कलापाको सही दिशा मिल जाय तो समाजको एक अच्छा नागरिक मिलेगा।

यथा बीज तथा निष्पत्ति—बबूलका बीज बोकर आमक पेडकी आशा नहीं की जा सकती। बच्चेके अन्त करणमे रोपा गया बीज प्रस्फुटित हाकर समाजहितम काई फल देता हे तो वह उसके सस्कारी होनेका प्रतीक है। मनुष्यका आचरण उसके व्यक्तित्वकी व्याख्या करता है। सस्कार उस नींवका नाम है, जिसपर व्यक्तित्वकी इमारत खडी होती है। एक सुसस्कारित व्यक्ति अपनी अवधारणाआसे और एक गुणवान् व्यक्ति अपने चरित्रसे जाना जाता है।

सस्कारसम्पन्न सतान ही गृहस्थाश्रमकी सफलताका सच्चा लक्षण है। हर माँ-बाप चाहते हैं कि उनका सतान उनकी अपेक्षाके अनुसार बने, परतु कई बाहरी परिस्थितियाँ सास्कृतिक प्रदूषण, उपभोक्ता सस्कृति-जैसे कारण आजकी युवा पीढी एव वच्चाको अपनी गिरफ्तम लिये हुए हैं। खान-पान रहन-सहन, तौर-तहजीब, चिन्तन-मनन सभी क्षेत्रोमे पाश्चात्य सस्कृति एव सभ्यता हावी हाती जा रही है। कुसस्कारोंकी बाढम डूबनेस पहले ही हम सचेत होना पडेगा।

घर सस्कारोकी जन्मस्थली है। अत सस्कारित करनका कार्य हम अपने घरसे प्रारम्भ करना होगा। सस्काराका प्रवाह हमेशा वडास छोटाकी आर हाता है। वच्चे उपदशसे नहीं अनुकरणसे सीखत हैं। बालककी प्रथम गुरु माता अपने बालकर्म आदर स्नेह एव अनुशासन-जैस गुणाका सिञ्चन अनायास ही कर देती है। परिवाररूपी पाठशालामे बच्चा अच्छे और बुरका अन्तर समझनेका प्रयास करता है। जब इस पाठशालाक अध्यापक अथात् माता-पिता दादा-दादी सस्कारी हाग तभी वच्चाके लिय आदश उपस्थित कर सकत हैं। आजकल परिवारमें माता-पिता—दोनाकी व्यस्तताके कारण बच्चाम धैर्यपूर्वक सुसस्काराक सिञ्चन-जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य उपक्षित हो रहा है। आज अर्थकी प्रधानता वढ रही है। कदाचित् माता-पिता भौतिक सुख-साधन उपलब्ध कराकर वच्चाको सुखी और खुश रखनेकी परिकल्पना करने लगे हैं—इस भ्रान्तिमूलक तथ्यका जानना हागा, अच्छा सस्काररूपी धन ही वच्चाके पास छोडनेका मानस बनाना होगा एव इसके लिये माता-पिता स्वयको योग्य एव सुसस्कृत बनावे। उन्ह विवेकवती बुद्धिको जाग्रत् कर अध्यात्म-पथपर आरूढ होना होगा।

आजकी उद्देश्यहीन शिक्षापद्धति बालकका सही मार्ग प्रशस्त नहीं करती। शीघ्र पैसा कमानके आसान तरीके अपनाकर आजकी युवा पीढी परिश्रम एव धैर्यसे दूर हाती जा रही है। सात्त्विक प्रवृत्तियाके दमनके कारण नैतिकतासे विश्वास हटता जा रहा है। मर्यादा और अनुशासनका लोप हो रहा है। व्यक्तिका हृदय सकुचित एव नेत्र विशाल हो गये हैं। अन्त करणकी शक्तिको पहचाननेके लिये आवश्यक ज्ञानकी उपेक्षा हो रही है, सादगीका अभाव है। आधुनिक युगकी तथाकथित सस्कृति अपना जाल फैला रही है। इस चुनोतीपूर्ण वातावरणमे सुसस्काराका प्रत्यारोपण कठिन कार्य है परतु असम्भव नहीं है। आज भी हमारी भारतीय सस्कृतिम कर्तव्यपरायणता सहिष्णुता उदारता आदि मानवीय मूल्य निहित हैं। आवश्यकता है तो बस थोडेसे समन्वयकी। हमारी सस्कृति क्या है ? इसे एक छोटेसे उदाहरणसे हम समझ सकते हैं।

हम भूख लगती है हम भोजन करते हैं—यह है प्रकृति। दूसराका छीनकर खा जाते हैं—यह है विकृति। हम भोजन कर रहे हैं एक भूखा व्यक्ति आता है पहले हम उस खिलाते हैं फिर स्वय खाते हैं—यह है सस्कृति। प्रकृतिम विकार आ जानेपर सस्काराकी आवश्यकता होती है। सस्कार और सस्कृति एक ही धागकी दा गाँठ हैं। सस्कारकी पैदावार वचपनम होती है और सस्कृतिका रक्षा युवावस्थाम। जा व्यवहार अनुकरणीय एव प्रेरक हाता है वही आचार-व्यवहार-परम्परा वनकर सस्कृति कहलाती है। सस्कार मानव-जीवनका परिष्कृत करनेवाली आध्यात्मिक

और वैज्ञानिक योजना है। संस्कारोका तात्पर्य केवल पूजन, अर्चन या श्लोक कण्ठस्थ करना नहीं बल्कि बालकोमे स्वयके प्रति, परिवारके प्रति तथा समाज एव राष्ट्रक प्रति कर्तव्यकी भावना जाग्रत् करना है।

यदि सरल भाषामे समझनेका प्रयत्न करे तो व्यक्तिमे अनुशासित और सर्वजनहिताय सुन्दर जीवनप्रणालीके विकास एव दैनिक जीवनचर्याम उसके समावेशकी प्रक्रियाको ही सस्कार कहा जा सकता है। दैनिक जीवनमे नियमितता लाना, व्यवहारमे सद्गुणाका समावेश करना एव धैर्यपूर्वक हर स्थितिम धर्मयुक्त व्यवहार करना सस्कारित जीवनका द्योतक है। दुर्गुणाको हटाकर सद्गुणोका आह्वान करनेका नाम सस्कार है। शुभ सस्कार शुभ प्रवृत्ति एव शुभ रुचि अच्छे कर्मोंका फल है। जैसे भोजनसे शरीर बनता है, वैसे ही कर्मोंके फलसे सस्कार बनते हैं। हम अन्यसे अपने प्रति जैसे व्यवहारकी अपेक्षा करते हैं, वैसा ही व्यवहार हम उसके प्रति कर यह धर्म है। बालक अपने जन्मके साथ ही सस्कार लेकर आता है। सस्कारोके चार स्रोत प्रतीत होते हैं। यथा—

१-जन्म-जन्मान्तरोसे सचित सस्कार, २-वशपरम्परास एव अपने माता-पितासे प्राप्त सस्कार, ३-वातावरणस प्राप्त सस्कार तथा ४ क्रियमाण कर्मजन्य सस्कार।

ये सस्कार अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। सस्कारोपर सर्वाधिक प्रभाव वातावरणका पडता है। अच्छे सस्कार लेकर सुसस्कृत परिवारमें जनमा बच्चा भी वातावरणके प्रभावसे बिगड सकता है। उसी प्रकार वातावरण ऐसा हो जिसमे अच्छे सस्काराके पनपनेका पूर्ण अवसर हो तो बुरे सस्कार भी दूर हो सकते हैं, चाहे वे पूर्वजन्मके हो अथवा वशपरम्पराके। सत्सङ्गतिका महत्त्व हमारे शास्त्रोमे वर्णित है। भारतीय सस्कृति एव सोलह सस्कार मानवके नवनिर्माणके सतत प्रयत्नरूप हैं।

वैदिक सस्कारपद्धतिने हमे ऐसी वैज्ञानिक पद्धति प्रदान की है, जिसक द्वारा पिछले जन्मके कर्मजन्य सस्कार एव वशानुक्रमद्वारा प्राप्त सस्काराको धोकर मानवको सुसस्कारासे युक्तकर उसका नवनिर्माण किया जा सकता है। ये सोलह सस्कार जीवनको दिशा-निर्देश देते हैं। हमारी आदर्श जीवनपद्धति कैसी हो? हमारी सस्कारपद्धतिम सस्कारित एव मर्यादित जीवन जीनेकी कला निहित है। लुप्त हो रहे सस्कारोकी पुनर्स्थापनाकी आज महती आवश्यकता है। जिन कर्मोको व्यक्ति बार-बार करता है, वैसी ही उसकी आदत हो जाती है सस्कार गहरे हो जाते हैं। अच्छे कर्मोंको बार-बार करनेसे अच्छी आदते विकसित होती हैं, इसके लिये घर-परिवार एव आस-पासका वातावरण अनुकूल होना आवश्यक है।

सुसस्कारोके लिये आवश्यक है—१-सुसगति, २-सुपाठ्य पठनसामग्री—सत्साहित्य और ३-मानवीय गुणाके विकासम सहायक कलाओको सीखनेहेतु उचित मार्गदर्शन एव सहयोग। कलाक विकासस सस्कृति समृद्ध होती है, मनकी कोमल सुन्दर एव अछूती भावनाओकी अभिव्यक्ति कलाद्वारा होती है। सगीत, काव्य चित्रकला मूर्तिकला, वास्तुकला, जिसमे भी बालककी रुचि हो उस कलाके विकासम अभिभावकाको सहयोगी बनना चाहिय।

घरमे माता-पिताके ध्यान देनेयोग्य बाते— १-बडोका आचरण अनुकरणीय हो। २-दैनिक जीवन नियमित एव मर्यादित हो। ३-व्यवहारम सद्गुणाका समावेश हो, सिर्फ भौतिक सुख-सुविधा नहीं बल्कि बच्चाको चाहिये प्रेम, स्नेह, विश्वास, सकारात्मक भावना सरक्षात्मक वातावरण। ४-बच्चासे अधिक अपेक्षा न करे, बल्कि उन्हे प्रोत्साहन देते रह। ५-बच्चाके साथ पारिवारिक चर्चाएँ करे। दिनम कम-से-कम एक बार सभी एकत्र होकर एक-दूसरेसे अनौपचारिक चर्चा करें। ६-पारिवारिक कार्यक्रम शादी-विवाह, जन्मदिन आदि मनानेमे भारतीय पद्धतिको प्रोत्साहन द। ७-घरमे दादा-दादी एव नाना-नानी कहावता, कहानियो तथा सस्मरणाके माध्यमस सफलताके कई ऐस सूत्र सिखा देते हैं, जो पुस्तकाम नहीं होते। अत बडाके सानिध्यम बालक उनके अनुभवोसे लाभ ले सकत हैं।

इस प्रकार हर माता-पिताका व्रत लना होगा कि अपनी सतानाम ऐसे सस्काराका आधान करें जो उत्कृष्ट कोटिके हा। भावी पीढीको मनसा-वाचा-कर्मणा सशक्त बनानेहेतु उनम शक्ति भक्ति और युक्तिका सगम कराना है। प्रत्यक व्यक्ति अपना आँगन स्वच्छ रखना सीख ले और दूसराको भी प्ररणा द तो पूरा समाज स्वच्छ एव प्रकाशवान् हो जायगा। आवश्यकता है प्रत्यक व्यक्तिकी सहभागिताकी।

[संस्कार-सौरभ]

संस्कारकी महत्ता

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

सम्+कृ+घञ्=वृद्धि, मोऽनुस्वार (पा०सू०)-के अनुसार सस्कार (पुँल्लिङ्ग) शब्द बना है। इसका अर्थ है—प्रतियत्न, अनुभव, वेगाख्य-सस्कार, स्थितिस्थापक-सस्कार, पृथिव्यादि पदार्थ-सस्कार, जन्मजात-सस्कार।

भापापरिच्छेदके अनुसार सस्कार कहीं स्थिति-स्थापक—जन्मजात, कहीं वेगजन्य, कहीं कर्मजन्य कहीं अतीन्द्रिय—इन्द्रियासे परे, कहीं मानसिक स्पन्दनजन्य, कहीं भावनाजन्य, कहीं स्मरणजन्य और कहीं प्रत्यभिज्ञाजन्य हाते हैं। ये गहन चिन्तनात्मक सस्कार हैं। अतीन्द्रिय-सस्कार वशानुगत होते हैं और सामान्यत इन्द्रियजन्य होते हैं।

पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और इन दसोपर सद्य नियन्त्रण रखनेवाला ग्यारहवाँ मन है। यह अपने गुणसे सभीका सञ्चालक है। मन जहाँ ले जायगा ये दस इन्द्रियाँ भी वहीं पहुँच जायँगी। यह तो सर्वथा स्पष्ट है। इस शाश्वत सत्यका द्रष्टा निर्द्वन्द्व निर्विकार आत्मा है। आत्ममन सयोगजन्य प्रवलतम भावनाजन्य सस्कार अपना विशाल हाथ फैलाय रहता है। फलत भापापरिच्छेदके उक्त सभी सस्कारापर मनका पूर्ण नियन्त्रण तो है ही।

नहीं चाहते हुए भी वर्तमान चाकचिक्यको देखकर बिना देखे हुए भी भावनाक स्पन्दनम वे कैस प्रविष्ट हा जाते हैं—यह समझना दुरूह है। अतएव भगवान्‌ने गीताम कहा है कि—' **मनो दुर्निग्रह चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥**' उक्त विपमस्थितिमें सस्कारोंको पावन रखना अतिशय कठिन है।

सम्भवत इसी परिप्रेक्ष्यमे शास्त्रकारोने मानवमात्रक लिये सस्काराका विधान किया है। महर्पि याज्ञवल्क्यके अनुसार विवाह गर्भाधान पुसवन सामन्तान्नयन जातकर्म नामकरण अन्नप्राशन चूडाकरण उपनयन वदारम्भ एव समावर्तन—ये सस्कार हैं। उक्त विधान क्रमवद्ध सम्कार-निर्माणक सापान हैं। य सम्कार यत्र-तत्र कुछ परिवर्तनक साथ सयक लिय समान हैं। बिना सस्कारक भारतीय भव्य भावनाकी जड सुदृढ नहीं हो सकती है किंतु अनुभवस यह स्पष्ट है कि प्रतिमाह, प्रतिपक्ष, प्रतिदिन तथा प्रतिक्षण सस्कार—भारतीय सस्कार बडे वेगस लुप्त होते जा रहे हैं। यह बडे ही दु खकी बात है।

सस्कारोसे सुसस्कृत सताने हागी, इसमे दो मत नहीं हैं। इसे वैदिकी प्रक्रिया भी कहा जाता है। लौकिक प्रक्रियामे विवाह गार्हस्थ्यजीवनका प्रवेशद्वार है। इसके बाद ही मानवमात्रको अपना-अपना अग्रिम मार्ग—कार्य निश्चित करना है कि वे अपनी जीवनयात्राको किस तरह, किस दिशाम और कैसे ले जायँगे, इसके साथ ही वे अपने पारिवारिक दायित्वका निर्वहण कैसे करेंगे इत्यादि। श्रेय-मार्गका चयन करना सस्कारजन्य ही है।

बात आजसे लगभग ५० वर्प पुरानी है, तब प्रथमा परीक्षाके पाठ्यक्रमम वाल्मीकीय रामायणम प्राप्त महर्पि नारद-वाल्मीकिसवादके चुने हुए २५ पद्याको कण्ठस्थ करना अनिवार्य था, जिनम भगवान् श्रीरामके गुण धर्म आदिका परिचय है। इसी प्रकार उन दिनो मध्यमा परीक्षाम श्रीरामचरितमानसका सुन्दरकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड परीक्षाम था किंतु स्वतन्त्र भारतमे ये विपय हटा दिये गय। उस समय प्रत्यक उच्च विद्यालयम श्रीमद्भगवद्गीताके ११व अध्यायके ५ श्लाकाकी वन्दना सभी छात्रा तथा शिक्षकाके लिये अनिवार्य थी किंतु कहना न होगा कि स्वतन्त्र भारतम वे सब भी हटा दिये गये।

तात्पर्य यह है कि पहले हमे हमारी आर्प परम्पराका ज्ञान कराया जाता था और हमम अपनी सस्कृतिक अच्छे सस्कार भरे जात थे किंतु विडम्बना है कि आज वह सत्र नहीं रह सका है। इसालिये सस्कारोंके प्रति भी आस्था कम होती जा रही है। यह अत्यन्त दु खका विषय है। इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना हागा।

~~~ ० ~~~
~~~

संस्कार—मनोविज्ञान और योगशास्त्रके आलोकमें

(डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी 'आनन्द , एम्०ए० एम्०एड्० पी-एच्०डी०, डी०लिट्०, व्याकरणाचार्य)

तन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र एव आधुनिक मनोविज्ञान बाह्य आचारा एव बाह्य भूमिकाआके स्तरापर नहीं, प्रत्युत सस्काराके सूक्ष्म स्तरापर परिवर्तन, परिशोधन एव परिष्करण चाहते हैं, अत ज्ञानकी इन विज्ञानगर्भित शाखाओमे सस्काराका सर्वाधिक महत्त्व है।

१ मनोविज्ञान और सस्कार

आधुनिक मनोविश्लषणवादी मनोविज्ञानने मनस्तत्त्वके अन्तर्गर्भित स्तरो एव तन्निहित सस्काराकी दिशाम क्रान्तिकारी प्रयोग किये हैं।

असामान्य मनोविज्ञान एव मनाविश्लेषणात्मक मनोविज्ञानक अद्यतन शोधाने यह पाया कि मनके तीन स्तर हैं और प्रत्येक प्राणी इन तीनो स्तरापर साचता है, आचरण करता है और उन्हींम जीता है। उसक सारे व्यक्तित्वके ये ही तीन स्तम्भ हैं—
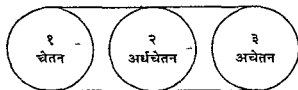
क-मनकी रचनाका स्थूल रूपरेखीय पक्ष
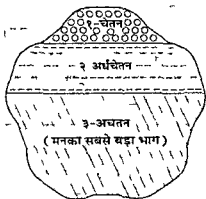
१-जागृतिकी अवस्थामे अनुभव एव सवेदन करनेवाले मनका हिस्सा।

२-स्वप्नावस्थाम अचेतन मनसे प्रभावित मनका हिस्सा।

३-दमित वासनाओ कुण्ठाओ एव सस्कारोसे भरा हुआ गुप्त एव चेतन स्तरपर न आनेवाला हिस्सा।

अचेतन मन—जागरणकी स्थितिम अज्ञात, किंतु समस्त मानसिक अवस्थाआका सचालक, प्रेरक एव मनोविकृतियाका जन्मदाता तथा स्वप्नम, सहज क्रियाओम एव सम्मोहनकी अवस्थाम प्रकट हानेवाला मनका सर्वोच्च भाग अर्थात् अचेतन मन समुद्रमे तैरते हुए बर्फके डूबे हुए ९/१० भागके समतुल्य है। मनका यह भाग चेतन मनद्वारा लगाये गये प्रतिबन्धो अवरोधो एव अकुशाके कारण छिप-छिपकर व्यक्त होता है। यह मन अकारण किये जानेवाले कार्यो यथा—नाखून चबाना, पैर हिलाना, चाभीका गुच्छा हिलाना, तिनके तोडना, अकारण कोई रेखा खींचना आदिका सचालक है। फोबिया, दुश्चिन्ता, घोर नैराश्य, घोर औदासीन्य, कुण्ठा, पागलपन एव अन्य सभी प्रकारकी मनोविकृतियाका प्रधान कारक, सचालक तथा प्रेरक यही अचेतन मन है। यही मनका अचेतन स्तर है।

ख-मनकी सरचनाका गत्यात्मक पक्ष

इस दृष्टिसे मन अहके स्तरत्रयमे विभाजित है—१-इदम्, २-अहम् और ३-परम अहम्।

१ इदम्—इदम् अचेतन मनका स्तर है। इसे धर्म, अनुशासन, मर्यादा, न्याय नेतिकला एव औचित्य-अनौचित्यका ज्ञान नहीं है। इसका स्वभाव है—इच्छाकी पूर्ति। इस इच्छाकी पूर्तिके लिये इसे किसी भी कानून, नियम एव प्रतिबन्धकी परवाह एव उसका भय नहीं है। यह विचारा एव आचरणका निर्बन्ध स्वच्छन्द एव अनियन्त्रित पाशविक स्तर है। यह मन एव चेतनाका निकृष्टतम स्तर है। बच्चेके हठपूर्ण व्यवहार एव अपराधियाम इसका प्राधान्य होता है। अनाचार दुराचार व्यभिचार आपराधिक कृत्य, चोरी हिसा आदि सभी जघन्य अपराधो एव तज्जन्य प्रवृत्तियाका उत्प्रेरक या सचालक यही 'इदम्' या 'इड' है। इसका मुख्य निवास मनके अचेतन स्तरम हे। इसम बिना प्रतिबन्ध एव व्यवधानक सतत आनन्द या सुख

उद्दाम वासना रहती है। इसम नैतिक, धार्मिक, सामाजिक एव सवैधानिक नियमोंके प्रति कोई आस्था नहीं होती। यह मनुष्यकी पाशविक अवस्थाका प्रतिनिधि ह।

२ अहम्—यह मनके चतनस्तरका स्वामी, सञ्चालक एव नियामक है। इसका सम्बन्ध वाह्य वातावरण, समाज धर्म, नैतिकता, मानवीय मूल्य, कानून एव सामाजिक व्यवस्थासे जुडा है। अत यह 'अहम्' भय, मर्यादा, धर्म, पाप-पुण्य, दण्ड, असम्मान, सजा आदिसे भयभीत होकर 'इदम्' पर अकुश बनाये रखता है और व्यक्तिको नियन्त्रित अनुशासित, मर्यादित एव सभ्य जीवन व्यतीत करनके लिये बाध्य करता है। 'इदम्'क विकसित (परिष्कृत) होनेपर ही 'अहम्'का उदय होता है। 'अहम्' पूणत नैतिक एव परिशुद्ध नहीं रहता बल्कि इसमे बाह्य विश्वके प्रतिबन्ध एव 'इदम्'की निर्बन्ध स्वच्छन्दताके मध्य एक समझौता, समायोजन एव सामञ्जस्य बना रहता है।

३ परम अहम्—यह 'अहम्' का भी नियामक, नियन्त्रक एव स्वामी होता है। यह सामान्यत 'इदम्' को कभी स्वेच्छाचारिता नहीं करने देता। यह अधिकाश-रूपसे कठोर, नियन्त्रक, निश्चल, शासक एव अपरिवर्तनीय दृढ सकल्पावाली उच्च वैचारिक चेतना है। 'अहम्'के विकसित होनेपर ही 'परम अहम्' का आविर्भाव होता है।

मनोविज्ञानकी दृष्टिसे सस्कारोके प्रकार

(क) इदम्के सस्कार—निकृष्टतम असमाजापयोगी अनैतिक, अनियन्त्रित पाशविक, मनोरोगात्मक मनाविकृति उत्पन्न करनेवाले सस्कार।

(ख) अहम्के सस्कार—मध्यमार्गीय समाजापयोगी एव मिश्रित, सामञ्जस्यवादी, समायोजनपरक सस्कार।

(ग) परम अहम्के सस्कार—नैतिक सामाजिक, विश्वहितैषी, आदर्श, नियन्त्रित, मर्यादानुशासित, सद्गुणात्मक उच्च विचारोसे ओतप्रोत धर्म, नैतिकता सामाजिकता, कानून पाप-पुण्य न्याय-अन्यायम पूर्ण आस्थावाले सस्कार।

आधुनिक मनोविश्लेषणवादी मनोविज्ञानकी दृष्टि—मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक भी योगियाकी भाँति मानते हैं कि वृत्तियोके दमन, शमन प्रतिगमन आदिसे इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं प्रत्युत वे चित्तम सस्कार बनकर बद्धमूल हो जाती हैं।

योगशास्त्र एव आधुनिक फ्रायडियन मनोविज्ञान— दोना ही सस्काराका शोधन चाहत हैं। व जडकी शुद्धि चाहत है बीजका शुद्ध करना चाहत हैं, पडकी टहनिया-पत्ताका नहीं।

२ योग और सस्कार

यागशास्त्र मानता है कि चित्तकी वृत्तियासे सस्काराका निर्माण हाता है। सस्कार ही बीज है। सस्काररूप बीजसे ही चित्तरूपी पौधा अकुरित पल्लवित पुष्पित सुरभित एव फलान्वित हाता है। समस्त चित्तवृत्तियाका निराध करके 'परवैराग्य' ही एकमात्र साधन है। उसक निरन्तर अभ्यासस जो सस्कार शष रह जाते हैं, वही असम्प्रज्ञात समाधिका अवस्था है। यागसूत्रम कहा भी गया है—**'विरामप्रत्यया-भ्यासपूर्व सस्कारशषोऽन्य '** (१।१८)। य 'सस्कारशेष' चित्तके प्रकृतिम लय होनेपर ही नष्ट होते हैं। वृत्तियाक रुकनेपर भी सस्कार नहीं रुकते बल्कि वे चित्तम बने रहते हैं। निराध (परवैराग्य)-के सस्कार भी चित्तके ही धर्म हैं। निर्बीजसमाधिम व्युत्थान (एकाग्रता)-के सस्कार अभिभूत रहते हैं, किंतु निरोध (परवैराग्य)-के सस्कार आविर्भूत होते है। निरोधके सस्कारसे चित्तमे प्रशान्ति प्रवाहित होती है—**'तस्य प्रशान्तवाहिता सस्कारात्'** (३।१०)। ऋतम्भराप्रज्ञाजन्य सस्कार व्युत्थानके सस्काराक प्रतिबन्धक होते हैं (योगसूत्र १।५०), पर वैराग्यद्वारा ऋतम्भराप्रज्ञासे उत्पन्न सस्कारोका भी निराध होनेपर (समस्त सस्कारोके निरुद्ध हो जानेपर) 'निर्बीजसमाधि' होती है—**'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीज समाधि '** (योगसूत्र १।५१)।

योगवासिष्ठके अनुसार चित्तके दो कारण हैं—वासना और प्राण। इनमसे एकके नष्ट होनेपर दूसरा नष्ट हो जाता है—**'तयार्विनष्ट एकस्मिस्तौ द्वावपि विनश्यत ।'** योग-वासिष्ठकार कहते हैं—

द्वे बीजे राम चित्तस्य प्राणस्पन्दनवासने।
एकस्मिश्च तयोर्नष्टे क्षिप्र द्वे अपि नश्यत ॥

जबतक मन विलीन नहीं हो जाता तबतक वासनाका क्षय नहीं होता अत तबतक चित्त शान्त नहीं रह पाता—

यावद्विलीन न मनो न तावद्वासनाक्षय ।
न क्षीणा वासना यावच्चित्त तावन्न शाम्यति॥

(योगवासिष्ठ)

चित्त (मन)-का सुषुम्णामे प्रवाह होनेपर मनका उन्मूलन अवश्य हो जाता है—

'सुषुम्णावाहिनि प्राणे सिद्ध्यत्येव मनान्मनी ॥'

योगिराज ब्रह्मानन्दगिरिने 'ज्योत्स्ना' म वासनाको 'भावना' नामक सस्कार कहा है—**'वासना भावनाख्य सस्कार ।'**

सस्कारके चार बीज है—१ सवेदन—विषयोपभोग २ भावना—विषयाके नष्ट हानेपर उनका बार-बार चिन्तन, ३ वासना—विषयाके बार-बार अनुस्मरणसे चित्तमे विषयाके दृढस्थितिरूप सस्कार तथा ४ कलना—मृत्युकालम वासनावश भावी शरीरके लिये होनेवाली स्मृति। इनमे 'सवेदन' एव 'भावना' (सस्कार) ही प्रधान है। भावना ही सस्काराका जन्म दती है।

विवेकप्रवाही चित्तम भी व्युत्थानकी वृत्तियाँ पूर्ववर्ती व्युत्थानके सस्कारासे उठती हैं और आती-जाती रहती हैं।

'तच्छिद्रषु प्रत्ययान्तराणि सस्कारेभ्य ॥'

(योगसूत्र ४। २७)

अर्थात् विवेक—ज्ञानके शैथिल्यकी दशामे व्युत्थानज सस्कारोसे तदनुरूप वृत्तियाँ भी उत्पन्न हाती रहती है।

सस्कारोके साक्षात्कारका फल—सस्काराका साक्षात्कार कर लेनेपर उस अपने पूर्वजन्माकी स्मृति हो उठती है—**'सस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्'** (यागसूत्र ३। १८)। योगिराज जैगीषव्य एव आवट्यने अपने अनेक जन्माका ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सस्कारोके प्रकार—सस्काराके मुख्यत दो प्रकार हैं—१ धर्माधर्मरूप २ ज्ञानरागादिवासनारूप (नागोजिभट्ट) अर्थात् १ स्मृतिमात्रोत्पादक एव २ जाति-आयु-विकारज (भोजवृत्ति)। ये द्विविध वासना-सस्कार स्मृत्युत्पादक एव जन्म-आयुभोगके कारण हैं। (योगचन्द्रिका)

सस्कार वासनारूपात्मक हुआ करते हैं—**'द्विविधाश्चित्तस्य वासनारूपा सस्कारा '** (भोजवृत्ति)। सस्कार पूर्वजन्म-परम्परामे सञ्चित चित्तके धर्म हैं—**'सस्काराश्चित्तधर्मा पूर्वजन्मपरम्परासञ्चिता सन्ति'** (योगसुधाकर)। पूर्वजन्माके कर्मों (धर्माधर्मों)-से (१) स्मृति एव क्लेशाके कारणरूप, तथा (२) कर्मविपाक होनेपर जन्म, आयु, सुख-दु खके कारणरूप एव धर्माधर्मात्मक द्विविध सस्कार चित्तम (टेपम अङ्कित गीत आदिकी भाँति) सूक्ष्मरूपमे अङ्कित रहत हैं।

ऋतम्भरा प्रज्ञासे उत्पन्न सस्कार—ये व्युत्थानज सस्कारोंके प्रतिबन्धक सस्कार हाते हैं—**'तज्ज सस्कारोऽन्यसस्कारप्रतिबन्धी'** (योगसूत्र १। ५०)। ऋतम्भराके सस्कारोसे समाधिप्रज्ञा होती है। इसके सस्कार व्युत्थानज सस्कारो एव वासनाओको हटा देते हैं। निर्विचारसमाधिस ऋतम्भरा प्रज्ञा और उससे 'निरोध सस्कार' जन्म लेते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञासे आविर्भूत सस्काराके भी निरुद्ध होनेपर 'निर्बीजसमाधि' होती है। निर्बीजसमाधिकी दशाम चित्तमे कोई वृत्ति नहीं रहती, प्रत्युत उसमे वृत्तियाके प्रतिबन्धक 'सस्कारशष' सस्कार रहते हैं।

चित्तवृत्ति, वासना और सस्कार—वृत्तियाँ सस्काराकी निमित्तकारण हैं और चित्त सस्काराका उपादान-कारण ह। वृत्तियाँ भी क्लिष्टाक्लिष्टरूपमे विभक्त हैं। तदनुसार क्लिष्ट-वृत्तियासे क्लिष्ट-सस्कार और अक्लिष्ट-वृत्तियोसे अक्लिष्ट-सस्कार वनते हें। ऐस चित्तमे व्युत्थानके सस्कार होते हैं। व्युत्थान एव एकाग्रताकी समस्त वृत्तियाके निरोध होनेपर निरोधके सस्कार वनते हैं। व्युत्थानकी वृत्तियाँ—व्युत्थानके सस्कार, समाधिकी वृत्तियाँ—समाधिके सस्कार, एकाग्रताकी वृत्तियाँ—एकाग्रताके सस्कार, परवैराग्यकी वृत्तियाँ—परवैराग्यके सस्कार—यह क्रम रहता ह। परवेराग्यमे सर्ववृत्तिनिरोध, परवैराग्यके सस्काराका अभाव, परवैराग्यकी वृत्तियाका भी निरोध गुण-वैतृष्ण्य तथा सर्वसस्कार-प्रवाहका निरोध होता है। असम्प्रज्ञात समाधिमे परवैराग्यकी वृत्तियाका भी निरोध होनेपर परवैराग्यके सस्कार तो शष रह ही जाते हैं, किंतु चित्तका प्रकृतिम लय हा जाने एव परवैराग्यके सस्कारोंका भी लय हो जानेपर उत्पन्न अवस्था ही कैवल्य है।

योग, समाधि एव कैवल्यमे भेद—याग एव समाधि तो चित्तके धर्म हैं। व्यासजा कहते हैं—**'योग समाधि । स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्म ॥'**

योग एव समाधिका लक्ष्य है—कैवल्य। कैवल्य चितिकी प्रतिष्ठा, स्वरूपावस्थान एव पुरुपार्थशून्य गुणाका प्रतिप्रसव है—**'पुरुषार्थशून्याना गुणाना प्रतिप्रसव कैवल्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'** (योगसूत्र ४। ३४)। ध्यातव्य बिन्दु यह है कि सम्प्रज्ञात समाधि जिसम चित्तकी जो एकाग्रावस्था रहती है (निराधमुखी) वह वृत्तिक साथ रहती है वृत्त्यातीत नहीं है किंतु 'असम्प्रज्ञातसमाधि'म अक्लिष्ट वृत्तियाका ग्रहण करक क्लिष्टवृत्तियाका करना हाता है और फिर परवैराग्यका ग्रहण करक

वृत्तियाका भी निरोध करना हाता है। योग एव समाधि (सम्प्र० समाधि) सवृत्तिक हैं। अमम्प्रज्ञातसमाधि सवृत्तिक न रहकर भी सस्कारोपमित है, किंतु कैवल्य १-चित्त २-चित्तकी क्लिष्टाक्लिष्टवृत्तिया एव ३-सस्कारा—तीनासे अतीत है। कैवल्य सस्काराका श्मशान है। यह सस्कारातीत, चित्तातीत एव प्रकृत्यातीत अवस्था है। पुरुपार्थसे शून्य गुणाका अपने कारणरूप प्रकृतिम लय हो जाना ही 'कैवल्य' है। गुणाकी प्रवृत्ति पुरुपके भोग और अपवर्गके लिये है। भोगापवर्ग ही पुरुपार्थ है। पुरुपार्थ-सिद्धिक लिये ही 'गुण' शरीर, इन्द्रिय बुद्धि आदिमे परिणत होते हैं। जिस पुरुपका यह प्रयोजन सिद्ध हो गया, उसके प्रति इन गुणाका कोई कार्य शेष नहीं रहता, अत वे अपने कारणम लीन हो जाते हैं। गुणोका कारणम प्रतिप्रसव या चितिशक्तिका अपने स्वरूपम प्रतिष्ठित हो जाना कैवल्य है—**'कैवल्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'** (योगसूत्र ४।३४)। **'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'** (योगसूत्र १।३)।

याग आर साख्यके कैवल्यमे प्रकृतिका लय नहीं है किंतु शैवा, शाक्तो, वेदान्तिया एव तान्त्रिकाकी मुक्तिमे प्रकृतिका भी लय आवश्यक है—**'प्रथम प्रकृति मनसा विभाव्य तामपि स्वात्मनि स्वात्मान तस्या मिथो विलाप्य तत एकोऽवशिष्यते।' 'मुक्त शुद्ध पूर्ण प्रत्यगात्मैव भवति प्रत्यगात्मैव भवति।'** (शक्तिसूत्र, अगम्त्य)।

साराश यह है कि जबतक चित्त है, तबतक सस्काराको नष्ट नहीं किया जा सकता। भले ही चित्तकी समस्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जायँ किंतु तब भी सस्काराकी सत्ता बनी हा रहता है। चित्तवृत्तियाँ सस्काराकी निमित्तकारण हैं किंतु उनका उपादानकारण चित्त है। अत निमित्तकारणके न रहनेपर भा चित्तरूप उपादानकारणक रहत सस्कार बने ही रहते हैं।

३ धार्मिक सस्कार

भारतीय सस्कृतिम गर्भाधानादि १६ सस्कार प्राचीन-कालसे स्वीकृत रहे हैं, किंतु अन्य सस्काराका भी उल्लेख मिलता है—१ सप्त पाकयज्ञसस्था (हुत, प्रहुत, आहुत शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण तथा अष्टकाहाम), २ सप्त हविर्यज्ञसस्था (अग्न्याधान, अग्निहात्र, दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि निरूढपशुबन्ध तथा सौत्रामणी), ३ सप्त सोमयज्ञ-सस्था (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तार्याम) वानप्रस्थ, सन्यास तथा शौच, सतोप, तप एव स्वाध्याय तथा गर्भाधानादि १६ सस्कार।

धार्मिक सस्कार बाह्य एव स्थूल सस्कार हैं। यौगिक सस्कार सूक्ष्म एव शाश्वत सस्कार हैं ये सार्वभौम सस्कार है। अत इस लेखमे इन्हीं सूक्ष्म सस्कारोपर प्रकाश डाला गया है।

'सस्कारके मोती'

(श्रीरामनिश्चयजी मिश्र)

शक्तिमान सर्वेश्वरकी जब जनपर करुणा होती।
बरपा करते घर-आँगनमे सुसस्कारके मोती॥
पुण्य पूर्वजोका प्राणाम दिव्य सस्कार भर देता।
कलियुगम भी आ विराजते सतयुग द्वापर त्रेता॥
सस्कारसे शक्ति प्राप्तकर मानव उन्नत प्राणी है।
देव-दनुज सब रह लालायित धरा-धाम कल्याणी है॥
ध्रुव प्रह्लाद और अर्जुन-सुतकी कथा प्रकट करती है।
माताके गर्भस्थलसे ही प्रेरक शिक्षा मिलती है॥
सस्कारसे दीक्षित होकर गौतम-गाधी आये थे।
गाँव समाज, देशसेवाका अनुपम पाठ पढ़ाये थे॥
सुसस्कारक प्रतिफलसे दानव भी मानव बन जाते है।
वैर, द्वष ईर्ष्यादि भूलकर हृदयहार हो जाते है॥
निश्चय विनय यही है प्रभुसे सस्कार सब पा जाय।
ऊँच-नीच कटुता हम भूल प्रमभाव ही अपनाय॥
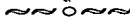
भारतीय सस्कृति और संस्कार

(श्रीओमप्रकाशजी सोनी)

'सस्कृति' जीवन जीनेकी एक पद्धतिका नाम है। सस्कृति ओर सभ्यता दो अलग-अलग शब्द हैं। सभ्यता वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि पक्षोतक ही सीमित है, जबकि सस्कृति चिन्तनसे लेकर जीवन-व्यवहार एव मानवीय सवेदनासे लेकर समष्टिगत एकता-जैसे पक्षोका स्पर्श करती है। सभ्यता वह हे जो हमारे पास है, सस्कृति वह है जो हम स्वय हैं।

भारतीय सस्कृतिम श्रेष्ठताका मापदण्ड है—'तुम क्या हो?' जबकि पश्चिमी सस्कृतिमे श्रेष्ठताका मापदण्ड है—'तुम्हारे पास क्या है?' भारतीय सस्कृति सुखमय जीवन जीनकी कला सिखाती है। यह मानव-जीवनको उत्कृष्ट मूल्योके प्रति समर्पित करना सिखाती है। जीवन तो पशु भी काट लेते हैं, शरीरको नियन्त्रित कर लेते हैं, पर मनको नियन्त्रित करना उसे विचार और श्रद्धाद्वारा सचालित करना तथा मानवताके उच्च आदर्शकी ओर निबाध गतिसे अग्रसर रहनके लिये प्रेरित करना—ये भारतीय सस्कृतिके कुछ विशिष्ट गुण हैं।

पाश्चात्त्य उपभोग-प्रधान सभ्यता आज जहाँ अर्थपर जोर देती है वहाँ कामरूपी धुरापर ही उसका समग्र चिन्तन चलता है। धर्म अर्थात् नीतिमत्ता, सवेदना वर्जनाएँ, जीवनको दिशा देनेवाला तत्त्वज्ञान वहाँ न होनसे भव-बन्धनास जकडा मानव भोगजन्य कष्टोको पाता हुआ दु खी नजर आता है। आधुनिक सभ्यताएँ नैतिक बन्धनासे परे धर्मरहित अर्थ एव कामकी प्राप्ति—उपार्जनहेतु प्रेरित करती हैं—परिणाम सामन है।

स्वामी विवकानन्दने कहा था—पाश्चात्त्य मनोविज्ञानने हम पशुप्रवृत्तियाका गुलाम बनाकर स्वच्छन्द जीवन जीन अनैतिक आचरण करनेके लिये खुली छूट दे दी, पर अकुश लगाने एव जीवनका सही ढगस जीनेका शिक्षण भारतीय सस्कृतिसे ही मिलता है।

श्रीअरविन्दन मनुष्यका दो-तिहाई पशु-प्रवृत्तियाको लेकर आया जीवधारी माना है एव उसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए लिखा हे कि यह मानवका सौभाग्य है कि वह कर्मयोनिम आया है, ताकि कर्म करके वह अपनी विगत पशु-प्रवृत्तियाको मिटा सके।

मानवजातिकी सुख-शान्ति एव प्रगतिकी सर्वोपरि आवश्यकताका महत्त्व हमारे तत्त्वदर्शी पूर्वज, ऋषि-महर्षि भली प्रकार समझते थे। इसके लिये उन्हाने नि स्वार्थ भावसे प्रबल प्रयत्न भी किये, अपने जीवनको इन्हीं उपायाकी खोजम समर्पित कर दिया। हमारे सारे शास्त्र इसी प्रयोजनकी पूर्तिके लिये प्रकट हुए हे। योगाभ्यास, उपासना, तपश्चर्या, इन्द्रिय-निग्रह, सयम, सदाचार, व्रत-उपवास, तीर्थयात्रा, देवदर्शन, दान-पुण्य, कथा-प्रवचन, यज्ञ-अनुष्ठान आदिका जितना भी कलेवर हमे दृष्टिगोचर होता है, उसके मूलम एक ही प्रयोजन सनिहित है कि व्यक्ति अधिकाधिक निर्मल, उदार, सद्गुणी, सयमी एव परमार्थपरायण बनता जाय। ये प्रयोजन हमारी चेतनाको उस स्तरतक विकसित करनेका प्रयत्न करते हैं, जिसे अपनानेपर जीवन अधिक पवित्र, उत्फुल्ल एव लोकोपयोगी बन सके।

मानवकल्याणकी महान् परम्पराओम जितने भी आयोजन एव अनुष्ठान है, उनमे सबसे बडी परम्परा सस्कारा एव पर्वोकी है। सस्कारों, धर्मानुष्ठानोद्वारा व्यक्ति एवं परिवारको तथा पर्व-त्याहाराके माध्यमसे समाजको प्रशिक्षित किया जाता है। इन पुण्य परम्पराओपर जितनी ही बारीकीसे हम ध्यान दते हैं, उतना ही अधिक उसका महत्त्व एव उपयोग विदित होता हे और ज्ञात होता है कि इन सस्कारोका उद्देश्य गृहस्थ जीवन, पारिवारिक जीवन और सामाजिक जीवनका कल्याणकारी मार्गपर प्रशिक्षित करना है।

बालकके गर्भम प्रवशसे लेकर जीवन-यापनकी विविध परिस्थितियामेंस गुजरते हुए शरीर छोडनेतक विविध अवसरापर 'सस्कारा' का आयोजन करनेका हमारे धर्मशास्त्रामे विधान है। इन विधानोसे व्यक्तिकी अन्तश्चेतनापर एक विशेष प्रभाव पडता है और उसका सुसस्कारी बनना सरल हो जाता है। सस्कारसम्बन्धी विशिष्ट प्रयोजनाके लिये विशिष्ट शक्तिसम्पन्न वेदमन्त्राके पाठका विधान है, जिनमे अपनी विशिष्ट क्षमता होती हे। उन मन्त्राकी उद्भावना एसी

वेज्ञानिक पद्धतिसे हुई है कि विधिवत् सस्वर उच्चारण किये जानेपर वे आकाशतत्त्वम एक विशिष्ट विद्युत्-प्रवाह तरङ्गित करत हैं। उनका जीवनपर वैसा ही प्रभाव पडता हे जैसा उस मन्त्रका उद्देश्य होता हे। मन्त्राकी शक्ति प्रसिद्ध है। वेदमन्त्राका किस प्रयोजनके लिये और किस प्रकार प्रयोग किया जाय, इसका निर्धारण गृह्यसूत्रा एव कर्मकाण्ड-प्रयोजनके लिये विनिर्मित ग्रन्थोम हुआ हे। याज्ञिक विधानके साथ-साथ मन्त्रोकी शक्ति और भी बढ जाती है। जिस प्रकार बिजली, भाप, अणु, रसायन, पदार्थ-विद्या आदिका अपना विज्ञान है, उसी प्रकार मन्त्रशास्त्र एव यज्ञादि कर्मकाण्डोका भी अपना विज्ञान है। यदि काई उसका प्रयोग ठीक प्रकारसे कर सके तो मनुष्यके ऊपर असाधारण प्रभाव पड सकता है।

सस्काराकी प्रक्रियाको दो भागामे विभक्त किया जा सकता है। एक उसका वैज्ञानिक स्वरूप, जो मन्त्रोच्चारण, यज्ञानुष्ठान आदि कर्मकाण्डाके रूपमे प्रयुक्त होता है तथा दूसरा जो मन्त्राकी व्याख्या तथा विधि-विधानोके रहस्योद्घाटनके रूपम प्रस्तुत किया जाता है। सस्कारामे प्रयुक्त होनेवाली कर्मकाण्ड-प्रक्रियाका प्रत्येक अङ्ग अपने-आपमे रहस्यपूर्ण है। उसमे बडा महत्त्व एव मर्म छिपा पडा है। आज सुसस्कृत सस्कृतिकी आवश्यकता सर्वत्र अनुभव की जा रही है। इटलीम मडले नामक विद्वान्ने सस्कारशास्त्रपर आधारित शास्त्रकी नींव डाली, जिसे 'यूजेनिक्स' कहा गया। इग्लैण्डके विद्वान् 'सर फ्रानिक्स गाल्टन' ने अपनी सम्पत्तिका बडा भाग लदन विश्वविद्यालयको इस क्षेत्रम शोधके लिये दिया। इस क्षेत्रम शोध कर रहे विद्वानाका कहना हे कि सततिको सुसस्कारी एव शालीन बनानेमे प्रत्यक्ष उपदशा, प्रशिक्षणोका कम धार्मिक सस्काराका अधिक योगदान होता हे।

मनोवैज्ञानिकाका ध्यान धार्मिक सस्काराको आर आकर्षित हुआ है। 'यूजेनिक्स' के शोधम लग वैज्ञानिकान विश्वभरम प्रचलित सभी धर्म-सम्प्रदायाम किय जानेवाल सस्काराका गहन अध्ययन किया। हिन्दूधर्मके सस्काराकी पृष्ठभूमि बहुत सूझबूझसे बनी है, इसम व्यक्तित्वके समग्र विकासकी पूरी-पूरी सम्भावना है।

सस्कार मात्र कर्मकाण्ड नहीं, आत्मनिर्माणक सशक्त माध्यम हें। इनका मानवीय चेतनास गहरा सम्बन्ध है। इनक माध्यमस शारीरिक, मानसिक एव आत्मिक परिष्कारकी प्रक्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। सस्काराके अनुष्ठानसे व्यक्तिम दैवी गुणाका आविर्भाव हो जाता है।

सस्काराका प्रारम्भ अभ्याससे होता है। सस्कार डालना पडता है क्योकि दोपाका परिशोधन प्रयासपूर्वक ही होता है। ये 'सस्कार' जितनी छोटी आयुम या जितने जल्दी किये जा सक, उतने ही सफल होते हैं। सस्कारोका कार्य एव उद्देश्य गुणाका अधिकतम विकास करना है। दोपाका परिष्कार या परिहार करनेकी क्षमता मानव-जीवनम ही है, क्याकि मनुष्याम गुण-दोपाको परखनेकी बुद्धि हाती है। सस्काराका सर्वाधिक महत्त्व चित्त-शुद्धिम है। मनकी मलिनता ही सबसे अधिक दु खदायी है। कायाकी मलिनता तो साबुन-पानीसे धोयी जा सकती है, पर मन तो न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहता है। इन्द्रियाका प्रेरक भी मन ही है। इसकी शुद्धि सुसस्कारासे ही सम्भव है।

प्रसिद्ध लोकोक्ति है—'धन चला गया कुछ नहीं गया। स्वास्थ्य चला गया कुछ चला गया। चरित्र चला गया तो समझो सब कुछ चला गया।' चरित्र-निर्माणका मूल आधार सस्कार ही हैं। मनोविज्ञानी फ्रासिस मेरिलिके ग्रन्थ 'द सीक्रेट सल्फ' के अनुसार जिस प्रकारक सस्काराका सचय हम करते हैं, उसीके अनुरूप चरित्र बनता-ढलता चला जाता है।

आज सब ओर भौतिकवादकी ध्वनि सुनायी दे रही हे। पाश्चात्त्य दृष्टिकोणको अपनाकर हमने अपन धार्मिक विचाराको खो दिया है। धर्म रीति-रिवाज व्रत त्योहार सस्कार साधना, यज्ञ आदिपर हमारी आस्था कम हो रही है, हम इसका उपहास करत हें। यही कारण है कि हम दु खी रहते हैं। हमार धर्मकी प्रत्यक प्रक्रियाम अवश्य कुछ रहस्य छिपा रहता है। यह अन्धविश्वासपर आधारित नहीं है। यह प्रक्रिया बुद्धि और तर्ककी कसौटीपर खरी उतरती है। हम इसे बाह्य दृष्टिसे देखते हैं गहराईतक पहुँचनेका प्रयत्न नहीं करत इसलिय नासमझीक कारण ही इसकी उपेक्षा करते हैं। अब समय आ गया है कि हम इसको

समझे और पुन इसे जीवन-विकासके लिये काममे लाये। भारतीय धर्मके अनुसार सोलह सस्कार मुख्य है, इन्हे 'षाडश सस्कार' भी कहते हैं ये आज भी उपयोगी हैं। उदाहरणके लिये सीमन्त-सस्कारके समय उच्चारण किये जानेवाले मन्त्रामे गर्भवतीक रहन-सहन, आहार-विहारसे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण मौजूद हैं। इसी प्रकार अन्नप्राशनम भोजनकी, विवाहमे दाम्पत्य-जीवनकी आवश्यक शिक्षाएँ भरी पडी हैं। भारतीय सस्कृतिके आदिप्रवक्ता भगवान् मनुका कथन हे कि सस्कार शरीरको शुद्ध करके उसे आत्माके निवासके लिये उपयुक्त बनाते हैं और मीमासाशास्त्रका मत है कि सस्कारके द्वारा मनुष्य किसी उद्देश्यविशषके उपयुक्त बनता है। [सस्कार-सौरभ]

संस्कारतत्त्व-मीमासा

(एकराट् प० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण)

आचार-विचारकी प्रेरणा देनेवाले, यथोचित मार्गदर्शन करनेवाले तथा कर्म-सम्पादनकी मर्यादा स्थिर करनेवाले सूक्ष्मसूत्र, जिनकी अमिट छाप होती है सस्कार कहे जाते हैं। सस्कार प्राकृतिक एव क्रिया-सापेक्ष हाते हे। जीव जन्म-जन्मान्तरोसे इन्हे वहन करता आया है। सस्कारोसे भूतका ज्ञान होता है, वर्तमान घटित होता है तथा भविष्यका सम्पूर्ण दृश्य निर्मित होता है। सस्कार स्थायी चिह्न है। कर्म-सस्कार जो कि क्रियाक वास्तविक कारक हाथ (करतल)-मे होते हैं। सस्कार दो है—सूक्ष्म ओर स्थूल। सूक्ष्म-सस्कार जीवके सूक्ष्म शरीरम होत हैं। स्थूल-सस्कार स्थूल शरीरमे ही करतलगत होते हैं। स्थूलतर सस्कारक प्रतीक शरीरके नवद्वार हैं। स्थूलतम सस्कार सम्पूर्ण शारीरिक परिमाप एव परिमाणमे सहित होते हैं। स्थूल सस्कारासे सूक्ष्म सस्कारोका ज्ञान हाता है। बिना स्थूलके सूक्ष्मको जानना शक्य नहीं है। करतलके स्थूल सस्काराका मूल सूक्ष्म शरीरमे समाश्रित होता है। सूक्ष्म सस्कारासे ही जीवके क्रिया-कलापोका निदर्शन होता है। करतलकी बनावट-विस्तार एव भारापनके अतिरिक्त उसमे सचित रेखाएँ सूक्ष्म सस्काराकी अभिव्यक्ति हैं। करतलगत रेखा-जाल जीवक आद्यन्त जीवनका भव्य मानचित्र है। जैसे भवन-निर्माणके पूर्व उसका एक मानचित्र तैयार किया जाता है और तदनुरूप भवन बनता है, वैसे ही जीवक जीवन-क्षेत्रमें पदार्पण करनेके पूर्व उसका मानचित्र—भाग्य उसकी हथेलीम अङ्कित हो जाता है। जीवका जीवन इस रेखाचित्रका प्रतिफल है। '*हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ*' के अनुसार सब कुछ विधाताके हाथ (अधिकार)-म है। ये नियम हथेलीमे रेखाकार-रूपमे दिखते हैं। हथेलीम विश्व प्रतिष्ठित है—रेखाएँ नदियाँ ह, ग्रहाके उभार स्थान पर्वत हैं, चारो अङ्गुलियाके छार देवतीर्थ, मणिबन्ध ब्रह्मतीर्थ, अङ्गुष्ठ एव तर्जनीके मध्य पितृतीर्थ, कनिष्ठिकाक नीचे करपार्श्वम कायतीर्थ तथा करमध्यम अग्नितीर्थ हे, चारो अङ्गुलियोक १२ पोर तथा अँगूठेक २ पोर—कुल मिलाकर १४ पोर ही १४ भुवन हैं, करतलमध्यका अवतल भाग समुद्र है। हथेलीम चारा दिशाएँ हैं—अङ्गुलियाकी आर पूर्वदिशा, मणिबन्धकी ओर पश्चिमदिशा, अँगूठकी आर उत्तरदिशा तथा नीचे दक्ष (बल)-भागकी आर दक्षिणदिशा। हथेलीम द्वादश राशियाँ हैं—अङ्गुलियाक ४×३=१२ पोर मषादि-मीनपर्यन्त द्वादश राशियाँ हैं। करतलमें नवग्रह स्थित हैं—कनिष्ठिकाके मूलमे बुध अनामिकाक मूलमे सूर्य, मध्यमाके मूलम शनि तर्जनीके मूलम बृहस्पति, अङ्गुष्ठके मूलमे शुक्र तथा दक्षभागम बुधक नीच मगल एव मगलके नीचे चन्द्रमा प्रतिष्ठित हैं। मणिबन्धपर्यन्त अग्नितार्थम राहु और पितृतीर्थमे कतु हैं। कायतीर्थका प्रजापतितीर्थ कहा गया है।

साख्य-दृष्टिस पञ्चनखप्रदेश पञ्चतत्त्वाके स्थान हैं—बुध, शनि, सूर्य, गुरु एव शुक्रके नख क्रमश पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश एव जलक प्रतिदर्श हैं। बुधक नीचेसे बृहस्पतितक जानेवाला हृदयरखा—मन है, बृहस्पतिमूलस दक्ष मध्यके छोरका ओर जानवाली मस्तिष्क रेखा—बुद्धि है तथा गुरुमूलसे शुक्रका घरते हुए मणिबन्धतक जानेवाली

जीवन (लग्न)-रेखा—अहकार है। अष्टधा प्रकृति—आकाश, वायु, तेज जल भूमि मन, बुद्धि (महत्तत्त्व) एव अहकारका निवास हथलीम है। तात्त्विक दृष्टिस अँगूठा पुरुप (परम तत्त्व) है। वाक्य है—'अङ्गुष्ठमात्र पुरुप' (कठोपनिषद् २। १। १२, १३)। हथेलीक अन्य अवयव प्रकृति हैं। पुरुप-तत्त्व शासक, बली, नियन्ता, पापक, रक्षक तथा विष्णुरूप है। तात्पर्य यह कि अँगूठा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

कर्म-सस्कारास खचित व्यक्तिका हाथ जीवन-दपण है, अखिल विश्व है, ब्रह्माण्ड है, भूमण्डल है, तत्त्वदर्शन है। इसलिये इसे भगवान् कहत हैं। वेदवचन है—

अय मे हस्तो भगवानय मे भगवत्तर ।
अय म विश्वभेपजोऽय शिवाभिमर्शन ॥

(अथर्ववेद ४। १३। ६)

हथेलीका वह भाग जो रोमरहित सुन्दर एव चमकयुक्त है हस्त (हाथ या कर) कहा जाता है। हाथम विश्व है, भगवान्‌म विश्व है इसलिये हाथ ही भगवान् है। इससे हाथका महत्त्व प्रतिपादित होता है। मनुष्यक हाथको भगवान् क्या कहा गया है ? हाथ एक हाकर अनेक भागा (अवयवा)-वाला है। हाथमे दीप्ति एव गति (क्रियाशीलता) है। हाथमे कर्म-सस्कार रेखाचित्रके रूपम हैं। इसलिय ये कर्म-सस्कार भगवान्‌म हैं। भगवान् अविनाशी हैं। फलत ये कर्म-सस्कार अविनाशी हैं। हथेलीम बडी और स्पष्ट रेखाआके अतिरिक्त अत्यन्त सूक्ष्म रेखाआका एक सुव्यवस्थित जाल होता है। हाथका मास कट जाय, घाव हो जाय तो कालान्तरम घाव सूखने, भरनेपर वे रेखाएँ पुन वैसे ही पूर्ववत् बन जाती हैं। यह सस्काराके अविनाशी होनेका प्रमाण है। व्यक्तिके पुरुषाथसे क्षुद्रवत् कुछ रेखाएँ उभरती एव अस्त होती रहती हैं। यह सस्कारोकी ईषत् परिवर्तनशीलताका साक्ष्य है जिससे सूचना मिलती है कि वे सस्कार हैं। रेखाएँ भूत एव भविष्यकी सूचक हैं। इसलिये ये सस्कार हैं। स्थायी एव अस्थायी, पुष्ट एव अपुष्ट—अचर एव चर—य दो सस्कार हैं। मूलप्रकृति अचर-सस्कार है। विकृत प्रकृति—प्रकृतिगत ससर्ग—सत्सङ्ग एव कुसग-दुस्सग—चर-सस्कार हैं। चर-मस्कार क्षणिक प्रभावी हात हैं। सुदीघकालान मसर्गस चर-सम्कार अचर-सस्कार बन जात हैं।

मनुष्य प्रकृतिभूत है। इसीलिय जा प्रकृति करता है उमीका अनुकरण मनुष्य भी करता है। विमानम ब्लैक बॉक्स हाता है। विमानक नष्ट हा जानक बाद भा यह सुरक्षित रहता है तथा इमीस मम्पूर्ण वैमानिक सूचना प्राप्त होती है। यह विमानका सस्कार-पटल है। श्रवणपट्टिका (आडियो टप, डिस्क) एव दृश्यपट्टिका (वाडियो टप डिस्क) भी क्रमश व्यक्तिक भाषण एव दशनक सस्कार हैं। मनुष्यकृत हानस य मनुष्यद्वारा नश्यमान हैं। प्राकृतिक सस्काराको कवल प्रकृति ही मिटा सकती है, मनुष्य कदापि नहीं बदल सकता। कुत्तेकी पूँछ टढी हाती है, मनुष्य इसे सीधा नहीं कर सकता। थाड समयके लिय वह उसे हाथसे पकडकर सीधा रख सकता है हाथ हटाते ही वह पुन टेढी हा जायगी—यह निश्चित है।

मनुष्यक हाथम सदाचार-दुराचार, क्रूर-सौम्य पण्डित-मूर्ख धनाढ्य-दरिद्र पुत्रवान्-सततिहीन, दीर्घायु-अल्पायु, कर्मठ-आलसी एव पाप-पुण्यकी रेखाएँ हाती हैं। इन्हें कोई हटा नहीं सकता। जैसी रेखा (सस्कार) हागी, व्यक्ति वैसा हागा ही। यत्किञ्चित् परिवर्तन पुरुषार्थ-उद्योग एव सुसग-कुसगसे होता है।

सस्कारको प्रारब्ध भी कहते हैं। सस्कार (प्रारब्ध)-के सामने किसीकी नहीं चलती। सस्कारके दो भेद हैं—कुसस्कार (देश-काल, पात्रके विरुद्धके आचार) तथा सुसस्कार (देश-काल, पात्रके अनुकूल आचार)। ये सबमें न्यूनाधिक रूपम पाये जाते हैं। ये भी अपरिवर्त्य हैं।

व्यक्तिकी जन्मकुण्डली सस्कारोका पिटारा है। १२ भाव १२ राशियाँ एव ९ ग्रह—ये कुल ३३ सूत्र (देवता) हैं, जो सस्काराके निर्माता, नियन्ता पोषक पूरक, नाशक एव विच्छेदक हैं। इनकी अभिव्यक्ति ३३ बीज (व्यञ्जन)-युक्त वाणीद्वारके द्वारा कालज्ञ पुरुष करता है। ग्रहोकी दशान्तर्दशा एव गोचर-स्थितिके फलस्वरूप ये सस्कार अपनेको क्रियाके रूपमे व्यक्तिद्वारा प्राकट्यको प्राप्त होते हैं। दुस्सग एव सुसग—इसम उत्प्रेरकमात्र होते हैं।

सद्धर्म एव दानसे संस्कारोंमें सुगन्ध आती है। व्यक्तिमें काम, क्रोध, मोह, लोभ मद, मत्सर ईर्ष्या द्वेष, दया, उदारता, प्रेम, राग ग्लानि, क्षमा कार्पण्य दैन्य, दान आदि भाव होते हैं। इन भावोंका उदात्तीकरण करनेके लिये ऋषियोंने संस्कारकी व्यवस्था दी है। विश्वके हर समाज परिवारमें भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें ऐसी व्यवस्थाएँ हैं। शैशवावस्थासे लेकर यौवनके उच्छ्वासतक संस्कारोंका प्रभाव अमिटरूपसे पड़ता है। संस्कारशून्यपर संस्कार डालना उचित एवं प्रभावकारी होता है। संस्कारयुक्तपर अन्य संस्कारोंका आरोपण करना अभीष्टप्रद नहीं होता। संस्कारपर संस्कारोंका आघात होनेसे विकृति आती है। कुसंस्कारोंको मिटाना सम्भव हो तो उन्हें मिटाकर नये संस्कार देना फलप्रद होता है। व्यक्ति एवं समाजको संस्कारयुक्त करना ऋषियोंका उद्देश्य था।

संस्कारको वहन करनेवाला जीव है। संस्कारको बनाने, सँवारने पोषण एवं नाश करनेवाला कर्म है। जीवका कर्मसे अभिन्न सम्बन्ध है। जीव, कर्म और संस्कार परस्पर सम्बद्ध हैं। स्थूल शरीरसे कर्म होता है। सूक्ष्म शरीरमें संस्कार होते हैं। कारण शरीरमें जीव रहता है। जीव कर्ता होनेसे सुख-दुःखका भोक्ता है। जीव जब एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है—मृत्युके उपरान्त जन्म ग्रहण करता है तो उसके पूर्वशरीरके संस्कार उसके नये शरीरमें स्थानान्तरित हो जाते हैं। जैसे किरायेदार अपने पुराने किरायेके आवासको छोड़कर दूसरे मकानमें जाता है तो वह पहलेवाले घरके सभी सामान अपने साथ लेकर नये भवनमें प्रवेश करता है। जीव किरायेके घर (शरीर)-में रहता है। इस शरीरका स्वामी ईश्वर है, जीव नहीं। जब जीव एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीर (योनि)-में जाता है तो उसका सब सामान (कर्म-संस्कार) उसके साथ ही होता है। नाना योनियोंका ग्रहण करता हुआ जीव संस्कारोंकी गठरी सिरपर रखे हुए रहता है।

संस्कार त्रिगुणात्मक होते हैं। त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति ही संस्कार है। स्थूल शरीरमें २३ विकृतियाँ—(५ भूत + ५ तन्मात्राएँ+ ५ कर्मेन्द्रियाँ + ५ ज्ञानेन्द्रियाँ + १ मन + १ अहंकार + १ महत्तत्त्व) होती हैं। सूक्ष्म शरीरमें १८ विकृतियाँ (५ तन्मात्राएँ + १० इन्द्रियाँ + १ मन + १ अहंकार + १ महत्तत्त्व) होती हैं, क्योंकि ५ भूतोंका विलय ५ तन्मात्राओंमें हो जाता है। कारण शरीरमें ३ विकृतियाँ (मन+अहंकार+महत्तत्त्व) होती हैं क्योंकि तन्मात्राओंका विलय तामस अहंकारमें, कर्मेन्द्रियोंका विलय राजस अहंकारमें तथा ज्ञानेन्द्रियोंका विलय मनमें हो जाता है। जीवमें मन (ज्ञान), अहंकार (भोक्ता-कर्ताका भाव) तथा महत्तत्त्व (बुद्धि)-का भाव सतत होता है। इन तीनोंके न होनेपर जीव, जीव नहीं रहता वह मुक्त (ईश्वर) होता है। ईश्वर इन विकृतियोंसे परे होता है। इसलिये उसमें कर्म-संस्कार नहीं होते। संस्कारका सम्बन्ध जीवसे है। ईश्वरका संस्कारोंसे कोई लेना-देना नहीं। संस्कार जीवकी प्रकृतिमें सात्त्विक, राजस एवं तामस गुणोंके रूपमें विद्यमान होते हैं। संस्कार नष्ट होते हैं, निष्काम तपसे। सूर्यके पास निष्काम तप है। इसलिये सूर्य भगवान् है। सूर्यकी भगवत्ता उसके अकाम तपमें है। सूर्य जीवोंका अधिपति है। सूर्यमण्डल गोलोक है। गो—प्रकाश रश्मि—ज्ञान। परम ज्ञानकी स्थितिमें होना गोलोकमें वास करना है। यहाँ संस्कार नहीं तो सुख-दुःख भी नहीं है, केवल आनन्द है। जीवको इसकी झलकमात्र मिलती है। हम संस्कारयुक्त जीव संस्कारमुक्त ईश्वरको नमन करते हैं।

यह कभी मत समझो कि भगवान्‌के घर, भगवान्‌के हृदयमें हमारे लिये जगह नहीं है। हमको तो वे अपने हृदयमें ही रखते हैं और वे सदा हमारे हृदयमें रहते हैं, पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते, इसमें भी उनका कोई मङ्गलमय रहस्य ही है। अतएव सदा, सर्वप्रकारसे उल्लसित और प्रफुल्लित हृदयसे उनका मङ्गल-स्मरण करते रहो। समर्पण तो वे अपनी चीजका आप ही करा लेंगे, हमारी ओरसे समर्पणकी तैयारी होनी चाहिये। मनुष्यका कभी भी भरोसा नहीं करना चाहिये। क्षणभङ्गुर प्राणीमें क्या सामर्थ्य है? यह तो सब श्रीभगवान्‌की महिमा है, जो नित्य है, सत्य है, सनातन है, अज है, अविनाशी है, सर्वशक्तिमान् है और परम सुहृद् है।

गृहस्थमे नारीधर्मकी शिक्षा

ससुरालमे जब लडकी जाय तो उसे बडे शील-स्वभावसे रहना चाहिये, क्योकि जब नव-वधूको देखनेके लिये नातेदार तथा अडोस-पडोसकी स्त्रियाँ आती हैं तो उन सबकी दृष्टि इसीपर रहती है कि वधूका बोलना, उठना-बैठना, आँचल, लाज, चतुराई आदि कैसे हैं। बहूको चाहिये कि वह सबसे पहले उठे और सबसे पीछे सोवे, भोजन भी सबसे पीछे करे, पतिकी गुप्त बात किसीसे न कहे और निर्वस्त्र होकर न नहावे। प्रथम छोटे-छोटे काम करने लगे, फिर धीरे-धीरे बडे कामोमे हाथ डाले तथा परिवारमे सचेत होकर चले। जो वचन भाँवर फिरते समय अपने पतिको दिये थे, उनका सर्वदा ध्यान रखना चाहिये। पतिको दिये गये वचन ये हैं—

(१) किसी दूसरेके घरमे निवास न करूँगी। (२) बहुत न बोलूँगी। (३) किसी परपुरुषसे बाते न करूँगी। (४) पति-सेवामे मन लगाऊँगी। (५) बिना पतिकी आज्ञाके कहीं नहीं जाऊँगी। (६) बाग या जगलमे अकेली कभी नहीं जाऊँगी आदि।

ससुरालमे सास, बडी ननद, छोटी ननद, जेठानी, देवरानी आदिसे यथायोग्य सम्मान श्रद्धा-भक्ति, स्नेह और प्रेमके साथ बात-चीत करे। सबका सम्मान करे। तिरस्कार या अवज्ञा किसीकी न करे। बडोकी आज्ञा माने तथा किसीकी कभी निन्दा न करे। जब कभी ससुरालसे माताके घर आवे तो वहाँ पतिके घरकी तथा सास-ननद आदिकी कोई बुराई न करे क्योकि एक तो इसको सुननेसे माता-पिताको दुःख होगा, दूसरे ससुरालवाले सुन पायेंगे तो उस (वधू)-पर कोप करेगे और अपना नेह हटा लेगे। सास देवरानी, जेठानी आदिसे कभी अलग रहनेका विचार न करे। सासको अपनी मातासे भी अधिक सम्मान दे, क्योकि वह उसके प्राणनाथकी भी पूज्या है। दूसरे, एक दिन वह भी सास बनेगी और यदि वह अपनी सासके साथ कठोरताका व्यवहार करेगी तो उसकी पुत्र-वधू भी उसके आचरणसे शिक्षा लेकर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करेगी। स्त्रीको अपने-मैके और ससुरालके लिये यह याद रखना चाहिये—

भाइ बहिन भावज सँग प्रीती। सहित सनेह करहु यह रीती॥
बैर भाव जो घरमे राखत। ताको उत्तम कोउ न भाषत॥
सहनसील निज करहु स्वभावा। जो सब नर-नारीको भावा॥
मैके रहे प्रसन्न सब काजी। पति-गृह सास-ससुर हो राजी॥

अग-भंग, काना, बधिर, कूबड़, लगड़ देखि।
कीजै नहिं उपहास कछु, आपन हित अवरेखि॥

मातु-पिता सम सास-ससुरमें। कीजै भाव जाय पतिपुरमें॥
सेवाविधि मर्यादि समेता। नारि-धर्म कह बुद्धि निकेता॥
अति आदर करु जेठ-जेठानी। बालक सम देखहु देवरानी॥
बहिन समान ननद को जानौ। शुद्ध भाव सबही मे आनौ॥
सब की सेवा पति के नाता। दासावहु गुण-गणकी बाता॥

जो स्त्री ससुरालमे जाकर इस रीतिसे बर्ताव नहीं करती उसके लिये ससुरालवाले ताने दिया करते हैं—

मैके पसु यह रही चरावत। नारि-धर्म कछु एक न आवत॥

अतएव हमेशा मीठे वचन बोले। बिना सोचे कोई बात न कहे। मीठा वचन सबको प्रिय होता है—

कागा काको धन हरै, कोयल काको देय।
मीठे वचन सुनाइ कै, जग अपनो करि लेय॥

अहितकारक तथा कटुवचन तो कभी किसीको कहे ही नहीं, क्योकि वचनका घाव इतना गहरा होता है कि जन्मभर भरता ही नहीं—

नावक शर घन तीर काढत कढत शरीर तें।
कुवचन तीर अधीर, कढत न कबहूँ उर गड़े॥

सदा प्रिय बोले। बोल-चालके इन नियमोको सदा ध्यानमे रखे—(१) बहुत न बोले (२) बिलकुल चुप भी न रहे (३) समयपर बोले (४) दोके बीचमे बिना पूछे कभी न बोले, (५) बिना सोचे-समझे न बोले, (६) शीघ्रतासे न बोले (७) ऊट-पटाँग न बोले (८) उलाहनभरी और मतभेदी बात कभी न बोले (९) सदा धर्मयुक्त यथार्थ बात बोले (१०) दूसरेको जो बुरी लगे ऐसी बात कभी न बोले (११) ताना न मारे व्यङ्ग्य न कसे (१२) हँसी-दिल्लगी न करे

(१३) दूसरोकी बुराई या निन्दा न करे, (१४) सत्य, कोमल, मधुर एव हितकी बात बोले, (१५) अपनी प्रशसा अपने मुखसे न करे, (१६) बात-चीतमे हठ न करे इत्यादि।

स्त्रियाँ गहना पहनना तो खूब चाहती हैं, पर गुणवती स्त्रीको गहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है और न शृङ्गारकी। अपने पतिको मोहित करनेके लिये उसके सद्गुण ही सच्चे शृङ्गार और गहने हैं। स्त्रीको चाहिये कि वह ऐसे शृङ्गार करे और गहने पहने—

मिस्सी—मिस (बहाना बनाना) छोड दे,

पान या मेहदी—जगम अपनी लाली बनाये रखनेकी चेष्टा करे,

काजल—शीलका जल आँखाम रखे,

बेदी—बदी (शरारत)-को तजनेका प्रयत्न करे

नथ—मनको नाथे, जिससे किसीकी बुराई न हो,

टीका—यशका टीका लगावे, कलङ्क न लगने दे

बँदनी—पति और गुरुजनाकी वन्दना कर,

पत्ती—अपनी पत (लाज) रखे,

कर्णफूल—कानासे दूसरेकी प्रशसा सुनकर फूले,

हँसली—सबसे हँसमुख रहे

माहनमाला—सबके मनको माह ले,

हार—अपने पतिसे सदा हार (पराजय) स्वीकार करे

कडे—किसीसे कडी (कठोर) बात न बोले

बाँक—किसीसे बाँकी—तिरछी न रहे, सदा सीधी चाल चले

दूआ—सबके लिये दुआ (आशीर्वाद) करे

छल्ले—छलको छोडे,

पायल—सब बडी-बूढियाके पैर लगे।

स्त्रीके जो आठ अवगुण—साहस झूठ, चपलता छल भय, मूर्खता, अपवित्रता और निर्दयता—बताये गये हैं उनको यथासाध्य छाडनेका प्रयत्न करना चाहिये।

स्त्रीको चाहिये कि वह अपने घरका काम समयके अनुसार बाँट ल। मोटेरूपम एक साधारण-सा कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जा सकता है—

(१) प्रात काल उठकर शौच, स्नान करना, घरकी सफाई करना, सामानकी देख-भाल करना आदि	२ घटे
(२) पूजा-पाठ	१ घटे
(३) विद्याकी चर्चा	२ घटे
(४) भोजन बनाना, खाना	३ घटे
(५) सखी-सहेलियाम बैठना	१ घटे
(६) शिल्प-विद्या	२ घटे
(७) शामका भोजन बनाना, खाना	३ घटे
(८) बाल-शिक्षा और परीक्षा	२ घटे
(९) नौकरोका काम देखना, घरका सामान जाँचना, हिसाब लिखना आदि	२ घटे
(१०) शयन	६ घटे
	२४ घटे

इस प्रकार अपने सुविधानुसार एक निश्चित कार्यक्रम बना लेना चाहिये। इससे समयकी बचत होती है तथा काम भी समयपर ठीक ढगसे होता है।

स्त्रीके लिये परिश्रमी होना बहुत आवश्यक है। बिना परिश्रम किये शरीरम नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। स्त्रियाके लिये घरका काम करना गेहूँ पीसना आदि सर्वोत्तम व्यायाम हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ घरके कामको हय समझती हैं यह बहुत बुरा है। घरका काम करनेमे सर्वदा गौरव-बुद्धि होनी चाहिये। याद रखना चाहिये कि जो स्त्री घरके काम करनेम लज्जाबोध करती ह वह अपने स्त्रीत्वको खो बैठती है।

स्त्रीको चाहिये कि अपने पतिकी आमदनीके अनुसार खर्च करे, प्रतिमास कुछ बचानेका प्रयत्न रखे। आमदनीसे अधिक उधार लकर ता कभी भी खर्च न करे। जो गृहस्थ उधार लेकर खर्च करते हैं उनका अपना जीवन तो सदा दुखी रहता ही है, ऋणभारसे दबे हुए उनके बच्चे भी बहुत क्लेश भोगते हैं। काम भी ठीक ढगसे नहीं हो पाता। नीतिके इन वचनापर सदा ध्यान देना चाहिये—

> अपनी पहुँच विचारके करतब करिये दौर।
> तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥

कारज वाही को सरै, करै जो समय निहार।
कबहुँ न हारै खेल, जो खेलै दाँव बिचार॥

अधिक खर्च होनम अधिकतर स्त्रियाकी विलासिता, फेशन तथा दूसराकी देखा-देखी करना ही प्रधान कारण होता है। अतएव इससे बचना चाहिये। स्त्रियाको चटोरपनसे भी सदा बचना चाहिये।

जीभ न जाके बस रहै, सो नारी मतिहीन।
धन लज्जा, आरोग्यता, करै प्रतिष्ठा छीन॥
रिनी दुखी निजको करै, मारि चटोरी जाय।
झूठ डाह कपटादि सब, अवगुन ताके होय॥

चटोरपन गृहस्थका निर्धन कर देता है और निर्धनकी कोई बात नहीं पूछता। जिसपर बीतती ह, वही भोगता है। सम्पत्तिम हजार सङ्गी हो जाते हैं पर विपत्तिम काई भी पास नहीं फटकता। वृक्षक नीचे निवास करना, घासपर साना छाल और पत्ते पहनकर लज्जाकी रक्षा करना अच्छा है परतु निर्धन होकर बन्धुवर्गमे रहना अच्छा नहीं। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह अपनी तथा अपनी सतानकी जीभपर काबू रखे, आवश्यकतासे अधिक कपडा न खरीदे तथा दखा-देखी गहने आदि न बनवाये। जहाँतक हा, बाजारसे उधार वस्तु कभी न खरीद नगद पैसा देकर चीज लेवे। उधार चीज खरीदनसे एक तो बाजारसे महँगे भावपर चीज मिलती हैं दूसरे खर्चका कोई हिसाब नहीं रहता कि कितना हा गया।

नारी गृहस्थाश्रमकी मूलभित्ति है। वह अपने आचरणका प्रभाव पत्नीरूपस पतिपर तथा मातृरूपसे भावी सन्ततिपर डालती है। अतएव उसका सदाचार एव शिष्टाचारस सम्पन्न होना देश एव समाजकी उन्नतिके लिय कितना आवश्यक है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।

शुभ सस्कार ही मानवकी असली पहचान

(श्री १०८ श्रीनारायणदास प्रेमदासजी उदासीन)

प्रकृतिके आँचलम सुख-दु ख शान्ति-अशान्ति तृष्णा-तृप्ति रोष-मुसकान आदिकी अनुभूति मानव-मनको होती आयी हे। इन अनुभूतियासे हमारा सम्पूण जीवन जुडा हुआ है। दिनके बाद रात पतझडके बाद बहार गरमीके बाद सर्दी जन्मके बाद मृत्यु आदि सभी उस प्रकृतिके अभिन्न अङ्ग हैं। मनुष्यके शुभ और अशुभ सस्कार भी उस कडीम उसे मानवता या दानवताका पद प्रदान करते हैं। यह क्रम अनादिकालसे ही चलता आ रहा हे। सत्ययुगम एक आर भक्त प्रह्लाद थे ता दूसरी आर हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु-जैस दानव। त्रेतायुगम भगवान् श्रीराम-जैसे मर्यादापुरुषोत्तम मानवलीला कर रह थे तो दूसरी ओर रावण-कुम्भकर्ण-जैसे दानव भी कम शक्तिवाले नहीं थे। द्वापरयुगम भगवान् श्रीकृष्ण-जेसे कमयागी वीर पुरुप थ तो दूसरी आर कस और शिशुपाल-जैस दुष्टाकी काई कमी नहीं थी। इनमसे महाभागवत श्रीप्रह्लाद आदि अपन-अपने सुसस्काराक बलपर पूजित हुए और हिरण्यकशिपु आदि अपन कुसस्कारके प्रभावसे दानव कहलाय और विनाशका प्राप्त हुए। आज इस कलियुगम विडम्बना है कि सस्काराका परिज्ञान न हाने तथा उनकी अवहेलनासे विश्व तथा भारतकी जो स्थिति है वह सामने ही हे।

शुभ अथवा अशुभ सस्काराकी प्राप्ति हम अपने जन्मके पहले ही माताके गर्भधारण करनेके समयसे प्रारम्भ हो जाती है। जिस प्रकार बीजके बाते ही उससे वैसे ही फल-वस्तुकी इच्छा की जाती हे, ऐस ही बालककी उत्पत्तिके पहले उसक माता-पिता और परिवारजन शुभ सस्कारोसे सम्पन्न उसक आगमनकी प्रतीक्षा करने लगते हैं। वह बच्चा ज्या-ज्या बडा होता जाता है त्या-त्या उसपर अपनी माताके सस्काराका असर हान लगता है बादम पिता और परिवारके अन्य सदस्योका। उसके पश्चात् अडोस-पडोसके वातावरण आर अपने बालमित्राका भी उसक जीवनपर प्रभाव होने लगता ह। आरम्भसे अन्ततक शिक्षक और उस विद्याकी छाप भी उसपर छा जाती है। इस प्रकार जीवनके कई पडाव पार करते हुए अन्तत मनुष्यक जीवनम सबका असर साफ-साफ दृष्टिगोचर हान लगता है। यथा—

सज्जन दुर्जन सग को बूँद स्वाति कर मान।
चातक मुख पड़ प्यास हर नाग कठ विष जान॥

आधुनिक युगमे हम शुभ सस्कारासे दूर होते जा रहे हैं, यह बडे कष्टकी स्थिति है। आजका मानव अपने जीवनमे मानवताके शिखरसे इतना नीचे गिर चुका है कि उसका उत्थान बडी ही कठिनतासे होनेवाला है। वर्तमानम हम प्रत्येक कार्यको धनके तराजूपर ही तौलकर देखते हैं, उसकी गुणवत्ता क्षमता या नैतिकताको काई भी श्रेय नहीं देता, परिणामस्वरूप हम अपने लक्ष्यसे कोसा दूर रह जाते हैं। इसी क्रमम हम अपने शुभ सस्कारोको पीछे छोडते हुए आगे भागनेवालोके पीछे-पीछे दौड लगाकर उनसे भी आगे निकलनेकी होड लगा रहे हैं। इस भौतिक अन्धानुकरणने हमारी बुद्धि, विचारशक्ति एव विवेक ज्ञानको कुण्ठित कर दिया है, यह भारतीय सस्कारापर आस्था न होनेका ही परिणाम है। इसीलिये कहा गया है कि—

कर विचार परिणाम पर, पीछे कर तू कर्म।
सुखी रहे जीवन सदा, पाले जो निज धर्म॥

आचार विचार, व्यवहार और कर्मसे ही मानवताकी जड मजबूत हुआ करती है। आचार अर्थात् आचरणकी उत्पत्ति चरित्रसे होती है। मानवका चरित्र ही उसके सम्पूर्ण जीवनका दर्पण हआ करता है। लेकिन आज हम उस चरित्रपर कितने खरे उतरे हैं, यह प्रश्न प्रत्येक मनुष्यको अपने-आपसे पूछना चाहिये। विचारका गठन मनम हुआ करता है अर्थात् मनमे जैसा भाव उत्पन्न होता है वैसा ही हमारे जीवनम कर्ममार्ग बन जाता है, उस कर्ममार्गपर हम कितना आगे बढ रहे हैं इस सदर्भमे भी जिज्ञासु अपने मनसे स्वय पूछ सकता है। व्यवहारकी प्रत्युत्पत्ति सगतिसे हुआ करती है अर्थात् जीवनके व्यवहारम जिस-जिस व्यक्तिसे काम पडता है उसके गुण-दोषसे हम अछूते नहीं रह सकते। यही कारण है कि हम अपने जीवनमे वस्तुविशेष या उस मानवका सही आकलन नहीं कर पाते कि उसका वास्तविक स्वरूप और मूल्य कितना हो सकता है। यथा—

हीरा कुछ कहता नहीं अपने मुख से दाम।
मानव तो हर चीज का, रखता दाम से काम॥

आजकल हम मनुष्यके कुल, धर्म, विद्या, चरित्र आदि सभी शुभ सस्काराको ताकपर रखकर आदर्शके प्रतिमान तथा हितैषीके रूपमे उस व्यक्तिका चयन कर लेते हैं, जो सिर्फ हमारी हाँ-म-हाँ करता हुआ चल सके, किंतु हम यह भूल जाते हैं कि वह अपने मधुर असत्परामर्शसे हमे विचलित कर सस्कारभ्रष्ट कर सकता है। अत हमे बहुत सावधान रहनेकी तथा असत्सङ्गसे सर्वथा दूर रहनेकी आवश्यकता है। हमारे जीवनम दैनिक शुभ कर्मोंका भी आगमन हुआ करता है, जिसका उदय हमारे अपने परिवारके सदस्योद्वारा कुलधर्म तथा पूर्वजन्मके सस्कारोपर आधारित हुआ करता है। यद्यपि हमारे शुभ सस्कार पूर्वजन्मके कर्मों तथा इस जन्मकी सगतिसे जुडे हुए हैं, फिर भी उसे पानेके लिये हमे अपना जीवन नि स्वार्थ होकर बिताना पडेगा। ऐसा नि स्वार्थ जीवन जीनेके लिये मनुष्यको बहुत कुछ त्याग करना पडेगा और शुभ सस्कारोकी सानपर खरा उतरना पडगा, तभी आत्मोन्नति हो सकेगी और सच्चा कल्याण सधेगा।

शुभ कर्मसे ही मानवताके सस्कार सुदृढ हुआ करते हैं और शुभ सस्कार ही हमारी पहचान बनते हैं। अत हमे इन सभी बातोको ध्यानमे रखते हुए निरन्तर उस दिशाम आगे बढते हुए अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये। हमारे जीवनमे कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं, जब हमारा अन्त करण अतिविचलित हो जाता है। ऐसे समयमे हम धैर्यसे काम लेना चाहिये और अपने मनमे यह धारणा सुनिश्चित कर लेनी चाहिये कि हम अपने मार्गपर अटल रहना है—

सत्य कर्मके, मार्ग मे कटक आते महान्।
लेकिन जो डरता नहीं, खरा उसे पहचान॥

हम दूसरोकी ओर कम बल्कि अपने अदरकी ओर अधिक देखना चाहिये और अपने कर्तव्यपर दृष्टि रखते हुए अपनी मन स्थितिको सन्तुलित रखना चाहिये। यदि हम ऐसा जीवन जी सक तो फिर वह दिन दूर नहीं जब श्रीपरमात्माकी कृपा हमार ऊपर अनायास ही हो जाय—

असभव भी सभव बने, यदि कृपा हो जाय।
ज्यो मोती बने सीप मे पत्थर हीरा कहाय॥

संस्कार और संस्कृति—सम्बन्धोंके अन्तःसूत्र

(डॉ० श्रीश्यामसनेहीलालजी शर्मा, एम०ए० (हिन्दी संस्कृत) पी-एच०डी०, डी०लिट्०)

पुरोवाक्—सस्कार और सस्कृति—इन दोनों सामाजिक उपादानोका सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। दोनो ही मानवके शरीर, आत्मा और व्यवहारके परिशोधन या परिमार्जनके आन्तरिक और बाह्य पक्षासे सम्बद्ध हैं। भारतीय सस्कृति सदास ही सस्कार और सदाचारसे अनुप्राणित रही है। सस्कार एक ओर जहाँ शरीर और आत्माको सुसस्कृत कर धर्म, अर्थ काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिमे सहायक बनते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे योग्य तथा चरित्रवान् सतानाके निर्माणका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। सस्कृति जब भी जीवनके शोधन या परिमार्जनकी क्रियासे जुडती है, तब उसके मूलमे शास्त्रोक्त सस्काराकी सम्पन्नता ही होती है। इस प्रकार सस्कार और सस्कृति—दोनोका लक्ष्य मानवके -तन-मन और आचार-विचारका शोधन है ओर इसी विन्दुपर दाना एक साथ दिखायी देते हैं।

सस्कार और सस्कृति—'सस्कार' ओर 'सस्कृति' शब्दका व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी इन दोना उपादानाके पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध ओर समान लक्ष्यको प्रमाणित करता है। 'सस्कार' शब्द सस्कृत भापाकी 'कृ' धातु से निष्पन्न है। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'घञ्' प्रत्ययके योगसे 'सस्कार' शब्द बनता है। 'कृ' धातुका अर्थ है 'करना' और 'सम्' उपसर्गका अर्थ 'सम्यक् रूपसे' या 'भलीभाँति' है। इस प्रकार निष्पन्न सस्कार शब्दका अर्थ पूरा करना सुधारना सज्जित करना माँजकर चमकाना शृङ्गार, सजावट आदि है। इसीसे सम्बद्ध शब्द 'सस्कृत' हे जो 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे 'क्त' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न है और जिसका अर्थ भी पूरा किया हुआ माँजकर चमकाया हुआ सुधारा हुआ सिद्ध सुनिर्मित तथा अलकृत आदि होता है। इसी सस्कृत विशपणकी सज्ञा सस्कृति है। सस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुस भूपणभूत अर्थम 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय करनेसे निर्मित होता है जिसका अर्थ भूपणभूत सम्यक् कृति है। इसीलिये 'भूपणभूत सम्यक् कृति' या चेष्टा ही सस्कृति कही जा सकती है। यह सशाधित या परिमार्जित करनेके भावकी सूचक सज्ञा है। उपर्युक्त व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ-सधान सस्कार, सस्कृत और सस्कृतिके पारस्परिक सम्बन्धोंको स्पष्टरूपसेससूचित करता है। सस्कार सस्कृतिकी केन्द्राय चेतना है। भारतीय सस्कृति और हिन्दू धर्मम सस्काराका विशिष्ट महत्त्व है। सस्कारसम्पन्न व्यक्ति ही सुसस्कृत, सभ्य शिष्ट, सदाचारी और चारित्रिक दृष्टिसे उत्तम माना जाता है, जबकि सस्कारविहीन व्यक्ति अधोगतिको प्राप्त करता है। ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदयकी सिद्धिके लिये मानवका सस्कार-सम्पन्न होना अपरिहार्य है—

> वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निपेकादिर्द्विजन्मनाम्।
> कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥
>
> (मनुस्मृति २।२६)

मनुने सस्काराको सम्पादित करनेका निर्देश देते हुए स्पष्ट कहा है कि सस्कार इस जन्म और परजन्मये पवित्र करनेवाला है—'**पावन प्रेत्य चेह च।**' यही नहीं सस्कारसम्पन्नतासे बुरे सस्काराका शमन और श्रेष्ठ सस्कारोका जन्म होता है।

सामान्यत सस्कार शब्दका अर्थ शरीरसम्बन्धी और आत्मासे सम्बद्ध दोपोके आहरणसे है। शारीरिक और मानसिक मलोके अपाकरणके विना आध्यात्मिक पूर्णताकी योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती जो सस्कारोका कार्य और सस्कृतिका चरम ध्येय है क्योकि सस्कृतिका सम्बन्ध भी किसी-न-किसी रूपमे मानव-व्यवहारके परिशोधन या परिमार्जनके आन्तरिक और बाह्य पक्षासे अवश्य जुडता रहा है।

सस्कृतिकी अवधारणा और सस्कार—जिन शाब्दिक उपादानोस सयुक्त होकर 'सस्कृति' शब्दका निर्माण हुआ है उसे देखते हुए लौकिक पारलौकिक धार्मिक आध्यात्मिक नैतिक आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक अभ्युदयके उपयुक्त देह, इन्द्रिय मन बुद्धि

अहकार आदिकी भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ एव हलचले सस्कृति कही जायँगी। ये भूषणभूत सम्यक् चेष्टाएँ सस्कारित मनकी ही चेष्टाएँ हैं, क्योकि सस्कारोसे ही व्यक्तिको शास्त्रीय आचार-विचार और व्यवहारकी प्रबल प्रेरणा मिलती है और वह अध्यात्ममार्गका अनुगामी बनकर भगवद्भक्तिपरायण होता है। सस्कारोसे शुचिता, पवित्रता, सदाशयता-उदात्तता तथा सात्त्विक गुणोकी सहज प्रतिष्ठा होती है। इससे मानव-जीवन अत्यन्त मर्यादित, सयमित और आचारनिष्ठ बनता है। अत सस्कृतिके स्वरूप-निर्माणमे सस्काराकी भूमिका निर्विवाद है। सस्काराके सुविहित शास्त्रीय विधानद्वारा निर्मल किये गये तन और मनके द्वारा ही जीवन-शोधनकी क्रिया सम्भव है, जो सस्कृतिकी विशिष्ट पहचान है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि 'सस्कार' और 'सस्कृत' शब्द तो सस्कृतसाहित्यमे बहुप्रयुक्त हैं, पर सस्कृति शब्दका प्रयोग वहाँ अपक्षाकृत कम हुआ है। आज जिस अर्थमे 'कल्चर' के पर्यायके रूपम सस्कृति शब्दका प्रयोग हो रहा है, इस अर्थमे सस्कृति शब्द प्राचीन सस्कृत साहित्यम व्यवहृत नहीं मिलता। सस्कृति शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थवाला है कल्चरसे वह भाव व्यक्त नहीं होता। कल्चर शब्द लैटिन भाषाके 'कुलतुरा' शब्दसे उद्भूत है, जिसका अर्थ है पौधा लगाना या पशुओका पालन करना। कल्चर शब्द कल्टीवेशनका समानार्थक है। कल्टीवेशनका अर्थ कृषि-कर्मके साथ उन्नति और सवर्धन है।

सस्कृतिको मानवप्रज्ञाकी आन्तरिक चेतनाका अमृतमय विकास मानते हुए जब उसका सम्बन्ध आदर्श आस्था मानवता विश्वबन्धुत्व और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व-जैसे महत् मूल्योसे जुडता है तब उसके मूलम सस्कारोकी सत्प्रेरणा सनिहित रहती है, क्योकि सस्कार सदाचार सद्विचार और शास्त्रीय आचारके घटक हैं। सस्कार ही सद्विचार और सदाचरणके नियन्ता हैं। सस्कृतिने यदि मानवको पशुधर्मसे ऊपर उठाया है और इतना साधनसम्पन्न बनाया है कि स्वर्गके देवता भी ईर्ष्या करने लगे तो सस्कारोने उसे वह शक्ति दी है जिससे वह अपने कर्तव्य और कर्मको विधिपूर्वक करनेमे समर्थ हो सके। सस्कारासे सत्प्रेरणा पाकर ही सस्कृति मानवमे विद्यमान उसके अन्त सौन्दर्यको दीप्त करनेवाली प्रक्रिया कहलाती है, जिसके आश्रयसे मानवको अपने जीवनके उच्चतम ध्येय एव पवित्र सकल्पोको प्राप्त करनेका दिग्बाध होता है। सस्कार तन-मनके मलाको दूर करते हैं, तो सस्कृति अवगुणोका परिमार्जन करती है। वस्तुत सस्कृति सामाजिक जीवनका वह व्यापक धर्म है, जिसमे समाजकी समग्र साधना, आकाङ्क्षा एव उपलब्धि आ जाती है।

सस्कृति आन्तरिक तत्त्व होते हुए भी धर्म, दर्शन कला चिन्तन, अध्यात्म समाज, नीति आदिके रूपमे अपने-आपको अभिव्यक्त करती है। सस्कृतिका सीधा सम्बन्ध सस्कारस है। सस्कार वस्तुको चमकाते और श्रेष्ठ बनाते हैं, उसके भीतरकी गरिमाको उद्घाटित करते हैं, तो सस्कृति जातीय सस्कारोको उत्तम बनान, परिष्कार करने एव सशोधित करनेकी क्रिया है।

सस्कृति मानवीय कृति है। मानव गतिशील प्राणी है, इसीलिये सस्कृति भी निरन्तर प्रगतिशील है। जो आज की अनुभूति है वह कल सस्कारके रूपमे अवशिष्ट रह जायगी और कलकी अनुभूति सम्भवत दूसरे प्रकारकी होगी, इसलिये दृष्टिकोण भी बदल जायगा। सस्कृति मनुष्यके दैनिक व्यवहारमे कलामे, साहित्यमे, धर्मम, मनोरजन और आनन्दम पाये जानेवाल रहन-सहन और विचारके तरीकोम मानव-प्रवृत्तिकी अभिव्यक्ति है। मनुष्यके लौकिक, पारलौकिक सर्वाभ्युदयके अनुकूल ऐसे आचार-विचारको सस्कृति कहा जा सकता है जो सस्कार-सम्पन्नताद्वारा परिशुद्ध कर लिया गया हो।

सस्कार और सस्कृतिके आयाम—जो कार्य शास्त्रविहित विधिसे सम्पन्न सस्कारद्वारा होता है, वही कार्य सस्कृतिकी पहचान बनता है अर्थात् सस्कृति मानवके भाव, कर्म, वृत्ति प्रकृति मन चित्त बुद्धि और आत्मा—सभीका सस्कार करती है। सस्कार और सस्कृति समूची जीवनचर्या और बुद्धि-सम्पदाको प्रभावित करती है।

सस्कृतिका गहरा सम्बन्ध धर्म दर्शन और नैतिकताके साथ भी है। अत सस्काराका भी सीधा सम्बन्ध धर्म

नैतिकताके साथ जुडता है। अपने व्यापक अर्थमे धर्म मानवके समूचे शुभाचरणको समेट लेता है। वह समस्त मानवताका ज्योतिर्मय आचार-कलश हे। वह श्रद्धासिक्त कार्योंके प्रति मानवकी आचारनिष्ठा हे। वह जीवन्त आस्थाका पुष्ट कर्मरूप है।

सस्कृति मानवका समग्र सस्कार करती है। मानवकी सभी वृत्तियोका परिष्कार, परिमार्जन सस्कृतिके माध्यमसे होता है। अत सस्कारा (गर्भाधान, जातकर्मादि)-की सम्पन्नताको शरीर और आत्माकी परिशुद्धतासे जोडते हुए शास्त्रोने सस्काराक करनेके व्यापक नियमोका निर्देश किया है। इतना ही नहीं, सस्कारसम्पन्न मानव दया, करुणा, अहिसा, मानवता, आदर्श आस्था दान सत्य प्रेम, उदारता, त्याग और बन्धुत्व-जैसे महनीय गुणासे सयुक्त हाता है। सस्कार मानव-स्वभावपर शासन करता है। मानव-हृदयको मृदुल एव पावन बनानेकी क्षमता सस्काराम है। मानव-हृदय सस्कारोसे ही उदार आर विशाल वनता है। इसी दृष्टिसे सस्कार सस्कृति और धर्मम गहरा सम्बन्ध है।

नैतिकताका आधार नीति है जो करणीय-अकरणीयका भेद बताकर करणीयका निश्चय कराती है। जीवनक विविध क्षेत्राम सस्कारित मानवन जो अनुभव अर्जित किये हें, उन्हींके आलोकमे युग-युगम मनीषी आचार्योन नीतिका निर्धारण किया है और वताया है कि व्यक्ति और समाजके कल्याणके लिय क्या करनयोग्य है और क्या न करनेयोग्य। इस नीतिसे जो कर्तव्यभाव मानवजातिमे विकसित होता है, वही नैतिकता है। व्यापक रूपसे समाजकी स्थिति एव रक्षाके लिये किया जानवाला प्रयत्नविशेष शील किवा नैतिकता है। यह शील सस्कारका ही एक घटक है। अत सस्कार और सस्कृतिके विविध आयामाके साथ नैतिकताका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

वर्तमान परिदृश्यमे सस्कार और सस्कृति—यह निर्विवाद है कि उत्तम सस्कारसे श्रेष्ठ सस्कृतिका स्वरूप बनता है, इसीलिये भारतीय धर्मशास्त्रामे सस्कारसम्पन्न व्यक्तिके अभ्युदय और सस्कारविहीन व्यक्तिके पतनकी बात बार-बार कही गयी हे। सस्कारासे शुचिता, पवित्रता सदाशयता तथा सात्त्विक गुणाकी सहज प्रतिष्ठा होती है पर आधुनिक सभ्यताके दबावमे मानव सस्कारहीन होकर तीव्र गतिस पतनोन्मुख हो रहा है।

आज स्वार्थ भौतिक सुख, धन, पद प्रतिष्ठा महत्त्वपूर्ण ओर परम्परागत शास्त्रीय मूल्य अर्थहीन हा गये हैं। ऐसे समयमे जब तथाकथित भौतिक विचारधारासे प्रभावित तथा मानसिक रूपसे अपरिपक्व लोग जीवनके शाश्वत मूल्यासे विमुख हाकर एक ऐसी सस्कारहीन सस्कृतिका पोषण कर रह हैं तो सच्ची उन्नति होना कैसे सम्भव है? यह तो अधोगतिका मार्ग हे। मनुष्यको इस अधागामितासे राकनेके लिये शास्त्राक्त सस्काराकी विधिसम्मतताको स्वीकार करना ही होगा तभी सस्कृतिका उदात्तस्वरूप बना रह सकता है।

~~~ o ~~~

अपने चरित्रका निर्माण करो

यदि तुम अपनी गलतियाके नामपर घर जाकर सिरपर हाथ रख जन्मभर रोते रहोगे तो उससे तुम्हारा उद्धार नहीं हानेका, वल्कि उससे तुम और भी दुर्वल हा जाआगे। यदि कोई कमरा हजारा वर्षोसे अन्धकारपूर्ण हो और तुम उसमें जाकर रोने-धोने लगे—हाय! वड़ा अँधेरा है तो क्या उसमसे अँधेरा चला जायगा? सारे जीवन यदि तुम अफसास करते रहो—ओर, मैंने अनेक दुष्कर्म किये वहुत-सी गलतियाँ कीं तो उसस क्या लाभ? हमम वहुत-स दाष हैं—यह किसीका वतलाना नहीं पड़ता। दाष-दुगुण दूर करनका दृढतासे उपाय करा, ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो एक क्षणम सव अशुभ चला जायगा। अपने चरित्रका निर्माण करो और अपन प्राकृत स्वरूपको—उसी ज्योतिर्मय, उज्ज्वल, नित्यशुद्ध स्वरूपको प्रकाशित करो तथा प्रत्यक व्यक्तिम उसी आत्माका जगाआ।

~~~ o ~~~

आख्यान—

सर्वहितकारी संस्कार—अतिथि-सत्कार

(डॉ० सुश्री विजयलक्ष्मीसिहजी)

अतिथि-सत्कार ऐसा परम हितकारी सस्कार है, जिसके अनुपालनमात्रसे उत्तम गति प्राप्त करना सम्भव है। यहाँ महाभारतमे वर्णित अतिथि-सत्कारका एक ऐसा आख्यान प्रस्तुत है, जिसमे एक कबूतरने अतिथिके भोजनके लिये अग्निम अपनी ही आहुति दे दी—

किसी बडे जगलम एक बहेलिया रहता था। वह प्रतिदिन जाल लेकर वनम जाता और पक्षियोको मारकर उन्ह बाजारमे बच दिया करता था। उसके इस भयानक तथा क्रूर कर्मके कारण उसके मित्रा तथा सम्बन्धियो—सबने उसका परित्याग कर दिया था, कितु उस मूढको अन्य कोई वृत्ति अच्छी ही नहीं लगती थी।

एक दिन वह वनम घूम रहा था, तभी बडी तेज आँधी उठी और देखते-देखते मूसलाधार वृष्टि होने लगी। आँधी और वर्षाके प्रकापसे सारे वनवासी जीव त्रस्त हो उठे। ठडसे ठिठुरते और इधर-उधर भटकते हुए बहेलियेने शीतसे पीडित तथा भूमिपर पडी हुई एक कबूतरीको देखा और उसे उठाकर अपने पिजरेम डाल लिया। चारो ओर गहन अन्धकारके कारण बहेलिया एक सघन पडक नीचे पत्ते बिछाकर सो गया।

उसी वृक्षपर एक कबूतर निवास करता था, जो दाना चुगने गयी अभीतक वापस न लौटी अपनी प्रियतमा कबूतरीके लिय विलाप कर रहा था। उसका करुण विलाप सुनकर पिजरेमे बद कबूतरीने उस अभ्यागत बहलियेके आतिथ्य-सत्कारकी सलाह दी और कहा—'प्राणनाथ! मैं आपके कल्याणकी बात बता रही हूँ, उस सुनकर आप वैसा ही कीजिये इस समय विशेष प्रयत्न करके एक शरणागत प्राणीकी आपका रक्षा करनी है। यह व्याध आपके निवासस्थानपर आकर सर्दी और भूखसे पीडित होकर सो रहा है आप इसकी सेवा कीजिय मरी चिन्ता न कीजिये।' पत्नीकी धर्मानुकूल बात सुनकर कबूतरने विधिपूर्वक बहेलियेका सत्कार किया और उससे कहा—'आप हमारे अतिथि हैं, बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

इसपर बहेलियेने कबूतरस कहा—इस समय मुझे सर्दीका कष्ट है, अत हा सके तो ठडसे बचानेका कोई उपाय कीजिये।

कबूतरने शीघ्र ही बहुत-से पत्ते लाकर बहेलियेके पास रख दिये और यथाशीघ्र लुहारके घरसे अग्नि लाकर पत्ताको प्रज्वलित कर दिया। आग तापकर बहेलियेकी शीतपीडा दूर हुई। तब उसने कबूतरसे कहा कि मुझे भूख सता रही है, इसलिये कुछ भोजन करना चाहता हूँ।

यह सुनकर कबूतर उदास होकर चिन्ता करने लगा। थोडी देर सोचकर उसने सूखे पत्तामें पुन आग लगायी और हर्षित होकर बोला—मैंने ऋषियो, महर्षियो, देवताओ और पितरो तथा महानुभावोके मुखसे सुना है कि अतिथिकी पूजा करनेमे महान् धर्म होता है। अत आप मुझे ही ग्रहण करनेकी कृपा कीजिय।

इतना बोलकर तीन बार अग्निकी परिक्रमा करके वह कबूतर आगम प्रविष्ट हो गया। महात्मा कबूतरने देह-दानद्वारा अतिथि-सत्कारका ऐसा उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया कि व्याधने उसी दिनसे अपना निन्दित कर्म छोड दिया। कबूतर तथा कबूतरी—दानाको आतिथ्यधर्मक अनुपालनसे उत्तमलोक प्राप्त हुआ। दिव्य रूप धारण कर श्रेष्ठ विमानपर बैठा हुआ वह पक्षी अपनी पत्नीसहित स्वर्गलोक चला गया और अपने

सत्कर्मसे पूजित हो वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगा—

तत स्वर्गं गत पक्षी विमानवरमास्थित ।
कर्मणा पूजितस्तत्र रेम स सह भार्यया॥

(महा० शान्ति० १४८।१२)

संस्कार-परिपालनमे कालज्ञान

(श्रीसीतारामजी शर्मा)

समय-समयपर विभिन्न आध्यात्मिक उपायोंद्वारा मनुष्यको सुसस्कृत बनानेकी महत्त्वपूर्ण संस्कारपद्धति भारतीय तत्त्ववेत्ताआने निर्दिष्ट की है, जो मुख्यत कालपर आधारित है। कालको भगवान्‌का स्वरूप बताया गया है। कालकी गतिसे ही सब कुछ सञ्चालित एव नियन्त्रित होता है। मूलरूपसे सर्वथा अविभाज्य काल-तत्त्वको सुचारु जीवनचर्याके लिये सूर्य-चन्द्रमाके परिभ्रमणके अनुसार विभाजित किया गया है। तदनुसार सवत्सर, अयन आदि भेद होते हैं। सवत्सरके पूर्व युग मन्वन्तर, कल्प आदिकी भी गणना होती है। यहाँ सवत्सर आदिका सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है—

सवत्सर—सौर, सावन, बार्हस्पत्य, चान्द्र और नाक्षत्र-भेदस सवत्सर पाँच प्रकारका हाता है। सौरम जन्मसम्बन्धी कार्य सावनम यज्ञादि, बार्हस्पत्यम तीर्थयात्राएँ, चान्द्रम सर्व-कर्म और नाक्षत्रमे आयुनिर्णय आदि करने उचित हैं।

अयन—तीन-तीन ऋतुआक अर्थात् छ -छ मासके सौम्य ओर याम्य—दो अयन होते हैं। सौम्यायनमे विवाह आदि एव याम्यायनमे भैरव नरसिह तथा त्रिविक्रम आदिकी प्रतिष्ठा शुभ कही गयी है। सूर्य जब मकरराशिमे प्रवेश करता है तबसे उत्तरायण होता है ओर सूर्यके कर्क-राशिम प्रवेश करनेपर दक्षिणायन हाता है।

ऋतु—सौर और चान्द्रभेदसे दो-दो मासकी छ ऋतुएँ होती हैं। उनम श्रौत-स्मार्तकी सब क्रियाएँ चान्द्रम और अन्य सस्कारकर्म सौरम किये जात हैं।

मास—सौर, सावन चान्द्र और नाक्षत्र—चार प्रकारके मास हैं। एक सक्रान्तिसे दूसरी सक्रान्तितकका सौर ३० दिनका सावन दो पक्षाका चान्द्र और चान्द्रके २७ नक्षत्राके योगका नाक्षत्रमास होता है। उनम भी अमान्त और पूर्णिमान्त—दो भेद हैं। अमान्तम वैदिक कार्य और पूर्णिमान्तम स्मार्त कार्य किये जात हैं।

अधिमास—३२ महीन १६ दिन और ४ घडीक अन्तरपर अधिमास आता है। यदि किसी वर्ष दो अधिमास आ जायँ तो पहला श्रेष्ठ और दूसरा मलिम्लुच होता है। इसम सभी शुभ कर्म एव सस्कार वर्जित हैं। परतु किसी प्रकारका काम्य या सदनुष्ठान पहलस ही आरम्भ किया जा चुका हो और उसकी समाप्तिके समय यदि अधिमास आ जाय तो समापन नहीं रोका जाता।

सक्रान्ति—सूर्यके मेषादि राशिम यागसे सक्रान्ति होती है। सौर वर्षम ये बारह होती हैं। इनमे छ उत्तरायण और छ दक्षिणायनकी हैं। सामान्यरूपसे सक्रान्तिकी पूर्वापरकी १६-१६ घडियाँ पुण्यकाल होती हैं। यदि रात्रिके पूर्वभागम सक्रान्ति हो तो तत्सम्बन्धी दान-पुण्य एव सस्कारादि कार्य पूर्वदिनम अन्यथा परदिनम करने चाहिये।

पक्ष—शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष—इनमे शुक्लपक्षम शुभ और कृष्णपक्षमे तदनुकूल उग्र कर्म किये जाते हैं।

दिन—चान्द्र सौर, सावन और नाक्षत्र भेदसे चार प्रकारका होता है।

तिथि—एक अमाके अन्तसे दूसरी अमाके आरम्भपर्यन्त तीसवाँ भाग तिथि होती है। प्रतिपदा द्वितीया आदि तिथियाँ हाती हैं। सूर्योदयकी तिथि यदि दोपहरतक न रहे तो वह खण्डा हाती है। उसम सस्कारादि वर्जित हैं। सूर्योदयस सूर्यास्तपर्यन्त रहनवाली तिथियाँ अखण्डा होती हैं। यदि गुरु-शुक्रका अस्त बालत्व और वृद्धत्व न हो तो उसम सस्कार आरम्भ करना अच्छा है। सस्कारसम्बन्धी जिस कर्मके लिये शास्त्राम जो समय नियत हा उस समय यदि सस्कारकी तिथि मौजूद हो तो उसी दिन उस तिथिमे सस्कारसम्बन्धी कार्य करने चाहिये।

जो तिथि सस्कारके लिये आवश्यक नक्षत्र और योगसे युक्त हो वह यदि तीन मुहूर्त हो तो भी सम्पूर्ण श्रेष्ठ होती है। जन्म और मरणमे तात्कालिक तिथि ग्राह्य मानी गयी है। विशेषकर देवकार्योमे सूर्योदयकी तिथि उपयागी होती है। मन्वादि युगादि ग्रहणद्वय व्यतीपात और वैधृतिम तत्कालव्यापिनी तिथि ली जाती है।

वार—आजके सूर्योदयसे आरम्भ होकर आगामी सूर्योदयपर्यन्तकी ६० घडियाका एक वार होता है। वाराका गणनाक्रम सूर्य सोम भौम बुध बृहस्पति शुक्र और शनि है। मुहूर्त-ग्रन्थोम वार-प्रवृत्ति देशभेदके अनुसार कभी सूर्योदयसे पहल और कभा पीछे बतलायी गयी है। वास्तवम सूर्योदयसे सूर्योदयपर्यन्त यथार्थ है।

नक्षत्र—नक्षत्र अथवा तदधिष्ठाता देवताका पूजन करके सस्कार किया जाता है। अश्विनीके अधिष्ठाता अश्विनीकुमार, भरणीके यम कृत्तिकाके अग्नि आदि हैं। नाक्षत्रादि सस्कार अनिष्टकारी देवताकी शान्ति अथवा अभीष्टदाता ग्रहकी प्रसन्नताहेतु किये जाते हैं।

उपयुक्त मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण आदि सस्कारानुष्ठानमे सहयोग करते हैं।

सस्कारानुष्ठानहेतु कालज्ञानकी अत्यन्त आवश्यकता है। इनके लिये शास्त्रामे जो समय नियत किये गये हैं, उस समयके अनुसार ही अनुष्ठान किये जाने चाहिये जिससे यथोचित फलोकी प्राप्ति हो सके। सभी धर्मोंमे सस्काराका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सस्कार मनुष्यको परिष्कृत करते हैं। सस्कार मनुष्यके शरीर तथा मनपर ही नहीं सूक्ष्म अन्त करणपर भी प्रभाव डालते हैं। इनके प्रभावस मनुष्यको गुण-कर्म-स्वभावकी दृष्टिसे समुन्नत स्तरकी ओर उठनेमे सहायता मिलती है। कालगणनाके अनुसार किये हुए सस्काराद्वारा मनुष्य देवत्वकी प्राप्ति कर सकता है। ऋषि-मुनियाने विविध सस्काराका समय-निर्धारण बहुत ही सूक्ष्म साधनाके आधारपर किया है। कालके यथोचित परिपालनसे ही सस्कारमे पूर्णता आती है। इस दृष्टिसे प्रत्येक सस्कारका काल नियत है। अत उस नियत कालका ज्ञान रखना आवश्यक है। मनमाने समयपर सस्कार-कर्म करनेसे व्यक्ति सस्कारच्युत हो जाता है।

~~~o~~~

'सस्कार' मानवके लिये अपरिहार्य

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)

'रत्न' का मूल्य उसके सस्कारित होनपर ही होता है, अन्यथा उसकी गणना सामान्य पत्थरम ही प्राय होती है। इसी प्रकार सस्कारित होनेपर ही मनुष्य ओज, तज और यश पूत बनता है। इसीलिये पण्डितवर्गोने कहा है—

सस्कारशौचेन परमपुनीते
शुद्धा हि बुद्धि किल कामधेनु ॥

वस्तुत मनुष्यको सही मानव या शान्त सुशिक्षित शीलवान् एव सभ्य मानव बनानेम सम्काराकी प्रमुख भूमिका होती है। शारीरिक एव आध्यात्मिक दृष्टिसे पुष्ट एव परिपूर्ण बनान तथा मानवता सिखानेके सशक्त सार्थक एव समर्थ साधन या माध्यम सस्कार ही होते हैं। महर्षि अङ्गिराने स्पष्ट किया है कि विधिपूर्वक सम्पन्न किय गये सस्कारोंमे सस्कृत व्यक्ति परम तत्त्वको या परमानन्दका प्राप्त करता है जैसे कि अनेक रगोसे विधिपूर्वक सुसज्जित चित्र आह्लाद दनेमे समर्थ हाता है—

चित्रकर्म यथाऽनकैरङ्गैरुन्मील्यते शनै ।
ब्राह्मण्यमपि, तद्वत्स्यात्सस्कारैर्विधिपूर्वकै ॥

'सस्कार' दोषपरिमार्जन हेतु एव व्यक्तिमें गुणोंके आधानक लिये अपरिहाय हैं। जैमे मिट्टीको घडेका सौन्दय एव स्वर्णका नाना आभूषणाके रूपका सौन्दर्य तत्सम्बन्धित सस्कार ही प्रदान करत हैं, उसी प्रकार मानवको उसकी वाणी, व्यवहार चाल-चाल, उठन-बैठने अनुशासनम रहने एव शील आदिका सौन्दर्य 'मानवीय सस्कार' ही प्रदान करते हैं।

मानवमात्रका सस्कारित होना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षा या साक्षरता और सस्कारम सस्कार ही अपरिहार्य एव महत्त्वपूर्ण हैं। राक्षसराज रावण ज्योतिप, साहित्य, कर्मकाण्ड वेद एव राजनीतिका परम ज्ञाता था। वह तपम्वी एव उत्तम या कुलीन वशका भी था—

खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥
× × × ×
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥
(रा०च०मा० ६।२२।४ ६।२०।३)

किंतु सर्वनीतियाम पारङ्गत एव तपस्वी हानपर भी सस्कारासे रहित होनेके कारण अत्यन्त विद्वान् तथा ज्ञानसम्पन्न 'रावण' का राक्षसत्व ही मिला और वह हय राक्षसकाटिमे ही परिगणित हुआ जबकि 'राम' सुसस्कृत होनक कारण एव सस्काराके अनुसार सदाचरण एव शीलसम्पन्न होनसे विश्ववन्द्य बन गये। राजा दशरथन रामसहित सभी पुत्राक जन्मसे लेकर सभी सस्कार सुपुनीत रूपम सम्पन्न कराये थ—

नामकरन कर अवसरु जानी। भूप पठि पठए मुनि ग्यानी॥
× × × ×
करनबेध उपबीत बिआहा। सग सग सब भए उछाहा॥
(रा०च०मा० १।१९३।२ २।१०।६)
~~~

उक्त सस्काराकी सम्पन्नताके कारण ही रामादि चारा भाइयाम शील आदि सद्‌गुणोकी सहज सम्पन्नता थी—

चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

(रा०च०मा० १।१९८।६)

स्पष्ट हे कि सस्कारासे मनुष्यम मानवताका आधान होता हे एव समस्त गुणोमे परम श्रेष्ठ शील नामक गुणका सञ्चार होता है।

सोलह सस्काराम सर्वप्रधान एव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रथम सस्कार **'गर्भाधान-सस्कार'** है। क्षेत्रकी शुद्धिमे बीजारोपणसे सुफलप्रदायी सतानका जन्म होता है। गर्भाधान पत्नी-पतिका समागम या भोग नहीं है, अपितु सात्त्विक वशपरम्पराको सधारण करनेका सयमपूर्ण सतोगुणी सुयत्न है। आदर्श ओर अमल विचारासे समन्वित पति-पत्नी तप पूत होकर जब सतानकी कामनासे गर्भाधान-सस्कारमे सरत होते हैं, तो वे मनस्वी, यशस्वी तथा श्रेष्ठ सतानकी उपलब्धिक कारण बनते हैं। परम मनस्वी एव तेजस्वी प्रह्लादकी माँके सयमका फल ही उन्हे प्रह्लादके रूपमे प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार राजर्षि एव प्रकाण्ड विद्वान्, पण्डित दार्शनिक राजा भर्तृहरि अपने माता ओर पिताके सदाचरणपूर्ण पवित्र सयमके परिपाकके रूपम प्रकट हुए थे, जिन्हाने समस्त विश्वको अपनी सुकीर्तिसे सुवासित किया था। गर्भाधान-सस्कारके लिये अच्छे विचार, पावन एव निश्छल मानसिकता तप पूत चिन्तन एव सयमशक्ति अपरिहार्य तत्त्व हैं, जिनसे शीलवान् सतानकी उपलब्धि होती है। प्राय सभी प्रमुख स्मृतियो तथा गृह्यसूत्रोमे उक्त सस्कारकी सात्त्विक सम्पन्नताके सूत्र समुपलब्ध हैं।

'पुसवन-सस्कार' गर्भस्थ जीवको सत्त्व या आत्मिक बलसे सयुक्त करनेके लिये होता आया है। इसमे माङ्गलिक मन्त्रानुष्ठानासे गर्भस्थ जीवको ऊर्जा और तेज प्रदान करनेका सुयत्न होता है।

'सीमन्तोन्नयन-सस्कार' क्षेत्रकी पुन शुद्धि तथा गर्भगत बालककी समुचित रक्षा या योग तथा क्षेमके लिये सम्पन्न किया जाता है। इसम गर्भवती स्त्रीकी प्रसन्नताहेतु भी उपक्रम करणीय हैं जिसम कि गर्भस्थ शिशुम प्रसन्नता एव आनन्दका सहज आधान हो सके। इस सस्कारम सद्विचारमे परिपूर्ण माता स्वस्थ चिन्तनापत होकर अपने चतुर्मुखी आनन्दपूर्ण वातावरणसे गर्भस्थ शिशुको शिक्षा ज्ञान सुचिन्तन विवेक एव प्रतिभासे सम्पन्न बनानेका उपक्रम करती है। अर्जुनपुत्र अभिमन्युने गर्भम इसी सस्कारके माध्यमसे अपने पिता अर्जुन और माता सुभद्रासे शिक्षा प्राप्तकर चक्रव्यूहक छ द्वारके भेदनम दक्षता प्राप्त की थी। माता-पिता और वातावरणकी प्रसन्नता तथा माता-पिताके सुविचाराका प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर पूर्णरूपसे होता है। यही प्रभाव जातकको जीवनभर प्रभावी बनाता है। अत गर्भस्थ शिशुक कल्याणहेतु माता-पिताकी मानसिकताका निर्विकार होना अत्यन्त आवश्यक है। उस समय माता-पिताको लोभ क्रोध वासना अहङ्कार, कलह, चिन्ता शोक आदिसे दूर रहना चाहिये जो गर्भस्थ शिशुके हितम होता है।

'जातकर्म-सस्कार' जातकके शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्यके लिये तथा पवित्रता और स्वच्छता-सधारणके लिये अपरिहार्य होता ह।

नामका प्रभाव जातकपर अवश्य होता है, अत **'नामकरण-सस्कार'** म चित्तम रमनेवाले आदर्श महापुरुषोंके नामपर विचार करके जातकका नामकरण किया जाता है। इस सस्कारके दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं—आयु और तेजकी वृद्धि तथा सासारिक व्यवहारकी सिद्धि। स्मृतिकारोने इस सस्कारकी सम्पन्नताका समय जन्मके दसवे दिनसे लेकर एक वर्षपर्यन्त निर्धारित किया है।

नामकरणके पश्चात् जातकका **'निष्क्रमण-सस्कार'** करनेका विधान है। सुखद वातावरण सूर्यका समुचित प्रकाश एव वायुकी स्वच्छता आदिकी प्राप्ति इस सस्कारका उद्देश्य है।

'अन्नप्राशन-सस्कार' जातककी छ माहकी अवस्था सम्पूर्ण होनेपर करणीय हे। इस सस्कारके पश्चात् जातकको 'सात्त्विक अन्न' अल्प मात्रामे प्रदान किया जाता है। यह सस्कार जातककी दैहिक पुष्टि एव उसके सवर्धनहेतु होता है।

'चूडाकरण-सस्कार' बालकके बल तथा बुद्धिकी वृद्धिके लिये होता है। इसका ध्येय स्वच्छता पवित्रता सौन्दर्यवर्धन एव पुष्टि भी मान्य है। इसमे शिखाका रखना ज्ञानशक्तिकी चैतन्यता तथा ज्ञानवृद्धिहेतु माना गया है क्योकि शिखाकी सुस्थिति बुद्धिचक्रके समीप होती है।

'कर्णवेध-सस्कार' मनकी एकाग्रता एव चित्तकी सुस्थिरताहेतु परिगणित है।

चूडाकरण एव कर्णवेधके पश्चात् महत्त्वपूर्ण एव

परमोपयोगी **'उपनयन-सस्कार'** आता है। इसे यज्ञोपवीत-सस्कार भी कहते हैं। यह सस्कार व्यक्तिको द्विजन्मा कोटिमे परिगणित कराता है। यह सस्कार ब्रह्मत्वज्ञानप्राप्तिका मूल द्वार कहा गया है। जीवनको व्यवस्थित करने एव लक्ष्यको प्राप्त करनेहेतु यह सस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव उपादेय है। इस सस्कारकी सम्पन्नताका समय आचार्योंने जातककी ८ वर्षकी आयुसे मान्य किया है।

'उपनयन-सस्कार' के सन्मार्गको **'वेदारम्भ-सस्कार'** प्रशस्त करता है। इसमें ब्रह्मचारी नाना प्रकारकी विद्याआमे निष्णात हो जाता है। इसके पश्चात् **'समावर्तन-सस्कार'** होता है। शिक्षा या विद्याप्राप्तिके पश्चात् ब्रह्मचारीको इस सस्कारके माध्यमसे सुज्ञानके अनुसार आचरणक लिये प्रेरणापूर्ण उद्बोधन प्राप्त होता है। 'समावर्तन-सस्कार' मे आचार्य अपने शिष्याको सदाचरणहेतु सुन्दर तथा सुबाध सूक्तियाद्वारा सदुपदेश देकर शिष्याका मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह दीक्षान्त उपदेश होता है। इसका सार्वभौम महत्त्व उपनिषद्के प्रस्तुत कथनमे सहज ही स्पष्ट हे। आचार्य शिष्यको निर्देश करते हैं—**'सत्य वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद । यान्यस्माक सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।'** इत्यादि।

समावर्तन सस्कारोपरान्त मानव-जीवनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एव पुरुषार्थकी उपलब्धिका प्रमुखाधार **'विवाह-सस्कार'** है। विवाह-सस्कारमे सबसे महत्त्वपूर्ण 'सप्तपदी' है। सप्तपदीके सुवाक्याका अनुकरण एक दम्पतीको सहज ही पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धि करानेमे सम्यक् साधन बनता है एव नर-नारीके जीवनको धन्य बनाता है।

'पारस्करगृह्यसूत्र' म उल्लिखित सप्तपदीका चिन्तन सत्त्व, शौर्य क्षमता एव सन्मार्गकी प्रेरणा प्रदान करता है। उक्त गृह्यसूत्रमे सप्तपदीके वचन अवलोकनीय हैं—

'एकमिषे, द्वे ऊर्जे, त्रीणि रायस्पोषाय, चत्वारि मायोभवाय, पञ्च पशुभ्य , षड् ऋतुभ्य , सखे सप्तपदा भव सा मामनुव्रता भव।'

मानव-जीवनका सौन्दर्य प्रदान करनवाली सप्तपदीकी ये सप्तरश्मियाँ परम मनोरम हैं, जा सम्यक् दृष्टि सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् आचारकी प्रेरणा देकर मानव-जीवनको कृतकृत्य कर आनन्दरूप मोक्षका अनुगमन कराती हैं। उक्त पक्तियाका तात्पर्य है कि 'वरवधूका अग्निप्रदक्षिणा करनेक लिये तत्पर प्रथम पद सात्त्विक अन्नके अर्जनके लिये हो, द्वितीय पद (सत्कर्मसे प्राप्त सदन्नके उपभोगसे) ऊर्जा प्रदान करे, तृतीय पद सतोषरूपी सुधनसे परितृप्त करे, चतुर्थ पद ससारम अससारी निर्लिप्तभावरूपी सम्पदासे सतृप्त करे, पञ्चम पद जीवधारियासे स्नेह, सहृदयता उत्पन्न कराये, षष्ठ पद ऋतुआके अनुसार समयोचित सयम प्रदान करे तथा सप्तम पद हममे एव सभी मानवोमे मैत्रीभाव उत्पन्न कराय।' 'विवाह-सस्कार' की उक्त सप्तपदीके चिन्तनमे परम कल्याणकारी एव मानवके लिये हितकारी तथा शाश्वत रूपसे आह्लादकारी अनुकरणीय तत्त्व विद्यमान है।

विवाह-सस्कारके पश्चात् उक्त मनोरम चिन्तनसे उपेत व्यक्ति अपने गृहस्थाश्रमके कर्तव्योका नि स्पृहरूपसे परिपालन करता हुआ अपनी आयुके पचास वर्षोंतक धर्म, अर्थ और कामका सदाचारपूर्वक सञ्चयन कर पुनश्च मोक्षक प्रति ध्यान केन्द्रित करनके लिये उद्यत होता है, तब उसके लिये **'वानप्रस्थ-सस्कार'** से सस्कारित होनेका विधान है। नि स्पृहता एव अनासक्ति इस सस्कारका आधार है।

वानप्रस्थ-सस्कारके सयमस सन्यास-आश्रमकी भूमिका तैयार होती है। **'सन्यास-सस्कार'** आत्माको परमात्मासे मिलानेका श्रेयस्कर कार्य करता है। इस सस्कारसे त्याग एव अनासक्तिका भाव उदित होता है और व्यक्ति परम शान्तिको प्राप्त करता है। जेसा गीतामे उल्लेख है कि—

विहाय कामान्य सर्वान्पुमाश्चरति नि स्पृह ।
निर्ममो निरहङ्कार स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मी स्थिति पार्थ नैना प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

(२।७१-७२)

अन्तिम सस्कार **'अन्त्येष्टि-सस्कार'** है। वस्तुत इसमें जीवकी सद्गतिका विधान है। जैसे प्राणीका जन्म मङ्गलमय मान्य है, उसी प्रकार प्राणीकी मृत्यु भी मङ्गलमय सुमान्य है। श्रद्धाके साथ किया गया अन्तिम सस्कार जीव और उसके परिवारके श्रेयक लिये हाता है। दान और दीपदान—य दा जीवकी शान्तिके हितकारक साधन कह गय हैं।

निष्कर्षत समग्र धरापर सम्पूर्ण व्यक्तियकि हित पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धि शाश्वत शान्ति और समृद्धिक लिय सस्कारास सुसस्कारित होना अनिवार्य एव अपरिहाय है।

~~०~~

सस्कार, संस्कृति और साधना

(वैद्य श्रीबद्रीनारायणजी शास्त्री)

जिस प्रकार विश्वात्माका खेल यह ससार है वैसे ही शरीर और जीवात्माका सगम हमारा व्यक्तित्व है। इसमे शरीर विश्व-प्रकृतिका प्रतिनिधि है। ससारकी सत्ता तो दीखती है पर यही सब कुछ नहीं, इसके पीछे परमात्माकी सत्ता है। इसी प्रकार शरीरकी सत्ता दीखती है पर वही अन्तिम सत्ता नहीं, उसका स्वामी जीवात्मा है।

विश्वका स्वामी विश्वात्मा है तथा शरीरका स्वामी जीवात्मा। विश्व विश्वात्माके लिये तथा शरीर जीवात्माके लिये है। मकान उसके मालिकके लिये होता है मालिक मकानके लिय नहीं। भोजन हमारे लिये है, हम भोजनके लिये नहीं। विश्व और शरीर परिवर्तनशील हैं परमात्मा और जीवात्मा अपरिवर्तित अजर, अमर, अनादि ओर अनन्त हैं। ससार है—यह सत्य है हम ससारम हैं—यह भी वास्तविकता है, हम चाह या न चाह इसमे रहनेको बाध्य हैं। शरीर हे—यह असत्य नहीं। हम इस शरीरमे निवास कर रह हैं—यह भी सत्य है पर यह शरीर ही हमारा साध्य नहीं—यह भी यथार्थ है। सत्य है कि एक दिन इस शरीरको अनिवायत छोडना पडेगा इस ममताक ससारको छोडना पडेगा। यही यथार्थवादी विचार हमारी सस्कृतिका आधार हे। हमारे सम्पूर्ण क्रिया-कलाप इस मौलिक विचारको केन्द्र बनाकर ही क्रियान्वित होने चाहिये। इस विचारम त्याग और भाग—दानाका समन्वय है। भौतिक विकास और आध्यात्मिक उत्कर्ष दोनाका सामञ्जस्य है। प्रवृत्ति और निवृत्ति, भुक्ति और मुक्ति प्रेय और श्रेय तथा विद्या और अविद्याकी इस सगम-स्थलीपर हमारी सस्कृतिका भव्य प्रासाद खडा है। पशुजीवन निरा प्रकृतिपरक है, प्रवृत्तिमय है, उसमे कोई विकास नहीं, वह सदास एक-सा है किंतु मानव-जीवन प्रकृतिपरक प्रवृत्तियापर सस्कृतिका सौध बनाता है वह उस सस्कारित करता है। यह प्रकृति और सस्कृतिका सगम है। मानव-जीवन सस्कारास समृद्ध हाता है और उस भव्य उत्कर्षकी आर ले जाता है। यह प्रकृतिका सस्कारास अलकृत करता है उमे अपनी चेतनास जाग्रत् कर जगमगाता है और उसम सद्भावनाआके रग भरता हे।

स्वर्ण प्राकृतिक है, स्वर्णकार अपनी चेतनासे, अपनी कलासे उसमे सौन्दर्य भरता है, उसे अलकारका स्वरूप प्रदान करता हे। वैद्य लोहे-जैसी धातुको सस्कारित कर भस्म बनाता हे, उसम अपार शक्ति भर देता है और उसे अमूल्य बना देता है। माली उपवनके झाड-झखाड साफ करके वृक्षोको अपनी कलासे चमत्कृत करता है, उनमें सौन्दर्य भरता है और उनको सजाता है।

सस्कार प्रकृतिका परिमार्जन करते हैं, उसका शोधन करते हैं, प्राकृतिक प्रवृत्तियाका उन्नयन करते हैं, उनको मर्यादित करते हैं—सयमित करते हे, जिससे नैतिकताकी अभिव्यक्ति होती है। वे कण्टकाकीर्ण भूमिको स्वच्छ, निरापद, आलोकित और प्रशस्त बनाते हैं। दोषोका निराकरण कर गुणोका आधान करते हैं। नरको नारायण बनाना, पुरुषको पुरुषोत्तम बनाना वैदिक सस्कृतिका मौलिक सदेश है। चन्द्रमा षोडश कलाआसे सम्पन्न होकर पूर्ण हाता है तथैव मानव-जीवन षोडश सस्कारासे समृद्ध होता है परिपूर्ण होता है।

गर्भाधान पुसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन, चूडाकर्म कर्णवेध विद्यारम्भ, उपनयन दीक्षान्त विवाह, वानप्रस्थ सन्यास और अन्त्येष्टि-सस्कार आयुक्रमसे व्यक्तित्वको आलोकित करते हैं।

यहाँपर सक्षेपमें नामकरण-सस्कारपर विचार प्रस्तुत हैं। सम्पूर्ण परिवार और समाज नवजात शिशुका अभिनन्दन करता है उसे गौरवमण्डित करता है। नवजीवनकी यह अर्चना यथार्थपर आधारित है। नामकरणद्वारा नवागतको माता-पिता नाम प्रदान करते हैं। समाज उस नामको स्वीकृति देता है। वह समाजका मान्य सदस्य बनता है और परम्परागत सम्पदाका अधिकारी बनता है।

नाम माता-पिताक विचाराकी सामाजिक अभिव्यक्ति है वे नवागतसे क्या चाहत हैं? वह समाजको अपने किन गुणास विभूषित कर? उसका चारित्रिक आदर्श क्या हो? ये सम्पूर्ण महत्त्वाकाङ्क्षाएँ कवल नामम साकार हा जाती हैं।

मानवके व्यक्तित्वको गौरवमण्डित करना समाजका पावन कर्तव्य है। व्यक्ति और समाजका समन्वय अनिवार्य है। वस्तुत व्यक्ति वन्दनीय है, अर्चनीय है, क्योंकि व्यक्ति समाजका मूल है।

व्यक्तित्वका विकास परिवारका विकास है। परिवारका विकास समाजको विकसित करता है। विकसित समाज राष्ट्रका उन्नयन करता है और राष्ट्र उन्नत होकर विश्वविकासकी प्रतिष्ठापना करनेमे सक्षम होता है।

व्यक्ति सस्थाएँ बनाता है। सस्थाआस व्यक्तिका निर्माण नहीं होता। व्यक्तित्वकी महिमा महान् है। सस्कार व्यक्तिका विकास करते हैं।

सस्कार अहकाराका सामञ्जस्य करते हैं। क्षुद्र स्वार्थोसे भरा अहकार समाज और राष्ट्रके लिये घातक है। आध्यात्मिक साधक अहकारको मिटानेका प्रयास करता है। दार्शनिक अहकारको ही सिद्धिमे सर्वाधिक बाधक मानते हैं।

दार्शनिक पद्धतिमें साधक अपनी वृत्तियाको प्रत्याहारद्वारा अन्तर्मुखी करता है। विश्वकी प्रत्येक वस्तुसे अपनी अहजन्य ममताको हटाता है। वह शरीरसे भी ममत्वको मिटा देता है, अपने-आपमे स्थित हो जाता है। स्वमे स्थित होकर अहकारको समाप्त कर देता है। उस स्थितिमे जीवात्मा-परमात्माका योग होता है, वह ब्राह्मी-स्थिति प्राप्त कर लेता है। सस्कार भी अहकाराका परिशोधन करते हैं। सस्काराद्वारा अहकारोके परिमार्जनकी पद्धति दार्शनिक विधासे श्रेष्ठ है। व्यक्ति परिवारमें परिवार समाजमे समाज राष्ट्रमे तथा राष्ट्रिय अहकार विश्वमे व्याप्त हो जाता है। अब वह समग्र विश्वको अह मानता है। विश्व उसका अपना बन जाता है। उसका ममत्व अपने परिवारसे ही नहीं पूरे विश्वसे हो जाता है। इस विराट् रूपमें अहकार नहीं रहता है बल्कि समष्टिका रूप धारण कर लेता है। नामकरणके अवसरपर माता-पिता नवजात शिशुका आशीर्वाद देते हैं। समग्र समाज उस आशीर्वाद दकर गौरवान्वित करता है। समाजके द्वारा नवागतकी महिमाका स्वीकरण और अभिनन्दन माता-पिताके अहकारको रुष्ट नहीं करता है। बालककी अर्चनासे वे अपने-आपको अर्चित मानते हैं। उसके गौरवमे स्वयको गौरवमण्डित करते हैं। अहकारका इससे अच्छा परिशोधन क्या हो सकता है? गौरव देनेसे गौरव मिलता है और अहकार गुरुतामें विलीन हो जाता है। व्यक्तिका गौरव ही समाजका गौरव बन जाता है। शिशुको गौरव प्रदान कर सभी हर्षित होते हैं, उल्लाससे नाच उठते हैं।

सस्काराका सामाजिक सस्करण पर्व है। पर्व जन-जनमे सास्कृतिक सस्कारोका जागरण करते हैं। परम्पराओको प्रेरित करते हैं। सस्कृति परम्पराआके रूप—लोकजीवनको प्रभावित करती है। पर्व पावन परम्पराआके प्रेरक हैं। वे लोकजीवनकी नीरसताको सरस बनाते हैं, उसमे उल्लास और आह्लाद भर देते हैं। लोकजीवन ही सस्कृतिका साकार रूप धारण कर लेता है। सस्कार व्यक्तित्वके जीवनक्रमका अनुसरण कराते हैं और पर्व, व्रत, त्योहार कालक्रमके अनुसार भावनाएँ जगाते हैं। सस्कार व्यक्तिको जगाते हैं, जबकि पर्व सम्पूर्ण समाजको। पर्व उत्सव, त्योहार, व्रत, मेले और तीर्थयात्राआके रूपमे सस्कृति सनातन है। व्रत सयमित जीवनका प्रेरक है, अनुशासनका प्रतीक है।

पर्वोके उल्लासमे जो सस्कृति मुखरित होती है, वह होलीके विमुक्त गायनमे झकृत है। धूलिवन्दनके रूपमे वह कण-कणकी अर्चना करती है तो नवरात्रियामे शक्तिसाधनामे रत होकर कौमार्यकी वन्दना कराती है, मातृत्वकी भावना जगाती है।

अक्षयतृतीया परशुरामजीके ओजस्वी जीवनकी याद दिलाती है। वटसावित्रीव्रत पतिव्रताके पावन सकल्पका व्यक्तीकरण है। गङ्गादशहरा तीर्थयात्राआका प्रतीक है। व्यासपूर्णिमा गुरुचरणामे अभिवन्दन सिखाता है तथा रक्षाबन्धनका पर्व भाई-बहिनके पावन प्रेमको जगाता है। जन्माष्टमी महापुरुषाके पदचिह्नोपर चलनेकी प्रेरणा देती है तो गणपतिचतुर्थी राष्ट्रिय अधिपतिका प्रथम पूजनीयताका प्रतिपादन है। पितृपक्ष पूर्वजा एव वयोवृद्धाके प्रति श्रद्धाका सम्प्रेषण करता है। इस प्रकार प्रत्येक पर्व पावन सस्कारोंका प्रेरक है। इस प्रकार सस्कार सस्कृतिके द्वार हैं तथा पर्व व्रत और त्योहार जनजीवनके प्रेरक और अनुरजक हैं। भारतीय जनजीवन इनसे अनुप्राणित होकर नरसे नारायण बननेकी साधनामे रत होकर उन्नति और प्रगतिका ओर बढता रहे, ऐसी अभिलाषा है। [सस्कार-सौरभ]

~~o~~

सस्कारोकी नामावली

(डॉ० श्रीजयनारायणजी मिश्र)

सस्कार-विमर्शक प्रधान ग्रन्थोमे भिन्न-भिन्न प्रकार एव नामोसे सस्काराकी नामावली दी गयी है, जिसका सक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है—

आश्वलायनगृह्यसूत्र—१ विवाह, २ गर्भाधान ३ पुसवन ४ सीमन्तोन्नयन ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ चूडाकरण ८ उपनयन, ९ समावर्तन और १० अन्त्येष्टि।

बौधायनगृह्यसूत्र—१ विवाह, २ गर्भाधान ३ पुसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म ६ नामकरण, ७ उपनिष्क्रमण ८ अन्नप्राशन, ९ चूडाकरण, १० कर्णवेध ११ उपनयन, १२ समावर्तन और १३ पितृमेध।

पारस्करगृह्यसूत्र—१ विवाह २ गर्भाधान ३ पुसवन ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ निष्क्रमण ८ अन्नप्राशन ९ चूडाकरण, १० उपनयन, ११ केशान्त, १२ समावर्तन और १३ अन्त्येष्टि।

वाराहगृह्यसूत्र—१ जातकर्म २ नामकरण ३ दन्तोद्-गमन, ४ अन्नप्राशन ५ चूडाकरण, ६ उपनयन ७ वदव्रत, ८ गोदान ९ समावर्तन १० विवाह, ११ गर्भाधान, १२ पुसवन और १३ सीमन्तोन्नयन।

वैखानसगृह्यसूत्र—१ ऋतुसगमन २ गर्भाधान ३ सीमन्तोन्नयन ४ विष्णुबलि, ५ जातकर्म ६ उत्थान ७ नामकरण ८ अन्नप्राशन, ९ प्रवासागमन १० पिण्डवर्धन, ११ चौलक १२ उपनयन १३ पारायण, १४ व्रतबन्धविसर्ग, १५ उपाकर्म, १६ उत्सर्जन १७ समावर्तन और १८ पाणिग्रहण।

गौतमधर्मसूत्र—गौतमधर्मसूत्रमें '**चत्वारिशत् सस्कारा अष्टौ आत्मगुणा**' कहकर सस्काराकी एक लम्बी सूची दी गयी है—१ गर्भाधान २ पुसवन, ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नामकरण ६ अन्नप्राशन ७ चौल ८ उपनयन ९—१२ वेदव्रत १३ स्नान १४ सह-धर्मिणीसयोग १५—१९ पञ्च महायज्ञ (दव पितृ मनुष्य भूत एव ब्रह्म), २०—२६ सप्त पाकयज्ञसस्था (अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावणी आग्रहायणी चैत्री एव आश्वयुजी), २७—३३ सप्त हविर्यज्ञसस्था (अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास चातुर्मास्य आग्रहायणेष्टि, निरूढपशुबन्ध तथा सौत्रामणी), ३४—४० सप्त सोमयज्ञसस्था (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी, वाजपेय अतिरात्र तथा आप्तोर्याम), दया, क्षान्ति अनसूया, शौच अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य तथा अस्पृहा—आठ आत्मगुण।

महर्षि अङ्गिराद्वारा प्रतिपादित सस्कार—१ गर्भाधान, २ पुसवन, ३ सीमन्तोन्नयन ४ विष्णुबलि ५ जातकर्म ६ नामकरण, ७ निष्क्रमण ८ अन्नप्राशन, ९ चौल, १० उपनयन ११—१४ चार वेदव्रत, १५ समावर्तन, १६ विवाह, १७ पञ्च महायज्ञ, १८ आग्रयण, १९ अष्टका, २० श्रावणी २१ आश्वयुजी २२ मार्गशीर्षी, २३ पार्वण २४ उत्सर्ग तथा २५ उपाकर्म।

महर्षि व्यासनिर्दिष्ट षोडश सस्कार—१ गर्भाधान २ पुसवन ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८ चूडाकरण ९ कर्णवेध १० उपनयन, ११ वेदारम्भ १२ केशान्त, १३ समावर्तन, १४ विवाह, १५ विवाहाग्निपरिग्रह और १६ त्रेताग्निसग्रह।

इस तरह हिन्दूशास्त्राने सस्काराका गम्भीरतासे विमर्श किया है और उनकी उपादेयता सिद्ध करके विश्वगुरुकी प्रतिष्ठा प्राप्त की है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन्पृथिव्या सर्वमानवा ॥

(मनु० २।२०)

सस्कारोस मण्डित सनातनधर्मकी अपनी विशेष महिमा है, किंतु दिव्य भूमि भारत-दश आज सस्कारविहीनोका देश होन जा रहा है। यह बहुत बडी चिन्ताकी बात है। हमारी पहचान हमारी धरोहर है। हमारा आचार हमारी सस्कृति है, हमारी वेश-भूषा हमारी वाणी है। हमारे सास्कृतिक आधार आप्तवाक्य और वेदादि महान् ग्रन्थ हैं। ४ वेद ६ वदाङ्ग, मन्वादि स्मृतियाँ ईशादि उपनिषद्, १८ पुराण, रामायण महाभारत रामचरितमानस गीतादि धमग्रन्थ एव गुरुजन सत-महात्मा—किसीने भी धर्मविरुद्ध आचरणकी अनुमति नहीं

दी। किसीने आचारविहीन जीनेका आदेश नहीं दिया, फिर कहाँसे ये गर्हित विचार और व्यवहार आ गये, जिसके कारण हमारी पीढी सस्कारोका नाम भी नहीं जानती। यह दोष कहाँसे आ गया? यह विमर्श्य है चिन्तनीय है। यदि समय रहते इस ओर हम सचेत नहीं हुए तो वह दिन दूर नहीं, जब हम अपने सनातन गौरवको सर्वथाके लिये भुला डालेगे।

हम ऋषियोकी सतान हैं, हम सदसद्विवेचनी बुद्धि पूर्वजोसे प्राप्त है। यदि कुसगमात्रसे परहेज कर लिया जाय और हम अपनी आर्ष-परम्पराका स्मरण करे तथा तदनुरूप सदाचारका पालन करे तो हम पुन गौरवान्वित हो जायँगे। अन्य धर्मावलम्बी हमारी तरह परमुखापेक्षी, परधर्मसेवी एव अपसस्कृतिके अनुयायी नहीं बन रहे हैं। वे कट्टरपन्थी कहलाकर भी गौरवका अनुभव करते है और एक हम है जो स्वधर्मके अनुष्ठानमे लज्जाका अनुभव करते हैं। इसीलिये वैभवशाली सस्कृतिसम्पन्न होनेपर भी हम उपहासके पात्र बन बैठे हैं। इसलिये हमे चाहिये कि हम गीता (३। ३५)-के इस वाक्यका सदा स्मरण करे और आचरणमे लाये—

'स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ॥'

~~~ o ~~~

आख्यान—

आत्म-प्रशंसासे पुण्य नष्ट हो जाते है

महाराज ययातिने दीर्घकालतक राज्य किया था। अन्तम सासारिक भोगोसे विरक्त होकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उन्होने राज्य दे दिया और वे स्वय वनमे चले गये। वनमे कन्द-मूल खाकर क्रोधको जीतकर वानप्रस्थाश्रमकी विधिका पालन करते हुए पितरो एव देवताओको सतुष्ट करनेके लिये वे तपस्या करने लगे। वे नित्य विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे, जो अतिथि-अभ्यागत आते, उनका आदरपूर्वक कन्द-मूल-फलसे सत्कार करते और स्वय कटे हुए खेतमे गिरे अन्नके दाने चुनकर तथा स्वत वृक्षसे गिरे फल लाकर जीवननिर्वाह करते थे। इस प्रकार पूरे एक सहस्र वर्ष तप करनेके बाद महाराज ययातिने केवल जल पीकर तीस वर्ष व्यतीत कर दिये। फिर एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे। उसके पश्चात् एक वर्षतक वे पञ्चाग्नि तापते रहे। अन्तके छ महीने तो वायुके आहारपर रहकर, एक पैरसे खडे होकर वे तपस्या करते रहे।

इस कठोर तपस्याके फलसे राजा ययाति स्वर्ग पहुँचे। वहाँ देवताओने उनका बड़ा आदर किया। वे कभी देवताओके साथ स्वर्गमे रहते और कभी ब्रह्मलोक चले जाते थे। उनका यह महत्त्व देवताओकी ईर्ष्याका कारण हो गया। ययाति जब कभी देवराजके भवनमे पहुँचते, तब इन्द्रके साथ उनके सिहासनपर बैठते थे। देवराज इन्द्र उन परम पुण्यात्माको अपनसे नीचा आसन नहीं दे सकते थे, परतु स्वर्गमे आये मर्त्यलोकके एक जीवको अपने सिहासनपर बैठाना इन्द्रको बुरा लगता था। इसमे वे अपना अपमान अनुभव करते थे। देवता भी चाहते थे कि किसी प्रकार ययातिको स्वर्ग-भ्रष्ट कर दिया जाय। इन्द्रको देवताओका भाव भी ज्ञात हो गया।

एक दिन ययाति इन्द्रभवनमे देवराज इन्द्रके साथ एक सिहासनपर बैठे थे। इन्द्रने अत्यन्त मधुर स्वरमे [illegible] तो महान् पुण्यात्मा है। आपकी समानता भला कौन कर सकता है? मेरी यह जाननेकी बहुत इच्छा है कि [illegible] सा ऐसा तप किया है, जिसके प्रभावसे ब्रह्मलोकमे जाकर वहाँ इच्छानुसार रह लेते है।

ययाति बड़ाई सुनकर फूल गये और वे इन्द्रकी मीठी वाणीके जालमे आ गये। वे अपनी [illegible] लगे। अन्तमे उन्होने कहा—'इन्द्र! देवता, मनुष्य, गन्धर्व और ऋषि आदिमे कोई भी तपस्यामे मुझ [illegible] पड़ता।'

बात समाप्त होते ही देवराजका भाव बदल गया। कठोर स्वरमे वे बोले—'ययाति! [illegible]। तुमने अपने मुखसे अपनी प्रशसा की है, इससे तुम्हारे वे सब पुण्य नष्ट हो गये, जिनकी तुमने चर्चा [illegible] आदिमे किसने कितना तप किया है—यह बिना जाने ही तुमने उनका तिरस्कार [illegible]

आत्म-प्रशसाने ययातिके तीव्र तपके फलको नष्ट कर दिया। वे स्वर्गमे [illegible] करके यह सुविधा उन्हे दे दी थी कि वे सत्पुरुषोकी मण्डलीमे ही गिरे। [illegible] स्वर्ग जा सके। (महाभारत आदिपर्व)

~~~ o ~~~

काले पत्थर और भोजनका धागा—एक संस्कार-कथा

(डॉ० श्रीभीमाशंकरजी देशपाण्ड, एम्०ए० पी-एच्०डी०, एल्-एल्०बी०)

भारतीय समाज धर्मप्रधान है। यहाँ संस्कारोंका विशेष महत्त्व है—वे संस्कार चाहे शरीर एवं अन्तःकरणकी शुद्धि-सम्बन्धी हों अथवा भाव-भक्तिसम्बन्धी हों। भावभक्ति-सम्बन्धी एक संस्कार-कथा यहाँ प्रस्तुत है—

दक्षिण भारतका श्रीक्षेत्र श्रीराघवेन्द्रस्वामीजीके लिये प्रसिद्ध है। द्वैतमतके अनेक भक्तगण यहाँ दर्शनके लिये आते हैं और उनका अभीष्ट यहाँ दर्शनमात्रसे पूर्ण होता है।

एक समयकी बात है, इस पीठके एक उत्तरकालीन पीठाधीश भ्रमणके लिये निकले। घूमते-घूमते सायंकाल वे एक छोटे-से ग्राममें आये। सायंकालीन सन्ध्याका समय होनेके कारण वे किसी उपयुक्त स्थानकी तलाशमें थे। संयोगसे उस गाँवमें ब्राह्मणका केवल एक ही मकान था। वे उस घरकी ओर आये।

घरमें केवल एक वृद्धा थी। जो अपने इकलौते पुत्रके साथ वहाँ रहती थी। पीठाचार्य स्वामी घरमें आये तो वृद्धाने उनका यथायोग्य आतिथ्य किया। वृद्धाका पुत्र दिनभर खेतीका काम करता और रात्रिके समय घर लौटता था। उसका नाम जितपा था।

स्वामीजीने रात्रिमें वहाँ विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जितपा खेतमें कामपर गया। दोपहर लगभग डेढ़ बजे वह वापस आया। सबके साथ प्रसाद ग्रहण करनेके लिये उसे बुलाया गया। सब लोगोंने देखा कि स्नान करके जितपाने खूँटीपर टँगे यज्ञोपवीतको धारण किया तदनन्तर ही वह भोजनके लिये बैठा। भोजनके बाद पुनः उसने यज्ञोपवीतको उसी खूँटीपर लटका दिया और कामपर चला गया।

जितपाकी इस चेष्टासे स्वामीजी अत्यन्त विस्मित हुए। रात्रिके समय उसके खेतसे वापस आते ही स्वामीजीने उसे अपने पास बुलाया और उससे पूछताछ की। तब सरल भावसे जितपाने कहा—'गुरुदेव! यह भोजनका धागा है। नित्य भोजन करते समय गलेमें डालकर भोजन करनेका सुननेमें आया है। इसीलिये भोजन करते समय मैं पहन लेता हूँ। भोजनके बाद खूँटीपर लटका देता हूँ, इससे यह सुरक्षित रहता है नहीं तो कामके समय धागा टूट जायगा तो नित्य नया कहाँसे लाऊँगा?'

इस धागेको यज्ञोपवीत या जनेऊ कहते हैं—यह भी उसे ज्ञात नहीं था। वह उसे केवल भोजनका धागा ही कहा करता था।

उसकी बात सुनकर स्वामीजी बड़े विस्मित हुए। उन्होंने पूछा कि घरमें पूजाके विग्रह तो होंगे? यदि वे हैं तो कहाँ रखे हैं?

जितपाने सहजभावसे कहा—वे सब एक टोकरीमें डालकर सुरक्षित रखे हुए हैं। अन्य कामोंमें सब समय चला जाता है। पूजाके लिये समय ही नहीं मिलता। उन विग्रहोंमें छोटे-छोटे गोल, चिकने काले पत्थर भी हैं। उसके मस्तिष्कमें शालग्रामकी कल्पना भी नहीं थी। स्वामीजीने उन विग्रहों एवं काले गोल पत्थरों (शालग्राम)-को मँगवाया।

गुरुजीने कहा—देखो जितपा! तुम मेरी बात ध्यानसे सुनो। ये जो गोल-गोल काले पत्थर तुम देख रहे हो ये भगवान् शालग्राम हैं भगवान् नारायणकी ही यह मूर्ति है इसलिये तुम इनकी पूजा किया करो। तुम जैसे नित्य स्नान करते हो उसी प्रकार इन शालग्रामको भी स्नान कराना गन्ध पुष्प तुलसी समर्पण करना और तुम जो भी अन्न ग्रहण करते हो उसका प्रथम इनको भोग चढ़ाना तदनन्तर स्वयं खाना। तुम्हें कोई मन्त्र याद न हो, पूजा न आती हो तो कोई बात नहीं निराश न होना केवल भावभक्ति जरूर रखना। श्रद्धा रहे तो किसी मन्त्र या उपचारकी उतनी आवश्यकता नहीं रहती। भक्तिभावसे इतना जरूर करते रहना। इसमें तुम्हारा विशेष समय भी नहीं लगेगा। इतना प्रण स्वीकार करो। तुम्हारा कल्याण हो जायगा और विशेष बात यह है कि जिसे तुम 'भोजनका धागा' कह रहे हो इसका नाम जनेऊ या यज्ञोपवीत है यह बड़ा पवित्र है इसमें देवता वास करते हैं इसे कभी भी शरीरसे नहीं निकालना। टूट जाय तो दूसरा पहनना।

ऐसा बताकर स्वामीजी वहाँसे निकल पड़े। स्वामीजीकी बातें जितपाको अच्छी लगीं। अब उनकी आनाके अनुसार उसने क्रम आरम्भ किया स्नानके पश्चात् शालग्रामकी

पूजा की, गन्ध, पुष्प और तुलसी अर्पण किये। एक थालीम एक रोटी और थोडी-सी सब्जी रखकर वह भगवान्से भोगक लिय प्रार्थना करने लगा। दो-तीन घटे बीत गये पर भगवान्ने खानका नाम नहीं लिया। वह चिन्ताम पड गया। उसने तो भगवान्के भोजनके पश्चात् स्वय खानेका निश्चय किया था। गुरुके समक्ष शपथ ली थी और गुरुका वचन भी दिया था। अब क्या हो! वह बडा दु खी हो गया। पूरा दिन काम छोडकर वह यही चिन्ता करता रहा।

उसकी माँने उसे समझानेका प्रयत्न किया कि 'नैवेद्य परोसनेके पश्चात् पानी फिरानेसे भगवान्का भोग लगानकी क्रिया पूर्ण हो जाती है, सब ऐसा ही करते हैं। तुम क्या हठ कर रह हा ? क्या भगवान् कभी आकर भोग लगाते हैं ? अत उठो चलो भोजन करो। पूरा दिन तुम्ह ऐसे ही बीत गया है।' परतु माताके इस प्रकार कहनेपर भी उसे उनकी बातोपर विश्वास नहीं हुआ। भगवान्के खानेक बाद ही स्वय खानेका आदेश उसे याद आता था। भगवान्के भोजनके पश्चात् ही मैं स्वय खाऊँगा यह उसका प्रण था। इसी विचित्र अवस्थामे तीन दिन बीत गये।

आखिर उसने आत्मसमर्पण एव शरीरत्याग करनेका निर्णय लिया। उसकी विचित्र स्थिति हो गयी। सहसा शालग्रामके समूहम एकका मुख खुलनेका उसे आभास हुआ। जितपाको महान् आश्चर्य हुआ। उसने जल्दीसे रोटीका एक निवाला उस खुले हुए मुँहम रख दिया। फिर वह मुख बद हा गया। अब तो ऐसा क्रम नित्य होने लगा। जितपा बहुत प्रसन्न था। भगवान् अभी एक निवाला ही खा रहे हैं आगे पेट भरकर जरूर खायगे। उसे ऐसा विश्वास उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार एक वर्षका समय बीत गया। उसका यह क्रम बराबर जारी रहा। अब गुरुकी आज्ञासे वह यज्ञोपवीत शरीरपर ही रखता था। एक दिन, उसके गुरु उस ग्रामको आनेके लिये निकले हैं—यह वार्ता उसे मिलते ही वह ग्रामके प्रवेशद्वारपर खडा हो गया। वह गुरुके दर्शनके लिय आतुर था। समयपर गुरुदेव सपरिवार पधारे। उन्होन जितपाको दूरसे ही देखा। उसका तेज कुछ और ही प्रतीत होता था। गुरुका स्वागत करनेमे उसे बडा आनन्द हुआ। जितपामे हुए इस परिवर्तनका देखकर स्वामीजीको भी बडा आश्चर्य हुआ। अब उसकी कान्ति कुछ अलग-सी थी।

उसने स्वामीजीको सब वृत्तान्त कह दिया। आपके भगवान् तीन दिन रूठ गये थे। उन्होने मुझे खूब सताया। तीसर दिनसे वे केवल एक निवाला ही खाने लगे। यह कहते हुए उसे बडा हर्ष हो रहा था। गुरु सोचने लगे कि लगता है इसे भ्रम हो रहा है। भोगमे चढाये गये पदार्थ भगवान् प्रत्यक्ष कैसे खायेगे ? यदि यह सत्य बोल रहा है तो इसकी परीक्षा करनी पडेगी। यह बडी विचित्र घटना है ?

तदनन्तर उसकी परीक्षा लेनेके लिये स्वामीजीने उसे अपने समक्ष भगवान्को खिलानेकी आज्ञा दी। वे आसनपर समीपम ही विराजमान थे। जितपाने नित्यके अनुसार भोग चढाया और हाथ जोडकर भोग स्वीकार करनकी मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा, लेकिन यह क्या! आज न शालग्रामका मुख खुला न ही निवाला ग्रहण किया गया। जितपा इस घटनासे बहुत व्यथित हुआ। उसने प्राण-त्याग करनेकी प्रतिज्ञा की। वह खिन्न हो गया। भगवान् अपने सस्कारी भक्तोका दु ख नहीं देख सकते। शीघ्र ही उस शालग्रामसमूहमसे एकका मुख खुल गया। जितपाको बडा हर्ष हुआ। उसने एक निवाला जल्दीसे मुँहम रख दिया निवाला रखते ही वह बद हो गया।

यह घटना देखकर स्वामीजी जितपाके सम्मुख नतमस्तक हो गये और कहने लगे—'हम विविध पक्वान्न बनाकर भोग चढाते हैं, परतु इतनी योग्यता हम नहीं पा सके। लगता है जितपाकी भावभक्तिका सस्कार बहुत ऊँचे दर्जेका है। यह धन्य है इसीकी भक्ति धन्य हे इसके बुलानेपर भगवान् आत हैं और प्रेमसे भोग प्राप्त करते हैं।' उन्होने जितपाके मस्तकपर हाथ रखा और आशीर्वाद प्रदान किया। यही जितपा आगे चलकर जितामित्ररायके नामसे विख्यात विद्वान् पण्डित हुए। उन्हाने द्वैतसिद्धान्तके अनेक टीकाग्रन्थ लिखे। दक्षिण भारतमे भीमा और कृष्णा नदीके सगमपर आज भी उनकी समाधि स्थित है। वहाँ उत्सव-महोत्सव होता है। केवल भक्तिभावके सस्कारसे ही जीवनम यह अहोभाग्य प्राप्त होता है—इसका यह असाधारण उदाहरण है।

जीवनमें संस्कारोंकी उपादेयता

सस्कारकी आवश्यकता एव उपयोगिता

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री एम्०ए० पी एच्०डी०, डी०लिट्०, डा०एस् सी०)

ससारकी प्रत्येक वस्तु स्वयका दिव्य, भव्य तथा आकर्पकरूपम प्रस्तुत करनके लिये सस्कारकी अपेक्षा रखती है। सस्कारका अर्थ है—परिमार्जित रूपमे प्रस्तुति। भू-सस्कारमे भूमिको झाड-पाछ गोमयादिसे लीपकर उसका सस्कार किया जाता है। यज्ञवदीको तृण, कीट आदिसे मुक्तकर उसे अपक्षित रूपमे पट्कोण, अप्टदलकमलादिसे अलङ्कृत कर उसका सस्कार किया जाता है। धान्यका सस्कार उसे तुपादिसे पृथक् कर किया जाता है। भूगर्भसे निकलनेवाली सोना-चाँदी आदि धातुआको धो-साफकर उनकी गर्भजन्य मलिनता दूर की जाती हे। अग्निमे तपाकर उनके शप दोपाको हटा, सुहागेके प्रयोगद्वारा उनकी त्रुटि दूरकर उन्ह वह रूप दिया जाता है, जिसके लिये यह सूक्ति 'सोनेमे सुहागा' प्रचलित हुई हे। इसके पश्चात् विभिन्न अलङ्काराके रूपमे इनका प्रयोग (निर्माण) कर और पालिशद्वारा चमकाकर उन्ह धारण कर अपने सौन्दर्यको अभिवर्धित किया जाता हे। उबटन आदिके प्रयोगद्वारा शरीरका सस्कार किया जाता है। दही, मेथी, मुल्तानी मिट्टी आदिके द्वारा केशाका परिशोधनात्मक सस्कार होता है। तेल-कघीद्वारा केशसस्कार, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यके लपन तथा वस्त्राभूपण-माल्य आदि धारण कर शरीरको सस्कृत किया जाता है। अमरकाप (२।१३४)-के अनुसार यह सस्कार अधिवासन कहा जाता है—

'सस्कारो गन्धमाल्याद्यैर्य स्यात्तदधिवासनम्॥'

सस्कार सद्विचार और सदाचारसे ही मानव वास्तवम मानव कहलानेका अधिकारी बनता है। सभ्य समाज ऐसे ही व्यक्तिको समादृत करता है और एसा ही व्यक्ति अभ्युदयको प्राप्त होता है।

असस्कृत असद्विचारी और कदाचारा व्यक्ति किसी भी समाजम सम्मान नहीं पाता बल्कि ऐसे व्यक्तिको देखकर प्राय सभ्यजन यही कहते सुने जाते हैं—यह सस्कारहीन व्यक्ति है, यदि इसे समुचित सस्कार मिले होते तो इसका आचार, व्यवहार सभ्य और सस्कृत समाजक अनुरूप होता। यही सब दृष्टिगत रखकर विद्वानाने एकमतसे स्वीकार किया है कि मानव-जावनके सर्वाङ्गीण विकासमे सस्काराका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये मानव-जीवनमे सस्काराकी आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है, जिससे वह दोपमुक्त हो पूर्ण मानव बनकर ब्रह्मप्राप्तिका अधिकारी बन सके। दूसरे शब्दाम सस्कारद्वारा दापका अपसारण गुणाधान तथा न्यूनताकी पूर्ति कर मानवको जो ईश्वरका अश हे, सही अर्थोम अशीका अश कहलानेका अधिकारी बनाया जाता हे। जिस प्रकार भूगर्भसे निकल स्वर्णको पहले मिट्टी आदि मलासे मुक्त किया जाता है फिर सुहागेके सहकारसे उसम गुणाधान किया जाता है और अग्निम तथा कसौटीपर कस उसे आभूपणके याग्य बनाया जाता है अथवा जैसे खेतम उत्पन्न अन्नको पहले तुप आदि दोपोसे मुक्तकर फिर कूट-पीसकर उसे खानेयोग्य बनाया जाता है और उसम घी, नमक आदिद्वारा अवशिष्ट कमियाकी पूर्ति की जाती है, उसी प्रकार सस्कारद्वारा मानवको दोपरहित, गुणसम्पन्न तथा सभी प्रकारकी कमियासे शून्य एक पूर्ण मानव बनाया जाता है।

भगवान् मनुने लिखा है—द्विजातियोको वैदिक कर्मो (विधाना)-द्वारा शरीरके गर्भाधानादि सस्कार करने चाहिये क्याकि य इहलाक और परलाक—दोनोम पापाका नाश करनेवाले हैं—

वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य शरीरसस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥

सस्कार क्या करने चाहिये इस सम्बन्धमे भगवान् मनु अपनी स्मृतिम कहते हैं—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

(मनु० २।२७)

अर्थात् गार्भिक (गर्भशुद्ध्यर्थ किये जानेवाले हवनादि कर्म), जातकर्म, चूडाकर्म (मुण्डन) तथा उपनयनादि संस्कारोंके करनेसे द्विजाति (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य)-के गर्भ (क्षेत्र) तथा बीजके कारण आये अथवा सम्भावित दोष दूर हो जाते हैं।

सभी जानते हैं कि यदि कृषिभूमिकी मिट्टी निर्बल हो या उसमे डाला जानेवाला बीज घुनका खाया हुआ हो तो उपज भी हीनसत्त्व तथा सदोष होगी, अत उसका संस्कारद्वारा उपचार कर आगत दोषोको मिटाना ही संस्कारका प्रथम उद्देश्य है।

संस्कारद्वारा जब दोषोका परिमार्जन हो जाता है, तब वेदाध्ययन, व्रत होम देव-ऋषि-पितृतर्पण, पुत्रोत्पादन ज्योतिष्टोमादि महायज्ञाद्वारा जातकके शरीरको ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बनाया जाता है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीय क्रियते तनु ॥

(मनु० २।२८)

भारतीय आर्ष मनीषाने मानवकी जन्मसे मरणपर्यन्तकी कालावधिमे करणीय जिन संस्कारोका विधान किया है, वे इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण भूम्युपवेशन, अन्नप्राशन चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन वेदारम्भ केशान्त समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि-संस्कार आदि।

गर्भाधान—जीव गर्भाधानद्वारा ही देहधारण कर ससारमे जन्म लेता है। यह संस्कार गर्भगत बालककी गर्भवासजन्य मलिनता तथा बीजदोषकी निवृत्ति कर प्रभविष्णु सतान प्राप्त करनेके लिये किया जाता है।

पुसवन—गर्भाधानके दूसरे या तीसरे मासमे जब गर्भके लक्षण प्रकट हो जायँ, तब उत्तम सतानप्राप्तिकी कामनासे नान्दीश्राद्ध गणपत्यादि पूजनकर वटारोह, वटाङ्कुर, कुशाग्रभाग, सोमलता सोमलताके अभावमें गुडूची (गिलोय) या ब्राह्मीको जलके साथ पीस-छानकर इस रसको गर्भिणीके दक्षिणनासारन्ध्रसे पिलाया जाता है। उत्तम बालकका जन्म हो इस दृष्टिसे यह संस्कार होता है।

आयुर्वेदके अनुसार गर्भस्थजीवके अङ्ग-प्रत्यङ्गोके लक्षण प्राय चौथे मासमें प्रकट होते हैं। अत उस समय इस संस्कारको करना चाहिये।

सीमन्तोन्नयन—*सीमन्तोन्नयन-संस्कार गर्भावस्थामें* चौथे मासम सम्पन्न होता है। आश्वलायनगृह्यसूत्रमे इसका स्पष्ट निर्देश इस प्रकार है—

'चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्।'

(१।१४।१२)

छठे या आठवे मासमे भी यह होता है। इस संस्कारमें हवन कर, देवदारु पीठपर गर्भिणीको बिठाकर दो फल, सुवर्णयुक्त गूलरकी शाखा ३, कुशाकी तीन गण्डियाँ, श्वेत सेहीका काँटा, पीले सूतसे लिपटा तगुआ तथा पीपलकी लकडीकी खूँटी—इन सबसे स्त्रीकी माँग काढकर उसके बालोसे बाँध दे। गर्भिणीके बालोको दो भागोम बाँटते समय निम्न मन्त्रोका पाठ होता है—**'ॐ भूर्विनयामि। ॐ भुवर्विनयामि। ॐ स्वर्विनयामि।'**

इसके पश्चात् *गर्भिणीको गर्भस्थ शिशुकी पुष्टिके लिये* घी डालकर खिचडी खिलायी जाती है। गर्भस्थ शिशु और गर्भिणीकी दीर्घायुके लिये आशीर्वाद दिया जाता है।

जातकर्म—नालच्छेदनसे पहले शिशुका जातकर्म-संस्कार किया जाता है—

'प्राङ्नाभिवर्धनात्पुसो जातकर्म विधीयते।'

(मनु० २।२९)

इस संस्कारम नान्दीश्राद्ध, नालच्छेदन, मेधाजनन तथा आयुष्यकर्म—चार मुख्य हैं। नालच्छेदनसे पूर्व दाहिने हाथकी अनामिका अँगुलीमे स्वर्ण लगाकर विषम मात्राम गोघृत और मधु मिलाकर **'ॐ भूस्त्वयि दधामि', 'ॐ भुवस्त्वयि दधामि', 'ॐ स्वस्त्वयि दधामि', 'ॐ भूर्भुव स्व सर्वं त्वयि दधामि'**—इन मन्त्रासे थोडा-थोडा चार बार इस दृष्टिसे चटाया जाता है, जिससे वह बुद्धिमान् और यशस्वी हो। इस समय **'ॐ अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्त करोमि।'** आदि आठ मन्त्र जातकके दाहिने कानम सुनाये जाते हैं। तदनन्तर नाल छेदनकर माँ दक्षिण

स्तनको धोकर उसका दूध शिशुको पिलाती है। सूतिकागारकी रक्षाके लिये अग्नि, जलपूरित घट आदि स्थापित कर देव-ब्राह्मणादिका आशीर्वाद दिलाया जाता है। इस अवसरपर पिता भी शिशुके मङ्गलकी कामना करता है। सूतक नालच्छेदनके पश्चात् आरम्भ होता है। जैसा कि लिखा है—

यावन्न छिद्यते नाल तावन्नाप्नोति सूतकम्।
छिन्ने नाले तत पश्चात् सूतक तु विधीयते॥

(संस्कारप्रकाशमें जैमिनिका वचन)

नामकरण—जातकका नामकरण-सस्कार जन्मसे दसव या बारहव दिन करना चाहिये। यहाँ दशम दिनसे तात्पर्य अशौच-निवृत्तिके बादसे है। भगवान् मनुने शुभ तिथि, मुहूर्त और नक्षत्रमे नामकरणके सम्बन्धमे कहा है—

नामधेय दशम्या तु द्वादश्या वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥

(मनु० २।३०)

नामकरण किस प्रकारका होना चाहिये इस सम्बन्धमे मनुस्मृति (२।३१-३२)-मे कहा गया है—

मङ्गल्य ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसयुक्त शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥
शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद् राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसयुक्त शूद्रस्य प्रेष्यसयुतम्॥

अर्थात् ब्राह्मणका मङ्गलवाचक, क्षत्रियका बलवाचक, वैश्यका धनयुक्त एव शूद्रका सेवापरक नामकरण करना चाहिये। ब्राह्मणका नाम शर्मान्त (कल्याण या मङ्गलसूचक), क्षत्रियका वर्मान्त (रक्षापरक), वैश्यका गुप्तान्त (पुष्टियुक्त) एव शूद्रका दासान्त होना चाहिये।

स्त्रियोका नाम उच्चारणमे सुकर सुन्दर अर्थवाला चित्तको प्रसन्न करनेवाला मङ्गलसूचक अन्तिमाक्षर दीर्घ वर्णवाला एव आशीर्वादात्मक होना चाहिये—

स्त्रीणा सुखोद्यमक्रूर विस्पष्टार्थं मनोहरम्।
मङ्गल्य दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥

(मनु० २।३३)

नामकरणके दो उद्देश्य हैं—आयु तथा तजकी वृद्धि एव सासारिक व्यवहारार्थ सज्ञारूपम उसकी स्थापना—

आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा।
नामकर्मफल त्वेतत् समुद्दिष्ट मनीषिभि॥

(स्मृतिसग्रह)

इसके साथ ही लौकिक मान्यता है—जैसा नाम वैसा काम अर्थात् नामके द्वारा तद्वत् गुणाधानका प्रयास भी इसका एक प्रमुख कारण है।

इस सस्कारम भी नान्दीश्राद्ध स्वस्तिवाचन गणेश मातृकादिका पूजन कर माताकी गोदीम लेटे बालकके दक्षिणकर्णम निजकुलदेवतापरक, मासपरक, नक्षत्रपरक तथा व्यवहारपरक—चार नाम सुनाये जाते हैं।

निष्क्रमण—जन्मसे चौथे मासम यह सस्कार किया जाता है—

'चतुर्थे मासि कर्तव्य शिशोर्निष्क्रमण गृहात्।'

(मनु० २।३४)

इस अवसरपर भी नान्दीश्राद्ध, गणेश-मातृकादिका पूजन, पुण्याहवाचन आदिके बाद **'सविता प्रीयताम्'** कहकर वस्त्राभूषणसज्जित बालकको घरसे बाहर लाकर भगवान् सूर्यका दर्शन कराया जाता है, साथ ही भगवद्विग्रहके सामने दण्डवत् प्रणामकी मुद्रामे लिटाया जाता है। इस अवसरपर पुरोहितादि बालकको इस प्रकार आशीर्वाद देते हैं—

अप्रमत्त प्रमत्त वा दिवा रात्रावथापि वा।
रक्षन्तु सतत सर्वे देवा शक्रपुरोगमा॥

भूम्युपवेशन—पाँचवे मासम भूम्युपवेशन नामक सस्कार होता है। शुभ दिन शुभ नक्षत्रादिमे पृथ्वी और वराहका पूजन कर बालककी कमरमे सूत्र बाँधकर पृथ्वापर बिठाते हैं और पृथ्वीसे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—

रक्षैन वसुधे देवि सदा सर्वगत शुभे।
आयु प्रमाण सकल निक्षिपस्व हरिप्रिये॥

इस अवसरपर पुस्तक, कलम मशीन आदि विभिन्न वस्तुएँ बालकके सामने रखी जाती हैं। वह जिस वस्तुको सबसे पहले उठाता है वही उसकी आजीविकाका साधन होगा—यह मानकर उसी प्रकारकी विद्या उस पढायी जाती है।

अन्नप्राशन—इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें मलिन भक्ष्यजन्य जो दोष बालकमें आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है। छठे मासमें जब बालकमें पाचन-शक्ति कुछ-कुछ आने लगती है, तब उसे धीरे-धीरे स्तनपानसे विरत कर अन्नाश्रित बनानेकी दिशामें प्रवृत्त करनेके लिये यह संस्कार सम्पादित होता है। भगवान् मनुने यह संस्कार जन्मसे छठे मासमें या कुलरीतिके अनुसार सम्पादित करनेका निर्देश देते हुए कहा है—

'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले॥'

(मनु० २।३४)

इस अवसरपर भी पूर्ववत् नान्दीश्राद्ध, पूजन हवनादि कृत्य कर स्थापित कलशके जलसे माँ-सहित बालकका अभिषेचन किया जाता है और बालकके सब पापोंके नाशके लिये प्रार्थना की जाती है।

चूडाकरण—मनुस्मृति (२।३५)-में वेदाज्ञानुसार प्रथम अथवा तृतीय वर्षमें चूडाकरण (मुण्डन)-का विधान किया गया है—

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥

इस अवसरपर बालकके सिरके बालोंके तीन भाग कर उन्हें मन्त्रोच्चारणपूर्वक उस्तरे (छुरे)-से मूँडकर कुशा एवं गोमयपिण्डपर रखा जाता है और अपने-अपने गोत्रकी रीतिके अनुसार एक, दो, तीन या पाँच शिखा छोड़ मुण्डन कर्म सम्पन्न कर गोबरसहित केशोंको नदीके तट या गोशालामें गाड़ दिया जाता है। कहीं-कहीं कुलदेवको ये बाल समर्पित कर फिर उन्हें विसर्जित किया जाता है।

आचार्य चरकने आरोग्यकी दृष्टिसे केश, श्मश्रु तथा नखादिके कर्तनका महत्त्व बताते हुए कहा है कि इससे आयु, पुष्टि, पवित्रता और सौन्दर्यमें अभिवृद्धि होती है—

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचि रूपविराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कल्पनं सम्प्रसाधनम्॥

(च०सू० ५।९९)

मुण्डनके अवसरपर शिखा इसलिये छोड़ी जाती है, जिससे धर्मानुष्ठान सम्पादनमें बाधा न आये। बिना यज्ञोपवीत और शिखाके जो कर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है। कहा गया है—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

कर्णवेध—कर्णवेध-संस्कारका जहाँ धार्मिक दृष्टिसे महत्त्व है, वहीं उत्तम आरोग्यके लिये भी कर्णवेधका विशेष महत्त्व है। आयुर्वेदके अनुसार कानोंमें छेद करनेसे एक ऐसी नस बिंध जाती है, जिससे अन्त्रवृद्धि (हार्निया) रोग नहीं होता। सुश्रुतसंहिता आदिमें इसका विस्तारसे वर्णन है। कर्णेन्द्रियकी वीर्यवाहिनी नाड़ियोंसे सम्बन्ध होनेके कारण पुंस्त्व नष्ट करनेवाले रोगोंसे भी रक्षा होती है। इस संस्कारको छः माससे लेकर सोलहवें मासतक कुलक्रमागत आचारके अनुसार किया जाता है। सूर्यकी किरणें कानोंके छिद्रसे प्रविष्ट होकर बालक-बालिकाको पवित्र करती हैं और तेजसम्पन्न बनाती हैं। प्रायः स्वर्णशलाका या रजतशलाकासे कान छेदनेका विधान है। सर्वप्रथम दायें कानका अभिमन्त्रण कर छेद करना चाहिये फिर बायें कानका। बालिकाका पहले बायें फिर दायें कानके वेधके साथ उसके नासिकाके वेधका भी विधान है।

उपनयन—गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका तथा बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार किया जाना चाहिये—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

(मनु० २।३६)

यही नहीं, ब्रह्मतेजाभिलाषी ब्राह्मणका पाँचवें वर्षमें, बलाभिलाषी क्षत्रियका छठे वर्षमें, धनाभिलाषी वैश्यका आठवें वर्षमें उपनयन करनेका विधान भगवान् मनुने किया है—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु० २।३७)

ब्राह्मणका सोलहवें वर्षतक, क्षत्रियका बाईसवें वर्षतक

तथा वैश्यका चौबीसवें वर्षतक उपनयन हो सकता है—

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥

(मनु० २।३८)

इस अवसरपर मुण्डित बालकको मेखला, दण्ड, मृगचर्म आदिसे मण्डित कर आचार्य गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा देते हैं, यज्ञोपवीत धारण कराते हैं और ब्रह्मचर्याश्रमानुमोदित कृत्यांके निर्वहणकी प्रतिज्ञा कराते हैं। इस अवसरपर हवन, सूर्योपस्थापनादि कृत्य सम्पादित होते हैं और बटु माता तथा अन्य स्वजनोंसे भिक्षा माँगकर गुरुको समर्पित करता है।

इसकी महत्ताका इसीसे पता चल जाता है कि बिना उपनयन-संस्कार हुए द्विजमात्रको किसी भी अनुष्ठेय कर्मके लिये भगवान् मनुने अनधिकारी ही प्रतिपादित किया है—

'न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्॥'

(मनु० २।१७१)

इस संस्कारके पश्चात् ही जातक 'द्विज' संज्ञाका अधिकारी बनता है। निम्न कथन भी इसकी पुष्टि करते हैं—

बिना यज्ञोपवीत धारण किये तथा बिना चोटीमें गाँठ लगाये जो कर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

'यज्ञोपवीत' शब्द यज्ञ और उपवीत दो शब्दोंके संयोगसे बना है। इसका अर्थ है—यज्ञको प्राप्त करानेवाला। यज्ञ बिना वैदिक ज्ञानके सम्भव नहीं। अतः स्पष्ट है कि वैदिक ज्ञान, यज्ञानुष्ठान, यज्ञपुरुषकी प्राप्ति तथा प्रसन्नताका प्रमुख कारण या सोपान यही संस्कार है।

वेदारम्भ—उपनयनके पश्चात् गणपत्यादि पूजनकर समुद्भव नामक लौकिक अग्निकी स्थापना कर यज्ञादि कर एक या चारों वेदोंके एक-एक मन्त्रका वटुके सामने उच्चारण कर उसे वेदाध्ययनकी दिशामें प्रवृत्त कर यज्ञकी पूर्णाहुति दी जाती है।

'विद्' ज्ञाने धातुसे निष्पन्न वेद शब्दका अर्थ ही है ज्ञान। बिना ज्ञान जीवनकी यात्राको सहज नहीं बनाया जा सकता। अतः इस संस्कारद्वारा जीवनयात्राको निरापद बनानेका उपक्रम किया जाता है।

केशान्त—भगवान् मनुने कहा है कि जन्मसे सोलहवें वर्षके समाप्त होनेपर ब्राह्मणका, बाईसवें वर्षमें क्षत्रियका और चौबीसवें वर्षमें वैश्यका यह संस्कार स्वयं आचार्यद्वारा किया जाना चाहिये—

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥

(मनु० २।६५)

इस संस्कारमें शिखा छोड़कर पहले सिरके फिर दाढ़ी-मूँछके बाल उस्तरेसे मूँडे जाते हैं और हवनादि कर उन बालोंको गोबरके पिण्डमें लपेटकर पवित्र स्थानमें गाड़ दिया जाता है।

इस संस्कारका उद्देश्य उसे ब्रह्मचर्याश्रमसे गृहस्थसमाजका योग्य स्वरूप प्रदान करना है।

केशान्तका गोदान-संस्कार भी नाम है। गौ अर्थात् लोम—केश जिस संस्कारमें काट दिये जाते हैं वह केशान्त है। केशान्त शब्दसे मुख्यरूपसे श्मश्रु (दाढ़ी)-का ग्रहण होता है।

समावर्तन (वेदस्नान)—यह संस्कार उत्तरायणमें ही करना चाहिये। यह संस्कार गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेकी पूर्वपीठिकाके रूपमें सम्पादित होता है। जैसा कि मनुजीने कहा है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥

गुरु-मन्त्रोपदेशके बाद उसी दिन या चौथे दिन अथवा एक, तीन या बारह वर्ष बीतनेपर समावर्तन-संस्कार करना चाहिये। शुभ मुहूर्तमें स्वस्तिवाचन, गणपत्यादि पूजनकर यथाविधि हवन कर वहाँ स्थापित आठ मन्त्रपूत कलशोंसे स्नातकका अभिषेक किया जाता है। तदनन्तर स्नातक दही-तिलका भक्षणकर और क्षौर बनाकर गूलरकी दातूनसे मुखकी शुद्धिकर उबटन लगा गर्म जलसे स्नानकर नाक, कान और नेत्रोंमें चन्दन लगाता है, पितरोंको तिलाञ्जलि देता है और फिर शुद्ध वस्त्र, पुष्पमाला, इत्र, काजल, छाता, जूते, गहने आदि धारण करता है। इसके पश्चात् आचार्य उसे विविध प्रकारके लोक-परलोकसे सम्बन्धित हितकारी तथा जीवनोपयोगी उपदेश देते हैं

जिससे उसकी जीवनयात्रा निरापद रहे।

विवाह—मानव-जीवनम इस सस्कारका विशेष महत्त्व है। समाजमे एक अत्यन्त दायित्वपूर्ण अधिकार वर-वधूको विवाह-सस्कारक माध्यमसे दिया जाता है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु समस्त जीवाका पोषण करते तथा उन्हे धारण करते हैं, उसी प्रकार विवाहके द्वारा वर-कन्या वैवाहिक यज्ञके माध्यमसे परिणयसूत्रम बँधकर अपने परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका उपयुक्त ढगसे पालन, पोषण एव सवर्धन करना स्वीकार करते हैं।

विवाहका पहला उद्देश्य—स्त्रीधाराको पुरुषधाराम मिलाकर स्त्रीको मुक्तिकी अधिकारिणी बनाना तथा दोनाकी अनियन्त्रित पशुवृत्तियाको नियन्त्रित कर दोनोकी शारीरिक मानसिक बौद्धिक, इहलौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति एव दोनाके मधुर-मिलनस दानोकी पूर्णता सिद्धकर सासारिक सुख-शान्ति प्रदान करना पहला उद्देश्य हे।

दूसरा उद्देश्य—धार्मिक सतानोत्पादनद्वारा पितृ-ऋणसे उऋण होना तथा प्रजातन्तुकी रक्षा करना दूसरा उद्देश्य हे।

प्रत्येक मनुष्यपर देव, ऋषि तथा पितृ-ऋण—तीन ऋण होते है जिनसे उऋण होनेक लिये यज्ञादि अनुष्ठान आर्ष ग्रन्थोका स्वाध्याय तथा प्रजोत्पादनका विधान हे। शास्त्राज्ञा है—

'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।'

अर्थात् मानवको तीनो ऋण चुकाकर मनको मोक्ष-प्राप्तिमे लगाना चाहिये।

तीसरा उद्देश्य—सयम सहिष्णुता पारिवारिक, सामाजिक एव राष्ट्रिय जीवनकी सुव्यवस्था सुख स्वास्थ्य शान्तिकी रक्षा सहायता आत्मीयता प्रेम आदि सद्गुणोका अभिवर्धन करना तीसरा उद्देश्य है।

विवाह-सस्कारम मुख्यत य क्रियाएँ सम्पादित हाती हैं—नान्दीमुखश्राद्ध हरिद्रालपन कन्यादान सप्तपदी अश्मारोहण उत्तर क्रिया लाजाहाम ध्रुवदर्शन वामाङ्गम बैठना आदि।

समष्टिरूपम विवाह-सस्कारके समय जिन प्रतिज्ञाओक साथ कन्या वरको आत्मसमर्पण करती है और वह उसे स्वीकार करता है, वे प्रतिज्ञाएँ ही पति-पत्नीको एक ऐसे सुखद तन्तुमे बाँध दिया करती हैं, जिनसे उनका जीवन आदर्श बन जाता हे।

अग्निस्थापन—विवाहके पश्चात् नित्य हवनादिके लिये स्थायी रूपम अग्निस्थापन कर अग्निहोत्र करना इस सस्कारका उद्देश्य है। विवाहके ममय जिस अग्निम लाजाहोम आदि होता है, वही अग्नि घर लाकर स्थापित की जाती हे। इस अग्निको गृह्याग्नि, आवसथ्याग्नि तथा विवाहाग्नि भी कहते हैं। सभी स्मार्त कर्म इसी अग्निमे सम्पादित होते हैं, परतु आज यह सम्स्कार लुप्तप्राय हे। इसी प्रकार त्रेताग्नि-सस्कार भी लुप्त ही है।

अन्त्येष्टि—मानव-जीवनकी पूर्णतापर सम्पादित किया जानवाला यह अन्तिम सस्कार है। इसीके सम्पादनार्थ मानव प्रजोत्पादन करता है। इसका सविधि सम्पादन पुत्रके पुत्रत्वको सार्थक बनाता ह, जैसा कि कहा गया है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयाया पिण्डदानाच्च त्रिभिर्पुत्रस्य पुत्रता॥

इस सस्कारमे व्यक्तिका प्राणान्त हो जानेपर उसके शवको स्नान कराकर मुख नाक कान आदिम स्वर्णखण्ड या घीकी बूँद छोडी जाती हे, शवको वस्त्र पहनाया जाता है। मृतिस्थान, गृहद्वार चौराहा विश्रामस्थान, श्मशानभूमि तथा चिताके स्थानपर पट् पिण्डदान होता है। विधिपूर्वक कव्याग्निसे शवका दाह किया जाता है। मृत व्यक्तिकी अन्त्येष्टि-क्रिया एक प्रमुख सस्कार है।

अस्थिसचय कर उनकी पूजाकर उन्ह पवित्र क्षत्रकी पुण्यतोया नदियाम प्रवाहित किया जाता है। उसके पश्चात् दस दिनतक दशगात्रविधि पिण्डदान, तपण आदिका कार्य कर बारहवे दिन द्वादशाह, अरिष्टशान्त्यर्थ हवन ब्राह्मण-भोजनादि कार्य किय जाते हैं।

समष्टिरूपम कहा जा सकता है कि सस्काराकी उपयोगिता यही है कि इनक द्वारा मलापहरण गुणाधान तथा हीनाङ्गकी पूर्तिकर मानवको समाज और राष्ट्रके हितसाधनमे समर्थ बनाकर उसके जन्मको सफल बनानेका उपक्रम किया जाता है।

संस्कार और उनकी वैज्ञानिक भूमिका

(प्रो० डॉ० श्रीश्याम शर्माजी वाशिष्ठ, एम्०ए० पी-एच्०डी० शास्त्री, काव्यतीर्थ)

'सम्+कृ+घञ् (अ)' से सस्कार शब्द बनता है। जिसका सामान्य अर्थ है—पूर्ण करना पुनर्निर्माण करना सशाधन, सुधारना, सँवारना एव शुद्ध करना आदि। अतएव सस्कारकी परिभाषा है—'**गुणान्तराधान सस्कार** ' अर्थात् किसी वस्तु या व्यक्तिम अन्य गुणा एव योग्यताआका आधान करना सस्कार है। महर्षि जैमिनिके अनुसार सस्कार वह है, जिससे कोई व्यक्ति या वस्तु किसी कार्यके याग्य हो जाती है, '**सस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्य कस्यचिदर्थस्य।**'

सस्कार वैज्ञानिक अवधारणाके रूपमे विकसित भारतीय जीवनपद्धतिकी सर्वाधिक स्पृहणीय, सर्वस्वीकृत एक महत्त्वपूर्ण आनुष्ठानिक प्रक्रिया है। सस्कारोके द्वारा वस्तु या प्राणीको और अधिक सस्कृत, परिमार्जित एव उपादेय बनाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है अर्थात् सस्कार पात्रता पेदा करते हैं। सभ्यता सस्कृति एव प्रज्ञाके विकासके साथ-साथ भारतीय मनीषियाने मनुष्य-जीवनको अधिकाधिक क्षमतासम्पन्न सवेदनशील भावप्रवण एव उपयोगी बनानेके लिये ही सस्कारोकी अनिवार्यता स्वीकार की है।

सस्काराके मुख्यत तीन उद्देश्य माने गये हैं—(१) दोपमार्जन, (२) अतिशयाधान और (३) हीनाङ्गपूर्ति। अर्थात् प्रकृतिप्रदत्त पदार्थोम यदि कोई दोप हो तो उसका निवारण करना दापमार्जन है जैसे दर्पणपरसे धूल-मिट्टीको साफ करना। प्राकृत पदार्थको और भी अधिक उपयोगी वनानेके लिय दश-काल एव परिस्थितिके अनुसार अपेक्षित गुणा एव तत्त्वाका विन्यास करना अतिशयाधान है जैसे—खानस निकले हुए रत्नाको काटना—तराशना चमकाना आदि और यदि प्राकृत पदार्थम कोई त्रुटि हो कमी हो या सुधारका अवकाश हो ता वह सुधार हीनाङ्गपूर्ति करना है जैसे—पुराने बहुमूल्य किसी शिल्पका सुधार-सँवारकर उपयागी एव आकर्पक बना दना।

सम्काराकी प्रक्रियाद्वारा उक्त कार्य विशुद्ध वैनानिक भूमिकाक रूपम हा किय जात हैं। उदाहरणार्थ मिट्टीका बर्तन बनानेके लिये जेसे अच्छी जगहसे ही अच्छी मिट्टी इकट्ठी की जाती हे, फिर उसे साफ कर कूटा, पीटा, छाना जाता हे, तब मुलतानी मिट्टी आदि मिलाया जाती ह लोच दी जाती है ओर फिर चाकसे बर्तन बनाया जाता है। अन्तमे उसके हीनाङ्ग—छिद्र आदिको ठीककर पकाया जाता हे तभी उसमे पात्रता आती है। ऐसे ही अच्छी किस्मकी कपाससे धागा तैयार करके वस्त्र आदि बनाया जाता है। यही प्रक्रिया सभी भौतिक पदार्थोके साथ होती है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकारके सस्कारासे वस्तुको परिमार्जित कर उसे उपयोगी बनाया जाता हे। देखा गया है कि इस जगत्मे मनुष्य प्रत्येक पदार्थका सस्कार करके ही प्रयोग करता है।

भौतिक पदार्थोका ही नहीं, अपितु समस्त प्राणि-जगत्, पशुपक्षी भी अपनी-अपनी तरहसे सस्कार करते है। मनुष्य तो स्वय चैतन्य है। उसका जन्म अपनी जननीकी कोखसे प्राकृत रूपमे ही हुआ है, पर उसके प्राकृत जीवनको अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत सवदनशील एव लक्ष्योन्मुख बनानेके लिये सस्काराकी मर्यादा निर्धारित है।

सस्कारोका आध्यात्मिक दृष्टिसे जो गौरव है सो तो है ही वैज्ञानिक मनीषाने भी इस रहस्यको समझा है। इसी कारण सस्कार मनुष्यक जीवनचक्रको व्यवस्थित करने तथा शरीर-मन-बुद्धिके स्वस्थ विकास जीवनमे सद्गुणाके आधान तथा अन्त करणकी शुद्धिके विधायक एव सर्वाङ्गीण उन्नति तथा नि श्रेयसके विधायकके रूपम प्रतिष्ठित हैं। भारतीय ऋषि-महर्पियोका यह दृढ विश्वास था कि शारीरिक, मानसिक एव बौद्धिक दृष्टिसे मनुष्यको जैसा चाह, वैसा बना सकते हैं और उसम अपनी इच्छाके अनुरूप गुणाका आधान भी कर सकते हैं। सस्काराका विम्तार इसी चिन्तनके अनुरूप हुआ है। बृहदारण्यकोपनिपद्में इस विपयपर व्यापक प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद तथा तन्त्रशास्त्रम भी इस दिशाम महत्त्वपूर्ण प्रयोग किय गये। अत यह सुनिश्चित है कि मनुष्यको वैयक्तिक एव

सामाजिक दृष्टिसे उपयोगी बनाना तथा लौकिक-पारलौकिक दृष्टिसे उसे सफलताकी ओर अग्रसर करना ही संस्कारोंका प्रमुख उद्देश्य रहा है।

संस्कारोंका विस्तृत विवेचन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थोंके साथ-साथ आयुर्वेद एवं पुराण आदिमें भी मिलता है। धर्मशास्त्रोंमें विशेषतः पारस्कर, सांख्यायन, आश्वलायन आदि गृह्यसूत्रोंमें इनकी संख्या पृथक्-पृथक् मिलती है। गौतमसूत्र (८वें अध्याय)-में ४८ संस्कारोंका परिगणन हुआ है। जबकि सुमन्तुने २५ संस्कारोंका उल्लेख किया है। व्यासस्मृतिमें १६ संस्कारोंका विवरण है। वे इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, वपनक्रिया या चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन (व्रतादेश), वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह, विवाहाग्निपरिग्रहण तथा त्रेताग्निसंग्रह—

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः।
केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः।

(व्यासस्मृति १।१३—१५)

अन्य गृह्यसूत्रोंमें इन संस्कारोंके कुछ नाम भिन्न है, जैसे—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास एवं अन्त्येष्टि। इनमें प्रथम तीन—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन प्रसवसे पूर्वके हैं, जो मुख्यतः माता-पिताद्वारा किये जाते हैं। अग्रिम छः—जातकर्मसे कर्णवेधतक बाल्यावस्थाके हैं, जो परिवार-परिजनके सहयोगसे सम्पन्न होते हैं। अग्रिम तीन—उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन विद्याध्ययनसे सम्बद्ध हैं, जो मुख्यतः आचार्यके निर्देशानुसार सम्पन्न होते हैं। विवाह, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये तीन संस्कार तीन आश्रमोंके प्रवेशद्वार हैं तथा व्यक्ति स्वयं इनका निष्पादन करता है और अन्त्येष्टि जीवनयात्राका अन्तिम संस्कार है, जिसे पुत्र-पौत्र आदि पारिवारिक जन तथा इष्ट-मित्रोंके सहयोगसे किया जाता है।

उक्त सभी संस्कार कर्मकाण्डबहुल होते हुए भी मूलतः वैज्ञानिक चिन्तनपर आधारित हैं, जो मनोविज्ञान, शरीरशास्त्र, समाजशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, ज्योतिष एवं भौतिक विज्ञानसे सम्मत एवं सोद्देश्य प्रायोजित होते हैं। उदाहरणके लिये गर्भाधानको ही लें, जो स्त्री-पुरुषसे सम्बद्ध है। स्त्री शब्दकी व्युत्पत्ति है—'स्त्यायेते शुक्रशोणिते यस्यां सा स्त्री' अर्थात् स्त्री वह क्षेत्र है, जहाँ रज-वीर्यरूप अंश वृद्धिको प्राप्त होता है। यह दोषमार्जक क्षेत्रीय संस्कार है। अतः कहा है—

निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते।
क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥

(स्मृतिसंग्रह)

मनोविज्ञान एवं चिकित्साशास्त्र यही मानते हैं कि स्त्री-पुरुष जिस भावसे सहवास करते हैं, जैसा आहार-विहार करते हैं, गर्भपर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। अतएव गर्भाधानसे पूर्व उत्तम गर्भके लिये प्रार्थना की जाती है—ऐसा बृहदारण्यकोपनिषद् (६।४।२१)-का निर्देश है। वेद एवं मनुस्मृति आदिमें ही नहीं, सुश्रुतसंहिता (शारीरस्थान अध्याय १०) आदिमें इसपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है और आधुनिक विज्ञान भी इस संस्कारके महत्त्वको स्वीकारता है।

पुंसवन एवं सीमन्तोन्नयन गर्भस्थ शिशुमें इच्छित गुणोंके आधानकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। दो-तीन मासके गर्भके लक्षण स्पष्ट होनेपर गर्भस्थ शिशुकी रक्षाके लिये 'अनवलोभन' की क्रिया भी होती थी और छठे या आठवें मासमें सीमन्तोन्नयनके द्वारा गर्भकी शुद्धि होती है। आधुनिक चिकित्साशास्त्रके अनुसार भी चार मासके गर्भके बाद शिशुके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बनने लगते हैं। हृदयमें स्पन्दन, चेतनाका नवोन्मेष और इच्छाएँ पैदा होती हैं। गर्भका यह बहुत महत्त्वका काल होता है, यही दोहद-काल भी कहलाता है, जब गर्भिणीको प्रसन्न एवं प्रफुल्लित रखनेके प्रयत्न किये जाते हैं। इसी कालमें गर्भके मङ्गलके लिये रुचिकर आहार-विहार आदिके साथ-साथ औषधि-सेवनका भी विधान है।

गर्भस्थ शिशुकी चेतना एवं इच्छाएँ माताके माध्यमसे

व्यञ्जित होती हैं। गर्भमे मन-बुद्धिका नवाङ्कुरण होता है। अतएव इस कालावधिमे गर्भस्थ शिशुपर गहरे संस्कार पडते हैं। यही गर्भका शिक्षण-काल है। माता जो कुछ सोचती है, सुनती है, ध्यान करती है वह शिशुतक सम्प्रेषित होता है। इसीसे आधुनिक विज्ञान जिसे मिथक मानता था, अब उसे सत्य मानकर स्वीकार करने लगा है। मनोविश्लेषक फ्रायडने भी माना कि जब बच्चा माँकी गोदमे अँगूठा चूस रहा होता है, तभीसे उसपर वे संस्कार पड रहे होते हैं जो उसके भावी जीवनका निर्माण करते हैं। नारदजीके द्वारा प्रह्लादको उपदेश और अभिमन्युको चक्रव्यूह-भेदनकी शिक्षा इसी कालमे प्राप्त हुई थी। इस कालमे सुन्दर प्रेरक कथा-कहानी सुनने एवं अच्छा आहार-विहार करनेकी व्यवस्था दी गयी है। विज्ञान भी मानता है कि उक्त तीनो संस्कारोके माध्यमसे शिशुके गुणसूत्रो एवं जीन्सको प्रभावित किया जा सकता है।

बाल्यावस्थाके छहों संस्कार भी पूर्णत विज्ञानानुमोदित एवं तर्कसंगत हैं। जैसे जातकर्ममे सुवर्णशलाका या अङ्गुलीसे घृत-शहद चटाना दोषनिवारण शुद्धीकरण एवं पवित्रताके लिये पदार्थ-विज्ञानपर आधारित है। ऐसे ही मेधावी एवं दीर्घायुष्य होनेके लिये शिशुके कानमे '**ॐ अग्निरायुष्मान्स वनस्पतिभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥**' (पारस्करगृह्यसूत्र १।१६।६)— इस मन्त्रके साथ ऐसे ही आठ मन्त्र पढे जाते हैं और शिशुके अङ्गोका स्पर्श किया जाता है। यह स्पर्श-विज्ञान एवं ध्वनि-विज्ञान-सम्मत क्रिया है। नामकरण भी शिशुके तेजोमय होने एवं अभ्युन्नतिकी दृष्टिसे वृत्तियोंकी अनुकूलताके लिये ही किया जाता है जो अङ्कशास्त्र ज्योतिष एवं मनोविज्ञानके आधारपर होता है। निष्क्रमण अन्नप्राशन चूडाकरण एवं कर्णवेध भी पूर्णत पदार्थविज्ञान एवं शरीरशास्त्रसम्मत हैं जो पञ्चभूत एवं पर्यावरणकी अनुकूलता आहार-विहारकी प्रासङ्गिकता नाडी-संस्थानके विकास एवं स्वास्थ्यकी दृष्टिसे रखकर ही निर्मित किये गये हैं। चिकित्सा-ग्रन्थोमे इसके भौतिक पक्षको भी विस्तारसे प्रतिपादित किया गया है।

विद्याध्ययन एवं ब्रह्मचर्याश्रमसे सम्बद्ध उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्तन-संस्कार भी वैज्ञानिक चिन्तनपर आधारित हैं जो समाजशास्त्र शिक्षाशास्त्र एवं मनोविज्ञानको दृष्टिमे रखकर सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व-निर्माणके लिये विहित हैं। शास्त्रोमें विद्याध्ययनका शिक्षणके अतिरिक्त स्नातकका जन्मकाल भी कहा गया है—'**जन्म द्विधा, जन्मना विद्यया च।**' उपनयनके समय आचार्य शिशुको गर्भके रूपमे धारण करता है— '**आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त**' (अथर्व० ११।५।३)। ऋग्वेद (१।१४९।४)-मे कहा है—'**अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्। होता यजिष्ठो अपां सधस्थे॥**' अर्थात् विद्या, यश श्रीरूप तीन दीप्तियोको धारण किये हुए, समस्त लोकोको दीप्तिमान् करता हुआ द्विज बना यजनशील स्नातक जलाशयके निकट समाधिस्थ होता है। आपस्तम्बके अनुसार '**स हि विद्यातः तं जनयति, तदस्य श्रेष्ठं जन्म। मातापितरौ तु तत् शरीरमेव जनयतः।**' अर्थात् वह (स्नातक) विद्यासे जो जन्म प्राप्त करता है श्रेष्ठ होता है। माता-पिता तो शरीरको ही जन्म देते हैं। उपनयनके समय ही आचार्य शिष्यसे कहता है '**मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु**' (पा०गृ० २।२।१८)। अर्थात् तेरे हृदयको मैं अपने हृदयमे धारण करता हूँ, तेरा चित्त मेरे चित्तका अनुसरण करे आदि।

मनुस्मृति (४।९२)-मे विधान है कि '**ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्यत**' यह निर्देश वैज्ञानिक होनेके कारण मानवमात्रके लिये उपयोगी है क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिसे हमारे शरीरमे अनेक अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ हैं। उनमे सबसे मुख्य है पीनियल ग्रन्थि जो पिट्यूटरीसे भी महत्त्वपूर्ण है। उक्त ग्रन्थिसे ब्राह्ममुहूर्तमे मेलाटोनिन रसायन बनता है जो मानसिक शान्ति वृद्धावस्था-नियन्त्रण दीर्घायुष्य स्वास्थ्य स्फूर्ति एवं प्रसन्नताको बढानेवाला होता है। अतएव ब्राह्ममुहूर्तमे उठना भारतीय संस्कार-परम्पराका अङ्ग है।

समावर्तन-संस्कार अध्ययनोपरान्त करणीय दीक्षान्त संस्कार है। तैत्तिरीयोपनिषद् (शीक्षावल्ली एकादश अनु०)-मे इस अवसरपर '**यदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति।**

सत्य वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।' इत्यादि उपदेश प्राप्त होते हैं, जो शिक्षाशास्त्रियोके अनुसार आज भी अक्षरश प्रासङ्गिक हैं और जो स्नातकमे नैतिकता, सहिष्णुता, अनुशासनके प्रशिक्षणके द्वारा उसे उन्नतिशील एव चरित्रवान् नागरिक बनानेके लिये सादृश्य प्रयास ही होते हैं। तत्त्वत उपनयन आदि संस्कार जहाँ गुरु-शिष्य सम्बन्धोके रूपमे एक चैतन्य-केन्द्रसे चैतन्य-प्रवाहकी प्रक्रिया है, वहीं व्यक्तित्व-निर्माणकी कार्यशाला भी है। इसीके द्वारा जीवनमे आत्मानुशासन, श्रमशीलता, श्रद्धापरायणताका प्रक्षेप कर वासनाओसे मुक्ति प्रदान कर सुदृढ व्यक्तित्वको व्यावहारिक रूपसे नये साँचेमे ढाला जाता है। ज्ञानपरक इन संस्कारोसे जहाँ सामुदायिकता एव संवेदनशीलताका संचार किया जाता है, वहीं जीवनमे धार्मिक आध्यात्मिक एव बौद्धिक शक्तिको गत्यात्मकता प्रदान कर बालकोको संकल्पशील बनानेका महनीय कार्य होता है।

विवाह-संस्कार गृहस्थ-धर्मका आधार है। यह स्त्री-पुरुषको एकात्म करनेकी प्रक्रिया है। इसके द्वारा कामुकतासे मुक्त होने मर्यादाशील बनने तथा एक युग्मके रूपमे संयमपूर्वक मन-वाणी-कर्मसे एकरूप होनेके लिये प्रतिबद्धताकी दीक्षा दी जाती है।

उक्त सभी संस्कार धर्मशास्त्रीय होनेपर भी विज्ञान-सम्मत हैं। इसी तरह वानप्रस्थ एव संन्यास भी भारतीय परम्पराके अनुरूप लौकिक एव पारलौकिक दृष्टिसे पूर्ण व्यावहारिक हैं। अन्त्येष्टि इस जीवनयात्राके संवरणका आत्मिक कल्याणसे सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक संस्कार है। निष्कर्षत उक्त सभी संस्कार एक ओर जहाँ जीवन जीनेकी कला सिखाते हैं या व्यक्तित्वका निर्माण करते हैं, वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक दृष्टिसे शरीर, मन बुद्धि एव चेतनाके स्तरपर नैतिकतासे ओत-प्रोत संकल्पशील समाजको मानवताके लिये प्रतिबद्ध भी बनाते हैं। इसीलिये ये संस्कार आज भी वरेण्य हैं और सुतरा उपादेय ही बने रहेंगे।

~~~o~~~

सद्विचार और सद्व्यवहारका आधार—संस्कार

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीवजरङ्गबलीजी ब्रह्मचारी)

जैसे पर्वतसे नदियाँ निकलती हैं और सूर्यसे प्रकाश निकलता है, ठीक उसी प्रकार शुभ संस्कारोसे धर्म अर्थ काम, मोक्ष सद्विचार और सद्व्यवहारका प्रादुर्भाव होता है।

शास्त्रोमे भक्ति, मुक्ति शक्ति, शान्ति सदाचार सद्विचार सद्व्यवहार समता मानवता रति और विरति (निर्वेद)—इन सबके स्फुरण और जागरणका मूल कारण शुभ संस्कारोको ही माना गया है।

दीपक जहाँ जलता है वहाँ प्रकाश अवश्य होता है, स्रोत जहाँ फूटता है जलधारा वहाँसे अवश्य बहती है, पुष्प जहाँ खिलता है, सुगन्ध वहाँसे निश्चय ही प्रसारित होती है। इसी प्रकार मानव-जीवनको उच्च उदात्त, श्रेष्ठ बनानेवाले शुभ संस्कारोके धारण, पोषण और परिपालनसे फलाकाङ्क्षारहित निष्काम कर्मयोगकी भावना अवश्य ही सुदृढ होती है। साधना आराधना और उपासनाको बल प्राप्त होता है तथा श्रवण, मनन निदिध्यासनमे अनुदिन गति प्रगति और उन्नति होती है।

यह वह दिव्य भूमि, देवभूमि भारतभूमि है, जहाँ धनसे अधिक धर्मको भोगसे अधिक योगको तथा सद्विचार और सद्व्यवहारके मूलाधार शुभ संस्कारोका सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। यह वह ज्ञानभूमि भारतभूमि है, जहाँके आप्तकाम पूर्णकाम, परम निष्काम, अमलात्मा शुद्धात्मा योगीन्द्र मुनीन्द्र ऋषियो, महर्षियोने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के गीत गाये हैं, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का माङ्गलिक उद्घोष किया है। इतना ही नहीं यह वह धर्मभूमि भारतभूमि है कर्मभूमि भारतभूमि है जहाँपर जीवनको सर्वतोमुखी सुखी बनानेके लिये जीवनमे सरलता सरसता समरसता और उदात्तता लानेके लिये जन्मसे पूर्व गर्भाधानसे लेकर शरीरान्तकी अन्त्येष्टि-
~~~

क्रियातकको शुभ सस्कारसमन्वित बनानेका प्रावधान किया गया है।

मिठाईसे मिठास, खटाईसे खटास, इक्षुदण्ड (गन्ना)-से रस और दुग्धसे घृत निकल जानेपर—जैसे ये सभी वस्तुएँ नि सार, तेजहीन, खोखली और चूर-चूर हो जाती है, उसी प्रकार मानव-जीवनसे सद्विचार और सद्व्यवहारके आधारभूत शुभ सस्काराके निकल जानेपर अथवा शिथिल हो जानेपर मानव-जीवनमे हताशा निराशा, ओज-तेज-विहीनता, किकर्तव्यविमूढता आ जाती है, फिर सस्कारोके लाप हानेके दुष्परिणामोकी कल्पना ही अत्यन्त भयदायक है।

स्वस्थ सशक्त जागरूक, उन्नतिशील, सामाजिक अथवा आध्यात्मिक जीवन-यापनके लिये सद्विचार और सस्कार—य दोना रथके दो चक्रोकी भाँति अत्यावश्यक और परम उपयोगी माने जाते हैं।

सस्काराकी सुदृढतासे ही सशक्त व्यक्तित्वका निर्माण तथा देश, राष्ट्र, समाज—सबका सर्वाङ्गीण कल्याण किया जा सकता है। इसीलिये हमारा यह सत्य, सनातन, पुरातन वैदिक धर्म सद्विचार और सस्कार—इन दोनोसे सम्पुटित होकर ज्ञान और निष्कामकर्म—इन दोनाकी समानरूपसे शिक्षा देता है।

प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-प्रणालीकी यह विशेषता रही है कि गुरुजन अपने शिष्याको वही शिक्षा देते थे जो सस्काराके माध्यमसे उनके रग-रग रोम-रोम अणु-परमाणुमे समाहित हो जाय। तभी तो तैत्तिरीयोपनिषद्की शीक्षावल्लीमे आचार्य अपने शिष्यसे कहते हैं—

'यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।'

(अनुवाक ११)

जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हींका तुम्ह सेवन करना चाहिये दूसरे (दोषयुक्त) कर्मोका कभी आचरण नहीं करना चाहिये। हमारे (आचरणामेसे भी) जा-जो अच्छे आचरण हैं उनका ही तुमको सेवन करना चाहिये दूसरोका कभी नहीं।

सद्गुरुका आचार्य नाम भी सर्वथा अन्वर्थक है। महर्षि आपस्तम्बने अपने धर्मसूत्रम आचार्यका यह लक्षण बतलाया है कि शिष्यगण जिसके सस्कारयुक्त चरित्रसे प्रभावित होकर अपने रहन-सहन, आचार-विचार, सयम-साधना, भाषा-भाव और सभ्यता-सस्कृतिको सस्कारित कर सक, उस सस्कारसमन्वित चरित्रवान् विद्वान्को आचार्य कहा जाता है। यथा—**'यस्मात् धर्मान् आचिनोति स आचार्य '** (१।१।१४)।

सस्कारोका प्रभाव जन्म-जन्मान्तरतक रहता है। सस्कृत भाषासे अनभिज्ञ एक ९० वर्षके वयोवृद्धको गीताके श्लोक शुद्ध न पढ पानेपर बहुत दु खी देखकर एक सहृदय दयालु आचार्यने उनको सस्कृत व्याकरणशास्त्रकी लघुसिद्धान्तकौमुदी पढाना प्रारम्भ किया। उन ९० वर्षकी अवस्थावाले मरणासन्न वृद्धको व्याकरण पढाता हुआ देखकर लोगाने आचार्यसे पूछा कि आप इनको व्याकरण क्या पढा रहे है? आचार्यने बडी विनम्रतापूर्वक सबको बताया कि मैं इनको पढा नहीं रहा हूँ, बल्कि सस्कृत भाषा पढनेके इनमे सस्कार डाल रहा हूँ, जिससे अगले जन्ममें इस सस्कारके प्रभावसे ये सस्कृत भाषाका पाण्डित्य अर्जित कर सके।

गीता (८।६)-मे भी भगवान्ने कहा है कि—

य य वापि स्मरन्भाव त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
त तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित ॥

अर्थात् अन्त समयम व्यक्ति जिस सस्कारसे सस्कारित होकर शरीर-त्याग करता है, उस सस्कारके आधारपर ही अगला जन्म होता है।

योगदर्शन (३।१८)-म भी कहा गया है—

'सस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्॥'

भाव यह है कि सयमद्वारा सस्काराका साक्षात्कार कर लेनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है।

जगद्गुरुके पदपर प्रतिष्ठित इस भारतदेशमे वेदोसे लकर हनुमानचालीसातक पुराणासे लकर लोकगीतोतकमे जन्मसे लेकर जीवनकी अन्तिम श्वासतक शुभ सस्काराके

पालन, पोषण और धारणपर बल दिया गया है।

वेदान्त-दर्शन (४।१।१)-में कहा गया है—'**आवृत्ति-रसकृदुपदेशात्॥**' अर्थात् स्वाध्याय तथा उपासना आदि शुभ सस्कारोकी आवृत्ति बार-बार करते रहना चाहिये।

प्रश्न आया कि इन शुभ सस्कारोकी आवृत्ति कबतक करते रहना चाहिये। उत्तरमे कहा गया है—'**आ प्रायणात्**' (४।१।१२) अर्थात् जीवनकी अन्तिम श्वासतक इन शुभ सस्काराकी पुनरावृत्ति करते रहना चाहिये।

फिर प्रश्न आया कि आजीवन इन शुभ सस्काराके धारण, पोषण परिपालनसे क्या लाभ होगा? महर्पि वेदव्यासजीका उत्तर है—'**अनावृत्ति शब्दात्**' (४।४।२२)। साराश यह है कि जो इन शुभ सस्कारोका आवर्तन दृढतासे अपने जीवनमे करता रहता है, उसके सभी दु खोकी आमूलचूल निवृत्ति हो जाती है और वह परमानन्दस्वरूप मुक्तिकी उपलब्धि करके कृतकृत्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जाता है। उसका फिर ससारम आगमन नहीं होता।

भारतीय सस्कृति ओर सनातनधर्मम इन सस्काराको इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि इन सस्कारोकी गरिमा-महिमा, सत्ता-महत्ता, उपयोगिता-आवश्यकताको उदाहरणके रूपमे प्रस्तुत करनेके लिये जगन्नियन्ता, जगदाधार सर्वाधिष्ठान सर्वशक्तिमान्, स्वयप्रकाशमान प्रभु परमात्मा स्वय कभी मर्यादापुरुपोत्तम श्रीरामके रूपमे अवतरित होकर और कभी लीलापुरुपोत्तम श्रीकृष्णके रूपमे प्रकट होकर '**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ५।१९।५)-के रूपसे लोगाको शुभ सस्कारोके धारण और परिपालनकी शिक्षा देते हैं।

शुभ सस्कारोके प्रभावसे ही वाल्मीकि मार-काट, लूट-पाटको छोडकर महर्षि बन गये और विभीषण बन गये राक्षससे रामदास। अच्छे सस्कारोके कारण ही शबरी भीलनीसे 'भामिनी' कहकर पुकारी गयी और नारद हो गये दासीपुत्रसे देवर्षि।

इन शुभ सस्कारामे सयम करनेसे अष्ट सिद्धियाँ और नौ निधियाँ साधककी दासी बन जाती हैं और धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयको साधक जब चाहे, जहाँ चाहे, जैसे चाहे, प्राप्त कर सकता है। तभी तो सविधि सभी सस्कारोसे समन्वित जीवन-यापन करनेवाले हनुमान्‌जीके लिये—'*गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिधु अनल सितलाई॥*' बन गया अर्थात् विपने अमृतका, शत्रुने मित्रका, समुद्रने गोपदका और अग्निने दाहकता छोडकर शीतलताका रूप धारण कर उनके कार्यमे सहयोग किया।

एक शिल्पकार, कलाकार, मूर्तिकार सगमरमर पत्थरकी एक मूर्ति बना रहा था। मूर्तिकी सुन्दरताको देखकर लोग मूर्तिनिर्माता शिल्पकारकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। मूर्तिकारने नम्रतापूर्वक कहा—भइया! तुमलोग हमारी व्यर्थ प्रशसा क्या कर रहे हो? मैं इस मूर्तिको नहीं बना रहा हूँ। मूर्ति तो पहलेसे ही इस पत्थरमे विद्यमान है, किंतु दिखायी नहीं पड रही है। मैंने तो मूर्तिमे लगे हुए मलबेको अपनी छेनी ओर बसूलीसे हटाकर पहले इसका 'मलापनयन-सस्कार' और फिर इसपर रग-रौगन लगाकर इसका 'अतिशयाधान-सस्कार' मात्र किया है। इतना ही नहीं, कुछ वस्तुएँ—वस्त्रादिक बाहरसे लाकर इसे पहनाकर 'हीनाङ्गपूर्ति' नामक इसका तीसरा सस्कार भी किया है।

ठीक इसी प्रकार हमलोग भी मलापनयन, अतिशयाधान और हीनाङ्गपूर्ति नामक इन सस्कारत्रयके द्वारा अपने आत्मस्वरूपके दर्शनमे बाधक मल, विक्षेप एव आवरणको दूरकर सम्पूर्ण आधिया, व्याधिया और उपाधियोसे मुक्त हो सकते हैं। शुभ सस्काराके प्रभावसे भक्त भगवान्‌को, नर नारायणको, आत्मा परमात्माको और जीव ब्रह्मको सरलता, सुगमतासे प्राप्त कर लेता है।

अन्तमे यही कहना है कि पूज्य है यह देश, धन्य है यह धरती और प्रशस्य है यह भारतीय सस्कृति, जहाँ व्यष्टि-समष्टि—सबको सुखी, निरामय और भद्र बनानेके लिये सद्विचार आदि सद्व्यवहारके आधार—शुभ सस्कारोको सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है।

आख्यान—

तीन संस्कारी प्राणी

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

अनेक बार किसी छोटे-से कारणसे योगभ्रष्ट महापुरुष पशु-पक्षी आदि शरीरोमे जन्म ग्रहण करते हैं। जडभरतजीको मृग बनना पडा था। एक ऐसी भी कथा सुनी है कि महादानी बलि कुछ दिन गधा बनकर रहे थे। जब भी कोई महापुरुष किसी तिर्यक् योनिमे आते हैं, तब उन्हे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहती है। भोगयोनिमे होनेपर भी उनका सयम-साधन उस योनिके अन्य जीवासे पृथक् दीखता है। गजेन्द्रको पूर्वजन्मके साधनसे ही ग्राहके द्वारा ग्रस्त होनेपर भगवान्का स्मरण हुआ। भगवान्की स्मृति तो कहीं भी हो, निष्फल जाती नहीं। हम यहाँ तीन ऐसे ही दिव्य सस्कारसम्पन्न प्राणियोकी सक्षिप्त चर्चा करेगे—

(१)

अयोध्यामें श्रीकनकभवनविहारीजीकी सेवामें अयोध्याकी रानीसाहिबाकी ओरसे एक घोडी रहती थी। यात्रा-उत्सवादिमे उसका उपयोग होता था। कनकभवनमे रहते-रहते ही वह बुढिया हो गयी। एक बार रानीसाहिबा मन्दिरमे श्रीकनकभवनविहारीजीके दर्शन करने आयीं। उन्होने घोडीको देखकर साथके अपने मुख्य सेवकको आदेश दिया—'यह घोडी बुढिया हो गयी। इस अब जमींदारीपर भेज दो और यहाँ प्रभुकी सेवामे कोई अच्छा घोडा पहुँचा दो।'

राजमहलसे दूसरा घोडा मन्दिरमे आ गया। घोडीको जमींदारीपर भेजनेके लिये रेलद्वारा कई स्टेशन भेजना था। जो घोडी कभी अडती नहीं देखी गयी थी वह, जब लोग स्टेशन ले जाने आये तो भूमिमे लेट गयी। किसी प्रकार भी उठाये उठती ही नहीं थी। अश्वशालाके सेवकाने बताया 'जबसे इसके बाहर भेजनेकी चर्चा हुई हे, तबसे इसने दाना-घास तो क्या जलतक नहीं पिया है। इसकी आँखासे बराबर आँसू बह रहे हैं।'

बेचारे मूक प्राणीकी वेदना कौन समझता? रस्सियासे बाँधकर ठेलपर लादकर घोडीको स्टेशन पहुँचाया गया। उसे मालगाडीके पशु ढोनेवाले डिब्बेमे बद कर दिया गया। रस्सियाँ खोल दी गयीं। दाना-घास और जल रख दिया गया। स्टेशन-मास्टरने किराया लेकर उसको भेजनेकी बिल्टी काट दी।

मन्दिरके महन्तजीका बडी दया आयी घोडापर। उन्हाने रानीसाहिबाके पास कहलवाया—'घोडी उपवास कर रही है। वह बाहर जाकर मर जायगी। इतने दिन वह श्रीकनकभवनविहारीजीकी सेवामे रही। अब बूढी होनेपर उसे अयोध्याकी दिव्य भूमिसे निकाला न जाय।'

बात रानीसाहिबाके ध्यानमे भी आ गयी। उन्हाने कह दिया—'घोडी चली न गयी हो ता उसे रोक लिया जाय।'

महन्तजी स्वय स्टेशन गये। पहले वे वहाँ गये जहाँ घोडी मालके डिब्बेमे बद थी। उनको देखकर उसके नेत्रासे आँसूकी धारा वेगसे चलने लगी। तब महन्तजीने उसे पुचकारा आश्वासन दिया और वे स्टेशनमास्टरके पास आये। स्टेशनमास्टरने कहा—'घोडीकी दशा देखकर मुझे भी बहुत दु ख हुआ, किंतु मैं कर ही क्या सकता था? मालगाडी तो चली गयी है। घोडी जिस डिब्बेमे थी, मैंने उसके गार्डको बिल्टी-नम्बर आदि दे दिये हैं। घाडी ता चली गयी।'

जब महन्तजीने बताया कि घोडी गयी नहीं तो स्टेशनमास्टरको बडा आश्चर्य हुआ। मालगाडीके गार्डकी भूलसे ट्रेनमे वह डिब्बा जोडा ही नहीं गया था। उस मूक प्राणीकी पुकार और कोई सुने या न सुने, पर कनकभवनमें जो उसके स्वामी आराध्यपीठपर विराजमान हैं उन्होने सुन ली थी। आवश्यक लिखा-पढीके काम पूरे हो गये। मालके डिब्बेसे उतारनेपर घोडी दौडती-भागती सीधे कनकभवनमे अपने स्थानपर आकर खडी हुई।

उस भाग्यशाली पशुने जीवनभर कनकभवनकी पशुशालामें निवास किया और श्रीअवधधाममे जब उसने देहत्याग किया तब उसका शरीर सरयूजीमे प्रवाहित किया गया।

(२)

गङ्गातटपर राजघाटमे जब श्रीअच्युतमुनिजी महाराज रहते थे तब उनकी कुटियाके पास एक कुत्ता रहता था। लोग कहते थे—'यह बहुत ही निकम्मा कुत्ता है। किसीको भूँकता ही नहीं।' कुत्तासे भी झगडते उसे किसी दिन नहीं देखा गया। वहाँ सता तथा सवकाके जूँठे टुकडे जो मिल

जाते, वही खाकर चुपचाप पडा रहता था।

श्रीअच्युतमुनिजीसे जब कोई पूछता—'महाराज! एकादशी आज है या कल?' तो वे सेवकोंसे पूछते कि 'कुत्तेने आज भोजन किया या नहीं?' बात यह थी कि कुत्ता एकादशीको कुछ भी नहीं खाता था। अनेक बार उसे परीक्षाके लिये एकादशीको दूध-मिठाइयाँ आदि दी गयीं, पर उसने उन्हें सूँघातक नहीं। किस दिन एकादशी है इसका उसे किसी अलक्ष्य संस्कारसे ही ज्ञान हो जाता था।

मरनेके दिन वह कुत्ता आकर श्रीअच्युतमुनिजी महाराजके चरणोंमें लोटने लगा। सबको बडा आश्चर्य हुआ क्योंकि कभी वह ऐसा नहीं करता था। महाराजने उसे पुचकारा। कुछ क्षण बाद वह उठा और श्रीगङ्गाजीमें जाकर स्नान करने लगा। स्नान करते-करते वह गङ्गाजीमें ही किनारे थोडे जलमें लोट गया और वहीं उसने शरीर छोड दिया।

(३)

करह (ग्वालियर)-के श्रीबाबाजीके यहाँ पहले एक कटी पूँछका कुत्ता रहता था। महाराजजी उसे बडा भगत कहा करते थे। भगवान्‌का भोग लगनेपर उसके लिये पत्तल लगाकर रखी जाती थी। वह नित्य प्रातः-सायं दूसरे साधुओंके समान महाराजजीके चरणोंमें दण्डवत् करता-सा लेट जाता था।

उन दिनों एक सज्जन महाराजजीके लिये गाँवसे दूध और रोटी लाते थे। उनके कई गाय-भैंस थीं। महाराजजी उनका दूध तो बडाको पिला देते और रोटी स्वयं खाते। एक दिन उन्होंने कहा—'मैं इस कुत्तेके लिये दूध नहीं लाता। आप नहीं पीते तो दूसरे संतोंको क्यों नहीं दे देते?'

महाराजजीने कहा—'इस प्रकार मत बोलो। बडा भी संत ही है।'

दूसरे दिन उनका दूध बडाके सामने रखा गया तो वह उठकर अन्यत्र जा बैठा। उन सज्जनको बडा आश्चर्य हुआ। बहुत पुचकारनेपर भी बडाने उनका दूध स्वीकार नहीं किया।

दो-चार दिन इस घटनाको बीते और बिना किसी कारणके उनकी एक भैंस मर गयी। तीन-चार दिनका अन्तर पडा और दूसरी मरी। अब वे बहुत घबराये। महाराजजीके पास आकर रोने लगे। महाराजजीने कहा—'अपराध तो तुमने बडा भगतका किया है उससे क्षमा माँगो।' बडाके सामने दूध रखकर हाथ जोडकर वे रो पडे। अब बडाने उठकर चुपचाप दूध पी लिया। फिर उनका कोई पशु मरा नहीं।

एक दिन बडा असमयमें आकर महाराजजीके पैरोंके पास लोटने और कूँ-कूँ करने लगा। महाराजने कहा—'तू क्या चाहता है? कहाँ जाना चाहता है? अच्छा जा।'

बडाको अनुमति मिल गयी। आश्रमके बाहर जाकर वह भूमिपर लेट गया। सूर्यनारायणकी ओर देखते हुए उसने शरीर छोड दिया। महाराजने बडाकी देहको समाधि दी और उसका भण्डारा भी कराया।

~~~o~~~

पृथ्वी किसके प्रभावसे टिकी है ?

दोषहेतूनशेषांश्च वश्यात्मा यो निरस्यति। तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते॥
सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः। मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥
ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे। सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैर्धृता मही॥

(विष्णु० ३।१२।४०—४२)

जो मनको वशमें रखनेवाला पुरुष दोषके समस्त हेतुओंको त्याग देता है, उसके धर्म अर्थ और कामकी थोडी-सी भी हानि नहीं होती। जो विद्या-विनय-सम्पन्न सदाचारी प्राज्ञ पुरुष पापीके प्रति पापमय व्यवहार नहीं करता कटु वचन बोलनेवालेके प्रति भी प्रिय भाषण करता है तथा जिसका अन्तःकरण मैत्रीसे द्रवीभूत रहता है मुक्ति उसकी मुट्ठीमें रहती है। जो वीतराग महापुरुष कभी काम, क्रोध और लोभादिके वशीभूत नहीं होते तथा सर्वदा सदाचारमें स्थित रहते हैं उनके प्रभावसे ही पृथ्वी टिकी हुई है।

~~~o~~~

पालनमे पूर्ण समर्पण करके जुट जाओ अपनेको जान लो और अमृतपान कर अमर हो जाओ।

> एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
> एक रूप बहुधा य करोति।
> तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरा-
> स्तेषा सुख शाश्वत नेतरेषाम्॥
> (कठोपनिषद् २।२।१२)

अर्थात् जो सब प्राणियाका अन्तर्यामी, अद्वितीय एव सबका वशम रखनेवाला परमात्मा अपने एक ही रूपको बहुत प्रकारसे बना लेता है, उस अपने अदर रहनवाले परमात्माको जो ज्ञानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल रहनेवाला परमानन्दस्वरूप वास्तविक सुख मिलता है, दूसरोको नहीं।

शुभ सस्कारासे ही एसी बुद्धि बनती है और शुभ कर्मकी दृढता प्राप्त होती है। अत अच्छे सस्कार बन सके, इसके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

~~~ o ~~~

सस्कारोकी महिमा—एक दृष्टान्तबोध

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी एम्०कॉम०)

सस्कारका अर्थ होता हे—शुद्ध करना, साफ करना चमकाना ओर भीतरी रूपको प्रकाशित करना। सस्काराका विशेष उद्देश्य मानसिक और आध्यात्मिक परिशुद्धिसे है। जिस व्यक्तिका सस्कार किया जाता है, उसके मन और आत्मापर अच्छा प्रभाव पडता है। जब हम किसी व्यक्तिके सम्बन्धम यह कहते हैं कि वह मनुष्य सुसस्कृत है या उसके सस्कार अच्छे है तब हमारा आशय उस व्यक्तिकी बाहरी बातो या व्यवहारोसे उतना नहीं होता, जितना कि उसकी सद्भावना, सच्चरित्रता तथा मन और आत्माकी पवित्रतासे होता ह, जिसकी प्ररणासे वह व्यक्ति सत्कार्य करता है और अपने सद्गुणोका परिचय देता है।

सस्कृति हमारे आन्तरिक गुणाका समूह है, वह प्रेरक शक्ति है, हमार सामाजिक व्यवहाराका निश्चित करती हे और हमारे साहित्यका निर्माण करती है। सस्कृति हम बतलाती हे कि हम अपनी सूक्ष्म चित्तवृत्तियाका कितना विकास कर पाये हैं और पशुजीवनसे कितना ऊँचा उठ सक हैं।

ममता प्राणिमात्रका स्वाभाविक गुण हे पर एक आदमीकी ममता उसक अपन परिवारतक हा सीमित रहती है दूसरकी अपने परिवारसे बाहरक भी दु खी बालक या व्यक्तितक पहुँचती है और तीसरकी ममता अपन शत्रुसे भी सद्व्यवहार करनका प्रेरित करता है। इसस अवश्य ही पहलेसे दूसरा और दूसरस तीसरा व्यक्ति अधिक सस्कृत कहा जायगा।

सस्कृत व्यक्ति शिक्षा साहित्य कला-कौशल आदिकी उपेक्षा नहीं करता, वह इन्हे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओकी पूर्ति या ख्यातिके साधनक रूपमे भी नहीं देखता है उसके लिये तो ये चीज उसके धन आदिकी तरह समाजके हित या सुखक लिये साधनमात्र हैं। साधारण जन भी 'सस्कृतव्यक्ति' कहला सकता है, यदि उसमे सहानुभूति उदारता प्रेम, परोपकार आदि भावनाओका विकास हो गया हो, यदि वह दूसरोका कष्टनिवारण करनेके लिये स्वय दु ख झेलनेको तैयार हो, उसका हृदय मानवसेवाके लिये बेचैन हो और वह प्राणियामे अपनी ही आत्माका अनुभव करता हो।

हमारी यह सस्कृति मानवसस्कृति है हम चाहिये कि उसक विकास और प्रचार-प्रसारम—मानवताको ऊँचा उठानेमे अधिक-से-अधिक योगदान देकर अपना जीवन सफल कर।

आजका युवावर्ग जो कि आधुनिक बननेकी होडमे दूषित वातावरणसे ग्रस्त एव पाश्चात्य जीवनशैलीक अन्धा-नुकरणकी दौडम व्यस्त है उसके लिय सर्वप्रथम यह जरूरी है कि वह जीवनमे सस्काराकी आवश्यकताको जाने दैनिक जीवनम नियमितता लाये ओर व्यवहारम सद्गुणोका समावेश करे। भगवान् श्रीरामका जीवन कितना आदर्शमय था। तुलसीदासजीन श्रीरामचरितमानसम लिखा है—
~~~

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

(रा०च०मा० १।२०५।७)

बालक अपने जन्मके साथ दो प्रकारके संस्कार लेकर आता है। एक संस्कार तो वे हैं, जिन्हे वह जीवनमें अपने जन्म-जन्मान्तरोंसे साथ लाता है एवं दूसरे वे जिन्हे वह अपने माता-पितासे वंशपरम्पराके रूपमें प्राप्त करता है। ये संस्कार अच्छे-बुरे—दोनों प्रकारके हो सकते हैं। तीसरे संस्कार वे होते हैं, जिन्हे बालक जन्मके बाद अपने वातावरणसे प्राप्त करता है।

बालक अपने परिवारमें जैसा नित्यप्रति देखता है जैसे कार्य उसके अभिभावक करते हैं वह भी प्राय वैसा ही करने लग जाता है। यदि बालक यह देखता है कि परिवारके सभी लोग रात्रिमे विलम्बसे सोते हैं और सुबह विलम्बसे जगते हैं तो वह भी विलम्बसे जगनेका आदी हो जाता है। यदि परिवारके लोग सुबह जल्दी जागते हैं तो वह भी जल्दी जगेगा।

जिस परिवारमे सुबह उठते ही, बिना नहाये ही चाय पीनेकी परम्परा है तो उस परिवारके बालकोंमें भी यह आदत बन जायगी, किंतु जिस परिवारके लोग उठनेके पश्चात् पहले नित्यकर्म आदि करते हैं तो बालक भी उसीका अनुकरण करेगा। इसे एक उदाहरणसे समझाया जाता है—

एक फोटोग्राफरके मनमें विचार आया कि वह अपने स्टूडियोमें एक सुन्दर एवं सुसंस्कृत बालकका फोटो लगाये। अनेक गाँवों एवं नगरोंमें घूमनेके पश्चात् उसे एक गाँवमे एक दसवर्षीय बालक सबसे सुन्दर लगा। उसने उसके माता-पितासे पूछकर उसका फोटो ले लिया तथा उसे अपने स्टूडियोमें लगा दिया। दो दशक पश्चात् उसके मनमें विचार आया कि संसारके सबसे कुरूप व्यक्तिका चित्र भी संग्रह कर स्टूडियोमें लगाया जाय। इसके लिये उसे सर्वप्रथम जेलोंमें जाकर अपराधियोंसे मिलना पड़ा, जो हत्या एवं अन्य कुकृत्योंके परिणामस्वरूप कारावास भुगत रहे थे। फलत वह एक जेलमें पहुँचा एवं वहाँ उसने एक युवकको देखा जो समयसे पूर्व ही प्रौढ और कुरूप लग रहा था तथा वह दुर्गन्धयुक्त परिस्थितियोंमें बैठा था। फोटोग्राफरको लगा—इससे कुरूप एवं बीभत्स व्यक्ति दूसरा नहीं हो सकता। उसने उसका फोटो लेना चाहा। फोटो लेनेका उद्देश्य जानकर वह व्यक्ति रो पड़ा। कारण पूछनेपर उस व्यक्तिने बताया कि जब वह दस वर्षका बालक था तब एक फोटोग्राफर उसका फोटो उतारकर इसलिये ले गया था कि वह उसे बहुत सुन्दर एवं सुसंस्कृत लगा था, किंतु बादमें मैं अपने घरके कुसंस्कारों तथा कुसङ्गतिके प्रभावसे रास्तेसे भटक गया। उच्छृङ्खल जीवनके कारण मुझमें सब प्रकारके दुर्गुण आ गये। कुछ वर्ष बाद ही बच्चे मुझे देखकर डरने लगे और मैं समाजमें घृणाकी दृष्टिसे देखा जाने लगा। परिणामस्वरूप प्रतिदिन झगड़ने चोरी करनेका मेरा नियम हो गया था और आप आज मुझे इस स्थितिमें देख रहे हैं। अस्तु, मेरे बचपनके कुसंस्कारोंने ही मेरी यह दशा कर दी है। मुझे तो यह लगता है कि बालकोंको संस्कारित करनेमें माता-पिताकी अहम भूमिका होती है।

उसकी बात सुनकर फोटोग्राफर भौंचक्का-सा रह गया और किंकर्तव्यविमूढ-सा होकर बिना फोटो लिये ही वापस चला आया।

इसलिये बालकोंको संस्कारित करनेके लिये अभिभावकोंको विशेष ध्यान देना चाहिये, वरना युवा पीढ़ी विलासिताका जीवन जीना ही पसंद करेगी। बिना परिश्रम शीघ्र ही पैसा कैसे प्राप्त हो सकता है—आज हर युवाके दिमागमें यही बात है। हमारे बालक तभी संस्कारित हो सकते हैं, जबकि हम स्वयं संस्कारित होंगे। माँ ही बालकोंकी प्रथम गुरु होती है। इसलिये विशेषरूपसे माताओंद्वारा बालकोंको संस्कारित किया जाना चाहिये। घरसे बाहर बालकोंको संस्कारित करनेमें विद्यालय गुरुजन एवं पाठ्य पुस्तकोंका भी बड़ा महत्त्व है। इन तीनोंके द्वारा भी बालकोंको उत्तम संस्कार प्रदान किये जा सकते हैं। भावी पीढ़ीको मनसा-वाचा-कर्मणा सशक्त बनानेहेतु प्रारम्भसे ही विद्यालयोंमे नैतिक शिक्षाका अध्यापन अनिवार्य होना चाहिये। समाजके प्रत्येक घटकको इस कार्यमें अपनी सहभागिता निभानेहेतु अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिये तभी हमारे समाज एवं देशका उत्थान हो सकता है।

~~ ० ~~

सस्कारोका महत्त्व

(श्रीशियरतनजी मोरोलिया 'शास्त्री')

मनुष्याम मानवीय शक्ति एव द वत्वभावनाका
आधान करनक लिय उन्ह सुसस्कृत किया ज ना आवश्यक
होता है। विधिपूर्वक सस्कार-साधनस वच्चा म दिव्य ज्ञान
एव देवत्वभावका विकास हाता है, जिसस व आत्मा-
परमात्माक सम्बन्धाका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करक अपने मानव-
जीवनको सार्थक बनानेम सफल हात हैं। सुसस्कार ही
मनुष्यको पाप अज्ञान और अधर्मस दूर रखकर उन्ह
आचार-विचार, कर्मनिष्ठता ओर ज्ञान-विज्ञानस सयुक्त करते
हैं। इससे मनुष्यम सद्बुद्धि वनी रहती है और उसक हृदयम
त्याग, सयम, प्रम उदारता, धर्मनिष्ठता, कर्तव्यपरायणता
आदि उच्च भावनाएँ आती हैं। इसी दैवी सम्पत्तिक
फलस्वरूप वह जीवनम सच्चे सुख एव शान्तिको पाता है।

भारतीय धमशास्त्राकी दृष्टिम मनुष्यका यह आवश्यक
कर्तव्य है कि वह अनक यानियाम भ्रमण करनक कारण
सचित हुए पाशविक सस्काराका परिमार्जन करक मनुष्याचित
सस्काराको धारण करे। अत यह कहना उचित होगा कि
किसी पदाथम दाप-निराकरणपूर्वक गुर्णोको उत्पन करना ही
सस्कार कहलाता है।

जबतक किसी पदार्थका सस्कार नहीं हाता, तबतक
वह सदोप और गुणहीन रहता है। उदाहरणार्थ जबतक
हीरेको शानपर सस्कृत नहीं किया जाता तबतक उसपरस न
ता मिट्टीका आवरण ही हटता है ओर न उसम चमक ही
आती है। इसी प्रकार जब सोना खानसे निकलता है, तब वह
मलिन रहता है। सस्कारक बगैर सुवर्ण नहीं बन पाता।
सस्काराद्वारा ही सब पदार्थ व्यवहारापयागी हाते है। जब जड
वस्तुआम भी सस्कारस इस प्रकारकी विलक्षणता आ जाती
है, तब मनुष्यका ता क्या कहना? मनुष्यका भी स्वरूप
सस्कारस ही यथार्थत प्रकाशित हाता है। सस्कारसे ही
मनुष्यका दृष्ट एव अदृष्ट मल प्रक्षालित होता है।

सस्करणका नाम ही सस्कार है। 'सम्' उपसर्गसे 'कृ'
धातुम 'घञ्' प्रत्यय करनपर ओर 'सपरिभ्या करोतो
भूपणे' (पा०सू० ६।१।१३७)—इस सूत्रसे भूपण अर्थम
'सुट्' करनपर 'सस्कार' शब्द बनता है।

सस्कार वह स्नेहयुक्त दापक है जा मानवको
अन्धकारसे निकालकर असभ्यताक पङ्कस खींचकर सताकी
कोटिम ला बैठाता है। यह मनुष्यका ऊँचा उठाता है।
साधारणत व्यावहारिक रूपम सस्कारका अर्थ है—पवित्र
धार्मिक क्रियाआद्वारा व्यक्तिक दैहिक मानसिक, बाद्धिक
और मुख्यत आत्मिक परिष्कारक लिय किय जानवाल वे
अनुष्ठान जिनसे व्यक्ति अपन व्यक्तित्वका पूर्ण विकसित
करक समाजका अभिन्न सदस्य बनत हुए माक्षका आर
अग्रसर होता है।

सस्कार जीवनक विभिन्न अवसराका महत्त्व और पवित्रता
प्रदान करत हैं। व इस विचारपर बल दत हैं कि जावनक
विकासका प्रत्यक चरण कवल शारारिक क्रिया नहीं है अपितु
उनका सम्बन्ध मनुष्यकी बौद्धिक, भावात्मक और आत्मिक
अभिव्यक्तिस है जिनके प्रति मनुष्यका सदैव जागरूक रहना
चाहिय। सस्कार ही सदाचारकी नींव हैं, सस्कार जावनक
प्रत्यक भागका व्याप्त कर लेत हैं, इतना ही नहीं जन्मस पूर्व
तथा मृत्युके बाद भी सस्कार साथ ही रहत हैं।

सस्कार मानवताका मरुदण्ड है। यह शिष्टता सौजन्यता
तथा शीलकी आधारशिला है। सुसस्कारी चरित्रवान् तथा
शीलवान् व्यक्ति मरकर भी अमर होत हैं। आज सस्काराक
अभावम लाभ तथा वासनात्मक दृष्टि विवकहानता असयम
उच्छृङ्खलता तथा धैर्य एव सङ्कल्पशक्तिकी कमी प्रत्यक्ष
दिखलायी पडता है। युवा पीढी सस्काराक अभावमे लगातार
भटकावकी आर बढ रही हे। कुसस्कारी लोगाको चार चाज
मिलती हैं—अपार अशान्ति अनवरत दु ख मरणात्तर नरक
एव आसुरी यानियाकी प्राप्ति। इनकी प्राप्ति हमे न हो सके
इसक लिय सस्कारसम्पन्न बननेकी अपेक्षा है।

सस्कारी व्यक्तिका प्रत्येक आचरण धर्ममय होता है
और उसका प्रत्येक कर्म प्रकाशकी ओर ले जानेवाला होता
है। सस्कारसम्पन्न बननके लिये हम अपने दोषाको दूर करना
होगा। अपनेका शुभ सात्त्विक और उच्च चरित्रवाला
सुसस्कृत पुरुष बनाना होगा। अच्छ सस्कारासे ही शुभ कर्म
हाते हैं। शुभ कर्म वही हैं जिनसे हमारा अन्त करण पवित्र
हो मनके भाव उन्नत तथा विशुद्ध हा। अत अन्नदोष
सङ्गदोष असदाचरण ओर भगवान्‌की विमुखतासे अपनको
बचानकी आवश्यकता है।

भारतीय सस्कृतिमे उसी जावनका प्रशस्त माना गया

है, जो शान्त सन्तुष्ट और आनन्दमय हो। आदर्श जीवन-शैलीमे सयम और सादगीका विशेष मूल्य है तथा अनुशासन और विनयका बहुत महत्त्व है, ऐसा होना सुसस्कारोपर ही निर्भर है। सुसस्कारोके बिना व्यक्तिका जीवन दिग्भ्रान्त—नाविकविहीन जहाजके समान दुविधामयी स्थितिमे विस्तृत सागरम डगमगाता रहता है।

सुसस्कारोका अर्थ होता है स्वभाव, व्यवहार आचरण अथवा जीवनका वह कार्य जिससे मानवकी योग्यता, मानवता, कर्तव्यपरायणता आदिका बोध होता है। इतिहास साक्षी है कि सुसस्कारी व्यक्ति ही महापुरुष हुए हैं। सस्कारोके लिये मन, वचन और कर्म—इन तीनोकी पवित्रता और एकरूपता अपेक्षित है। साधारणतया जब व्यक्ति अनैतिक, अविश्वासी कामलोलुप, क्रोधी, पाखण्डी तथा मानसिक विकारसे ग्रस्त हो जाता है, तब उसे कुसस्कारी कहा जाता है। इसके विपरीत सस्कारी व्यक्तिम स्वधर्मपालन, परोपकारिता सहिष्णुता, नम्रता आदि महान् गुण होते हैं, इसीलिये वह महान् कहलाता है।

धार्मिक ग्रन्थोके अनुसार सुसस्कृत व्यक्तिको चाहिये कि वह जितेन्द्रिय, पवित्र चञ्चलतारहित सबल, धैर्यशील, लोभहीन सदाचारपरायण और सर्वभूतहितैषी बनकर अपने ही शरीरमे रहनेवाले काम-क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओको अवश्य जीते।

बालकपर ही देश जाति धम तथा सस्कृतिका भविष्य निर्भर है। सस्कारोसे ही बालक सद्गुणी, सुविचारसम्पन्न सत्कर्मी, सेवापरायण, साहसी, आदर्शभूत, अनुशासनप्रिय एव सयमी बनता है। इनके सस्कारी बननेसे समाज तथा देश भी वैसा बनेगा, जबकि इनके सस्कारहीन होनेपर स्वय इनकी तथा समाज एव देशकी दुर्दशा हो जाती है। बालक अनुकरणप्रिय होता है, हम उसे जैसा सिखायेगे वैसा ही वह सीखेगा। हमारे ऋषि-मुनियोका कहना है कि बालक गर्भमे भी सीखा करता है।

सुसस्कृत व्यक्तिम छ प्रकारकी शुद्धियाँ स्वय प्रविष्ट हो जाती है, यथा—मनकी शुद्धि, वाणीकी शुद्धि, अन्नशुद्धि, हस्तशुद्धि (प्रतिग्रह न लेना तथा हाथोद्वारा शुभकर्म करना), कच्छशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि।

आचार-विचार और सस्कारका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, इसीलिये भारतीय सस्कृतिमे सस्कारोपर विशेष बल दिया गया है।

आज सुसस्कारोके अभावम न तो आश्रमधर्म रहा और न वर्णधर्म ही, लोक और वेद दोनोकी मर्यादा नष्ट होती जा रही है। न कोई लोकाचार मानता है और न वेदोक्त धर्म ही। शास्त्र और सुमार्ग क्षीण हो रहे हैं। यद्यपि यह नैराश्यकी ही स्थिति है, किंतु यदि सन्मार्गका आश्रय लिया जाय तो इस विषम परिस्थितिसे हम अपनेको उबार सकते हैं। सुसस्कार आत्मोत्थानके मूल कारण हैं, इनके सम्पादन तथा सद्वृत्त एव सदाचारक सेवनस इस लोकम उन्नति यश, प्रतिष्ठा एव ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है और पारलौकिक कल्याणका मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है।

~~~०~~~

अकिञ्चनता

तप सञ्चय एवह विशिष्टो धनसञ्चयात्॥
त्यजत सञ्चयान् सर्वान् यान्ति नाशमुपद्रवा। न हि सञ्चयवान् कश्चित् सुखी भवति मानद॥
यथा यथा न गृह्णाति ब्राह्मण सम्प्रतिग्रहम्। तथा तथा हि सतोषाद् ब्रह्मतेजो विवर्धते॥
अकिञ्चनत्व राज्य च तुलया समतोलयन्। अकिञ्चनत्वमधिक राज्यादपि जितात्मन॥

(पद्म० सृष्टि० १९। २४६—२४९)

इस लोकमे धन-सञ्चयकी अपेक्षा तपस्याका सञ्चय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक सग्रहोका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। मानद! सग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य सुखी नहीं हो सकता। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग करता है वैसे-ही-वैसे सतोषके कारण उसके ब्रह्म-तेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिञ्चनता और दूसरी ओर राज्यको तराजूपर रखकर तोला गया तो राज्यकी अपेक्षा जितात्मा पुरुषकी अकिञ्चनताका ही पलडा भारी रहा।

~~~०~~~

सस्कार, सदाचार और सद्वृत्त

(श्रीग्यीन्द्रनाथजी गुरु)

सस्कार मदाचार आर सद्वृत्तका अन्यान्याश्रित सम्बन्ध है। सत्क्रियाआस आत्मिक परिष्करणक निमित्त विधेय कमानुष्ठान ही सस्कार ह। सात्त्विक सस्कार-प्राप्त्यथ शास्त्राक्त नियमाका पालन अनिवार्य है। कायिक, वाचिक आर मानसिक सस्कारत्रयम मानसिक सस्कार श्रेष्ठ ह। भारतीय सनातन सस्कृतिम सस्कारापर वहुत वल दिया गया है। गातमधमसूत्रम ४८ सस्कार वताय गय हैं तथा सुमन्तुन २५ सस्कार वताय हैं पर महर्षि व्यासदवन स्वकीय स्मृतिम अत्यन्त उपयागी प्रमुख १६ सस्काराका वर्णन किया ह। जिस कर्तव्यकमस समाजकी श्रीवृद्धि हाती है और समष्टिकी सृष्टि हाता है वह सस्कार कहा जाता है। गृह्यसूत्राम गभाधानस लकर अन्त्यष्टिक्रियातक विविध सस्काराका वणन है।

सस्कार हानपर 'द्विज' सज्ञा हाती है। गभाधानादि सस्कारास शून्य व्यक्ति द्विज नहीं हा सकता—

'नासस्कारा द्विज ।' (बौधायनगृह्यपरिभाषासूत्र)

सत्पुरुषाक आचारका नाम ही सदाचार है जा धमका मूल है—

'धर्ममूल निषेवत सदाचारमतन्द्रित ॥'

(मनुस्मृति ४।१५५)

परस्त्रीको मातृवत्, परद्रव्यका मिट्टाकी भाँति तथा सर्वभूताम आत्मदर्शी हा यथार्थदर्शी पण्डित है—

मातृवत्परदारषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित ॥

(चाणक्यनाति १२।१४)

सस्कारवान् तथा सदाचारी व्यक्ति सतत सबक मङ्गलकी ही अभिलाषा रखत हैं। उनका यह सहज स्वभाव रहता है कि सभी प्राणी आनन्दस रह नाराग रह तथा काई भी स्वल्प दु खका भा भागी न बन—

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु खभाग्भवेत्॥

सघबद्ध जावन—मैत्रीपूर्ण व्यवहार ही अमाघ बलदायक सद्गतिविधायक और गौरववर्धक है। आर्यवैदिक-सस्कार हम यह महती शिक्षा दत हैं कि सब लाग प्रमस परस्पर मिलकर चल अभ्युदयकारक सत्य एव कल्याणकारा वाणा वाल एक-दूसरक मनका वातका जानकर तदनुकूल आचरण कर जिस प्रकार दवता मयादाका समझत हुए अपना-अपना हविभाग ग्रहण करत हैं, उसा प्रकार हम सब मानव भी न्यायाचित भागका ही ग्रहण कर, किसा अन्यक भागका धन अन्यायस ग्रहण न कर। हम सभीक सङ्कल्प निश्चय प्रयत्न एव व्यवहार समान हा कपटपूण न हा। हमारा हृदय समान हा अथात् सुख-दु खादि द्वन्द्वास रहित हाकर समभावम स्थिर हा हमारा मन समान हा अथात् सद्भाववाला हा और सबका सहभाव हा—

स गच्छध्व स वदध्व स वा मनासि जानताम्।
दवा भाग यथा पूर्वे सजानाना उपासत॥
समानी व आकृति समाना हृदयानि व ।
समानमस्तु वा मना यथा व सुसहासति॥

(ऋक्० १०।१९१।२ ४)

भारतीय सस्कृतिम सद्वृत्तका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूण है जिसक निमाणका प्राथमिक शिल्पी माता ही हैं।

जो व्यक्ति गुरुजनाका नित्य नमस्कार करनक सस्कारवाला तथा वयावृद्धाका सवाकारा हाता है उसका आयु, विद्या यश और वलकी अनुदिन वृद्धि हाती रहती है—

अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धापसेविन ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशा बलम्॥

(मनुस्मृति २।१२१)

इस आर्यावर्तम जन्म लनवाल अग्रजन्मा पुरुषास ही पृथ्वीक सभी लोगाका अपने-अपन सद्वृत्तोकी शिक्षा लेनी चाहिये—

एतद्दशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ॥

(मनुस्मृति २।२०)

सस्कार सदाचार और सद्वृत्तका वास्तविक लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार ही है। महर्षि अङ्गिराद्वारा शानकजाका आत्मसाक्षात्कारके बारम निम्नाक्त सदुपदश प्राप्त हुआ—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्॥
(मुण्डकोपनिषद् ३।२।३)

अर्थात् यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचनसे, न बुद्धिसे और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त हो सकता है, यह जिसको स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योकि यह परमात्मा उसके लिये अपने यथार्थ स्वरूपको प्रकट कर देता है।

सस्कार सदाचार और सद्वृत्तकी चरमोपलब्धि सर्वत्र परमात्मदर्शन ही है। मनुष्य-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता सस्कारापर अवलम्बित है। मनुष्यके अध पतनके हेतु उसके कुसस्कार, कदाचार और असद्वृत्त ही हैं। महाभारतम यथार्थ ही कहा गया है—

वृत्त यत्नेन सरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्तत क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हत ॥
(उद्योग० प्रजागरपर्व ३६।३०)

अर्थात् सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, कितु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।

पुराणोमे सस्कार सदाचार और सद्वृत्तसम्बन्धी विविध आख्यान वर्णित है। पद्मपुराणम माता-पिता (पितरों)-की सेवाके सस्कारको सर्वश्रेष्ठ बताया गया है—

पिता धर्म पिता स्वर्ग पिता हि परम तप ।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता ॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमय पिता।
मातर पितर तस्मात्सर्वयत्नन पूजयेत्॥
(सृ० ५२।९—११)

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या ह। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणासे पिता-माता सतुष्ट रहत हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी हे और पिता सम्पूर्ण दवताओका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये।

मनुष्य-जीवनक अनुकरणाय तथा अनुपाल्य आदर्श सस्कारोमे गुरुजनाका अभिवादन एव माता-पिता आदि वयोवृद्ध गुरुजनाकी भक्ति और सेवाका सस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सत्य, तपस्या, सम्यक् ज्ञान एव नित्य ब्रह्मचर्यपालन—इन सत्सस्कारासे आत्मसाक्षात्कार होता है—

'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।'
(मुण्डकोपनिषद् ३।१।५)

आत्मज्ञानार्जन, मनकी प्रशान्ति और वदाभ्यासरूप सुसस्कारसम्पन्न हानेके लिये प्रयत्नशील होना चाहिय—

'आत्मज्ञाने शमे च स्याद् वेदाभ्यासे च यत्नवान्॥'
(मनुस्मृति १२।९२)

सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, सार-असार तथा अच्छी-बुरी विवेचना करनेकी शक्ति जिसम नही रहती, वह मनुष्यपदवाच्य नहीं हो सकता। विवेक ही मनुष्यका अमूल्य वित्त है। विवेकी व्यक्ति सुशील एव सस्कारसम्पन्न होते हैं। धर्म, सत्य, बल, वृत्ति और श्रीप्रभृति—ये सब शीलमे ही प्रतिष्ठित हैं। सुशीलता ही मनुष्यत्वका प्रकृष्ट परिचायक सर्वोत्तम आभूषण है। वेद यथार्थ ही सदुपदेश दे रहे हैं—'**मनुर्भव**' अर्थात् मननशील और सस्कारसम्पन्न होइये तथा मनुष्यत्वकी रक्षा कीजिये। गुरु-वाणीम कहा गया है—

मातृभूमातृभक्तो य स्वकर्तव्यरत सदा।
वशे कृत्वेन्द्रियाणीह सुसस्कारसमन्वित ॥
न वृथा परविद्वेष वृणोति हि कदाचन।
मनुष्य स प्रशस्योऽत्र गण्यमान्योऽप्यकिञ्चन ॥

जो माता [पिता] तथा पृथ्वीमाताका भक्त हे सदा अपने कतव्यम परायण रहता हे अच्छ सस्कारासे सम्पन्न है तथा जिसने अपनी इन्द्रियाको वशम कर रखा है ओर जो किसीक साथ कभी भी द्वेष नहीं रखता वह मनुष्य अकिञ्चन हाते हुए भी प्रशसनीय और गण्यमान्य है।

सस्कारासे युक्त हानेपर ही मनुष्य सस्कृत, सदाचारी, वृत्तवान् तथा प्रभुपरायण हा सकता है। इस प्रकार भारतीय धर्म एव हिन्दूसस्कृतिम सस्कार सदाचार और सद्वृत्ताका अपार महत्त्व है। सुसस्कृत व्यक्तिके निमाणस ही दश-समाजका कल्याण होना सम्भव है। कुसस्कारा, कदाचारों तथा दुर्वृत्तास निवृत्त होनेके लिय भगवान्मे सदा प्रार्थना करते रहना चाहिय।

सस्कारोंका महत्त्व और उनका जीवनपर प्रभाव

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्०ए०, पी एच्०डी०)

जीवनम हमे जो कुछ वास्तवम बनना या पूर्ण विकसित हाकर समाजम अपना महत्त्वपूर्ण पद, नोकरीम स्थान, सामाजिक जीवनमे प्रतिष्ठा, राजनीतिमे नेतृत्व, व्यापारम समृद्धि, यश और प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करना चाहिये, उसकी तुलनाम हम कवल अर्द्धजाग्रत् ही हे।

खेद है कि हम समझदार कहलाकर भी अपने शारीरिक, मानसिक ओर आध्यात्मिक सस्कारासे अनभिज्ञ हैं और उन्हे न जानकर अपनी छिपी हुई शक्तियाका केवल अल्पाश ही उपयाग कर रहे हैं। हम ईश्वरके पुत्र, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परम तेजस्वी आत्मा हैं, भगवान्ने हमारे गुप्त मनमे उन समस्त सद्‌गुणोके सस्कार बीजरूपमे जमा रखे हैं, जिनसे जीवन सफल और यशस्वी बनता है। अपने छिपे हुए या सोये हुए सस्कारापर विश्वास कर, निरन्तर उन्हे पहचान कर उनका पूर्ण विकास कर ही हम प्रसिद्धिके चरम शिखरपर पहुँच सकते हैं। अपने-आपको बढाकर हम स्वय ही ऊँचे उठ सकते हैं।

इन सस्कारोको विकसित करनेपर ही विकास और उन्नतिकी असीमित सम्भावनाएँ हमारे शरीर, मस्तिष्क और आत्माम निहित हैं। आप तथा आपके सम्पर्कमे रहनेवाले आपके बहुत-से मित्र, सम्बन्धी बाल-बच्चे, धर्मपत्नी, पडोसी अपने शुभ सस्कारोसे परिचित नहीं है। वे अज्ञान और आलस्यके कारण अपनी छोटी-छोटी सीमाओ या थोडी-सी उपलब्धियासे ही सतुष्ट हो जाते हैं, जबकि विकास करनेके लिये उनके गुप्त मनम सोये हुए शुभ सात्त्विक सस्कार व्यर्थ ही पडे रहत हैं। इन सस्काराको जानने, विश्वास करने और विकसित करनेकी बडी आवश्यकता है।

मनुष्यको ईश्वरने अपन उदात्त गुणासे परिपूर्ण करके भेजा है। विश्वका सर्वोत्कृष्ट प्राणी होनेके कारण उसम उच्चतम शारीरिक बौद्धिक और आत्मिक गुण जड रूपम रखे गये हैं। प्रत्येक सद्‌गुणकी जड हमारे गुप्त मनम जमायी गयी है। य जडे अत्यन्त गहरी हैं और इन्ह ही सस्कार कहत हैं। सस्काराके बीज कई पाढिया, माता-पिता तथा उनक परिवारके पूवजासे हमारे गुप्त मनम आते हैं। ये सस्कार ही हमारे विकासके चिह्न हैं। यही हमारी वे सम्पदाएँ हैं, जिनसे हर प्रकारका विकास सम्भव है, अत अपने उच्च सस्काराम विश्वास कीजिये।

कई बार साधारण-से परिवार और मामूली वातावरणम पला-पनपा बालक अपने अदर किसी विशेष गुण या विशेषताका अनुभव करता है और उधर ही स्वत धीरे-धीरे विकसित होता जाता है। बाह्य वातावरण बहुत कम उसकी सहायता करता है, यह उसके शुभ सस्कारोका ही परिणाम है। सस्कार उच्च गुण एव कर्मकी प्रेरणा देनेवाला बीज है। इस केन्द्रबिन्दुसे ही उन्नति होती है। प्राणिमात्र ईश्वरके पुत्र है आत्मरूप हैं। सुख-शान्ति, आरोग्य और आनन्दके स्वामी हैं। ईश्वर अदृष्टरूपसे सबमे समाया हुआ है। वह शील, गुण और शक्तिका पुञ्ज है। उनकी सूक्ष्म सहायता गुप्त रूपसे हम सदा ही मिलती रहती है। स्वस्थ शरीर, जाग्रत् बुद्धि और शान्त मन हम आत्माकी ओर चलाते हैं। यह सब हमारे ईश्वरीय शुभ सस्काराका ही प्रभाव है। हमारे उच्च सस्कार केवल इस जन्मकी कमाई नहीं हैं, पूर्वजोके शुभ कार्योंके फल हैं। अभ्याससे इन सस्काराको निखारा जा सकता है। ज्ञानवान् वह है जा अपने शुभ सस्कारासे परिचित है दिव्य और पवित्र लक्ष्यको जानता है। पूर्वसचित शुभाशुभ कर्मोंका नाम दैव है।

स्वभावसे ही मनुष्य ऊँचा उठना और आगे बढना चाहता है। पशु और मनुष्यम इन उच्च सस्कारोको विकसित कर ऊँचा उठना ही अन्तर है। पशु जहाँ-के-तहाँ पडे हैं, मनुष्य अपने सस्कारोको पहचान कर विकास कर रहा है।

कई बार हमारी आत्मा हम शुभ सकेत देती है पवित्र भावनाएँ अदरसे उठती हैं उत्तम विचार और दिव्य सस्कार यकायक जागकर हम कुछ सात्त्विक सदेश देना चाहते हैं। ये पवित्र सस्कार भगवान्के दिये हुए दिव्य सकेत हैं कि हम मौजूदा स्थितिसे ऊँचे उठे आगे बढ, किसा उपयोगी क्षेत्रम उन्नति करते-करते श्रेष्ठताके सर्वोच्च शिखरपर आसीन हा। इस साधनाको आत्म-निरीक्षण कहते

हैं। अपनी आत्माके सकेतको सुनना, समझकर क्रियान्वयन (अर्थात् अभ्यासद्वारा उसपर अमल) करना उन्नतिका उपाय है। प्रत्येक श्रेष्ठ कर्मके मूलम शुभ सस्कार ही जड रूपसे विद्यमान हैं। खेद है कि हम अपनी इस जड (सस्कार)-को नहीं पहचानते, अपना आत्म-विश्लेषण नहीं करते आत्माकी आवाज नहीं सुनते, व्यर्थ ही आलस्यमे पड रहत हैं। शुभ सस्कार दबे पडे रहते है।

हम प्राय दूसराकी दृष्टिम अपने-आपको भरमानेकी कोशिश करते हैं, अपने असली स्वरूपको देखनेसे वञ्चित रह जाते हैं। आत्मोन्नति तभी सम्भव है, जब हम अपने शुभ सस्कारोंको समझ और निरन्तर अभ्यास और सयमद्वारा अपने गुणोको विकसित करे। गीतामे भगवान् श्रीकृष्णन दैवी सम्पदा (अर्थात् दैवी सस्कारो)-का उल्लेख किया है। ये वे दैवी सस्कार हैं, जो जन्मसे ही हमे मिले हें। यह वह आचारसहिता है, जिसे हमे अपने आचरणम विकसित करना चाहिये। उस कसौटीपर हमे अपनेको परखना चाहिये कि हम अपने अदर कितने सात्त्विक सस्कारोको जाग्रत् कर सके है। आज हमारी क्या स्थिति है? हम किन-किन दिशाओमे अपनी योग्यताएँ विकसित करनी हैं? कौन-कौन व्यक्ति, परिस्थिति या वातावरण हमारे शुभ सस्कारोके विकासमे सहायक हो सकता है? भगवान्ने दैवी सस्काराके ये लक्षण बताये हैं—अभय, सात्त्विक वृत्ति, ज्ञानयोगमे स्थिति, दान, मन और शरीरपर पूर्ण नियन्त्रण, यज्ञ अर्थात् समाजके हितके लिये किये गये नि स्वार्थ कर्म, स्वाध्याय अर्थात् उत्तमोत्तम धर्मग्रन्थोका अध्ययन, तप अर्थात् कर्तव्यमार्गमे आवश्यक कष्ट सहना और अनुशासनमे रहना, कष्ट सहकर भी परोपकार करना, सरलता अहिसा, सत्य, क्रोधका अभाव, त्याग, शान्ति, उदारता एव दया, तृष्णाका अभाव, मृदुता, बुरा काम करनेमे लाज, अचपलता तेज क्षमा, धैर्य, शुद्धि शत्रुताका अभाव तथा अपने-आपम पूज्यताके अभिमानका अभाव। दैवी सस्कारोका अर्थ देवताओं-जैसी श्रेष्ठ मनोवृत्ति है। अपने दैनिक जीवनमे निरन्तर अभ्यासद्वारा इन सस्कारोको विकसित करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने जिस आसुरी सम्पदाका उल्लेख किया है, वह हमारे दूषित सस्कार ही हैं। भाग्यवान् तो वे हैं जो आसुरी सस्कारासे मुक्त हैं, किंतु जिन्हे विवक जाग्रत् होनेसे आसुरी सस्कारोका ज्ञान हो गया है, जो नीर-क्षीर-विवेक कर सकते हैं उन्हे दूषित सस्कारो (अन्धविश्वास, पूर्वाग्रह, दम्भ, पाखण्ड घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता ओर मूढता)-को दूर करनेका सतत प्रयत्न करना चाहिये। इसका उपाय यह है कि हम सात्त्विक सस्कारोका अभ्यास करे, दृढतापूर्वक अपने मनको उनमे लगाय, बार-बार कठोरता और सयमपूर्वक शुभ सस्कारोको अपने दैनिक व्यवहार और क्रियाओमे स्पष्ट करे। प्रारम्भमे शुभ सस्कारोका विकास कुछ धीमी गतिसे होगा, किंतु दीर्घकालीन अभ्यासद्वारा वे हमारे व्यक्तित्वके अङ्ग बन जायँगे। आसुरी सस्कारावाले लोग कभी न पूरी होनेवाली कामनाओको मनमे बसाये रहते हैं। एकके बाद दूसरी कामना मनुष्यको जीवनभर व्यर्थ दौडाती है और उसे अपने ध्येयसे दूर कर देती है। दृढतापूर्वक अपनी विवेकबुद्धिसे इच्छाआको जाँचना चाहिये और अभ्यासद्वारा श्रेयका मार्ग अपनाना चाहिये। [सस्कार-सौरभ]

याद रखो

१-किसीको नीचा दिखानेकी चाह या चेष्टा न करो, किसीकी अवनति या पतनम प्रसन्न न होओ, न किसीकी अवनति या पतन चाहो ही। किसीकी निन्दा-चुगली, दोष-प्रकाशन न करो।

२-मान-प्रतिष्ठाके लिये त्यागका स्वाँग मत धारण करो। सच्चा त्याग करो। त्यागम भाव प्रधान है बाहरी क्रिया नहीं।

३-मौन साधन करो—परतु याद रखो, असली मौन तो मनका है। मनमे विषय-चिन्तन बद हा जाना चाहिये।

४-गिर हुए, रोगी, प्रलोभनमे पड़े हुए, अपराधी, विपत्तिग्रस्त और अपमानित नर-नारियाक साथ कभी दुर्व्यवहार मत करो। उनसे सहानुभूतिका बर्ताव करो। उन्ह सच्चा सुखी बनानेकी चेष्टा करो।

स्वाध्याय एवं सद्ग्रन्थसेवनका सस्कार

(श्रीगङ्गाधरजी गुरु)

अज्ञानरूपी भीषण आपन्निमग्न दु स्थितिम पडे हुए मानवाको सत्यदर्शी वैदिक ऋषि अन्तवासियाके माध्यमसे श्रेष्ठ उपदेशपूर्वक मानवताके श्रेय पथका प्रदर्शन करा रहे हैं—

'स्वाध्यायान्मा प्रमद ' अर्थात् 'स्वाध्यायसे कभी न चूको' (तैत्तिरीयोपनिषद् १।११)।

स्वाध्यायका निगूढार्थ स्वात्माध्ययन ही है। स्वय ही स्वयका अध्ययन करना चाहिये। अन्त स्थित आत्माको भलीभाँति जानना ही स्वाध्याय एव सद्ग्रन्थसवन-सस्कारका सदुद्देश्य है। दूसराके हितके लिय सत्-शास्त्रो (वेदोपनिषत्पुराणादि सद्ग्रन्था)-का पठन-पाठन भगवन्नाम-जप आदि स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ है। द्रव्यमय यज्ञम क्रिया तथा पदार्थकी मुख्यता है, अत वह करणसापेक्ष है। ज्ञानयज्ञम विवेक-विचारकी मुख्यता है अत वह करणनिरपेक्ष है। इसलिय द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। ज्ञानयज्ञम सम्पूर्ण क्रियाआ और पदार्थोस सम्बन्धविच्छेद हो जाता है अर्थात् तत्त्वज्ञान होनपर कुछ भी करना और जानना शेष नहीं रहता क्याकि एक परमात्मतत्त्वके सिवाय अन्य सत्ता ही नहीं रहती—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञ परन्तप।
सर्वं कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

(गीता ४।३३)

स्वाध्याय और सद्ग्रन्थसवनका अभ्यास वाङ्मय तप कहा गया है—

'स्वाध्यायाभ्यसन चैव वाङ्मय तप उच्यते॥'

(गीता १७।१५)

मानवके अन्त करणम सनिहित दानविक वृत्तिको यत्नपूवक सशाधित-परिमार्जित कर जा मनाहर, मधुमय दवत्वका सुरम्य शतदल प्रस्फुटित करता है, वह सस्कार कहा जाता है। जहाँ उसकी महती तथा शाश्वत प्रतिष्ठा हाती है वहाँ वसुमती (पृथ्वी) भाग्यवती कहलाती है। श्रुतिका सदुपदश है—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचन च। सत्य च स्वाध्यायप्रवचन च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्र च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्याय-प्रवचने च। मानुष च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।'

(तैत्तिरीयोपनिषद्, शीक्षावल्ली नवम अनुवाक)

यथायाग्य सदाचारका पालन ओर शास्त्रका पढना-पढाना भी (यह सब अवश्य करना चाहिय) सत्यभाषण ओर वेदोका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) तपश्चर्या और वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) इन्द्रियाका दमन ओर वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये), मनका निग्रह और वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये), अग्नियाका चयन और वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये), अग्निहोत्र आर वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) अतिथियाकी सेवा और वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये), मनुष्योचित लोकिक व्यवहार और वेदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) गर्भाधान-सस्काररूप कर्म और वदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) शास्त्रविधिके अनुसार सतानात्पत्ति और वदाका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये) तथा कुटुम्बवृद्धिका कर्म और शास्त्रका पढना-पढाना भी (साथ-साथ करना चाहिये)।

जीवनम स्वाध्याय एव वेदादि सद्ग्रन्थसेवनका सुसस्कार डालकर मानवात्माका सदैव सुसस्कृत करना ही मनुष्य-जावनका लक्ष्य है। वयोवृद्धसे भी ज्ञानवृद्ध श्रेष्ठतर कहलाता है—

न तन स्थविरा भवति यनास्य पलित शिर ।
बालाऽपि य प्रजानाति त दवा स्थविर विदु ॥

(महाभारत वनपर्व तार्थयात्रापर्व १ ३।११)

जिम दशक नागरिकवृन्द स्वाध्याय एव सद्ग्रन्थ-सवन रूप सुसस्कारम सुसम्कृत हात हैं वहाँ शान्ति-

सौभाग्यलक्ष्मी विराजित रहती है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' यह आर्षवचन याद करते हुए ब्रह्मचर्य और तपस्यासे मृत्युञ्जयी होना चाहिये। श्रुतिका सदुपदेश है—

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।'

(अथर्ववेद ११।५।१९)

ब्रह्मचर्य, सयम-साधना, सेवा-निष्ठा, सदाचार एव ज्ञानप्रद सद्ग्रन्थाध्ययनमे अपन अमूल्य समयका विनियोग करना ही सुखप्राप्तिका हेतु है। जीवनम स्वाध्याय एव सद्ग्रन्थसवनका सस्कार महत्त्वपूर्ण है। किसी भी दश, समाज एव व्यक्तिका निर्माण मुख्यत सस्कारपर ही निर्भर है। जीवनकी सर्वाङ्गीण सफलताके निमित्त सस्कारसम्पन्न होनेकी आवश्यकता अपरिहार्य है। वेद-वेदान्त, रामायण, महाभारत एव पुराणोके स्वाध्याय तथा ज्ञानप्रद सत्साहित्य, सद्ग्रन्थसेवनरूप सस्कारकी चरमोपलब्धि—सर्वत्र परमात्मदर्शन ही है। सङ्कल्पाके त्यागसे कामपर और कामनाके त्यागसे क्रोधपर, अर्थको अनर्थ समझकर लोभपर और तत्त्वके विचारसे भयपर जय प्राप्त करनी चाहिये। वेदान्तचिन्तन और अध्यात्मविद्यासे शोक एव मोहपर, महापुरुषोकी उपासनासे दम्भपर, मौनसे योगके विघ्नापर और शरीर प्राणादिका चष्टारहित करके हिसापर जय प्राप्त करनी चाहिये। दयाके द्वारा आधिभौतिक दु खपर समाधिसे आधिदैविक दु खपर, योगशक्तिसे आध्यात्मिक दु खपर एव सात्त्विक आहार स्थान सङ्गादिके द्वारा निद्रापर जय प्राप्त करनी चाहिये। सत्त्वगुणसे रजागुण और तमोगुणपर तथा उपरतिसे सत्त्वगुणपर जय प्राप्त करनी चाहिये। श्रीगुरुकी भक्तिस व्यक्ति इन सभी दोषोपर सहज ही विजय प्राप्त कर सकता हे—

असङ्कल्पाजयेत् काम क्रोध कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभ भय तत्त्वावमर्शनात्॥
आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भ महदुपासया।
योगान्तरायान् मौनेन हिंसा कायाद्यनीहया॥
कृपया भूतज दु ख दैव जह्यात् समाधिना।
आत्मज यागवीर्येण निद्रा सत्त्वनिषेवया॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्व चोपशमेन च।
एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

(श्रीमद्भा० ७।१५।२२—२५)

बाल्यावस्थासे ही प्राचीन भारतीय सस्कृतिके प्रदर्शक एव सनातनधर्मक परमादरणीय सद्ग्रन्थ श्रीमद्भागवत, गीता रामायण तथा महाभारतको स्वाध्यायका अनिवार्य जीवनाङ्ग बनाना चाहिये। पातञ्जलयोगदर्शन (२।४४)-मे यथार्थ ही कहा गया है—**'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग ॥'** अर्थात् स्वाध्यायसे इष्टदवताकी भलीभाँति प्राप्ति हो जाती है। शास्त्राभ्यास, मन्त्र-जप और अपने जीवनके अध्ययनरूप स्वाध्यायके प्रभावद्वारा योगी जिस इष्टदेवका दर्शनाभिलाषी होता है, उसीका दर्शन हा जाता ह।

प्राणी जो कुछ कर्म करता है एव अपनी इन्द्रिया ओर मन-बुद्धिस जो कुछ उपलब्धि करता है, वे सब उसके अन्त करणम सस्कारके रूपमे सञ्चित रहते है। इन्द्रियाका असयम आपद्-विपत्पन्थ हे, उस पथपर भूलसे भी पाँव नहीं रखना चाहिये। इन्द्रियोपर सयम ही सम्पत्तिका कल्याणकारी अभीष्ट मार्ग है, अत इसी मार्गका अनुसरण करना चाहिये—

आपदा कथित पन्था इन्द्रियाणामसयम ।
तज्जय सम्पदा मार्गो येनेष्ट तेन गम्यताम्॥

मानव-जीवनम प्रमादको मृत्यु बतलाया गया है—**'प्रमाद वै मृत्यु'**। हमारा हृदय ही सभी खजानाका खजाना है सभी पूँजियाकी पूँजी है। यदि हृदय सुसस्कृत है, सस्कारासे सुरक्षित है तो सब कुछ सुरक्षित है। अत कोपाके कोप हृदयका सुरक्षित रखना चाहिये।

भारतीय सस्कृतिकी शाश्वत-सनातन महनीयता हमारे धर्मशास्त्राम ही सनिहित है। महर्षि मनुके मतम जो द्विजाति वेदाध्ययन-त्यागकर अन्यत्र श्रम करता है, वह शूद्र-पदवाच्य होता है।

सार्वजनीन मङ्गलविधान वेद ही सभी धर्मोके मूल हैं, अत अधिकारानुसार नित्य ही वेदाध्ययन करना कल्याणकारी है—इसम सदह नहीं। वेदका स्वाध्याय करनेवाल सस्कारी मनुष्याकी दुर्गति कदापि नहीं होती। **'अनन्ता वै वेदा'**—वदकी साङ्गोपाङ्ग महिमाका वर्णन करनेकी शक्ति ही कहाँ? वदके स्वाध्यायसे स्वत शारीरिक एव मानसिक मलाका अपाकरण हा जाता है। कौषीतकिब्राह्मण (३।२६)-का वचन है—

'न वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति।'

अर्थात् सस्कारहीन मनुष्याद्वारा प्रदत्त वस्तुएँ दवता ग्रहण नहीं करते।

जगत्के इतिहासम महर्षि शङ्ख और लिखितका उपाख्यान प्रसिद्ध है। शङ्ख और लिखितका स्वाध्याय—सद्ग्रन्थसेवनका सस्कार तथा उनकी धममर्यादाएँ अनुकरणीय हैं। दोनोकी अस्तेय एव धर्मनिष्ठाकी अन्तिम कोटिकी स्थिति महाभारतम द्रष्टव्य है। हमारी सनातन सम्कृतिमे सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, सयम नियम, अस्तेय तथा अपरिग्रहादि सुसस्कार कह गये हैं। भारतीय सस्कृति सत्य-धमप्रतिष्ठित है—'**धर्मो विश्वस्य जगत प्रतिष्ठा।**' स्वाध्याय एव सद्ग्रन्थ-सेवनरूप सस्कार ही साम्यधर्मसस्थापक है। स्वाध्याय एव सद्ग्रन्थसेवनरूप सस्कारक अभावम समाजम साम्य-सस्थापनकी याजना आकाश-कुसुमकी भाँति निरर्थक ही है। अत सद्ग्रन्थाके स्वाध्यायपर निष्ठा रखत हुए तदनुकूल कर्तव्यका निर्वाह कर आत्माद्धारम प्रवृत्त रहना चाहिये।

सस्कार-दर्शन

(आचार्य श्रीप्रतापादित्यजी)

भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको बताया—'तुम मेरे भक्त हा ओर सखा भी, इसलिये तुम्हे मैने गुह्य उत्तम और तत्त्वस्वरूप उस सनातन योगका उपदेश दिया है, जो मैने सूर्यको बताया था।' अर्जुन आश्चर्यचकित होकर बोले—'सूर्यका जन्म ता आपक जन्मक बहुत पहले ही हुआ था इसलिये यह कैस माना जाय कि आपने यह विद्या सूर्यका दी थी?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन! मेरे और तुम्हारे—दोनाके अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं उन सबको जानता हूँ, किंतु तुम नहीं जानते।' इस प्रकार जन्म-जन्मान्तरक होने ओर उनके जाननेकी क्षमता प्रमाणित हाती है। इसका कारण यह है कि जहाँ योग और तन्त्र-साधनाका उपयोग होता है वहाँ इस प्रकारकी ज्ञानशक्ति प्राप्त होती ही है।

महर्षि पतञ्जलिकृत 'योगदर्शन' के विभूतिपादम ऐसी अनेक सिद्धियाका सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवरण उपलब्ध है। इस व्यावहारिक पक्षका ज्ञान और उपयोग सिद्ध पुरुषाको प्राप्त होता है और वे अन्य लागाको भी इसका ज्ञान देनेमे सक्षम होते हैं।

सस्कार-साक्षात्कार या सस्कार-दर्शन योगकी विभूतियामसे एक विभूति है। आचार्य पतञ्जलिन इस सस्कार-दशनक विषयम कहा है—'**सस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्॥**' अर्थात् सस्काराके साक्षात्कारस जन्म-जन्मान्तरका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

यहाँ सस्कारका थाडा अलग अर्थ है। सामान्य तौरपर सस्कारका अर्थ शोधन उन्नयन या पवित्रीकरण माना जाता है, किंतु योग और तन्त्रके क्षेत्रम सस्कारका अर्थ है—'कर्माशय' अर्थात् प्रतिकर्मके बीजाका अवस्थान। नियमत प्रत्यक कर्मका प्रतिकर्म प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है।

उदाहरणके लिय रबरकी गदको यदि मुट्ठीम दवाया जाय तो वह पुन अपनी पूर्वावस्थाम पहुँचनेके लिये उसी शक्तिका विपरीतार्थक उपयोग करती है। गेद दीवारपर फेकी जानेपर पुन वापस लौट आती है। पूर्वावस्थाम पहुँचने अथवा फके जानेपर वापस लोटनेकी जो प्रारम्भिक स्थिरावस्था है वही प्रतिक्रियाका बीज कही जा सकती है। मानसिक जगत्म भी ऐसा ही होता है। जब हम किसाको पीडा पहुँचात हैं तो पीडित पक्ष प्रतिक्रिया करता है, किंतु यदि किसी कारणसे वह प्रतिक्रिया नहीं कर सका तो प्राकृतिक नियमक अनुसार जबतक पीडकको ठीक उसी प्रकार उतना ही या उससे अधिक पीडा प्राप्त नहीं हो जाती तबतक वह प्रतिक्रिया बीजरूपमे स्थित रहती है। प्रतिक्रियाके स्थित रहनेका स्थान कहीं बाहर नहीं बल्कि मनुष्यके मनम ही होता है। अभुक्त कर्मोंक प्रतिकर्मोंका बीज मानव-मनम जहाँ रहता है, उस ही कर्माशय कहत हैं। जबतक कर्माशय पूर्णत इन प्रतिक्रियाक बीजासे रहित नहीं हो जाता तबतक जन्म मरण और पुनर्जन्मका चक्र और इस प्रकार सुख-दु खका चक्र चला करता है। पुराने बीजाका स्थान नूतन शुभाशुभ कर्मोंक बाज लेते रहते हैं।

इसीलिये तन्त्र कहता है—

यावन्न क्षीयते कर्म शुभ चाशुभमेव च।
तावन्न जायते मोक्षो नृणा कल्पशतैरपि॥

इस सदर्भमे श्रीमद्भगवद्गीतामे फलाकाङ्क्षाका त्याग, कर्तृत्वाभिमानका त्याग और सर्वकर्म-ब्रह्मार्पण—ये तीन उपाय बताये गये हे।

सस्काराके साक्षात्कार या दर्शनसे जन्म-जन्मान्तरका स्वरूप उजागर हो जाता है, क्योकि उसमे ही कृतकर्म और होनेवाले प्रतिकर्मके बीज उसी प्रकार छिपे रहते हैं जिस प्रकार बरगद-जैसे विशाल वृक्षका पूरा स्वरूप उसके अति सूक्ष्म छोटे बीजमे छिपा रहता है। आजकल भौतिक सत्यापनका माध्यम 'जीन्स' कुछ इसी प्रकारका स्थूल प्रक्रिया है। सस्कार-दर्शन उससे भी अति सूक्ष्म मानस बीजासे परिचित होनेका यौगिक तान्त्रिक विज्ञान है।

यह कैसे सम्भव होता है? साधक साधनाके माध्यमसे अपने मनको सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर बनाता जाता है। जब वह कर्माशयसे भी सूक्ष्म स्थितिमे पहुँच जाता है तो सहज ही कर्माशयके बीजोके स्वरूपको देखकर पूर्वजन्मोका और आगे होनेवाले जन्मोके स्वरूपका परिचय प्राप्त कर लेता है। यह बीज शक्तिकण होनेके कारण वर्ण (रङ्ग) और तरङ्गकी सकुचित अवस्थामे (ज्वार-भाटाकी तरह) रहता है। इन्हीं वर्णों और तरङ्गाके आधारपर उनका पूर्वापर इतिहास जाना जाता है।

'सस्कारो' के इन अर्थोमें और सस्काराके शुद्धीकरणके अर्थोमे मात्र समझनेका अन्तर हे। जिस प्रकार प्रतिक्रिया सम्पन्न हुए बिना कर्माशय प्रतिक्रियारहित अर्थात् शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार असस्कृत कर्मको सुसस्कृत करनेकी विधि भी वैदिक परम्परामे स्थूल पद्धतिके रूपमे उपलब्ध है।

सिद्ध योगी सस्कार-दर्शनका उपयोग साधकको उपयुक्त साधना सिखानेके लिये तथा उसे प्रेरणा देनेके लिये करता है। उपयुक्त साधनाके माध्यमसे साधक मनको 'सूच्यग्र' अथवा 'कुशाग्र' करते-करते स्वय अपनेको जान लेता है ओर उससे भी आगे जाकर आत्मोपलब्धि-स्वरूप साक्षात्कार करता हुआ अपनेको परम चेतनसत्तामे समाहित कर देता है।

सस्कार-दर्शनका बहुत सीमित रूपमे उपयोग, अब मनोविज्ञानके क्षेत्रमे आ गया है। अनेकानेक शारीरिक-मानसिक व्याधियोके निदानके लिये हिप्नाटिज्मका प्रयोग करके रोगीको उस व्याधिके मूलमे पहुँचाकर उसके निराकरणका उपाय बताया जाता है। रोगी स्वय उन विस्मृत कारणोका विवरण दे देता हे, जो उसकी व्याधिके मूलमे रहते हैं। योग और तन्त्रकी दृष्टिमे यह विद्या रोगीको अन्य क्षेत्रोमे हानि भी पहुँचाती है, फिर भी सस्कार-दर्शन एक वास्तविकता है।

'सस्कार' ही मनुष्यके कर्मस्वरूप तथा तज्जन्य सुख-दु खकी प्राप्तिका पथ प्रशस्त करते हैं। पहले जन्मोका कर्मफल सुख-दु खके रूपमे तो मनुष्य भोगता ही है, इस जन्ममे भी शुभाशुभ कर्म अभुक्त होनेसे अगले जन्म-ग्रहणके आधार बनते है। इसीलिये पतञ्जलि (साधनपाद १३-मे) कहते हैं—**'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा ॥'**

सस्कार—कर्माशय जहाँ एक ओर कर्मोकी सामान्य रूपरेखा निर्धारित करते हैं वही दूसरी ओर वृत्ति ओर व्यवसायका भी रूप निर्धारित करते है। यहाँ वृत्तिका अर्थ है मनकी सहज गति— Mental Tendency'। यह देखा जाता है कि किसीमे काम किसीमे क्रोध किसीमे लोभ किसीमे ज्ञान किसीमे कर्म किसीमे भक्ति आदिकी एक विशेष वृत्ति प्रबल रहती है। इसके अतिरिक्त उसकी और भी सहयोगी वृत्तियाँ साथ रहती हैं। फिर प्राय वह कर्मानुसार जिस व्यवसायमे लगता है, उसके भी कर्म सस्कारोका निरूपण करते हैं। उचित साधनाके माध्यमसे साधकको जब इन स्थितियोका पता लग जाता हे तो वह उनसे उबरनेके लिये प्रयास करता है। ब्रह्म-साधना उसे हीनताओसे उबारनेमे अत्यन्त सहायक होता है। इससे स्वरूप-परिचितिमे उसे सहायता मिलती है ओर वह शुभ-अशुभ दोनामे ऊपर उठ जाता है।

सस्काराके दर्शनकी प्रक्रियाकी चर्चामे पतञ्जलि कहते हैं—**'प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्॥'** (विभूतिपाद १९) अथात् दूसरके चित्तकी वृत्तिका साक्षात् करनेसे दूसरेके चित्तका ज्ञान होता हे। 'प्रत्यय' का विविध अर्थ लिया जाता हैं—व्यवहारत - वृत्तिविशेष या कर्मफलविशेषपर मानसिक

एकाग्रताका प्रतिफलन इसका अर्थ है अर्थात् मनुष्यके अंदर यदि क्रोध उत्पन्न हुआ तो यदि वह स्वयं या कोई व्यक्ति जो उचित एकाग्रताकी क्षमता रखता है, उस क्रोध-वृत्तिपर संयम—एकाग्रताका प्रक्षेपण करे तो क्रोधके मूलकारणको परत-दर-परत खोजते हुए देख सकता है। पूर्ण एकाग्रतासे कुशाग्र मन-बुद्धि परचित्त या स्वचित्तके क्षेत्रमें प्रवेश कर जाती है और वहाँकी स्थितिको देख सकती है, सुनियन्त्रित कर सकती है। यहाँ 'ज्ञान' शब्दमें नियन्त्रणकी शक्तिका भी अर्थ समाहित है। सम्पूर्ण योग और तन्त्रकी साधना, मन एवं बुद्धिको कुशाग्र बनानेकी ही आधारशिलापर टिकी रहती है।

एक उदाहरण कुछ हदतक इस तथ्यको स्पष्ट कर सकता है। आप एक व्यक्तिको कोई कर्म निष्पादित करते देखें—ध्यानपूर्वक किंतु पूर्वाग्रहविमुक्त दृष्टिसे देखें तो कर्मके पीछे उसकी क्या मानसिक स्थिति है, स्पष्ट झलक जायगी। कर्ममें वह कितना दत्तचित्त है, कितना समर्पित है और उसका हेतु क्या है—यह जान लेना कोई कठिन कार्य नहीं है, किंतु निर्णयकी सत्यता 'मन' की पारदर्शिता और पूर्वाग्रहरहित स्थितिपर उसी प्रकार निर्भर करती है जिस प्रकार दर्पणकी स्वच्छता और गुणवत्तासे प्रतिफलित आकृतिका अंदाज मिलता है।

इसी क्रममें अगला सूत्र स्थितिको और भी स्पष्ट करता है—'न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्॥' अर्थात् चित्तका प्रथम दृष्ट्या दर्शन मात्र चित्तकी विशेष स्थितिका होता है उसके आलम्बन या आधारका नहीं। अतः संस्कारोंतक पहुँचनेके लिये और अधिक निर्मलीकृत तथा सूच्यग्र मनकी आवश्यकताके साथ तदर्थ संकल्पजनित शक्तिकी भी आवश्यकता होती है। तब वह चित्तका आलम्बन भी उसकी दृष्टिमें आ जाता है।

संस्कार-दर्शन एक विभूति है एक सिद्धि है जिसका उपयोग सिद्ध योगी साधककी क्रमोन्नतिके लिये पग-पगपर करता चलता है। इस दिशा-निर्देशके आधारपर जब साधक निर्विकार मनसे अपने चित्तके अंदर पड़े हुए संस्कारोंको देख लेनेकी क्षमता पा जाता है, तब अपना अगला लक्ष्य पाना उसके लिये सुलभ हो जाता है, क्योंकि तब उसके संस्कार भोग, सुख या दुःख उसको अपने परम लक्ष्यसे विचलित नहीं कर पाते। सभी संस्कारोंका ऊर्ध्व ब्रह्मभावमें प्रतिष्ठित होना सभी मनुष्योंका लक्ष्य है—यही उनका गौरव है, इसीलिये मनुष्यका जीवन मिला है। सिद्धि और विभूति मानवका लक्ष्य नहीं है किंतु पाथेयके रूपमें वह सहज उपलब्ध अवस्था है, जिसे पानेके बाद भी साधक अपने चरम और परम लक्ष्यको भूलता नहीं बल्कि और दृढ़तासे उसकी ओर बढ़ता जाता है।

संस्कारहीनताके भयंकर दुष्परिणाम

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

पूरे संसारको धर्म और अध्यात्मका शाश्वत संदेश देनेके कारण 'जगद्गुरु' के रूपमें चर्चित धर्मप्राण भारत आज स्वयं मर्यादाहीनता स्वच्छन्दता भ्रष्टाचार अनाचार आदिसे घिरकर नैतिकताके ह्रासके घोर सङ्कटसे त्रस्त हुआ दिखायी दे रहा है। आज यह आकलन किया जाने लगा है कि भारत भ्रष्टाचारके मामलेमें कहीं संसारभरमें सबसे आगे तो नहीं है? जब भारतके विभिन्न क्षेत्रोंके अग्रणी कहे जानेवाले कुछ महानुभावोंके भ्रष्टाचार अनाचार तथा अन्य कदाचरणके मामले समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते हैं तो विदेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंका सिर शर्मसे झुक जाता है। हमारी इस दयनीय हुई स्थितिका एकमात्र मूल कारण यही है कि हम अपने प्राचीन धार्मिक संस्कारोंसे कटकर अन्य देशोंके कुसंस्कारोंकी मृगमरीचिकामें जकड़ते जा रहे हैं। सत्-संस्कारोंके कारण ही, धर्माचरणमें अग्रणी रहनेके कारण ही भारत जगद्गुरुके रूपमें प्रसिद्ध था। भारत अध्यात्मविद्याका उद्गम-स्थल होनेके कारण ही विश्वमें सम्मान पाता था किंतु जबसे धर्मनिरपेक्षताके नामपर हमारे बालकों, किशोरों तथा युवकोंको नैतिक और धार्मिक संस्कारोंसे वञ्चित किया गया है तभीसे नैतिक संस्कारोंका सङ्कट उत्पन्न होना शुरू हुआ है। इतना ही नहीं संस्कारहीनताके कारण समाजका हर वर्ग किसी-न-किसी समस्या या व्याधिसे ग्रसित होता जा रहा है।

धर्म और संस्कृतिपर आघात

अपने माता-पिता तथा पारिवारिक जनों एवं संत-

महात्माओसे प्राप्त दृढ सस्काराके कारण मुसलमानोके शासनकालम भी अधिकाश हिन्दुओने अपने धर्म तथा अपनी सभ्यता-सस्कृतिपर तनिक भी आँच नहीं आने दी। धर्म, सस्कृति तथा सस्कारोकी रक्षाक लिये हिन्दू निरन्तर सघर्परत रहे। अग्रेजाके शासनकालमे भी हिन्दुओने प्राण-पणसे स्वत्वकी रक्षा की।

विदेशी ईसाई पादरी जब हिन्दुआके धर्मान्तरणम सफल नहीं हुए, तब लार्ड मैकालेने सुनियाजित ढगसे भारतकी शिक्षा-प्रणालीमे परिवर्तन कराकर, देववाणी सस्कृत तथा हिन्दी भाषाकी जगह अग्रेजी भाषा और अग्रेजी प्रणालीके स्कूल-कॉलिजोका जाल फैलाकर हिन्दुओको अपनी प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृतिसे वञ्चित करनेका अभियान चलाया। देखते-ही-दखते अग्रेजी शिक्षा-प्रणालीने अपना रग दिखाना शुरू कर दिया तथा हिन्दुओकी वेश-भूषा, आचार-विचार खान-पान बदलन लगे। शिक्षित कहे जानवाले वर्गके हृदयम राष्ट्रभक्तिकी जगह राजभक्तिकी भावना पैदा होन लगी।

इस बदलावके बावजूद भारतीयताके पुजारी अनेक राष्ट्रनेता अग्रेजोके शासनके विरुद्ध सघर्परत रहे। सन् १८५७ ई०म तो गोभक्त भारतीय सैनिकाने अग्रेजाके विरुद्ध केवल इसलिय विद्रोह किया था कि अग्रेज गोमाताकी चर्बीसे युक्त अपवित्र कारतूसाका प्रयोग कराकर उनका धर्म भ्रष्ट करनेपर उतारू थे। मगल पाण्डेने गोभक्तिके सस्कारोके कारण इस क्रान्तिमे पहला बलिदान दिया। बादमे तात्या टोपे, नानासाहब पेशवा महारानी लक्ष्मीबाई, वीर कुँवरसिह, बहादुरशाह जफर-जैसे हजारा सस्कारित हिन्दुस्तानी राष्ट्रभक्तोने अग्रेजोसे सघर्ष करते हुए बलिदान दिये। इसके बाद भी अनक क्रान्तिकारियाने शस्त्र उठाकर अग्रेजासे सघर्ष किया।

गाधीजी, महामना प० मदनमाहन मालवीयजी लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्दजी भाई परमानन्दजी वीर सावरकर, सरदार भगतसिह, चन्द्रशेखर आजाद रामप्रसाद बिस्मिल, सुखदेव राजगुरु, अशफाकुल्ला खाँ-सरीखे हजारो राष्ट्रभक्ताने प्राण-पणस स्वाधीनता-आन्दोलनके यज्ञमें अपन-अपने तरीकेसे आहुतियाँ दीं। पुरीके जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजा महाराज, पूज्य श्रीराधाबाबा, भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार बाबा राघवदास-जैसी धार्मिक विभूतियाने अग्रजी शासनका इसी आधारपर विरोध किया था कि यह हमार देश, धर्म तथा सस्कृतिके लिय घातक है। इन सबने जेल यातनाएँतक सहन की थीं।

स्वाधीनता-सग्रामके राष्ट्रनायक नेता खुलकर कहा करत थे—'देशक स्वाधीन हानेके बाद गोहत्या बद की जायगी अपनी सस्कृति, सभ्यता तथा देशकी मान्यताआको सरक्षण दिया जायगा तथा विदशी भाषाकी जगह 'हिन्दी' राष्ट्रभाषाका स्थान प्राप्त करेगी।'

नैतिक सस्कारोसे वञ्चित किये गये

देश स्वाधीन हुआ। मुस्लिम लीगकी कुटिल नीतिके कारण खण्डित होनेके बाद स्वाधीनता मिली, भारतमाताके टुकडे कर पाकिस्तानका निर्माण किया गया। उस समय सबसे पहले आध्यात्मिक विभूति स्वामी करपात्रीजी महाराजने देश अखण्ड हो, गोहत्या बद हो-जैसी माँगाको लेकर धर्मयुद्ध आरम्भ किया।

भारतीयताके पुरोधा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, महामना मालवीयजा आदिने अग्रेजी भाषाकी जगह हिन्दी-सस्कृतको स्थान दिये जानेकी माँग की। अग्रेजी शिक्षा-प्रणालीकी जगह भारतीयतापर आधारित शिक्षा-प्रणाली शुरू करनेकी माँग की गयी किंतु अग्रेजीदाँ नेताआके दुराग्रहपर अग्रेजी भाषाको लादे रखा गया। हिन्दी-सस्कृतकी उपक्षा जारी रही। परिणामत अग्रेजाक सस्कारो तथा उनकी परम्पराआका ही निरन्तर पोषण किया जाता रहा।

भारत सरकारने धर्मनिरपेक्षताके नामपर बालकाकी पाठ्यपुस्तकासे देशक ऋषि-मुनिया, सत-महात्माआ, शिवाजी, महाराणाप्रताप गुरु गोविन्दसिह आदि राष्ट्रपुरुषों वीर-वीराङ्गनाआकी जीवनियाँ उनके प्ररक प्रसङ्ग हटाकर राष्ट्रभक्तिके, धर्मभक्तिक सस्कार देनेवाले स्रातासे बालकोको वञ्चित कर दिया। अनक पाठ्यपुस्तकामे तो आर्य बाहरसे आये हमार पूर्वज जगली थे, व कच्चा मास खाते थे वेदकालम गामास भक्षण किया जाता था—जैसी अनर्गल एव निराधार बात शामिल की गयीं। बादमें एक षड्यन्त्रके अन्तर्गत राष्ट्रवीराका आतङ्कवादी मुगलासे अपनी सस्कृति एव धर्मकी रक्षाके लिये सघर्ष करनेवाले सिख गुरुओका

लुटेरा तथा विद्रोही-जैसे अपमानजनक शब्दासे सम्बोधित कर घोर अनर्थ किया गया। इस प्रकार देशकी युवा पीढीको अपने धर्म, सभ्यता संस्कृति तथा संस्कारासे वञ्चित करनेका दुष्कृत्य शुरू किया गया।

महिला-मुक्ति या संस्कारोका उन्मूलन

हमारे समस्त धर्मशास्त्राम बालका किशोरा युवका वृद्धो, स्त्री-पुरुषा—सभीके दायित्वाका निर्धारण कर उन्ह पग-पगपर संस्कारित होनेकी प्रेरणा दी गयी है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण, ऋषि-मुनिया तथा धर्माचार्यो आदिके जीवन इस बातके साक्षी है कि उन्होने स्वय अपने हाथोसे माता-पिताकी सेवा की और उन्ह सम्मान दिया। *धर्मशास्त्राम कहा गया है*—'**मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।**' अर्थात् माता-पिता साक्षात् देवस्वरूप हैं। उनका आदर-सम्मान तथा सेवा सर्वोपरि धर्म—कर्तव्य है।

हमारे धर्मशास्त्रामे स्त्रियोको पूर्ण सम्मान देनेकी प्रेरणा दी गयी है। मनुस्मृति (३।५६)-मे कहा गया है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया ॥

जहाँ नारियाका सम्मान किया जाता है, उनकी पूजा की जाती है, वहाँ देवता रमण करते हैं। जहाँ स्त्रियाका आदर नहीं होता, वहाँ समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। स्त्रियोका उत्पीडन करने, अपमान करने, उन्हे सतानेको घोरतम पाप-कर्म निरूपित करते हुए मनुस्मृति (३।५७)-मे कहा गया है—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

जहाँ स्त्रियाँ दु खित होती हैं, सतायी जाती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। जहाँ स्त्रियाँ दु खम नहीं होतीं, वह कुल सदा वृद्धिको प्राप्त होता है। जिस नारीको हमारी संस्कृतिमे सम्माननीय स्थान दिया गया उसे आजके विकृत वातावरणम 'भोग्या-वस्तु'क रूपमे प्रस्तुत किया जा रहा है। विदेशी कुसस्कारोसे ग्रस्त तथाकथित आधुनिकतावादियोने महिला-मुक्तिके नामपर भारतीय महिलाआको मर्यादाएँ त्यागकर सुन्दरियाकी प्रतियागिताओंकी पङ्क्तिम खडा करनेका दुष्प्रयास किया है। कुछ महिलाएँ विश्वसुन्दरी-प्रतियोगिताआ फैशन-परेडा आदिमे शामिल होनेको तत्पर रहती हैं। विज्ञापनाके नामपर महिलाआक अर्द्धनग्न चित्राका प्रकाशन-प्रसारण इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि देवीरूपा नारियाको प्रदर्शनका वस्तु बनाकर रख दिया गया है।

और-तो-और तथाकथित शिक्षित एव आधुनिक परिवाराम जब भ्रूण-हत्याका घोरतम पापकर्म होता है तब वृद्ध सास तथा माताएँ भी मौन बनी पापकी भागी बनती हैं। परम विरक्त सत स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज कहा करते थे कि अजन्मी मासूम कन्याआके हत्यारोके घरका पानी पीना भी घोर पाप है।

आज पूरे देशमें प्रतिदिन लाखा अजन्मी कन्याओंको *भ्रूणम ही नृशस तरीकेसे हत्या कर दी जाती है।*

सयुक्त परिवार क्यो टूट रहे है?

मनुस्मृति (३।६०)-म सुखी, सतुष्ट तथा समृद्ध परिवारकी पहचान बताते हुए कहा गया है—

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्य कल्याण तत्र वै ध्रुवम्॥

जिस कुलम पत्नीसे पति प्रसन्न है और पतिसे पत्नी प्रसन्न है, दम्पती एक-दूसरेको सतुष्ट रखते हैं, निश्चय जानो कि उस कुलमे सुख-समृद्धिका, कल्याणका सर्वदा निवास रहता है।

उपर्युक्त उद्धरणासे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थोके माध्यमसे संस्कारित हमारा समाज युग-युगोसे प्रत्येक क्षेत्रम सुखी-समृद्ध रहा। ऐसी स्थितिमे देशके स्वाधीन होनेके बाद छद्म धर्मनिरपेक्षताके नामपर बालकोको धार्मिक शिक्षासे, नैतिक संस्कारोसे वञ्चित करके उनके साथ घोर अन्याय किया गया है।

संस्कारका महत्त्व निम्न शब्दोमे व्यक्त किया गया है—'जिसका संस्कार किया जाता है, उसम गुणाका आधान *अथवा* उसके दोषोको दूर करनेके लिये जो कर्म किया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं।'

संस्कारोके कारण ही धर्मप्राण भारतमे बडे-बडे मातृ-पितृभक्त गुरुभक्त, धर्मभक्त राष्ट्रभक्त, समाजभक्त राष्ट्रसेवी बलिदानी वीर-वीराङ्गनाओने आदर्श इतिहासकी रचना की।

जबसे संस्कारोके महत्त्वकी उपेक्षा की गयी, तभीसे समाजम तरह-तरहकी विकृतियाँ पैदा हुई हैं।

मातृ-पितृ-भक्तिके संस्कार

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने अपने पिता महाराज दशरथके आज्ञानुसार राजगद्दीकी जगह वनगमन कर पिताकी आज्ञाके पालनका अनूठा आदर्श उपस्थित किया था। श्रवणकुमारने संस्कारोंके कारण ही अन्धे एवं वृद्ध माता-पिताको काँवरमें बिठाकर तीर्थयात्रा करायी थी। धर्मशास्त्रों, पुराणों तथा इतिहासमें ऐसे अनेक आदर्श पुत्रोंके प्रकरण मिलते हैं, जिन्होंने माता-पिताकी सेवा करके अपना जीवन सफल बनाया।

'पद्मपुराण' के भूमिखण्ड (६३।३-४, १३)-में कहा गया है—

पतितं क्षुधितं वृद्धमशक्तं सर्वकर्मसु।
व्याधितं कुष्ठिनं तातं मातरं च तथाविधाम्॥
उपाचरति यः पुत्रस्तस्य पुण्यं वदाम्यहम्।
विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र संशयः॥
नास्ति मातुः परं तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा।
नारायणसमावेताविह चैव परत्र च॥

'यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध, सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माता भी इसी अवस्थामें हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, मैं उसके पुण्यका वर्णन करता हूँ—उस पुत्रपर निःसंदेह भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। पुत्रोंके लिये माता-पितासे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वे इस लोक और परलोकमें भी श्रीनारायणके समान हैं।'

इसी प्रकार पद्मपुराणमें ही कहा गया है—

'जो पुत्र अङ्गहीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा रोगसे पीड़ित माता-पिताको त्याग देता है, वह कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र कटु वचनोंद्वारा माता-पिताको दुःखी करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेकर घोर दुःख उठाता है।'

हमारे धर्मशास्त्रोंमें बालकोंको वृद्धजनोंका अभिवादन करनेका संस्कार देनेके लिये कहा गया है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥
(मनु० २।१२१)

वृद्धोंका अभिवादन करनेवालेकी आयु, विद्या, यश तथा शक्तिमें वृद्धि होती है।

हमारे प्रवचनकर्ता, संत-महात्मा, धर्माचार्य, धर्मशास्त्रोंके उपर्युक्त उद्धरण देकर युवा पीढ़ीको माता-पिताकी सेवाके संस्कार देते थे, किंतु आज संस्कारहीनताके कारण माता-पिता एवं वृद्धोंकी उपेक्षा ही नहीं, अपितु उत्पीडनतक किया जाने लगा है। संस्कारहीनताके कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। वृद्ध माता-पिताका परिवारमें कभी सम्मान होता था—सेवा होती थी, अब उन्हें भार समझा जाने लगा है। जगह-जगह वृद्धाश्रम खुलने लगे हैं।

वृद्धाश्रम क्यों ?

इस प्रकरणमें मुझे एक घटना याद आ रही है—

सन् १९९२ ई०में हरिद्वारमें सप्तसरोवर मार्गपर वृद्धाश्रमका निर्माण कराया गया था, जिसके उद्घाटन समारोहमें उद्घाटनकर्ताने कहा—'मैं आप सब संतोंकी आज्ञा लेकर भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि स्वामीजीद्वारा बनवाया गया यह वृद्धाश्रम कभी न भरे, हमेशा खाली रहे'—सुनते ही सभी स्तब्ध रह गये।

उन्होंने आगे कहा—'वृद्धाश्रमकी कल्पना करके ही मेरा तो हृदय दुःखित हो उठता है। हमारे भारतमें वृद्धजनोंका, माता-पिताका देवताओंकी तरह सम्मान किया जाता था। कहा गया है कि वह परिवार क्या जिसमें वृद्ध माता-पिताकी सेवा नहीं होती हो। वह सभा क्या जिसमें वृद्धजन उपस्थित न हों। आज माता-पिताकी सेवाके संस्कार कहाँ गये? वृद्ध माता-पिताको उनके बेटे घरमें आदरके साथ न रखकर वृद्धाश्रममें कैसे भेज देते हैं—यह कल्पना करके ही मेरा हृदय द्रवित हो उठता है। यह प्रवृत्ति हमारी संस्कारहीनताकी परिचायिका है।'

विदेशोंमें भी भारतकी संयुक्त परिवार-प्रणालीकी सराहना की जाती है। विदेशी यह जानकर हतप्रभ रह जाते हैं कि भारतके हिन्दू समाजके लोग अपने माता-पिताकी जीवनभर सेवा-शुश्रूषा करनेमें गर्वका अनुभव करते हैं। वे यह जानकर आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि हिन्दू युवक जीवनपर्यन्त अपनी पत्नीके साथ सुखी जीवन बिताता है, तलाककी स्थिति कभी आती ही नहीं।

उद्घाटनकर्ताके बाद संस्थापक महोदयने भी कहा कि वे स्वयं यह चाहते हैं कि इस वृद्धाश्रममें संतानसे तिरस्कृत वृद्ध नहीं, अपितु साधना-उपासना एवं सेवाकी आकाङ्क्षा रखनेवाले वृद्धजन आयें। यहाँ भागीरथीके

पावन तटपर रहकर साधना एव गङ्गाम स्नानकर अपना जीवन सार्थक करे।

यह हमारी सस्कारहीनताका ज्वलन्त प्रमाण है कि पिता चार-चार बेटोको अपनी सीमित आयमसे कटौती करके ऋणतक लेकर उच्च-से-उच्च शिक्षा दिलाता है, उन्हे योग्य बनाता है, किंतु वे चारा बेटे अपने पिता-माताको पास रखनेके लिये तैयार नहीं हाते। वृद्ध माता-पिता उन्हे भार दिखायी देने लगते हैं।

कुछ परिवाराम ता बेटेका विवाह होते ही माँ-बापसे अलग रहनेकी तैयारी की जाने लगती है। सस्कारहीन बहुएँ वृद्ध सास-ससुरकी सस्कारकी शिक्षाएँ सुनन-माननेको तैयार नहीं होतीं। पश्चिमी दशाकी विकृतियाँ उनपर इस कदर हावी हो उठती हैं कि वे सास-ससुरकी मर्यादाओका पालन करनेकी सलाहको अनुचित हस्तक्षेप बताकर विद्रोहपर उतारू हो उठती हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती हैं कि सास-ससुरको परिवारसे अलग हो जानेको बाध्य होना पडता है।

कहाँ ले जायगी यह सस्कारहीनता ?

तेजीसे बढ रही सस्कारहीनताका परिणाम जहाँ सयुक्त परिवाराके टूटनेके रूपम सामने आ रहा है, वहीं पति-पत्नी भी अकेले आनन्दपूर्वक, सुखी-समृद्ध नहीं रह पाते। छोटी-छोटी बातापर हुआ विवाद तलाकका रूप लेने लगा हे। तलाकके अधिकाश आवेदनामे दहेजके नामपर धन माँगने-जैसे आरोप लगाये जाते हैं।

दूरदर्शनपर ऐसे धारावाहिक (सीरियल) दिखाये जाने लगे हैं, जिनम युवक-युवतियाके विवाहपूर्व सम्बन्ध दिखाये जाते हैं। और-तो-और बुआसे मामाके पुत्रोतकसे अवैध सम्बन्ध दिखाकर उन्ह 'प्रेम' के रूपमे प्रदर्शित किया जाता है। अवैध सम्बन्धोको 'प्रेम' प्रदर्शित करके युवा पीढीको सस्कारहीन बनाया जा रहा है। ठगी चोरी तथा भ्रष्टाचारके नये-नये तरीके इन धारावाहिकामे प्रदर्शित करनेके कारण युवकोको एक प्रकारसे अपराधाका प्रशिक्षण प्राप्त हो रहा है।

हत्याओ डकैतियो तथा ठगीम पकडे गये अनेक अपराधियोने पुलिसके समक्ष यह स्वीकार किया कि उन्हे धारावाहिकासे ऐसे दुष्कृत्य करनेका उकसावा मिला है।

सस्कारहीनता पैदा करनेम जहाँ दूरदर्शनके कुछ धारावाहिकाकी भूमिका है, वहीं उपन्यासा एव कहानियाके नामपर प्रकाशित होनेवाल भौंडे साहित्यकी भी कम भूमिका नहीं है।

लगभग ९० वर्षपूर्व वयोवृद्ध सम्पादक प० बनारसीदास चतुर्वेदीजीने अश्लील साहित्यके विरुद्ध अभियान चलाया था। उन्हाने उसे 'घासलेटी साहित्य' बताते हुए लिखा था—ऐसी गदी पुस्तकासे हमारी युवा पीढीका मन-मस्तिष्क दूषित होता है। ऐसी पुस्तकाको साहित्य कदापि नहीं कहा जा सकता। साहित्य ता हित करनेवाले विचाराके सग्रहको कहा जाता है।

गाधीजीने भी चतुर्वेदीजीक आन्दालनका समर्थन करते हुए 'हरिजन-सेवक' नामक पुस्तकम लख लिखकर विचाराको प्रदूषित करनवाली पुस्तकोपर प्रतिबन्धका समर्थन किया था।

आज सस्कारहीनताके ऐसे दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं जिन्ह देखकर हृदय काँप उठता है। पिताद्वारा सम्पत्तिके लिये पुत्रकी हत्या तथा पुत्रद्वारा पिताकी हत्या किये जानेकी घटनाएँ सामने आ रही हैं। जीवनभर पतिके साथ रहनेका सङ्कल्प लेनेवाली पत्नी मर्यादा-हीनताका शिकार बनकर परपुरुषोसे सम्बन्ध बनानेमे नहीं हिचकिचा रही है। इतना ही नहीं समाचारपत्रोम जब 'पत्नीने प्रेमीके साथ षड्यन्त्र रचकर पतिकी हत्या करा डाली' जैसा समाचार प्रकाशित होता है ता हृदय काँप उठता है कि सस्कारहीनताका इससे घृणित परिणाम और क्या होगा ?

देशके स्वाधीनता-आन्दोलनका नेतृत्व तपे हुए तपस्वी नेताओके हाथोमे था। वे देशको विदेशी विधर्मी अग्रेजोके चगुलसे मुक्त कराकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके आदर्श राज्यकी तरह स्वराज देनेका सपना देखते थे। गाधीजीने इसीलिये 'रामराज्य' का नाम दिया था।

क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद तथा प० रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारियाने अग्रेजी शासनको उखाड फकनेके लिये शस्त्रास्त्र आदि साधनाकी प्राप्तिके उद्देश्यसे काकोरी रेलवे स्टेशनपर सरकारी खजाना लूटा था किंतु उन्हे अपन माता-पितास एस सस्कार मिले थे कि वे लूटके एक पैसको भी अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधापर खर्च करनेका तत्पर नहीं हुए थे।

एक बार चन्द्रशेखर आजादके एक क्रान्तिकारी साथीने आजादकी माँकी दयनीय आर्थिक हालतको देखते हुए कुछ रुपये भेजनेकी पेशकश की। आजादको पता चला तो क्रोधमे बोले—'खबरदार, यह धन देशकी स्वाधीनताके संघर्षके लिये इकट्ठा किया गया है। इसमेसे एक नया पैसा भी माँको न भेजा जाय।' ये क्रान्तिकारी भूखे रहकर, चने चबाकर भी अपने नैतिक स्तरको ऊँचा बनाये रहे। इन क्रान्तिकारियोने गीता, रामायण तथा अन्य सद्ग्रन्थोसे नैतिक संस्कार प्राप्त किये थे।

असहयोग आन्दोलनके दौरान भी गाधीजीके अनुयायियोंने अनेक नैतिक मानदण्डोकी रक्षाका परिचय दिया। उस जमानेके नेता खादी पहनते थे—सादा, सरल सात्त्विक जीवन बिताते थे। उनके ऐसे संस्कार थे कि वे ईमानदारीके पथसे डिग ही नही सकते थे।

देशके स्वाधीन होनेके बाद धर्मनिरपेक्षताके नामपर बालको एवं युवा पीढीको धर्म और नैतिकताके संस्कार देने बंद कर दिये गये।

शनै -शनै सत्तापर संस्कारहीन सिद्धान्तहीन नेताओका कब्जा होने लगा। सत्तामे बैठे बडे नेताओने आर्थिक घोटाले शुरू कर दिये। सुख-सुविधाओने उन्हे ऐसा अन्धा बना डाला कि उन्हे अपने देशकी त्याग-तपस्याकी महान् सभ्यता-संस्कृति 'दकियानूसी' दिखायी देने लगी। भारतको पश्चिमी देशोकी आर्थिक एवं भौतिक समृद्धिकी होडमे लानेके नामपर नैतिक-अनैतिकका भेद समाप्त कर डाला गया।

धर्मप्राण भारतकी दयनीय स्थितिका एकमात्र कारण धर्मसे विमुखता और संस्कारहीनता ही है। धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजी महाराज ठीक ही कहा करते थे—'धर्म-नियन्त्रित राजनीति ही कल्याणकारी होती है।' राजनेताओने पुरातनवादी बताकर उनके इस कथनकी अवहेलना की। अब धर्मविहीन राजनीतिका दुष्परिणाम सारा देश भोग रहा है।

चरित्र-निर्माणमे संस्कारोका अवदान

(श्रीरामगोपालजी शर्मा 'बाल' एम्०ए० (हिन्दी संस्कृत दर्शन) एल्-एल्०बी० साहित्यरत्न)

भारतीय संस्कृतिमे चरित्र और संस्कार—दोनो ही व्यापकरूपमे प्रचलित शब्द हैं। प्राचीन कालमे जब बालक विद्यार्थीके रूपमे गुरुकुलमे रहकर शिक्षा प्राप्त करता था तब वहाँ उसे विद्याध्ययनके साथ ही संयम नियम त्याग-तपस्या धर्म-कर्म, आचार-विचार सत्य-परोपकार ब्रह्मचर्य-व्रत-पालनकी शिक्षा सिद्धान्त एवं व्यवहारके रूपमे दी जाती थी। शिक्षा मानवका आन्तरिक संस्कार है जिसके कारण बालकोमे धार्मिक, नैतिक अनुशासित एवं मर्यादापूर्ण जीवन जीनेके संस्कारोका रोपण स्वयमेव होता रहता था किंतु कालान्तरमे ऐसा दुर्योग आया कि भारतपर विदेशी आक्रान्ताओका आधिपत्य होते ही हमारी शिक्षाके सुसंस्कारोको सुनियोजित तरीकेसे नष्ट-भ्रष्ट करनेका षड्यन्त्र किया गया। हम पहले तो राजनीतिक सत्ताके अभावमे गुलाम बने किंतु बादमे शनै -शनै हम मानसिक गुलामीकी जंजीरोमे जकड दिये गये। विडम्बना है कि आज हम अपनी संस्कृति संस्कार, सदाचार धार्मिक आचार-विचार—सभीको हेय दृष्टिसे देखने लगे हैं। यहाँतक कहा जाने लगा है कि रूढिगत धर्म और धार्मिक मान्यताओके कारण ही इस देशका पतन हुआ है। गुलामीकी शिक्षा और उससे पनपे कुसंस्कारोके साथ पाश्चात्त्य सांस्कृतिक प्रदूषणसे नयी पीढीको भ्रमित किया जा रहा है। भारतका इतिहास बहुत पुराना नहीं है तथा धार्मिक मान्यताओंका कोई ऐतिहासिक आधार नही है—ऐसी अनर्गल बातोका प्रचार-प्रसार इसलिये हो रहा है कि हम अपनी महिमामयी सनातन संस्कृतिको और अपने गौरवको भुला सके।

प्राय देखा गया है कि सुसंस्कारो अथवा कुसंस्कारोके निर्माणमे वातावरण सबसे अधिक सहायक होता है। मनुष्य जैसे संसर्गमे रहेगा प्राय उसीके अनुरूप उसके संस्कारोका चरित्रका निर्माण होगा। वातावरण या संगतिसे व्यक्तिके संस्कार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस सम्बन्धमे एक छोटी-सी कहानी है कि एक हाट या बाजारमे एक बहेलिया दो तोते बेचने आया। संयोगसे उस राज्यके राजा

भी उधरसे निकल रहे थे। राजाने बहलियेसे तोतेका मूल्य पूछा। बहेलियेने कहा—महाराज! तोतसे ही पूछ लीजिये। राजाने एक तोतेसे कुछ प्रश्न किये तोतने राजाके प्रश्नोका सटीक उत्तर दिया तो राजाने अच्छा मूल्य देकर वह तोता खरीद लिया। फिर दूसरेका मूल्य पूछा—बहेलियेने कहा—राजन्! उससे भी पूछ लीजिये। चूँकि राजा पहले तोतेकी बातोसे सतुष्ट थे, इसलिये बिना चर्चा किये उसी मूल्यपर दूसरेको भी उन्होने खरीद लिया। महलमे दानोके पिजरोको टाँग दिया गया। कुछ दिनोतक राजा विद्वान् तोतेसे सत्सङ्ग करते रहे। फिर एक दिन दूसरे तोतेसे कुछ प्रश्न किये तो उसने राजाको अपशब्दोमे उत्तर दिया। राजा क्रुद्ध होकर पिंजरेमसे उस दुष्ट तोतेको पकडकर कटारसे मारना ही चाहते थे कि विद्वान् तोतेने कहा—

गवाशनाना स शृणोति वाक्य-
मह हि राजन् वचन मुनीनाम्।
न चास्य दोषो न च मद्गुणो वा
ससर्गजा दोषगुणा भवन्ति॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार)

महाराज! हम दोनो भाई हैं। हम दोनो भाइयोके पिंजरे एक ही बाडेमे अलग-अलग टँगे हुए थे। मेरे पिंजरेके पास साधु लोगोका प्रतिदिन सत्सङ्ग होता था। अत मुझे सत्सङ्ग सुननेको मिला किंतु दूसरे छोरपर टँगे पिंजरेके पास कसाइयोका बाडा था उसमे मेरे भाईको प्रतिदिन गालियाँ सीखनेको मिलीं इस तरह मुझमे कोई विशेष गुण नहीं है और न मेरे भाईमे कोई दुर्गुण है, ससर्गके कारण हम दोनोके स्वभावमे भिन्नता है। राजाने यह सुनकर दुष्ट प्रकृतिके तोतेको पिंजरसे उडा दिया।

यह कहानी छोटी-सी है किंतु इससे सस्कारोके निर्माणकी तथा उनकी प्रबलताकी बात स्पष्ट होती है। किस मनुष्यमे कितने कुसस्कार हैं इसकी पहचान उसके कदाचारी मित्रोको देखकर ही की जा सकती है। यदि सङ्गदोषके कारण बालक झूठ बोलना सीख गया है तो उसे झूठ बोलनेसे रोकनेके लिये अधिक प्रयास करना पडेगा। मनुष्यमे किसके दोषसे किस अवगुणका आरम्भ होता है इस सम्बन्धमे सस्कृतकी सुप्रसिद्ध उक्ति है—

दु शील मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता।
स्वैरत्व सङ्गदोषेण दारदोषैर्दरिद्रता॥

अर्थात् मनुष्यमे माँके दोषसे दु शीलता पिताके दोषसे मूर्खता, कुसङ्गसे उच्छृङ्खलता तथा स्त्रीके दोषसे दरिद्रता आती है।

इस प्रकार मनुष्यके चरित्रनिर्माणमे आधारभूमिके रूपमे जो मुख्य तत्त्व माने जाते हैं, उनमे सस्कार एक प्रमुख तत्त्व है।

मनुष्यके हृदयमे जो भाव उठते हैं वे इन छ बातोसे परिलक्षित होते हैं—वचन बुद्धि, स्वभाव, चरित्र आचार तथा व्यवहार। चरित्र शब्द सामान्यरूपसे व्यवहार, आचरण चाल-चलन एव स्वभाव आदिका वाचक है। चरित्र-निर्माणके लिये अनुशासनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन कालमे अनुशासनको सयम या मर्यादा भी कहा जाता था। भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण गौतम बुद्ध महावीर, गुरु नानक गुरु गोविन्दसिंह—सभीका जीवनचरित्र आत्मसयमकी भित्तिपर आधारित रहा है। चरित्रनिर्माणके लिये वर्षों साधना करनी पडती है और उसे नष्ट करनेके लिये क्षणमात्रका समय ही पर्याप्त है। यदि चरित्र बिगड जाय तो फिर समझना चाहिये कि हजारो-हजार जन्म बिगड गये। इसलिये चरित्रनिर्माणपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है—

ऊँचे गिरिसे जो गिरै, मरै एक ही बार।
जो चरित्रगिरिसे गिरै, बिगरै जन्म हजार॥

चरित्र और आदर्शकी शिक्षा हमारे देशमे सबसे पहले परिवारसे प्रारम्भ होती है। परिवारमे माता-पिता भाई-बहन तथा अन्य सम्बन्धी बालकको सस्कृतिके विभिन्न उपकरण जैसे रीति-रिवाजो परम्पराओ मूल्यो विश्वासो, धर्म और नैतिकता आदिकी व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। परिवारमे बालक विभिन्न सस्कारोको सीखकर सुसस्कृत बनता है। हिन्दूसमाजमे बालकको सुसस्कृत बनानेके लिये उसके अनेक प्रकारके सस्कार किये जाते हैं। बालकको वेदाध्ययनमे प्रवृत्त करनेके लिये ही उपनयन-सस्कारकी व्यवस्था की गयी है। प्रत्येक देशकी सस्कृतिमे योगदान करनेवाले महापुरुषोपर उनके बाल्यकालमे परिवारका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। शिवाजीपर बाल्यकालमे माता जीजाबाईद्वारा प्रतिरोपित सस्कारोके कारण उनमे धार्मिक एव राष्ट्रिय गुणोका विकास हुआ। जन्मजात सस्कारोके कारण ध्रुव प्रह्लाद अभिमन्यु आदिने जिस उदात्त आचरणका परिचय दिया उसे त्याग-तपस्याकी पराकाष्ठा कहा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिकोके अनुसार मनुष्यके चरित्रकी नींव उसके जीवनके कुछ वर्षोंमे ही पड जाती है। शैशवावस्थामें

बालकके मनपर आचार-विचारके विषयमे जो संस्कार पड जाते हैं वे ही आगे चलकर चरित्रके रूपमे अभिव्यक्त होते हैं। चरित्रके निर्माणमे शिक्षा सर्वाधिक सहायक होती है। यह शिक्षा अधिकतर अनौपचारिक होती है। बालकका चरित्रनिर्माण उपदेशोसे इतना अधिक प्रभावित नहीं होता जितना कि परिवार, पास-पडोस, समूह आदिमे उसके सामने उपस्थित होनेवाले उदाहरणोके द्वारा होता है।

तत्त्वज्ञोका कथन है कि निरन्तर धारण किया गया विचार ही कृत्य बन जाता है और सूक्ष्म शरीरपर अङ्कित होता रहता है। सूक्ष्म शरीरपर अङ्कित होनेवाले कृत्य ही संस्कार बनते हैं। जो अवचेतन मनके माध्यमसे मनुष्यके मन और मनोवृत्तिको प्रभावित एव नियन्त्रित करनेके साथ ही उसे निर्देशित भी करते हैं। आगे चलकर संस्कारोकी यही दृढता चरित्रमे परिवर्तित हो जाती है। मनुष्यका स्वभाव तो सहजात होता है किंतु चरित्र अर्जित किया जाता है। चरित्रका निर्माण व्यक्ति अपनी सहज प्रवृत्तियोको बुद्धिद्वारा नियन्त्रित और संस्कारित करके करता है। स्वभावके उपादानसे चरित्रनिर्माणको नैतिकता कहते है। मनुष्यके चरित्रका प्रदर्शन व्यवहाररूपमे होता है। व्यवहार चरित्रका बाह्य रूप है, दोनो एक-दूसरेको प्रभावित करते है। नीतिशास्त्रकी दृष्टिसे चरित्र जीवनमे सबसे अधिक महत्त्वकी चीज होती है।

यदि आज भी हम अपने बालकोको वेदवर्णित संस्कार-विधिके अनुसार सुसंस्कृत करे तो बालक महान् बन सकते हैं। किंतु विडम्बना है कि आज जब माता-पिता ही संस्कारशून्य हो गये हैं तो फिर बालकोके सुधरनेकी आशा कैसे की जा सकती है! किसी भी मनुष्यके चरित्रनिर्माणके दो आधार हैं—१-सत्सगति तथा २-सुसंस्कार। यदि संस्कार पूर्वजन्मके सत्कर्मोकी अर्जित सम्पत्ति है तो सत्सङ्गति वर्तमान जीवनकी दुर्लभ विभूति है। संसारमें चरित्रवान् व्यक्ति समाजकी शोभा है। सद्व्यवहारका जीवनमे उतर आना ही सच्चरित्रता है। इसीलिये संस्कारद्वारा तराशी गयी पत्थरकी मूर्तिके विषयमे किसी शायरका कथन है कि तराशा गया पत्थर ही ख़ुदा बन जाता है—

बुतो! शाबास दुनियामे तरक्की इसको कहते है।
न तरशे थे तो पत्थर थे जो तरशे तो खुदा निकले॥

इस प्रकार चरित्रके निर्माणमे संस्कारोका सर्वोपरि अवदान है।

~~~o~~~

सर्वसिद्धिदायक संस्कार—माता-पिताकी सेवा

[महाभारतका एक आख्यान]

(डॉ० श्रीमती विजयलक्ष्मीसिंहजी)

धर्मका तत्त्व बडा ही अद्भुत और विलक्षण है। शास्त्रोक्त संस्कारोके द्वारा मनुष्य अपने जीवनमे लक्ष्योकी सिद्धि कर पाता है किंतु माता-पिताकी सेवा ऐसा विलक्षण संस्कार है जिसके बलपर समस्त सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती है। पुराणेतिहास ग्रन्थोमे इस सम्बन्धमे अनेक आख्यान आये हैं। यहाँ एक ऐसे वेदज्ञ और धर्मशील ब्राह्मणका आख्यान प्रस्तुत है जो कठोर तपस्यासे भी तबतक सिद्धियाँ प्राप्त नहीं कर सका जबतक उसने माता-पिताकी सेवासे उन्हे संतुष्ट नहीं कर लिया। दूसरी तरफ पशुओका मास बचनेवाले व्याधने केवल माता-पिताकी सेवासे ही सब कुछ पा लिया। महाभारतमे वर्णित ब्राह्मण और व्याधका आख्यान संक्षेपमे इस प्रकार है—

कौशिक नामक एक वेदज्ञ तपस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण था। एक दिन वृक्षके नीचे बैठकर वेदपाठ करते समय उसके ऊपर एक बगुलीने बीट कर दिया। ब्राह्मणने क्रुद्ध दृष्टिसे बगुलीको देखा तो वह निष्प्राण होकर भूमिपर गिर पडी।

इस घटनासे द्रवीभूत वह ब्राह्मण पश्चात्ताप करते हुए गाँवमे भिक्षाटनक्रममे एक घरके सामने जा पहुँचा। घरके भीतरसे एक स्त्रीने उत्तर दिया—ठहरो आती हूँ, किंतु तभी पतिके घर आ जानेसे वह उनकी सेवामे लग गयी। कुछ देर बाद याद आनेपर लज्जित होती हुई वह भिक्षा लेकर बाहर निकली और ब्राह्मणसे क्षमा माँगने लगी, लेकिन ब्राह्मणको अत्यन्त क्रोधमे भरा देखकर वह बोली—हे तपस्वी! मैं बगुली नहीं हूँ, जो तुम्हारी इस क्रोधभरी दृष्टिसे जल जाऊँगी। यदि तुम धर्मका तात्त्विक ज्ञान पाना चाहते हो तो मिथिलामे रहनेवाले व्याधके पास जाओ।
~~~
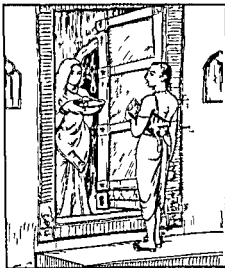
उस स्त्रीकी बात सुनकर मन-ही-मन चकित हुआ ब्राह्मण कौशिक कौतूहलवश मिथिलाम खोजता-पूछता एक कसाईखानेमे जा पहुँचा। ब्राह्मणको आया देखकर व्याध तुरत पास आकर अभिवादन करक बोला—भगवन्! आपका स्वागत है। उस पतिव्रता स्त्रीने आपको भेजा है और आप जिस उद्देश्यस यहाँ आय हैं, वह सब मैं जानता हूँ। यह कसाईखाना आपके ठहरनेयोग्य स्थान नहीं है। यदि आपकी रुचि हो तो आप हमारे घर चले।

व्याधकी बात सुनकर विस्मित हुआ ब्राह्मण उसके साथ घर गया। वहाँ व्याधन ब्राह्मणका विधिवत् सत्कार करनेके उपरान्त उस धर्मकी सूक्ष्मता तथा परमात्माकी प्राप्तिके उपाय आदि विभिन्न विषयाका उपदेश दिया तथा घरके भीतर ल जाकर अपने माता-पिताको दिखाकर उनके चरणाम प्रणाम किया

और फिर ब्राह्मणदेवतासे कहा—

भगवन्! ये माता-पिता ही मरे प्रत्यक्ष धर्म और परम देवता हैं। इन्हींका सेवाक प्रभावसे मुझ यह सिद्धि प्राप्त हुई है। समस्त ससारके लिये इन्द्र आदि देवता जैस पूजनीय हैं, उसी प्रकार मर लिय य वृद्ध माता-पिता आराधनाय हैं। मैं नाना प्रकारक उपहार फल-फूल, रत्न आदिसे इन्होंको सतुष्ट करता हूँ। चारा वद अग्नि और यज्ञ—सब कुछ मरे लिये य माता-पिता ही हैं। मरे प्राण स्त्रा, पुत्र और सुहृद्—सब इन्हींकी सवाक लिये हैं। स्त्री-पुत्राक साथ मैं प्रतिदिन इनकी सेवा करता हूँ। मैं स्वय इन्ह नहलाता हूँ, इनक चरण धोता हूँ और परासकर भोजन कराता हूँ। मैं सदा इनके मनके अनुकूल बोलता हूँ और कभी अप्रिय नहीं बालता। इनका यदि प्रिय हा तो मैं अधर्म भी कर सकता हूँ। इस प्रकार माता-पिताके सेवारूप धर्मको ही महान् मानकर मैं सदा उसका पालन करता हूँ। उन्नति चाहनेवाल पुरुषके पाँच ही गुरु हैं—माता, पिता अग्नि, परमात्मा और गुरु। जा इन सबके प्रति उत्तम आचरण करेगा उस गृहस्थक द्वारा सब अग्नियाकी सेवा सम्पन्न होती रहेगी। यही सनातनधर्म है।

हे ब्राह्मण! इस प्रकार माता-पिताकी सेवा ही मेरा तपस्या है। इसी तपस्याक प्रभावसे मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। आपने अपने माता-पिताकी उपेक्षा की है। आप उनसे बिना आज्ञा लिय वदाध्ययनक लिय घरस निकल पडे और आपक वियागजनित शोकसे वे दोनो वृद्ध अन्धे हो गये हैं। धमम निरत रहते हुए भी माता-पिताको सतुष्ट न करनेके कारण आपका यह सारा धर्म और व्रत व्यर्थ हो गया ह। अत आप घर जाकर उनकी सेवा करके उन्हे प्रसन्न कर। मैं इससे बढकर और कोई धर्म नहीं देखता—**'अत परमह धर्म नान्य पश्यामि कञ्चन'** (महा०, वन० २१५। १३)।

व्याधकी बाते सुनकर कौशिक ब्राह्मण घर जाकर माता-पिताकी सेवाम लग गय ओर उनके आशीर्वादसे उन्हाने अपने उद्देश्यम सफलता प्राप्त की। वस्तुत जिस पुत्रसे माता-पिता सदा सतुष्ट रहते हैं, वह इहलोक ओर परलाकमे शाश्वत यश और धर्म प्राप्त करता है।

'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' (माता देवता है पिता देवता है)—इस श्रुतिवचनको हृदयङ्गम करके जो कोई भी अपने माता-पिताकी सेवा करता है तो इस एकमात्र सेवा-सस्कारके बलपर वह अपने जीवनका सर्वोच्च तत्त्व—नि श्रेयस प्राप्त कर सकता है।

जीवनमें संस्कारोकी आवश्यकता क्यो ?

(डॉ० श्रीविपुलशंकरजी पण्ड्या)

संस्कार क्या है ?—सामान्यतया जो कार्य व्यक्तिको सुसंस्कृत अथवा सभ्य बनाता है उसे 'संस्कार' कहते हैं। संस्कारका अर्थ है—शुद्धता या परिमार्जन। जैसे एक साधारण पत्थर (हीरा) कुशल जोहरीके द्वारा तराशे जानेपर सुन्दर, दिव्य और बेशकीमती बन जाता है, जैसे खदानसे निकला अनगढ पत्थर कारीगरके शिल्पकर्मद्वारा एक आकर्षक एवं बहुमूल्य रत्न एवं देवविग्रह बन जाता है उसी प्रकार संस्कारोसे मानव-जीवन सुसंस्कृत एवं श्रेष्ठ बन जाता है। संस्कारके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि व्यक्ति अपने दायित्वोंका निर्वहण जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे सक्रियतासे करता रहे तथा नैतिकताके आधारपर उन्हे व्यावहारिक जीवनमे इस्तेमाल करे। संस्कार दैनिक जीवनकी वह प्रक्रिया है जिसे अपनाकर मनुष्य अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमे सफल होता है। जीवन-मूल्योके आधारपर धर्मके दस लक्षण बताये गये हैं—

> **धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।**
> **धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥**
>
> (मनुस्मृति ६।९२)

धैर्य, क्षमा दुष्प्रवृत्तियोका दमन अचौर्य, शुद्धता, इन्द्रियसंयम बुद्धि विद्या, सत्य तथा अक्रोध—ये धर्मके दस लक्षण है। यदि मनुष्य इन गुणोको अपने जीवनमे अपना ले तो वह सुसंस्कृत एवं दैवीसम्पदासे युक्त हो जाता है। शिक्षाके साथ संस्कारोका महत्त्व निर्विवाद है। बिना संस्कारके शिक्षा अधूरी रह जाती है। स्वामी विवेकानन्दने कहा था कि शिक्षा मात्र सूचनाओका संग्रह नहीं है, जो ठूँस-ठूँसकर हमारे मस्तिष्कमे भर दी जाय हमे जीवन-निर्माण करनेवाली तथा संस्कारित शिक्षाकी परम आवश्यकता है।

कोई उम्र नही व्यक्तित्व-निर्माणकी—षोडश संस्कारोकी बात यदि छोड दी जाय तो संस्कार प्राप्त करनेकी कोई उम्र नहीं होता। बाल युवा तथा वृद्ध—सभीको संस्कार दिये जा सकते हैं किंतु सर्वोत्कृष्ट उम्र है बाल्यावस्था, क्योकि वही समय भावी जीवनका आधार बनता है। बालकमे हृदयङ्गम करनेकी जो ऊर्जा, उत्साह तथा उमङ्ग होती है, वह अन्य उम्रवर्गमे नहीं होती।

संस्कार-प्रक्रियाका आरम्भ गर्भावस्थासे पाँच वर्षतक माता-पिताद्वारा घरपर ही लालन-पालनद्वारा, फिर विद्यालयमे शिक्षकद्वारा अनुशासनके द्वारा और फिर आजीवन स्वाध्यायप्रक्रियाके साथ अध्ययन, चिन्तन एवं अनुसन्धानके द्वारा होता है। बालकके माता-पिता ही उसके प्रथम गुरु हैं। परिवार ही संस्कारतीर्थ है। जीवनके प्रारम्भिक दिनोमे बच्चेको जो संस्कार दिये जाते हैं, वे आजीवन उसका मार्गदर्शन करते हैं। माँ कौसल्याके दिये संस्कारोने ही श्रीरामको मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम बना दिया, जीजाबाईके दिये संस्कारोने शिवाजीको राष्ट्रनायक बना दिया तथा माँ कयाधूने प्रह्लादको भक्तशिरोमणि एवं महाभागवत बना दिया। प्राचीन कालमे लोरी, बोधकथा तथा वीरो और वीराङ्गनाओकी शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाकर बच्चोको संस्कारित किया जाता था। मार्कण्डेयपुराणमे प्राप्त माता मदालसाद्वारा अपने पुत्रोकी लोरीमे दी गयी संस्कारोकी शिक्षा अत्यन्त प्रसिद्ध ही है। यहाँ केवल एक श्लोक दिया जा रहा है, जिसमे अपने पुत्र अलर्कको बहलाती हुई मदालसाने कहा—बेटा! तू अपने मनमे सदा श्रीविष्णुभगवान्का चिन्तन करना, उनके ध्यानसे अन्तःकरणके काम-क्रोध आदि छहो शत्रुओको जीतना ज्ञानके द्वारा मायाका निवारण करना और जगत्की अनित्यताका विचार करते रहना—

> सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथा-
> स्तद्ध्यानतोऽन्तः षडरीञ्जयेथाः ।
> मायां प्रबोधेन निवारयेथा
> ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥
>
> (मार्कण्डेयपुराण २६।३७)

संस्कार देनेके उपाय

१ **पारिवारिक परिवेश**—संस्कारोका निर्माण बहुत

कुछ पारिवारिक वातावरणपर निर्भर है। भारतमे संयुक्त-परिवारप्रथाका प्रचलन बच्चोंको संस्कारित करनेका सर्वोत्तम माध्यम था। तब परिवारमें बच्चा कर्तव्यपालन, माता-पिता तथा बड़ोंका सम्मान करना स्वतः सीख जाता था, किंतु आज वैयक्तिक परिवार-प्रणालीने इस संस्कारशिक्षाको संकुचित कर दिया है।

कुछ अन्य पारिवारिक परिवेश भी बच्चोंको संस्कारित करनेमें सहायक सिद्ध हो सकते हैं जैसे—(क) सूर्योदयके पूर्व जागरणका अभ्यास, (ख) नित्यक्रियाके पश्चात् भगवान्‌की प्रार्थना, ध्यान तथा महापुरुषोंके चित्रोंको नमन करना आदि। जिन परिवारोंमें आपसी प्रेम, सहनशीलता, अनुशासन, विनयशीलता एवं कर्तव्यबोधका वातावरण होता है, वहाँ बच्चे भी सहज ही पूर्ण संस्कारित हो जाते हैं।

२ शिक्षा—शिक्षा संस्कारोंकी जननी है। बच्चोंको अच्छे सुसंस्कृत विद्यालयोंमें भेजना चाहिये, जिससे कि उन्हें संस्कारयुक्त शिक्षा मिल सके। हितोपदेशमें कहा गया है—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

अर्थात् विद्या विनय प्रदान करती है, विनयसे व्यक्ति पात्रता प्राप्त करता है और पात्रता या योग्यतासे ही सच्ची सम्पत्ति प्राप्त होती है और फिर धर्ममय सुखी जीवन व्यतीत करता है। सद्‌विद्याके अर्जनमें ही संस्कारोंका पर्यवसान है। ऐसा विद्याभ्यासी ही गुणी, सच्चरित्र और सदाचारपरायण रहता है।

३ स्वाध्याय—बच्चोंको संस्कारित करनेके लिये सद्‌ग्रन्थोंके स्वाध्यायकी भावनाको जाग्रत् करना आवश्यक है। बच्चोंको सत्साहित्यके पठन करनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। प्रेरणादायक साहित्यका पठन उनके चरित्रके विकासमें सहायक होता है। स्वाध्यायसे सम्यक् ज्ञानकी प्राप्ति होती है, सदाचरणमें वृद्धि होती है, दुराग्रह दूर होता है तथा बोधकथाओंके पठनसे उनमें उन्नत भावोंका संचरण होता है। महापुरुषोंकी कहानियाँ, सत्कथाएँ, भक्तों और वीरोंके चरित्रोंका पाठ तथा स्मरण लाभकारी होता है।

४ सत्सङ्ग—संस्कारनिर्माणका यह सशक्त माध्यम है। अच्छे व्यक्तियों, साधु-संतों एवं सत्पुरुषोंकी सङ्गति जीवनको ऊँचा उठाती है। कबीरदासजीने बताया है कि क्षणभरका सत्सङ्ग भी बड़े-से-बड़े अपराधोंको हर लेता है—

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से पुनि आध।
कबिरा संगत साधु की हरे कोटि अपराध॥

संस्कारित बच्चा ही बड़ा होकर सफल होता है, पारिवारिक जीवनको सौहार्दमय बनाता है और राष्ट्रके विकासमें सहायक होता है, अतः बच्चोंको सुसंस्कृत करने तथा उन्हें अच्छे विचारोंसे पोषित करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

~~~ o ~~~

भगवान्‌का स्वरूप

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(ना०पूर्व० ४६।१७)

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान तथा सम्पूर्ण वैराग्य—इन छः का नाम 'भग' है।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥
(ना०पूर्व ४६।२१)

जो सब प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयको, आवागमनको तथा विद्या और अविद्याको जानता है, वही भगवान् कहलाने योग्य है।

~~~ o ~~~

नारीका संस्कारपूर्ण आचरण

[किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?]

[परिवारमे नारीको किस प्रकारका व्यवहार परस्पर करना चाहिये, जिससे सद्भाव, सौहार्द, सुख-शान्ति और स्नेहभाव बना रहे, इसका उपदेशात्मक लेख प्रस्तुत है—]

सास-ससुर—हिन्दू-शास्त्रानुसार वस्तुत माता-पिताकी अपेक्षा भी अधिक पूजनीय और श्रद्धाके पात्र हैं, क्याकि वे आत्माकी अपक्षा भी अधिक प्रियतम पतिको जन्म देनवाले उनके पूजनीय माता-पिता हैं। अपने हाथा उनकी सवा करना, आज्ञा मानना, उन्हे प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करना, उनकी अनुचित बातको भी सह लेना तुम्हारा धर्म है। सास-ससुर असलमे मानके भूखे हाते हैं। जिन सास-ससुरने पाल-पोसकर तुम्हारे स्वामीको आदमी बनाया है, व स्वाभाविक ही यह चाहते हैं कि बहू-बेटे हमारी आज्ञा माननेवाले हा और हमारे मनके विरुद्ध कुछ भी न कर। तुम्हे ऐसा कोई भी काम या आचरण नहीं करना चाहिये, जो उनको बुरा लगता हो। कहीं जाना हो तो पहले माससे पूछ लो। कपडा-लत्ता मँगाना हो तो पतिसे सीधा न मँगवाकर सासकी मारफत मँगवाओ। साससे बिना पूछे या उनके मना करनेपर कोई काम मत करो। रुपये-पैसेका हिसाब-किताब सासके पास रहने दो। रोज कुछ समयतक सासके पाँव दबा दिया करो और पतिको भी ऐसा कोई काम करनेसे सम्मानपूर्वक समझाकर रोक दो, जो उनके माता-पिताके मनके विरुद्ध हो। बस तुम्हारे इन आचरणासे वे प्रसन्न हो जायँगे। वस्तुत सास-ससुरको साक्षात् भगवान् लक्ष्मी-नारायण समझकर उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करनी चाहिये। तुम सेवा तथा सद्व्यवहार करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करोगी तो तुम्हारा परम कल्याण होगा।

जेठ—भगवान्ने जिनका तुम्हारे स्वामीसे बडा और उनका भी पूजनीय बनाकर भेजा है, वे चाहे विद्या-बुद्धिमे हीन ही क्यो न हो, तुम्हारे लिये सदा ही आदर सम्मान तथा सवाके पात्र हैं। उनका हित करना सेवा करना और उन्हे सुख पहुँचाना तुम्हारा धर्म है।

देवर—देवरको छोटा भाई मानकर उसका हित करना तथा उससे पवित्र सद्व्यवहार करना चाहिये। देवरसे हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये और अपने पतिसे समय-समयपर कहकर देवरके मनकी बात करानी चाहिये, जिससे प्रेम बढे।

जेठानी-देवरानी—जेठानीको बडी बहिन और देवरानीको छाटी बहिन मानकर उनके प्रति यथायोग्य आदर-श्रद्धा स्नेह और प्रेम रखना चाहिये। अपना स्वार्थ छाडकर उन्हे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करनी चाहिये तथा उनके बच्चाको अपन बच्चोकी अपेक्षा अधिक प्रिय जानकर उन्हे खाने-पीने, पहननेकी चीज अच्छी और पहले देनी तथा उनका लाड-प्यार करना चाहिये।

ननद—ननद तुम्हारी सासकी पुत्री और तुम्हारे स्वामीकी सगी बहिन है। उसका आदर-सत्कार सच्चे मनसे करना चाहिये और विवाहित हो तो अपनी शक्तिभर उसे खूब देना चाहिये। मातापर लडकीका विशेष अधिकार होता है और माताका भी स्वाभाविक ही विशेष प्यार उसपर होता है, इसलिये माताके बलपर वह (ननद) तथा पुत्री-स्नेहके कारण उसकी माँ (तुम्हारी सास) तुम्हे कुछ कह दे या बर्तावम कभी रूखापन करे तो भी तुम्हे परिस्थिति समझकर उनसे प्रेम ही करना चाहिये तथा सदा सद्व्यवहार ही करना चाहिये।

नौकर-नौकरानी—इनके प्रति विशेष प्यार और आदर रखना चाहिये। बेचारे तुम्हारी सेवा करते हैं, तुम्हारे सामने बोलनेम सकोच करते हैं। इनको समयपर अच्छा खाना-पीना देना चाहिये। रोग-क्लशसे पूरी सार-सँभाल रखनी चाहिये। अपने बर्तावसे इनके मनमे यह जँचा देना चाहिये कि ये इस घरके ही सदस्य हैं, पराये नहीं। जब ये तुम्हारे घरको अपना घर तथा तुम्हारे हानि-लाभको अपना हानि-लाभ मानने लगगे तो तुम्हारे जीवनका भार बहुत कुछ हलका हो जायगा। कभी भूल होनेपर कुछ डाँटोगी तो ये यही समझगे कि हमारी माँ हमारे भलेके

लिये हम डाँट रही हैं। नौकरासे गाली-गलौज करना ता बहुत बडी नीचता है।

अतिथि-अभ्यागत—सवा ता नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। अतिथि-अभ्यागतकी शास्त्र-सम्मत सेवा करनेसे महान् पुण्य तथा निष्काम मेवा हानेपर भगवत्प्राप्ति और लाकम यश हाता है। अवश्य ही लुच्च-लफगासे सदा वचना चाहिये तथा अकेलेम ता किसा पुरुपसे कभी मिलना ही नहीं चाहिये।

आत्मीय-स्वजन—परिवारक काई सगे-सम्बन्धी कुछ दिनक लिये घरम आ जायँ ता भार न समझकर उनका आदर-सत्कार करना चाहिय। ऐसा व्यवहार करना चाहिय, जिससे वे बहुत सुन्दर भाव लेकर अपने घर लौट। उनको ऐसी एक आदर्श शिक्षा मिल कि दूर-सम्पर्कीय आत्मीय स्वजनोके साथ गृहस्थको कैसा सुन्दर आदरपूर्ण तथा मधुर बर्ताव करना चाहिय। जरा-सा भी उनका असत्कार हो जायगा तो तुम्हारे लिये कलङ्ककी वात होगी।

विपत्तिग्रस्त स्वजन—ऐसा अवसर भी आता हैं कि जब कोई असहाय, अभागा व्यक्ति दरिद्रताका शिकार होकर या किमी विपत्तिम पडकर अपन किसा आत्माय-स्वजनक घर पहुँच जाता है ता दखा गया है कि एसी अवस्थाम लाग उसका जरा भी मत्कार नहीं करत और लापरवाहा दिखात हैं। यह वडा ही निष्ठुर व्यवहार है और महान् अधर्म है। याद रखना चाहिय कि दिन पलटनेपर तुम्हारा भा यहा दशा हा मकती है। एसा ममझकर उमका विशष आदर-सत्कार करना तथा अपनी शक्तिभर नम्र भावस उसका सहायता करनी चाहिय, अहसान जताकर नहीं।

विपति काल कर सतगुन नेहा।श्रुति कह सत मित्र गुन एहा॥

पड़ासी—पडासियाका अपन सद्व्यवहारसे अपना सच्चा मित्र वना लेना धर्म तो है ही स्वार्थ भी है। वुरे समयम मित्र पडासियास बडी सहायता मिलता है और वैरी पडासीस विपत्ति वढ जाया करती है। अतएव उनक प्रति सदा सम्मान सत्य, प्रेम तथा उदारताका व्यवहार करना चाहिय। सम्मान, सत्य प्रम तथा हित करनेपर वैरा भी अपने हा जाया करते हैं।

इस प्रकारक व्यवहारसे भगवान् भी प्रसन्न होते हैं और उनकी सन्निकटता प्राप्त होती है।

~~~ 0 ~~~

बच्चोके प्रति माँका उत्तरदायित्व

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

सुसम्पन्न, सुशिक्षित और तथाकथित अच्छे स्तरके परिवाराम एक बहुत बडी समस्या जा उभरकर सामने आयी है, वह है बच्चाम असतोपकी भावना और आमोद-प्रमाद एव उपभोग आदिक प्रति आवश्यकतासे अधिक झुकाव तथा सहनशीलताकी कमी। आजसे लगभग २५-३० वर्ष पूर्वके बच्चामे और आजके बच्चोम एक स्पष्ट अन्तर दिखायी द रहा है। समृद्ध परिवारका बच्चा आज घडी पहनकर विद्यालयम जाता है ओर यदि उसके पिताकी आमदनीम या पदमे कोई विशेष तरक्की हो गयी हो तथा जिसका बच्चको पता चल गया हो तो वह मोबाइल फोन लेकर विद्यालय जाता है। जहाँ कुछ बच्चे अपने विद्यालय वसाम जात हैं वहीं कई बच्चे मोटरकारम जाते हैं। महिलाओका और विशषकर वच्चाकी माताआका क्या उत्तरदायित्व है इस वारेम प्रस्तुत लेखम मैंने अपने अनुभव और अनुभूतिके आधारपर विवेचन किया है। मुझे विश्वास हे कि यदि इन सुझावाको व्यावहारिक स्तरपर अमल किया गया तो परिवारम सामञ्जस्य बढेगा मधुरता वढेगी और बच्चामे सहनशीलता एव धैर्यके गुण और अधिक विकसित होगे।

सहनशीलता एव सतोप—उच्च वर्गके परिवाराके बच्चोम ही नहीं बल्कि मध्यम श्रेणीके और कमजोरवर्गके बच्चाम भी यह देखनेमे आता है कि उनमे पहलेकी अपेक्षा बहुत कम सहनशक्ति है। छोटी-छोटी बातपर बच्चे झल्ला उठते हैं। इसलिये माताआको चाहिये कि वे बच्चाको सहनशीलताकी कहानियाँ सुनाये ओर इस गुणसे जीवनमे किस प्रकार मधुरता आती है यह बताये। जैसे व्यावहारिक तोरपर बच्चोका यह सिखलाना चाहिये कि हमारे परिवारमे भी तो क्वार्टर्सम नाकर रहते हैं पर नौकर और उसक बच्चे पखेसे ही काम चलाते हैं और कई बार पखा नहीं भी चलता विशपकर जब बिजली चली जाती है। जेनरेटर या इनवर्टरकी सुविधा नौकराके कमर या क्वार्टर्समे नहीं होती ता भी वे अपना गुजारा करत हैं। उनके भी तो बच्चे हैं
~~~

ओर वे भी तो इसान हैं। हम अपने वच्चोको नौकराके वच्चाको दखनेके लिये भी कह। इसके अतिरिक्त छोटी-छोटी बातपर बच्चे झगडने लगत हैं, क्योकि उनम सहनशीलताकी कमी हाती जा रही है। माताओका यह कर्तव्य है कि वे बच्चाके सामन अपने पति या सास-ससुर आर बडास कभी भी किसी प्रकारका झगडा नहीं कर। इससे बच्चापर वहुत ही बुरा प्रभाव पडता है और ऐसी नकारात्मक छाप बच्चेके मस्तिष्कपर पडती है, जिसका निवारण हाना बादमे बहुत ही कठिन हा जाता है।

सृजनात्मकता—आजके बच्चोकी सवेदनशीलता और सृजनशीलता धीर-धारे उपभाक्तावादक कारण कम हो रही है। बडी आयुक व्यक्तियाका तो जीवन-यापन यान्त्रिक हो ही रहा ह क्याकि वे केवल रुपये ओर धनके पीछे ही दोड रह है पर उनके साथ-साथ बच्चोका भी जीवन कवल कम्प्यूटर गम्स या टी०वी०सीरियल्सके आग-पीछ मँडरा रहा है। सही अर्थमे चेतनाकी दुनियाम जाकर प्राकृतिक छटाका सुख जो बच्चाका मिलना चाहिये, वह बच्चोको हम नहीं दे पात आर अपनी अनावश्यक जरूरताकी पूर्तिकी चिन्ताम ही रात-दिन खाकर निराशा और ऊबभरा जीवन व्यतीत करन लगते है। इसलिये महिलाआ आर विशपकर माताआका यह कर्तव्य बनता है कि वे भी अपनी अनावश्यक जरूरताम कमी कर और जहाँतक सम्भव हो विदेशी कारखानाम निर्मित सामानाका कम-स-कम उपयोग कर। केवल उन्हा चीजाको खरीद या इस्तमाल कर जो अत्यन्त आवश्यक हें तथा रचनात्मक और सृजनात्मक कार्यमे खुद भी लगे एव बच्चाका भी लगाय।

भारतीय सस्कृतिका प्रतिष्ठापन—माताआका यह कर्तव्य है कि वे भारतीय सस्कृतिके मूलभूत सिद्धान्ताका पुन प्रतिष्ठापन घरम रामायण महाभारत और भारतके सपूताको कहानियाँ सुनाकर करवाय। हमारी परम्परा थी—बडाका आदर करना अपनी आवश्यकताएँ कम रखना मर्यादाम रहना अपनी भाषा और अपने लोगासे प्रम करना एव उनकी नि स्वार्थ सवा करना। आज ये सास्कृतिक मूल्य लुप्त हात जा रहे हैं। जहाँ आज कम्प्यूटर और इण्टरनेटके प्रभावसे हमारा तकनीकी ज्ञान बढ रहा है वहीं इनसे एकाकीपन ओर अकेले रहनेकी प्रवृत्ति बढ रही है। अन्य व्यक्तियाके बारेम साच-विचार ही नहीं है इसलिये पहले माताएँ अपने-आपको सुधार। तब वे बच्चामे भी भारतीय सस्कृतिके मूल्याका बीजारोपण कर सकगी। भारतीय कहलानेम विद्यार्थी आजकल गर्व महसूस नहीं करते। ऐसे वातावरणम माताआका कर्तव्य हे कि वे अच्छी-अच्छी प्ररक गाथाएँ बच्चाको पढाये और खुद भी पढे, जिससे भारतीय भाषा वश-भूषा एव खान-पानमे बच्चे गौरव महसूस करे।

स्वदेशी भाषामे बोलचाल—माताएँ या घरके पुरुषवर्ग व्यापार या व्यवसाय चलाने और रुपया कमानेके लिये अग्रजी या अन्य विदेशी भाषाका ज्ञान अर्जित करे और उनका ऐसा प्रयोग करनेमे कोई बुराई नहीं हे। लेकिन हमारी आपसी बोल-चाल—पति और पत्नी, माता और बच्चे, भाई-भाई, सास-ससुर ओर परिवारके अन्य सदस्योके बीच जा हमारी बातचीत हो वह हमारी मातृभाषाम या हिन्दीम ही हा। यह नितान्त अनावश्यक है कि हम अधिकतर अपन बच्चाके साथ अग्रेजीम ही बोले और इसमे गर्व महसूस करे। इससे अधिक शर्मनाक बात और कोई हो नहीं सकती कि बच्चे अपनी भाषा बोलनेमे शर्म महसूस करते हैं।

टेलीविजनका सदुपयोग—टेलीविजनपर कई अच्छे कार्यक्रम भी आते ह तो कई ऐस भी आते हैं जो परिवारम विघटन पैदा करते हैं और तनावको बढाते हैं। सबस वडी बुराई जो टी०वी०से हुई है, वह है उपभोक्तावादको प्रात्साहन मिलना। किसी वस्तुकी आवश्यकता हो या नहीं उसे विज्ञापनके माध्यमसे इस तरहसे बढा-चढाकर दिखाया जा रहा हे कि उसे देखनेवाला अपनी साचका बद करके यह समझता है कि जो टी०वी०का विज्ञापन कहता है वही सच है और वह उसी चीजकी माँग करन लगता है। विलासी सस्कृति पनप रही है, जिसका एकमात्र आधार है, भोग और अधिक भोग। भोगके इस रागसे माताएँ भी ग्रस्त हैं। इसलिये यदि उन्हे अपन बच्चाका भविष्य सुधारना है तो स्वयपर भी नियन्त्रण करना हागा और टी०वी०के अच्छ कार्यक्रम जिसस हमार बच्चाके चरित्रका उत्थान हो और सृजनात्मक प्रवृत्तिको बढावा मिले, ऐसे ही कार्यक्रम दिखाने हाग। माताएँ अपन घरमे टी०वी० देखनेकी नीति बनाकर बच्चाको समझा सकती हैं कि

वे ऐसे कार्यक्रम न देखें, जिनम अनावश्यक मार-काट और विलासिताका प्रदर्शन हो।

खान-पानमे सुधार—आज कोला, पेप्सी, पिज्जा, बर्गर-जैसे बासी खाद्य ही खानेम माताएँ और साथ-साथ उनके बच्चे भी अपनी शान समझते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकाश घरामे कई बार घरके सादे भोजनको जो एक तरफ तो स्वास्थ्यवर्धक एव लाभदायक है और दूसरी ओर सस्ता भी है, उसे छोडकर येन-केन-प्रकारेण काला आदि बासी पानी पीने अथवा बासी खाना खानेमे ही वे अधिक रुचि लेते हैं। इससे बच्चेके स्वास्थ्यपर भी कुप्रभाव पडता है। इसलिये माताओंको चाहिये कि वे पौष्टिक एव सात्त्विक खान-पानमें स्वय रुचि लें और बच्चाको भी रुचि लनको कह।

व्यायाम और योगशिक्षा—माताओंके लिये अति आवश्यक है कि ये स्वय प्रात काल सूर्योदयस पूर्व उठें और अपने बच्चोंको भी उठाएँ। जहाँतक सम्भव हो उन्ह प्रात काल खुली हवामें घूमनक लिय प्रोत्साहित कर। इसलिये माताएँ खुद भी योग सीखें और बच्चोंको भी सिखाएँ। आवासीय कॉलोनियामें जगह-जगह योगके केन्द्र बने हुए हैं, जिनसे माताएँ योगासन, प्राणायाम आदि सीख सकती हैं और अपने बच्चोंको भी सिखाकर उनके आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्यमें बढोत्तरी कर सकती हैं। [सस्कार-सौरभ]

सस्कार एवं सस्कृति

(डॉ० श्रीओ३म् प्रकाशजी द्विवेदी)

वैदिक ऋपियाद्वारा प्रतिष्ठित सस्कार मानव-जीवनके अलङ्कार हैं। पवित्र सस्कारोके आचरणसे हम श्रेष्ठत्वको प्राप्त होते हैं। सस्कार हमारे शरीर, मन, बुद्धि एव चित्तपर पड मलको स्वच्छकर हमारे हृदयम शुभ्रता एव दिव्यताका प्रवेश कराते हैं। जिस प्रकार चित्रको अनेक रगोसे चमका दिया जाता है, उसी प्रकार वैदिक विधिद्वारा किये गये सस्कारोसे हमारे भीतर एव बाहर देवत्व चमकने लगता है, जिससे लोकमे सुयश और परलोकमें सद्गतिकी प्राप्ति होती है।

मनुष्यका स्वभाव दो प्रकारका होता है—१-दैवी-स्वभाव तथा २-आसुरीस्वभाव। देवीसस्कार-सम्पन्न जनाके शील एव सदाचारसे समाजकी रक्षा होती है किंतु कुसस्कारोमें लिप्त व्यक्ति समाजके विनाशक होत हैं। अत शास्त्रोका अमृतमय उपदेश है—'**रामादिवद् वर्तितव्य न तु रावणादिवत्।**'

भगवान् श्रीरामके सस्कारोका वर्णन श्रीरामचरितमानस (१।२०४।३-४)-मे बडे मनोरम ढगसे किया गया है—

भए कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहँ गए पढन रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

विद्यार्थीके लिये गुरुजनाकी सेवा, विद्याध्ययन, सद्गुणोका सञ्चय तथा सात्त्विक गुणाका पालन अनिवार्य दैनिकचर्या होती रही है। विद्या पूर्ण होनेपर समावर्तन-सस्कार सम्पन्न होता है। गुरुजन आशीर्वाद एव शिक्षा देकर गुरुकुलसे विदाई करते हैं। समावर्तन-सस्कारके समय दी गयी शिक्षाको बालक जीवनभर स्मरण करता है तथा तदनुसार आचरण करता है। गुरु स्नातकको उपदेश देते हैं—'**सत्य वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद । ""मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।**' इत्यादि (तैत्ति०उप०)। शिक्षा-दीक्षा पूर्ण होनेके अनन्तर गृहस्थ-आश्रममे प्रवेशके लिये उसका विवाह-सस्कार सम्पन्न होता है।

इस प्रकार सभी सस्कार नय-नये कर्तव्याके लिये दीक्षास्वरूप हैं। इन प्रक्रियाओक द्वारा मनुष्यमे नयी-नयी शक्तियाकी उद्भावनाएँ की जाती हैं।

सस्कार हमार हृदयको विशाल बनाकर हमे चरित्रवान् बनात हैं तथा अन्त एव बाह्य सौन्दर्यका बढाते हैं। हमारी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं, इन्हे अन्तर्मुखी बनाकर शुद्ध करना सस्कारोका मुख्य प्रयोजन है।

भगवान् शिवने पार्वतीजीको इन्द्रियोंका वशमें करनेका वणन बड सुन्दर ढगसे किया है—

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि सत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥

(रा०च०मा० १।११३।२—५)

इन्द्रियाको शुद्ध एव अन्तर्मुखी करनेके उपायके रूपम श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रजीको १४ स्थान उनके निवासहेतु बताये हैं, जिनका दिव्य-मनोहारी वर्णन श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्ड (१२९।३—६)-म द्रष्टव्य है। इस प्रकरणके अध्ययन-मननसे भगवत्प्रेमकी जागृति हा सकती है और इन्द्रियनिग्रह भी सहज ही सध सकता है—

सीस नवहि सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसपी॥
कर नित करहि राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
मत्रराजु नित जपहि तुम्हारा। पूजहि तुम्हहि सहित परिवारा॥

यह प्रसङ्ग नित्य स्मरणीय एव आचरणीय है। यदि ये सस्कार अन्त करणम स्थित हो गये तो समझना चाहिये कि समग्ररूपसे सस्काराकी प्रतिष्ठा हो गयी।

हमार स्थूल शरीरम अन्नदोष, प्रमाद इत्यादिक कारण अपवित्रता बना रहती हे। अत सस्काराद्वारा शरारको शुद्ध करक भगवान्‌का भजन करना चाहिये। प्रेम, भक्ति एव पूर्ण निष्ठाक साथ पुकार करनी चाहिय—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअतर मल कबहुँ न जाई॥

(रा०च०मा० ७।४९।६)

यह वसिष्ठजीका अमृतवचन है। इन्द्रियाँ भगवान्‌की आर उन्मुख हा इसका सुन्दर वर्णन शास्त्राम है। श्रीमद्भागवत (१०।१०।३८)-म जडतासे मुक्त होनेपर यमलार्जुनने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की है—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथाया
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्न ।
स्मृत्या शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टि सता दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

अर्थात् हे भगवन्! वाणी आपके गुणानुवादमे श्रवण आपके कथाश्रवणम हाथ आपकी सेवाम मन चरणकमलोके स्मरणम सिर आपक निवासभूत सारे जगत्‌को प्रणाम करनम तथा नत्र आपके चेतन्य-विग्रह—सतजनाक दर्शनम लगे रहे, यही मेरी अभिलाषा है।

शास्त्राके अनुशीलनसे हमारे सस्कार दृढ होते हैं। एक बार ब्रह्माजीके पास देव दनुज एव मानव शिक्षाहेतु उपस्थित हुए। ब्रह्माजीने एक अक्षर 'द' से सबको शिक्षा दी। फिर पूछा—क्या समझ गय? सबने कहा—हाँ प्रभो! हम समझ गये। देवताआने कहा—हम आपने दमका उपदेश दिया है, हम भागास विरत रह। दानवोने कहा—हम आपने दयाकी शिक्षा दी है, हम हिसासे विरत रह। मनुष्योने कहा—आपने हमे दान देत रहनेकी शिक्षा 'द' से दी है। अत शास्त्राके सस्कारपूर्ण उपदेशोको हृदयङ्गम करके हम जीवनको सुखी बनाना चाहिये।

सस्कार मानव-जीवनके मूल हैं। सस्कारामे उच्चरित मन्त्रासे तरङ्गें—ध्वनियाँ उत्पन्न हानेसे हमारे शरीरके अवयव, कोष, चक्र प्राण, वायु, अणु-परमाणु सब सक्रिय हो जाते हैं और हमारी सुप्त ऊर्जाशक्ति जाग्रत् होती है।

आज विज्ञान तरङ्गोके प्रभावका विशष अध्ययन कर रहा है। सत्सङ्गसे उत्तम प्रभाव तरङ्गोके द्वारा ही सम्भव है। शुभ वाणीके प्रभावसे हम दूसराको कोई कार्य करनेके लिय उत्साहित कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्णन अर्जुनको गीताके माध्यमसे कर्मक्षेत्रमे उतारा उन्हे निष्काम-कर्मकी शिक्षा दी और 'समत्व योग उच्यते' की दिव्य भावना उनके हृदयमे भर दी। गीता, मानस आदि शास्त्रोके अध्ययनसे हमारा धार्मिक सस्कार दृढ होता है। अविद्या, अज्ञान आदि दोष निर्मूल होते हैं, हम सात्त्विक गुणाके महत्त्वको समझने लगते हैं। उनका आचरण जीवनभर करनेका प्रयास करते हैं। सात्त्विक पथपर चलनेस जीवन ज्योतिष्मान् बनता है। सस्कारी साधुपुरुपकी विद्या ज्ञानके लिये धन दानके लिये और शक्ति परोपकारके लिये होती है। सस्कार शोभन कर्मोके द्वारा हमारे स्वभावका निर्मल बनाकर हमे ऊर्ध्वगामी बनाते हैं और विकृति जीवनस्तरको निम्नगामी बनाकर नरककी ओर ले जाती है। अत सस्काराके द्वारा जीवनम आनन्दरस सत्य एव सौन्दर्यकी अनुभूति करे जीवन सफल बनाव, यशके भागी बन और सस्कारसम्पन्न सनातनधर्म एव सस्कृतिकी रक्षा कर।

गृहस्थधर्म और संस्कार

(श्रीरणवीरसिंहजी कुशवाह)

हिन्दूसस्कृति बहुत विलक्षण है। इसके सभी सिद्धान्त पूर्णत वैज्ञानिक हे ओर सभा सिद्धान्ताका एकमात्र उद्देश्य ह मनुष्यका कल्याण करना। मानवका कल्याण सुगमता एव शीघ्रतास कसे हो—इसक लिये जितना गम्भीर विचार और चिन्तन भारतीय सस्कृतिम किया गया है, उतना अन्य किसी धर्म या सम्प्रदायम नहीं।

जन्मसे मृत्युपर्यन्त मानव जिन-जिन वस्तुआक सम्पर्कमे आता हे ओर जो-जो क्रियाएँ करता है उन सवको हमार देवतुल्य मनीषियोन बडे ही वैज्ञानिक ढगस सुनियाजित मर्यादित एव सुसस्कृत किया ह ताकि सभी मनुष्य परम श्रेयकी प्राप्ति कर सक।

मानव-जीवनम सस्कारका बडा महत्त्व हे। सस्कारसम्पन्न सतान ही गृहस्थाश्रमकी सफलता और समृद्धिका रहस्य हे। प्रत्येक गृहस्थ अर्थात् माता-पिताका परम कर्तव्य बनता ह कि वे अपने वालकाको नतिक बनाय आर कुसस्कारास बचाकर वचपनस ही उनम अच्छे आदर्श तथा सस्काराका ही बीजारापण कर। घर ही सस्काराकी जन्मस्थली हे। अत सस्कारित करनेका कार्य अपने घरसे ही प्रारम्भ करना चाहिय क्याकि सस्काराका प्रवाह सदैव बडासे छाटाकी आर उसी प्रकार होता ह, जैसे पानीका वेग सदव नीचेकी आर ही होता हे।

सस्कार क्या है—इस शब्दको जनसाधारणकी भाषाम समझनक लिय यह कहा जा सकता हे कि व्यक्तिमे विद्यमान अनुशासन, सयमित आचरण व्यवहार सद्गुण धैर्य और धर्मयुक्त आचार-विचार ही सस्कार हैं। मनुष्यका सम्पूर्ण जीवन आचार-विचारमय होता हैं। इसलिये सस्कृतिक क्षेत्रम मानव-जीवनक समस्त क्षेत्र आ जाते है। प्रत्येक कार्यक्षेत्रम शास्त्रक अनुसार आचरण करना हा सस्कृति है।

गृहस्थाश्रमम पति पत्नी, पिता-पुत्र ज्यष्ठ भ्राता लघु भ्राता बहन आदिका परस्पर आदर्श व्यवहार और स्नह बिना सुसस्कृत हुए सम्पन्न नहीं हो सकता। पत्नीके लिय पातिव्रतधर्म सतीत्वकी श्रष्ठता और पतिक लिय पत्नीका साक्षात् गृहलक्ष्मीरूप तथा पुत्रके लिये **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव'** का पवित्र सदुपदेश आदि कुछ एसी विशेपताएँ हैं जिनसे अन्य सस्कृतियाके सामन हमारा चरित्र तथा अध्यात्म सदेव उन्नत रहा है।

आज अर्थप्रधानताकी बाढम माता-पिताका यह विशप दायित्व वन जाता ह कि व स्वयको योग्य तथा सुसस्कृत बनाय और उद्दश्यहीन शिक्षापद्धतिस अपन बालकोंको बचाकर उनका उचित मार्गदर्शन कर।

बालक उपदशकी अपेक्षा अनुकरणसे विशप प्रभावित हाते हे और वैसा ही साखत हें। बालककी प्रथम गुरु माता हाती है जिसक द्वारा आदर स्नेह अनुशासन-जैस गुणाकी शिक्षा सहज हा दी जा सकती है। घरस लेकर पाठशालाके अध्यापक अर्थात् माता-पिता दादा-दादी यदि सस्कारी हागे तभी वालकाक लिये आदर्श उपस्थित होगा और बालक नेतिक सदाचारी, धार्मिक प्रवृत्तिवाल तथा सुसस्कारी बन सकग, परतु आजके परिवशम माता-पिता स्वयको इतना व्यस्त समझते हैं कि धैर्यपूर्वक सुसस्काराका शिक्षाके लिय उन्ह समय ही नहीं है या यह कहना उचित होगा कि इस विपयपर बालकोकी उपेक्षा हा रही है।

आज बालकाम हिसा तथा व्यभिचारकी प्रवृत्ति बढ रही है। इस विपयपर विचार करनेकी विशेष आवश्यकता हे। इसकी उपेक्षास सस्काराका चिन्तन नहीं हो रहा है। युवावर्ग परिश्रम और धेयसे दूर हा रहा है। समाजमें सात्त्विक प्रवृत्तियाका दमन किया जा रहा है जिससे नैतिक मूल्या और नैतिकतापरस विश्वास उठता जा रहा है। मर्यादा ओर अनुशासनका लाप होकर हृदय एव मस्तिष्क सकुचित तथा कुण्ठाग्रस्त हो गय हे।

अन्त करणकी शक्तिको पहचाननेके लिये आवश्यक ज्ञानकी उपेक्षा हो रही है और हम पाश्चात्य सस्कृतिकी ओर बढ रहे है। सादगीका अभाव तथा नशेकी प्रवृत्तिके दास बन रहे हैं। इस चुनौतीपूर्ण परिप्रेक्ष्यम सुसस्काराका प्रत्यारोपण कठिन कार्य अवश्य है परतु असम्भव नहीं।

बालक अपने पूर्वके जन्म-जन्मान्तरास सञ्चित सस्कार लेकर पैदा होता है। यहाँ अपने माता-पिताकी वशपरम्परा एव वातावरणस भी सस्कार प्राप्त करता है। ये सस्कार अच्छे या बुरे—दोना प्रकारक हो सकते हैं क्योंकि सस्कारापर विशप प्रभाव वातावरणका पडता है। ऐसा भी प्राय दखनम आता है कि अच्छे सस्कार लेकर पैदा

होनेवाला बालक भी परिवार और वातावरणके प्रभावसे विकारग्रस्त हो जा रहा है। साथ ही उसका आध्यात्मिक पतन भी हो रहा है। यदि सभी लोग संस्कारोंके अनुरूप गृहस्थाश्रममें रहते हुए अपने कर्तव्य-कर्मोंका उचितरूपसे पालन करें तो निश्चय ही समाज, देश एवं मानवजातिका कल्याण अवश्य होगा, इसमें संदेह नहीं।

वृद्धपूजा हमारी संस्कृतिकी एक बड़ी विशेषता रही है। हमारी संस्कृतिमें पहलेसे ही गृहस्थधर्ममें चला आ रहा है कि प्रातः उठते ही शय्यात्याग करनेके बाद प्रत्येक बालक-बालिकाको अपने परिवारके बड़ों वृद्धोंका अभिवादन करना चाहिये और यथासमय उनकी सेवा करनी चाहिये।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनु० २।१२१)

महाराज मनुद्वारा उपर्युक्त श्लोकमें दर्शाया गया है कि इससे चार लाभ बिना मूल्यके ही मिल जाते हैं—आयु, विद्या, यश और शक्ति।

यह हमारे सद्विचार और संस्कारका ही सिद्धान्त है जो अन्य किसी धर्म तथा संस्कृतिमें नहीं मिलता। भारतीय संस्कृतिमें कर्तव्यपरायणता व्यक्तित्वविकास, सहिष्णुता, उदारता आदिकी कमी नहीं, आवश्यकता है तो बस, थोड़ेसे समन्वयकी। सात्त्विक गुण, सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन एवं सुसङ्गति—ये उचित मार्ग-दर्शनमें पूर्ण सहयोगी हैं। अतः हमें इन्हें अपने जीवनमें उतारना चाहिये।

प्रत्येक घरमें दादा-दादी या माता-पिता आध्यात्मिक एवं नैतिकतासे ओत-प्रोत कहानियाँ गीता, रामायण तथा महाभारत-जैसे ग्रन्थों और महापुरुषोंके जीवनचरित्रोंसे सम्बन्धित वार्तालाप करें। इन सबके माध्यमसे संस्कारके कई ऐसे सूत्र मिल जाते हैं, जो परिवारकी जीवन-धाराको बदलनेमें सक्षम होते हैं। बड़ोंके सांनिध्यद्वारा बालक उनके अनुभवोंसे लाभान्वित होते हैं।

माता-पिताद्वारा घरमें ध्यान देनेयोग्य कुछ बातें— बड़ोंका आचरण मर्यादित हो। व्यवहार सरल नम्र, मृदु तथा सद्गुणोंसे पूर्ण हो। उन्हें यह चाहिये कि वे अपने बच्चोंको केवल भौतिक सुख-सुविधा नहीं अपितु प्रेम स्नेह विश्वास सकारात्मक भावना तथा सुसंस्कृत वातावरण प्रदान करें। इस प्रकार प्रत्येक माता-पिताको यह सङ्कल्प लेना चाहिये कि वे अपनी संतानमें ऐसे संस्कारोंका समावेश करें जो उनके सर्वाङ्गीण अभ्युदयमें सहयोगी हों। भावी पीढ़ीको मान-मर्यादा, मन कर्म, वचनसे सशक्त एवं प्रभावी बनानेके लिये उनमें भक्ति शक्ति और युक्तिका सञ्चार करायें और दूसरोंको भी प्रेरणा दें। इसमें प्रत्येक व्यक्तिकी सहभागिता आवश्यक है।

हम दूसरे लोगोंसे अपने प्रति जैसे व्यवहारकी अपेक्षा करते हैं ठीक वैसा ही व्यवहार हम भी उनके प्रति करना चाहिये। यही धर्म है एवं संस्कारयुक्त जीवनशैलीका मूलभूत आधार है।

संस्कार जीवनमें मर्यादा ही नहीं आनन्दकी अभिवृद्धि भी करते हैं तथा अमर्यादित जीवनशैलीको त्यागनेका मार्ग प्रशस्त करते हैं—यह हमारे शास्त्रोंका सार है। आचार-विचार सदाचारकी ऐसी शिक्षा अन्यत्र कहाँ मिलेगी? इस विषयपर गहन विचारकी आवश्यकता है। हमें यह प्रयत्न करना होगा कि हम अपनी भारतीय संस्कृतिको युगा-युगांतक स्थायित्व प्रदान कर सकें।

सूक्ति-सुधा

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च। तान् सेवेत्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी॥
असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्। धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः॥

(महा० वन० १।२६ १२।८)

जिनके विद्या कुल और कर्म—ये तीनों शुद्ध हों उन साधु पुरुषोंकी सेवामें रहे। उनके साथ बैठना उठना शास्त्रोंके स्वाध्यायसे भी श्रेष्ठ है। दुष्ट मनुष्योंके दर्शनसे स्पर्शसे उनके साथ वार्तालाप करनेसे तथा एक आसनपर बैठनेसे धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्यमें सफल नहीं हो पाते।

पश्चिमी अन्धानुकरणके दुष्परिणाम

(डॉ० श्रीमती मधुजी पोद्दार)

भारत एक धर्मप्रधान देश है। यहाँ धर्मका अर्थ किसी मत, पन्थ या सम्प्रदायसे नहीं है। धर्मका अर्थ है जो धारण करनेयोग्य है, जिसे धारण किया जा सके, जिसे धारण करनेसे समाज सगठित होकर सुचारुरूपसे चल सके—'**धारणाद् धर्ममित्याहु** '। शास्त्रामे धर्मके दस लक्षण कहे गये हैं जैसे—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह इत्यादि—

धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्मलक्षणम्॥

(मनु० ६।९२)

इन सामान्य धर्मोंके अतिरिक्त वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी विशेष धर्म दूसर हैं।

प्राचीन कालसे ही भारतीय जीवनपद्धति धर्मके इन्हीं लक्षणापर आधारित रही है तथा यही धर्म मानवको पशुसे अलग करता है। धर्मविहीन मानवको पशुके समान माना गया है—

आहारनिद्राभयमैथुन च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेपामधिको विशेषो
धर्मेण हीना पशुभि समाना ॥

धर्मसे ही किसी देशकी सभ्यता तथा सस्कृतिका विकास होता है और उस दशकी पहचान वहाँकी सस्कृतिसे होती है। सभ्यताका अर्थ है भौतिक विकास, जबकि सस्कृतिका अर्थ है उस देशमे रहनेवाले लोगाकी आध्यात्मिक सोच चिन्तन, मान्यताएँ, परम्पराएँ एव सस्कार और उन सस्कारापर आधारित जावनशैली। पश्चिमी देशाकी सस्कृति भोगयुक्त एव भौतिकताप्रधान रही है जबकि भारतकी सस्कृति वैराग्य त्याग एव आध्यात्मिकताप्रधान है। भारताय चिन्तनम आत्मिक अभ्युदयको विशप महत्त्व दिया गया है। भारताय सस्कृति आदिकालसे ही वैदिक ज्ञानपर आधारित रहा है जिसम स्वके बारम न सोचकर पूरी मानवजातिके कल्याणके बारेम साचा गया है—पूरी धरताको एक कुटुम्ब माना गया है—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। शरीरको नाशवान् एव आत्माको अमर माना गया है। भारतीय चिन्तनके अनुसार शरीरको भोगासे अस्थायी सुख मिलता है, जबकि अध्यात्मसे स्थायी शान्ति। वेदापर आधारित इस चिन्तनमे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये आयुर्वेद और ,योगासनको अपनाया गया तो मानसिक विकासके लिये प्राणायाम, ध्यान, तप, समाधि एव भक्तिको। माता-पिता, गुरु तथा अतिथिको देवरूप समझकर पूज्य माना गया है, प्रकृतिके विभिन्न रूपो जैसे—नदियो, पर्वता एव वृक्षामे देवत्वका प्रतिष्ठा की गयी है। गौ इत्यादि भी पूज्य हैं। मानव 'सादा जीवन उच्च विचार'के सिद्धान्तस अनुप्राणित था। शासन भी धर्मपर आधारित रहा। इसी वजहसे भारत सदासे विश्वगुरु रहा और भारतकी सस्कृति सदियोसे अमिट रही। पर यह हमारा दुर्भाग्य है, आज जब विश्वके अनेक देशामे भारतीय दर्शन, चिन्तन सस्कृति, वेद, ज्ञान आयुर्वेद तथा योग इत्यादिको अपनाया जा रहा है, भारतमे इसे काल्पनिक असत्य, अवैज्ञानिक तथा रूढिवादी कहकर तिरस्कृत किया जा रहा है। यह एक अजीब विडम्बना है कि आज भारतम भौतिकताप्रधान पश्चिमी जीवन-शैलीका अन्धानुकरण हो रहा है एव प्राचीन भारताय ज्ञानपर पश्चिमकी मोहर लगनेके बाद उसे सत्य वैज्ञानिक तथा आधुनिक कहकर गर्वके साथ अनुसरण किया जा रहा है। यागस योगा आयुर्वेदसे आयुर्वेदा होनेपर हम उस सही मान रहे हैं। यह हमारी वैचारिक दुर्बलता ही है।

आज अपनी भारतीय सस्कृतिकी अवहेलना सस्काराकी उपेक्षा एव पश्चिमी जीवनशैलीके अन्धानुकरणसे समाजम अनक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। जैसे कि आहारप्रणालीम बदलावसे अनेक बीमारियाँ शिक्षापद्धतिमें बदलावसे अनेक मानसिक कुरीतियाँ और पाश्चात्य रहन-सहनसे अनक सामाजिक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं।

सर्वप्रथम अगर हम अपनी आहारप्रणालीम बदलाव तथा उससे उत्पन्न समस्याआपर विचार कर तो पाते हैं

कि प्राचीन कालमे जब हम वैदिक संस्कृति एवं अपनी शारीरिक संरचना जो शाकाहारके अनुकूल है, उसके आधारपर दूध, घी, तेल, दाल, अनाज, सब्जी, फल इत्यादिका सन्तुलित शाकाहारी भोजन लेते थे तो स्वस्थ और दीर्घायु होते थे, परंतु जैसे-जैसे मानवने तथाकथित वैज्ञानिक दुष्प्रचारोंके आधारपर पश्चिमका अन्धानुकरण करके मांसाहार लेना शुरू किया वह अनेक रोगोंसे ग्रस्त हो गया।

पश्चिमी देशोंने शाकाहारको कुपोषणका कारण बताकर, मांसाहारको सस्ता तथा पौष्टिक भोजन कहकर प्रचारित किया, जिसे आधुनिकताके नामपर अधिक-से-अधिक लोग अपनाने लगे। जबकि शोधोंद्वारा भी यह प्रमाणित हो गया है कि मांसाहार न तो सस्ता है और न ही पौष्टिक, बल्कि इसमे पाये जानेवाले तत्त्वोंसे हृदयरोग, डायबिटीज उच्च रक्तचाप पथरी, विभिन्न प्रकारके कैंसरसहित १६० बीमारियोंकी सम्भावना बढ जाती है।

इसी तरह पश्चिमी देशोंने मीडियाकी मददसे हमारे परम्परागत भोजनको वसायुक्त एवं हानिकारक तथा पिज्जा बर्गर एवं डिब्बा-बंद भोजनको आधुनिक तथा पौष्टिक बताकर प्रचारित कर दिया जिससे हमारे देशमे फास्टफूड संस्कृतिको बढावा मिला। आज उसके दुष्परिणाम स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं क्योंकि इसी फास्टफूडकी वजहसे लोगोंमे बचपनसे ही मोटापा बढ रहा है जो डायबिटीज, उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोग-जैसी घातक बीमारियोंके लिये जिम्मेदार है। साथ ही यह एनीमिया तथा कुपोषण भी बढा रहा है। आज हम इन्हीं विदेशी कम्पनियोंके मायाजालसे प्रभावित होकर अपने परम्परागत पेय पदार्थों (लस्सी, शरबत इत्यादि)-को छोडकर पेप्सी कोक और मिनरल वाटर इत्यादिका प्रयोग कर रहे हैं, जिससे रोगप्रतिरोधक क्षमता कम हो ही रही है, साथ ही आँतों तथा हड्डियोंकी बीमारियाँ दमा और एसिडिटी-जैसी बीमारियाँ भी बढती जा रही हैं। विभिन्न शोधोंने यह साबित कर दिया है कि पेप्सी एवं कोक आदिमे इतना अधिक एसिड है, जिसमे हड्डीतक घुल सकती है तो फिर आमाशय और आँतोंका तो कहना ही क्या!

पश्चिमी अन्धानुकरण और आधुनिकीकरणके नामपर शराबकी बढी प्रवृत्तिने पेट, आमाशय, मूत्राशय इत्यादिके अल्सर एवं कैंसर-जैसे रोगोंमे बढोत्तरीके साथ दुर्घटनाओं एवं उससे उत्पन्न विकलाङ्गताकी घटनाओंमे भी वृद्धि कर दी है।

भोजनमे आये बदलावसे उत्पन्न विभिन्न दुष्प्रभावोंके बाद अगर हम अपनी जीवनशैली तथा रहन-सहन और दिनचर्यामे आये बदलावपर नजर डालते हैं तो उससे उत्पन्न समस्याएँ भी स्पष्ट हो रही हैं। अपनी प्राचीन संस्कृतिके आधारपर हम प्रातः सूर्योदयसे पहले उठकर शौच तथा स्नानसे निवृत्त होकर सन्ध्या-वन्दन इत्यादिके अनन्तर प्रातः-भ्रमणपर जाते थे, प्राणायाम और योगासन करके अपने शरीर तथा मनको स्वस्थ एवं शान्त रखते थे, भोजन स्वच्छ रसोईमे शान्तचित्तसे आसनपर बैठकर ग्रहण करते थे रोजकी दिनचर्याको ईमानदारी, सचाई इत्यादिके आधारपर चलाते थे और हमारा पहनावा हमारे देशकी संस्कृति तथा पर्यावरणके अनुकूल होता था, हमारी शिक्षा गुरुकुलमे वैदिक ज्ञानके आधारपर होती थी, हमारे पर्व और उत्सव एकता एवं भाई-चारेके संदेशके साथ पारम्परिक रूपसे मनाये जाते थे, परंतु आज पश्चिमकी भौतिकतावादी संस्कृतिके वशीभूत होकर आधुनिकताकी अन्धी दौडमे हम अपनी प्राचीन संस्कृति तथा परम्पराओंकी राहसे भटककर एवं पश्चिमी दुष्प्रचारसे प्रभावित होकर अपनी जीवनशैलीमे बदलाव करके विभिन्न समस्याओंको आमन्त्रित कर रहे हैं।

आज हमारे पर्वो और उत्सवों एवं संस्कारोंमे बाजारीकरण हावी हो गया है और पश्चिमी त्योहार जैसे कि वैलेंटाइन डे, मदर्स डे इत्यादिको बडे धूमधामसे मनाया जा रहा है। पहले तो बच्चेके जन्मके समय प्रसवके बाद महिला तथा बालकको अलग कमरेमे रखा जाता था, जिससे आनेवाले लोगोंकी वजहसे बच्चेको कोई बीमारी न लगे, जबकि आज आगन्तुक आते ही बच्चेको चूमते हैं, जिससे नवजात शिशु ज्यादा बीमार होते हैं और पैदा होनेके बाद

दवाइयापर निर्भर हो जाते हैं। पहले जन्मदिनपर माता-पिता दीपक जलाकर, भगवान्‌की पूजाकर बच्चेका आशीर्वाद देते थे, पर अब पश्चिमी सस्कृतिकी नकल करके केक काटते हैं तथा दीया जलानेके स्थानपर मोमबत्ती बुझाते हैं।

शिक्षापद्धतिमे आये बदलावसे तो अनेक सामाजिक समस्याएँ पैदा हो रही हैं। पहले गुरुकुलम विभिन्न वर्गोंके बालकाको एक रूपसे—एक परिवारकी भाँति, वर्णाश्रमव्यवस्थाके अनुसार वैदिक शिक्षा दी जाती थी। जबकि आज मैकाले-शिक्षापद्धतिने ऐसे सस्कार पैदा कर दिये हैं, जो अपनी भारतीय सस्कृति, वेदा, पुराणो इत्यादिको रूढिवादी, काल्पनिक तथा अवैज्ञानिक कहकर तिरस्कृत कर रहे हैं। आजकी शिक्षासे बेरोजगारी बढ रही है, सहनशीलता कम हो रही है। सयुक्त परिवारकी जगह एकल परिवारकी प्रवृत्ति बढ रही है, जिससे बच्चे रिश्ता तथा सम्बन्धाकी अहमियतको भूल रहे हैं, उनमे स्वार्थ, अकेले रहनेकी आदत, चिडचिडापन एव अवसाद-जैसी समस्याएँ बढ रही हैं। आजके बच्चे रिश्ताको भी धनके तराजूपर तौलते हैं एव बूढे माँ-बाप या रिश्तेदाराको बोझ समझने लगे हैं। इसीलिये आज समाजमे धनको सर्वोपरि मानते हुए बेईमानी तथा भ्रष्टाचार बढ रहा है, चारित्रिक पतन हो रहा है। हिसा, बलात्कार, अपहरण इत्यादिकी घटनाएँ बढ रही हैं। पहले चरित्रको धन तथा स्वास्थ्यसे ऊपर स्थान दिया जाता था, जबकि आजकी सोच और मानसिकताम चरित्र नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी है। इन सब बातापर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है। हमें अपनी सस्कार-सम्पन्न गौरवमयी सुदीर्घ परम्पराको समझना होगा और तदनुकूल आचरण करके पुन विश्वके सामने एक उच्च आदर्श प्रस्तुत करना होगा।

~~~o~~~

संस्कार, सदाचार और सद्‌वृत्त

(श्रीरामेश्वरजी तिवारी)

हमारे ऋषि-मुनि इस चेतना-जगत्‌के विलक्षण अनुसधानकर्ता थे उन्होने जन्मके पूर्वसे लेकर मरणोत्तरकाल-पर्यन्त जीवनको सस्काराकी विज्ञानसम्मत प्रक्रियाके साथ इस प्रकार एकरूपतासे जोड दिया कि जीवनयात्राम निरन्तर परिशोधन और प्रगति हो, किसीका भी अनिष्ट न हो, आत्मसत्ता कषायमुक्त होकर मोक्षको प्राप्त हो एव सस्कारासे भरा यह ऋषिजीवन हमारी सस्कृतिका मेरुदण्ड बना रहे।

मानवको पुरुषार्थपरायण बनानेवाला यह ऋषिजीवन सस्कृतिका प्राण है एव मानवमात्रके लिये प्रेरणाका अनन्त स्रोत है। हमारे ऋषि जो पूर्ण सस्कारी पुरुष थे जिन्हे हमारे वेदोने 'अमृतपुत्र' कहकर सम्मानित किया है, उन्होने सृष्टिके सूक्ष्म-स्थूल पदार्थ जैसे—पञ्चतत्त्व सूर्य चन्द्रमा तारागण आदिके विषयमे विचार करते हुए पाप-पुण्य धर्म-कर्म जीवात्मा-परमात्मा आदितक पहुँचकर इन्हीं भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियाको सामाजिक जीवनके उपयुक्त बनानेकी कलाको सस्कार-सस्कृति नाम दिया अर्थात् भौतिक अथवा लौकिक उन्नतिकी अवहेलना न कर जीवनको सुखी-सम्पन्न बनानेका मार्ग बडी स्पष्टतासे समझाया है, पर अन्तिम लक्ष्य सदैव आध्यात्मिक उन्नतिको ही समझा है या यूँ कहना उचित होगा कि विज्ञानके नियमाको ही आध्यात्मिक धारासे जोडकर मनुष्यको भौतिकवादके दोषासे बचाकर समस्त सासारिक कार्योको करते हुए आत्मकल्याणके ध्येयको भूलने नहीं दिया।

गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टितक जो सस्कार प्रचलित हैं, इनका मुख्य उद्देश्य यही है कि इनके द्वारा सस्कारित किये जानेवाले व्यक्तिपर, दर्शकोपर कल्याणकारी प्रभाव पडे। इन सस्काराके समय प्रयोग किये जानेवाले वैदिक मन्त्राम एक प्रकारकी सूक्ष्म शक्ति पायी जाती है एव प्राप्त होनेवाली शिक्षाएँ भी उच्चकोटिकी दी गयी हैं, जिससे लोगोपर बहुत ही उत्तम मनोवैज्ञानिक प्रभाव
~~~

पड सकता है, किंतु उन्हे उनका आशय समझकर उपयुक्त ढगसे सम्पन्न किया जाय। जिस समय समाजमे संस्कारोका वास्तविक रूपसे प्रचार था एवं ऋषियोद्वारा सस्कार विधानपूर्वक सम्पन्न किये जाते थे, उस कालमे ऐसे-ऐसे प्रतिभाशाली एव अध्यात्मज्ञानसे सम्पन्न व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं, जिनका नाम तथा यश आज भी स्थिर है।

सस्कारोका उद्देश्य व्यक्तिको तथा उसके द्वारा समाजको धर्मपरायण एव कर्तव्यनिष्ठ बनाना है तथा ये ही दो बाते किसी भी मनुष्यको सुसस्कृत या सस्कारी कहलानेका अधिकार देती हैं, इसलिये हमारी प्राचीन सस्कृतिके सभी आदर्श एव विधि-विधान ऐसे रखे गये हैं कि उनके द्वारा मनुष्यकी भौतिक उन्नति होनेके साथ-साथ मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी उनका उत्थान हो अत इसमे तनिक भी सदेह नहीं कि मानवके चरित्रनिर्माण एव मनोभूमिको सुसस्कृत तथा सद्वृत्तसम्पन्न बनानेके लिये ये सस्कार हमारे ऋषियोकी महान् देन हैं।

महर्षि व्यासद्वारा निर्दिष्ट षोडश संस्कार— हिंदूधर्मका आधार ही अध्यात्मज्ञान एवं मनोविज्ञान है। प्रत्येक बात रहस्यात्मक गुप्त तथ्यापर आधारित है। दैनिक आचार-विचार एव परम्पराका विचार कर व्यासजीने जिन १६ सस्काराको मान्यता दी है, उनका प्रभाव गर्भाधानकालसे ही शिशुपर पडना प्रारम्भ हो जाता है। माता-पिताके अन्तरङ्ग विचार जैसे होगे, वैसे ही विचार बालकमे भर जाते हैं। अत शिशुके जन्मसे पूर्व ही यानी गर्भाधानसे ही सस्कारको सँभालनेकी आर ध्यान दिया गया है। गर्भाधानसे लकर अन्त्येष्टितक १६ सस्कार मन्त्रासहित करनका विधान है।

य सस्कार शाश्वत नियमोके आधारपर रहनेसे इनक कालबाह्य होनेकी सम्भावना नहीं। इस प्रकार इन सस्काराके विधानसे जीवन सतुलित एव सयमित रहता है। इन सस्कारोम वेदमन्त्राके उच्चारणद्वारा बालकके मनपर जो पवित्र भाव अङ्कित हो जाते हैं, उनके प्रभावसे वह सभ्य सुसस्कृत और सदाचार-सम्पन्न बन जाता है।

जिस प्रकार दीपककी बत्ती छोटी होनेपर भी बहुत प्रकाश देती है, वैसे ही सस्कार भी अपना अस्तित्व प्रकट करते हैं। इन सभी सस्काराको सम्पन्न करनेवाले यज्ञदेव भारतीय सस्कृतिके प्रतीकरूप हैं। जन्मसे लेकर अन्त्येष्टितक पूरे सस्कारोमे हवन-कर्म आवश्यक है। प्राचीन समयम घर-घरमे यज्ञ होते थे, जिनम कपूरके साथ समिधाएँ—सूखी लकडियाँ (ताग, बबूल, उदुम्बर, नीम, अशोक, पीपल, पलाश, चन्दन, देवदारु, आम, तगर, जामुन आदि) एव सूखा हुआ गायका गोबर—इनकी गायके घीके साथ आहुति देनेसे वायुशुद्धि, देवताओके मन्त्रोसे आत्मशुद्धि तथा यज्ञकी भस्म शरीरपर मलनेसे शरीरशुद्धि होती थी और देहका सस्कार भी हो जाता था। इसीलिये हमारी सस्कृतिमें गायत्रीको माता तथा यज्ञको पिता कहा गया है।

सस्कारोम यज्ञोपवीत-सस्कारका असाधारण महत्त्व है। यज्ञोपवीत-सूत्र धारण करनेका तात्पर्य है दायित्वोको स्वीकारना। स्थूल दृष्टिसे देखनेपर यह डोरोका समूहमात्र है पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर कर्तव्यो एव दायित्वोका हार है। दिव्य मन्त्रासे सम्पन्न सूत्रोको माध्यम बनाकर हर समय कन्धेपर धारण करना अर्थात् अपने उत्तरदायित्वको स्मरण रखना है। उच्च भावनाआके साथ वेदमन्त्रोके माध्यमसे, अग्निदेवताकी साक्षीम यज्ञोपवीत धारण किया जाता है जिससे मनुष्यके सुप्त मानसपर एक विशेष छाप पडती है, कि यह सूत्र यज्ञमय एव पवित्र है इसलिये हमे सब प्रकारकी अपवित्रताओसे बचना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य पवित्र जीवन व्यतीत करता है।

मानवकल्याणकी महान् परम्पराओंम जितने भी आयोजन एव अनुष्ठान हैं, उनमे सबसे बडी परम्परा सस्कारा एव पर्वोकी है। सस्कार तथा धर्मानुष्ठानाद्वारा व्यक्ति एव परिवारको ओर पर्व-त्योहारोके माध्यमसे समाजको प्रशिक्षित किया जाता रहा है। हमारे सस्कारोम धर्मके अन्तर्गत उन सिद्धान्ताको स्थान दिया गया है जिनसे हमारा नैतिक एव आध्यात्मिक ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन भी उन्नत बनता है।

इस प्रकार सस्काराका मुख्य उद्दश्य है आध्यात्मिक एव धार्मिक जीवन-भावाकी वृद्धि करना। अत कोई भा सस्कार करानेके लिय समय एव परिस्थितियाक अनुरूप यज्ञ अथवा दीपयज्ञक साथ सस्कार कराय जाते हैं। प्रारम्भम मङ्गलाचरण, स्वस्तिपाठ भगवत्स्मरण पञ्चाङ्गकर्म एव रक्षासूत्र-बन्धनके साथ दवपूजन आदि कराय। तदुपरान्त सस्कारक विशप कार्यका सम्पन्न कराय।

यदि हम अपनी इस ऋषि-परम्पराका बचाना चाहत हे ता हम अपन सस्काराम घुस हुए दापोका दूरकर पूरी श्रद्धासे इस परम्पराका ग्रहण करना हागा। इस प्रकार हमारा हर सस्कार—त्योहार, व्रतात्सव-पर्व आदि न कवल व्यक्तिक लिये बल्कि सम्पूर्ण समाज राष्ट्र विश्व तथा समूच प्राणिवगक लिये हितकारी सिद्ध हा सकता है। जिसका मुख्य उद्देश्य जन-जनम नैतिकता एव सच्चरित्रताक भावाको उत्पन्न करना ही हाना चाहिय ताकि व्यक्ति मानवी गरिमाके अनुरूप श्रेष्ठताके साथ जुडा रह।

सूरिरसि वर्चोधा असि तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयासमति सम क्राम॥

शुक्राऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयासमति सम क्राम॥

(अथर्व० २।११।४ ५)

अर्थात् ह नर! तू विद्वान् है, शाररक्षक है अपनको पहचान। तू शुक्र है, तू तेजस्वी है, आनन्दमय है ज्यातिष्मान् है। अत श्रेष्ठातक पहुँच तथा बराबरवालास आग बढ।

सुसस्कृत समाजकी अभिनव रचनाके लिये हम सस्काराका सस्कृतिका प्रचलन करना ही चाहिय। कवल इसा माध्यमसे जनसाधारणम धर्म विवेक कर्तव्य एव सद्भावको आशाजनक ढगसे जगाया जा सकता है।

सस्कार-सम्पन्नताका अर्थ है सुसस्कारिता सज्जनता शालीनता मर्यादाआका परिपालन वर्जनाआस बचे रहनका अनुशासन आदि। इन्हीं विशपताआके कारण मनुष्य सच्चे अर्थोंम मनुष्य बनता है उसके चिन्तन, चरित्र और व्यवहारम उत्कृष्टताका समावेश रहता है। गुण कर्म स्वभावका दृष्टिसे वह ऊँचाईपर बना रहता है इसलिये सस्कारप्रक्रियाको प्राणवान् बनाना ही आजकी आवश्यकता है।

संस्कारोकी आवश्यकता क्यो ?

(श्रादानानाथजी झुनझुनवाला)

हमारा हर विचार कथन ओर काम हमारे मन-मस्तिष्कपर एक प्रभाव छाडता है जिसे सस्कार कहत हैं और इन सस्काराका समष्टिरूप ही चरित्र कहलाता है। यह चरित्र ही निश्चित करता है कि आनेवाले समयम हमारा उद्धार हागा या पतन केवल जीवित अवस्थाम ही नहा मृत्युक बाद भी।

एक विद्वान्‌न कहा है कि व्यक्तित्व-निर्माणका प्रक्रियाम सकारात्मक चिन्तन आर नतिक एव आध्यात्मिक मूल्याका सयाजन ही सस्कार कहलाता है। इन सस्काराकी जड अतीतम जमती हैं वर्तमानम विकास पाती ह और भविष्यम पल्लवित-पुष्पित होती हैं। हमार नैतिक मूल्या और सास्कृतिक गौरवकी जड अत्यन्त मजबूत हैं लेकिन आज पाश्चात्य सस्कृतिकी चकाचौंध हम विवकहीन बनाती जा रहा है। हमारा युवा-वर्ग पश्चिमकी हर चीजका बिना विवेकके अच्छा कहकर उसका अन्धानुसरण करन लगा है। क्या हम नहीं लगता कि हमारी सस्कृतिकी बागडार वर्तमानम ही हमसे टूटने लगी है तो फिर भविष्यमे इसम कैस फूल खिलगे और फल लगग? हम इस सास्कृतिक प्रदूषणका रोकनेका प्रयास करना है।

हमार ऋषियाने कहा है कि धर्म आचरणमे पलता है एव सबासे व्यापक होता है। अत उन्हाने 'आचार परमो धर्म' की व्यवस्था दी। यह भी कहा कि चरित्र मनुष्यका सबसे बडी शक्ति एव सम्पदा है। अनन्त सम्पदाआका स्वामी होनेपर भी अगर मनुष्य चरित्रहीन है तो वह विपन्न ही माना जायगा। हमारा धर्म हम एव हमार जावनका समग्रताम जीना सिखाता है। धर्मकी शिक्षा दिये बिना किसीका शिक्षित करनेका अर्थ उसे एक चतुर शैतान बनाना है।

जीवन केवल शिक्षाप्राप्तिके लिये नहीं, बल्कि विवेकपूर्वक आत्माके गुणोके विकासके लिये है। प्राप्त शिक्षाका दुरुपयोग न होने पाये, इसके लिये शिक्षित मानवका दीक्षित होना अनिवार्य है। श्रीरामचरितमानसम एक दोहा है, जिसका एक चरण है—*'साधक सिद्ध सुजान।'* प्रश्न है कि जब साधकसे सिद्ध हो गया तो फिर तुलसीदासजीने **'सुजान'** शब्द क्या जोडा? कारण स्पष्ट है—रावण साधकसे **'सिद्ध'** हो चुका था। अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं, लेकिन **'सुजान'** यानी सस्कारित न होनेके कारण अपनी सिद्धियोका दुरपयोग कर बैठा और वह दुरुपयोग ही उसके सर्वनाशका कारण बना। अत सिद्ध होनेके बाद 'सुजान' होना आवश्यक है। आजका सदर्भ ले तो सारे विश्वमे इतनी आणविक शक्ति मौजूद है कि हमारी धरतीको कई-कई बार नष्ट करनेकी क्षमता उसमे है। आणविक शक्तिका दुरुपयोग इतना भयङ्कर एव प्रलयङ्कारी हागा कि सारी सभ्यता एव सस्कृति हमशा-हमेशाके लिये विलुप्त हो जायगी, उसके दुरुपयोगको रोकनेका एकमात्र उपाय सुजनता है।

पिता धन देता है अपने पुत्रको। अगर पुत्र सस्कारित नहीं है तो प्राप्त धनको वह नष्ट कर देगा। पुत्र अगर सस्कारित है और पितासे धन नहीं भी मिलगा तो भी धन पदा कर लेगा। अत पुत्रको केवल धन दनका महत्त्व नहीं सस्कार दनेका महत्त्व है।

हमारे यहाँ सस्कारित और सदाचारी व्यक्ति उसीको कहा गया जिसकी क्रियाएँ विकारके अधीन न हाकर विचारके अधीन होती हैं। जो विवेकशील हाता है उसका इन्द्रियाँ उसके नियन्त्रणम रहती है नहीं तो जिस प्रकार दुष्ट घाडे रथम बैठे व्यक्तिको सकटम डाल देते हैं, उसी प्रकार अनियन्त्रित इन्द्रियाँ मनुष्यको पतनकी ओर ले जाती हैं। जो शरीर, वाणी तथा मनसे सयत है तथा स्वार्थके लिये झुठ नहीं बोलता, ऐसे ही व्यक्तिको सदाचारी कहते हैं।

गुणसे रूपकी दानसे धनकी तथा सदाचारसे कुलकी शोभा हाती है। कमलकी प्रार्थनाके विना ही सूर्य उसे विकसित कर देता है। कुमुदिनीकी प्रार्थनाके बिना ही चन्द्रमा उसे खिला देता है। सदाचारी स्वत ही दूसराके हितके लिये उद्यम करत हैं, उन्ह किसीके द्वारा याचनाकी प्रतीक्षा नहीं रहती। सदाचारी एव सस्कारित व्यक्तिकी पहचान उसके आचरणसे होती है।

एक बार स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहसदेवजीसे किसीने पूछा कि महाराज, एसे लोग भी देखनेमे आते हैं, जिनको पूरी रामायण, श्रीमद्भागवत तथा गीता याद है, फिर भी उनका जीवन पवित्र नहीं है, ऐसा क्यो? इसपर श्रीरामकृष्णदेवजीने कहा कि तुमने निर्मल आकाशम उडते हुए गिद्धको देखा है न! उडता तो निर्मल आकाशमे है, लेकिन उसकी दृष्टि कहाँ है—पृथ्वीपर पडे हुए सडे मासपर। वह जैसे ही पृथ्वीपर पडे सड मासको देखता है, सीधे नीचे गाता लगाता है और सड मासके पास पहुँच जाता है। इसलिये जैसी दृष्टि वैसी ही सृष्टिका निर्माण होता है। इसीलिये सतोने कहा हे कि अपनी दृष्टिको पावन रखो। नेत्र शुद्ध हागे तो हृदयमे **'राम'** प्रवेश करेगा ओर नेत्र अशुद्ध हागे तो **'काम'** प्रवेश करेगा।

हमारा न धनसे काम होता हे न बलसे न नामसे काम होता है और न यशसे। वरन् हमारी सच्चरित्रता ही कठिनाइयाकी सगीन दीवारोको ताडकर अपना रास्ता सुगम बना लेती है। आचरणरहित विचार कितने अच्छे क्या न हा, उन्ह खोटे मोतीकी तरह ही समझना चाहिये। हमारी सच्चरित्रता हमे आलस्य एव अपव्यय-जैसे दुर्गुणासे बचाती है। जैसे फूटे घडेम कुछ भी सञ्चय नहीं होगा वैसे ही दुर्गुणाके कारण कुछ भी उपलब्धि नहीं होगी। सदाचारी व्यक्ति शुद्ध होता है आर जा शुद्ध होता है वही बुद्ध हाता है।

सच्चरित्रवान् एव सस्कारित व्यक्ति समय ओर साधनका सदुपयोग करते हैं और दुश्चरित्र व्यक्ति इनका दुरुपयोग करते हैं। अत हमे चाहिये कि समय और साधनका सदुपयोग करनेक लिये हम चरित्रवान् और सस्कार-सम्पन्न बने।

आचार-विचार और सस्कार

(आचार्य पं० श्रीउमाशंकरजी मिश्र 'रसेन्दु')

वर्तमानम मनुष्यकी बढती हुई भोगवादी कुप्रवृत्तिके कारण आचार-विचार और सस्कारोका उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है एव स्वेच्छाचारकी कुत्सित मनोवृत्ति भी उत्तरोत्तर बढती जा रही है, जिसका दुष्परिणाम अधिकाशत नवयुवको और नवयुवतियोके साथ-साथ अभिभावकोको भी भोगना पड रहा है। ऐसी भयावह परिस्थितिम युवा पीढीको स्वस्थ दिशाबोध प्रदान करनेके लिये आचार-विचार और सस्कारोकी सूक्ष्म मीमासा एव तदनुसार आचरण पथ-प्रदर्शक होगा।

मानवके विधिबोधित क्रिया-कलापोको आचारके नामसे सम्बोधित किया जाता है। आचार-पद्धति ही सदाचार या शिष्टाचार कहलाती है। इसीमे शौचाचार भी अन्तर्निहित है। अपकर्षकी श्रेणीमे आनेवाला कुत्सित और गर्हित व्यवहार स्वेच्छाचार या भ्रष्टाचार कहलाता है। मनीषियोने पवित्र और सात्त्विक आचारको ही धर्मका मूल बताया है—'**धर्ममूलमिद स्मृतम्**'। धर्मका मूल श्रुति-स्मृतिमूलक सदाचार ही है। सदाचारकी महिमा बतलाते हुए कहा गया है—

> आचार परमो धर्म सर्वेषामिति निश्चय ।
> हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति॥
>
> (वसिष्ठस्मृति ६।१)

इतना ही नहीं, षडङ्ग-वेदज्ञानी भी यदि आचारसे हीन हो तो वेद भी उसे पवित्र नहीं बनाते—'**आचारहीन न पुनन्ति वेदा ।**'

आचार-विचार और सस्कार—ये क्रमश उत्तरोत्तर सूक्ष्म और प्रभावशाली हैं। सूक्ष्मका प्रभाव स्थूलसे अधिक होता है। इसीलिये सस्कारसे विचारशुद्धि और विचारशुद्धिसे आचारशुद्धि होती है। शुद्धाचार-सदाचारसे लोक-व्यवहार सुरभित हो जाता है। इस प्रकार इन सबके मूलमे सस्कारोकी ही प्रतिष्ठा है।

सात्त्विक भाव-वृत्तियोके मन्थनसे समुद्भूत विचार-पीयूष मानव-जगत्को जीवन्तता प्रदान करता है विचारोके अनुसार ही आचार-व्यवहार सम्पादित होता है। सत्सङ्गके सस्कारजनित विचार व्यवहार-जगत्मे सौख्य सौशील्य मुदिता तथा प्रियता-जैसे अनेक सद्गुणोका विकास करते हैं।

हमारे ऋषियो-मुनियोने विचारधाराओके परिशोधनका उत्तम उपाय भी हमे प्रदान किया है, जिसे विवेककी सज्ञा दी गयी है। कर्तव्याकर्तव्यमे विवेकका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विवेकको फलशालिनी क्रियाका अधिष्ठान कहा गया है। शास्त्र-श्रवण, सत्सङ्ग ही विवेकका आभूषण है। जो व्यक्ति स्पृहणीय गुण-गणसम्पन्न महात्माओ, मनीषियों एव सत्पुरुषोद्वारा सेवित सन्मार्गका अनुकरण करते हुए चलनेका सत्प्रयास करता है, उसकी विविध बाधाएँ उपशमित हो जाती हैं। शास्त्रानुसार सस्कारसम्पन्न आचरण करनेवाले और वासनानुसार व्यवहार करनेवाले मानवके स्वभाव और विचार पृथक्-पृथक् होते हैं। पहलेकी जीवनचर्या नियन्त्रित और दूसरेकी जीवनचर्या अनियन्त्रित होती है। तेज और तिमिरके समान उनका कभी भी समान अधिकरण नहीं हो सकता। आजकल समाजमे अनेक भ्रामक विचारोका व्यापक कुप्रसार किया जा रहा है, जो हमारी सस्कृतिको क्षत-विक्षत करनेपर तुले हुए हैं। शास्त्रीय विचारधाराओसे ही स्वार्थमयी रागमयी एव पाशविक विचारधाराओका निवारण किया जा सकता है।

मानव-जीवनमे सस्कारोका सनातन कालसे ही अतिशय महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जैसे विविध रत्नोमे निर्मलीकरण-सस्कारद्वारा चमत्कृति—प्रभा उत्पन्न की जाती है, वैसे ही सस्कारोद्वारा वर्णादिकोमे भी आचार-विचारकी दिव्य ज्योत्स्ना प्रस्फुटित की जाती है। बाल्यावस्थाके सस्कार अमिट होते हैं। मलापनयन एव अतिशयाधानद्वारा बालकमे वैशिष्ट्य जाग्रत् किया जाता है।

सक्षेपमे हमारे श्रुति-स्मृतिमूलक सस्कार देह, इन्द्रिय मन बुद्धि और आत्माका मलापनयन कर उनमे अतिशयाधान करते हुए किञ्चित् हीनाङ्गपूर्ति कर उन्हे विमल कर देते हैं। सस्कारोकी उपेक्षा करनेसे समाजमे उच्छृङ्खलताकी वृद्धि हो जाती है, जिसका दुष्परिणाम सर्वगोचर एव सर्वविदित है।

संस्कारोका नैतिक स्वरूप

(डॉ० श्रीअशोककुमारजी पण्ड्या, डी०लिट्०)

कलको अच्छे आजम बदलनेके लिय संस्कार दिशाबोध हैं। आत्यन्तिक कल्याण प्राप्त करना मानव-जीवनका अभीष्ट है और कल्याणकी यह सकल्पना ही संस्कार है।

एकसे अनेककी ओर प्रवृत्त यह ससार यदि संस्कार-शून्य हो जाय तो द्वैतस एककी ओरका समस्त आभामण्डल तिमिरतुल्य हो जाय। वस्तुत इसी ब्रह्मतेजको संस्काराके माध्यमसे मानवदेहम प्रतिष्ठापित कर जीवनको प्रकाशित एव अनुकरणीय निर्मित किया जाना चाहिये। यथा—

'मनुर्भव जनय दैव्य जनम्।'

अर्थात् मनुष्य बनो और अपने भीतर दिव्य जन्म ग्रहण करो। यह दिव्यता ही दवत्व है और यह देवत्व ही इस चराचर सृष्टिका अवलम्बन है।

आर्य-सस्कृतिमे संस्काराकी महत्ता सर्वोपरि है। यह न केवल कोरी कल्पना है और न ही मिथक, वरन् सत्य और यथार्थकी नींवपर खडा दिव्य भवन है, जहाँसे आदर्श तरङ्गित होता है, जो मानवदेहम सगृहीत होकर शीलके रूपमें आचरणम परिणत होता है। तब यह सुसस्कृत जीवन **'मधुमतीं वाचमुदेयम्'** (अथर्व० १६। २। २) अर्थात् 'सदा मधुर वचन बोले' के रूपमे आत्मानुशासन प्रदान करता है। संस्कारोका यह नैतिक स्वरूप है, जो विश्वपटलपर भारतीय सस्कृतिकी थाती है।

भारतको छोड विश्वके किसी भी भू-भागम 'गर्भाधान'-को संस्कारकी सज्ञासे विभूपित नहीं किया गया है। इसे सामान्यत देहधर्म ही स्वीकार किया गया है। क्या यह मात्र देहधर्म है? यदि ऐसा है तो पशु-पक्षियो और हममे अन्तर ही क्या रहा?

जिस देवभूमि भारतम सङ्कल्पमात्रसे देवी पार्वती गणेशको उत्पन्न कर सकती हैं पातिव्रत्यसे सावित्री सौ पुत्रोका वरदान पा सकती हैं, कुन्तीके लिये सूर्यतेज सहनीय हो सकता है, मछली मत्स्यगन्धा उत्पन्न कर सकती है और सीता स्वय भूमिजा बन सकती हैं, उस भारतभूमिमे गर्भाधान मात्र देहधर्म बनकर नहीं रह सकता। तथापि इसे स्त्री-पुरुषके ओजसे पृथक् नहीं किया जा सकता है अत इसे संस्कारके रूपमे प्रतिष्ठित किया गया है और 'विवाह' इसे नैतिक बल प्रदान करता है। यहाँ विवाह भी एक संस्कार है।

भारतीय सस्कृतिमे संस्कारोके नैतिक स्वरूपकी जब चर्चा होती है तो पश्चिमवाले दाँतोतले अङ्गुली दबा लेते हैं।

यहाँ हर संस्कारको मनानेक पीछे जहाँ उत्सव और आनन्दका उल्लास रहता है, वहीं उसम गूढ रहस्य भी छिपा रहता है। मूलत देह-पिण्डरूपी शिशुको परिमार्जित करना संस्कारोका ध्येय है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैना द्विजानामपमृज्यते॥

(मनुस्मृति २। २७)

जातकर्म, चूडाकरण उपनयन आदि संस्कारासे बालकके गार्भिक एव बैजिक दोष समाप्त हो जात हैं। इसी प्रकार याज्ञवल्क्यने भी संस्कारोसे दोप दूर होना बताया है—

'एवमेन शम याति बीजगर्भसमुद्भवम्।'

(आचाराध्याय २। १३)

संस्कार मूलत बीजको सौष्ठव प्रदान करते हैं, जो अङ्कुरित हो शिशुका शीलवर्द्धन करते हैं तथा उसे मानवमहिमास मण्डित होनेमे सहायक होते हैं। गर्भावस्थासे मृत्युतक प्राय सोलह संस्कारोका वर्णन हमारी स्मृतियोम मिलता है, जिनसे दोपोका परिमार्जन तथा शौचका आवर्तन हाता है। जन्मोत्तर संस्कारोम नवजात शिशुके नालोच्छेदन अर्थात् जातकर्मसे लेकर ग्यारहवे दिन नामकरण, चौथे माह सूर्यदर्शन अर्थात् निष्क्रमण, छठे माह अन्नप्राशन, पहले या तीसर वर्ष चूडाकर्म (शिखाधारण)-संस्कार किया जाता है। तदनन्तर आठवे वर्षम उपनयन (यज्ञोपवीत), सोलहवे वर्षम केशान्त तथा विद्याध्ययन कर स्नातक हो लौटनेपर समावर्तन-संस्कारसे परिमार्जित कर पच्चीसव वर्षम विवाह-संस्कारकर सद्गृहस्थकी भूमिका सौंपते हुए उसे नव सृजनकी नैतिक आज्ञा प्रदान की जाती है। ये ही हैं मोटे तौरपर संस्कारोके परम्परागत नैतिक स्वरूप, जो उत्सवके रूपमे प्रतिपादित किये जाते हैं तथा सामूहिक-सामाजिक उपस्थिति एव भागीदारीसे सुशोभित हो सरक्षण प्रदान करते हें।

वस्तुत यह सारा आत्मानुशासन हममे शीलकी अभिवृद्धि करता है, जो इस मनुष्य-जीवनका परम लक्ष्य

है। तभी तो सुपुत्रका अपने बीच पाकर प्रज्ञा मुदित होती है और कहती है—

'सुपुत्र सममो रस।'

और यही शील माता-पिता तथा कुलको गौरवान्वित करता है—

सुशीलो मातृपुण्येन पितृपुण्येन पण्डित।
औदार्यं वशपुण्येन आत्मपुण्याद् धनार्जन॥

विवाहेतर जीवनम शीलके रूपम सद्गृहस्थके लिये दया, क्षान्ति अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य तथा अस्पृहा इत्यादि आठ आत्मगुणसस्कारोका अनुपालन अभीष्ट है। तभी वह सद्गृहस्थ कहलाता है।

धैर्य क्षमा दान, सहिष्णुता अस्तेय तथा अतिथि-सत्कार—ये सभी आत्मनियन्त्रित सस्कार हैं, जिनसे मनुष्य स्वयको स्वस्तिहेतु निरूपित करता है तथा कल्याणका सवाहक अभिसज्ञित होता है। यही शील है तथा यह शील ही मनुष्यको मनुष्यत्व प्रदान करता है। तभी तो कहा है— 'शील सर्वस्य भूषणम्' (गरुडपुराण १।११३।१३)। भर्तृहरिने तो यहाँतक कहा है—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधि कुल्यायते तत्क्षणा-
न्मेरु स्वल्पशिलायते मृगपति सद्य कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरस पीयूषवर्षायते
यस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतम शील समुन्मीलति॥
(नीतिशतक श्लोक १०९)

अर्थात् जिसके शरीरम अखिल विश्वका अत्यन्त प्रिय 'शील' प्रतिष्ठित है, उसके लिये अग्नि जलके समान, समुद्र नदीके समान, इसी प्रकार सुमेरु शिलाके सिह मृगके, सर्प पुष्पमालाके समान तथा विष भी अमृतकी वर्षा करनेवाला हो जाता है। सुसस्कारोसे इस शीलको सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। अत सस्कार ही इसकी सुलभ सीढी है।

भारत सस्कारभूमि है। यह सुपुत्रवती है। सस्कारोकी दिव्यता इसकी सतानम अनुस्यूत है। सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके एक-एक आचरणमे यह शील कीर्तिमान है।

रामायणका प्रसङ्ग है। सीता-हरणके बाद श्रीराम लक्ष्मणके साथ पम्पा और पम्पासे किष्किन्धा पहुँचते है। सुग्रीवसे उन्हे जानकारी मिलती है कि कुछ समय पूर्व आकाशमार्गसे कोई भयङ्कर राक्षस एक स्त्रीको बलात् लिये जा रहा था। छटपटाती हुई उस देवीने मुझे देख अपना उत्तरीय तथा कुछ आभूषण गिरा दिये। हमने उन्हे सँजोकर रखा है। मैं उन्हे अभी लाता हूँ आप पहचानिये और जैसे हो

श्रीरामने उन्हे देखा, भावाविभूत हो लक्ष्मणसे बोले—

पश्य लक्ष्मण वैदेह्या सत्यक्त ह्रियमाणया।
उत्तरीयमिद भूमौ शरीराद् भूषणानि च॥
(वा०रा० ४।६।२०)

'लक्ष्मण! देखो राक्षसद्वारा हरी जाती हुई विदेहनन्दिनी सीताने यह उत्तरीय तथा ये गहने अपने शरीरसे उतारकर पृथ्वीपर डाल दिये थे।'

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाह जानामि केयूरे नाह जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्य पादाभिवन्दनात्।
(वा०रा० ४।६।२२ २३)

भैया! मैं इन बाजूबन्दोको तो नहीं जानता और न ही इन कुण्डलोको कि ये किसके है किंतु प्रतिदिन भाभीके चरणोमे प्रणाम करनेके कारण मैं इन दोनो नूपुरोको अवश्य पहचानता हूँ।

वाह रे नररत्न! नित्य सानिध्यके उपरान्त भी कभी सीताजीके पाँवोसे ऊपर अपनी दृष्टि नहीं की। ऐसे शेषावतार लक्ष्मणजीको साक्षात् प्रणाम, शत्-शत् प्रणाम। यह है सस्कारका अमृतनिर्झर, जिसे आज भी पीते हम अघाते नहीं। सस्कारकी ऐसी प्रत्यक्ष मीमासा अन्यत्र कहाँ मिलेगी? धन्य है भारत जो सस्कारोकी अकूत खान है।

सस्कार मनुष्यके धर्म आचरण रहन-सहन और

आस-पास—सभीको प्रभावित करते हैं। इस प्रभावको गोस्वामी तुलसीदासजीके वर्णनमें देखें—

भक्तशिरोमणि हनुमान्‌जी सीतामैयाकी खोजमें लङ्का जाते हैं। रावणके भव्य भवनमें माताजीको न देख, अन्यत्र ढूँढ़ने चले। तभी उन्हें एक सुन्दर महल दिखायी दिया जहाँ भगवान्‌का एक अलग मन्दिर बना हुआ था तथा रामायुधसे अङ्कित था साथ ही वहाँ नन्हे-नन्हे तुलसीके पौधोंका समूह था, जिसे देख आञ्जनेय हर्षित हुए और विचार करने लगे—लङ्का तो राक्षसोंकी निवास-स्थली है, यहाँ सज्जनोंका निवास कैसे?

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

(रा०च०मा० ५।६।१)

और उन्होंने विभीषणजीसे बात करनेका मन बनाया, क्योंकि—'साधु ते होइ न कारज हानी॥'

अतः सज्जनता छिप नहीं सकती क्योंकि वह संस्कारजन्य है। संस्कारोंका सौरभ कभी धूमिल नहीं होता, क्योंकि न तो सीमाएँ इसे बाँध सकती हैं, न दिशाएँ रोक सकती हैं।

इसी कारण नचिकेताके यमद्वारपर भूखे-प्यासे बैठे रहनेपर यमराजकी पत्नी बड़ी दुःखित होती हैं तथा पतिसे कहती हैं—'जिसके घरपर अतिथि ब्राह्मण भूखा बैठा रहता है उसके सब सुख छिन जाते हैं तथा उसकी वाणीसे सौन्दर्य सत्य और माधुर्य निकल जाते हैं। यज्ञादिक फल भी क्षीण हो जाते हैं तथा अतिथि-असत्कारसे पूर्वार्जित पुण्योंसे प्राप्त फलरूप पुत्र और पशु आदि भी नष्ट हो जाते हैं—

आशाप्रतीक्षे सङ्गतः सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूःश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥

(कठोपनिषद् १।१।८)

अतिथि-असत्कारके दोषसे मुक्त होनेके लिये स्वयं यमराजने पाद्य-अर्घ्यसे नचिकेताका सत्कार किया और

क्षमा-याचना करते हुए प्रत्येक प्रतीक्षित रात्रिके लिये एक-एक वर माँगनेका इस प्रकार आग्रह किया—

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥

(कठोपनिषद् १।१।९)

यह भी संस्कारोंकी ही शक्ति है कि नचिकेता सदेह मृत्युके द्वारतक पहुँच गये तथा उन्होंने गहन ज्ञान अर्जित किया। पिताके आज्ञापालनके सुसंस्कारने उन्हें यह अप्राप्य लाभ अर्जित करवाया।

संस्कारसे आचरण और आचरणसे चरित्र संवर्द्धित होता है। संस्कारसिञ्चित सत्यके धर्माचरणसे पाण्डवराज युधिष्ठिर सदेह स्वर्गारोहण कर सके। अतः संस्कारोंको आचरणमें उतारनेकी महती आवश्यकता है।

हमारे शास्त्रोंने हमें सावधान किया है कि हम सुसंस्कृत हों, स्थायी संस्कारोंको पुष्ट करें तथा आचरणमें शुचिता लायें।

संस्कारोंकी उपयोगिता

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र एम्०ए०, पी एच्०डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, पूर्वकुलपति)

शास्त्रविहित सम्यक् क्रियाविशेपको 'सस्कार' कहते हैं। सस्कारके द्वारा शारीरिक तथा मानसिक मलाका अपाकरण हाता है और उनम विशिष्ट गुणाका आधान किया जाता है। उदाहरणके लिय खानसे निकल सोनका सस्कारक द्वारा सुसस्कृत कर उसकी मलिनताको दूर करते हैं और उसको चमकीला बनाकर आभूपणाक लिये उपयागी वनाते हैं। इसी प्रकार काष्ठकी किसी वस्तुको या रेखाचित्रका उपयुक्त रगाके द्वारा आकर्पक एव सुन्दर बनाकर इसमे गुणाधान कर उसके महत्त्वको बढाते हैं। इस प्रकार सस्कारसे मलापनयन और अतिशयाधान दोना सम्पादित होते हैं। प्राकृतिक जड पदार्थोंकी तरह सस्कारासे मनुष्यके भी दोपोका अपाकरण और उसम विशिष्ट गुणाका अतिशयाधान किया जाता है।

सस्कारके द्वारा मनुष्यके जिन मलाका अपाकरण होता है, उनके विपयमे भी कुछ विमर्श करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। विभिन्न व्याधियाके मूल[1] तथा शारीरिक विकारोको मल कहते हैं।

इन मलोका परिशोधन सस्कारासे हाता है। मनुष्यके शारीरिक मल है—१-वसा—चर्बी, २-वीर्य, ३-रक्त, ४-मज्जा, ५-मूत्र, ६-विष्ठा, ७-नेटा, ८-कानका मैल ९-कफ, १०-आँसू, ११-दूपिका—नेत्रमल तथा १२-स्वेद—ये सभी बारह शारीरिक मल समुचित सस्कारसे हटाये जाते हैं। **'मलते धारयति शारीरिकदोपान् इति मल ।'** 'मल्' धातुसे 'अच्' प्रत्यय करनेपर 'मल' शब्द निष्पन्न होता है।

भगवान् मनुने कहा है कि दिनमे किये गये कर्मोंके मलको सायकालीन सध्या-वन्दन-सस्कारसे निर्मूल करते हैं।[2]

इन मलाका सम्यक् परिशोधन करनेसे शारीरिक और मानसिक स्वस्थताके साथ-साथ शारीरिक सुन्दरता भी बढती है। इस प्रकार सस्कारजन्य गुणाधान भी शरीरमें होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ और भी पारिभापिक मल हैं—क्षात्राचितकर्मका परित्याग कर क्षत्रियाद्वारा भिक्षाचरण उनके लिये मल है। ब्राह्मणाके द्वारा वेद-शास्त्राके विपरीत आचरण करना उनके लिये मल है।[3]

विहिताचारके अनुपालन करनेसे ये मल सभी मनुष्योंमें होते हैं, जिनका विहित आचरणासे अपाकरण करनेपर तत्सस्कारजन्य गुणाका उनम अतिशयाधान होता है। इसमे सुस्पष्ट है कि विहित सस्कारासे मलापनयन एव अतिशयाधान दोना अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

इसलिये भगवान् मनुने गर्भाधानसे लेकर श्मशान (अन्त्येष्टि)-पर्यन्त सभी सस्कारोका अवश्य कर्तव्यत्वेन निर्देश किया है।[4] वेदादि शास्त्रविहित मार्गसे जिसके गर्भाधान, पुसवन आदि सस्कार होते हैं, उन द्विजोके गर्भ वीर्य आदि सभी दाप समूल नष्ट हो जाते हैं।[5]

इस तरहके अन्य सस्कारोसे भी मनुष्याको जीवनके सन्मार्गपर आरूढ किया जाता है। इससे सस्कारोका अतीव महत्त्व सिद्ध होता है।

'सस्कार' सस्कृतका शब्द है। इसके व्युत्पत्तिजन्य अर्थसे भी यह तत्त्व प्रकट होता है। **'सम्'** उपसर्गपूर्वक **'कृ'** धातुसे भूपण[6] अर्थमे 'सुट्' का आगम तथा 'घञ्' प्रत्यय होनेसे 'सस्कार' शब्द निष्पन्न होता है। इस तरह ऐहलौकिक, पारलौकिक धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनीतिक अभ्युदयके समुपयुक्त देह, इन्द्रिय मन, बुद्धि अहकार आदिके भूपणभूत सम्यक् सदाचरण सस्कार हैं। इस प्रकारके सस्कारासे शारीरिक मानसिक आदि सभी परिशुद्धियाँ होती हैं, जिनसे मनुष्य प्रेय और श्रेय दोनोको प्राप्त करता है। इन सस्कारोका प्रभाव चूँकि अन्त करणपर भी पडता है, अत उत्तम सस्कारासे अन्त करणको उत्कृष्ट बनाना चाहिये और

१ सर्वेपामेव रोगाणा निदान कुपिता मला। तत् प्रकोपस्य तु प्रोक्त विविधाहितसेवनम्॥ (माधवनिदान)
२ पश्चिमा तु समासीनो मल हन्ति दिवाकृतम्॥ (मनु० २।१०२)
३ क्षत्रियस्य मल भैक्ष्य ब्राह्मणस्याश्रुत मलम्। (महाभारत कर्णपर्व ४५।२३)
४ निपेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधि । तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥ (मनु० २।१६)
५ गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै । बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥ (मनु० २।२७)
६ 'सपरिभ्या करोतौ भूपणे (पा०सू० ६।१।१३७) सुट्कात्पूर्व (६।१।१३५)

निकृष्ट सस्कारास उसे बचाना चाहिये। इसलिये शास्त्रका आदेश है कि जिसके सोलह या अडतालीस सस्कार यथाविधि सम्पन्न होते हैं, वह ब्राह्मपदको प्राप्त होता है—**'यस्यैते षोडश* अष्टचत्वारिंशद्वा सम्यक्सस्कारा भवन्ति स ब्रह्मण सायुज्य सलोकत्ता प्राप्नोति।'**

इनमे कुछ सत्कर्मानुष्ठानरूपी सस्कारास अज्ञानादि दोषोंका अपनयन हाता है और कतिपय विशिष्ट सस्कारकर्मोसे पवित्रता सद्विद्या आदि अतिशयाधान होता है। इस तरह सस्कार ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियोके अद्वितीय साधन हैं।

गर्भाधानादि सस्कारोके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष—दोनो फल समयपर दृष्टिगोचर होते हैं। अभीष्ट फलके लिये सस्कारोका समुचित विधान होना चाहिये।

त्रिकालज्ञ मनुजीका स्पष्ट निर्देश है कि विहित मन्त्राके द्वारा गर्भाधानके समय दम्पतीको विचार करना चाहिये कि रजोदर्शनस लेकर सोलह अहोरात्र जो स्वाभाविक ऋतुकाल है, उनमे प्रथम चार रात गर्भाधानके लिये सर्वथा वर्जित हैं। अवशिष्ट बारह रात्रियाम ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियाँ भी निषिद्ध हैं। अतिरिक्त प्रशस्त दस रात्रियामे युग्म (सम—छठीं, आठवीं इत्यादि) रात्रियामे गर्भाधान करनेसे पुत्र और अयुग्म (पाँचवीं, सातवीं, नवमी पद्रहवीं) रात्रियाम गर्भाधानसे कन्या उत्पन्न होती है।** इस तरह सविधि गर्भाधान-सस्कार सतानका नियामक और नियन्त्रक भी होता है। इसके सम्यक् अनुपालनसे नियोजनरूप समस्याका अनायास समाधान भी हो जाता है।

इस प्रकार सभी अन्य सस्कारोके भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष फल सविस्तर मनुस्मृति आश्वलायनगृह्यसूत्र आदि ग्रन्थामे वर्णित हैं।

सभ्यता, सस्कृति और संस्कार

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीअमरनाथजी शुक्ल)

इस ससारमे अन्य जीवधारियोकी अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है। अन्य जीवाका जन्मके बाद यथावत् प्राकृतिक विकास होता है, पर मानवशिशुमे जन्मसे पूर्व गर्भम ही सस्कारोका बीजारोपण आरम्भ हो जाता है और जन्मके बाद विविध प्रकारके सस्काराके कारण मन और बुद्धिका विकास होनेसे अन्य प्राणियोकी अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता सर्वोपरि हो जाती है।

शरीर, मन एव वस्तुओकी शुद्धिके लिये समय-समयपर जो शास्त्रनिर्दिष्ट कार्य किये जाते हैं उन्हे सस्कार कहते हैं। जीवनको सस्कारित करनेके साथ-साथ जड पदार्थों—जैसे जीर्ण मन्दिर, भवन आदिक पुनरुद्धारको भी सस्कार कहते हैं। जिस कार्यसे चैतन्य तथा जडका परिमार्जन हो, उसके विकासका कारण हो, वह सस्कार कहलाता है।

मानव-जीवन-यात्राकी उपलब्धिके दो भाग हैं—सभ्यता और सस्कृति। सभ्यताका लक्षण है कि कोई व्यक्ति सभा या समाजमे दूसराके साथ कैसा व्यवहार करता है? बात-व्यवहार, खान-पान तथा उठने-बैठनेके तौर-तरीकोसे सभ्यताका पता चलता है। सभ्यताका आकलन व्यक्तिके व्यवहारसे होता है और सस्कृतिका आकलन उसकी आन्तरिक भावनाओसे। सभ्यता शरीर है तो सस्कृति उसकी आत्मा।

मानवीय साधनाके पाँच सोपान हैं—शरीर, आत्मा, मन, बुद्धि तथा अध्यात्म। इन्हीं साधनाओकी परिणतिका नाम है सस्कृति। प्रत्यक देशकी सास्कृतिक भिन्नताके कारणके मूलम है सस्कारोकी भिन्नता। तात्पर्य यह है कि सस्काराके कारण ही सास्कृतिक पृष्ठभूमि निर्मित होती है। इस प्रकार हम देखते हैं

* १-गर्भाधान २-गर्भस्थिरीकरण—गर्भलम्भन (गर्भो लभ्यते येन कर्मणा तत् गर्भलम्भन नाम कर्म) ३ पुसवन (पुमान् येन सम्पद्यते लब्धो गर्भ तत् पुसवनं नाम कर्म) ४ अवरोधतन—अनवलोभन (येन सस्कृत सन् गर्भो नावलुभ्यते नावस्रस्यते तदनवलोभन नाम कर्म) ५-सीमन्तोन्नयन (सीमन्त केशवेश यस्मिन् कर्मणि उन्नीयते तत् सीमन्तोन्नयन नाम कर्म) ६-जातकर्म, ७-निष्क्रमण ८-नामकरण ९-अन्नप्राशन १०-चौलकर्म—चूडाकरण, ११-कर्णवेध १२-उपनयन १३-वेदारम्भ—सावित्रीग्रहण १४-समावर्तन १५-विवाह १६-अन्त्येष्टि—श्मशानान्तसस्कार। आश्वलायनगृह्यसूत्रमे प्रथम बारहवीं कण्डिकासे लेकर चौबीसवीं कण्डिकातक विहित मन्त्राक साथ इन सस्कारोका सविधि प्रतिपादन किया गया है। कहीं-कहीं इन सस्काराक नामामे कुछ अन्तर भी है।

** ऋतु स्वाभाविक स्त्रीणा रात्रय षोडश स्मृता। चतुर्भिरितरै सार्धमहोभि सद्विगर्हितै॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या। त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रय॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी सविशेदार्तवे स्त्रियम्॥ (मनु० ३। ४६—४८)

कि सभ्यता, सस्कृति एव सस्कारका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध हे। भारतीय सस्कृतिका मूलाधार धर्म है। सद्विचार, सत्कार्य सद्व्यवहार, जो कुछ भी सात्त्विक रूपसे विचारणीय करणीय, धारणीय है, वही धर्म है। ऐसे ही आचरणासे भारतीय सस्कृतिका निर्माण हुआ है और य आचरण हमे जीवनम भिन्न-भिन्न सस्कारासे प्राप्त होते हैं। ये सस्कार हम शास्त्राचार, देशाचार और लोकाचारसे प्राप्त होते रहते हैं।

शास्त्रानुसार हमारे जीवनम सस्काराकी भूमिका गर्भाधानसे प्रारम्भ हाकर मृत्युपरान्त अन्त्येष्टितक चलती रहती है। इन सस्काराम वैज्ञानिक दृष्टि भी है। गर्भकालमे ही माताके आचार-विचारका प्रभाव गर्भस्थित जीवपर पडने लगता है। जीवक सस्कारित हानेका यह प्रथम सोपान है। भारतीय सस्कृतिम शास्त्रानुसार १६ सस्काराका विधान हे। हम देखते हैं कि जीवके जन्मके बाद उम्रके अनुसार जैसे-जैसे विकास होता हे, वैसे-वैसे क्रमानुसार स्वय उसक समाज तथा राष्ट्रके हितार्थ उसे सस्कारासे सम्पन्न किया जाता है। यदि समय-समयपर उसे ये सस्कार न मिलते रह तो वह सस्कारहीन हो जाता है।

सस्कारवान् बनानकी प्रथम गुरु माता होती है। विद्यागुरु उसके जीवनमे शिक्षाके साथ-साथ सुसस्काराकी भावना भरता हे। शिक्षित होनके साथ यदि उसमे अच्छे सस्कार न हुए तो शिक्षा व्यर्थ है।

मूलरूपसे कोई भी वस्तु—जड या चेतन अपने आन्तरिक गुणोम प्रकट नहीं होती है। उसे सस्कारित करनेके बाद ही उसके यथार्थ स्वरूप और गुणाका प्रकटीकरण होता है। खदानसे निकली हुई धातु या पत्थर क्या है? यह तत्काल पता नहीं चलता। जब उसे साफ करक तराशने तपानेके सस्कारकी प्रक्रियासे गुजारा जाता है, तब पता चलता है कि हीरा है सोना है, लाहा है आदि। एक अनगढ पड हुए पत्थरको जव कलाकार अपनी छेनी-हथौडीसे तराशकर सस्कारित करता है तो उसमसे भगवान्का दिव्य स्वरूप प्रकट हा जाता है वह पूजनीय हो जाता है। घूमती हुई चाकपर रख हुए मिट्टीक लोदेका जब कुम्हार अपनी बुद्धिके अनुसार सस्कारित करता है ता उसमस विभिन्न रूप प्रकट हाते हैं। यढई काष्ठको सस्कारित कर उस मज कुर्सी चौखट दरवाजका रूप दकर मूल्यवान् वना देता है। भगवान् जगन्नाथ बलराम तथा सुभद्राका विग्रह तथा रथ काष्ठशिल्पीके हाथा सस्कारित हाकर भगवान्की महिमा प्राप्त करता है। इसी प्रकार जब किसी पशु-पक्षीको विशेष प्रकारसे सस्कारित किया जाता है तो उसमे नया गुण प्रकट हो जाता है। टे-टे बोलनेवाला तोता 'राम-राम' बोलने लगता है। शेर, भालू-जसे हिसक पशु सस्कार पाकर अपने मूल स्वभावके विपरीत पालतू बन जाते हैं।

तात्पर्य यह कि सस्कार वह तत्त्व है, जिसका सयाग पाकर जीव या वस्तु सभ्य, श्रेष्ठ, सुन्दर मूल्यवान् तथा उपयागी हो जाती हे। सस्कारवान् व्यक्ति ही अपन श्रेष्ठ सस्काराक कारण अपने देशकी सस्कृतिको अक्षुण्ण बनाये रखत हैं तथा अपने आचरणसे समाजमे सभ्य एव सुसस्कृत होनेका मान पाते हैं—ऐसा होनेक लिये सर्वप्रथम सस्कारसम्पन्न होना आवश्यक ह। सस्कारसम्पन्न व्यक्ति अपने विकासके साथ-साथ नैतिक, धार्मिक आध्यात्मिक आस्थाओके प्रति समर्पित हानेके कारण अपने परिवेश तथा समाजके लिय प्ररक तथा मार्गदर्शक बन जाता है और सर्वत्र आदर प्राप्त करता हे।

इस वैश्विक उदारीकरणके युगमे भौतिक विकासकी चाहे जो उपलब्धियाँ हा, पर पारिवारिक रिश्ताकी सवेदना मान-मर्यादाकी रक्षा व्यावहारिक, वैचारिक, चारित्रिक धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र जिस अधोगतिको जा रहा है, उसके मूलम यही है कि हमम धर्म, अध्यात्म नैतिकता सस्कृति तथा सस्काराका सज्ञान नहीं रह गया। सस्कारोके ह्रासक कारण सस्कृतिका भी ह्रास हा रहा है। विधिका प्राकृतिक विधान है कि जिन सस्कारासे सम्पन्न हाकर हम अपने जीवन, समाज तथा राष्ट्रका उत्थान कर सकते हैं उन्हीं सस्कारोसे विमुखता तथा दूरी पतनकी ओर ले जा रही है। सस्कारहीनताके कारण जब हम सदाचारका ओर उन्मुख न होगे तो निश्चय ही कदाचारकी ओर बढेगे तब धर्म सभ्यता तथा सस्कृतिका अवमूल्यन होगा।

इसलिय जिन सास्कृतिक अवधारणाआकी सम्पन्नताके लिये हमारे यहाँ सस्काराका विधान हुआ है, यदि हम उन्हींके अनुसार अपने मन विचार और कर्मको बनायग तभी हम अपने धर्म तथा सस्कृतिकी रक्षा कर सकंगे। अत हमें जीवनम होनेवाले सस्कारोके प्रति निष्ठावान् होना चाहिये।

सस्कार वह मूल तत्त्व है जा जीव और जडका अदर तथा वाहरसे परिमार्जित कर उसक गुण और स्वरूपको शुभ तथा श्रेष्ठ बनाता है इससे शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास हाता है।

संस्कार और सदाचार

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया बी०एस्-सी० एल्-एल्०बी० एम्०ए० (संस्कृत) पी-एच्०डी०)

'संस्कार मनुष्यके आचार-विचार और क्रियाकलापको सत्से सम्पृक्त रखनेका एक विशिष्ट साधन है। इससे मनुष्यके आत्मिक जीवनका विस्तार, मानसिक विकास और भौतिक समृद्धि होती है। संस्कारमें सदाचार गर्भित है। वास्तवमें जहाँ संस्कार है, वहाँ सदाचार है और जहाँ सदाचार है वहाँ संस्कार है। इन दोनोंका सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। दोनों ही जीवनमूल्योंके स्थापत्यमें तथा समाज और राष्ट्रके सर्वतोमुखी विकासमें परोक्ष-अपरोक्षरूपसे अहम भूमिका निभाते हैं।

'कृ' धातुमें 'सम्' उपसर्ग और 'घञ्' प्रत्यय लगनेपर 'संस्कार' शब्द बनता है। संस्कारका शाब्दिक अर्थ है—पूरा करना, सुधारना, सज्जित करना, माँजकर चमकाना, शृङ्गार एवं सजावट आदि। इस प्रकार संस्कार मानव-जीवनको परिमार्जित, परिष्कृत और सुव्यवस्थित रखनेका एक उपक्रम है। धर्मशास्त्रोंमें संस्कार शब्द यज्ञमें पवित्र या निर्मल कार्यके अर्थमें प्रयुक्त है। इस दृष्टिसे संस्कार वह है, जिससे कोई पदार्थ एवं व्यक्ति किसी कार्यके लिये योग्य होता है अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ एवं रीतियाँ हैं, जो मनुष्यको योग्यता प्रदान करती हैं। वास्तवमें संस्कार एक विलक्षण योग्यता है, जो शास्त्रविहित क्रियाओंसे उत्पन्न होती है।

धर्मसूत्रों एवं शास्त्रोंमें संस्कारोंकी संख्या कहीं चालीस, कहीं अठारह, कहीं पचीस और कहीं सोलह मानी गयी है, किंतु इन सबमें मुख्यरूपसे सोलह संस्कारोंका ही उल्लेख है, जो गर्भाधानसे प्रारम्भ होकर अन्त्येष्टितक हैं। मनुष्यके गर्भमें आनेसे लेकर मृत्युपर्यन्त उसके जीवनके मुख्यतः सोलह पड़ाव होते हैं। जीवनका एक-एक पड़ाव एक-एक संस्कारसे संस्कारित रहता है। अस्तु, संस्कारबद्ध जीवन इहलोक और परलोक दोनोंके लिये कल्याणप्रद है।

प्रभुका सान्निध्य, सामीप्य प्राप्त करना ही प्रत्येक मनुष्यका परम लक्ष्य होता है। इस दृष्टिसे मानव-जीवनमें संस्कारोंका महत्त्व सर्वाधिक माना गया है। इन संस्कारोंके माध्यमसे मानव-जीवनको जहाँ समानता तथा धर्मपरायणता आदिके सूत्रमें पिरोया जा सकता है, वहीं उसे सुसंस्कृत भी बनाया जा सकता है। प्राचीन कालमें इन संस्कारोंके पीछे यद्यपि एक व्यापक दृष्टिकोण था, पर शनैः-शनैः संस्कार-विधिमें भी विकृति आती गयी और आज जिस रूपमें यह विद्यमान है उस रूपमें उसका पालन कठिन हो गया है।

वर्तमान जीवन होड़-दौड़से गुजर रहा है। मनुष्य कितना ही भौतिक विकास कर ले, कितनी ही ऊँचाई उड़ ले और गहराई नाप ले, यदि उसके जीवनमें सदाचारका अभाव है तो ये विकास, ऊँचाई तथा गहराई—सब-के-सब कागजकी पुड़ियाकी भाँति पानीकी बूँद पड़ते ही घुल जाते हैं, धरे-के-धरे रह जाते हैं। सदाचारके मूलमें आचार है। आचार एक ऐसा आधार-स्तम्भ है, जिसपर जीवनरूपी वृक्ष फलता-फूलता है। जीवनकी यथार्थताको प्रकट करनेका यह एक सशक्त साधन है।

आह्निक सदाचारके संदर्भमें कहा गया है कि ब्राह्ममुहूर्तमें व्यक्ति उठकर सर्वप्रथम अपने आराध्यका स्मरण कर पश्चात् मल-मूत्र विसर्जन-शुद्धि, मन-वचन-कायकी शुद्धि, आचमन (कुल्ला), दन्तधावन, स्नान, तर्पण (सन्ध्या), वस्त्रधारण, तिलकधारण, होम, जप, मङ्गलदर्शन आदिका विधिवत् पालन करे। ऐसा करनेसे व्यक्तिकी दिनचर्या नियमित तथा स्वास्थ्यवर्धक होती है। श्रीमद्भागवत (७।११।८—११)-में तो तीस प्रकारके आचरणोंका उल्लेख मिलता है, जो मानव-समाजके लिये हितकारी—कल्याणकारी है। ये इस प्रकार हैं—सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, संतोष, समदर्शी महात्माओंकी सेवा, सांसारिक भोगोंसे निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उलटा होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियोंको अन्न आदिका यथायोग्य विभाजन, अपने आत्मा तथा इष्टदेवका भाव, भगवान् श्रीकृष्णके नाम-गुण-लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण।

यदि मनुष्य इनमसे किसी एकको भी अपने व्यवहारम ले आता है और उसका सङ्कल्पपूर्वक पालन करता है तो एक-न-एक दिन शेष उल्लिखित गुण भी उसके जीवनम समा जायँगे और इस प्रकार उसका जीवन पवित्रतासे भर जायगा। पवित्रताका होना ही सदाचार है।

मानव-जीवन गर्भसे लेकर मृत्युपर्यन्त किसी-न-किसी रूपम सस्कार और सदाचारसे सवेष्टित है। अस्तु, य दोना ही मानव-जीवनपर गहरा प्रभाव डालते है। ये मानवको असत्यसे सत्यकी ओर, अन्धकारस प्रकाशकी आर, अनीतिसे नीतिकी ओर, असभ्यसे सभ्यकी ओर, *अशिष्टसे शिष्टकी ओर तथा कृत्रिमसे सहजकी ओर ले* जानेम अर्थात् भौतिक-आध्यात्मिक—सभी रूपाम मानवक अभ्युदयमे अपनी प्रभावी भूमिकाका निर्वहण करते हें। सस्कार-सदाचार—ये वे सवाहक हैं, जो जीवनरथको प्रशस्त पथपर चलाते हुए गन्तव्यतक ले जाते हैं।

सस्कार-सदाचार मनुष्यमे स्नेह, प्रेम, सौहार्द, दया, तप, त्याग, उदारता, सहिष्णुता, परोपकारिता आदि सिद्धान्ताका बीज वपन करते हैं। ये मानव-ऊर्जाको विध्वसकारी कार्योंकी अपेक्षा रचनात्मक कार्योकी ओर रूपान्तरित किये रहते हैं।

इतना ही नहीं, सदाचारसे मण्डित सस्कारी जीवनमे न तो ईर्ष्या, जलन, दाह, कपट, मान-अभिमान, कलह तथा दुर्भावना आदि कुत्सित भाव रहते है और न ही माया और लोभके वशीभूत परनिन्दा और आत्मप्रशसाकी भावना पायी जाती है, किंतु आज मानव-जीवन सस्कार-सदाचारसे विहीन होता दिखायी दे रहा है, जिसका प्रमाण है कि आज समाज और राष्ट्रमे जो हाना चाहिये था, उसका सर्वथा अभाव परिलक्षित है। आज युवावर्ग सुशिक्षित तो है, किंतु सुसस्कारी-सदाचारी नजर नहीं आता। चारित्रिक सुषमा तो उसम लुप्त ही होती जा रही है। वास्तवमे वह चरित्रसे च्युत होकर अनुशासनहीन होता जा रहा है। आज *युवावर्ग ही नहीं, हम सब भी भयभीत एव अस्थिर हैं।* इतना ही नहीं, हमार जो आदर्श, मूल्य और शिष्टाचार हैं, वे सब अवमूल्यनके गर्तम समा रहे हैं। इस सबसे हमारी जीवन-पद्धति प्रदूषित हो रही हे।

धर्मशास्त्र कहते हे कि जीवन यदि सस्कार और सदाचारसे रहित है तो वह पशुवत् है। मानव और पशुम जा भेद परिलक्षित है, उसका मूल श्रय इन्हीं दोनाको है।

इस ससारमे मानव-जीवन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। जब मानव-जीवन मिला हे तो उसका ठीक-ठीक उपयोग करना अर्थात् सस्कार और सदाचारसे सम्पन्न होना ही परम श्रेयस्कर है।

~~~o~~~

समयके सदुपयोगकी महत्ता समझिये

समयकी बरबादीका अर्थ है अपने जीवनको बरबाद करना। जीवनके जो क्षण मनुष्य यो ही आलस्य अथवा उन्मादम खो देता है, वे फिर कभी लौटकर वापस नहीं आते। जीवनके प्यालेसे क्षणाकी जितनी बूँदे गिर जाती है, प्याला उतना ही खाली हो जाता है। प्यालेकी वह रिक्तता फिर किसी भी प्रकार भरी नहीं जा सकती। मनुष्य जीवनके जितने क्षणोको बरबाद कर देता है, उतने क्षणोम वह जितना काम कर सकता था, उसकी कमी फिर वह किसी प्रकार भी पूरी नहीं कर सकता।

जीवनका हर क्षण एक उज्ज्वल भविष्यकी सम्भावना लेकर आता है। हर घड़ी एक महान् मोड़का समय हो सकती है। मनुष्य यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि जिस समय, जिस क्षण और जिस पलको वह यो ही व्यर्थम खो रहा है, वही क्षण, वही समय उसके भाग्योदयका समय नहीं है। क्या पता जिस क्षणको हम व्यर्थ समझकर बरबाद कर रहे है, वही हमारे लिये अपनी झोलीम सुन्दर सौभाग्यकी सफलता लाया हो। समयकी चूक पश्चात्तापकी हूक बन जाती है। जीवनम कुछ करनेकी इच्छा रखनेवालाको चाहिय कि वे अपने किसी भी एसे कर्तव्यको भूलकर भी कलपर न टालें, जो आज किया जाना चाहिये। आजके कामके लिये आजका ही दिन निश्चित है और कलके कामके लिये कलका दिन निर्धारित है।

~~~o~~~

आख्यान—

सदाचारका बल

वरुणा नदीके तटपर अरुणास्पद नामके नगरम एक ब्राह्मण रहता था। वह बडा सदाचारी, सस्कारवान् तथा अतिथिवत्सल था। रमणीय वनो एव उद्यानाको देखनेकी उसकी बडी इच्छा थी। एक दिन उसके घरपर एक ऐसा अतिथि आया जो मणि-मन्त्रादि विद्याओका ज्ञाता था और उनके प्रभावसे प्रतिदिन हजारा योजन चला जाता था। ब्राह्मणने उस सिद्ध अतिथिका बडा सत्कार किया। बात-चीतके प्रसङ्गम सिद्धने अनेक वन, पर्वत, नगर, राष्ट्र नद, नदिया एव तीर्थोंकी चर्चा चलायी। यह सुनकर ब्राह्मणको बडा विस्मय हुआ।

उसने कहा कि मेरी भी इस पृथ्वीको देखनेकी बडी इच्छा है। यह सुनकर उदारचित्त आगन्तुक सिद्धने उसे पैरमे लगानेके लिये एक लेप दिया, जिसे लगाकर ब्राह्मण हिमालय पर्वतको देखन चला। उसने सोचा था कि सिद्धके कथनानुसार मैं आधे दिनम एक हजार योजन चला जाऊँगा तथा शेष आधे दिनम पुन लौट आऊँगा।

अस्तु! वह हिमालयके शिखरपर पहुँच गया और उसने वहाँकी पर्वतीय भूमिपर पैदल ही विचरना शुरू किया। बर्फपर चलनेके कारण उसके पैरामे लगा हुआ दिव्य लेप धुल गया। इससे उसकी तीव्रगति कुण्ठित हो गयी। अब वह इधर-उधर घूमकर हिमालयके मनोहर शिखराका अवलोकन करने लगा। वह स्थान सिद्ध गन्धर्व, किन्नराका आवास हो रहा था। इनके विहारस्थल होनेसे उसकी रमणीयता बहुत बढ गयी थी। वहाँके मनोहर शिखरोको देखनेसे उसके शरीरम आनन्दसे रोमाञ्च हो आया।

दूसरे दिन उसका विचार हुआ कि अब घर चले। पर अब उस पता चला कि उसके पैरोकी गति कुण्ठित हो चुकी है। वह सोचने लगा—'अहो! यहाँ बर्फके पानीसे मेरे पैरोका लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अपने घरसे हजारा योजनकी दूरीपर हूँ। अब तो घर न पहुँचनेके कारण मेरे अग्निहोत्रादि नित्यकर्मोंका लोप होना चाहता है। यह तो मेरे ऊपर भयानक सकट आ पहुँचा। इस अवस्थामे किसी तपस्वी या सिद्ध महात्माका दर्शन हो जाता तो वे कदाचित् मेरे घर पहुँचनेका कोई उपाय बतला देते।' इसी समय उसके सामने वरूथिनी नामकी अप्सरा आयी। वह उसके रूपसे आकृष्ट हो गयी थी। उसे सामने देखकर ब्राह्मणने पूछा—'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगरसे यहाँ आया हूँ। मेरे पैरमे दिव्य लेप लगा हुआ था, उसके धुल जानेसे मेरी दूरगमनकी शक्ति नष्ट हो गयी है और अब मेरे नित्यकर्मोंका लोप होना चाहता है। कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे सूर्यास्तके पूर्व ही अपने घरपर पहुँच जाऊँ।'

वरूथिनी बोली—'महाभाग! यह तो अत्यन्त रमणीय

स्थान हे। स्वर्ग भी यहाँसे अधिक रमणीय नहीं है, इसलिये हमलोग स्वर्गको भी छोडकर यहीं रहते हैं। आपने मेरे मनको हर लिया है। मैं आपको देखकर कामके वशीभूत हो गयी हूँ। मैं आपको सुन्दर वस्त्र, हार आभूषण, भाजन, अङ्गरागादि दूँगी। आप यहीं रहिये। यहाँ रहनेसे कभी बुढापा नहीं आयेगा। यह यौवनको पुष्ट करनेवाली देवभूमि है।' यो कहते-कहते वह बावली-सी हो गयी और 'मुझपर कृपा कीजिये, कृपा कीजिये' कहती हुई उसका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मणने कहा—'अरी ओ दुष्टे! मेरे शरीरको न छू। जो तेरे ही जैसा हो, वैसे ही किसी अन्य पुरुषके पास चली जा। मैं कुछ और भावसे प्रार्थना करता हूँ और तू कुछ और भावसे मेरे पास आती है? मूर्खे! यह सारा ससार धर्मम प्रतिष्ठित है। साय-प्रात का अग्निहोत्र, विधिपूर्वक की गयी इज्या ही विश्वको धारण करनेमे समर्थ है और मेरे उस नित्यकर्मका ही यहाँ लोप होना चाहता है। तू तो मुझे कोई ऐसा सरल उपाय बता, जिससे मैं शीघ्र अपने घर पहुँच जाऊँ।' इसपर वरूथिनी बहुत गिडगिडाने लगी। उसने कहा—'ब्राह्मण! जो आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं, उनमे दया ही प्रधान है। आश्चर्य है, तुम धर्मपालक बनकर भी उसकी अवहलना कैसे कर रहे हो? कुलनन्दन! मेरी तो तुमपर कुछ ऐसी प्रीति उत्पन्न हो गयी है कि सच मानो, अब तुमसे अलग होकर जी न सकूँगी। अब तुम कृपाकर मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

ब्राह्मणने कहा—'यदि सचमुच तुम्हारी मुझमे प्रीति हो तो मुझे शीघ्र कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे मैं तत्काल घर पहुँच जाऊँ।' पर अप्सराने एक न सुनी और नाना प्रकारके अनुनय-विनय तथा विलापादिसे वह उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती गयी। ब्राह्मणने अन्तम कहा—'वरूथिनि! मेरे गुरुजनाने उपदेश दिया है कि परायी स्त्रीकी कदापि अभिलाषा न करे। गुरुजनाद्वारा प्रदत्त सस्कार इस प्रकारके निन्द्य कर्मोकी आज्ञा नहीं देते हैं इसलिये तू चाहे विलख या सूखकर दुबली हो जा मैं तो तेरा स्पर्श नहीं ही कर सकता न तेरी ओर दृष्टिपात ही करता हूँ।'

यो कहकर उस महाभागने जलका स्पर्श तथा आचमन किया और गार्हपत्य अग्निको मन-ही-मन कहा—'भगवन्! आप ही सब कर्मोकी सिद्धिके कारण हैं। आपकी ही तृप्तिसे देवता वृष्टि करते और अन्नादिकी वृद्धिमे कारण बनते हैं। अन्नसे सम्पूर्ण जगत् जीवन धारण करता है और किसीसे नहीं। इस तरह आपसे ही जगत्की रक्षा होती है। यदि यह सत्य है तो मैं सूर्यास्तके पूर्व ही घरपर पहुँच जाऊँ। यदि मैंने कभी भी वैदिक कर्मानुष्ठानमे कालका परित्याग न किया हो तो आज घर पहुँचकर डूबनेसे पहले ही सूर्यको देखूँ। यदि मेरे मनमे पराये धन तथा परायी स्त्रीकी अभिलाषा कभी भी न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ब्राह्मणके यो कहते ही उनके शरीरमे गार्हपत्य अग्निने प्रवेश किया। फिर तो वे ज्वालाओके बीचमे प्रकट हुए मूर्तिमान् अग्निदेवकी भाँति उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे और उस अप्सराके देखते-ही-देखते वे वहाँसे

चले तथा एक क्षणमे घर पहुँच गये। घर पहुँचकर पुन उन्होने यथाशास्त्र सब कर्मोका अनुष्ठान किया और बडी शान्ति एव धर्म-प्रीतिसे सस्कारसम्पन्न हो जीवन व्यतीत किया। (मार्कण्डेयपुराण)

संतानोत्पत्तिका वैदिक विज्ञान

चराचर समस्त भूतोका रस—सार अथवा आधार पृथिवी है, पृथिवीका रस जल है, जलका रस—उसपर निर्भर करनेवाली ओषधियाँ हैं, ओषधियोका रस—सार पुष्प है, पुष्पका रस फल है, फलका रस—आधार पुरुष है, पुरुषका रस—सार शुक्र है। प्रजापतिने विचार किया कि इस शुक्रकी उपयुक्त प्रतिष्ठाके लिये कोई आधार चाहिये, इसलिये उन्होने स्त्रीकी सृष्टि की और उसके अधोभाग-सेवनका विधान किया। (यहाँ यदि यह कहा जाय कि इस पाशविक क्रियामे तो प्राणिमात्रकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, इसके लिये विधान क्या किया गया है, तो इसका उत्तर यह है कि यह विधान इसीलिये बनाया गया कि जिसमे पुरुषोकी स्वेच्छाचारिताका निरोध हो और इस विज्ञानसे परिचित पुरुषोके द्वारा केवल श्रेष्ठ संतानोत्पत्तिके लिये ही इसका सेवन किया जाय।) इसके लिये प्रजापतिने प्रजननेन्द्रियको उत्पन्न किया। अतएव इस विषयसे घृणा नहीं करनी चाहिये। अरुणके पुत्र विद्वान् उद्दालक और नाक-मौद्गल्य तथा कुमारहारीत ऋषिने भी कहा है कि बहुत-से ऐसे मरणधर्मा नाममात्रके ब्राह्मण हैं जो निरिन्द्रिय सुकृतहीन, मैथुन-विज्ञानसे अपरिचित होकर भी मैथुन-कर्ममे आसक्त होते हैं। उनकी परलोकमे दुर्गति होती है। (इससे अशास्त्रीय तथा अबाध मैथुन-कर्मका पापहेतुत्व सूचित किया गया है।)

इस प्रकार मन्थ-कर्म करके ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक पुरुषको पत्नीके ऋतुकालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। यदि इस बीचमे स्वप्नदोषादिके द्वारा शुक्र-क्षरण हो जाय तो उसकी पुन प्राप्ति तथा वृद्धिके लिये **'यन्मेऽद्य रेत पृथिवीमस्कान्त्सीद्यदोषधीरप्यसरद्यदप । इदमह तद्रेत आददे।'** तथा **'पुनर्मामैत्विन्द्रिय पुनस्तेज पुनर्भग । पुनरग्निर्धिष्ण्या यथास्थान कल्पन्ताम्।'** इन मन्त्राका पाठ करे। (इससे स्वप्नदोषादि व्याधियाका नाश होता है।)

यदि कदाचित् जलमे अपनी छाया दीखे जाय तो **'मयि तेज इन्द्रिय यशो द्रविणः सुकृतम्।'** (मुझे तेज, इन्द्रियशक्ति, यश, धन और पुण्यकी प्राप्ति हो) इस मन्त्रको पढे। ऋतुकालकी तीन रात बीतनेपर जब पत्नी स्नान करके शुद्ध हो जाय, तब 'स्त्रियोमे मेरी यह पत्नी लक्ष्मीके समान है, इसलिये निर्मल वस्त्र पहने हुए है' यह विचारकर उस यशस्विनी पत्नीके समीप जाकर 'हम दोनो संतानोत्पादनके लिये क्रिया करेगे' कहकर आमन्त्रण करे। लज्जा अथवा हठवश स्त्री यदि मिथुन-धर्मके लिये अस्वीकार करे तो उसे आभरणादिद्वारा तथा अभिशापादिद्वारा प्रेरित करे। पुरुषके **'इन्द्रियेण ते यशसा यश आददे'** इस मन्त्रयुक्त अभिशापसे स्त्री अयशस्विनी—वन्ध्या हो जाती है, परतु यदि स्त्री अपने स्वामीकी अभिलाषा पूर्ण करती है तो स्वामीके **'इन्द्रियेण ते यशसा यश आदधामि'** इस मन्त्रपाठपूर्वक उपगत होनेसे पत्नी निश्चय ही यशस्विनी—पुत्रवती होती है। मन्थोपासक अपनी पत्नीको कामनापरायण करना चाहे तो उस समय वह **'अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे। स त्वमङ्ग-कषायोऽसि दिग्धविद्धामिव मादयेमाममू मयि।'**-मन्त्रका जप करे।

यदि किसी कारणवश गर्भनिरोधकी आवश्यकता हो तो उस समय **'इन्द्रियेण ते रेतसा रेत आददे'** मन्त्रका जाप करे। ऐसा करनेपर पत्नी गर्भवती नहीं होगी* और यदि यह इच्छा हो कि पत्नी गर्भधारण करे तो उस समय **'इन्द्रियेण त रेतसा रेत आदधामि'** इस मन्त्रका पाठ करे, इससे वह निश्चय ही गर्भवती हो जायगी।

यदि कभी अपनी भार्याके साथ किसी जारका सम्बन्ध हो जाय और उसे दण्ड देना हो तो पहले कच्ची मिट्टीके बरतनमे अग्नि स्थापन करके समस्त कर्मोको विपरीत रीतिसे करे और कुछ सरके—तिनकोके अग्रभागको

---

* आजकल गर्भनिरोधके लिये कैसी-कैसी तामसी क्रियाएँ की जाती हैं पर ये हानी है प्राय असयमकी वृद्धिके लिये। मूलत यह वैदिक प्रक्रिया थी अपनी धर्मपत्नीको कभी गर्भधारण न कराना हो तो उसके लिये। सयमी पुरुष ही ऐसा कर सकते थे।

घीमें भिगोकर विपरीत क्रमसे ही उनका होम करे। आहुतिके पहले **'मम समिद्धेऽहौषी प्राणापानौ त आददेऽसौ'** आदि मन्त्रोंका पाठ करके अन्तमें प्रत्येक बार **'असौ'** बोलकर उसका नाम ले। इस प्रकार करनेसे वह पुण्यसे स्खलित होकर मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

ऋतुमती पत्नीका त्रिरात्र व्रत (तीन रात्रियोंका पृथक् निवासादि) समाप्त होनेपर स्नान करनेके बाद उसे धान कूटना आदि गृहस्थीका काम करना चाहिये। तीन दिनातक उसे अलग रहना चाहिये, किसीका स्पर्श नहीं करना चाहिये।

जो पुरुष चाहता हो कि मेरा पुत्र गौरवर्ण हो एक वेदका अध्ययन करनेवाला हो और पूरे सौ वर्षोंतक जीवित रहे, उसको दूध-चावलकी खीर बनाकर उसमें घी मिलाकर पत्नीसहित खाना चाहिये। जो कपिलवर्ण, दो वेदोंका अध्ययन करनेवाला और पूर्णायु पुत्र चाहता हो, उसको दहीमें चावल पकाकर पत्नीसहित खाना चाहिये। जो श्यामवर्ण, रक्तनेत्र, वेदत्रयीका अध्ययन करनेवाले, पूर्णायु पुत्रकी इच्छा करता हो, उसे जलमें चावल पकाकर घी मिलाकर पत्नीसहित खाना चाहिये। जो चाहता हो कि मेरे पूर्ण आयुवाली विदुषी कन्या हो, उसे तिल-चावलकी खिचडी बनाकर पत्नीसहित खाना चाहिये और जो चाहता हो कि मेरा पुत्र प्रसिद्ध पण्डित, वेदवादियोंकी सभामें जानेवाला, सुन्दर वाणी बोलनेवाला, सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करनेवाला और पूर्ण आयुष्मान् हो, वह ओषधियोंका गूदा और चावलकी खिचडी पकाकर उसमें 'उक्षा'* अथवा 'ऋषभ'** नामक बल-वीर्यवर्द्धक ओषधि मिलाकर घृतसहित पति-पत्नी दोनों भोजन करें।

गर्भाधान करनेवालेको प्रातःकाल ही स्थालीपाकविधिके अनुसार घीका संस्कार (शोधन) करके और चरुपाक बनाकर **'अग्नये स्वाहा', 'अनुमतये स्वाहा'** एवं **'देवाय सवित्रे सत्यप्रसवाय स्वाहा'** इन मन्त्रोंसे अग्निमें आहुतियाँ देनी चाहिये। होम समाप्त करके चरुमें बचा हुआ भोजन करके शेष भोजन पत्नीको कराना चाहिये। फिर हाथ धोकर जलका कलश भरके **'उत्तिष्ठातोविश्वावसोऽन्यामिच्छ प्रपूर्व्यां स जाया पत्या सह'** मन्त्रके द्वारा पत्नीका तीन बार अभ्युक्षण (अभिषेचन) करना चाहिये।

तदनन्तर पति अपनी कामनाके अनुसार पत्नीको भोजन कराके शयनके समय बुलाकर कहे कि 'देखो, मैं अम (प्राण) हूँ और तुम प्राणरूप मेरे अधीन वाक् हो। मैं साम हूँ और तुम सामका आधाररूप ऋक् हो मैं आकाश हूँ और तुम पृथिवी हो। अतएव आओ तुम-हम दोनों मिलें, जिससे हमें पुत्र संतान और तदनुगत धनकी प्राप्ति हो।' इसके पश्चात् **'द्यावा पृथिवी'** इत्यादि

---

* 'उक्षा' शब्दके कोषमें दो प्रकारके अर्थ मिलते हैं। कलकत्तेसे प्रकाशित 'वाचस्पत्य' नामक बृहत् संस्कृताभिधानमें उसे अष्टवर्गान्तर्गत 'ऋषभ' नामक ओषधिका पर्याय माना गया है—**'ऋषभ ओषधौ च'**। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् सर मोनियर विलियम्सने अपने बृहत् संस्कृत अंग्रेजी कोषमें इसे 'सोम' नामक पौधेका पर्याय माना है।

** 'ऋषभ' नामक ओषधिका आयुर्वेदके अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ 'सुश्रुतसंहिता' के 'सूत्रस्थान' नामक प्रथम खण्डके ३८ वें अध्यायमें (जो द्रव्यसंग्रहणीयाध्याय भी कहलाता है) सैंतीस द्रव्यगणोंके अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। 'भावप्रकाश' नामक प्रसिद्ध संग्रह-ग्रन्थमें उसका वर्णन इस रूपमें आया है—

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ। रसोनकन्दवत् कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ॥
ऋषभो वृषशृङ्गवत्। ॥
ऋषभो वृषभो वीरो विषाणी ब्राह्म इत्यपि।
जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ। मधुरौ पित्तदाहघ्नौ कासवातक्षयापहौ॥

जीवक और ऋषभक (ऋषभ) नामकी ओषधियाँ हिमालयके शिखरपर उत्पन्न होती हैं। उनकी जड लहसुनके सदृश होती है। दोनोंमें ही गूदा नहीं होता केवल त्वचा होती है दोनोंमें छोटी-छोटी पत्तियाँ होती हैं। इनमेंसे ऋषभ बैलके सींगकी आकृतिका होता है। इसके दूसरे नाम हैं—वृषभ वीर विषाणी ब्राह्म आदि। जीवक और ऋषभ दोनों ही बलकारक शीत वीर्य और कफ बढानेवाले मधुर पित्त और दाहका शमन करनेवाले तथा खाँसी एवं वातरोगका नाश करनेवाले हैं।

ऋषभकी प्रसिद्ध अष्टवर्ग नामक ओषधियोंमें गणना है। भावप्रकाशकार लिखते हैं—

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके। अष्टवर्गोऽष्टभिर्द्रव्यैः कथितश्चरकादिभिः॥

मन्त्रसे सम्बोधन करके 'विष्णुर्योनि' इत्यादि मन्त्रके अनुसार प्रार्थना कर 'भगवान् विष्णु तुम्हारी जननेन्द्रियको पुत्रोत्पादनमे समर्थ कर त्वष्टा सूर्य रूपाको दर्शनयोग्य कर, विराट् पुरुप प्रजापति रेत सचन कराय, सूत्रात्मा विधाता तुममे अभिन्नभावसे स्थित होकर गर्भ धारण करे। सिनीवाली नामकी अत्यन्त सुन्दर देवता तुममे अभेदरूपसे एव पृथुष्टुका नामकी महान् स्तुतिशाली देवता भी तुमम हैं।' मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि 'हे सिनीवाली! हे पृथुष्टुके! तुम इस गर्भको धारण करो। दोना अश्विनीकुमार अथवा चन्द्र-सूर्य तुम्हारे साथ रहकर इस गर्भको धारण करे।'

'दोना अश्विनीकुमार हिरण्मय दो अरणियोके द्वारा मन्थन करते हैं। मैं दसवे मासमे प्रसव होनेके लिये गर्भाधान करता हूँ। पृथ्वी जैसे अग्निगर्भा है आकाश जैसे सूर्यके द्वारा गर्भवती है दिशाएँ जैसे वायुके द्वारा गर्भवती हैं, मैं तुमको उसी प्रकार गर्भ अपण करके गर्भवती करता हूँ।' यो कहकर गर्भाधान करे।

तदनन्तर सुखपूर्वक प्रसव हो जाय, इसके लिये 'यथा वायु' इत्यादि मन्त्रके द्वारा आसन्नप्रसवा पत्नीका अभिपेचन करे और कहे—'जैसे वायु पुष्करिणीको सब ओरसे हिला देता है, वैसे ही तुम्हारा गर्भ भी अपने स्थानसे खिसककर जेरके साथ बाहर निकल आये। तुम्हारे तेजस्वी गर्भका मार्ग रुका हुआ है और चारो ओर जेरसे घिरा है। गर्भके साथ उस जेरको भी वे निकाल बाहर करे और गर्भ निकलनेके समय जो मास-पेशी बाहर निकला करती है, वह भी निकल जाय।'

जातकर्म

पुत्रका जन्म हो जानेपर अग्निस्थापन करके पुत्रको गोदमे ले और आज्यस्थालीमे दही मिला हुआ घृत रखकर उसे थोडा-थोडा लेकर यह कहता हुआ बार-बार अग्निमें होम करे कि 'इस अपने घरमे मैं पुत्ररूपसे बढकर सहस्रो मनुष्योका पालन करूँ मेरे इस पुत्रके वशमे सतान-लक्ष्मी तथा पशु-सम्पत्ति लगातार बनी रहे मुझमे (पितामे) जो प्राण (इन्द्रियाँ) हैं वे सभी मन-ही-मन मैं तुम्हे (पुत्रको) दे रहा हूँ, मेरे इस कर्मम कोई न्यूनाधिकता हो गयी हो तो विद्वान् एव वाञ्छापूरक अग्नि उसे पूर्ण कर दे।'

तदनन्तर पिता बालकके दाहिने कानमे अपना मुख लगाकर 'वाक्, वाक्, वाक्' इस प्रकार तीन बार जप करे। तदनन्तर दधि, मधु और घृत मिलाकर पास ही रखे हुए सोनेके पात्रके द्वारा क्रमश —

'भूस्ते दधामि', 'भुवस्ते दधामि', 'स्वस्ते दधामि', 'भूर्भुव स्व सर्वं त्वयि दधामि॥'

—यो कहकर चार बार उसे चटाये। फिर पिता उस पुत्रका 'वेदोऽसि' बोलकर 'नामकरण' करे—'वेद' यह नाम रखे। उसका यह नाम अत्यन्त गोपनीय होता है। इसे सर्वसाधारणमे प्रकट नहीं करना चाहिये। इसके बाद गोदमे स्थित उस शिशुको माताकी गोदमे रखकर तथा स्तन देकर इस मन्त्रका पाठ करे—

'यस्ते स्तन शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद् य सुदत्र । येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे करिति॥'

अर्थात् 'हे सरस्वति! तुम्हारा जो स्तन दूधका अक्षय भण्डार तथा पोषणका आधार है, जो रत्नोकी खान है तथा सम्पूर्ण धन-राशिका ज्ञाता एव उदार-दानी है और जिसके द्वारा तुम समस्त वरणीय पदार्थोंका पोषण करती हो तुम इस सत्पुत्रके जीवन-धारणार्थ उस स्तनको मेरी भार्यामे प्रविष्ट करा कर इस शिशुके मुखमे दे दो।'

तदनन्तर बालककी माताको इस प्रकार अभिमन्त्रित करे—उसे सम्बोधन करके कहे, 'तुम ही स्तुतिके योग्य मैत्रावरुणी (अरुन्धती) हो हे वीरे! तुमने वीर पुत्रको जन्म देकर हमे वीरवान्—वीर पुत्रका पिता बनाया है अत तुम वीरवती हो। इसे लोग कहे—'तू सचमुच अपने पितासे भी आगे बढ गया, तू निस्सदेह अपने पितामहसे भी श्रेष्ठ निकला।'

इस प्रकार विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न जो पुत्र होता है, वह श्री, यश और ब्रह्मतेजके द्वारा सर्वोच्च स्थितिको प्राप्त कर लेता है। (बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ६ चतुर्थ ब्राह्मण)

शुभ संतानप्राप्तिका शास्त्रीय उपाय

शङ्का—वर्तमानमें अशुभ संतान बहुत उत्पन्न हो रही हैं, जिससे व्यक्ति, परिवार और समाजमें सर्वत्र अशान्ति व्याप्त हो रही है, इसका क्या कारण है? इससे बचकर शुभ संतानकी प्राप्तिका यदि कोई उपाय हो तो बतानेकी कृपा कीजिये।

समाधान—अशुभ विवाह, अशुभ रीतिसे गर्भाधान, अशुभ खान-पान, अशुभ शिक्षा-दीक्षा आदि कारणोंसे अशुभ संतान उत्पन्न होती है। इससे बचकर शुभ संतान उत्पन्न करनेका उपाय है—शास्त्रीय विधिसे शुभ विवाह, शुभ विधिसे गर्भाधान, शुभ खान-पान और शुभ शिक्षा-दीक्षा। इन्हींका यहाँ संक्षेपमें विवेचन किया जा रहा है—

शुभ विवाह—

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥
सवर्णाऽग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत्॥

(मनु० ३।५, १२, ४२)

'जो अपने माता-पिताके समान गोत्र तथा पिण्डवाली न हो, ऐसी कन्या विवाह एवं मैथुनमें द्विजातियोंके लिये श्रेष्ठ होती है। द्विजातियोंके लिये अपनी जातिकी कन्या (शास्त्रविधिसे माता-पिताद्वारा किये गये) विवाहके लिये श्रेष्ठ होती है। अनिन्दित विवाहोंसे अनिन्दित संतान होती है तथा (प्रेम-विवाह आदि) निन्दित विवाहोंसे निन्दित संतान होती है, इसलिये निन्द्य विवाहोंका त्याग कर देना चाहिये।'

शुभ भावसे गर्भाधान—

यादृशेन हि भावेन योनौ शुक्रं समुत्सृजेत्॥
तादृशेन हि भावेन संतानं सम्भवेदिति।

(नारदपु० २।२७।२९-३०)

'जिस भावसे योनिमें वीर्य डाला जाता है, उसी भावसे युक्त संतान होती है। इसलिये मनुष्यको गर्भाधान करते समय जैसे सुपुत्रकी इच्छा हो, वैसे शुभ भावसे युक्त होना चाहिये। पुराणोंमें तो इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं।

शुभ कालमें गर्भाधान—

अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम्।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः॥

(मनु० ४।१२८)

'अमावास्या, अष्टमी, पौर्णमासी, चतुर्दशी—इन चार तिथियोंमें ऋतुकाल होनेपर भी द्विजको ब्रह्मचारी रहना चाहिये।'

इन निषिद्ध तिथियोंमें तथा सूर्य-चन्द्र-ग्रहणकालमें और सन्ध्याकालमें गर्भाधान करनेसे अशुभ संतान उत्पन्न होती है। सन्ध्याकालमें गर्भधारणके कारण ही रावण, कुम्भकर्ण, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि दुष्टोंकी उत्पत्ति हुई थी, ऐसा पुराणोंमें कहा गया है। इसलिये इन अशुभ कालोंमें गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

गर्भकालमें माताकी भावना—जब गर्भमें संतान होती है, तब माता जैसी सात्त्विक, राजस, तामस भावनासे भावित रहती है, जैसा अच्छा-बुरा देखती, सुनती, पढ़ती, खाती-पीती है, उन सबका गर्भमें स्थित संतानपर प्रभाव पड़ता है। इसलिये गर्भवती स्त्रीको राजस-तामस भावोंसे बचकर सात्त्विक भावनाएँ करनी चाहिये। गंदे सिनेमा-टेलीविजन, पोस्टर न देखकर सात्त्विक देवदर्शन, संतदर्शन आदि ही करना चाहिये। गंदे गीत सुनना-गाना छोड़कर सात्त्विक भजन-कीर्तन ही सुनना-गाना चाहिये। गंदे उपन्यास पढ़ना-सुनना-सुनाना छोड़कर रामायण, भागवत आदि सात्त्विक ग्रन्थ ही पढ़ना-सुनना-सुनाना चाहिये। राजस-तामस मांस-मदिरा-अंडा-प्याज-लहसुन, अति तीक्ष्ण मिर्च-मसाला छोड़कर सात्त्विक दूध-घी-दाल-रोटी आदि ही खाना-पीना चाहिये। गर्भकालीन भावनाका संतानपर प्रभाव पड़ता है, इसमें प्रमाण प्रह्लादजीका चरित्र है।

जन्मोत्तर शिक्षा—ऊपर लिखे गर्भकालमें माताकी भावना नामक शीर्षकमें जिन सात्त्विक बातोंके सेवन तथा राजस-तामस बातोंके त्यागका विधान किया गया है, उनका सेवन और त्याग संतानोंसे भी कराना चाहिये। तभी गर्भकालमें की गयी माताकी भावनाओंको प्रकट होनेमें सहायता होगी, नहीं तो राजस-तामसका सेवन करानेसे वे सात्त्विक भावनारूप बीज नष्ट हो जायँगे। यह नहीं समझना

चाहिये कि ये अभी छोटे बच्चे हैं कुछ समझते ही नहीं, अत जो देखते सुनते, गाते हैं, उनका इनपर कुछ भी प्रभाव नहीं पडेगा। यद्यपि यह सत्य है कि ३-४-५ वर्षके बच्चे गदे चित्रा तथा गदे गीतोका भाव बिलकुल नहीं समझते फिर भी उसका प्रभाव ता पडता ही है। इसम प्रत्यक्ष प्रवल प्रमाण यह है कि गदे चित्राका देखने तथा गदे गीताको गानवाले बच्चोका युवावस्थासे पूर्व ही वे बाते समझम आने लगती हैं और वे वैसी चेष्टाएँ भी करने लगते हैं।

बच्चाका हृदय गीली मिट्टीके लादेके समान होता है, उसे जैस साँचेम डाला जायगा वेसा बन जायगा। बाल्यावस्थामें डाले सात्त्विक सस्काराका कोई विरोधी सस्कार न होनेसे उनका इतना गहरा प्रभाव होता है कि वह जीवनभर नष्ट नहीं होता। यही कारण है कि राजस-तामस सस्कार बाल्यावस्थाम पड जानेके बाद सात्त्विक सस्कार बलपूर्वक डालनपर भी उनका गहरा प्रभाव नहीं पडता। इसलिये प्रारम्भसे बच्चाम सात्त्विक सस्कार डालना चाहिये।

शुभ सतान-प्राप्तिके लिय ऊपर लिखी गयी सभी बाताका पालन होना चाहिय। इसके अतिरिक्त शुभ सतानकी प्राप्तिके लिय जन्मान्तरीय कर्मरूप प्रारब्ध भी हेतु होता है, परतु उसपर पुरुपका पुरुषार्थ कार्य नहीं कर सकता, इसलिये उसकी चर्चा नहीं की गयी है।

~~o~~

गर्भाधान-संस्कारका वैशिष्ट्य

(डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र वेदाचार्य)

'भारतीय सस्कृतिम मानवका चरम लक्ष्य पूर्णता तथा आनन्दस्वरूपताको माना गया है। भारतीय दर्शनोमे ज्ञानको पूर्णता तथा निरतिशय आनन्दकी प्राप्तिका प्रमुख साधन निर्धारित किया गया है। ज्ञानके समुचित विकाससे युक्त होनेके कारण मानवीय समुदायको सस्कृतभापाम 'समाज' सज्ञा (द्र० अमरकोष २।५।४२, पाणिनिसूत्र ३।६।६९)-से अभिहित किया गया है। भारतीय विचारदृष्टिसे उसी समाजकी सुदृढता तथा पूर्णता मानी जाती है, जिसमे स्वास्थ्य, शिक्षा धैर्य, बल, मम्पत्ति तथा भोग—इन छ पदार्थोका समानरूपसे भलीभाँति ध्यान रखा जाता है। इस सदर्भमे तैत्तिरीयापनिषद् (२।८।२)-का उपदेश है—

''युवा स्यात् साधुयुवाध्यायक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठस्तस्यय पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुप आनन्द ।'

आनन्दकी धर्मरूपता

उक्त छ पदार्थोमे किसी एककी अतिशयता अथवा किसी एककी हानिसे कोई भी समाज शिथिल तथा अपूर्ण हो जाता है यह भारतीय दृष्टि है क्याकि ये छ पदार्थ ही समुदितरूपस मानवके आनन्द हैं। भारतीय आर्य सामाजिक व्यवस्था इन छ पदार्थोका समानरूपसे आदर करती है। अत आचार्योने समाजके स्वरूपमे पूर्णत्वके प्रापक ज्ञान-तत्त्वको आश्रय माना है, साथ ही न्यायदर्शनकी दृष्टिसे प्राप्तव्य आत्मगुण नामक धर्मतत्त्वके अन्तर्गत आनन्दको भी समाजके आश्रयके रूपम स्वीकार किया है।

इस प्रकार ज्ञान तथा धर्मके द्वारा पूर्णता एव आनन्दका विशिष्ट सतुलन भारतीय समाजकी विशेपता है। अन्य विचारकाकी दृष्टिमे धर्म तथा व्यवहारका पार्थक्य है। अत लौकिक व्यवहारम प्रत्यक्षदृष्टके प्रति ही विश्वासके कारण आधुनिकोकी दृष्टिमें शारीरिक विषयसुख ही आनन्द है एव उस सुख-सुविधाके लिये ही समाजकी व्यवस्था निरूपित है, परतु भारतीय सस्कृतिम धर्मका व्यापक तथा व्यावहारिक स्वरूप है। भारतीय धर्म मात्र ईश्वर, अतीन्द्रिय तत्त्व अथवा परलोकके विषयम ही सीमित नहीं है अपितु मानवके प्रत्येक दैनन्दिन कार्यम धर्मका सम्बन्ध भारतीय परम्पराम माना गया है। एतदर्थ महाभारतम स्पष्ट उल्लेख है—

'लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचन कृतम्।'

यह व्यावहारिक धर्म आत्मदर्शनका साधन है। फलत भारतीय समाजव्यवस्था केवल विषयसुखकी सुविधाक लिये प्रवृत्त नहीं है अपितु आनन्दमय पथसे आत्मदर्शनरूपी ज्ञानके चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये है। अत गागाभट्टने धर्मकी यह परिभाषा प्रस्तुत की है—

'अलौकिकश्रेयस्साधनत्वेन विहितक्रियात्व विहितत्व वा धर्मत्वम्।'

सस्कारोका उद्देश्य तथा क्रम

धर्मकी व्यावहारिक स्थितिका प्रत्यक मानवम प्रतिष्ठापित करनेके उद्देश्यस भारताय तत्त्वचिन्तकाने प्रत्यक मानवक लिय सस्काराका विधान किया है। 'सस्कार' शब्दका अभिप्राय है—दोपापाकरणपूर्वक गुणाधान अथात् शुद्धिकी धार्मिक क्रियाआ तथा दैहिक मानसिक एव बौद्धिक परिष्कारक उद्दश्यसे किय जानेवाल अनुष्ठान जिनक अनुपालनसे व्यक्ति समाजका पूर्णत विकसित सदस्य हो सक। अत सस्काराम अनेक आरम्भिक विचार धार्मिक विधि-विधान तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हैं जिनका उद्देश्य सस्कार्यके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका परिष्कार शुद्धि एव पूर्णता है। वैदिक गृह्यसूत्रा एव स्मृतियोकी मान्यता है कि सस्काराक सविधि अनुष्ठानसे विलक्षण तथा चिरस्थायी विशिष्ट व्यक्तिनिष्ठ गुणाका प्रादुर्भाव होता है। अत मित्रमिश्रने सस्कारकी परिभाषा इस प्रकार प्रतिपादित की है—

'आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष सस्कार।'

विभिन्न भारतीय आचार्योकी दृष्टिम सस्काराकी सख्या तथा क्रमम मतभेद है। गृह्यसूत्रा एव स्मृतियाम ग्यारहसे प्रारम्भकर चालीसतक सस्काराका परिगणन है, परतु निबन्ध-ग्रन्थाम सार-सग्रहका दृष्टिसे सोलह सस्काराको मुख्यत माना गया है। इन सोलह सस्कारोका क्रम इस प्रकार है—गर्भाधान, पुसवन सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन, कर्णवेध चूडाकरण विद्यारम्भ, उपनयन वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। यह सस्कारसमूह मानव-जीवनको शुद्ध करनेकी चरणबद्ध प्रक्रिया है। लौकिक जीवनमे मानुष-आनन्दका सचय करते हुए च्युतिरहित चरम लक्ष्यकी प्राप्ति सस्कारोका फल है। इस सदर्भमे वीरमित्रोदयमे शङ्ख-लिखितका वचन उद्धृत है—

सस्कारै सस्कृत पूर्वैरुत्तरैरनुसस्कृत।
ब्राह्म पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुन।

गर्भाधान-सस्कारकी प्राथमिकता

सस्काराकी परिगणनाम गर्भाधान-सस्कार प्रथम है। इस सस्कारको प्राथमिकता देना भौतिकवादियाकी दृष्टिसे भारतीय धर्मका आश्चर्यजनक प्रारम्भ माना जा सकता है। परतु वस्तुत यह सस्कार मानवके प्रादुर्भावमे प्राथमिक पवित्रता एव शुद्ध भावनाका बीजारोपण करता है। अन्य समाजाकी भाँति भारतीय समाजम मानवक उद्भवको भौतिक पदार्थोकी सयोगजन्य क्रिया अथवा विकारक रूपमें नहीं माना गया है, अपितु मानवीय उत्पत्तिको भारतीय ऋषियाने धर्मकी दृष्टिसे प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार विश्वकी अन्य सभ्यताआम विवाहके नियम दृष्ट अथवा प्रत्यक्ष फल (सामाजिक सुविधा शारीरिक सुख तथा सतान-सुख आदि)-का आधार मानकर ही निरूपित हैं, परतु भारतीय आर्षशास्त्राम विज्ञान तथा दर्शन—दोनाके समन्वयसे दृष्ट एव अदृष्ट फलाके आधारपर स्त्री-पुरुषाके विवाह आदि पारस्परिक नियम निश्चित किये गये हैं। विवाहके अनन्तर भौतिकवादियाकी दृष्टिम गर्भाधानके सदर्भम भी सृष्टिकी धाराका क्रमिक विकास तथा विस्तार ही एक उद्देश्य है परतु वैदिक सस्कृति इसके द्वारा ऐहिक तथा पारलौकिक द्विविध अभ्युन्नतिका मार्ग प्रशस्त करता है। पितृ-ऋणसे मुक्तिकी इच्छा गर्भाधान-सस्कारका पवित्र एव आध्यात्मिक उद्देश्य है। पितृ-ऋणसे मुक्तिके अनन्तर ही मोक्षप्राप्ति सम्भव है। मनुस्मृतिका कथन है—'**ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्**'। इस कर्तव्यबुद्धिसे गर्भाधान-जैसा नैसर्गिक तथा नितान्त भौतिक कर्म भी पवित्र दायित्वका स्वरूप प्राप्त कर प्रकाशित हो उठता है।

गर्भाधानकी आधिदैविक भावना

वीरमित्रोदयमे गर्भाधानको क्षेत्रसस्कार माना गया है। गर्भाधान-सस्कारके अनुष्ठानकी प्रक्रियामे अन्य पूर्वाङ्ग विधियाके अनन्तर आचार्य पारस्करने पतिद्वारा समस्त हानियाके निरासके लिये देवताआसे प्रार्थनाके मन्त्रोका उल्लेख किया है। इसमे पत्नीकी सर्वविध पुष्टिकी प्रार्थना पतिद्वारा की जाती है। पति-पत्नीके परस्पर अतिशय आत्मीय सम्बन्धकी प्रार्थना करते हुए पत्नीको पति यज्ञीय पाक खिलाता है। एतदर्थ पारस्करगृह्यसूत्र (१।११।५)-का मन्त्र है—

'प्राणैस्ते प्राणान्सदधाम्यस्थिभिरस्थीनि मा॰सैर्मा॰सानि त्वचा त्वचम्।'

निश्छल प्रेमका यह पवित्र उत्कर्ष गर्भाधान-सस्कारको

अलौकिक स्वरूप प्रदान करता है। पति एक अन्य मन्त्रद्वारा पत्नीके हृदयका स्पर्श करते हुए उसके मनको समझनेकी कामना करता है।

इस प्रकार गर्भाधान-सस्कारमे देवोपासनाके द्वारा आध्यात्मिक विशुद्ध वातावरणकी पीठिका निर्मित करते हुए दम्पतीकी परस्पर दैहिक तथा मानसिक स्थितियाको समन्वित किया जाता है। इस उत्तम सम्बन्ध तथा पवित्र आध्यात्मिक भावनासे भविष्णु गर्भको विकारासे विरहित, गुणयुक्त तथा तेजस्वी बनाया जाता है।

गर्भाधान-सस्कारका स्वरूप देवमूर्तियाक प्रतिष्ठाकर्मकी भाँति आधिदैविक है। चैतन्यका अधिष्ठान मानव-शरीर देवायतन है। मन्दिरम देवताके प्रतिष्ठापनके लिये जिस प्रकार मन्त्रासे शुद्धि की जाती है, उसी प्रकारके अनुष्ठानद्वारा गर्भाधान-सस्कारम जीवमे चैतन्यरूपिणी महती शक्तिके प्रतिष्ठापनकी योग्यता उत्पन्न की जाती है। यह शब्दशक्तिके प्रवाह एव सकल्पयुक्त क्रियाके द्वारा सम्पन्न होती है। भारतीय परम्पराम प्रत्येक जीवको परतत्त्वका अशभूत तथा चिच्छक्तिसे सम्पन्न माना गया है। उस व्यष्टिगत चैतन्यका आवाहन तथा प्रतिष्ठापन इस प्राथमिक गर्भाधान-सस्कारमे किया जाता है। देवोपासनाकी यह भावना गर्भाधानको आधिदैविक रूप प्रदान करती है। मानव-सुलभ दोषोके परिहारके लिये जिस प्रकार देवमूर्तियाका सस्कार विहित है, उसी प्रकार धरित्रीके रत्नस्वरूप जीवका सस्कारके द्वारा निर्दोष तथा समाजमे विद्योतमान बनाया जाता है। मनुस्मृति (२।२७)-म गर्भाधान आदि सस्कारोंका यही प्रयोजन निर्दिष्ट है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

बीजगत तथा क्षेत्रगत दोषाकी निवृत्तिके साथ जीवनको ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बनाना इन सस्कारोका पावन उद्देश्य है।

गर्भाधान-सस्कारमे याज्ञिक दृष्टि और मन्त्रार्थ

वैदिक दृष्टिसे गर्भाधान-सस्कारका स्वरूप याज्ञिक है। शतपथब्राह्मण (१४।९।४।३)-म इसे वाजपेय यागक समान महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है—

'**यावान् ह वै वाजपेयेन लाको भवति तावानस्य लोको भवति।**'

इस सस्कारमे प्रयुक्त प्रत्येक अङ्ग यज्ञके साधन माने गय हैं तथा इस पुत्रमन्थकी याज्ञिक प्रक्रियाके द्वारा यजमानको सुकृत एव उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस सस्कारम पतिके द्वारा मन्त्रका पाठ होता है। पारस्कराचार्यने—'**तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्॥ अथास्यै दक्षिणाꣳसमधि हृदयमालभते।**'—इस सूत्रमे निर्देश किया है कि वधूको उद्वाह कर निर्दिष्ट ऋतुकालम प्रवेशन अर्थात् अभिगमन करना चाहिय। वधूके दाहिने स्कन्धभागसे हृदयतकको वर अपने दाहिने हाथसे स्पर्श-आलिङ्गन करते हुए इस मन्त्रको उच्चरित करता है—

'**यत्ते सुसीमे हृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाह तन्मा तद्विद्यात्पश्येम शरद शत जीवेम शरद शतꣳ शृणुयाम शरद शतम्॥**' (पा०गृ० १।११।९)

मन्त्रका भाव यह है—'**चन्द्रमा मनसो जात** ' इस श्रुतिके अनुसार विराट् पुरुषोत्तमके मनसे चन्द्रमाका उद्भव हुआ है। उस चन्द्रमामे तुम्हारा मन अधिष्ठित है, उसी प्रकार मेरे मनका भी वही चन्द्रमुख अधिष्ठान है, इसको अपने मनसे समझा। एक अधिष्ठानमे अधिष्ठित होनेपर अनेक भी एक हो जाते हैं। चन्द्रमा भगवान्की मानसिक सृष्टिम आता है, अत '**आत्मा वै पुत्रनामासि**' यह श्रुति कहती है कि भगवान्के मनसे उत्पन्न हुआ पुत्र चन्द्रमा भगवान्का मन ही है। चन्द्रमा सत्त्वगुणसम्पन्न सुशीतल है, तदधिष्ठित तुम्हारा मन भी सत्त्वगुणसे सम्पन्न है, यह मैं जानता हूँ, ऐसा तुम भी मेरे मनको जानो। इस रीतिसे मरा और तुम्हारा मन एकरूपताको प्राप्त होवे और हम दोनो भगवत्स्वरूपको जाननेमे सफल बने। हम दोनो विवाहसूत्रम बद्ध होकर गृहस्थाश्रममे प्रविष्ट हुए हैं और इस एक धरित्रीके आधारमे अधिष्ठित भी हैं। यह मन्त्र विश्वबन्धुत्वका भी परिचायक है। पवित्र भावनाको लेकर गृहस्थाश्रममे प्रविष्ट हम नेत्रासे, कानोसे परिपुष्ट होकर देखते-सुनते हुए सौ वर्ष जीवनयात्राका चलाये।

शाखान्तरमें समावेशनके मन्त्र भिन्न हैं। उसमे पत्नीके अवयवोको विष्णु आदि देवताआसे कल्पित समझकर अभिगमन करनेको कहा गया है। उसमे '**सुमनस्यमान** ' पदके द्वारा पूर्वोक्त तात्पर्य अभिव्यक्त होता है। इस मन्त्रमे '**सुसीमे**' पदका शोभन सीमन्तवाली—यह अर्थ है। विवाहके

'अलौकिकश्रेयस्साधनत्वेन विहितक्रियात्व विहितत्व वा धर्मत्वम्।'

सस्कारोका उद्देश्य तथा क्रम

धर्मकी व्यावहारिक स्थितिको प्रत्यक मानवम प्रतिष्ठापित करनेके उद्दश्यसे भारतीय तत्त्वचिन्तकाने प्रत्यक मानवक लिये सस्काराका विधान किया है। 'सस्कार' शब्दका अभिप्राय हे—दोपापाकरणपूर्वक गुणाधान अथात् शुद्धिकी धार्मिक क्रियाआ तथा देहिक मानसिक एव बौद्धिक परिष्कारक उद्दश्यसे किये जानेवाल अनुष्ठान जिनक अनुपालनसे व्यक्ति समाजका पूर्णत विकसित सदस्य हो सक। अत सस्काराम अनेक आरम्भिक विचार धार्मिक विधि-विधान तथा अनुष्ठान भी समाविष्ट हें, जिनका उद्दश्य सस्कार्यके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका परिष्कार, शुद्धि एव पूर्णता है। वैदिक गृह्यसूत्रा एव स्मृतियोकी मान्यता है कि सस्काराक सविधि अनुष्ठानस विलक्षण तथा चिरस्थायी विशिष्ट व्यक्तिनिष्ठ गुणाका प्रादुर्भाव होता है। अत मित्रमिश्रने सस्कारकी परिभापा इस प्रकार प्रतिपादित की हे—

'आत्मशरीरान्यतरनिष्ठा विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष सस्कार ।'

विभिन्न भारतीय आचार्योकी दृष्टिम सस्काराकी सख्या तथा क्रमम मतभेद है। गृह्यसूत्रो एव स्मृतियाम ग्यारहसे प्रारम्भकर चालीसतक सस्काराका परिगणन है परतु निवन्ध-ग्रन्थाम सार-सग्रहकी दृष्टिसे सोलह सस्काराको मुख्यत माना गया है। इन सोलह सस्काराका क्रम इस प्रकार है—गर्भाधान, पुसवन सीमन्तान्नयन जातकर्म, नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन कर्णवेध चूडाकरण, विद्यारम्भ उपनयन वेदारम्भ, केशान्त समावर्तन, विवाह तथा अन्त्यष्टि। यह सस्कारसमूह मानव-जीवनको शुद्ध करनेकी चरणबद्ध प्रक्रिया है। लौकिक जीवनम मानुप-आनन्दका सचय करते हुए च्युतिरहित चरम लक्ष्यकी प्राप्ति सस्काराका फल हे। इस सदर्भम वीरमित्रोदयमे शङ्ख-लिखितका वचन उद्धृत है—

सस्कारै सस्कृत पूर्वैरुत्तरैरनुसस्कृत ।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्म पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुन ।

गर्भाधान-सस्कारकी प्राथमिकता

सस्काराकी परिगणनाम गर्भाधान-सस्कार प्रथम है। इस सस्कारको प्राथमिकता देना भौतिकवादियाकी दृष्टिस भारतीय धमका आश्चर्यजनक प्रारम्भ माना जा सकता है। परतु वस्तुत यही सस्कार मानवक प्रादुभावम प्राथमिक पवित्रता एव शुद्ध भावनाका बीजारोपण करता है। अन्य समाजाकी भाँति भारताय समाजम मानवके उद्भवको भौतिक पदार्थोंकी सयोगजन्य क्रिया अथवा विकारक रूपमें नहीं माना गया है अपितु मानवीय उत्पत्तिका भारताय ऋपियाने धर्मकी दृष्टिस प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार विश्वकी अन्य सभ्यताआम विवाहक नियम दृष्ट अथवा प्रत्यक्ष फल (सामाजिक सुविधा शारीरिक सुख तथा सतान-सुख आदि)-का आधार मानकर ही निरूपित हैं परतु भारतीय आर्पशास्त्राम विज्ञान तथा दर्शन—दोनाके समन्वयस दृष्ट एव अदृष्ट फलाक आधारपर स्त्री-पुरुषोंक विवाह आदि पारस्परिक नियम निश्चित किय गय हैं। विवाहके अनन्तर भौतिकवादियाकी दृष्टिम गर्भाधानके सदर्भम भी सृष्टिकी धाराका क्रमिक विकास तथा विस्तार ही एक उद्दश्य है परतु वैदिक सस्कृति इसके द्वारा ऐहिक तथा पारलौकिक द्विविध अभ्युन्नतिका मार्ग प्रशस्त करता है। पितृ-ऋणस मुक्तिकी इच्छा गर्भाधान-सस्कारका पवित्र एव आध्यात्मिक उद्दश्य है। पितृ-ऋणसे मुक्तिके अनन्तर *ही मोक्षप्राप्ति सम्भव है। मनुस्मृतिका कथन है*—**'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्'**। इस कर्तव्यबुद्धिसे गर्भाधान-जैसा नैसर्गिक तथा नितान्त भौतिक कर्म भी पवित्र दायित्वका स्वरूप प्राप्त कर प्रकाशित हो उठता है।

गर्भाधानकी आधिदैविक भावना

वीरमित्रोदयम गर्भाधानको क्षेत्रसस्कार माना गया है। गर्भाधान-सस्कारके अनुष्ठानकी प्रक्रियामे अन्य पूर्वाङ्ग विधियाके अनन्तर-आचार्य-पारस्करने पतिद्वारा समस्त हानियोके निरासके लिये देवताआसे प्रार्थनाके मन्त्राका उल्लेख किया है। इसम पत्नीकी सर्वविध पुष्टिकी प्रार्थना पतिद्वारा की जाती है। पति-पत्नीके परस्पर अतिशय आत्मीय सम्बन्धकी प्रार्थना करते हुए पत्नीको पति यज्ञीय पाक खिलाता है। एतदर्थ पारस्करगृह्यसूत्र (१।११।५)-का मन्त्र है—

प्राणैस्ते प्राणान्सदधाम्यस्थिभिरस्थीनि मा॰सैर्मा॰सानि त्वचा त्वचम्।

निश्छल प्रमका यह पवित्र उत्कर्ष गर्भाधान-सस्कारको

अलौकिक स्वरूप प्रदान करता है। पति एक अन्य मन्त्रद्वारा पत्नीके हृदयका स्पर्श करते हुए उसके मनको समझनेकी कामना करता है।

इस प्रकार गर्भाधान-संस्कारमे देवोपासनाके द्वारा आध्यात्मिक विशुद्ध वातावरणकी पीठिका निर्मित करते हुए दम्पतीकी परस्पर दैहिक तथा मानसिक स्थितियोको समन्वित किया जाता है। इस उत्तम सम्बन्ध तथा पवित्र आध्यात्मिक भावनासे भविष्णु गर्भको विकारासे विरहित गुणयुक्त तथा तजस्वी बनाया जाता हे।

गर्भाधान-संस्कारका स्वरूप देवमूर्तियोंक प्रतिष्ठाकर्मकी भाँति आधिदेविक है। चैतन्यका अधिष्ठान मानव-शरीर देवायतन है। मन्दिरमे देवताक प्रतिष्ठापनके लिये जिस प्रकार मन्त्रासे शुद्धि की जाती है, उसी प्रकारके अनुष्ठानद्वारा गर्भाधान-संस्कारमे जीवमे चैतन्यरूपिणी महती शक्तिके प्रतिष्ठापनकी याग्यता उत्पन्न की जाती है। यह शब्दशक्तिके प्रवाह एव सकल्पयुक्त क्रियाके द्वारा सम्पन्न होती है। भारतीय परम्परामे प्रत्येक जीवको परतत्त्वका अशभूत तथा चिच्छक्तिसे सम्पन्न माना गया है। उस व्यष्टिगत चैतन्यका आवाहन तथा प्रतिष्ठापन इस प्राथमिक गर्भाधान-संस्कारम किया जाता है। देवोपासनाकी यह भावना गर्भाधानको आधिदैविक रूप प्रदान करती है। मानव-सुलभ दापोके परिहारके लिये जिस प्रकार देवमूर्तियोका संस्कार विहित है, उसी प्रकार धरित्रीके रत्नस्वरूप जीवको संस्कारके द्वारा निर्दोष तथा समाजम विद्योतमान बनाया जाता है। मनुस्मृति (२। २७)-मे गर्भाधान आदि संस्कारोका यही प्रयोजन निर्दिष्ट है—

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

बीजगत तथा क्षेत्रगत दोषाकी निवृत्तिके साथ जीवनको ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बनाना इन संस्काराका पावन उद्देश्य है।

गर्भाधान-संस्कारमे याज्ञिक दृष्टि और मन्त्रार्थ

वैदिक दृष्टिसे गर्भाधान-संस्कारका स्वरूप याज्ञिक है। शतपथब्राह्मण (१४। ९। ४। ३)-म इसे वाजपेय यागक समान महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है—

'यावान् ह वै वाजपयेन लाको भवति तावानस्य लोको भवति।'

इस संस्कारमे प्रयुक्त प्रत्येक अङ्ग यज्ञके साधन माने गय हैं तथा इस पुत्रमन्थकी याज्ञिक प्रक्रियाके द्वारा यजमानको सुकृत एव उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस संस्कारमे पतिके द्वारा मन्त्रका पाठ होता है। पारस्कराचार्यने—'**तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्॥ अथास्यै दक्षिणांसमधि हृदयमालभते।**'—इस सूत्रमे निर्देश किया है कि वधूको उद्वाह कर निर्दिष्ट ऋतुकालम प्रवेशन अथात् अभिगमन करना चाहिये। वधूके दाहिने स्कन्धभागसे हृदयतकको वर अपने दाहिने हाथसे स्पर्श-आलिङ्गन करते हुए इस मन्त्रको उच्चरित करता है—

'**यत्ते सुसीमे हृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाह तन्मा तद्विद्यात्पश्येम शरद शत जीवेम शरद शतः शृणुयाम शरद शतम्॥**' (पा०गृ० १। ११। ९)

मन्त्रका भाव यह है—'**चन्द्रमा मनसो जात**' इस श्रुतिके अनुसार विराट् पुरुषात्तमके मनसे चन्द्रमाका उद्भव हुआ है। उस चन्द्रमाम तुम्हारा मन अधिष्ठित है, उसी प्रकार मेरे मनका भी वही चन्द्रमुख अधिष्ठान है, इसको अपने मनसे समझो। एक अधिष्ठानमे अधिष्ठित होनेपर अनेक भी एक हो जाते हैं। चन्द्रमा भगवान्‌की मानसिक सृष्टिमे आता है, अत '**आत्मा वै पुत्रनामासि**' यह श्रुति कहती है कि भगवान्‌के मनसे उत्पन्न हुआ पुत्र चन्द्रमा भगवान्‌का मन ही है। चन्द्रमा सत्त्वगुणसम्पन्न सुशीतल है, तदधिष्ठित तुम्हारा मन भी सत्त्वगुणसे सम्पन्न है,-यह मैं जानता हूँ, ऐसा तुम भी मरे मनको जानो। इस रीतिसे मेरा और तुम्हारा मन एकरूपताको प्राप्त होवे और हम दोनो भगवत्स्वरूपको जाननेम सफल बने। हम दोनो विवाहसूत्रमे बद्ध हाकर गृहस्थाश्रममे प्रविष्ट हुए हैं और इस एक धरित्रीके आधारमे अधिष्ठित भी हैं। यह मन्त्र विश्वबन्धुत्वका भी परिचायक है। पवित्र भावनाको लेकर गृहस्थाश्रममे प्रविष्ट हम नेत्रोसे, कानासे परिपुष्ट होकर देखते-सुनते हुए सौ वर्ष जीवनयात्राको चलाये।

शाखान्तरमे समावेशनके मन्त्र भिन्न हैं। उसमे पत्नीके अवयवोका विष्णु आदि देवताआसे कल्पित समझकर अभिगमन करनेको कहा गया है। उसमे '**सुमनस्यमान**' पदके द्वारा पूर्वोक्त तात्पर्य अभिव्यक्त होता है। इस मन्त्रमे '**सुसीम**' पदका शोभन सीमन्तवाली—यह अर्थ है। विवाहक

अवसरपर कन्याके सीमन्तम वरन सिन्दूर लगाया है, यह सौभाग्यका सूचक हे।

पत्नीको सुमधुर पाक खिलानक मन्त्रम भी दानाके प्राणोके एकाकार हानेकी प्रार्थना पति करता है। अस्थि, मास तथा त्वचाके भी अद्वैतकी कामना इस मन्त्रम है।

गर्भाधान-सस्कारका काल तथा कर्तव्य

गर्भाधान-सस्कारके कालके विपयम भी भारतीय आचार्योने पर्याप्त विवेचन किया है। यद्यपि स्मृतिग्रन्थामे बालविवाहकी धारणा दृष्टिगोचर होती है, परतु इसके आधारपर कतिपय आधुनिक विचारकोके द्वारा बाल्यावस्थाम दाम्पत्यसम्बन्ध स्थापित करनेके विपयमे की जानेवाली आलोचना उचित नहीं है। वस्तुत यह उनकी भ्रान्त धारणा है। आधुनिक युगम विवाहके समयसे ही दाम्पत्यसम्बन्ध-स्थापनकी प्रथा प्राय सर्वत्र प्रचलित दृष्टिगोचर होती है, परतु भारतीय शास्त्रोमे विवाह-सस्कार तथा गर्भाधान-सस्कारके कालके विपयमे अनेक स्थानापर यह स्पष्ट प्रतिपादित है कि ये दोनो सस्कार समकालिक नहीं हैं। दोनो सस्काराके लिये अलग-अलग वय सीमा निर्धारित है। आचार्य आश्वलायनने विवाह-सस्कारके अनन्तर ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेका निर्देश दिया है। इस प्रकार विवाहके अनन्तर भारतीय दृष्टिम सहशयन व्यक्तिका अधिकार नहीं अपितु शास्त्रनियमित कर्तव्य है।

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमे महर्पि भावयव्य तथा उनकी पत्नी रामशाके सवादके माध्यमसे यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि विवाहके अनन्तर भी पत्नीकी प्रौढता तथा शारीरिक अनुकूलताके अनुसार विलम्बसे गर्भाधान-सस्कारका काल निर्धारित किया जाता है। आचार्य सुश्रुतने गर्भाधान-सस्कारका काल वधूकी षोडश वर्षकी आयुके अनन्तर निर्धारित किया है। वाग्भटने भी इसी प्रकार प्रौढताका समर्थन किया है। अत यह प्रमाणित है कि भारतीय मनीपियाकी दृष्टिमे दोनो सस्कारोके समय भिन्न-भिन्न हे। इन दानाका एक ही समय मानना उचित नहीं हे।

विवाह-सस्कार सम्पन्न कर निर्दुष्ट ऋतुकालम वर भार्याभिगमनका अधिकारी होता है। इस सस्कारको ऋतुशान्तिकर्म तथा समावेश-सस्कार नामसे भी व्यवहार करते हैं। वधूका प्रथम ऋतु हानपर दिन नक्षत्र समय आदिका परीक्षण किया जाता है। दूपित दिन-नक्षत्र-वलाम ऋतुमती हानेपर तदर्थ शान्तिकर्म किया जाता है। कहीं-कहीं ऋतुवलासे लग्न निकालकर कुण्डली बना ली जाती है। जिस प्रकार उपनयनसे त्रैवर्णिक द्विज कहलाते हैं, वैसे ही कन्याका आर्तव दूसरा जन्म समझा जाता है। प्रथम ऋतुसमयको देखकर ऋतुशान्ति कर गर्भाधान-सस्कार किया जाता है। प्रथम ऋतुका समय निर्दुष्ट होनेपर केवल समावेश-सस्कारमात्र प्रचलित है।

समावेश-सस्कार ऋतुके स्नानानन्तर होता है। १६ दिन ऋतुकाल हैं। अष्टमी, एकादशी त्रयादशी चतुर्दशी पर्व, अमावास्या, पूर्णिमा सूर्यसक्रमण, श्राद्धदिन, उसके पूर्वोत्तर दिन और नक्षत्रामे मघा, रेवती, मूल तथा मासामें कर्कराशिमे सूर्यके रहते हुए वर्जित है। वर्ज्य और अवर्ज्यका विचार करते हुए अभिगमन हो तो प्रजावृद्धिकी समस्या नहीं होगी।

विवाह-सस्कारके अनन्तर वर भार्याभिगमनका अधिकारी होता है। **'तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम्'** इत्यादि वचनाके द्वारा ऋपियाने इस लौकिक कर्मकी स्वेच्छाको शास्त्रके माध्यमसे कर्तव्यकी परिधिमे नियमित किया है। भारतीय आर्प-परम्पराका यह वैशिष्ट्य है कि इसम मानवीय सम्बन्ध कर्तव्यके रूपमे विवेचित हैं, अधिकारके रूपमे नहीं। अत भारतीय धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे गर्भाधान आदि सस्कार मुख्यत कर्तव्य हैं अधिकार नहीं। कर्तव्यसे सम्बद्ध अधिकार प्राप्त होते हैं। अत शास्त्रोमे जब कर्तव्यको परिभापित किया जाता है तो उसके अधिकार स्वत निश्चित हो जाते हैं। अन्य सभ्यताओमे कर्तव्य तथा अधिकार एक साथ प्रवृत्त हाते हैं, परतु भारतीय परम्पराम अधिकार कर्तव्यक अनन्तर उपस्थित होता है। इस कारण भारतीय सामाजिक मार्ग निर्द्वन्द्व तथा सुग्राह्य हो जाता है। भारतीय चिन्तनमे व्यक्तिके अधिकार उसके सामाजिक उत्तरदायित्वसे कथमपि पृथक् नहीं हो सकते। इस रीतिसे गर्भाधान-सस्कार भी नवदम्पतीकी वैयक्तिक सन्तुष्टिके लिये नहीं, अपितु अपने शास्त्रोक्त कर्तव्यके उत्तरदायित्वसे परिपूर्ण गौरवदायिनी सामाजिक प्रक्रियाके रूपम उपदिष्ट है।

गर्भाधान-सस्कार एव गर्भ-संरचना*

(श्रीरामानन्दजी जायसवाल)

जीवकी उत्पत्तिको 'गर्भोत्पत्ति' कहा जाता है। गर्भरूप जीव ऋतुस्नात-स्त्रीके आश्रयमे रहता है। ऋतुस्नानसे पूर्व स्त्री 'रजस्वला' कहलाती है। अत प्रथम रजस्वलाका स्वरूप बतलाया जाता है। प्राय बारह वर्षकी अवस्थास प्रारम्भ होकर पचास वर्षपर्यन्त प्रतिमास (चन्द्रमासके अनुसार २७-२८ दिनपर) स्त्रीके गर्भाशयसे स्वभावसे ही आर्तव या रजका स्राव हुआ करता है और आर्तवस्रावके प्रथम दिनसे सोलह रात्रियाको 'ऋतुकाल' माना जाता है और इनमे भी निषिद्धेतर काल ही गर्भाधानके योग्य माना जाता है। रजस्वला स्त्रीके लिये शास्त्राम विशिष्ट नियम प्रतिपादित हैं। उनकी अवहेलनासे गर्भम दोष—विकार आ जाते हैं।

रजस्वला स्त्रीको चाहिये कि वह चौथे दिन शुद्ध होनेपर स्नान कर नवीन वस्त्र एव सुन्दर आभूषण पहने और सर्वप्रथम पतिका दर्शन करे। ऋतुस्नानके अनन्तर स्त्री सर्वप्रथम जैसे पुरुषको देखती है, वैसा ही पुत्र उत्पन्न करती है। इसलिये उसे पतिका ही दर्शन करना चाहिये। यदि पति उस समय वहाँ न हो तो पुत्र आदि किसी प्रियजनका दर्शन करे। निषिद्ध तिथियो तथा निषिद्ध कालका परिहार कर प्रशस्त रात्रियाम आधान होनसे गर्भकी आयु, आरोग्य सौभाग्य ऐश्वय तथा बलम वृद्धि होती है।

गर्भकी प्रत्येक मासकी सरचना

पहला मास—गर्भाधानके अनन्तर शुक्र और रज जिस रूपम सघटित होता है, उसी रूपमे बना रहता है। एक सप्ताहतक गर्भ श्लेष्मसदृश रहता है और फिर प्रथम मासम कललरूप हो जाता है, परतु अव्यक्त रहता है अर्थात् उसम स्त्री अथवा पुमान्का कोई लक्षण व्यक्त नहीं रहता। इसलिये इसी मासम स्त्रीत्व अथवा पुस्त्वकी अभिव्यक्तिके पूर्व ही पुसवनविधिका प्रयोग करे, क्योंकि पुसवनरूपी पुरुषार्थ यदि बलवान् होता है तो वह पूर्वजन्मकृत कर्मके बलको दबा देता है अर्थात् यदि दैववश गर्भम कन्या होनेवाली होती है तो विधिविहित पुसवन-सस्कारसे पुमान् गर्भ हो जाता है।

दूसरा मास—दूसरे मासमे शुक्र एव रजमे विद्यमान (और मातासे प्राप्त होनेवाले) पञ्च महाभूतोका समुदाय वात, पित्त एव कफके द्वारा पलता (शुष्क, पक्व तथा स्निग्ध होता) हुआ घन—कठोर या ठोस-सा हो जाता है।

तीसरा मास—तीसरे मासमे सिर, बाहु तथा सक्थियाके पाँच पिण्ड एव अङ्गुली आदि छोटे प्रत्यङ्ग बन जाते—कुछ-कुछ व्यक्त हो जाते हैं।

चौथा मास—चौथे मासम सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्फुट—व्यक्त हो जाते हैं और हृदय व्यक्त हो जानेसे चेतना भी व्यक्त हो जाती है। (इसलिये चौथे मासमें) गर्भ नाना प्रकारकी वस्तुआकी इच्छा करता है और इसीलिये नारी दो हृदयावाली 'दौहृदिनी' मानी जाती है। तत्कालीन विशिष्ट प्रकारकी इच्छा या अभिलाषाका नाम दौहृद या दोहद है। उक्त दोहदकी अवज्ञा (इच्छा पूर्ण न) होनेसे गर्भपर बुरा प्रभाव पडता है। अत उन दिना गर्भवती जिन-जिन विहित पदार्थोंका उपभोग करना चाहे, यथाशक्ति उपलब्ध कराना चाहिये।

पाँचवाँ मास—पाँचवे मासम मन प्रबुद्ध हो जाता है।

छठा मास—छठे मासमे बुद्धि प्रबुद्ध हो जाती है।

सातवाँ मास—सातवे मासमे गर्भके प्राय सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्णरूपसे व्यक्त हो जाते हैं।

आठवाँ मास—आठव मासमे मातासे गर्भमे और गर्भसे मातामे ओजका सञ्चार होता रहता है। अत वे दोनो बार-बार म्लान (अप्रसन्न) एव मुदित (प्रसन्न) होते रहते हैं और इसीलिये आठवे मासम जन्मा बच्चा अरिष्टयोगसे सम्पन्न होता है, क्योकि ओज स्थिर नहीं होता। कौमारभृत्य (बालतन्त्र)-का मत है कि वह बच्चा नैर्ऋत्य नामक बालग्रहका भाग होता है, इसलिय नहीं जीता, तथापि शीघ्र उक्त ग्रहको शान्तिके लिये शास्त्रविधिसे उपाय करना चाहिये। बालतन्त्रम लिखा है कि भगवान् रुद्रने आठवे मासमे जन्मे बच्चे नैर्ऋत्य नामक ग्रहको दे दिये थे। अत इस मासमे उक्त बालग्रहके निमित्त भातकी बलि देनी चाहिये।

नौव अथवा दसव मासमे प्राय प्रसव हो जाता है। कभी-कभी ग्यारहव अथवा बारहवे मासमे भी प्रसव होता है। इसके पश्चात् कोई विकार समझना चाहिय।

---

* जीवकी गर्भ-सरचनाके विषयमें उपनिषदों विशेषरूपस गर्भोपनिषद्, आयुर्वेदमें चरकसहिताके शारीरस्थान सुश्रुतसहिता तथा श्रीमद्भागवत गरुडपुराण (सारोद्धार) आदि पुराण-ग्रन्थोमे विशेष वर्णन प्राप्त होता है।

जन्मसे पूर्वके सस्कार—गर्भाधान, पुसवन तथा सीमन्तोन्नयन

(डॉ० श्रीनिवासजी आचार्य एम्०ए० (संस्कृत हिन्दी) साहित्यरत्न एम्०एड्० पी एच्०डी०)

'सस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुम 'घञ्' प्रत्यय करनेस बना है। शास्त्राम भिन्न-भिन्न अर्थोंम सस्कार शब्दका प्रयोग हुआ है, यथा—परिष्करण सस्करण भूषण, सस्कृति, स्मरण, शक्ति, शुद्धिक्रिया, पवित्रीकरण शुचिता, मलापनयन, अतिशयाधान आदि। अद्वैतवेदान्तम शारीरिक क्रियाआक मिथ्यारोपका 'सस्कार' कहा गया है। वस्तुत धर्मशास्त्रोंके अनुसार मानवके कायिक-वाचिक-मानसिक परिशुद्धिके लिये धार्मिक अनुष्ठानाके द्वारा अपन अदर उत्पन्न धर्मविशेष ही 'सस्कार' पदवाच्य है।

व्यक्तित्वके विकाससे सस्कृति और सस्कृतिका समारम्भ सस्कारोसे हाता है। सस्कारासे ही मानवशिशुम मानवताका प्रथम उद्‌बोध होता है। गर्भाधानसे लेकर मृत्युतक सस्कार-विधानसे शरीर एव मनकी शुद्धिके साथ उसके भावी जीवनकी प्रशस्त परम्परा वनती है। सस्कारके अनुसार जीवन-यापन करनेवाला ही मनुष्य-पदवाच्य है। सस्कारोका उल्लघन करनेके कारण ही मानवमे दानवत्वका सञ्चार होता है। सस्कारोमे बताये गये सात्त्विक मार्गपर चलनेस ही कल्याण होता है। जन्मसे पूर्व ही सस्काराकी प्रक्रिया प्रारम्भ हा जाती है।

नारी जन्मदात्री माँ होती है। वह शिशुकी प्रथम शिक्षिका भी हे। वीर, साहसी, पवित्र एव सर्वथा उन्नतिशील सतानका सृजन हो इसके लिये प्रत्यक नारीके व्यावहारिक जीवनम अन्तर्बाह्य पवित्रता बनाये रखनेके लिये सस्काराका बहुत बडा योगदान है। सामाजिक प्रगतिहेतु प्रत्येक परिवार एव समाजका भी कर्तव्य है कि नारीको सभी दशाओम सस्कारापर प्रतिष्ठित रह सकने योग्य बनाये। इसीसे समाज एव राष्ट्रकी भलाई है।

महर्षि अङ्गिराने गर्भाधान पुसवन सीमन्तोन्नयन एव विष्णुबलिको जन्मसे पूर्वके सस्कारामे परिगणित किया है। विष्णुबलिके स्थानपर अनवलाभनको भी कुछ विद्वान् चतुर्थ सस्कारके रूपमे मानते हैं। यहाँ सक्षेपमे इनका वर्णन प्रस्तुत है—

गर्भाधान-सस्कार—माताक गर्भम बीजके रूपमे शिशुका प्रतिष्ठापन ही 'गर्भाधान-सस्कार' है। यह सस्कार ऋतुकालम निषिद्धेतर दिनोंमें पालनाय है। सुयाग्य सतानकी उत्पत्ति सस्कारासे युक्त गर्भाधानसे ही होती है। इस सस्कारक द्वारा गर्भदापनिवारण क्षेत्रमाजन तथा वीर्यसम्बन्धी विकार दूर हाता है। स्त्रीको गर्भधारणका सामर्थ्य प्रदान करनक लिये बृहदारण्यकापनिषद् (६।४।२१)-म निम्न प्रार्थनामन्त्रका विधान है—

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्ता पुष्करस्रजौ॥

अर्थात् दवि। जिसकी भूरि-भूरि स्तुति की जाती है वह सिनीवाली (जिस अमावास्याम चन्द्रमाकी एक कला शेष रहती है) तुम हो, तुम यह गर्भ धारण करो, धारण करो। दव अश्विनीकुमार (सूर्य और चन्द्रमा) अपना किरणरूपी कमलाकी माला धारण करक मुझसे अभिन्न रूपमे स्थित हो तुझम गर्भका आधान कर।

गर्भाधानके लिये तिथि एव नक्षत्राके शुभाशुभत्वका विचार भी शास्त्राम किया गया है। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है—

षोडशर्तुनिशा स्त्रीणा तस्मिन् युग्मासु सविशत्।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत्॥

(याज्ञ०स्मृति १।३।७९)

यहाँपर 'निशा' शब्दके प्रयोगसे गर्भाधानके लिये दिनम स्त्रीगमन पापकर्मके रूपम प्रसिद्ध है। प्रश्नोपनिषद् (१।१३)-मे उल्लेख है कि '**प्राण वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या सयुज्यन्ते**'। भावनाके अनुसार सतानकी प्राप्ति होती है। परदारगमन पाप होता है। अत इन नियमाके पालक कदापि व्यभिचारी नहीं होते।

पुसवन-सस्कार—'पुमान् प्रसूयते येन तत् पुसवनमिति' जिस सस्कारके द्वारा निश्चितरूपसे पुत्रोत्पत्ति हाती है, उसे 'पुसवन-सस्कार' कहा गया है। गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो इसलिय पुसवन-सस्कारका विधान है। '**गर्भाद् भवेच्च पुसूते पुस्त्वरूपप्रतिपादनम्**' (स्मृतिसग्रह)। '**पुम्**' नामक नरकसे त्राण करनेक कारण ही पुत्र नाम पडा।

महर्षि मनुने भी कहा है—'पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणा-नन्त्यमश्नुते' (मनु० ९।१३७)। पुत्रसे लोकोंपर विजय और पौत्रसे आनन्त्यकी प्राप्ति होती है। गर्भस्थ शिशुमें पुरुषत्वके विकासके पहले गर्भके दूसरे या तीसरे महीनेमें अथवा गर्भके लक्षण स्पष्ट होनेके बाद ही पुंसवन-संस्कारका विधान बतलाया गया है। आश्वलायन-गृह्यसूत्रमें उल्लेख है कि गर्भाधानके तीसरे महीनेमें पुनर्वसु नक्षत्रमें उपवासपूर्वक पत्नीको अपने करतलमें गण्डूषमात्र (चुल्लूभर) दधि रखकर उसमें सेमके दो बीज तथा एक जौका दाना डालकर उसे पीना चाहिये। क्या पी रही हो? यह प्रश्न पतिके पूछनेपर पत्नीका उत्तर होना चाहिये—पुंसवन। ऐसे तीन बार दधि पीनेका विधान है। पीते समय पुत्रकी कामनासे निम्नलिखित वैदिक मन्त्रका पाठ होता रहे जिससे गर्भके पिण्डमें पुरुषके चिह्न उत्पन्न हों—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० १३।४)

सीमन्तोन्नयन-संस्कार—गर्भस्थितिके चौथे छठे या आठवें महीनेमें गर्भकी शुद्धिके लिये 'सीमन्तोन्नयन-संस्कार' किया जाता है। इस संस्कारमें पति गर्भवती पत्नीके सीमन्त (माँग)-का निम्न मन्त्रसे गूलरकी डालीसे पृथक्करण करता है—

१ ॐ भूर्विनयामि, २ ॐ भुवर्विनयामि तथा ३ ॐ स्वर्विनयामि। साधारणतः गर्भके चार मासके बाद बालकके अङ्ग-प्रत्यङ्ग, हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। उसमें चेतना शक्तिका विकास होनेके साथ-साथ इच्छाएँ भी पैदा होती हैं जो माताके हृदयमें पैदा होती हैं। उस समय मातापर जो संस्कार डाले जाते हैं, उनका प्रभाव बालकपर अनुभूत होता है। इस समय माताको अच्छी शिक्षा, सदुपदेश, सद्ग्रन्थ-पठन आदि तत्त्वोंकी जरूरत होती है। इन दिनों माताको बहुत ही प्रमुदित रहना चाहिये, तभी समाजमें प्रह्लाद-जैसे भक्त, अभिमन्यु-जैसे वीर और शिवाजी-जैसे देशप्रेमी पैदा होंगे।

इस संस्कारमें गर्भवतीको सुपाच्य पौष्टिक खीर खिलायी जाती है, जो पुष्टिवर्धक होती है। प्राचीन समयमें सीमन्तोन्नयन-संस्कारके अवसरपर वीणावादनपूर्वक सामगानका गान आदि भी होता था, जो गर्भवतीको प्रफुल्लित करने तथा भक्तिका संस्कार भरनेका एक उत्तम साधन था।

विष्णुबलि—गर्भके आठवें मासमें यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारमें भगवान् विष्णुके लिये अग्रिम चौंसठ बलिरूप आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं। वैदिक सूक्तोंसे विष्णुकी स्तुति की जाती है। इस संस्कारके द्वारा गर्भस्थ शिशुकी सुरक्षा होती है और गर्भच्युतिका भय दूर होता है। गर्भमें शिशुकी सुरक्षाके लिये माङ्गलिक पूजन हवन आदि कार्योंके बाद जल एवं औषधियोंकी प्रार्थना की जाती है।

धर्माचरण सदाचारका पालन पूजा प्रार्थना आदि भारतीय संस्कृतिके आदर्श हैं। आध्यात्मिकता एवं नैतिकताके आधारपर संस्कारोंको अपनानेसे परिवार समाज, देश, राष्ट्र एवं विश्वका कल्याण होगा यह ध्रुव सत्य है।

~~~o~~~

कुल, जननी और जन्मभूमिकी महिमा कौन बढ़ाता है?

समाहितो ब्रह्मपरः प्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मना विमुक्तिमाप्नोति ततश्च योगतः॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥
(स्कन्द० मा० कुमा० ५५।१३९-१४०)

जो एकाग्रचित्त ब्रह्मचिन्तनपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय है वह महात्मा योगी इस योगमें सिद्धि प्राप्त करता है और उस योगके प्रभावसे मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसका चित्त मोक्षमार्गमें आकर परब्रह्म परमात्मामें संलग्न हो सुखके अपार सिन्धुमें निमग्न हो गया है उसका कुल पवित्र हो गया उसकी माता कृतार्थ हो गयी तथा उसे प्राप्त करके यह सारी पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।

~~~o~~~

आयुर्वेदमें वर्णित आयुष्यवर्धक मेधाजनन-संस्कार

(वैद्य श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश', भिषगाचार्य साहित्यायुर्वेदरत्न)

आयुर्वेदमें संस्कारोंका विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। औषधियोंमें अभीष्ट गुणोंकी वृद्धिके लिये आयुर्वेदमें मुख्यरूपसे संस्कारोंकी उपयोगिता प्रदर्शित की गयी है। आचार्य चरकका कहना है—

'संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते।'

(चरकसं० विमान० १।२७)

विशिष्ट विधिद्वारा अच्छे गुणोंका स्थापना करना ही संस्कार है। दोषापनयन (दोषोंको दूर करना) और गुणाधान (गुणोंको बढ़ाना)—ये दोनों ही प्रयोजन संस्कारोंसे सम्पादित होते हैं।

शिशुके जन्म लेनेपर जो संस्कार किया जाता है, वह जातकर्म-संस्कार कहलाता है। जातकर्म-संस्कारका मुख्य अङ्ग मेधाजनन-संस्कार है। इस संस्कारका आयुर्वेदके संहिताग्रन्थोंमें विशद वर्णन मिलता है। इस मेधाजनन-संस्कारमें जो औषधियाँ उपयोगमें लायी जाती हैं, इनसे उत्तम स्वास्थ्यके साथ-साथ बल और विशेषतः मेधाकी वृद्धि होती है। यह संस्कार घरके वृद्ध पुरुष या महिलाद्वारा किया जाता है। सामान्यतः बालकके लिये वृद्ध पुरुष और बालिकाके लिये वृद्ध महिला यह संस्कार सम्पादित करती है। जनभाषामें इसे कहीं-कहीं 'घूँटी देना' कहते हैं। दक्षिण भारतमें इसे 'उरमएन्ट' कहते हैं।

धी बुद्धि प्रज्ञा मेधा आदि शब्द लगभग तुल्य अर्थमें प्रयुक्त होते हैं किंतु मेधाके लिये कहा गया है—धारणा शक्तिवाली बुद्धिका नाम मेधा है—'धीर्धारणावती मेधा'। आयुर्वेदमें मेधासे धी (बुद्धि) धृति और स्मृतिका ग्रहण किया जाता है अर्थात् धी धृति और स्मृति—ये तीनों मेधाके भेद कहे गये हैं—

'धीर्धृतिस्मृतिरूपा तु मेधा वर्धयतीह यत्।'

(प्रियनिघण्टु)

इन मेधावर्धक द्रव्योंमें कुछ शीतवीर्य (ठंडी तासीरवाले) और कुछ उष्णवीर्य (गरम तासीरवाले) होते हैं। जो मेधावर्धक द्रव्य शीतवीर्य होते हैं, वे धारणशक्तिको बढ़ानेमें अधिक समर्थ होते हैं और जो मेधावर्धक द्रव्य उष्णवीर्य होते हैं, वे ग्रहण-शक्ति और स्मरण-शक्तिको बढ़ानेमें अधिक समर्थ होते हैं। शङ्खपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी आदि शीतवीर्यवाली मेधावर्धक वनौषधियाँ हैं और वचा, अश्वगन्धा, ज्योतिष्मती (मालकाङ्गनी), कूठ आदि उष्णवीर्यवाली मेधावर्धक वनौषधियाँ हैं। यजुर्वेदमें मेधाकी प्राप्तिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की गयी है—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥

(यजु० ३२।१४)

अर्थात् जिस मेधाकी देवगण और पितर उपासना करते हैं, हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! मुझे भी उस मेधासे युक्त बनाइये।

आयुर्वेद मात्र चिकित्साशास्त्र ही न होकर एक जीवनदर्शन भी है। यह मनुष्यको स्वस्थ बनानेके साथ-साथ संस्कारित करनेपर भी बल देता है। जातकर्म-संस्कारके लिये प्रायः सभी संहिता-ग्रन्थोंमें यही उल्लेख है कि शिशु-जन्मके पश्चात् परिवारका प्रमुख व्यक्ति पूर्वाभिमुख होकर कुशासे शिशुके शरीरपर कुछ जल छिड़के। इसके बाद स्वर्णभस्म १५ मिलीग्रामको शहद और गोघृतमें (दोनों असमान मात्रामें लेकर) मिश्रित कर स्वर्णशलाका या अपनी स्वच्छ अनामिका अङ्गुलीसे बालकको चटाये। चटाते समय दाहिने हाथको उपयोगमें लाये।

स्वर्णभस्मके स्थानपर शुद्ध स्वर्णको साफ पत्थरपर पानीके साथ घिसकर भी उपयोगमें लाया जा सकता है। रसतरङ्गिणीकार लिखते हैं कि सोना घिसकर देनेके लिये और सोनेका वरक बनानेके लिये शुद्ध सोना ही उपयोगमें लाना चाहिये। किसी सुयोग्य वैद्यके निर्देशनमें कुछ सोना शुद्ध कर रख लेना चाहिये जो कई शिशुओंके लिये उपयोगमें लाया जा सकता है। सामान्यतः सोनेको शुद्ध करनेकी विधि इस प्रकार है—सुनारसे सोनेका एक कण्टकवेधी (काँटे या सूईसे जिसमें छेद हो जाय इतना पतला) पत्र बनवाकर इसे आगमें तपाये लाल रंगका हो

जानेपर उसे तिलके तलम बुझाये। इस प्रकार तिलक तेल, तक्र (छाछ), गामूत्र, खट्टी काजी (खट्टी काजीके स्थानपर गन्नका सिरका उपयोगम लाया जा सकता है) और कुलथाक क्वाथम सात-सात वार वुझाये। इसमे स्वर्ण शुद्ध हा जाता है। य तल तक्र आदि दो-तीन वार बुझानेके बाद वदल देन चाहिय।

यह स्वर्ण केवल एक वार ही नहीं अपितु दो-तीन दिनातक दिनम दा-तीन वार चटाये। ऐसा करनेसे पयाप्त लाभ मिलता है।

सुश्रुतसहितामे अनन्त चूर्ण (स्वणभस्म)-के स्थानपर अनन्तारसका भी पाठ मिलता है। अनन्तारसस ब्राह्मीरसका ग्रहण किया जाता है। स्वर्ण ब्राह्मी तथा घृत आदि य आयुष्यवधक है। स्वर्णका परम मधावर्धक कहनके साथ हा 'आयुष्यमग्रय' (आयु बढानवाल द्रव्योम श्रेष्ठ) भा कहा गया है। ब्राह्मी भी मधावर्धक होनक साथ आयुवधक भी है। इग्लैण्डक डॉक्टर भी ब्राह्मीको आयुवर्धक मानत हैं। चानके जिस लीचिणियन नामक व्यक्तिने लम्बी आयु प्राप्त की थी वह इमी ब्राह्मीका प्रतिदिन नियमस सेवन करता था। वैस भी मेधावर्धक द्रव्य आयुष्यवर्धक हात हैं।

आचार्य सुश्रुत एव वृद्ध वाग्भटने इसी प्रसङ्गम मेधाजननके लिये शङ्खपुष्पी, वचा, शतावरी, बला, श्वेत दूर्वा, कूठ आदिका भी उल्लेख किया है। इन वनौषधियाको मेधाजननक लिये यथावश्यक उपयोगम लाना चाहिये। इस सम्बन्धम किसी आयुर्वेदज्ञसे परामर्श लना उपयुक्त है।

इस मेधाजनन-सस्कारके पश्चात् शिशुक शरीरपर हल्के हाथसे तेलका मालिश करना चाहिये और सोने-चाँदीके पदार्थोंको गरम कर उन्हे पानीम बार-बार बुझानेस गर्म हुए जलसे स्नान कराना चाहिय।

इस सस्कारसे बालककी आयु एव मेधावृद्धिके साथ-साथ रागनिराधक क्षमतामें वृद्धि हानस वह व्याधियासे आक्रान्त नहीं होता। इससे ग्रहबाधाजनित व्याधियोंसे भी रक्षा होती है हृदय पुष्ट होता है, मुखकी कान्ति बढती है वातवाहिनिया एव रक्तवाहिनियोको शक्ति मिलती है तथा शरीरगत अनेक प्रकारक विषप्रभाव नष्ट हो जाते हैं।

जन्मके छठे दिन किया जानेवाला षष्ठीमहोत्सव-सस्कार

(प० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)

पुराणाम भगवती षष्ठीदेवीका शिशुआका अधिष्ठात्रा देवी निरूपित किया गया है। वालकाका दीर्घायु बनाना उनका रक्षण एव भरण-पोषण करना देवी षष्ठीका स्वाभाविक गुण है। स्वय नन्दरायजी एव यशोदा मैयान जगत्क पालक श्रीकृष्णक जन्मक छठे दिन अपने पुत्रके अरिष्टनिवारणार्थ ब्राह्मणाका बुलाकर भगवती षष्ठीका पूजन विधिपूर्वक करवाया था। आज वालकाके जन्मक छठे दिन प्रसूतिगृहम छठा-पूजन-सस्कारका विधान प्रचलित है। पुराणामे षष्ठीदवीकी बडी महत्ता प्रतिपादित की गयी ह। मूलप्रकृतिक छठ अशस प्रकट होनसे इनका 'षष्ठी' नाम पडा हे। ये ब्रह्माकी मानसपुत्रा एव शिव-पार्वतीके पुत्र स्कन्दकी प्राणप्रिया दवसनाके नामसे प्रख्यात हें। इन्ह विष्णुमाया और 'बालदा' भी कहा जाता है। य षोडश मातृकाआम परिगणित है।

भगवती षष्ठीदवी अपने यागक प्रभावस शिशुओके पास सदैव वृद्धामाताके रूपम विद्यमान रहती है तथा उनकी रक्षा एव भरण-पोषण करती रहती हैं। बालकाको स्वप्नमे खिलाती हँसाती दुलारती एव अभूतपूर्व वात्सल्य प्रदान करती रहता हैं इसी कारण सभी शिशु अधिकाश समय साना ही पसद करते है। आँख खुलते ही बालककी दृष्टिसे भगवती आझल हो जाती हे, अत कभी-कभी शिशु बहुत जोरस रोने भी लगत हैं।

प्रसूतिसूतक (जननाशौच)— बालकके जन्मके साथ ही घरम दस दिवसीय सूतक लग जाता है। इस अवधिम घरम प्रतिष्ठित देवताआका पूजन परिवारक असगात्रीय सदस्य (बहन-बेटीके परिवार) या ब्राह्मणद्वारा कराया जाता है। इसी कारण नामकरण-सस्कार, हवन-पूजनका

विधान ११वे दिन सम्पन्न किया जाता है, किंतु पुराणाके अनुसार भगवती पष्ठीदेवीका पूजन बालकके पिता एव माताद्वारा ही छठे दिन किया जाता है, इसमे जननाशौचका विचार नहीं माना गया है।[1]

पूजनका समय—पष्ठीदेवीका पूजन प्राय शामको करनेकी परम्परा है।

देवीपूजनम प्रयुक्त होनेवाली सभी सामग्रियासे पूजन करना चाहिये। इसमे मुख्यरूपसे विघ्नेश, पष्ठीदेवी तथा जीवन्तिकादेवीका पूजन होता है। पष्ठीदेवीकी प्रतिमा किसी काष्ठपाठ या दीवालपर बनायी जा सकती है अथवा सुपारी, अक्षतपुञ्ज आदिपर भी पूजा हो सकती है।

कहीं-कहीं दीवालपर पष्ठीदेवीकी पुत्तलिका बनाकर प्रसूताके हाथका छापा लगा कागज पुत्तलिकाके नीचे चिपका दिया जाता है। ये छापे तेलसे प्रसूताद्वारा प्रसूतिपूर्व लगवाकर रख लिये जाते हैं। पुत्तलिकाको कौडी एव वस्त्रोद्वारा शृगारित किया जाता है। यदि पुत्तलिका बनाना सम्भव न हो तो भगवती पष्ठीदेवीकी चाँदीकी प्रतिमा घी-गुडसे छापेवाले कागजके ऊपर चिपका दी जाती है। पूजनसे पूर्व नूतन प्रतिमाओकी प्राणप्रतिष्ठा कर लेनी चाहिये।

सङ्कल्प—माता शिशुको अपनी गोदमे ले ल। पिता हाथमे जल पुष्प एव अक्षत लेकर भगवती पष्ठीदेवीके पूजनका इस प्रकार सङ्कल्प करे—

देशकालका उच्चारण करके गोत्र तथा अपना नाम बोलकर आगे कहे—'**अस्य शिशोरायुरारोग्यसकलारिष्ट-शान्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ विघ्नेशस्य जन्मदाना पष्ठीदेव्या जीवन्तिकायाश्च यथामिलितोपचारै पूजन करिष्ये।**' सङ्कल्प जल पुष्प एव अक्षत देवीके चरणाम समर्पित कर दे।

निम्न मन्त्रद्वारा पष्ठीदवीका आवाहन करे—

आयाहि वरदे दवि पष्ठी दवीति विश्रुत।
शक्तिभि सह पुत्र मे रक्ष रक्ष वरानन॥

आवाहनका दूसरा मन्त्र इस प्रकार है—

मयूरवाहना देवीं खड्गशक्तिधनुर्धराम्।
आवाहये देवसेना तारकासुरमर्दिनीम्॥

तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठा कर निम्न मन्त्रद्वारा भगवती पष्ठीका ध्यान करे—

देवीमञ्जनसङ्काशा चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
सिहारूढा जगद्धात्रीं कौमारीं भक्तवत्सलाम्॥
खड्ग खेट च बिभ्राणामभय वरदा तथा।
तारकाहारभूषाढ्या चिन्तयामि नवाशुकाम्॥[2]

एक दूसरे ध्यानस्वरूपम बताया गया है कि सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये प्रकृतिके छठे अशसे उत्पन्न जगत्‌की माता हैं। श्वेत चम्पक-पुष्पके समान इनका वर्ण है, ये रत्नमय आभूषणासे अलकृत हैं। इन परम चित्स्वरूपिणा भगवती देवसेना (पष्ठीदेवी)-की मैं आराधना करता हूँ—

पष्ठाशा प्रकृते शुद्धा सुप्रतिष्ठाञ्च सुव्रताम्।
सुपुत्रदाञ्च शुभदा दयारूपा जगत्प्रसूम्॥
श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूपणभूषिताम्।
पवित्ररूपा परमा देवसेना परा भजे॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड ४३।४९ ५०)

ध्यानके अनन्तर यथाविधि उपचारासे भगवतीका पूजन करना चाहिये। पूजनके अनन्तर '**ॐ ह्रीं पष्ठीदेव्यै स्वाहा**' देवीके इस अष्टाक्षरमन्त्रका यथाशक्ति जप करना चाहिये। इसके उपरान्त हाथमे पुष्प लेकर प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नम।
शुभायै देवसेनायै पष्ठीदेव्यै नमो नम॥
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नम।
सुखदायै मोक्षदायै पष्ठीदेव्यै नमो नम॥
शक्त पष्ठाशरूपायै सिद्धायै च नमो नम।
मायायै सिद्धयोगिन्यै पष्ठीदेव्यै नमो नम॥
पारायै पारदायै च पष्ठीदेव्यै नमो नम।

१-(क) जननाशौचमध्य प्रथमपष्ठदशमदिनपु दाने प्रतिग्रहे च न दोष। अन्न तु निपिद्धम्। (पारस्करगृह्य० पञ्चभाष्य १।१६)

(ख) सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवता। तासा यागनिमित्त तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता॥
प्रथमे दिवसे षष्ठ दशमे चैव सर्वदा। त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतक पुत्रजन्मनि॥ (पा०गृ०सूत्र पञ्चभाष्यम व्यासजीका वचन)

२-जो कज्जलके समान कृष्णवर्णकी आभावाली हैं अपने मस्तकपर अर्धचन्द्रको धारण किये हैं सिहपर आसीन हैं अपने हाथामें खड्ग, खेट, अभयमुद्रा तथा वरदमुद्रा धारण किये हैं तारकावलीके हारासे विभूषित हैं तथा नवीन वस्त्र धारण किये हैं उन जगत्‌को धारण पोषण करनेवाली भक्तापर वात्सल्यभाव रखनेवाली कौमारी देवी पष्ठीका मैं ध्यान करता हूँ।

सारायै शारदायै च परायै सर्वकर्मणाम्॥
बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नम ।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥
प्रत्यक्षायै च भक्ताना षष्ठीदेव्यै नमो नम ।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु॥
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदव्यै नमो नम ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा॥
हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नम ।
धनं देहि प्रिया दहि पुत्र देहि सुरश्वरि॥
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नम ।
भूमि देहि प्रजा देहि देहि विद्या सुपूजित॥
कल्याणं च जयं दहि षष्ठीदेव्यै नमो नम ।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्र०ख० अ० ४३।५७—६६)

दवीका नमस्कार है। महादवीका नमस्कार है। भगवती सिद्धि एव शान्तिको नमस्कार है। शुभा, दवसेना एव भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदान देनेवाली, पुत्र देनेवाली, धन दनेवाली, सुख प्रदान करनेवाली एव मोक्षदाता भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठे अशसे प्रकट शक्तिस्वरूपा भगवती सिद्धाका नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, स्वय मुक्त एव मुक्तिदात्री, सारा, शारदा और परादवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याणदात्री, कल्याणस्वरूपिणी एव कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्ताको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबक लिये सम्पूर्ण कार्योंम पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी नित्य वन्दना करते हैं और देवताओंकी रक्षाम जो तत्पर रहती हैं उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिसा और क्रोधसे रहित देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरि! आप मुझ धन दें, प्रिय पत्नी दे, पुत्र दनेकी कृपा कर, मुझे धर्म द यश दे हे षष्ठीदेवि! आपको बार-बार नमस्कार है। ह सुपूजिते! आप मुझे भूमि द प्रजा द विद्या द तथा कल्याण एव जय प्रदान करे। हे षष्ठीदेवि! आपको बार-बार नमस्कार है।

देवीकी प्रार्थनाके कुछ अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—

षष्ठिदेवि नमस्तुभ्य सूतिकागृहशालिनि।
पूजिता परया भक्त्या दीर्घमायु प्रयच्छ मे॥
जननी जन्मसौख्याना वर्धिनीधनसम्पदाम्।
साधनी सर्वभूताना जन्मदे त्वा नता वयम्॥
गौरीपुत्रो यथा स्कन्द शिशुत्व रक्षित पुरा।
तथा ममाप्यमुं बाल षष्ठिके रक्ष ते नम ॥
यथा दाशरथी रामश्चतुर्मूर्तिर्भवप्रदे।
त्वया सरक्षितस्तद्वद्बालं पाहि शुभप्रदे॥
विष्णुनाभिस्थितो ब्रह्मा दैत्येभ्यो रक्षितस्त्वया।
तथा मे बालक रक्ष योगनिद्रे नमोऽस्तु ते॥
रक्षितौ पूतनादिभ्यो नन्दगोपसुतौ यथा।
तथा मे बालक पाहि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥
यथा वृत्रासुरादिन्द्रो रक्षितोऽदितिबालक ।
त्वया तथा मे बालोऽय रक्षणीयो महेश्वरि॥
यथा त्वयाञ्जनीपुत्रो हनुमान् रक्षित शिशु ।
तथा मे बालक रक्ष दुर्गे दुर्गार्तिहारिणि॥
रुद्र स्वर्गाद्यथा देवि कश्यपादिसुतास्त्वया।
मातस्त्राहि तथा बाल विष्णुमाये नमोऽस्तु ते॥
सर्वविघ्नानपाकृत्य सर्वसौख्यप्रदायिनि।
जीवन्तिके जगन्मात पाहि न परमश्वरि॥

श्लोकोका भाव इस प्रकार है—सूतिकागृहम निवास करनेवाली षष्ठीदेवी! आपको नमस्कार है। परम भक्तिसे पूजित होनेवाली आप मुझे दीर्घ आयु प्रदान कर। हे जन्मदे! आप जन्मसम्बन्धी सुखोंकी जननी हैं, धनसम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाली हैं, सभी प्राणियोकी उत्पत्तिरूपा हैं, आपको हम प्रणाम करते हैं। हे षष्ठिके देवि! जिस प्रकार प्राचीन समयमे आपने पार्वतीपुत्र स्कन्दकी रक्षा की थी, उसी प्रकार मेरे इस बालककी रक्षा करे, आपको नमस्कार है। हे भवप्रदे! जिस प्रकार महाराज दशरथजीके पुत्र श्रीराम ही भरत आदि चार रूपाम होकर आपके द्वारा रक्षित हुए, उसी प्रकार ह शुभप्रदे! इस बालककी रक्षा कर। हे योगनिद्रे! जिस प्रकार आपने भगवान् विष्णुकी नाभिमें स्थित ब्रह्माजीकी दैत्यासे

रक्षा की, उसी प्रकार मेरे वालककी भी रक्षा कर, आपको नमस्कार है। हे दुर्गे! जिस प्रकार पूतना आदिसे आपने नन्दगोपकुमारो (श्रीकृष्ण-बलराम)-की रक्षा की वैसे ही मेरे बालककी भी रक्षा कर, हे देवि! आपको नमस्कार है। जिस प्रकार देवी अदितिके बालक इन्द्रकी आपने वृत्रासुरसे रक्षा की, उसी प्रकार हे महेश्वरि! मेरा यह बालक भी आपद्वारा रक्षणीय है। जिस प्रकार आपने अञ्जनापुत्र शिशु हनुमान्की रक्षा की, उसी प्रकार हे दुर्गे! हे दुर्गार्तिहारिणि! मेरे बालककी रक्षा कर। जिस प्रकार रुद्र तथा कश्यप आदिके पुत्रोकी आपने स्वर्गसे प्रकट होकर रक्षा की, हे मात! उसी प्रकार मेरे बालककी रक्षा कर। हे विष्णुमाये! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वरि! हे जीवन्तिके! आप सभी प्रकारके सुखोको प्रदान करनेवाली हैं तथा जगत्की माता हैं, आप सभी विघ्नोको दूर करके हमारी रक्षा कर।

प्रार्थनाके उपरान्त आरती करे। तदनन्तर हाथमे पुष्प लेकर निम्न मन्त्रसे भगवती षष्ठीदेवीको पुष्पाञ्जलि समर्पित करे—

श्रद्धया सिक्तया भक्त्या हार्दप्रेम्णा समर्पित ।
मन्त्रपुष्पाञ्जलिश्चाय कृपया प्रतिगृह्यताम्॥

निम्न मन्त्रसे क्षमा-प्रार्थना करे—

मन्त्रहीन क्रियाहीन भक्तिहीन सुरेश्वरि।
यत्पूजित मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥
यदक्षरपदभ्रष्ट मात्राहीन च यद्भवेत्।
तत्सर्वं क्षम्यता देवि प्रसीद परमेश्वरि॥

तदनन्तर दिक्पाल-पूजन करे। षष्ठी एव दिक्पाल-पूजनके अनन्तर द्वारदेशमे दोनो दरवाजोपर काजलसे दो-दो द्वारमातृकाओकी प्रतिमा बनाकर उनका पूजन किया जाता है। द्वारमातृकाओके नाम हैं—धिषणा वृद्धिमाता, गौरी तथा पूतना। पञ्चोपचार पूजनकर निम्न मन्त्रसे बालकके दीर्घ आयु तथा अरिष्ट-निवारणके लिये प्रार्थना की जाती है—

धिषणा वृद्धिमाता च तथा गौरी च पूतना।
आयुर्दात्र्यो भवन्त्वेता अद्य बालस्य मे शिवा ॥

इस प्रकार षष्ठी-पूजन सम्पन्न कर रात्रिमे जागरण कर महोत्सव मनाना चाहिये। यह भी मान्यता है कि षष्ठीकी रात्रिमे बालकके लिये विशेष अरिष्ट-योग रहता है। अनेक भूतादि बाधाएँ उपस्थित होती हैं, अत बालकको रक्षाके लिये हाथमे शस्त्र धारण कर पुरुषोंको रातभर बालककी रक्षा करनी चाहिये।* सूतिकागृहमें अखण्ड दीपक, शस्त्र आदि स्थापित करने चाहिये।

देवी षष्ठीके वात्सल्यकी कथा

भगवती षष्ठीदेवीका वात्सल्य-महिमा एव असीम अनुकम्पाकी एक विलक्षण कथा ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृति-खण्डके ४३वे अध्यायमे तथा श्रीमद्देवीभागवत (नवम स्कन्ध)-मे वर्णित है। तदनुसार देवर्षि नारदजीने भगवान् श्रीनारायणसे भगवती 'षष्ठी', मङ्गलचण्डिका तथा देवी मनसाके प्राकट्यका प्रसङ्ग जाननेकी इच्छा जतायी थी तब श्रीनारायणने सर्वप्रथम देवी षष्ठीकी यह कथा उन्हें सुनायी थी—

राजा स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत एक प्रसिद्ध राजा हो चुके हैं। वे त्रिलोकके शासक थे किंतु स्वभावसे योगिराज होनेके कारण विवाह नहीं करना चाहते थे। श्रीब्रह्माजीके समझानेसे उन्होने रूपवती एव गुणवती कन्या मालिनीसे विवाह कर उन्हे अपनी महारानी बना लिया। महारानी मालिनीके कई वर्षोतक कोई संतान नहीं होनेसे कश्यप मुनिने राजा प्रियव्रतसे पुत्रेष्टियज्ञ करवाया। अग्निदेवद्वारा प्रदत्त प्रसादके प्रभावसे महारानी गर्भवती हुईं और यथासमय उन्होने एक सुन्दर पुत्रको जन्म तो दिया किंतु वह बालक मृत पैदा हुआ। यह जानते ही महारानी पुत्रशोकसे पीडित हो मूर्च्छित हो गयीं। राजा प्रियव्रत रोते-बिलखते हुए मृत बालकको लेकर श्मशान गये एव वहाँ उसे छातीसे चिपकाकर दारुण विलाप करने लगे। उसी समय बालकोकी अधिष्ठात्री देवी षष्ठी वहाँ एक भव्य विमानमें पधारीं। श्वेत चम्पाके समान वर्णवाली तथा आभूषणोसे अलंकृत दिव्यशक्तिको देख राजाने बालकके शवको धरतीपर रख दिया एव भगवतीको प्रणाम कर उनकी स्तुति की और उनसे कृपापूर्वक परिचय बतानेकी

---

* रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषत । रात्रौ जागरण कार्यं जन्मदाना तथा बलि ॥
पुरुषा शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषित । रात्रौ जागरण कुर्यु ॥
(पारस्करगृह्यसूत्रमे मिताक्षरामें मार्कण्डेयका वचन)

प्रार्थना की। भगवती षष्ठी राजाके व्यवहारसे प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने कहा—'हे राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी एवं मातृकाओंमें प्रसिद्ध 'षष्ठी' हूँ। मैं तुम्हारा कातर स्वर सुनकर यहाँ आयी हूँ।' राजाने पुनः देवीकी स्तुति की और पुत्रपर कृपाकी याचना की—उसे जीवित करनेकी प्रार्थना की। भगवती बोलीं—'राजन्! जीवनमें सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, राज-पाट, धन-धान्य, स्त्री, संतान—ये सभी कर्मके अनुसार प्राप्त होते हैं। कर्मोंके प्रभावसे ही किसीके यहाँ सुन्दर संतान तो किसीके यहाँ विकलाङ्ग, अङ्गहीन, कुरूप संतान तो किसीके यहाँ मृत संतान पैदा होती है। हे राजन्! कर्म अत्यन्त बलवान् है, उसका फल भोगना ही पड़ता है। श्रेष्ठ उपायों एवं भक्तिसे कर्मफलको निश्चितरूपसे टाला भी जा सकता है।' ऐसा कहकर भगवती षष्ठीने बालकको धरतीसे उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें उसे जीवित कर दिया। राजाने मृत बालकको देवीकी गोदमें किलकारियाँ भरते देख अत्यन्त उत्साहका प्रदर्शन किया तथा देवीकी स्तुति की। देवी षष्ठीने अपने पुत्रके

रूपमें राजाको वह सुन्दर बालक सौंपते हुए उनसे अपनी पूजा-आराधना सम्पूर्ण राज्य (त्रिलोक)-में प्रारम्भ करवानेका निर्देश दिया।

राजाने महलमें लौटकर प्रत्येक माहके शुक्लपक्षकी षष्ठीको यह त्योहार मनाये जानेकी आज्ञा प्रसारित करवा दी, तभीसे भगवती षष्ठीदेवीके पूजनका विधान प्रारम्भ हुआ।

~~o~~

नामकरण-संस्कार

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')

चराचर जगत् नामरूपात्मक है। जगत्‌की कोई भी वस्तु नाम और रूपकी परिधिके परे नहीं। रूप चक्षुग्राह्य होता है और नाम श्रुतिसंवेद्य। रूपके साक्षात्कारसे किसी वस्तुका प्रथम आभास प्राप्त होता है तो नामसे उसका स्पष्ट अभिज्ञान। नामोच्चारण करते हुए उसकी गुणराशि भी स्पष्ट होती है, जैसे—अमृत, अमृता, धात्री, गङ्गा, शङ्कर आदि। 'नाम' शब्दका अर्थ ही है—'**नम्यते अभिधीयते अर्थोऽनेन इति नाम**' अर्थात् जिससे अर्थका अभिज्ञान हो, वही नाम है। रूप सम्मुख रहनेपर भी नाम जाने बिना स्पष्ट ज्ञान नहीं होता—

रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

(रा०च०मा० १।२१।५, ८)

अतः जगत्-व्यापारमें नामका अत्यधिक महत्त्व है। यह वाणीगुणविशिष्ट मानवकी भाषिक संरचना है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या? पशु-पक्षी भी अपना नाम सुनकर उल्लसित उत्कण्ठित होते हैं। नामकी महिमासे अगुण-अगोचर भी सगुण-साकार हो जाता है। आचार्य बृहस्पति बताते हैं कि 'नाम अखिल व्यवहार एवं मङ्गलमय कार्योंका हेतु है। नामसे ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है, इसी कारणसे नामकर्म अत्यन्त प्रशस्त है'—

नामाखिलस्य व्यवहारहेतुः
शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्य-
स्ततः प्रशस्तं खलु नामकर्म॥

(वीरमित्रोदय सं०प्र०)

भगवान् तथा संतोंके नामकी महिमा तो इतनी अधिक है कि नाम लेते ही पुण्यकी प्राप्ति हो जाती है। जय श्रीराम, जय बजरङ्गी, जय माँ दुर्गे इत्यादि कहते ही हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गमें एक विशिष्ट प्रकारकी संतुष्टि एवं धीरताका त्वरित सञ्चार हो जाता है। अस्तु, धराधामपर अवतरित प्राणीको पृथक् अस्तित्व एवं विशिष्ट स्वरूप

प्रदान करनेवाला पहला चरण है—नामकरण-सस्कार।

हिन्दू-शास्त्राम वर्णित नामकरण-सस्कार वैज्ञानिक चिन्तनका प्रतिफल है। यह नवजात शिशुक आधिभौतिक, आध्यात्मिक एव आधिदैविक अभ्युदयकी 'मङ्गलमयी प्रस्तावना है। इसके आनुवशिक, सामाजिक और धार्मिक आधारबिन्दु हैं।

नामकरण-विधान—जननाशौचकी समाप्तिक पश्चात् मङ्गलवेलाम प्रसूताको पञ्चगव्यका प्राशन कराकर, जातकक पिताको स्वय मङ्गलस्नान करक बच्चेको नहलाकर शुभ वस्त्र एव मङ्गलतिलक धारण कर पवित्र आसनपर बैठकर आचमन प्राणायाम आदिक उपरान्त गौरी-गणश नवग्रह तथा पञ्चदेवाका विधिवत् पूजन और हवन-कर्म करना चाहिय।

यथासाध्य आचारानुसार काँसेक पात्रम फैलाय गय चावलाके ऊपर स्वर्ण-शलाकास चार* नाम लिखकर **'मनो जूति०'** इस मन्त्रसे उनकी प्रतिष्ठा करे। तदनन्तर पूजनका सङ्कल्प करना चाहिये, पुन घडी, घटा, ढोलक, शङ्ख आदि वाद्याको बजाकर, माताकी गोदम पूर्वाभिमुख सुलाये हुए बच्चेक दाय कानम तीन बार—'हे शिशु! तुम्हारा अमुक नाम है तुम्हारा अमुक गोत्र है तुम्हारे कुलदेवताका अमुक नाम है, तुम्ह उनकी भक्ति करनी चाहिये'—ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणाको बालकद्वारा प्रणाम कराना चाहिये। ब्राह्मणाद्वारा शिशुको दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया जाना चाहिये। इस क्रमम अधोलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

ॐ अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरद शतम्॥

नाम-सरचना—नामकरण-प्रक्रियाम, नामके स्वरूपपर भी गृह्यसूत्रा एव स्मृतिग्रन्थाम प्रकाश डाला गया ह। मोटे तौरपर नामकरणमे अग्राङ्कित बाताका विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये—

(क) नाम उच्चारण करनेमे सरल तथा श्रुतिमधुर होना चाहिये।

(ख) उसे लिङ्गभेदावबोधक होना चाहिये।

(ग) नाम यश ऐश्वर्य और शक्तिका बोधक होना चाहिये।

(घ) उसे वर्णकी स्थितिका अभिज्ञापक भी होना चाहिये।

(ङ) उसे जन्मकालिक वार नक्षत्र एव उसके अधिदेवताका आशीर्वाद दिलानेवाला होना चाहिये।

(च) उसे कुलदेवताके प्रति भक्ति विज्ञापित करनेवाला होना चाहिये।

(छ) उसे किसी विशिष्ट सत-महापुरुषकी स्मृति दिलानेवाला होना चाहिये।

(ज) उसे राष्ट्रिय स्वाभिमान और अस्मिताका उद्गाता करनेवाला होना चाहिये।

जहाँतक बालक-बालिकाओके नामकरणका प्रश्न है, उसम निम्नाङ्कित भिन्नता बरती जाती थी, जिसका अनुपालन होना चाहिये—

(क) पारस्करगृह्यसूत्र (१।१७।१)-के अनुसार बालकका नाम दो या चार अक्षराका होना चाहिये। उसका प्रारम्भ व्यञ्जन वर्णसे होना चाहिये इसमे अर्द्धस्वर होना चाहिये। नामका अन्त दीर्घ स्वर अथवा विसर्गके साथ होना चाहिये।

(ख) बालिकाओका नामकरण विषम सख्यात्मक अक्षरावाला होना चाहिये, आकारान्त या ईकारान्त होना चाहिये, उसम तद्धितका प्रयोग होना चाहिये—

'अयुजाक्षरमाकारान्त* स्त्रियै तद्धितम्॥'

(पा०गृ०सू० १।१७।३)

'त्र्यक्षरमीकारान्त स्त्रिया ' (वी०मि०, स०प्र०)

मनुस्मृतिके अनुसार स्त्रीका नाम उच्चारणमे सुखकर सरल सुननेमे अक्रूर, स्पष्टार्थ मनोहर, मङ्गलसूचक *दीर्घवर्णान्त* और आशीर्वादात्मक होना चाहिये। (मनु० २।३३)

(ग) वर्णाश्रमी व्यवस्थाके प्रतिष्ठापक होनेके नाते ऋषियाने बालकके नामकरणमें उसकी आनुवशिक पृष्ठभूमिको दृष्टिपथम रखनेका आदेश दिया है।

---

* शास्त्राम चार प्रकारके नामका विधान आया है—(१) कुलदेवतासे सम्बद्ध (२) माससे सम्बद्ध (३) नक्षत्रसे सम्बद्ध तथा (४) व्यावहारिक— **तच्च नाम चतुर्विधम्। कुलदेवतासम्बद्ध माससम्बद्ध नक्षत्रसम्बद्ध व्यावहारिक चेति।** (वीरमित्रोदय सस्कारप्रकाश)

मनुस्मृतिके अनुसार ब्राह्मणका नाम मङ्गल और आनन्दसूचक, क्षत्रियका नाम बल, रक्षा और शासन-क्षमताका सूचक, वैश्यका नाम-धन-ऐश्वर्यसूचक और शूद्रका नाम आज्ञाकारितासूचक होना चाहिये।

पाश्चात्य-सभ्यताके अन्धानुकरणकी भाग-दौडमे आज तो नामकरण एक सस्कार नहीं रहकर वाचिक विकारका रूप धारण करता जा रहा है। प्राय घर-घरम रिकी, रिकू डबलू, बबलू, पिन्टू, मिन्टू, जैक, जॉन डॉली-जैसे नामोकी आँधी बह रही है। पिता तो 'डेड' हो गये हैं तथा माता 'ममी' हो गयी हैं और यही कह-कहकर हम बडा गौरव महसूस कर रहे हैं।

क्या ही अच्छा होता हम सनातन हिन्दू-सस्कृति एव हिन्दू-सस्कारोके अक्षय विश्वकोश श्रीरामचरितमानसमे अभिचित्रित नामकरण-सस्कारसे प्रेरणा लेकर अपने जीवनको धन्य एव सुरम्य बना पाते—

जो आनद सिधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

(रा०च०मा० १।१९७।५—८ दोहा १९७)

~~~o~~~

नामकरण-संस्कार—शास्त्रीय अनुशीलन

(पं० श्रीबालकृष्ण कौशिक, एम्०ए० (सस्कृत हिन्दी) एम्०कॉम० एम्०एड्०, ज्योतिर्भूषण, धर्मशास्त्राचार्य)

देवगुरु बृहस्पतिने नामको जगत्के सम्पूर्ण व्यवहारहेतुका केन्द्र कहा है—

नामाखिलस्य व्यवहारहेतु
शुभावह कर्मसु भाग्यहेतु।
नाम्नैव कीर्ति लभते मनुष्य-
स्तत प्रशस्त खलु नामकर्म॥

(वीरमित्रोदय सस्कारप्रकाश)

आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहतेस्तथा।
नामकर्मफल त्वेतत् समुद्दिष्ट मनीषिभि॥

(स्मृतिसग्रह)

सासारिक जीवनम वस्तुकी तरह व्यक्तिके स्वयके परिचयहेतु भी नामकरण आवश्यक है। जीवमात्रके सम्यक् ज्ञानके लिये भाषाम सज्ञा शब्दकी अवधारणा है। वास्तवमे नामकरण व्यक्तिवाचक सज्ञा-निर्धारणका ही सस्कारित स्वरूप है। नामकरण-सस्कारहेतु हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियोने बडा ही वैज्ञानिक एव सूक्ष्म चिन्तन किया है ताकि प्रदत्ताभिधान (नामसज्ञा)-से जातकके व्यक्तित्वका स्वरूप आत्मोन्नतिकारक एव चरित्रवान् हो सके। सुविचारित नामकरणके पश्चात् जातक तदनुरूप बननेका आजीवन सतत प्रयास करता है। नामित व्यक्तिसे समाज भी तदनुरूप ही बननेकी अपेक्षा करता है। इसी कारणसे ब्राह्मणवर्णके नाम क्षमा, सत्य शील, त्याग, आस्तिक्य, भक्ति, शान्ति विनम्रता, सतोष, देवभक्ति आदि गुणाधारित होते थे। क्षत्रियवर्णके नाम वीरता, धैर्य, शौर्य, रणकौशल, निडरता आदि, वैश्यवर्णके नाम धन-सम्पत्ति, लक्ष्मी, ऐश्वर्यवान्, दया, दान आदि एव शूद्रवर्णके नाम सेवा आदि गुणासे युक्त होते थे।

हमारे ऋषि-महर्षियाने नामकरण-सस्कारमे कैसे कब एव कौन-सा नाम रखे, इसका विस्तृत शास्त्रीय विवेचन किया है। इसका सूत्रग्रन्था स्मृतिग्रन्था निबन्ध-ग्रन्था एव ज्योतिषीय मुहूर्तग्रन्थाम सम्यक् उल्लेख हुआ है।

नामधेय दशम्या तु द्वादश्या वास्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥

(मनुस्मृति २।३०)

'दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पिता नाम करोति॥' (पा०गृ०सू० १।१७।१)

मनुने १०व १२व या शुभ नक्षत्र तिथियुक्त मुहूर्तम नामकरण करनेहेतु कहा है जबकि पारस्करगृह्यसूत्रकारने इसे १०व दिन करनेको कहा है। मदनरत्नम इसका वर्णानुसार निर्धारण भी किया गया है—
~~~

द्वादशे दशमे वाऽपि जन्मतोऽपि त्रयोदशे।
षोडशे विंशतौ चैव द्वाविंशे वर्णतः क्रमात्॥

अर्थात् जन्मसे १०वें, १२वें या वर्णानुसार ब्राह्मणको १३वें दिन, क्षत्रियको १६वें दिन, वैश्यको २०वें दिन एवं शूद्रको २२वें दिन नामकरण-संस्कार करना चाहिये। मासान्त, सौवाँ दिन एवं वर्षान्त आदि गौणकालका भी उल्लेख है। धर्मसिन्धु (पूर्वार्द्ध परिच्छेद ३)-में इसे जातकर्मके तुरंत बाद या ब्राह्मणोंके लिये जन्मसे ११वें या १२वें दिन, क्षत्रियोंके लिये १३वें या १६वें दिन वैश्योंके लिये १६वें या २०वें दिन एवं शूद्रोंके लिये २२वें दिन या मासान्तमें करनेका उल्लेख किया है।

नामकरण-संस्कारमें मलमास, गुरु-शुक्रास्त, सिंहस्थ गुरु, देवशयन, दक्षिणायन आदिका दोष नहीं है 'अत्र मलमास-गुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति' (धर्मसिन्धु), परंतु वैधृति, व्यतीपात, ग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या, भद्रा आदि कुयोग वर्जित हैं। अपराह्न एवं रात्रिकालका भी निषेध है। पूर्वाह्न श्रेष्ठ एवं मध्याह्न मध्यम है। मुहूर्तप्रकाशमें पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिरा, मूल, उत्तरात्रय आदि ग्राह्य नक्षत्र माने गये हैं, अन्यत्र शतभिषा, श्रवण एवं रेवती भी ग्राह्य माने गये हैं। तिथि २, ३, ५, ७, १०, ११, १३ एवं कृष्णप्रतिपदा ग्राह्य हैं। स्थिर लग्न, स्थिर शुभ नवांश, शुभ गोचर चन्द्र एवं बुध, सोम, रवि, गुरु आदि वार प्रशस्त हैं।

अन्यत्रापि शुभे योगे वारे बुधशशाङ्कयोः।
भानोर्गुरोः स्थिरे लग्ने बालनामकृतिः शुभा॥

(मुहूर्तप्रकाश-संस्कारप्रकरण २९)

नामकरण-संस्कारकी क्रियाविधि—शुभ मुहूर्तमें सूतिका-स्नानके अनन्तर गृहशुद्धि करे। गणपत्यादि, ग्रह, मातृका तथा वरुणका पूजन करके नान्दीमुखश्राद्ध करे। बालकको स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहनाये। स्वस्तिवाचनपूर्वक माताकी गोदमें स्थित पूर्वाभिमुख बालकके दाहिने कानमें **'अमुक शर्मासि, अमुक वर्मासि'** इत्यादि नाम तीन बार सुनाये। तदनन्तर ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। जनभाषामें इसे दशोष्ण या दशदिवसीय जननाशौच-निवृत्ति कहा जाता है। नामकरण-संस्कार चारों वर्णोंका होता है। स्त्री एवं शूद्रका अमन्त्रक एवं द्विजातियोंका समन्त्रक होता है।

नाम कैसा हो—

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्॥
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्॥
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥

(मनुस्मृति २।३१—३३)

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम्।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः॥

(विष्णुपुराण ३।१०।९)

उपर्युक्त श्लोकोंसे तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणका नाम मङ्गलकारी एवं शर्मायुक्त, क्षत्रियका बल तथा रक्षासमन्वित, वैश्यका धन, पुष्टियुक्त, शूद्रका दैन्य और सेवाभावयुक्त हो। स्त्रियोंके नाम सुकोमल, मनोहारी, मङ्गलकारी तथा दीर्घवर्णान्त होने चाहिये, जैसे—यशोदा।

गृह्यसूत्रकार आचार्य पारस्करने कहा है कि बालकका नाम दो या चार अक्षरयुक्त, प्रथमाक्षर घोषवर्णयुक्त (वर्गका तीसरा, चौथा, पाँचवाँ वर्ण), मध्यमें अन्तःस्थ (य, र, ल, व आदि) एवं नामका अन्तिम वर्ण दीर्घ एवं कृदन्त हो तद्धितान्त न हो। यथा—देवशर्मा, शूरवर्मा आदि। कन्याका नाम विषमवर्णी तीन, पाँच, सात अक्षरयुक्त, दीर्घवर्णान्त एवं तद्धितान्त होना चाहिये* यथा—श्रीदेवी आदि।

धर्मसिन्धुकारने चार प्रकारके नाम बताये हैं—देवनाम, मासनाम, नक्षत्रनाम तथा व्यावहारिक नाम, यथा—रामदास, कृष्णानुज आदि देवता नाम हैं। चैत्रादि अमावस्यान्त मास नाम क्रमानुसार वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, अनन्त, अच्युत तथा चक्री हैं। नक्षत्रनाम नक्षत्रोंके नामपर, यथा—अश्विनीसे आश्वयुक् तथा कृत्तिकासे कार्तिक आदि होते हैं। गौणनाम अवकहडाचक्रके अनुसार नक्षत्रपादसे निर्धारित होते हैं, यथा—

* द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यान्न तद्धितम्॥
अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्॥ (पा०गृ०सू० १।१७।२-३)

अश्विनीके चार चरणासे क्रमश 'चू चे चो ला' से चूडामणि, चेतनप्रताप, चोलदास लालचद आदि निर्धारित होते हैं। कुछ ऋषियोने नक्षत्रनामको केवल उपनयन-संस्कारतक ही उपयुक्त बताया है, जिसे माता-पिता ही जाने, अन्य नही। व्यवहार-नाम ही सर्वत्र प्रचलनमे रहना चाहिये।

विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्राया ग्रहगोचरे।
जन्मराशिप्रधानत्व नामराशि न चिन्तयेत्॥
देशे ग्रामे गृहे युद्धे सेवाया व्यवहारके।
नामराशिप्रधानत्व जन्मराशि न चिन्तयेत्॥

निर्णयसिन्धुकारने बालकका नाम मास, गुरु एव कुलदेवताके नामपर भी करनेहेतु विकल्प लिखा है। देवमन्दिर, हाथी, घाडा वृक्ष, वापी, सरोवर तथा राजप्रासादके नामकरणका भी शास्त्रोम विचार किया गया है। शास्त्रकारोने कहा है कि माता-पिताको बालकके मूल नामको गुप्त रखना चाहिये, ताकि शत्रुके अभिचारादि कर्मोंसे बालककी रक्षा की जा सके। पिताको ज्येष्ठ पुत्रका नाम सम्बोधित नहीं करना चाहिय। अत माता-पिताको भी व्यवहारनामसे सम्बोधित करना चाहिये। पिता ज्येष्ठ पुत्रका स्वकल्पित अन्य नाम रखे।

इस प्रकार हिन्दूधर्ममे नामकरण-सस्कारका गहन एव वैज्ञानिक वर्णन उपलब्ध होता है।

जिस प्रकार क्षुद्र वस्तुएँ एव हीरा आदि रत्न प्रस्तराकारम प्राप्तिके पश्चात् सस्कारोसे ही परिष्कृत हाते हैं, उसी भाँति सस्कारासे ही व्यक्ति सुसस्कृत बनता है। इन सस्कारोके सम्यक् सम्पादनसे व्यक्ति ऐहिक एव पारलौकिक फल प्राप्त करता है।

सस्कार प्राणीको सत्त्वगुणकी ओर ले जाते हैं। सुसस्कृत व्यक्ति ही राष्ट्र एव सभ्य समाजका सुनागरिक हो सकता है एव आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक त्रितापशमन करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति कर सकता हे।

~~~ ० ~~~

नामकरण-संस्कारकी व्यापक परम्परा

(श्रीतारकेश्वरप्रसादजी वर्मा, बी०ए० ऑनर्स)

नामकरणकी रीतियाँ प्रत्येक देशमे भिन्न-भिन्न हैं। कहीं परम्पराकी माला जपी जाती है तो कहीं सख्याबोधक शब्दासे ही काम चला लिया जाता है। यदि अन्तर है भी तो वह नहींके बराबर।

भारतमे नामकरणका विशेष उद्देश्य है। अधिकतर देवी-देवताओके नामपर ही नामकरण होते हैं। इसके कारण भी हैं। बच्चोको पुकारनेके साथ ही लोगोको ईश्वरके नामोच्चारणका सुअवसर मिल जाता है। पुराणोके पढनेसे पता लगता है कि वेश्याएँ भी अपने तोतासे 'राम' नाम रटवाकर भवसागरसे तर गयीं। कहते हैं, पापम डूबा हुआ 'अजामिल' भी धोखेसे अपने पुत्र 'नारायण' को पुकार कर विष्णुलाकका अधिकारी हो गया था। ऐसी अनेक कथाएँ हैं। इससे यही अनुमान होता है कि देवता या महापुरुषके नामपर ही बालकका नामकरण होना उचित है।

आज इस २१वीं सदीम नामकरणसे न तो इस प्राचीन सस्कृतिकी रक्षा की जाती है और न नैतिकताका पालन ही हो पाता है। कोइ अपनी बच्चीको 'लिलि' कहता है तो कोई 'बेबी' और कोई 'डॉली।' धीरे-धीरे अव ये रूप यहाँतक बिगडते जाते हैं कि कुछ लाग अपने लाडलाको 'जैक' 'जेसन' 'हेनरी' और 'हार्वे'-जैसे नामासे पुकारकर बडी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। ऐसे लोग धन्य हैं, जिन्हे अपने पूर्वजोद्वारा अपनाये हुए नामोका ध्यान नहीं है! इधर कुछ लेखका और कवियोने तो और भी हद कर दी है। एसे लोग अपने वास्तविक सुन्दर नामाको गौण बनाकर सक्षिप्त उपनामोसे ही साहित्य-साधनाम लगे हुए हैं। इनमें कुछ नाम तो ललित होते हैं और कुछ ऐसे हैं जिन्हे सुनते ही लाग नाक-भौं सिकोडने लगत हैं। कुछ उदाहरण देखिये—बकार, विकट, पागल, दु खित, व्यथित आदि किंतु प्राचीन कालम ऐसी बाते न थीं। शायद उर्दूके कवियाकी दखा-देखी हिन्दीम भी कवियान उपनाम रखनेकी प्रथा चला दी। अग्रेजी तथा सस्कृत-साहित्यम शेक्सपियर शेली कालिदास भवभूति आदिके नामोंक साथ कोई उपनाम नहीं है।

स्वय महाकवि 'सूर' न भी उपनामके झमलास दूर
~~~

रहकर, अपने आराध्यदेव कृष्णके इस सस्कारका बडा रोचक वर्णन किया है। चञ्चल, चटुल और चमत्कारी माखनचोर कन्हैयाके जन्म-सस्कारका बडा मार्मिक वर्णन हुआ है 'सूरसागर' मे। यथा—

बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यो, रासि सोधि इक सुदिन धर्यौ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान कर्यौ॥
जुवति महरि कौ गारी गावति और महर कौ नाम लिए।
ब्रज-घर-घर आनद बढ्यौ अति प्रेम पुलक न समात हिए॥

आस-पासकी सखियाँ जुट पडीं। सभी शुभागमनके साथ ही एक-दूसरेको गाली देने लगीं। ऐसे अवसरपर गाली भी तो भली लगती है। आज नन्द-यशादाके पैर पृथ्वीपर नहीं पडत। ऋषिराजका शुभ आगमन हुआ। उस चञ्चल नटखट और रसिक बालकक भी कई नाम पडे, जैसे—गोवर्धनधारी मुरारि माखन-चोर केशव कन्हैया नन्दलाल, नन्दनन्दन, मुरलीधर, गोपीवल्लभ घनश्याम आदि। प्रत्येक नामकी निजी विशेषता ओर महत्ता है। भला ऐसा बालक जो शैतानोका नेता हो, जिसके अङ्ग-अङ्गम बिजलीकी शक्ति भरी हो जिसके मुखारविन्दपर मुसकराहट थिरक रही हो। ऐसा बालक जिसके एक-एक तातले शब्दम अनोखी मिस्री घुली हो तो ऐसी मोहिनी मूरत मुरलीवाले श्याम अनेक नामसे क्या न विभूषित हा।

अब आइये विदेशी बच्चाक नामकरण-सस्कारमे ले चल आपको। वहाँ दखिये तिब्बतके माँ-बाप अपने बच्चाका सस्कार कर रहे है। तिब्बतके बच्चाके दो बार नामकरण होते हैं। पहला नाम धर्म-गुरु 'लामा' द्वारा रखा जाता है। यही गुरु-दीक्षाके समयका नाम विवाह आदिके अवसरपर काम आता है। दूसरा नाम केवल पुकारनेके लिये होता है।

तिब्बतमे जहाँ नामकरण केवल दा ही बार होता है वहाँ वर्माम अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक शिशुका यह नामकरण-सस्कार, उसके जन्मके प्राय चौदह-पद्रह दिनाके बाद, किसी पण्डितके द्वारा होता है। नामके परिवर्तनके समय उसकी सूचना बालकक निकटतम सम्बन्धिया तथा पडोसियाको दी जाती है। इस अवसरपर सभी शुभचिन्तकोके यहाँ एक बडल चाय और एक पत्र भेजा जाता है। इस पत्रमे नये बदले हुए नामका उल्लेख रहता है। इस सस्कारक बाद बालक इसी नामसे पुकारा जाता है।

चीनम नामकरण मुण्डन-सस्कारके दिन होता है। यह सस्कार जन्मके ठीक एक मास बाद होता है। इस अवसरपर माता स्वय बच्चको लाल रगके वस्त्र पहनाती है। बच्चेका सिर मुडा दिया जाता है और पीछेकी आर एक चोटी छोड दी जाती है। सस्कार करानेवाला नाई भी सिरमे पैरतक लाल पाशाकम खूब फबता है। लाल रगको बहुत शुभ समझकर ही चीनी माताएँ उस दिन लाल-लाल वस्तुआका अधिक प्रयोग करती हैं। इस प्रकार मुण्डनक बाद माँ अपने बच्चका मुँह देखती है और उसका नाम चुनती है। इस नामको 'छोटा' नाम कहते हैं। इसी भाँति स्कूल जानेकी उम्रम दूसरा नामकरण होता है और युवा होनेपर तीसरा।

टर्कीम बालकके जन्मके तीन दिन बाद नामकरण-सस्कार होता है। उस दिन वह अपने पिताके पास लाया जाता है। उन्हींका चुना हुआ नाम बच्चेके कानमे तीन बार जार-जोरसे कहा जाता है। माता-पिता अपने बच्चाक लिये ऐसा नाम नहीं चुनते जो सुननेमे मधुर लगे। ऐसा वे इसलिय करते हैं कि नाम सुननेवालोकी नजर कहीं बच्चेको न लग जाय। इसी कुदृष्टिकी आशकासे बच्च अपनी माँके साथ प्राय घरके भीतर ही रहते हैं।

ग्रीस (यूनान)-के बच्चोका नामकरण जन्मके एक-दो सप्ताहके बाद होता है। यह बच्चोके लिये बडे कष्टका समय होता हे। उनके सम्पूर्ण शरीरमे मालिश होती है। फिर वे हवामे खूब झुलाये और जलम डुबो-डुबोकर नहलाये जाते हैं। प्रत्येक बालकका नाम किसी महात्माके नामपर रखा जाता है। बालकके जन्मके बाद जिस महात्माका जन्म-दिन पडता है, उसी महात्माका नाम रखा जाता है। उसी दिनसे उसकी जन्मतिथिकी गणना होने लगती है। इस अवसरपर बालकके सगे-सम्बन्धियोके यहाँसे काठके रग-बिरगे खिलौने आते हैं। इन खिलौनापर भाँति-भाँतिके भावपूर्ण चित्र अङ्कित होते हैं।

आस्ट्रेलियाके पुराने निवासियोम नामकरण-सस्कार

एक अनोखे ढंगसे होता है। खुले मैदानमें मिट्टीके दो गोलाकार चबूतरे दूर-दूरपर बनाये जाते हैं। चबूतरे चारों ओरसे घिरे रहते हैं और एक ओर आने-जानेके लिये मार्ग बना रहता है। जिस बालकका संस्कार हो चुका है, वही श्रीगणेश करता है, एक डंडेकी ओर लोगोंका ध्यान खींचकर वह 'साँप-साँप' चिल्लाता हुआ दौड़ जाता है। उपस्थित मनुष्य भी उसके पीछे हो लेते हैं। फिर नृत्य होता है। नाचकर सभी लोग छोटे चबूतरेके निकट जाते हैं, जहाँ साँप तथा अन्य पशुओंकी मिट्टीकी बनी मूर्तियाँ रहती हैं। सभी जातियोंके मुखियोंके आ जानेपर बड़े चबूतरेमें आग लगा दी जाती है। फिर सभी खूब मस्त होकर जंगली नाच दिखाते हैं। कई नाटक भी दिखाये जाते हैं। इनके द्वारा बालकोंको यह बताया जाता है कि अब उनके जीवनमें परिवर्तनका समय आ गया है। यहाँ नाम पशु-पक्षियोंके नामपर रखे जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसारके कई देशोंमें नामकरण-संस्कारकी विलक्षण प्रथाएँ हैं। भारतमें हिन्दू-गृहस्थोंके यहाँ इसका बहुत महत्त्व है। धनी घरानोंमें इस संस्कारके अवसरपर बड़े धूम-धामसे उत्सव होता है। नाम भी सुन्दर और सार्थक चुनकर रखा जाता है। बंगाल और महाराष्ट्रमें नामोंका चुनाव अच्छा होता है। अन्यत्र भी लोग अच्छे-अच्छे नाम चुनकर रखते हैं।

बालकका नाम ऐसा रखना चाहिये, जिसका अर्थ सुन्दर हो—उच्चारण मधुर और कोमल हो, जो सुननेमें कर्कश और घृणाजनक न हो, बालकके पैतृक गुण और कुलपरम्परागत प्रतिष्ठाके अनुकूल हो, जातीय विशेषता और रूप-रंगके प्रतिकूल न हो। ऐसा नहीं कि रूपवान् बालकका नाम चिथरू या गुदरू हो और कुरूपका नाम चन्द्रमोहन। मसल मशहूर है—'लिखे लोढ़ा पढ़े पत्थर, नाम विद्याधर।'

~~~ o ~~~

चूडाकर्म-संस्कारविमर्श

(डॉ० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा)

आर्यशास्त्रमें स्वाभाविक संस्कारद्वारा बन्धन और स्वाभाविक संस्कारद्वारा मोक्ष माना गया है। स्मृतियोंमें संस्कारोंकी संख्या यद्यपि भिन्न-भिन्न बतायी गयी है, तथापि संस्कारकी विधि एक-सी है।

आचार्य गौतमने अपनी स्मृतिमें ४८ संस्कार बताये तो व्यासजीने १६ संस्कार कहे हैं। इन्हीं संस्कारोंसे संस्कृत होकर व्यक्ति अपनेको पुरुषार्थचतुष्टयसाधनका अधिकारी बना सकता है।

वर्णधर्म और आश्रमधर्म संस्कारोंके ही बलपर स्थिर किये गये हैं। यहाँतक कि भारतीय संस्कृतिका मूल आधार भी संस्कार ही हैं। अतएव त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपनी-अपनी स्मृतियोंमें संस्कारपर बल दिया और इन्हें जीवित रखनेमें ही हमारी संस्कृति एवं सभ्यता पल्लवित, विकसित और चिरस्थायीरूपमें प्रकाशित हो सकेगी यह समझा।

महर्षि आश्वलायनने तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके लिये नियत संस्कारोंका अनुष्ठान न करनेसे उनका द्विजजन्म-ग्रहण ही निरर्थक होता है—ऐसी घोषणा की। यथा—

अतः परं द्विजातीनां संस्कृतिर्नियतोच्यते।
संस्काररहिता ये तु तेषां जन्म निरर्थकम्॥

अभ्युदय चाहनेवाले द्विजगणको अपनी गृह्यविधिके अनुसार संस्कारोंका आचरण अवश्य करना चाहिये। महर्षि अङ्गिराका कथन है—

स्वे स्वे गृह्ये यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः।
कर्तव्या भूतिकामेन नान्यथा सिद्धिमृच्छति॥

मनुस्मृतिका कथन है कि वेदोक्त गर्भाधानादि पुण्यकर्मद्वारा द्विजगणका शारीरिक संस्कार सम्पादित करना चाहिये, जो इस लोक और परलोकमें पवित्रकारी है। गर्भसमयके तीनों संस्कारोंमें तथा जातकर्म, चूडाकर्म और उपनयन आदि संस्कारोंमें अनुष्ठित हवनोंसे बैजिक एवं गर्भवासजन्य अपवित्रता नष्ट हो जाती है तथा वेदमन्त्रोंके प्रभावसे अन्तःकरणमें शुभ संस्कारका अभ्युदय
~~~

होता है। यथा—

वैदिकै कर्मभि पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य शरीरसंस्कार पावन प्रेत्य चेह च॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै ।
बैजिक गार्भिक चैनो द्विजानामपमृज्यते॥

यहाँपर विशेष रूपसे चूडाकरण-संस्कारपर प्रकाश डाला जाता है। शुक्लयजुर्वेद (३। ६३)-मे इस संस्कारसे सम्बन्धित चर्चा की गयी है। यथा—

'नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥'

अर्थात् हे बालक! दीर्घायुके लिये अन्नग्रहणमे समर्थ बनानेके लिये, उत्पादनशक्तिके लिये और बल तथा पराक्रमप्राप्तिके योग्य होनेके लिये तेरा मुण्डन करता हूँ।

इसमे अनुष्ठेय प्रधान कार्य शिशुका केशमुण्डन है। चूडाकर्म-संस्कार बल, आयु तथा तेजकी वृद्धिके लिये किया जानेवाला संस्कार है। इससे पूर्वके संस्कार अर्थात् गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म आदि दोष-परिमार्जन श्रेणीके हैं।

गर्भावस्थामे जो केश उत्पन्न होते हैं, उन सबको दूरकर चूडाकरणके द्वारा शिशुको शिक्षा तथा संस्कारका पात्र बनाया जाता है। इसी कारण यह कहा गया है कि चूडाकरणके द्वारा अपात्रीकरण दोषका निवारण होता है। चूडाकरणसंस्कारके समयके विषयमे बृहस्पतिका कथन है—

तृतीयेऽपि शिशोर्गर्भाज्जन्मतो वा विशेषत ।
पञ्चमे सप्तमे वापि स्त्रिया पुंसोऽथवा समम्॥

अर्थात् गर्भसे तृतीय वर्षमे अथवा जन्मसे तृतीय वर्षमे तथा पञ्चम या सप्तम वर्षमे चूडाकरण-संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इसीपर नारदजी कहते हैं—

जन्मतस्तु तृतीये च श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिता ।
पञ्चमे सप्तमे वर्षे जन्मतो मध्यम भवेत्॥
अधम गर्भत स्यात्तु दशमैकादशेऽपि वा॥

अर्थात् जन्मसे तृतीय वर्षमे चूडाकर्म-संस्कार उत्तम है। पञ्चम, सप्तम वर्षमे मध्यम तथा गर्भसे दशम, एकादश वर्षमे निम्नस्तरीय है। इन वचनोके अनुसार यथासम्भव उत्तम पक्षमे ही चूडाकरण-संस्कार सम्पादन करना चाहिये।

चूडाकरण आदि संस्कारोद्वारा बालकमे गुणाधान होता है अर्थात् मानवोचित विशिष्ट गुणोंका समावेश किया जाता है।

'चूडा क्रियते अस्मिन्' इस विग्रहके अनुसार चूडाकरण-संस्कारका अभिप्राय है, वह संस्कार जिसमे बालकको चूडा अर्थात् शिखा दी जाय। अमरकोषके अनुसार भी चूडाका अभिप्राय शिखासे ही है। इसलिये गृह्यसूत्रमे दिया गया है—

'एकशिखस्त्रिशिख पञ्चशिखो वा यथैवैषा कुलधर्म स्याद्यथर्षि शिखा निदधातीति।'

अर्थात् बालकका कुलधर्मके अनुसार एक शिखा या तीन अथवा पाँच शिखा धारण कराये। इन वचनोसे इस संस्कारका समय जन्मसे प्रथम या तीसरा वर्ष है।

शरीरविज्ञानके अनुसार यह समय दाँतोंके निकलनेका है। इसके कारण बालकके शरीरमे कई प्रकारकी व्याधिका होना स्वाभाविक है। इस प्रकार उसका शरीर निर्बल हो जाता है, बाल झडने लगते हैं, ऐसे समयमे इस संस्कारका विधान करके महर्षियोने बालकको अस्वस्थकारक कारणोसे बचानेका प्रयास किया है। इस प्रकार चूडाकरण-संस्कार अत्यन्त उपयोगी एव परमावश्यक सिद्ध होता है।

इस संस्कारका दूसरा नाम मुण्डन-संस्कार भी है। यह संस्कार त्वचासम्बन्धी रोगोके लिये अत्यन्त लाभकारी होता है। शिखाको छोडकर सिरके शेष बालोको मूँड देनेसे शरीरका तापक्रम शान्त अर्थात् सामान्य हो जाता है और उस समय होनेवाली फुंसी दस्त आदि व्याधियाँ स्वत शिथिल हो जाती हैं। एक बार मूँडनेके बाद बाल फिर झडते नहीं वे बद्धमूल हो जाते हैं।

इसीलिये मुण्डन, क्षौर आदिके लाभका वर्णन करते हुए महर्षि चरक (सूत्रस्थान ५। ९९)-ने लिखा है—

पौष्टिक वृष्यमायुष्य शुचि रूपविराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीना कल्पन संप्रसाधनम्॥

अर्थात् क्षौरादि कर्म करवाने नाखून कटवाने और कंघी आदिसे बालोको साफ रखनेसे पुष्टि वृष्यता आयु, पवित्रता और सुन्दरता आदिकी वृद्धि होती है। बालकका मुण्डन करानेके अनन्तर उसके सिरमे मलाई आदिकी

मालिशका विधान है, जिसमे मस्तिष्कके मज्जातन्तुओको कोमलता, शीतलता तथा शक्ति प्राप्त हाती है जो आगे चलकर बालककी बौद्धिक शक्तिके विकासमे सहायक हाती है, क्याकि सुस्वास्थ्यके लिये सिर ठण्डा होना अपेक्षित हे।

बुद्धि बल आयु एव तेजके साथ शिखाका क्या सम्बन्ध है, इसके उत्तरके लिये मानव-शरीरकी रचनाको समझना चाहिये। वेदवाक्य है कि—

'दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट्।'

अर्थात् दीर्घ आयु, बल और तेजके लिये शिखाको स्पर्श करता हूँ। इस प्रकार मानवमात्रको शिखाधारणक लिये प्रेरित किया गया है। स्मृतिका वचन है—

सदोपवीतिना भाव्य सदा बद्धशिखन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

अर्थात् द्विजमात्रको निरन्तर यज्ञोपवीत पहने रहना चाहिये और शिखा निरन्तर बँधी होनी चाहिये। बिना यज्ञोपवीत और बिना शिखाके किये हुए सभी कार्य व्यर्थ हो जाते हैं।

हमारी सम्पूर्ण शारीरिक प्रवृत्तिका केन्द्र हमारा मस्तिष्क है। मानसिक तथा शारीरिक क्रियाआका सचालन उसीके द्वारा होता है। यदि वह मस्तिष्क समुचित शक्तिसम्पन्न है तो मनुष्य भी स्वस्थ रहता हुआ वेदोक्त **'जीवेम शरद शतम्'** (यजु० ३६।२४)-क अनुसार सौ वर्षसे भी अधिक दीर्घजीवी हा सकता है।

शिखा ज्ञानशक्तिको अक्षुण्ण रखनेमे सहायक होती है। शिखा-छेदनके वाद बडे-बडे तेजस्वी पुरुष भी प्रभाहीन हो जाते हैं।

इसके सम्बन्धमे महाभारतके खिलभाग हरिवशपुराणम एक कथा आती है। गुरु वसिष्ठका एक सगर नामक शिष्य था। उसके पिता राजा बाहुको पश्चिमी प्रान्तके राजाआन युद्धम पराजित कर दिया, जिसस दु खी होकर राजाने वनम अपने प्राण त्याग दिय। सगर पिताकी मृत्युके प्रतिशोधक लिये खडा हुआ ता सभी राजा भयसे गुरु वसिष्ठजीकी शरणम आये। वसिष्ठजीने उन्हें अभयदान दिया।

यादम वे शिष्य सगरको समझाने लग तो उस सन्ताप न हुआ। गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए उसने राजाआका वध तो नहीं किया, किंतु अर्धमुण्डन करके उन्हे छोड दिया। ऐसा करनेपर सभी राजा निस्तेज—प्रभाहीन हो गये। ऐसी ही कथा भागवतम भी आती हे—अर्जुनने मृत्युदण्डके बदले अश्वत्थामाका सिर मूँड दिया था, मणि निकाल ली थी। शिखा ही द्विजाकी मणि हैं, उसके छेदनसे द्विज निस्तेज हो जाता है।

यद्यपि आजके भौतिक युगमे प्रत्यक्ष दृष्टिलाभमे ही सभीकी प्रवृत्ति देखी जाती है, इसलिये लोग शिखाको केशसौन्दर्यके विघ्नरूपमे समझने लगे है। यह-पाश्चात्त्य सभ्यताका प्रभाव है। सस्कृति अक्षुण्ण, अपरिवर्तनीय एव नित्य होती है और वह सस्कारद्वारा ही पुष्ट रहती है।

शिखा ज्ञानशक्तिको चैतन्य रखती है—शिखा हमारी ज्ञानशक्तिको चैतन्य रखते हुए उसे सदैव अभिवृद्धिकी ओर अग्रसर करती है। वैज्ञानिक विचारसे भी काली वस्तु सूर्यकी किरणोमेसे अधिक ताप तथा शक्तिका आकर्षण किया करती है। इसे विज्ञानके छात्र अच्छी तरह समझते हैं।

प्रकृतिम यह नियम पाया जाता है कि प्रत्यक वस्तुका अल्प अश अपने महान् अशीमे मिलकर अपनी पूर्णताको प्राप्त होता हैं। प्रकृतिकी सभी वस्तुएँ इसी नियमके अधीन काम कर रही हैं। जैस सभी नदियाँ अपनी अतुल जलराशिको समुद्रम मिलाकर शान्त होती हैं। कोई भी पार्थिव वस्तु ऊपर फेकी जाय तो पार्थिवपनके कारण ही गुरुत्वाकर्षणके नियमसे पृथिवीकी ओर आकर्षित होती है। दीपककी लौ भगवान् सूयका सूक्ष्माश होनेसे ऊर्ध्वगामी अर्थात् सदैव ऊपरकी ओर जाती है। अण्ड-पिण्डवादक अनुसार इसी नियमको अपन शरीरपर भी परखना चाहिय।

शास्त्रके अनुसार हमारी बुद्धि सूयका अश है। इसीलिय हम प्रतिदिन **'ॐ भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात्॥'**—इस गायत्रीमन्त्रसे अपनी बुद्धि एव मधाको जाग्रत् करनक लिय भगवान् सूयकी उपासना करत हैं और उनम बुद्धिकी याचना करते हैं।

पाश्चात्य विनानवादियाने सूयका जीवन-शक्तिका मूल

कारण माना है। उसी सूर्यांशभूता बुद्धि तथा प्राणशक्तिको जाग्रत् करनेके लिये ऋषियोंने बुद्धिके केन्द्र मस्तिष्कपर गोखुरके समान बालोंका एक गुच्छा रखनेका विधान किया है।

बालोंका यह गुच्छा जिसे हम शिखा कहते हैं काले रंगका होनेके कारण सूर्यसे मेधा एवं प्रकाशिनीशक्तिका विशेष आकर्षण करके ऊर्ध्वाभिमुखी बुद्धिको और भी उन्नत तथा सबल करनेमें सहायक होता है।

शिखा (चूडा) ब्रह्मरन्ध्रकी रक्षिका है—शिखाके ठीक नीचे मज्जातन्तुओंद्वारा निर्मित बुद्धिचक्र है तथा उसीके समीप ब्रह्मरन्ध्र है। इन दोनोंके ऊपर सहस्रदल-कमल है, वही अमृतरूपी ब्रह्मका अधिष्ठान अर्थात् स्थान है।

शास्त्रीय विधिसे जब मनुष्य परमपुरुष परमात्माका ध्यान करता है या वेदादिका स्वाध्याय करता है तब इनके अनुष्ठानसे समुत्पन्न अमृत-तत्त्व वायुवेगसे सहस्रदलकर्णिकामें प्रविष्ट हो जाता है। यह अमृत-तत्त्व यहीं नहीं रुकता अपितु अपने केन्द्रस्वरूप भगवान् सूर्यमें लीन होनेहेतु सिरसे भी बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। शिखाग्रन्थिसे टकराकर वह विद्युत्-प्रवाहस्वरूप अमृत वापस होकर सहस्रदलकर्णिकामें रुक जाता है। कदाचित् शिखा खुली हो या शिखा न हो तो वह अमृत उस द्वारसे बाहर होकर अल्प वेगवाला होनेके कारण सूर्यसे तो मिल नहीं पाता, किंतु अन्तरिक्षमें ही विलीन हो जाता है।

इसलिये स्मृतिकारोंने स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, दान आदि कर्मोंके समय शिखामें ग्रन्थि लगाकर ही कार्योंके सम्पादनका विधान बताया है—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

शिखाग्रन्थि-बन्धनके वैदिक और स्मृतिमन्त्र हैं—

चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेज समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे॥

अर्थात् हे चित्-शक्तिरूपिणी महामाया भगवति! आप दिव्य तेजसे परिपूर्ण हैं। आप मेरी शिखामें रहकर मेरे तेज और मेधाकी वृद्धि करें। ऐसे ही—

ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥' (शु०यजु० १६। १६)

अर्थात् हे रुद्र भगवान्! आप हमारे पुत्र-पौत्रमें, मेरी आयुमें, गौमें, अश्वमें कभी क्रोध न करें अर्थात् रक्षा करें। हे रुद्र! आप हमारे क्रोधी वीरोंको भी न मारें, हम सदैव हवन करते हुए हविर्युक्त होकर आपका आवाहन करते हैं।

इस मन्त्रमें कितना रहस्य भरा है। समस्त देवकार्य शिखाबन्धनके बाद ही सम्पन्न होते हैं। इसीलिये शिखा-ग्रन्थिके समय रुद्रभगवान्का स्मरण किया गया।

प्रसिद्ध वेदभाष्यकार पाश्चात्त्य विचारक मैक्समूलर शिखाके सम्बन्धमें लिखते हैं—

'शिखाके द्वारा मानव-मस्तिष्क अतीव शक्तिके प्रवाहको धारण कर सकता है।'

पाश्चात्त्य विज्ञानवेत्ता विक्टर ई० क्रोमरका कहना है—'ध्यानके समय ओजशक्ति प्रकट होती है। किसी वस्तुपर चिन्तन एकाग्र करनेसे ओजशक्ति उसकी ओर दौड़ती है। यदि परमात्मापर चिन्तन एकाग्र किया जाय तो मस्तकके ऊपर शिखाके रास्ते ओजशक्ति प्रकट होती है। परमात्माकी शक्ति उसी पथसे अपने भीतर आया करती है। सूक्ष्म-दृष्टिसम्पन्न योगी इन दोनों शक्तियोंके सुन्दर रंगको भी देख लेते हैं। जो शक्ति परमात्मासे अपने भीतर आती है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती।'

शरीरविज्ञानके अनुसार जिस स्थानपर शिखा रखी जाती है उसे पिनल ज्वाइण्ट कहा जाता है। इसके नीचे एक विशेष प्रकारकी ग्रन्थि होती है जो 'पिट्यूटरी' कहलाती है। इस ग्रन्थिमें एक विशेष प्रकारका रस बनता है जो स्नायुओंद्वारा सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर शरीरको बढ़ाता है और बलशाली बनाता है।

शिखाद्वारा इस ग्रन्थिको अपना कार्य करनेमें बड़ी सहायता प्राप्त होती है इसी कारण यह चिरकालतक कार्य करती रहती है। इससे मनुष्य दीर्घकालतक स्वस्थ रहकर जीवनयापन करता है, साथ ही उसकी ज्ञानशक्ति भी अक्षुण्ण रहती है।

इस सम्बन्धमें पाश्चात्त्य वैज्ञानिक 'सर चार्ल्स ल्युक्स'-का विचार है—'शिखाका जिस्मके उस जरूरी अङ्गसे बहुत गहरा सम्बन्ध है जिससे ज्ञानवृद्धि और तमाम अङ्गोंका

सञ्चालन होता है। जबसे मैंने इस विज्ञानकी खोज की, तबसे मैं स्वय चोटी (शिखा) रखता हूँ।'

इसी प्रकार डॉ० हाखमनका कथन है—'मैंने कई वर्ष भारतम रहकर भारतीय संस्कृतिका अध्ययन किया है। यहाँके निवासी बहुत कालसे सिरपर चोटी रखते हैं, जिसका जिक्र वेदामे पाया जाता है। दक्षिणमे तो आधे सिरपर गोखुरके समान चाटी रखते हैं। उनकी बुद्धिकी विलक्षणता देखकर मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।'

अवश्य ही बौद्धिक विकासम चोटी बडी सहायता देती है। सिरपर चोटी या बाल रखना बडा लाभदायक है।

उपर्युक्त वैज्ञानिक तथ्योसे पूर्ण परिचित होनेके कारण न केवल भारतीय, अपितु पाश्चात्य जगत्के भी प्राय सभी वैज्ञानिक, कवि, लेखक सिरपर शिखा एव जटासदृश लम्बे बाल रखते दीख पडते हैं।

भारतीय विचारकाके मतानुसार सम्पूर्ण मानव-शरीरमे व्याप्त एक मुख्य नाडी है, जिसे सुषुम्णा कहते हैं। यह नाडी स्वाधिष्ठानसे आरम्भ होकर मस्तिष्कमे जाकर समाप्त होती है। इसके उत्कृष्ट रन्ध्रभाग शिखास्थलके ठीक नीचे खुलते हैं। यही स्थान ब्रह्मरन्ध्र है, साथ ही बुद्धितत्त्वका केन्द्र है। साधारण दशामे हमारे शरीरके अन्य रोम पसीने आदिद्वारा शारीरिक ऊष्माको बाहर फेकते हैं। सुषुम्णा-केन्द्रके बालाद्वारा तेज-नि सरण होता है उसीको रोकनेके लिये शिखामे ग्रन्थिका विधान है, जिससे वह तेज शरीरमे ही रुककर मन, शरीर और मस्तिष्कको अधिक उन्नत कर सके।

एक पाश्चात्य दार्शनिक लिखते हैं—'जब मैं चीन भ्रमण करने गया तो देखा कि चीनके लोग भी हिन्दुस्तानियोंकी तरह आध सिरसे ज्यादा बाल रखते हैं। मैंने जबसे इस विज्ञानकी खोज की, तबसे मुझे विश्वास हो गया कि हिन्दुआका प्रत्येक नियम विज्ञानसे भरा पडा है। चोटी रखना हिन्दुआका धर्म ही नहीं सुषुम्णाके केन्द्रोकी रक्षाके लिये ऋषि-मुनियोकी विलक्षण खोजका चमत्कार है।'

इसी प्रकार मि० अर्ल थामन लिखते हैं—'सुषुम्णाकी रक्षा हिन्दूलोग चोटी रखकर करते हैं जबकि अन्य देशाम लोग सिरपर लम्बे बाल रखकर या हैट लगाकर इसकी रक्षाका प्रयत्न करते हैं। इन सबम चोटी रखना सबसे मुफीद है। किसी भी प्रकारसे हो, सुषुम्णाकी रक्षा करना ही सबसे जरूरी है।'

शिखाके अधोभागम एक मर्म स्थान होता है, जहाँ आघात पहुँचनेपर सद्य मृत्यु होती है। सुश्रुतसहिता (३।६।२७)-मे आया है—

'मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् सिरासन्धिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्य एव [मरणम्]।'

अर्थात् मस्तकके भीतर ऊपरको जहाँपर बालाका आवर्त (भँवर) होता है, वह सम्पूर्ण नाडियो और सन्धियाका सन्निपात है, उस स्थानको अधिपति-मर्म कहते हैं, वहाँपर चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु हो जाती है।

शिखा इस अत्यन्त कोमल तथा सद्यामारक मर्मस्थानक लिये प्रकृतिप्रदत्त कवच है, जो कि आकस्मिक आघातो एव उग्र शीत-आतपादिसे इस मर्मस्थानको बचाती है। विदेशामे इसी मर्मस्थानको उग्र शीत-तापादिसे बचानेके लिये टोप धारण किया जाता है।

शिखा आर्यजातिका एक पवित्र सामाजिक चिह्न है, जिसने सैकडो सम्प्रदाय, जाति-उपजाति आदि भेदोमे विभक्त हुई इस जातिकी एकताको अक्षुण्ण रखनेम प्रमुखतासे भाग लिया है। इसी शिखाने भूमण्डलके लाखा वर्गमीलमे फैले हुए विशाल हिन्दूसमाजको सास्कृतिक एव धार्मिक एकताके सूत्रमे पिरोकर एक बना रखा है।

इस प्रकार धार्मिक वैज्ञानिक, सास्कृतिक एव सामाजिक दृष्टिसे विचार करनेपर शिखाका मानव-जीवनम महत्त्वपूर्ण स्थान सिद्ध होता है। आर्यजातिका तो लाखा वर्षोकी परम्पराका इतिहास इसके साथ जुडा हुआ है।

इसलिये चूडा (शिखा)-करण-सस्कार मानव-जीवनकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये परमोपयोगी है। इस सस्कारकी सक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

शुभ मुहूर्तम यज्ञवेदी बनाकर चूडाकर्म करना चाहिये। सर्वप्रथम माता बालकको स्नान कराकर एव शुद्धवस्त्र पहनाकर गोदम लेकर अग्निके पश्चिमकी ओर बैठे। फिर सङ्कल्प, गणेशपूजन, पुण्याहवाचन आदि पञ्चाङ्गपूजनके पश्चात् **'प्रजापति प्रीयताम्'** इस वाक्यका उच्चारण करे।

पश्चात् चूडाकरणाधिकार-सिद्धिके लिये सङ्कल्पपूर्वक तीन ब्राह्मणोको भोजन कराकर विधिपूर्वक हवन करे।

फिर पूर्वाभिमुख वैठे बालकके सिरसे दक्षिण पश्चिम तथा उत्तर—तीनो ओर पहलसे बाँधी गयी तीन जूडाओमसे दाहिनी जूडाको मन्त्र पढते हुए घी आदि मिलाये हुए जलसे भिगाये। मन्त्र इस प्रकार है—

'**ॐ सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनू दीर्घायुत्वाय वर्चस इति।**' फिर उस दाहिनी जूडाका तीन भाग करे। उन एक-एक भागमे तीन-तीन स्थानोम श्वेत साहीके काँटेसे बालाको अलग-अलग करक तीन भाग करे। तत्पश्चात् २७ कुशामेस तीन कुश लेकर उन कुशाके अग्रभागको दाहिने केशाक तीन भागामसे पहले भागके मूलमे '**ॐ ओषधे त्रायस्व**'—इस मन्त्रसे लगाये, फिर '**ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसी**' इस मन्त्रको पढकर लोहका छुरा हाथमे ले। पुन '**ॐ नि वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥**'—इस मन्त्रसे केशाम छुरा लगाये, फिर '**ॐ येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्य जरदष्टिर्यथासद्**'— इस मन्त्रसे दाहिने केशाके तीन भागामसे पश्चिम भागको कुशासहित काटे।

पुन सिरके पश्चिम भागके जूडाके केशाको पूर्ववत् उसी मन्त्रसे भिगोना तथा बिना मन्त्र पढे साहीके काँटेसे केशाका तीन भाग करना तीन कुशाको रखना छुराका हाथम लना और केशाम लगाना—इत्यादि पूर्वमन्त्रास ही कर। तदनन्तर उत्तर भागके केशाक लिये भी सब कृत्य सम्पन्न करके काटनेके समय—'**ॐ येन भूरिश्चरा दिव ज्योक्क पश्चाद्धि सूर्यम्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातव जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये**' यह मन्त्र पढ।

इसके बाद पहले काटे गये आर अभी काटे गये इन केशाको भी कुशासहित गायके गाबरपर रखे।

तदनन्तर पूरे केशाको भिगाकर तीन बार प्रदक्षिण-क्रमसे निम्न मन्त्रसे छुरको सभी आर घुमाये—

'**ॐ यत् क्षुरेण- मज्जयता सुपेशसा वप्त्वा वाऽऽवपति केशाञ्छिन्धि शिरो माऽस्यायु प्रमोषी।**'

तत्पश्चात् '**ॐ अक्षण्वन् परिवप**' मन्त्र बोलकर नाईको छुरा दे ओर नाई कुल-धर्मके अनुसार शिखा रखकर बाकी सब बाल बनाये। इन केशोका नय वस्त्रसे लपटकर बालककी माता, बूआ या बहन दही-दूधसहित गोबर-पिण्डपर रखे।

इसके बाद पूर्णाहुति देकर स्रुवासे थाडा भस्म ले ले और '**त्र्यायुषम्०**' इत्यादि मन्त्रोसे दाहिने हाथकी अनामिका अँगुलीसे बालकको भी लगा दे। फिर गोबरसहित कशाको गोशालाम, नदी या तालावके किनारे गड्ढा खोदकर रख दे और मूँद द।

इसके बाद सस्कार सम्पन्न होनेपर गोदान-दक्षिणासे गुरुका सतुष्टकर मातृका-विसर्जन करके ब्राह्मणोको भोजन कराये तथा स्वय भी बन्धुवर्गसहित भोजन करे। इस प्रकार सक्षेपम भारतीय सस्कृतिके मूल स्वरूप सस्कारोमेसे एक चूडाकरण अर्थात् मुण्डन-सस्कार सम्पन्न हाता है।

व्यवहारसहस्राणि यान्युपायान्ति यान्ति च। यथाशास्त्र विहर्तव्य तेषु त्यक्त्वा सुखासुखे॥
यथाशास्त्रमनुच्छिन्ना मर्यादा स्वामनुज्झत। उपतिष्ठन्ति सर्वाणि रत्नान्यम्बुनिधाविव॥
स्वार्थप्रापककार्यैकप्रयत्नपरता बुधै। प्रोक्ता पौरुषशब्दन सा सिद्धयै शास्त्रयन्त्रिता॥

ससारम आने-जानवाले सहस्रा व्यवहार हैं। उनम सुख और दु ख-बुद्धिका त्याग करक शास्त्रानुकूल आचरण करना चाहिय। शास्त्रके अनुकूल और कभी उच्छिन्न न हानवाली अपनी मर्यादाका जो त्याग नहीं करता उस पुरुषको समस्त अभीष्ट वस्तुएँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं जैस सागरम गोता लगानेवालको रत्नाका समूह। जिसम अपना मानव-जोवनका प्रधान कार्य—स्वार्थ सधता हा उस स्वार्थकी प्राप्ति करानवाले साधनाम ही तत्पर रहनको विद्वान्लाग 'पौरुष' कहते हैं। वह तत्परता यदि शास्त्रस नियन्त्रित हा तो परम पुरुषार्थकी प्राप्ति करानवाला हाता है। (यागवासिष्ठ मुमु० ६।३०—३२)

शिखा या चोटीकी महिमा

(डॉ० श्रीललितजी मिश्र)

[वेदव्यासजीद्वारा प्रतिपादित षोडश संस्कारामे परिगणित चूडाकरण या शिखाधारण एक ऐसा संस्कार है, जो सुरक्षाकवचके रूपमे गुप्तद्वार, दशमद्वार, इन्द्रयोनि, अधिप, मस्तुलिङ्ग आदि नामोसे पुकारे जानेवाले मर्मस्थल और ब्रह्मरन्ध्रकी रक्षाका कार्य करता है। साथ ही यह आयु, बल, तेज तथा बुद्धिके उन्नयनके लिये आवश्यक अदृश्य शक्तियोको सहस्त्रदलकर्णिकामे रोके रखनेमे रोधकका कार्य भी करता है।]

मानव-शरीरकी समस्त प्रवृत्तियोका केन्द्र मस्तिष्क है। यह शरीरका नियन्त्रणकक्ष है, जहाँसे शरीरके अङ्गाद्वारा अनुभूत सवेगाको ग्रहण कर आवेशाद्वारा निर्देश प्रेपित होते रहते हैं। अत मस्तिष्कका विकसित परिष्कृत ओर व्यवस्थित होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब वह पूर्ण सुरक्षित और ज्ञानस्रोतोसे सयुक्त हो। जिस तरह आधुनिक जगत्‌मे शासन अपन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव सवेदनशील विभागोके लिये अभद्य सुरक्षाकवचकी व्यवस्था करता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृतिने भी मानव-शरीरके कोमल अङ्गोको अनक प्रकारके प्राकृतिक सुरक्षाकवच प्रदान कर उन्ह न केवल सुरक्षित किया, अपितु इतना सबल भी बनाया कि वे बड-से-बडे आघातोको सह सके और सुस्थिर रहकर कार्य करते रहे।

इन सस्कारोम परिगणित 'चूडाकरण-सस्कार' मानवको शुद्ध करनका प्रथम सोपान कहा गया है। यह मस्तिष्कके सबसे सवेदनशील मर्मस्थलकी रक्षा करता है।

चूडाकरण-सस्कार (शिखाधारण-सस्कार)

व्यासजीद्वारा वर्णित षोडश सस्कारामे प्रारम्भिक सात उपचार (सस्कार) बालककी गर्भवासजन्य मलिनताको परिमार्जित करन तथा शरीरको शुद्ध बनानेहेतु निर्धारित किये गय हैं। आठवाँ सस्कार 'चूडाकरण', 'मुण्डन' या 'शिखाधारण' नामक सस्कार है। इस सस्कारम गर्भसे एक या तीन वर्षम बालकक सिरके मध्यभागमे गोखुरके आकारका केशगुच्छ छोडकर शेष सभी बाल सिरसे उतार दिये जाते हैं। **'चूडा क्रियतेऽस्मिन्'** इस विग्रहके अनुसार चूडाकरण-सस्कारका अभिप्राय है—'वह सस्कार, जिसमे बालकको चूडा अथात् शिखा धारण करायी जाय।' मनुजीने कहा है—

चूडाकर्म द्विजातीना सर्वेषामेव धर्मत ।
प्रथमऽब्दे तृतीये वा कर्तव्य श्रुतिचोदनात्॥

(मनु० २।३५)

इसके अनुसार जन्मस प्रथम या तृतीय वर्षमे द्विजबालकका चूडाकर्म करना चाहिये।

शिखा रखनेकी आवश्यकता

चूडाकरण-सस्कारद्वारा बालकक सिरपर शिखाको धारण करानेके सम्वन्धम महर्षियो तथा वैज्ञानिकोद्वारा बताय गये निम्न तथ्यापर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है—

१-तैत्तिरीयोपनिषद्‌की शीक्षावल्लीके छठे अनुवाकम शिखा रखनेके रहस्यको इस तरह बताया गया है—

अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनि । यत्रासौ केशान्तो विवर्तते। व्यपोह्य शीर्षकपाले।

अर्थात् मुखके अदर दोना तालुओके मध्यमे स्तनकी तरह जो मासपिण्ड लटकता रहता है, उसके आगे केशाका मूलस्थान ब्रह्मरन्ध्र है। वहाँसे सिरके कपालका भेदन करके 'इन्द्रयोनि' अर्थात् परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग सुषुम्णा नाडी आती है। यह नाडी अपने मूलस्थानसे ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर बढते हुए ललाटके मध्यम विचरती है। इसके उत्कृष्ट रन्ध्रभाग शिखास्थलके ठीक नीचे खुलते हैं। योगी इसे सुषुम्णाका मूलस्थान मानत हैं। वैद्यगण इसे 'मस्तुलिङ्ग' कहते हैं। मस्तुलिङ्गके साथवाले अग्रभागको योगी ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। यह ज्ञानशक्तिका केन्द्र है। मस्तुलिङ्ग कर्मका केन्द्र हे। ये दोनो जितने स्वस्थ या सामर्थ्यवान् हागे, ज्ञानेन्द्रिया और कर्मेन्द्रियाम उतनी ही शक्ति बढेगी।

प्रकृतिकी विलक्षण महिमा देखिय। ये पास-पास होते हुए भी अपनी प्रकृतिमे भिन्न हैं। ब्रह्मरन्ध्र (जिसे वैद्य मस्तिष्क कहते हैं) शान्तिप्रिय है तो मस्तुलिङ्ग

उष्ण प्रकृतिका है। शिरोवेदनाम तालुके बाल काटनेसे वेदना शान्त हो जाती है, पर मस्तुलिङ्गके लिये उष्णता पानेके लिये उसके ऊपर गोखुरके आकारका केशगुच्छ रखा जाता है, ताकि वह भास्करसे आवश्यक ताप ग्रहण करता रहे। बालोके गुच्छोको शिखाके रूपम रख जानेका यही रहस्य है, यही उसकी विशेषता है।

यह विज्ञानानुकूल बात है कि काली वस्तु सूर्यकी किरणामेसे अधिक ताप तथा शक्तिको आकर्षित करते हुए उससे अधिक-से-अधिक ऊर्जा ग्रहण करती है।

२-शरीरविज्ञानका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि महर्षियाने मानव-मस्तिष्कके जिस स्थानपर शिखा रखनेका विधान किया है, उसके ठीक नीचे मज्जातन्तुआद्वारा निर्मित बुद्धिचक्र (मस्तुलिङ्ग) और उसके समीप ब्रह्मरन्ध्र है। ये दोनो सहस्रदलकमलमे अमृतरूपी ब्रह्मके अधिष्ठान हैं। शास्त्रविधिसे जब मनुष्य अनुष्ठान तथा साधनामे प्रवृत्त होता है तो इनके प्रभावसे समुत्पन्न अमृतत्त्व वायुवेगसे इस सहस्रदलकर्णिकामे प्रवेश करता है। यह अमृतत्व यहीं नहीं रुकता, अपितु अपने मूलकेन्द्र सूर्यम लीन होनेके लिये सिरके मर्मस्थलका भेदन कर निकलनेका प्रयास करता है। यदि इसे न रोका जाय तो विक्षिप्तता या मृत्यु अवश्यम्भावी है। इस मर्मस्थलपर शिखाके खुले रहनेपर अल्प वेगसे छन-छनकर अमृतत्व बाहर निकलकर अन्तरिक्षमे विलीन हो जाता है। यदि इस शिखापर गाँठ लगा दी जाय तो यह तत्त्व शिखाग्रन्थिसे टकराकर पुन सहस्रदलकर्णिकामे ठहर जाता है। यही ठहराव मनुष्यके शरीरमे दीर्घ आयु, बल और तेजकी वृद्धिमें सहायक होता है। इसीलिये अनुष्ठान तथा साधना प्रारम्भ करनेसे पूर्व शिखाबन्धनकर्मका विधान किया गया है। साधक गाँठ लगाते समय कहता है— **'दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे शिखायै वषट्'** अर्थात् दीर्घ आयु, बल और तेजके लिये शिखाको स्पर्श करता (गाँठ लगाता) हूँ। धर्मशास्त्रकारोका स्पष्ट निर्देश है कि स्नान दान होम सन्ध्या-वन्दन देवपूजन, ध्यानादिके पूर्व शिखाम ग्रन्थि लगाकर ही आगेका कार्य करे—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्याया देवतार्चने।
शिखाग्रन्थि सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

३-प्रकृतिका विधान है कि प्रत्येक क्षुद्राश सर्वदा अपने मूल अशीम विलीन होकर ही पूर्णता प्राप्त करता है। समुद्रजलको ही देखिये, सूर्यतापस भापम परिणत होकर वायुके साथ विचरण करते हुए ठण्डक पाकर पावसरूपम पृथ्वीपर आकर विभिन्न माध्यमासे पुन समुद्रम समा जाता है। मिट्टीके टुकडेको कितने ही वेगसे ऊपर फक वह मूलकी ओर वापस लौटता ही है। इसी प्रकार अण्ड-पिण्डवादके अनुसार हम सूयको अपनी जीवनशक्ति और प्राणशक्तिका आधार मानत हैं। इसीलिये बुद्धिकेन्द्र मस्तिष्कके ब्रह्मरन्ध्रस्थलपर गोखुरनुमा बालाका गुच्छा, जिस चूडा या शिखा कहते हैं, रखकर सूर्यांशभूता बुद्धि तथा प्राणशक्तिको जाग्रत् करनेके लिये सूर्यकी मेधाप्रकाशिनी शक्तिको आकर्षित कराया जाता है। इसीसे सूर्यशक्ति और परमात्माकी ओजशक्तिका आवागमन-मार्ग बना रहता है। इसीलिये इसे 'इन्द्रयोनि' या परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग कहा गया है। इसीके नीचे स्थित ग्रन्थिको श्लेष्मीय या पिट्यूटरी-ग्रन्थि कहते हैं। इसीसे एक रस स्नायुओके माध्यमसे सम्पूर्ण शरीरमे फैलकर उसे स्वस्थ और बलशाली बनाता है।

४-महर्षियोद्वारा खोजे गये अमृतत्वको—प्रभाशक्तिको स्वीकार करते हुए पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि यह अदृश्य शक्ति ओजशक्ति है। यह शक्ति दुनियाके महानतम सता, महर्षिया अवतारो तथा देवदूतामे उनके निरन्तर ध्यानावस्थामे रहनेकी स्थितिम उनके सिरके पीछे (उनके अङ्गोम बने रोमासे निकलकर एक बडे) प्रकाशचक्रके रूपमे दिखायी पडती है। इसी आशयसे चित्रकार देवी-देवताआ एव महापुरुषाके सिरके पीछे सफेद हलका पीला या लाल-पीला मिश्रित प्रकाश-चक्र दर्शाता है।

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक और हिन्दूधर्मके वेदभाष्यकार मैक्समूलर और विक्टर ई० क्रोमरने शिखासे सम्प्रेपित और आवेशित इस शक्तिके सम्बन्धम बताया है कि ध्यान करते समय ओजशक्ति प्रकट होती है और चिन्तनकी एकाग्रतासे वह ओजशक्ति तीव्रतासे निकलती है। यदि प्रभुकी ओर ध्यान एकाग्र किया जाय तो प्रतिक्रियास्वरूप प्रभुकी शक्ति शिखाके रास्ते आने-जाने

लगती है और इसीके साथ मृदुल चुम्बकत्व (आकर्षण)-की बरसात होने लगती है। जब ये दो शक्तियाँ आपसमें टकराती हैं तो मस्तिष्कके ऊपरी भागमें इन्द्रधनुषीय रंगोंका ऐसा मोहक दृश्य उपस्थित होता है, जिसे प्रकट करना सम्भव नहीं है।

५-मानवपिण्डका पाँचवाँ भाग मस्तिष्कका एक गुप्त द्वार है। इसे दशम द्वार भी कहा गया है। यह वैसा ही होता है जैसा तालुके अंदर स्तनके समान लोलक या इन्द्रयोनि। इस द्वारकी रक्षाहेतु ही शिखा रखी जाती है। धर्मानुष्ठानके समय इसमें गाँठ लगायी जाती है।

शिखाधारणके विषयमें उपर्युक्त तथ्योंके अतिरिक्त अनेक विद्वान् उपपत्तियाँ भी देते हैं। उनकी दृष्टिमें सृष्टिका मूल अग्नि है। अग्निको संस्कृतमें 'शिखी' कहते हैं। इसीलिये मनुष्यके शरीरमें अग्निके स्वरूपको शिखासे व्यक्त किया गया है। चूँकि हम अग्निसे उत्पन्न हुए हैं, अतः अग्निसे ही हम **'तन्वं मे पाहि'** (पारस्करगृह्यसूत्र २।४।८), **'तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा'** (शु०यजु० ३२।१४) आदिकी प्रार्थना भी करते हैं।

गीता (१७।३)-में श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है— **'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** अर्थात् व्यक्ति जो चाहता है, वैसा ही बन जाता है। **'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'** अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, वैसी ही उसे सिद्धि प्राप्त होती है। उपासनामें भी उपासक उपास्यकी निकटता एवं कृपा चाहता है। अतः वह भी उपास्यके स्वरूपकी प्राप्तिके लिये उपास्यके चिह्नको धारण करता है। जैसे शैव भस्म-रुद्राक्ष और वैष्णव तुलसीकी माला धारण करते हैं, वैसे ही अग्निके उपासक होनेके नाते ब्राह्मण अग्निका प्रतीकचिह्न 'शिखा' रखते हैं।

जैसे तडित्-चालक विद्युत्को अपनी ओर खींच लेता है उसी तरह शिखा भी अन्तरिक्षमें प्रवाहित परमात्माकी आजशक्तिको आकर्षित करनेमें सफल होती है। अनुष्ठान और साधनामें रत साधकका सम्पर्क परमात्मामें स्थापित करनेमें शिखा सहायता करती है।

इस तथ्यको जान लेनेसे शिखा रखनेके रहस्यसे पर्दा हट जाता है। इसे देशी-विदेशी विद्वानों विचारकों लेखकोंने भी स्वीकार किया है। ऋषि-मुनियोंने साधनासे इतनी उत्कृष्टता प्राप्त कर ली थी कि उनके मस्तिष्कसे अमृतरसका निरन्तर स्राव होता रहता था जो एक छोटे-से शिखामार्गके लिये सँभालना मुश्किल हो गया। फलतः इन साधुओंने जटा-जैसे लम्बे बाल रख लिये। ये बाल आपसमें इतने गुथे रहते थे कि अमृतरसका उनके अन्तिम छोरतक पहुँचना मुश्किल हो जाता था और वह पुनः सहस्रदलकर्णिकामें लौट जाता था। इस तरह ये जटाएँ अनेक शिखाओंका प्रतिनिधित्व करती थीं। दुर्भाग्यसे इस मर्मको नहीं समझते हुए आधुनिक धर्मावलम्बी इसे महान् या पहुँचे हुए साधुका लक्षण बताकर धारण किये हुए दिखायी देते हैं। ऋषियोंद्वारा रखी गयी इन जटाओंको 'पञ्चशिखी' कहा जाता है। गृह्यसूत्रकारोंने कहा है—

'एकशिखस्त्रिशिखः पञ्चशिखो वा यथैवैषां कुलधर्मः स्यादथर्षिः शिखा निदधातीति।'

अर्थात् कुलधर्मके अनुसार बालक तथा अन्यको एक, तीन अथवा पाँच शिखा धारण कराये।

शिखाबन्धन क्यों ?

जैसा कि पहले कहा गया है कि शिखास्थानके नीचे बुद्धिचक्र (मस्तुलिङ्ग) और ब्रह्मरन्ध्र होते हैं, जहाँसे अमृतत्व वायुवेगसे सहस्रारमें प्रवेश करते हुए बाहर निकलनेके लिये शिखामार्गको चुनता है। अतः ग्रन्थि लगाकर इस मार्गको अवरुद्ध कर मानवकी आयु, बल [illegible] तेजकी वृद्धि करनेवाले अमृतत्वको सहस्रदलक[illegible] समाहित कर दिया जाता है। इसी प्रकार [illegible] केन्द्रोंकी रक्षाके लिये ऋषियोंद्वारा [illegible] विधि अत्यन्त विलक्षण है।

ईसाइयोंके धर्मशास्त्रमें [illegible] नामक एक प्रतापी शासकके [illegible] कथा आती है जो शत्रुओंद्वारा [illegible] भी पराजित [illegible] किया जा सकता [illegible] एक विचित्र [illegible] मिली कि [illegible] शिखा ही उसे [illegible] हुए है। [illegible]

और सुबह हुए युद्धम राजा पराजित हो गया। कथाका सार स्पष्ट करता है कि शिखाशक्तिका महत्त्व अन्य धर्मोंम भी स्वीकार किया जाता था। यह कथा हमारे ऋषियो—महर्षियोके अलौकिक ज्ञान, प्रतिभा, दूरदृष्टि और अनुसन्धान-कौशलका सत्यापन करती है।

शिखाबन्धन कैसे करे?

महर्षियोका निर्देश है कि शिखाधारक प्रतिदिन स्नानादिके बाद पूजन, होम, सन्ध्या आदिमे प्रयुक्त होनेके पूर्व शिखाबन्धनहेतु सुखासनपर बैठकर आचमन और पवित्रीकरण करे। तत्पश्चात् शिखाकी लटोको समरस या सुलझाकर सम करे। इसके पश्चात् अग्रिम मन्त्रको पढते हुए शिखाके मूलको बाये हाथसे पकडते हुए तर्जनी या अँगूठेको शिखासे सटाकर शेष शिखाभागको शिखाकी लम्बाईके अनुपातमे एक या दो फेरा (तर्जनी या अँगूठेको घेरेमे लेते हुए) देकर गाँठ लगाये—

चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेज समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये तेजोवृद्धि कुरुष्व मे॥

यदि उपर्युक्त मन्त्र याद न रख सके तो गायत्रीमन्त्र पढते हुए शिखाबन्धन किया जा सकता है।

शिखा कट जानेपर प्रायश्चित्त करनेका विधान

जैसा कि स्पष्ट है समस्त हिन्दूधर्मके अनुष्ठानोके आरम्भमे शिखाबन्धन अवश्य किया जाना चाहिये। यदि अज्ञानतासे बाल कटवाते समय रखी हुई शिखा कट जाती है अथवा छोटी हो जानेके कारण उसमे ग्रन्थि लगाना सम्भव न हो तो द्विजको तप्तकृच्छ्र व्रतद्वारा प्रायश्चित्त करना चाहिये—

शिखा छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो वर्णा द्विजातय ॥
(लघुहारीत)

इसके उपरान्त जबतक सिरपर समुचित लम्बाईकी शिखा नहीं आ जाती तबतक तीनो वर्णोके द्विजातीय पुरुषोको कुशाकी शिखा तयार कर उसमे ब्रह्मग्रन्थि लगाते हुए उसे दाहिने कन्धे या कानपर रखकर पूजन-यजन करते रहना चाहिये—

अथ चेत् प्रमादान्निशिख वपन स्यात् तत्र कौशीं शिखा ब्रह्मग्रन्थिसमन्विता दक्षिणकर्णोपरि आशिखा-बन्धादवतिष्ठेत्॥ (काठकगृह्यसूत्र)

शिखाधारणसे लाभ

शिखा आर्यजातिका एक पवित्र धार्मिक कृत्य और उसकी सामाजिकताका प्रतीक है। समस्त धार्मिक कार्योंका प्रारम्भ करनेके पूर्व शिखाबन्धन किया जाना आवश्यक है। शिखा एव यज्ञोपवीतके बिना यज्ञ दान तप व्रत, अनुष्ठान आदि शुभ कार्य निष्फल माने जाते हैं। यथा—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥
विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फला क्रिया ॥

मनुष्यके दीर्घ आयु, बल और तेजके उन्नयनमें शिखाकी भूमिका सभी धर्मोंने स्वीकारी है। यह ज्ञानशक्तिको चैतन्य रखते हुए उसे सर्वदा अभिवृद्धिकी ओर अग्रसर रखती है।

साराशमे कहा जा सकता है कि शिखा सूर्यकिरणोसे प्राप्त प्रकाशिनीशक्तिको आकर्षित करने एव सहस्रदल-कर्णिकातक पहुँचानेमे सम्प्रेषकका कार्य करती है। शिखास्थानके नीचे मस्तिष्कके सबसे मर्मस्थलपर स्थित मस्तुलिङ्ग और ब्रह्मरन्ध्र तथा उससे जुडती सुषुम्णा नाडीसे प्रवाहित अमृत-तत्त्वकी सुरक्षा यही शिखा करती है।

यह साधनाकालमे परमात्माकी ओजशक्तिको आकर्षित करने ग्रहण करने तथा रोके रखनेमे अवरोधक और तडित्-चालकका कार्य करती है।

शिखा रखने एव इसके नियमोके अनुशीलनसे सद्बुद्धि सद्वृत्ति शुचिता और सद्विचारमे वृद्धि होती है।

साधनामे आवेशो सवेगोके आदान-प्रदानसे साधककी आत्मशक्ति प्रबल होती है, जिससे लौकिक और पारलौकिक कार्योंमे सफलता प्राप्त करनेमे सहायता मिलती है। इससे बल बुद्धि आयु और नेत्रज्योतिमे वृद्धि होती है। शिखा हिन्दूजातिका प्रतीक—चिह्न है। यह अन्य धर्मोंमे भी सम्मानित और अनुकरणीय माना गया है। यह जातिविशेषसे ऊपर हर व्यक्तिके स्वास्थ्यके लिये अपनाये जानेयोग्य है। अत अपनी आयु, बुद्धि तेज और बलकी वृद्धिके लिये शिखाधारण अवश्य करना चाहिये।

अक्षरारम्भ-सस्कारकी उपयोगिता

(आचार्य डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री वाग्योगाचार्य)

लिपिमे प्रयुक्त होनेवाले अक्षरासे जिस सस्कारका श्रीगणेश किया जाय, उसे अक्षरारम्भ अथवा विद्यारम्भ-सस्कार कहते हैं। ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दीमे महामुनि पाणिनि लिपिका उल्लेख करते हैं। भगवान् बुद्धके समयमे अनेक लिपियाँ प्रचलित थीं। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामे अक्षराम अकारको सर्वश्रेष्ठ माना है। महाभारतके लेखनका गुरुभार भगवान् श्रीगणेशने सँभाला था। तान्त्रिक वाङ्मयमे अक्षरोकी देवताके रूपम पूजा का जाती है। षट्चक्राके पटल अक्षर-ध्वनियासे स्पन्दित होत हैं। वेदाका सारभूत 'ॐ' एकाक्षर है।

लिपिज्ञान भारतीय मनीषियाको अति प्राचीन कालसे था, किंतु कुछ आधुनिकोके मतानुसार प्राचीन कालमे भारतीय लिपिज्ञानस अपरिचित थे। इसकी सम्पुष्टिमे वे वेदोकी श्रुतिपरम्पराको प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि वेदाका अभ्यास गुरुमुखसे ही किया जाता था, तथापि लौकिक व्यवहारके निर्वाहहेतु लिपिका निश्चयत आविर्भाव हो चुका था। शौनकीय और माध्यन्दिनसहितामे तो 'लिख्' धातुका अनेक बार प्रयोग किया गया है।

विद्यारम्भ-सस्कारका अनुष्ठान चूडाकरण-सस्कारके अनन्तर ही करना चाहिये—'**वृत्तचौलकर्मा लिपि सख्यान चोपयुञ्जीत।**' जन्मस पाँचवे वर्षमे इसकी सम्पन्नताको उपयुक्त माना गया है। उपयुक्त देशकालमे किया गया सस्कार बालकके मनपर अमिट प्रभाव छोडता है। जिस प्रकार मिट्टीक कच्चे घडेपर लाल-काले रगासे जो रेखाएँ खींच दी जाती हैं, व उसे पकानेपर अमिट हो जाती हैं उसी प्रकार बालमनपर यथासमय डाला गया सस्कार अमिट होता है। कोमल शाखाको चाहे जिस ओर मोड दो वृक्षकी शाखाके रूपमे बढनेपर भी वह पूर्ववत् मुडी रहेगी, किंतु पश्चात् उस दूसरी दिशामे मोडना सम्भव न होगा वह टूट जायगी।

अक्षरारम्भके लिये पाँचवाँ वर्ष उपयुक्त माना गया है। सस्कारमयूखमे मार्कण्डेयका वचन है—'**प्राप्तेऽथ पञ्चमे वर्षे विद्यारम्भ तु कारयत्।**' इस सस्कारको हरिशयनी एकादशीतक ही करना चाहिये। देवताओकी जागरित अवस्थामे दिव्यशक्तिकी प्राप्ति होती है। देवोत्थानी एकादशीसे अक्षरारम्भ-सस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिये। सस्कारप्रकाशमे विश्वामित्रका वचन प्रमाण है—

प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे त्वप्रसुप्ते जनार्दने।
विद्यारम्भस्तु कर्तव्यो यथोक्ततिथिवासरे॥

काल-निर्धारण—इस सस्कारका यथासम्भव उत्तरायणके शुक्लपक्षमे सम्पन्न करना उचित है। कुम्भको छोडकर मकरसे लेकर मिथुनपर्यन्त पाँच महीने ही शुभ माने गये हैं—

अक्षरस्वीकृति प्रोक्ता प्राप्ते पञ्चमहायने।
उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमास विवर्जयेत्॥
पूर्वपक्ष शुभ प्रोक्त कृष्णे चान्त्यत्रिक विना।

(सस्कारप्रकाश)

वसिष्ठके वचनानुसार अक्षरारम्भ-सस्कारके अनुष्ठानमे बुध, गुरु तथा शुक्र दिन उत्तम माने गये हैं। रविवार तथा सोमवारको मध्यम और शनि मङ्गलवारको वर्जित किया गया है। राजमार्तण्डमे गुरुवारको उत्तम, रविवार तथा शुक्रवारको मध्यम शनिवार तथा मङ्गलवारमे अनिष्टकी सम्भावना और बुध सोमवारको विद्याकी निष्फलता बतायी है। व्याख्याकारोके मतानुसार धनुर्विद्यामे बुधवारका निषेध जानना चाहिये। समष्टित रवि, बुध, गुरु तथा शुक्र दिन सभी धर्मशास्त्रकारोंके मतानुसार श्रेष्ठ माने गये हैं। अपराह्णकालमें सोमवारको भी प्रशस्त माना गया है।

अब अक्षरारम्भ-सस्कारमे तिथियाका निश्चय करना है। सस्कारमयूखके मतानुसार प्रतिपदा, षष्ठी अष्टमी, पूर्णिमा तथा रिक्ता तिथियाँ वर्जित मानी गयी हैं। सस्कारप्रकाशमे बृहस्पतिके वचनानुसार गलग्रह तिथियाको भी वर्जित माना है। गलग्रहतिथियाँ हैं—प्रतिपदा, चतुर्थी सप्तमी अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी चतुर्दशी तथा पूर्णिमा। सक्षेपत तृतीया, पञ्चमी दशमी एकादशी तथा द्वादशी तिथियाँ शुभ मानी गयी हैं। शिशुके अक्षरारम्भके लिये नक्षत्रामे शुभ नक्षत्र हैं—हस्त, पुनर्वसु, स्वाती अनुराधा ज्येष्ठा रेवती अश्विनी, चित्रा और श्रवण—

हस्तादित्यमरुन्मित्ररौद्रपौष्णाश्विचित्रभम् ।
श्रवण च प्रशस्त स्यादक्षरग्रहणे शिशो ॥

अक्षरारम्भ-सस्कारमे अनध्यायवाले दिवसाको भी

वर्जित माना गया है। नारदके वचनानुसार तुला और मेषके विषुवमे हरिशयनी, देवोत्थानी, कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वादशी तथा आषाढ शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथियोंमे अध्ययनका निषेध किया गया है। विशेषत प्रतिपदा, अष्टमी, चतुर्दशी पूर्णिमा तथा अमावास्या तिथियोंमे अनध्याय रखना चाहिये—

प्रतिपत्सु चतुर्दश्यामष्टम्या पर्वणोर्द्वयो ।
श्वाऽनध्यायेऽथ शर्वर्या नाधीयीत कदाचन॥

(*निर्णयसिन्धु, तृ०परि० पूर्वार्द्ध*)

अक्षरारम्भ-विधि—सबसे पहले शिशुको उबटन लगाकर स्नान कराना चाहिये। श्वेतवस्त्र धारण कराकर शिशुसे अक्षताके ऊपर स्थापित गणेश हरि-लक्ष्मी, सरस्वतीकी अर्चना कराये। इन देवताओंके नामसे घृताहुतियाँ दिलाये। यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजा करे। इसके पश्चात् अक्षरारम्भ करानेवाला गुरु पूर्वाभिमुख बैठकर पश्चिमाभिमुख शिशुको अक्षरलेखन सिखाये। संस्कारप्रकाशके वचनानुसार *शिशु ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके पश्चात् गुरुजनोंकी भी* अभ्यर्थना करे।

लोकमे यह अक्षरारम्भ-संस्कार पाटीपूजनके नामसे प्रसिद्ध है। *मध्यप्रदेश तथा राजस्थानमे पाटीपूजनके प्रारम्भमे* शिशुसे कहलवाते हैं '**ॐ नम सिद्धम्।**' इस संस्कारसे युक्त बालक मेधावी तथा विद्यानिष्णात बनते हैं।

~~~ ० ~~~

प्रणाम-निवेदन—एक जीवन्त संस्कार

(श्रीराकेशकुमारजी शर्मा)

प्रणाम-निवेदन भारतीय सनातन शिष्टाचारका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। जिसने *प्रणाम करनेका व्रत ले लिया समझना* चाहिये कि उसमे नम्रता, विनय, शील, श्रद्धा सेवा, अनन्यता एव शरणागतिका भाव स्वत प्रविष्ट हो गया। इसीलिये सनातन संस्कृतिमें प्रणाम-निवेदनको उत्तम संस्कारका जनक कहा गया है। सामान्यरूपसे अभिवादन दो रूपोंमे व्यक्त होता है। छोटा अपनेसे बडेको प्रणाम करता है और समान आयुवाले व्यक्ति एक-दूसरेको नमस्कार करते हैं। छोटे और बडेका निर्णय भारतीय संस्कृतिमे त्यागके अनुसार होता है। जो जितना त्यागी है, वह उतना ही महान् है। शुकदेवजीके त्यागके कारण उनके पिता व्यासजीने ही उन्हे अभ्युत्थान दिया और प्रणाम किया। त्यागके अनन्तर विद्या और उसके पश्चात् वर्णका विचार किया जाता है। अवस्थाका विचार तो प्राय अपने ही वर्णमे होता है। मनुस्मृति (२।१२१)-के अनुसार—

अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन ।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥

अर्थात् जो वृद्धजनो गुरुजनो तथा माता-पिताको नित्य प्रणाम करता है और उनकी सेवा करता है उसके आयु, विद्या यश और बलकी वृद्धि होती है।

महाभारतमे भी बताया गया है कि अभिवादनसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है—

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्॥
आचार्यमथवाप्यन्य तथायुर्विन्दते महत्।

(महा० अनु० १०४।४३-४४)

अपनेसे बडेके आनेपर उन्हे देखते ही खडे हो जाना चाहिये। स्वय आगे बढकर उन्हे प्रणाम करना चाहिये। यदि विशेष स्थिति न हो तो उनके समीप आनेकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। यह सर्वमान्य है कि मनुष्यशरीरमे एक प्रकारकी विद्युत्-शक्ति है। दुर्बलका प्रबल विद्युत् अपनी ओर खींचती है। शास्त्रानुसार किसी अपनेसे बडेके आनेपर प्राण ऊपर उठते हैं। उस समय खडे हो जानेसे उनमे विकृति नहीं आती। गुरुजनोंको देखते ही अविलम्ब खडे हो जाना चाहिये।

अभिवादनकी श्रेष्ठतम पद्धति साष्टाङ्ग प्रणाम है। पेटके बल भूमिपर दोनो हाथ आगे फैलाकर लेट जाना साष्टाङ्ग प्रणाम है इसमे मस्तक भ्रूमध्य नासिका वक्ष ऊरु घुटने करतल तथा पैरोंकी अँगुलियोंके ऊपरी भाग—ये आठ अङ्ग भूमिसे स्पर्श करते हो, इसके बाद दोनो हाथोंसे सम्मान्य पुरुषके चरण-स्पर्श करके घुटनोंके बल बैठकर उसके चरणोंसे अपने भालका स्पर्श कराना और उसके पादाङ्गुष्ठोंको हाथोंसे स्पर्श करके अपने हाथोंको नेत्रोंसे लगा लेना—यह साष्टाङ्ग प्रणामकी पूर्ण विधि कही गयी है।

घुटनोंके बल बैठकर मस्तकको चरणोंसे स्पर्श कराना इसीका अर्धरूप है। दोनो हाथ जोडकर मस्तक झुका देना प्रणामका सांकेतिक रूप है। बिना हाथ जोडे और बिना
~~~

मस्तक झुकाये प्रणाम नहीं होता। एक हाथसे, हाथकी अँगुलीसे, छडीसे या टोपीसे होनेवाला प्रणाम प्रणाम नहीं, अपितु प्रकारान्तरसे अवहेलनामात्र है। महर्षि व्याघ्रपाद बतलाते हैं कि एक हाथसे अभिवादन कभी नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसका यावज्जीवन जो कुछ भी पुण्यार्जन किया रहता है वह सब निष्फल हो जाता है—

जन्मप्रभृति यत्किंचित् सुकृतं समुपार्जितम्।
तत्सर्वं निष्फलं याति एकहस्ताभिवादनात्॥

(व्याघ्रपादस्मृति ३६७)

अतः दोनो हाथोसे अर्थात् दाहिने हाथसे दाहिने पैरको और बाये हाथसे बाये पैरको छूकर श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रणाम करनेकी विधि है—

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसङ्ग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः॥

(मनुस्मृति २।७२)

अभिवादनशीलता मानवका सर्वोच्च सात्त्विक संस्कार है। मूलतः प्रणाम स्थूल देहको नहीं, अपितु अन्तरात्मामे प्रतिष्ठित नारायणको ही किया जाता है। अतः स्वयं तो ऐसा करे ही, अपने बच्चोमे भी प्रणाम-निवदनकी प्रवृत्ति स्थिर करनी चाहिये। शास्त्राम तो प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम माता, पिता तथा अपनेसे बडो—गुरुजनोको प्रणाम करनेको नित्यविधिमे अन्तर्हित किया गया है—

उत्थाय मातापितरौ पूर्वमेवाभिवादयेत्।
आचार्यश्च ततो नित्यमभिवाद्यो विजानता॥

अतः प्रणाम-निवेदन भारतीय संस्कृतिका मौलिक संस्कार है। अभिवादनका संस्कार सदाचार शिष्टाचारका मुख्य अङ्ग है। इससे न केवल लौकिक लाभ होता है, अपितु आध्यात्मिक लाभ भी होता है। अभिवादनके बलपर दिव्य लाभाको प्राप्त करनेके अनेक वृत्तान्त प्राप्त होते हैं।

महर्षि मार्कण्डेयके नामसे कौन परिचित नहीं है। जब वे ५ वर्षके थे, तब उनके पिता मृकण्डुको ज्ञात हआ कि इनकी आयु तो केवल छः मास ही शेष है, पिता पहले तो चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होने झटसे उनका यज्ञोपवीत कर डाला और यही उपदश दिया कि वत्स! तुम जिस किसी द्विजोत्तमको दखना, उसे विनयपूर्वक प्रणाम करना—

यं कञ्चिद् वीक्षसे पुत्र भ्रममाणं द्विजोत्तमम्।
तस्यावश्यं त्वया कार्यं विनयादभिवादनम्॥

(स्कन्दपु० नागर० २२।१७)

फिर क्या था, बालक मार्कण्डेय आज्ञाकारी तो थे ही, उन्होने पिताद्वारा प्रदत्त अभिवादनव्रतको अपना लिया, उनका अभिवादनका संस्कार दृढ हो गया। ऐसे ही एक दिन जब सप्तर्षि वहाँसे गुजर रहे थे तो बालक मार्कण्डेयने नित्यकी भाँति उन्हे विनयसे प्रणाम किया और '**दीर्घायुर्भव, दीर्घायुर्भव**' का आशीर्वाद उन्हे प्राप्त हो गया और सचमुच बालक मार्कण्डेय दीर्घायु हो गये तथा कल्प-कल्पान्तकी आयु उन्हे प्राप्त हो गयी। वे चिरञ्जीवी हो गये। ऐसे बहुत-से दृष्टान्त है। तात्पर्य यह है कि अगर जीवनमे प्रणाम-निवेदनका संस्कार प्रतिष्ठित हो गया तो समझना चाहिये कि अन्य कर्तव्य-कर्म भी स्वयं ही सध गये।

देवविग्रहको, आचार्यको साधुको और अन्य पूज्य गुरुजनाको अवश्य प्रणाम करना चाहिये। धर्मशास्त्रमे बताया गया है कि जो व्यक्ति देवालय या देवप्रतिमाको, संन्यासीको, त्रिदण्डी स्वामीको देखकर उन्हे प्रणाम नहीं करता है, वह प्रायश्चित्तका भागी होता है—

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वा त्रिदण्डिनम्।
नमस्कारं न कुर्वीत प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥

(व्याघ्रपादस्मृति ३६६)

यदि अपना शरीर शुद्ध न हो स्वयं स्नान न किये हुए हो तो प्रणाम करते समय गुरुजनोका स्पर्श नहीं करना चाहिये। स्नान करते समय, शौच करते समय दन्तधावनके समय, शव ले जाते समय प्रणाम करनकी आवश्यकता नहीं। स्वयं इन स्थितियामे हो तो भी प्रणाम न करे। जिसका प्रणाम करना है, वह भी इन स्थितियोमे हो तो भी प्रणाम न करे। श्मशानमे, कथास्थलमें देवविग्रहके सम्मुख केवल मानसिक प्रणाम ही करना चाहिये। स्त्रीको किसी परपुरुषका चरण नहीं छूना चाहिये। पतिके अतिरिक्त दूसरे सभी पुरुषोको बिना स्पर्श किये ही दूरसे नमस्कार करना चाहिये।

यह वैज्ञानिक सत्य है कि हमारे हाथों-पैरोंकी अँगुलियोंसे निरन्तर विद्युत्-किरणें निकलती रहती हैं। मस्तकके भालप्रदेश और हाथाकी अँगुलियाको इस विद्युत्-प्रभावको ग्रहण करनकी शक्ति प्राप्त है। अपनेसे श्रेष्ठके चरणोपर मस्तक तथा हाथ रखकर हम उनका प्रभाव ग्रहण करते हैं। प्राचीन समयमे गुरुजनाको प्रणाम करते समय अपना गोत्र, पिताका नाम तथा अपना नाम लिया करते थे।

हमारी भारतीय संस्कृतिमे प्रणाम अभिवादन या नमस्कार करनेकी पद्धति शिष्टाचारके अनुकूल तो है ही

साथ-साथ वैज्ञानिक भी है।

श्रीमद्भागवत (४।३।२२)-मे भगवान् शकरने श्रीसतीजीको इस प्रकार बतलाया है—

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादन
विधीयते साधु मिथ सुमध्यम।
प्राज्ञै परस्मै पुरुषाय चेतसा
गुहाशयायैव न देहमानिने॥

इसका भाव यह है कि सज्जन लाग परस्पर जो अभ्युत्थान, विनम्रता एव प्रणाम करते हैं, वह चित्तम स्थित ज्ञानस्वरूप परमपुरुपके लिये ही करते हैं शरीर और शरीरम अभिमान करनेवाले अहकारको नहीं करते। जिस प्रणाम किया जाता है, उसे समझना चाहिये कि प्रणाम उसम स्थित सर्वान्तर्यामाके लिये किया गया है।

यदि कोई किसी भगवन्नामस्मरणसे अभिवादन करता है तो हमे भी उसी नामसे उत्तर देना चाहिये। 'जय रामजी' करनेवालेको 'जय रामजी' कहकर, 'जय श्रीकृष्ण' कहनेवालेको 'जय श्रीकृष्ण' कहकर उत्तर देना शिष्ट ढग है। इसी प्रकार दूसरे सम्प्रदायके लागासे व्यवहार करते समय प्रणामादिका ऐसा ही रूप होना चाहिय जो उनकी मर्यादाके अनुरूप हो। अत प्रणाम-सस्कारको अपन जीवनमें पूर्णत उतारनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यह परस्पर प्रेम साहार्द, आदरभाव एव विनयका मूल है।

अनुपालनीय सस्कार—अभिवादन

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, रामायणी)

शास्त्रपरम्पराके अनुसार सम्यक्‌रूपसे जो कर्म किया जाता है, वह सस्कार कहलाता है। हमारी मूल निधि वेद है। वही अनेक विद्यास्थानाम उपबृहित प्रदीपकी भाँति सभी अर्थोका प्रकाशक है, सर्वज्ञ-कल्प है और हमारे सर्वविध कल्याणका एकमात्र आश्रय है। उन्हीं श्रुतिया (वेदो)-के ही सर्वहितकारी अर्थोंको सरल करके स्मृतियोने सोदाहरण व्यक्त किया है—

'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्॥'

(रघुवश २।२)

श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ मानव-जीवनका सुव्यवस्थित एव लोक-परलोक दोनोहीको सुखमय-रसमय बनानेके लिये जो मार्गदर्शन कराती हैं वही हमारा सनातनधर्म हे। उसम सोलह सस्कार परिगणित हैं। श्रुतिका सस्कारपरक प्रमुख आदेश इस प्रकार है, जिसका उपदेश आचार्य अन्तेवासी छात्रको दे रहे हैं—

'आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। यान्यस्माक॰ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।'

(तैत्तिरीयोपनिषद् १।११)

'हमारे जो भी उचित एव शास्त्रसम्मत मङ्गलमय आचरण हैं उन्हींका पालन करा जा अनुचित प्रतीत होते हो उन्ह नहीं अपनाना।'

'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।'

'माताका दवतुल्य मानो पिताको दवतुल्य मानो आचार्यका देवतुल्य समझो।'

माता-पिताकी सेवा पुत्रका सब प्रकारसे करनी चाहिय। जो पुत्र माता-पिताकी प्रदक्षिणा करता है एव उन्ह प्रणाम-निवेदन करता है, उसने मानो सप्तद्वीपवती पृथ्वीभरकी परिक्रमा कर ली। ये तो घरपर ही उपलब्ध सबसे बडे तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जाकर प्राप्त होते है। भगवान् गणेश कहते हैं कि मैंने अपने माता-पिताकी परिक्रमा करके देवामे सर्वप्रथम पूज्य पद प्राप्त किया—

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमय पिता।
मातर पितर तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
मातर पितर चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥

(प०पु० सृष्टिखण्ड ४७।११ १२)

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥

(रा०च०मा० २।३०६।२)

वास्तविक सस्कारकी प्रतिष्ठा माता-पिताकी सवा एव उनके आज्ञा-पालनसे ही होती है। यदि माता-पिताकी सच्ची भक्ति दृढ बन गयी तो उसपर देवता ऋषि मुनि पितर तथा मनुष्यादिकी भी कृपा हो जाती है और वह सुयशका भागी बन जाता है।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥

(रा०च०मा० २।१७४)

माता-पिता हमारे परम निकटतम पालक, पोषक और निष्कपटभावसे सर्वस्व-दाता हैं। यदि इतने सर्वोपकारी, सर्वहितैषीकी हम कृतज्ञता-ज्ञापनपूर्वक सेवा एव आज्ञा-पालन न कर सके तो फिर समाज एव राष्ट्रकी सेवा क्या कर सकेगे ?

इस आदर्शको श्रीरामने तीनो भाइयोके साथ करके दिखाया—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥
(रा०च०मा० १।२०५।७ ८)

माता-पिताकी आज्ञाका पालन एव सेवा न करनेके ही कुसस्कारसे आज समाज बिगड गया है। इस मूल सस्कारकी स्वीकृतिके बिना राष्ट्रका कल्याण कथमपि सम्भव नहीं है।

श्रीरामके राज्यकी आजतक प्रशसा हो रही है, आगे भी होती ही रहेगी क्योकि उस समय निम्न मूल सस्कारका सुदृढरूपमे पालन किया गया—

अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसेविन ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥
(मनु० २।१२१)

अर्थात् उठकर सर्वदा वृद्धजनोको प्रणाम तथा उनकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु, विद्या, यश और बल—ये चारो बढते हैं।

भगवान् शङ्करकी कृपासे मृकण्डु मुनिको एक योग्य पुत्र मिला, किंतु वह अल्पायु था। मुनि चिन्तित हुए। फिर उन्होने बालकसे कहा—

य कञ्चिद् वीक्षसे पुत्र भ्रममाण द्विजोत्तमम्।
तस्यावश्य त्वया कार्यं विनयादभिवादनम्॥

हे पुत्र! तुम जिस किसी ब्राह्मण मुनि, पूज्यको देखना—उनको विनम्र हो, अवश्य प्रणाम करना। बालकने ऐसा ही किया। सबका आशीर्वाद चिरञ्जीवी होनेका ऐसा मिला कि अश्वत्थामा बलि व्यास हनुमान्, विभीषण कृपाचार्य तथा परशुराम—इन सातो चिरञ्जीवियोके साथ मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेयजी आठवे चिरञ्जीवी हुए **'मार्कण्डेयमथाष्टमम्'**।

महाराज युधिष्ठिरजीने महाभारतके प्रारम्भमे जबकि दोनो ओरसे सेना आमने-सामने थी, उस समय रथ अस्त्र-शस्त्र एव पदत्राणतक त्यागकर पितामह भीष्मजीके चरणोमे सानुनय प्रणाम किया और प्रार्थना की कि तात! इस महाभारत-युद्धमे 'विजय' का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहता

हूँ। तब परम प्रसन्न होकर भीष्मजीने कहा—तुम्हारे शील एव विनयने सबको परास्त कर दिया है, तुम्हारी विजय अवश्य होगी—इसमे सदेह नहीं। मूलत **'विजयी भव'**का आशीर्वाद प्राप्त होना भी केवल **'विनयादभिवादनम्'**का ही परिणाम था।

श्रीरामने तो सर्वत्र इसका अनुपालन किया—

तइ दोउ बधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
(रा०च०मा० १।२२६।५)

और आशीर्वाद मिला—***'सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे'*** (रा०च०मा० १।२३७।४)। आगे विवाहादि सभी कार्य इस आशीर्वादसे सम्पन्न हुए ही। निष्कर्ष यही कि अभिवादनमात्रसे ही सब प्रकारका अभीष्ट सिद्ध हो सकता है।

अभिवादन क्या और कैसे करना चाहिये तथा इसका वैज्ञानिक स्वरूप क्या होता है ? इस सम्बन्धमे सक्षिप्त विचार प्रस्तुत है—प्रत्येक मानव-पिण्डमे विद्युत्की आकर्षण-शक्ति रहती है। यह शक्ति भी ऋणात्मक एव धनात्मक दो प्रकारकी है। इसीलिये दाये हाथसे दाये एव बायेसे बाये पादको स्पर्श करनेका विधान है। इस प्रकार स्पर्श करनेसे प्रणम्य एव प्रणामकर्ता—दोनो पिण्डोकी निगेटिव एव पॉजिटिव—दोनो धाराएँ समानरूपसे मिलती हैं। जैसे विद्युत्-उत्पादक यन्त्रमे सञ्चित विद्युत् अपने सम्पर्कमे आनेवाले दूसरे यन्त्रमे प्रवाहित हो उठती है, वैसे ही प्रणाम करनेपर गुरुजनोके, श्रेष्ठजनोके सद्गुण अपनेमे भी आ जाते है। सिरपर हाथ रखनेपर भी वही

भोजन आनन्द एव तृप्ति देता है।

४-अन्न यदि ईश्वरार्पणके भावसे बनाया जाय तो उसम प्रेम एव भक्ति दोना भावाका समन्वित प्रभाव आ जाता है। फिर अपने इष्टको भोग लगानेके बाद वह अन्न परम शुद्ध होकर दिव्य प्रसादमे रूपान्तरित हो जाता है। प्रसाद तो तुष्टि-पुष्टिके साथ प्रसन्नता भी देता है और उसम ईश्वरकृपा भी सहज ही समाहित हो जाती है। इसीलिये सत तुलसीदासजीके 'श्रीरामचरितमानस' मे महर्षि वाल्मीकि प्रभु श्रीरामके आगे निवेदन करते हैं—

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥

(रा०च०मा० २।१२९।२)

महारानी मीरा एक कण भी अपने गिरिधर गोपालको भोग लगाये बिना ग्रहण नहीं करती थीं। एक दिन राणाका भेजा हुआ विष भी उन्हाने दूध जानकर अपने प्रिय गिरिधर गोपालको अर्पित किया और स्वय पान कर लिया, तब प्रभुको अर्पित होनेसे वह विष भी अमृत हो गया।

यह तो हुआ अन्नका भावात्मक सस्कार। इसके अतिरिक्त अन्नका क्रियात्मक सस्कार भी आवश्यक है। इसके पीछे हमारी भारतीय सस्कृतिकी आध्यात्मिकताकी भावना प्रधान है। इसके लिये आवश्यक है—

१-भोजन बनाकर प्रथम बलिवैश्वदेव किया जाय तथा पञ्चबलि निकाली जाय, अग्निदेवको अन्न प्रदान किया जाय गायको गोग्रास दिया जाय, इससे भोजन शुद्ध होता है तथा गायको अन्न देनेसे अनेक प्रकारसे अप्रत्यक्षरूपम हम गोमाताका आशीर्वाद प्राप्त होता है।

२-गरीबको अन्न देनेसे अन्न भी सस्कारित होता

है, इससे स्वय दाताको भी विशेष सतोष तथा आनन्द मिलता है। सात्त्विकभावसे सात्त्विक अन्नदान करनेवाले व्यक्ति इस आनन्दका जानते हैं। निश्चय ही ऐसा व्यक्ति यज्ञका पुण्यलाभ प्राप्त करता है।

३-समय-समयपर कच्चा या पका अन्न किसी अन्य व्यक्ति—भूखे अथवा ब्राह्मणको दान देना चाहिये। भूखे व्यक्ति, ब्राह्मण तथा अतिथिको भोजन करानेसे स्वय परमात्मा तृप्त होते हैं। इसस अन्नका सस्कार तो होता ही है, अपितु दान देनेसे अप्रत्यक्षरूपसे उसकी वृद्धि भी होती है। वनम द्रौपदीने अतिथिरूपम पधारे भगवान्

श्रीकृष्णको अपने अक्षय-पात्रमसे सागका एक टुकडा दान किया था। उसे जब श्रीकृष्णने ग्रहण किया तो उस समय ससारके समस्त भूखे प्राणी तृप्त हो गये थे और द्रौपदीका अभाव दूर हा गया था।

सात्त्विक तथा सस्कारित अन्न ग्रहण करनेसे चित्त सहज ही शुद्ध हो जायगा वृत्तिम उदात्तता आयगा स्वभावम सरलता प्रम अक्रोध निरुद्विग्नताका समावश होगा और सच्चे सुख एव आनन्दकी प्राप्ति हागी।

शुद्ध अन्नसे अन्त·करणकी शुद्धि

(सुश्री रजनीजी शर्मा)

भारतीय सस्कृति यह मानती है कि भोजनकी शुद्धि होनेपर मानवके सत्त्वकी शुद्धि होती है और अन्त करण निर्मल एव पवित्र हो जाता है—'**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धि** ।' इतना ही नहीं, सत्त्वकी शुद्धि होनेपर स्मृति दृढ हो जाती है और स्मृतिके ध्रुव हो जानेपर हृदयकी ग्रन्थियोका भेदन हो जाता है—'**सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्ष** ।' इस प्रकार अन्नकी शुद्धिकी बहुत महिमा है। इसीलिये भारतीय सनातन सस्कृतिने अन्न एव आहारकी शुद्धिपर विशेष बल दिया है। '**अन्नमयः हि सोम्य मन** ' अर्थात् हे सोम्य। अन्नसे ही मन बनता है। जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन हो जाता है और तदनुरूप ही बुद्धि भावना विचार एव कल्पनाशक्ति निर्मित होती है।

सनातन आदर्श यह रहा है कि ईमानदारीकी कमाई ही खायी जाय बेईमानी, असत्य तथा धोखबाजीसे अर्जित जीविकासे बचा जाय। अथर्ववेदका कथन है—'**रमन्ता पुण्या लक्ष्मीर्या पापीस्ता अनीनशम्**॥' अर्थात् पुण्यसे कमाया हुआ धन ही मनुष्यको समृद्धि दे सकता है। जो पापयुक्त धन है उसको मैं नाश करनेवाला जानूँ। न्यायापार्जित द्रव्यसे प्राप्त अन्न ही ग्राह्य है। इसाको शास्त्राम शुक्ल धन कहा गया है। न्यायपूर्वक प्राप्त द्रव्य ही शुद्ध द्रव्य है।

अन्नको देवतारूप समझकर ग्रहण करना चाहिये। मनुस्मृतिमें कहा गया है कि अन्न ब्रह्म है, यह समझकर उसकी उपासना करनी चाहिये। दोनो हाथ दोना पैर और मुखका भली प्रकार स्वच्छ कर ब्रह्मचिन्तन करते हुए भोजन करना चाहिये। पहले भोजनका पूजन करना चाहिये। उसे देखकर हर्षयुक्त होना चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक अभिनन्दन करते हुए उसे ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि अन्न ब्रह्म है रस विष्णु है और खानेवाला महेश्वर है। भोजनके समय क्या करना चाहिये इस विषयमे बताया गया है—

पूजयेदशन नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वश ॥
पूजित ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

अर्थात् भाजनका सदैव आदर करे, प्रत्युत प्रशसा करता हुआ उसे ग्रहण करे। भोजनकी निन्दा कभी न करे, उसे देखकर आनन्दित हो, भाँति-भाँतिसे उसका गुणगान करे, क्याकि इस प्रकार ग्रहण किया गया सस्कारसम्पन्न भोजन प्रतिदिन बल एव पराक्रमको देता है। बिना प्रशसाके किये गये अन्नका भाजन करना तो दोनाकी क्षति करता है।

श्रुतिका आदेश है—'**अन्न न निन्द्यात्। तद् व्रतम्**' अर्थात् अन्नकी निन्दा कभी न करे, यह एक महाव्रत है।

भोजन क्षुधानिवारण तथा शरीररक्षाका साधन है, यह स्वाद या चटोरेपनके लिये नहीं है। युक्त आहार-विहार भी ईश्वरकी उपासनाका एक अङ्ग है। अत भोजनमे कोई अपवित्र वस्तु ग्रहण नहीं करनी चाहिये। यह तो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है ही, अन्न भी असस्कृत हो तो वह ग्राह्य नहीं है।

हमारी सस्कृतिम भोजनकी आन्तरिक स्वच्छताको—उसके सस्कारको अधिक महत्त्व दिया गया है। सर्वप्रथम तो अन्न शुद्ध होना चाहिये, स्थान स्वच्छ एव पवित्र होना चाहिये, फिर बनानेवालेकी मन स्थिति पवित्र होनी चाहिये। अतृप्त भूखा, लालची क्रोधी हीनवर्ण, अस्वस्थ या कुत्सित रसोइया अपने सम्पर्कसे ही भोजनको दूषित कर देता है। अन्न कितना ही सस्कारसम्पन्न हो, भोजन बनानेवालेकी प्रवृत्ति भी अन्नको असस्कृत बना देती है और भोजन करनेवालेपर ऐसे व्यक्तिके विचाराका बुरा प्रभाव पडता है। अत अन्नकी शुद्धिके लिये बनानवालेका भी सदाचारी एव सस्कारसम्पन्न हाना आवश्यक है। माता पत्नी या बहिनके द्वारा बनाये हुए भोजनमे प्राय वे सब शुभ वृत्तियाँ मिल जाती हैं। भोजनसे पूर्व प्रार्थना कर उसे ब्रह्मार्पण करनेका विधान है। सच्चा हिन्दू भोजन सामने आनेपर नेत्र मूँदकर ईश्वर-चिन्तन करते-करते यह मन्त्र उच्चारण करता है—

'**तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजाऽसि देवाना धामनामासि विश्वमसि विश्वायु** ।'

अर्थात् हे अन्न! तुम तेज हो, तुम उत्साह हो, तुम बल हो, तुम दीप्ति हो, तुम ही चराचर विश्वरूप हो, तुम ही विश्वके जीवन हो।

'द्यौस्त्वा परिददातु पृथिवी गृह्णातु।'

अर्थात् हे अन्न! आकाश तुझ देता है और पृथ्वी तुझ ग्रहण करती है।

गीता (१७।८)-म भगवान्ने कहा है—

आयु सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना ।
रस्या स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्त्विकप्रिया ॥

अर्थात् जो आहार स्वादु, स्निग्ध, स्थिर गुणप्रद और मनोहर—इन सब गुणोसे युक्त हो तथा जिसके सेवनस आयु, सात्त्विक बुद्धि शारीरिक बल आराग्य शारीरिक सुख मानसिक सुख और प्रीति—इन सबकी विशेप वृद्धि हो, ऐसा आहार सात्त्विक होता ह, जो सात्त्विक मनुष्याको रुचिकर हाता है।

घरमे बनी भोजनसामग्रीका सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव किया जाता है अर्थात् अग्निमे अन्नाहुति दी जाती है। यह अन्नका मुख्य सस्कार है। इसमे मुख्यरूपसे देवयज्ञ, भूतयज्ञ पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञकी विधि आती है। तदनन्तर पञ्चबलि दी जाती है अर्थात् गायाके लिये श्वानाके लिये कौआक लिये, दवादिक लिये तथा पिपीलिका (चींटी) आदिको अन्नका भाग दिया जाता है। यह सब अन्नको सस्कारसम्पन्न करनेका ही स्वरूप है। वैश्वदेवक अनन्तर अतिथिको भोजन कराना चाहिये। भगवान्को निवेदित करके ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार बना हुआ भाजन समस्त प्राणियाका प्राप्त हा जाता है। एसा करनेमे भोजनका सम्कार हो जाता है। मनुजीन कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्न तत प्रजा ॥

(मनु० ३।७६)

वेदोक्त विधिस अग्निम दी हुई आहुतिसे सब प्राणियाकी तृप्ति हो जाती है। बलिवैश्वदेवयज्ञद्वारा अन्न सस्कारित हो जाता है। सस्कारित अन्न ही ग्रहण करना उचित है।

जो भी भाजन बना है, गृहस्थका सबसे पहल अन्न-जल देवताआ और पितराको तथा प्राणिमात्रको निवदित करना चाहिये। सबका अन्न जल देनेके अनन्तर ही स्वय ग्रहण करना मनुष्यक लिये कल्याणकारी है। भगवान्को भाग लग हुए भाजनम तीन ग्रास—**ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा** तथा **ॐ भूताना पतये स्वाहा**—इन तीन मन्त्रोंस अलग निकालकर इन्हीं तीन मन्त्रासे आचमनका जल छोड दे। इसके बाद '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' कहकर स्वय आचमन करे और '**ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा** तथा **ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रासे पञ्च ग्रासाहुति देकर मौन होकर भोजन ग्रहण करे। इस प्रकारका सस्कृत अन्न सत्त्वसम्पन्न होता है और व्यक्तिको सात्त्विक बनाता है।

~~ o ~~

अस्पृश्य

बुद्ध शिष्यासहित सभामं विराजमान थे, उसी समय बाहर खड़ा कोई व्यक्ति जोरसे बोला—'आज मुझे सभामें बैठनेकी अनुमति क्यो नहीं दी गयी ?'

बुद्ध नेत्र वद करके ध्यानमग्न रहे। उस व्यक्तिने फिर चिल्लाकर यही प्रश्न किया। एक शिष्यने पूछा—'भगवन्! बाहर खड़े उस शिष्यको अदर आनेकी अनुमति दीजिय।' बुद्ध नेत्र खोलकर बोले—'नहीं, वह अस्पृश्य है।' अस्पृश्य! शिष्यगण आश्चर्यम डूब गये। बुद्ध उनके मनका भाव समझते हुए बोले—'हाँ, वह अस्पृश्य है।'

शिष्योने पूछा—'वह अस्पृश्य क्यो ? कैसे ? 'भगवन्! आपके धर्ममे तो कोई भेद नहीं है।'

बुद्ध बोले—'आज यह क्रोधमे आया है, क्रोधसे जीवनकी एकता भङ्ग होती है। क्रोधी मानसिक हिंसा करता है। किसी भी कारणसे क्रोध करनेवाला अस्पृश्य है। उस कुछ समयतक पृथक् एकान्तम खडा रहना चाहिये। पश्चात्तापकी अग्निमे तपकर वह स्मरण कर लगा कि अहिंसा महान् कर्तव्य है, परम धर्म है।' शिष्य समझ गये कि अस्पृश्यता क्या है ? अस्पृश्य कौन है ?

~~ o ~~

एक अतिशय महत्त्वपूर्ण संस्कार—पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्म

(शास्त्रार्थ पञ्चानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

[पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्म अपने महनीय उद्देश्यके कारण कभी वेदकालीन विशिष्ट संस्कारोंमें परिगणित हुआ करता था, वह आजकल अपने विकृतरूपमें 'उत्तराधिकार' नामसे प्रचलित है। उत्तराधिकारमें पिताको केवल सांसारिक सम्पत्ति ही पुत्रको नहीं सौंपनी चाहिये, क्योंकि पिताके दिवंगत हो जानेपर वह सम्पत्ति तो बिना सौंपे भी पुत्रको स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। वास्तवमें तो अपनी जीवनशक्तियोंका अधिकाधिक विकास प्रत्येक पिता अपने पुत्रमें देखना चाहता है। पुत्र पिताकी आशाओंका केन्द्र होता है। जैसे धान एक खेतसे उखाड़कर दूसरे खेतमें आरोपित किया जाता है, जहाँ वह वृद्धिको प्राप्त होकर फलवान् बनता है, ठीक उसी प्रकार पिता भी अपने मन, इन्द्रिय एवं प्राणोंकी समस्त सञ्चित शक्तियोंको अपने पुत्रमें इस आशासे स्थापित करता है कि समय पाकर ये शक्तियाँ खूब फले-फूलें। वैदिक परम्परामें पिताके द्वारा अपने पुत्रमें शक्तियोंके निक्षेपको ही पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्म कहा गया है, जो अब केवल मकान, दूकान, खेत-खलिहान और धन-सम्पत्ति सँभालनेतक ही सीमित हो गया है। प्रस्तुत आख्यायिकामें उसी पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्मकी मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गयी है—]

महात्मा शिवि एक आत्मकाम-पूर्णकाम महापुरुष थे। उनका जीवन शास्त्रमर्यादित, कुण्ठाओंसे रहित और अद्भुत शान्तिमें परिपूर्ण था। निर्विकार और संतुष्ट होनेके कारण जैसा निष्कलङ्क जीवन उन्होंने अबतक जिया था, वह हर किसीको प्राप्त नहीं हो सकता था। ऐसा नहीं कि उनके जीवनमें उतार-चढाव न आये हों और ऐसा भी नहीं कि भौतिक विकारोंने उन्हें आकुल न किया हो, परंतु शास्त्रनिष्ठा और मर्यादाकी लगाम उन्होंने इतनी सजगताके साथ थाम रखी थी कि उनके मनका दुर्दमनीय, शक्तिशाली अश्व बेकाबू नहीं हो पाया था। उनके इस कठोर आत्मसंयमका मूर्त प्रतिफल था उनका परमतत्त्वज्ञ पुत्र—सत्यकाम।

सत्यकाम सुशील, संतुष्ट और विद्वान् होनेके साथ-साथ आध्यात्मिक रहस्योंके मूल स्रोतका उत्कट जिज्ञासु था। उसने महर्षि पिप्पलादकी संनिधिमें रहकर वेदबीज 'ओङ्कार'के तात्त्विक स्वरूपका अध्ययन किया था। अपनी ज्ञानपिपासाको अपने पुत्रमें प्रतिफलित होते देखकर शिवि परम आनन्दित थे। वे चाहते थे—अपना समस्त अर्जित सत्यकामको सौंपकर जीवनमें कृतकृत्यता प्राप्त करें और जीवन्मुक्त दशाका रसास्वादन करें, क्योंकि नाशवान् कलेवरका क्या भरोसा, आज है कल न रहे। वार्द्धक्य कबसे उनका द्वार खटखटा रहा था। शरीरकी संधियाँ शिथिल पड़ती जा रही थीं। ऊर्जाका स्रोत सूखने लगा था। मृण्मय देह-पिण्डके भीतर एक चिन्मय चैतन्य ही था, जो वार्द्धक्यसे अप्रभावित था, वह सर्वथा निर्विकार एवं सब प्रकारसे जाग्रत् था।

सत्यकामकी आस्थाओंके केन्द्र महर्षि पिप्पलादसे उन्होंने अपने मनोभाव निवेदित करते हुए साग्रह अनुरोध किया कि वे अपनी संनिधिमें सत्यकामके साथ मेरा पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करवायें। पिता अपने जीवनमें अर्जित किये हुए समस्त सद्गुणों एवं उन्हें अर्जित करनेमें माध्यम बनी अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको स्वेच्छासे, प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रको हस्तान्तरित करता है—इस वैदिक अनुष्ठानको पिता-पुत्रीय सम्प्रदान-कर्म (उत्तराधिकार) कहा जाता था।

महर्षि पिप्पलादने शिविके प्रेमानुरोधको स्वीकार कर लिया, परंतु सत्यकाम अपने पिताकी अभिलाषाको समझकर तथा उसकी पूर्तिके लिये महर्षि पिप्पलादका अनुमोदन सुनकर हर्ष और शोक-जैसे परस्पर विरुद्ध दो मनोभावोंसे घिर गया। पिता उसे अपनी अर्जित ज्ञान-सम्पदा प्रदान करने जा रहे हैं, यह बात उसे पुलकसे भर देती थी, परंतु उसके बाद पिता यदि परिव्राजक होकर गृहसे निकल गये, उसे छोड़कर चले गये तो—इस बातकी कल्पना ही उसे उद्विग्न कर डालती थी। इस प्रकार दो विपरीत मनोदशाओंमें डूबते-उतराते हुए ही सत्यकामने समस्त आवश्यक पूजा-सम्भार संकलित किये।

अग्निशालामे नूतन कुश-कास आदि तृणाका आस्तरण करके महर्षि पिप्पलादने सर्वप्रथम अग्निस्थापन किया। तदनन्तर उत्तर दिशामे कलश स्थापित करके उसके ऊपर धान्यपूर्ण पात्र रखा। महात्मा शिविने नवीन धौत वस्त्र और उत्तरीय धारण किये। देवार्चा, हवन आदि सभी कृत्य पूर्ण विधिके साथ सम्पादित करके महर्षि पिप्पलादने वन्य-पुष्पोकी दिव्य सुगन्धसे महकती माला यज्ञप्रसादके रूपमे शिविको पहनाकर उन्हे अलङ्कृत किया।

फिर सम्प्रदान-कर्मका शुभारम्भ हुआ। सुप्रसन्नमुद्रामे अग्निशालासे बाहर आकर शिविने अत्यन्त स्नेहासिक्त स्वरसे पुत्रको पुकारा—वत्स सत्यकाम! आओ।

विनतमुख सत्यकाम ज्यो ही घरसे बाहर आया, प्रेमार्द्र पिताने उसे अपने अङ्कमे भर लिया। कुछ क्षणोतक पुत्रको छातीसे लगाये रखा फिर उसे आसनपर बिठाकर वे स्वय ही उसके सम्मुख बैठ गये। ससारके समस्त व्यवहार जिसके आधारपर चलते हैं, केवल चलते ही नहीं हैं, बनते और बिगडते भी हैं, उस वाणीका अर्थात् वागिन्द्रियका सम्प्रदान सर्वप्रथम करनेका विधान है। बादमे अन्य इन्द्रियो एव विभिन्न शक्तियोका सम्प्रदान किया जाता है। इस पद्धतिके अनुसार सम्प्रदान-कर्म किया जाने लगा—

शिवि—'वाच मे त्वयि दधानि' पुत्र! मैं अपनी वाणीके समस्त गुण तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'वाच ते मयि दधे' पिताजी! आपकी वाणीके समस्त सद्गुणोको मैं अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'प्राण मे त्वयि दधानि' मैं अपने प्राण श्वास-प्रश्वास-प्रक्रिया तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'प्राण ते मयि दधे' मैं आपके प्राण अर्थात् घ्राणेन्द्रियकी सामर्थ्यको अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'चक्षुर्मे त्वयि दधानि' मैं अपने नेत्रोमे विद्यमान विमल दृष्टि तुममे स्थापित करता हूँ। पुत्र! तुम्हारी दृष्टिमे कभी भी मलिनता न आये।

सत्यकाम—'चक्षुस्ते मयि दधे' मैं आपके नेत्रोके इस विमलभावको अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'श्रोत्र मे त्वयि दधानि' मैं अपनी श्रोत्रेन्द्रियकी शक्ति तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'श्रोत्र ते मयि दधे' आपकी श्रोत्र-शक्तिको मैं अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'अन्नरसान् मे त्वयि दधानि' भोग्यपदार्थ अन्नादिमे जो मेरा रसास्वादन-कौशल है, उसे मैं तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'अन्नरसास्ते मयि दधे' मैं आपके अन्नरसोको अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'कर्माणि मे त्वयि दधानि' मैं अपनी कर्मप्रवृत्तिको तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'कर्माणि ते मयि दधे' मैं आपकी कर्म-प्रवृत्तिको अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'सुखदु खे मे त्वयि दधानि' मैं अपने सुख-दु खोको तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'सुखदु खे ते मयि दधे' मैं आपके सुख-दु खोको अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'आनन्द रतिं प्रजातिं मे त्वयि दधानि' मैं अपने आनन्द, रति और सतानोत्पत्तिकी सामर्थ्यको तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'आनन्द रतिं प्रजातिं ते मयि दधे' आपकी ये शक्तियाँ मैं अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'इत्या मे त्वयि दधानि' अपनी गति-शक्ति मैं तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'इत्यास्ते मयि दधे' आपकी गति-शक्ति मैं अपनेमे धारण करता हूँ।

शिवि—'धियो विज्ञातव्य कामान् मे त्वयि दधानि' मैं अपनी बुद्धिवृत्तियो बुद्धिके द्वारा ज्ञातव्य विषयो तथा अपनी समस्त कामनाओको तुममे स्थापित करता हूँ।

सत्यकाम—'धियो विज्ञातव्य कामास्ते मयि दधे' मैं आपकी बुद्धिवृत्तियो, बुद्धिके द्वारा ज्ञातव्य विषयो एव आपकी सम्पूर्ण कामनाओको अपनेमे धारण करता हूँ।

इस प्रकार सम्प्रदान-कर्म पूर्ण हुआ। सत्यकामने पिताकी प्रदक्षिणा की तथा शिविने सत्यकामको वक्षसे लगा लिया और उसके मस्तकको सूँघकर बोले—**'यशो ब्रह्मवर्चसमन्नाद्य कीर्तिस्त्वा जुषताम्'** वत्स सत्यकाम! यश ब्रह्मवर्चस्व अन्नको खाने और पचानेकी शक्ति

तथा उत्तम कीर्ति—ये समस्त सद्‌गुण सदा तुम्हारा सेवन करे। तदनन्तर सत्यकामने अपने बाये कन्धेकी ओर दृष्टि घुमाकर और हाथसे ओट करके पिताका उत्तर दिया—'**स्वर्गान् लोकान् कामान् अवाप्नुहि।**' अर्थात् आप अपनी इच्छानुसार कमनीय स्वर्गलोक तथा वहाँके भोगोको प्राप्त कर।

सत्यकामने देखा कि पिताकी कृतकृत्यतासे पूर्ण दृष्टिमे उसके लिये अनन्त आशीर्वाद है। महात्मा शिविने घरकी परिक्रमा की और सत्यकामक मस्तकपर हाथ रखकर जीवनको प्रशस्त बना देनेवाला दिव्य आशीवाद प्रदान किया—

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृत भव।
तेजो वै पुत्रनामासि स जीव शरद शतम्॥

(कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् २।११)

पुत्र सत्यकाम! तुम्हारा शरीर पत्थरक समान दृढ, सुगठित, बलवान्, स्वस्थ एव नीरोग हो। तुम कुठारकी भाँति अपने शत्रुओका विनाश करनेवाले बनो तथा मब ओर फैली हुई सुवर्णराशिके समान सभीके प्रिय बनो। समस्त अङ्गाका सारभूत, ससारवृक्षका बीजरूप जो तेज है, वह तुम स्वय हो। तुम सैकडा वर्ष जीवित रहो।

सत्यकामने पिताके इस उदात्त आशीर्वादको अत्यन्त श्रद्धाके साथ ग्रहण किया, फिर महर्षि पिप्पलादसे विनयपूर्वक प्रार्थना की—गुरुदेव! मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेरे पूज्य पिता मरे साथ ही रह। इस सम्प्रदान-कर्मके अनन्तर जैसी कि परम्परा है—पिता प्रव्रज्या ग्रहण करके घर छोडकर चला जाता है। मैं चाहता हूँ, पिताजी ऐसा न कर। वे अपनी वरद छाया मेरे ऊपर रखते हुए घरमें ही निवास करे। इमसे मुझे मानसिक सतोष प्राप्त होगा।

पुत्रकी इस अभ्यर्थनासे शिवि द्रवित हो गये। इससे पूर्व कि पिप्पलाद कुछ कहते, गद्‌गद स्वरमे वे ही बाले—वत्स सत्यकाम! परम्परा तो परिव्राजक हो जानेकी अवश्य है, किंतु शास्त्रका अनुशासन दोना प्रकारका है। स्थितियाँ अनुकूल हा तो पिता घरम भी स्वेच्छानुसार रह सकता है। इसलिये पुत्र! तुम व्यथित न होओ। मैं तुम्हारे पास यहीं रहूँगा। आज मैंने अपनी समस्त वस्तुएँ तुम्हे सौंप दी हैं, अपनी देह अपनी इन्द्रियाकी सामर्थ्य, अपनी सञ्चित आध्यात्मिक ऊर्जा, अपन कर्म और उनका परिपाक तथा भौतिक सम्पत्तिका प्रतीक यह घर। पुत्र! यह सब कुछ आजसे तुम्हारा है, स्वामी हो तुम इन सबके और मैं सब प्रकारसे भारमुक्त होकर आजसे सर्वथा निर्द्वन्द्व हो गया हूँ, आजसे तुम्हारा आश्रित हूँ। वत्स सत्यकाम! यही तो सच्चा उत्तराधिकार है। दायित्वका हस्तान्तरण कर देनेपर व्यक्ति कितना निश्चिन्त हो जाता हे, यह कोई मुझस पूछे। तभी सत्यकामकी पत्नी अपने पञ्चवर्षीय पुत्रको लेकर घरसे बाहर आयी। दोनोने महात्मा शिविको तथा महर्षि पिप्पलादको सविनय प्रणाम किया।

शिविने पौत्रको गोदमे उठाकर मुसकराते हुए कहा—पुत्र सत्यकाम! एक दिन आयेगा जिस दिन तुम सम्प्रदान-कर्मद्वारा मेरी ही तरह सब कुछ इसे सौंप दोग और तब तुम्हे भी निश्चिन्तताकी वैसी ही अनुभूति होगी, जैसी मुझे इस समय हो रही है।

महात्मा शिविके इस कथनने सभीका प्रफुल्लित कर दिया। तदनन्तर महर्षि पिप्पलादका यथायोग्य सम्मान किया गया और परिवारकी सर्वविध अभिवृद्धिकी कामना करते हुए उन्हाने अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया।

(कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्)

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित। नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्त कामा येऽस्य हृदि श्रिता। अथ मर्त्योऽमृता भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥

(कठ०उप० १।२।२४ २।३।१४)

जिस मनुष्यन बुरे आचरणाका त्याग नहीं कर दिया है जिसका मन शान्त नहीं है जिसका चित्त एकाग्र नहीं है तथा जिसने मन-बुद्धिको वशम नहीं कर लिया है उसको प्रज्ञान—सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जब इसके हृदयमे स्थित सारी कामनाएँ नष्ट हा जाती हैं, तब यह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है और यहीं ब्रह्मका अनुभव करता है।

यज्ञोपवीत-संस्कार

(स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य)

यज्ञोपवीत-संस्कार व्यासस्मृतिकथित षोडश संस्कारके अन्तर्गत है और वेदोक्त वर्णाश्रमधर्मसे घनिष्ठरूपसे सम्बन्धित है। संस्कार वर्णाश्रमव्यवस्था और वैदिक सनातनधर्मकी आधारशिला हैं। वेद विश्वका अति प्राचीन एवं आत्मविषयक गूढ रहस्योंसे भरा अपौरुषेय ग्रन्थ है। महातपा ऋषियोंने अपने पवित्रतम हृदयमें वेदमन्त्रोंका दर्शन किया था। अतः वे मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुए—'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'। महर्षि पाराशर (कृष्णद्वैपायन)-ने वेदका ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामसे चार भागोंमें विभाजन किया, जिससे उन महर्षिका नाम 'वेदव्यास' पड़ा।

वेदोंमें वर्णाश्रम स्पष्टरूपमें वर्णित है। पुरुषसूक्तमें चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी उत्पत्ति विराट् पुरुषके विभिन्न अङ्गोंसे होनेका उल्लेख है।* संहिताओं, स्मृतियों, महाभारत, भागवत इत्यादि ग्रन्थोंमें चातुर्वर्ण्य तथा उनके गुणधर्म वर्णित हैं।

'ब्रह्मपुराण' में कहा गया है—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया वापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥

अर्थात् ब्राह्मण माता-पिताके सविधि विवाहसे उत्पन्न शिशु ब्राह्मण है, जब उस वटुका ५ से ८ वर्षकी वयमें यज्ञोपवीत-संस्कार होता है, तब वह 'द्विज' (दूसरा जन्म-प्राप्त) कहा जाता है और वह वेदाध्ययन एवं यज्ञाग्नि धर्मकार्य करनेका अधिकारी होता है। वेदज्ञान प्राप्त करनेसे वह 'विप्र' तथा 'श्रोत्रिय' कहलाता है। जब उत्कट तपस्याद्वारा चित्तशुद्धि कर ब्रह्मसाक्षात्कार करता है, तब वह ब्रह्मनिष्ठ होता है।

व्यासस्मृतिमें कथित षोडश संस्कार इस प्रकार हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तनके बाद वेदस्नान, विवाह, विवाहाग्निका ग्रहण और त्रेताग्निसंग्रह—दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि (अग्निहोत्र)-का ग्रहण।

वैदिक सनातनधर्मके विविध धर्मग्रन्थोंमें यज्ञोपवीतके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

१ ब्रह्मोपनिषद्‌में कहा गया है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

अर्थात् यज्ञोपवीत श्रेष्ठ एवं पवित्र है। वह पूर्वकालमें प्रजापतिके साथमें उत्पन्न हुआ था। वह आयुवृद्धि करनेवाला, उत्तम एवं शुभ्र है। वत्स! तुम यज्ञोपवीतको धारणकर बलवान् तथा तेजोमय होओ।

२ शङ्खस्मृति (२।५)-में यज्ञोपवीतके विषयमें कहा गया है कि—'गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्यापनायनम्॥' अर्थात् गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणवटुका उपनयन-संस्कार (यज्ञोपवीत) कराना चाहिये।

शङ्खस्मृति (२।८)-में आया है—'त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) अपने-अपने निश्चित समयानुसार यज्ञोपवीत-संस्कारको न करनेपर सर्वधर्मकर्मरहित और इस प्रकार गायत्रीरहित हो जानेपर पतित तथा सभी धार्मिक कर्मोंके करनेके अधिकारसे वञ्चित हो जाते हैं'—

'सावित्रीपतिता व्रात्याः सर्वधर्मबहिष्कृताः॥'

विष्णुस्मृति (१३)-में कहा गया है—

गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम्।
द्विजत्वे त्वथ सम्प्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक्॥

अर्थात् ब्राह्मणबालकका गर्भसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करायें; क्योंकि ब्राह्मणत्व प्राप्त होनेपर वही बालक गायत्रीकी उपासना करनेका अधिकारी होता है।

भगवान् मनुकी भी आज्ञा है कि आठवें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना चाहिये—'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।' यदि बालक प्रबुद्ध हो तो उसे शीघ्र ब्रह्मवर्चस्वी (ब्रह्मतेजसम्पन्न) होनेके लिये पाँचवें वर्षमें भी यज्ञोपवीत-संस्कार करवा दे। अन्य ग्रन्थोंमें इसका गौणकाल गर्भसे सोलह वर्षपर्यन्त कहा है। तत्पश्चात् बालक या युवक व्रात्य—संस्कारहीन हो जाता है। ऐसा हो जानेपर व्रात्यस्तोमयज्ञ करवानेके बाद ही उस व्यक्तिका यज्ञोपवीत-संस्कार हो सकता है।

कात्यायनस्मृति (आचाराध्याय प्रथम खण्ड ३)-में कहा गया है—

* ऋग्वेद (१०।९०।१२), यजुर्वेद (वाजसनेय ३१।११), कृष्णयजुर्वेद (तैत्तिरीय ३।१२।५), अथर्ववेद (१९।६।६)।

पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम्।
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लम्ब्यं न चोच्छ्रितम्॥

अर्थात् यज्ञोपवीतको न अधिक लम्बा और न तो अधिक छोटा रखे। पीठके भागसे लेकर नाभितक रखनेपर कटिभागतक आना चाहिये। ऐसा उपवीत (जनेऊ) धारण करना उचित है।

कात्यायनस्मृति (आचाराध्याय प्रथम खण्ड-४)-में कहा गया है—

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत्कृतम्॥

अर्थात् यज्ञोपवीत सदैव धारण करना चाहिये और शिखामें ओंकाररूपिणी ग्रन्थि बाँधे रखनी चाहिये। शिखासूत्रविहीन होकर (जनेऊ और चोटी न रखकर) जो कुछ धर्म-कर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

शङ्खस्मृति (१।६)-में कहा गया है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबन्धनम्॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—इन तीनों वर्णोंको द्विज कहते हैं। इनका दूसरा जन्म यज्ञोपवीत-संस्कारसे होता है।

शङ्खस्मृति (१।७)-में कहा गया है—

आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा।
ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मौञ्जिबन्धनजन्मनि॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों वर्णोंके यज्ञोपवीतरूपी दूसरे जन्मके अनन्तर आचार्यको ही पिता तथा गायत्रीको ही माता कहा गया है।

मनुस्मृति (२।१७१)-में कहा गया है—

'न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्॥'

यज्ञोपवीत-संस्कारविहीन ब्राह्मण धर्मकर्मादि करनेका अधिकारी नहीं होता।

यज्ञोपवीत-संस्कारकी विधि—सभी प्रकारके माङ्गलिक धर्मकार्योंके प्रारम्भमें पुण्याहवाचन करनेकी आज्ञा है। पुण्याहवाचनके उपरान्त वटु (बालक)-का क्षौर करवाकर उसे शुद्ध जलसे स्नान करवाया जाता है, फिर नया वस्त्र पहनाते हैं। तत्पश्चात् वटुको अग्निके समक्ष बैठाकर होम कराया जाता है। इसके बाद वटुको यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनाकर गायत्रीमन्त्रका उपदेश करवाया जाता है। उस समय वटुका विशेष प्रकारका वेश धारण करवाया जाता है, जिसमें देहको ढँकनेके लिये मृगचर्म, कटिमें मुञ्जमेखला और दाहिने हाथमें पलाशदण्ड दिया जाता है। इन वस्तुओंके धारण करनेका अर्थ है—देहकी रक्षा करते हुए, दृढ निश्चयसे मनको नियन्त्रित रखते (ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते) हुए वेदविद्या प्राप्त करना। इसके बाद अग्निके उत्तरकी ओर आचार्य पूर्वाभिमुख बैठते हैं और अपने समक्ष वटुको बैठाते हैं, फिर आचार्य अपने (हाथोंकी) हथेलियोंकी अञ्जलि बनाते हैं और वटु भी वैसी अञ्जलि बना करके आचार्यकी अञ्जलिके नीचे रखता है। आचार्य अपनी अंजलिमें भरा हुआ जल थोड़ा-थोड़ा वटुकी अञ्जलिमें गिराते रहते हैं। इस क्रियाका अर्थ यह है कि आचार्य अपनी सम्पूर्ण विद्या इस प्रकार शिष्य—वटुको प्रदान करेंगे। इस क्रियाके सम्पन्न हो जानेके बाद आचार्य वटुका दक्षिण कर ग्रहण करके उससे कहते हैं—'सविताने तेरा हाथ पकड़ा है, अग्नि तेरे आचार्य हैं।' इस कथनका गूढार्थ यह है कि आचार्य यज्ञोपवीतधारी वटुको अपने साथ आश्रममें ले जायँगे और वहाँपर रखकर उसे वेदविद्या सिखायेंगे। यह वेदविद्या परमात्मा आदित्य एवं अग्निसे ही (उन देवताकी कृपासे ही) वटुको प्राप्त करनी है। इस क्रियाके बाद आचार्य वटुको आदित्य (सूर्य)-के सामने देखनेको कहते हैं, क्योंकि वह सर्वप्रकाश (ज्ञान)-का देवता है। आदित्यको सम्बोधित कर आचार्य कहते हैं—'हे सवितादेव! अब यह वटु आपका ब्रह्मचारी है, आप इसका रक्षण कीजियेगा।' इस क्रियाके बाद वटु अग्नि आदि देवताओंसे बुद्धि, बल इत्यादि सद्गुणोंकी याचना करता है। तत्पश्चात् आचार्य वटुके हृदयपर अपना दाहिना हाथ रखकर कहते हैं कि मैं जो सदाचारव्रतका पालन करता हूँ, उसमें तेरा हृदय हो (तेरा अनुसरण हो)। मेरे चित्तका अनुसरण तेरा चित्त करता रहे। मेरी वाणी-जैसी तेरी वाणी हो। विद्याके देव बृहस्पति तुझे मेरेसे युक्त करवाये।

इसके बाद वटु गुरुगृहमें बारह वर्षतक (विद्यापूर्तिपर्यन्त) रहता है। वटु वेदविद्या तथा धर्मका ज्ञान सम्पादन कर ब्रह्मचर्याश्रमको पूरा करके गुरुसे आज्ञा लेकर अपने घर वापस आता है और माता-पिताकी आज्ञाके अनुसार वह सविधि गृहस्थाश्रममें प्रवेश करता है।

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते॥
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु सः॥

(दक्षस्मृति २५-२६)

ब्राह्मणोंके लिये षडङ्गसहित वेदशास्त्रका अभ्यास ब्रह्मयज्ञके समान है और वही श्रेष्ठ तप है।

यज्ञोपवीत-रहस्य—निर्माण एवं धारण-विधि

[क्यों और कैसे अपनायें]

(प० श्रीशिवदत्तजी वाजपेयी)

हिन्दूजातिका सनातन इतिहास 'शिखा' और 'सूत्र'-का इतिहास है। सभ्यताके संघर्षकालमें आर्य (हिन्दू)-जाति और संस्कृति इन्हीं पावन प्रतीकोंके साथ पली-बढ़ी। विधर्मियोंने सर्वदा अपने आक्रमणोंका लक्ष्य शिखा-सूत्रको ही बनाया, किंतु प्राणोंका भी उत्सर्ग कर आर्यजातिने इसे नहीं छोड़ा और दृढ़तासे बचाये रखा।

आज जब अन्य जातियाँ और सम्प्रदाय अपनी सांस्कृतिक धरोहरों, प्रतीकोंका खोज-खोजकर उन्हें पुनः स्थापित और संवर्धित करनेमें जुटे हैं, विडम्बना है कि संस्कृतिके पुरोधा कहे जानेवाले हम इनके प्रति उपेक्षित भाव रखते हुए पाश्चात्त्य संस्कृतिके कृत्रिम प्रकाशकी ओर भागनेका प्रयास कर अपने-आपको गौरवान्वित समझ रहे हैं। इसीलिये विचारकर यह निर्णय लेना है कि हम उन संस्कारोंको अपनायें, जिनकी नींवपर हमारी संस्कृति खड़ी हुई है। इन्हींमें 'यज्ञोपवीत' भी एक संस्कार है। यह यज्ञोपवीत-सूत्र क्या है? इसका संस्कार किया जाना क्या आवश्यक है? इसके निर्माणमें विशेष विधि क्यों अपनायी गयी है? इसमें ९६ चौओं त्रिसूत्र और त्रिवृत्को क्यों महत्त्व दिया गया है? इत्यादि समझनेकी आवश्यकता है। इन्हें समझनेसे पूर्व संस्कार क्या है—यह हम समझ लेना चाहिये।

संस्कार क्या है?

हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका आधार उसकी आध्यात्मिकता है, जो पवित्र संस्कारोंसे मार्जित आचार-व्यवहार और सद्व्रतपर टिकी है। आचार-व्यवहार वैयक्तिक हैं। ये मनके प्रभावसे उद्भूत और नियन्त्रित होते हैं। प्रकृतिके अविच्छिन्न सम्पर्कमें रहनेसे ये शारीरिक और मानसिक मलों (दोषों)-से आवृत होकर दूषित हो जाते हैं। यद्यपि मानवका अस्तित्व प्राण (आत्मा)-पर अवलम्बित है किंतु तन-मनके अधीन रहकर वह अनैतिक और अधर्म करनेके लिये विवश हो जाता है। मानवके तन-मनसे अपवित्र भाव मल तथा दोषका परिमार्जन कर उनकी निवृत्ति करना और शुचिता, पवित्रता तथा पुण्यका भाव मन वाणी एवं व्यवहारमें प्रतिष्ठित करना 'संस्कार' है। वैदिक एवं स्मार्त सामान्य-विशेष कर्मोंके आचरणसे शारीरिक तथा मानसिक मलोंका परिमार्जन कर पवित्र और उत्कृष्ट बनाते हुए मानवको निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करनेयोग्य—अधिकारी बनाना संस्कार है। शास्त्रकारोंने संस्कारोंमें भी यज्ञोपवीत-संस्कारकी विशेष महिमा कही है।

यज्ञोपवीतसे तात्पर्य

सामान्य अर्थोंमें यज्ञोपवीत तीन तागोंके जोड़में लगी ग्रन्थियोंसे युक्त सूतकी एक माला है, जिसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य धारण करते हैं। वैदिक अर्थमें यज्ञोपवीत शब्द 'यज्ञ' और 'उपवीत'—इन दो शब्दोंके योगसे बना है जिसका अर्थ है 'यज्ञसे पवित्र किया गया सूत्र।'

यज्ञोपवीत-संस्कारको 'व्रतबन्ध', 'उपनयन' और 'जनेऊ' भी कहा गया है। शास्त्रोंकी आज्ञा है—'**सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च**' अर्थात् सदा गाँठ लगी शिखा एवं यज्ञसूत्र धारण किये रहना चाहिये। यज्ञोपवीत 'ब्रह्मसूत्र' है। जो शोभाके लिये या अनुष्ठानके समय ही धारण करने एवं शेष समयमें उतारकर किसी खूँटीमें टाँग देने लायक नहीं है। ऐसा करनेवाले पापके भागी होते हैं। यहाँ बताना उचित होगा कि साकार परमात्माको 'यज्ञ' और निराकार परमात्माको 'ब्रह्म' कहा गया है। इन दोनोंको प्राप्त करनेका अधिकार दिलानेवाला यह सूत्र यज्ञोपवीत है। ब्रह्मसूत्र, सवितासूत्र तथा यज्ञसूत्र इसीके नाम हैं। स्मृतिप्रकाशमें इसके ब्रह्मसूत्र नामकी सार्थकताके विषयमें कहा गया है—

सूचनाद् ब्रह्मतत्त्वस्य वेदतत्त्वस्य सूचनात्।
तत्सूत्रमुपवीतत्वाद् ब्रह्मसूत्रमिति स्मृतम्॥

अर्थात् यह सूत्र द्विजातिको ब्रह्मतत्त्व और वेदज्ञानकी सूचना देता है, इसलिये इसे 'ब्रह्मसूत्र' कहा गया है।

यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति

यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति और प्रचलनका कोई

ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त करना या काल-निर्धारण करना मानवबुद्धिके वशकी बात नहीं है। इसका सम्बन्ध तो उस कालसे लगाया गया है जब प्रलयके गर्भमें अनन्त कालसे प्रसुप्त मानवसृष्टिका नवोदय प्रारम्भ हुआ था, उस समय श्रीब्रह्माजी स्वयं यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। इसीलिये यज्ञोपवीत धारण करते समय यह मन्त्र पढ़ा जाता है—

'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।'

साररूपमें यह मन्त्र ही यज्ञोपवीतकी उत्पत्तिका स्पष्ट संकेत देता है। वेदग्रन्थोंमें इसके उल्लेखसे स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञोपवीत किन्हीं परवर्ती ऋषियोंद्वारा निर्मित सूत्र नहीं था और न ही किसी सामाजिक या विद्याचिह्नके रूपमें स्थापित किया गया है। यज्ञोपवीत-निर्माणकी जो विशेष प्रक्रिया निश्चित की गयी है, वह स्पष्टतया यह प्रतिपादित करती है कि यज्ञोपवीत ईश्वरद्वारा द्विजातिको सौंपे गये उत्तरदायित्वोंके निर्वहणके लिये गुरुके सांनिध्यमें आवश्यक शिक्षा और योग्यता प्राप्त करनेहेतु प्रस्थित होनेकी उदात्त भावनाओंसे युक्त सकते है।

यज्ञोपवीत क्या है?

यज्ञोपवीत स्वयं अथवा ब्राह्मणकन्या या साध्वी ब्राह्मणीके हाथोंसे काते गये कपासके सूतके नौ तारोंको तीन-तीन तारोंमें बटकर (उमेठकर) बनाये गये तीन सूत्रको ९६ चौओंके नापमें तीन वृत्तोंकी तैयार की गयी माला है, जिसके मूलमें ब्रह्मग्रन्थि लगाकर गायत्री और प्रणवमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किये जानेके पश्चात् 'यज्ञोपवीत' नाम दिया गया है। इस निश्चित आयु, काल और विधानके साथ द्विज-बालका (वटुक)-को ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ—इन तीन आश्रम-व्यवस्थाओंमें श्रौत और स्मार्तविहित कर्म करनेहेतु पिता आचार्य या गुरुद्वारा गायत्रीमन्त्रके साथ धारण कराया जाता है। इसीके साथ बालकका दूसरा जन्म होता है और वह 'द्विज' कहा जाने लगता है। इससे उपनीत बालकको विनश्वर स्थूल शरीरकी अपेक्षा अविनाशी ज्ञानमय शरीर प्राप्त होता है। इस विशेष महत्त्वको ध्यानमें रखते हुए इसके निर्माणमें शुचिता और पवित्रतापर विशेष ध्यान दिया गया है तथा स्वयं निर्माण करनेका निर्देश दिया है।

यज्ञोपवीतकी निर्माण-विधि

यज्ञोपवीत उदात्त भावनासम्बन्धी एक ऐसा सूत्र है, जो हमारे जीवनको श्रुति-स्मृत्यनुमोदित मार्गपर चलाते हुए सम्पूर्ण उत्तरदायित्वों तथा कर्तव्योंका निर्वहण करते रहनेके लिये हमें ईश्वरद्वारा सौंपा गया है।

महर्षि कात्यायनद्वारा प्रतिपादित यज्ञोपवीत-निर्माणकी विधिका संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत है*—

महर्षि कात्यायन कहते हैं—'अब हम यज्ञोपवीत-निर्माणकी विधि कहते हैं। इसके निर्माणके लिये गाँवसे बाहर किसी तीर्थस्थान (मन्दिर) या गोशालामें जाकर अनध्यायरहित किसी भी दिवसमें संध्या-वन्दनादि नित्यकर्म तथा एक सौ आठ या एक हजार आठ बार या यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करके ऐसे सूतसे यज्ञोपवीत तैयार करे, जो स्वयं या किसी ब्राह्मणद्वारा या ब्राह्मण-कन्याद्वारा अथवा सधवा ब्राह्मणीद्वारा कातकर तैयार किया गया हो। इस सूतका 'भूः' का उच्चारण कर ९६ चौएसहित चारों अङ्गुलियोंके मूलपर लपेटे और उतारकर एक पलाशके पत्तेपर रख दे। अब 'भुवः' शब्दका उच्चारण करते हुए उसी क्रियाको और 'स्वः' शब्दका उच्चारण करते हुए तीसरी बार क्रिया दुहराते हुए हाथमें लपेटकर ९६ चौएके परिमाणमें अन्य दो तार तैयार कर पलाशपर रखे। तदनन्तर **'आपो हि ष्ठा'**, **'शं नो देवी'** **'तत्सवितुः'** आदि तीन मन्त्रोंसे उन तीन तारोंको जलमें अच्छी तरह भिगोकर बायें हाथमें लेकर तीन बार जोरसे आघात करे। फिर तीन व्याहृतियोंसे उस एक बट देकर एकरूप बना ले। अब इन्हीं मन्त्रोंसे उसे

---

* अथातो यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारं वक्ष्यामः। ग्रामाद्बहिस्तीर्थे गोष्ठे वा गत्वाऽनध्यायवर्जितपूर्वाह्णे कृतसंध्याष्टोत्तरशतं सहस्रं वा यथाशक्ति गायत्रीं जपित्वा ब्राह्मणेन तत्कन्यया सुभगया धर्मचारिण्या वा कृतं सूत्रमादाय भूरिति प्रथमां षण्णवतीं मिनोति भुवरिति द्वितीयां स्वरिति तृतीयां मीत्वा पृथक् पलाशपत्रे संस्थाप्य आपो हि ष्ठेति तिसृभिः शं नो देवीत्यनेन सावित्र्या चाभिषिच्य वामहस्ते कृत्वा त्रिः संताड्य व्याहृतिभिस्त्रिगुणितं कृत्वा पुनस्ताभिस्त्रिगुणितं कृत्वा पुनस्त्रिवृतं कृत्वा प्रणवेन ग्रन्थिं कृत्वोङ्कारमग्निं नागान् सोमं पितॄन् प्रजापतिं वायुं सूर्यं विश्वान् देवान् नवतन्तुषु क्रमेण विन्यस्य सम्पूजयेत्। देवस्येत्युपवीतमादाय उद्वयं तमसस्परीत्यादित्याय दर्शयित्वा यज्ञोपवीतमित्यनेन धारयेदित्याह भगवान्कात्यायनः। (कात्यायनपरिशिष्ट)

त्रिगुणित करे और पुन बटकर एकरूप बना ले। पुन इसे त्रिगुणित करके प्रणवस उसम ब्रह्मग्रन्थि लगाये। इसके नौ तन्तुओम आङ्कार अग्नि अनन्त चन्द्र, पितृगण प्रजापति वायु, सूर्य और सर्वदवादि नौ देवताआका क्रमश आवाहन और स्थापन करे। '**उद्वय तमसस्परि०**' मन्त्रद्वारा उस सूत्रको सूर्यके सम्मुख करके '**यज्ञापवीतम्०**' मन्त्र बालते हुए धारण कर ले।'

यज्ञोपवीतका परिमाण ९६ चौआ ही क्यो रखा गया है ?

यज्ञोपवीतके निर्माणके सम्बन्धमे प्रथम प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यज्ञोपवीतका परिमाण ९६ ही क्यो निर्धारित किया गया ? यदि इसका परिमाण कम या अधिक हो जाता तो उससे क्या हानि हाती ?

दूसरा प्रश्न यह है कि प्रत्येक वर्णम हर व्यक्ति एक ही कद और काठीका नहीं होता है। कोई ऊँचे कदका होता है तो कोई नाटा। कुछ स्थूल शरीरवाले होते हैं तो अन्य दुबल-पतले। अत सभी व्यक्तियाके लिये एक ही परिमाणका यज्ञोपवीत धारण करनेका नियम क्यों बनाया गया ? आइय इस सम्बन्धमे शास्त्रसम्मत नीचे लिखे हतुओका अध्ययन करे—

१-यज्ञोपवीत कटितक ही रहे—महर्षियो और शास्त्रकाराने इस आधारपर यज्ञोपवीतका परिमाण निर्धारित किया कि धारण करनेपर वह पुरुषके बाये कन्धेके ऊपरसे आता हुआ नाभिको स्पर्श कर कटितक ही पहुँचे। इससे न तो ऊपर रहे और न ही नीचे। अत्यन्त छोटा होनेपर यज्ञोपवीत आयुका तथा अधिक बडा होनेपर तपका विनाशक होता है। अधिक मोटा रहेगा तो वह यशनाशक आर पतला हागा तो धनकी हानि होगी—

> **पृष्ठदेशे च नाभ्या च धृत यद्विन्दते कटिम्।**
> **तद्धार्यमुपवीत स्यान्नातिलम्ब न चाच्छ्रितम्॥**
> **आयुर्हरत्यतिह्रस्वमतिदीर्घ तपोहरम्।**
> **यशोहरत्यतिस्थूलमतिसूक्ष्म धनापहम्॥**

इस निर्णयको सामुद्रिकशास्त्रने उचित ठहराया है। उसके अनुसार मनुष्यका कद और स्वास्थ्य कैसा भी हा मानव-शरीरका आयाम ८४ अङ्गुलस १०८ अङ्गुलतक ही होता है। इसका मध्यमान ९६ अङ्गुल ही हाता है। अत इस परिमाणवाला यज्ञापवीत हर स्थितिम कटितक ही रहगा न ऊपर और न ही नीचे।

२-गायत्रीमन्त्रके २४ अक्षराके चार गुनेका आधार माना गया—गायत्री वेदमाता हैं। प्रत्यक मन्त्रका उद्भव इन्हींसे हुआ है, यज्ञोपवीत-निर्माण और उसे अभिमन्त्रित करते समय गायत्रीमन्त्रको प्रधानता दी गयी है। गायत्रामन्त्रमें चौबीस अक्षर होते हैं। चारा वेदाम व्याप्त गायत्रीछन्दक सम्पूर्ण अक्षराको मिला द तो २४×४=९६ अक्षर होते हैं, इसीके आधारपर द्विजबालकको गायत्री और वेद दोनाका अधिकार प्राप्त हाता है। इसलिये ९६ चौआवाले यज्ञापवीतको ही धारण करनेका विधान किया है—

> **चतुर्वेदेषु गायत्री चतुर्विंशतिकाक्षरी।**
> **तस्माच्चतुर्गुण कृत्वा ब्रह्मतन्तुमुदीरयेत्॥**
> (वसिष्ठस्मृति)

३-वैदिक मन्त्रोकी सख्याके आधारपर—वर्णाश्रम व्यवस्थाम ब्रह्मचर्याश्रमक अन्तर्गत द्विजबालकका गुरुके सानिध्यमे उनकी सेवा करते हुए वेदाध्ययनसहित नैतिक कर्म, उपासना आदिका शिक्षा प्राप्त करनेके अनन्तर गृहस्थाश्रमका अधिकार प्राप्त होता है। चतुर्थाश्रम सन्यास ग्रहण करनेपर वह कर्म और उपासनासे पूर्णत मुक्त होकर केवल ज्ञानप्राप्तिका अधिकारी रह जाता है। इस स्थितिमे वह शिखा और सूत्र—दोनाका त्याग कर देता है। वेदकी मर्यादाके अनुसार उपनीत होनेवाले द्विजको ही वेद और कर्मकाण्डका अधिकारी बताया गया है।

'**लक्ष तु चतुरो वेदा लक्षमेक तु भारतम्।**' इस आप्तवचनम वैदिक ऋचाआकी सख्या एक लाख बतायी गयी है। वेदभाष्यमे पतञ्जलिने भी इसकी पुष्टि की है। इन लक्ष मन्त्रोम ८० ००० कर्मकाण्ड-सम्बन्धी १६ ००० उपासनाकाण्ड-सम्बन्धी और ४ ००० ज्ञान-काण्ड-सम्बन्धी ऋचाएँ हैं। चूँकि उपनीतको कर्मकाण्ड ओर उपासना-काण्डका अध्ययन करनका अधिकार प्राप्त होता है अत ९६ ००० ऋचाओके अधिकारके आधारपर उपवीतका परिमाण ९६ चौआ निर्धारित किया गया है।

४-तिथि, वार, गुण आदिक आधारपर—मानव-

जीवन भाग्यसे प्राप्त होता है। यह जीवन तत्त्वो गुण, तिथि वार नक्षत्र काल, मास आदि विविध भागासे निरन्तर सम्पर्कम रहनेके कारण उनसे प्रभावित होता रहता है। अत जीवनक एक-एक क्षणका प्रभुका अमित वरदान समझनेवाले महर्षियाने इन भागाके महत्त्वको समझकर उनका अवलम्बन करके ब्रह्म-प्राप्तिका शाश्वत लक्ष्य मनुष्यके लिये निर्धारित किया। इन सभी पदार्थोंकी सख्याका समन्वित योग किया जाय तो आश्चर्य होगा कि यह भी ९६ का योग बनाता है, यथा—

(अ) मनुष्यके सत्, रज और तमागुणमय त्रिविध शरीरम प्रकृतिप्रदत्त पाँच भूत पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानन्द्रियाँ पाँच प्राण और चार अन्त करणका याग—२४ तत्त्वोका समावेश रहता है। तीन ग्रन्थियाँ स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरवाले मनुष्यके आत्मरूपपर त्रिगुणात्मक आवृतिसे बहत्तरका योग बनाती हैं। इस शरीरके निराकरण एव भेदनके लिये चौबीस अक्षरात्मक गायत्रीमन्त्रका जप किया जाता है। यही प्रकृतिके तत्त्वासे आत्माको मुक्त कराती है। यदि इन सबका योग करे तो परिणाम ७२+२४=९६ आता है। अत इन तत्त्वो और गायत्रीमन्त्रका प्रभाव दरसाने और मुक्तिके लिये गायत्रीमन्त्र जपते रहनेका सकेत करते रहनेहेतु द्विजको ९६ परिमाणवाले यज्ञोपवीतको धारण करानेका विधान किया गया है।

(ब) इस गूढ तथ्यको इस दृष्टिकोणसे भी समझा जा सकता है। सामवद छन्दोगपरिशिष्टमे कहा गया है—

तिथिवार च नक्षत्र तत्त्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रय च मासाश्च ब्रह्मसूत्र हि षण्णवम्॥

हमारा शरीर २५ तत्त्वोसे बना है। इसम सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण सर्वदा व्याप्त रहते हैं। फलत २८ सख्यात्मक समुदायवाले शरीरको तिथि वार काल नक्षत्र, मास, वेदादि विविध भागोम विभक्त, अनक सवत्सरपर्यन्त इस ससारमे जीवन धारण करना पडता है। यदि इनका योग कर तो यह भी ९६ ही होता है। देखिये—

तिथि—१५ वार—७ नक्षत्र—२७ तत्त्व—२५, वेद—४, गुण—३, काल—३ और मास—१२, इनका कुल योग ९६ आता है।

यज्ञोपवीतमे तीन सूत्र और त्रिवृत् क्यो ?

हिन्दूधर्मम तीनकी सख्या आध्यात्मिक, आधिदैविक एव आधिभौतिक—सभी क्षेत्राम विशेष महत्त्व रखती है। ऋक् यजु और साम ही तीन प्रमुख वेद हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेव हैं। तीन काल—भूत, वर्तमान और भविष्य हैं। सत्त्व, रज और तम—तीन गुण हैं। तीन ऋतुएँ—ग्रीष्म, वर्षा और शीत हैं। त्रिलोक—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक हैं। इसी त्रिगुणात्मक भावको आधार बनाकर यज्ञोपवीतका त्रिगुणात्मक तन्तुआस निर्माण और उसका त्रिवृत्करण किया गया है। तीन सूत्रम मानवत्व, देवत्व और गुरुत्व भाव निहित है। इन्हींकी प्रेरणा, मार्गदर्शन और शिक्षासे मृत्युलोकसे द्युलोककी ओर ऊर्ध्वगमनके लिये उपासना, ध्यान और सत्कर्मका भाव मानव अपनाता है। यही उसक निर्वाणके मार्गको प्रशस्त करता है। इसी भावनासे तीन ताराको महाव्याहृति मन्त्रासे ऊपरकी आर उमेठते हुए नौ तन्तुमय सूत्रका निर्माण किया गया है।

ये नौ तन्तु नौ देवताआके आवास स्थान हैं, जहाँ उनका विधिपूर्वक आवाहन, पूजन और प्रतिष्ठापन (यज्ञापवीत तैयार हा जानेपर) किया जाता है। सामवेदीय छन्दोगपरिशिष्टमे नौ देवताआक नाम इस तरह बताये गये हैं—

ॐकारोऽग्निश्च नागश्च सोम पितृप्रजापती।
वायु सूर्यश्च सर्वश्च तन्तु देवा अमी नव॥
ॐकार प्रथमो तन्तौ द्वितीयेऽग्निस्तथैव च।
तृतीये नागदैवत्य चतुर्थे सोम देवता॥
पञ्चमे पितृदैवत्य षष्ठे चैव प्रजापति।
सप्तमे मारुतश्चैव अष्टमे सूर्य एव च॥
सर्वे देवास्तु नवमे इत्येतास्तन्तुदेवता॥

उपर्युक्त देवताआकी प्रतिष्ठापनासे मानव अपने हृदयमे तत्तद् देवताओके विशष गुणो यथा—ब्रह्मलाभ, तेजस्विता, धैर्य, आह्लादकत्व, स्नेह, प्रजापालन शुचित्व, प्राणत्व आदि गुणोको धारण करते हुए अनुभव करता है कि मैंने इन गुणासे परिपूर्ण और देवताआसे अधिष्ठित उपवीतको धारण कर लिया है। अब मैं तेजस्वी हूँ, धृतिमान् हूँ, शुद्ध हूँ। देवताओकी विद्यमानता और उनके गुणोको आत्मसात् करनेकी इस अनुभूतिसे मानवके हृदयमे उपजे मल और मानसिक कुवृत्तियोका परिमार्जन होगा तथा मनसहित

समस्त इन्द्रियाँ विपथगामी न होकर सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रवृत्त होगी।

यह भावना अतिरेक या अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं, अकाट्य तथ्य है। मनुष्यके मनमें यह भावना रहेगी कि देवताके सांनिध्यमें पापाचार करना, नरकका हेतु होगा। आपने अनुभव किया अथवा देखा होगा कि जब कभी मनुष्य शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गका त्याग कर विपथगामी होने लगता है तो वह सर्वप्रथम यज्ञोपवीत और शिखाको ढोंग कहकर त्याग देता है। इससे वह यह अनुभव करता है कि वह धर्मके बन्धनसे मुक्त हो गया है। मनुष्यका यह कृत्य ही स्पष्ट करता है कि यज्ञोपवीत धारण करनेसे उसमें समाविष्ट कोई-न-कोई शक्ति मानवको विपथगामी होनेसे बचानेहेतु चेतावनी देते हुए उसे पापाचरणमें प्रवृत्त होनेसे अवश्य रोकती रही होगी।

ब्रह्मग्रन्थिकी आवश्यकता

यज्ञोपवीत-निर्माणकार्यमें नौ तन्तुओंको त्रिगुणात्मक कर, तीन सूत्रमें परिवर्तित कर उसका त्रिवृत्करण करके उसके मूलोंको जोड़नेमें प्रणवरूपी महामन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्रह्मग्रन्थि लगाये जानेका विधान किया गया है। इस ब्रह्मग्रन्थिके लगनेपर यज्ञोपवीत धारण करनेयोग्य बन जाता है।

ब्रह्मग्रन्थिको लगानेका अभिप्राय यह है कि मनुष्य प्रतिक्षण ध्यानमें रखे कि यह समस्त विश्व ब्रह्मसे प्रादुर्भूत हुआ है और इसीमें मानवका कल्याण संनिहित है। यदि मानव ब्रह्मको भुलाकर उसके माया-जालमें फँस जाता है तो वह ब्रह्मतत्त्वको भूलकर काम, क्रोध, लोभ-मोहादि सांसारिक प्रपञ्चोंमें लिप्त होकर अपने ही पतनका कारण बन सकता है। उसे प्रचलित लोकोक्ति 'गाँठ बाँध लेना' को ध्यानमें रखते हुए एक गाँठ बाँध लेना चाहिये कि मनुष्यका ब्रह्मप्राप्ति ही चरम लक्ष्य है और इसे प्राप्त करनेके लिये उसे शास्त्रनिर्दिष्ट श्रेयमार्गपर चलते रहना होगा। यज्ञोपवीतके धारणका उद्देश्य और लक्ष्य भी यही रहा है अतः इसके मूलमें प्रणव-मन्त्रके साथ लगायी जानेवाली ग्रन्थि उसे प्रणवके अ+उ+म्—इन तीनों वर्णों सत्त्व, रज तथा तम—इन तीन गुणों एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूपी ब्रह्माण्डनियामक त्रिविध शक्तियोंके सामाप्यका ध्यान दिलाती रहती है। इसीलिये इसे ब्रह्मग्रन्थि कहा गया है।

समाजमें मनुष्यको ब्रह्मके साथ-साथ अपनी कुल-परम्पराका भी ध्यानमें रखना होता है। अतः ब्रह्मग्रन्थिके ऊपर अपने-अपने कुल, गोत्र, प्रवरादिके भेदसे १, ३ या ५ गाँठ लगाये जानेका शास्त्रीय विधान है। ये ग्रन्थियाँ मनुष्यको अपनी कुल-परम्परासे चली आ रही शास्त्रमर्यादाकी रक्षा करते हुए उन पुण्यात्मा पूर्वजोंका स्मरण कराती हैं, जिनका वह उत्तराधिकारी है और जिनकी तपश्चर्या और सत्कर्मोंसे उसे उस कुलमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उन्हींके पदचिह्नोंपर चलनेकी प्रेरणा देती है। द्विज सदा याद रखे कि उसमें भी ब्रह्मका अंश है और अन्तमें इसीमें लय होना है।

यज्ञोपवीत धारणका अधिकार

धर्मशास्त्रकारोंने त्रैवर्णिक द्विजोंको यज्ञोपवीत धारण करनेका अधिकार दिया है। जन्म देनेवाले माता-पिताकी अपेक्षा वेदरूपी अक्षुण्ण शरीर प्रदान करनेवाले आचार्य अधिक श्रेष्ठ माने गये हैं—

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥

(मनु० २। १७०)

संस्कारोंके अनुपालनमें शुचिता और पवित्रताका विशेष ध्यान रखना आवश्यक होता है। स्त्रीके शरीरका निर्माण इस तरहसे हुआ है कि उसे मासमें कुछ दिन अपवित्र दशामें रहना पड़ता है। इसी तरह प्रसवकालमें भी वह अपवित्र दशामें रहनेके लिये बाध्य होती है। पुरुषके समान स्त्री-ब्रह्मचर्यधर्मका पालन (रजस्वला होनेपर) करनेयोग्य नहीं रहती है। इसी प्रकार मन्त्रोंके उच्चारणकी अशुद्धता भी स्त्री तथा द्विजेतरोंमें रहती है। फिर भी मनुस्मृतिमें स्त्रियोंका विवाह-संस्कार ही उनके यज्ञोपवीत-संस्कारके समान है—'**वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।**' (मनु० २। ६७)

किस स्थितिमें नवीन यज्ञोपवीत धारण करे

यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर द्विजको इसे अखण्ड रूपसे धारण किये रहनेका निर्देश दिया गया है। शास्त्रकारोंके अनुसार ब्रह्मचारीका एक यज्ञोपवीत तथा

स्नातकको दो या उससे अधिक (तीन) यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये यथा—'**ब्रह्मचारिण एकं स्यात् स्नातकस्य द्वे बहूनि वा**' (आश्वलायनगृह्यसूत्र)। इसी तरह श्रौत-स्मार्त कर्मोंकी निष्पत्तिके लिये दो यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये, यदि उत्तरीय वस्त्र न हो तो तीसरा धारण किया जा सकता है—

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते॥

(विश्वामित्र)

कुछ लोग इस स्थितिमें एक कपड़ा या गमछा बायें कन्धेपर रख लेते हैं।

उपवीत संस्कारित ब्रह्मसूत्र है, जो संस्कारके दिनसे मृत्युपर्यन्त शरीरसे अलग नहीं किया जाता है। इतने कड़े नियमोंका पालन करते हुए कई अवसर आते हैं, जब धारण किये हुए यज्ञोपवीतको अशुद्ध मानकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी आवश्यकता पड़ती है। शास्त्रकारोंने इन स्थितियोंमें धारण किये हुए यज्ञोपवीतको अपवित्र मानकर नवीन यज्ञोपवीतके धारण करनेका निर्देश दिया है—

१-यदि स्वतःकी असावधानीसे यज्ञोपवीत बायें कन्धेसे खिसककर बायें हाथके नीचे आ जाय अथवा उससे निकलकर कमरके नीचे आ जाय या वस्त्रादि उतारते समय उससे लिपटकर शरीरसे अलग हो जाय तो नवीन प्रतिष्ठित यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये—

'**वामहस्ते व्यतीते तु तत् त्यक्त्वा धारयेद् नवम्।**'

२-मल-मूत्रका त्याग करते समय कानमें लपेटना भूल जाय अथवा कानमें लिपटा सूत्र कानसे सरककर अलग हो जाय तो नवीन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये—

मलमूत्रे त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक्।
उपवीतं तदुत्सृज्य दध्यादन्यन्नवं तदा॥

(आचारेन्दु)

३-उपाकर्म, जननाशौच, मरणाशौच श्राद्धकर्म, सूर्य-चन्द्रग्रहणके समय अस्पृश्यसे स्पर्श हो जाने तथा श्रावणीमें यज्ञोपवीतको अवश्य बदल लेना चाहिये—

(क) सूतके मृतके क्षौरे चाण्डालस्पर्शने तथा।
रजस्वलाशवस्पर्शे धार्यमन्यन्नवं तदा॥

(नारायणसंग्रह)

(ख) उपाकर्मणि चोत्सर्गे सूतकद्वितये तथा।
श्राद्धकर्मणि यज्ञादौ शशिसूर्यग्रहेऽपि च॥
नवयज्ञोपवीतानि धृत्वा जीर्णानि च त्यजेत्॥

(ज्योतिषार्णव)

४-प्रायः चार मासमें यज्ञोपवीत शरीरके मलादिसे दूषित और जीर्ण हो जाता है, अतः नया यज्ञोपवीत धारण करे—

धारणाद् ब्रह्मसूत्रस्य गते मासचतुष्टये।
त्यक्त्वा तान्यपि जीर्णानि नवान्यन्यानि धारयेत्॥

(गोभिल आचारभूषण)

अभिमन्त्रित उपवीतको धारण करना—स्नानादि कर एक आसनपर बैठकर नवीन यज्ञोपवीतमें हलदी लगाकर संकल्प करके निम्नलिखित विनियोग पढ़कर जल गिराये। तदनन्तर नीचे दिया मन्त्र पढ़ते हुए एक यज्ञोपवीत धारण करे, आचमन करे और फिर दूसरा यज्ञोपवीत धारण करे। इस प्रकार एक-एक करके ही यज्ञोपवीत पहनना चाहिये—

विनियोग—

ॐ यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः, लिङ्गोक्ता देवता, त्रिष्टुप् छन्दः, यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः।

यज्ञोपवीत धारण करते हुए यह मन्त्र पढ़े—

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

पुराने यज्ञोपवीतको उतारना—इसके बाद मन्त्र पढ़कर पुराने यज्ञोपवीतको कण्ठी-जैसा बनाकर सिरपरसे पीठकी ओरसे अलग कर देना चाहिये—

मन्त्रेण धारणं कार्यं मन्त्रेण च विसर्जनम्।
कर्तव्यं च सदा सद्भिर्नात्र कार्या विचारणा॥

यज्ञोपवीतको जलमें प्रवाहित करते हुए यह मन्त्र पढ़े—

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात् त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम्॥

इसके उपरान्त यथाशक्ति गायत्रीमन्त्रका जप करे और '**ॐ तत्सत् श्रीब्रह्मार्पणमस्तु**' कहते हुए उसे अर्पित करता हुआ हाथ जोड़कर भगवान्‌का स्मरण करे।

नवीन यज्ञोपवीतको अभिमन्त्रित करना

अभिमन्त्रित यज्ञापवीत न हानेकी स्थितिम नवीन यज्ञोपवीतको अभिमन्त्रित कर धारण करना चाहिय। सर्वप्रथम स्नान-सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर शुद्ध आसनपर पूर्वाभिमुख होकर बैठे और आचमन करनेक उपरान्त अपन सामन पलाशके पत्तेपर अथवा अपन हाथम नवीन यज्ञापवीतको रखकर उस जलस प्रक्षालित कर। तदुपरान्त निम्नलिखित एक-एक मन्त्र पढकर अक्षत—चावल या एक-एक फूलको यज्ञोपवीतपर छोडता जाय—

'प्रथमतन्तौ ॐ ओङ्कारमावाहयामि। द्वितीयतन्तौ ॐ अग्निमावाहयामि। तृतीयतन्तौ ॐ सर्पानावाहयामि। चतुर्थतन्तौ ॐ सोममावाहयामि। पञ्चमतन्तौ ॐ पितृना-वाहयामि। षष्ठतन्तौ ॐ प्रजापतिमावाहयामि। सप्तमतन्तौ ॐ अनिलमावाहयामि। अष्टमतन्तौ ॐ सूर्यमावाहयामि। नवमतन्तौ ॐ विश्वान् दवानावाहयामि। प्रथमग्रन्थौ ॐ ब्रह्मण नम, ब्रह्माणमावाहयामि। द्वितीयग्रन्थौ ॐ विष्णवे नम, विष्णुमावाहयामि। तृतीयग्रन्थौ ॐ रुद्राय नम, रुद्रमावाहयामि।'

इसके बाद 'प्रणवाद्यावाहितदवताभ्यो नम ' मन्त्रसे 'यथास्थान न्यसामि' कहकर उन-उन तन्तुओंम न्यास कर चन्दन आदिस पूजन करे। फिर यज्ञोपवीतको दस बार गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित कर। इस प्रकार नूतन यज्ञापवीतकी प्रतिष्ठा करनी चाहिय। तब वह धारण करनेयोग्य हो जाता है। उचित हागा कि श्रावणी आदिक अवसरपर वर्षभरक लिये कुछ यज्ञापवीत अभिमन्त्रितकर रख ल। (क्रमश)

~~○~~

लव-कुशका व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत)-सस्कार

(श्रीगगाधरशसिहजी)

भगवान्‌की लीलाएँ मनुष्याको शिक्षा और सस्कार दनेके लिये होती हैं। समाजम सस्काराकी प्रतिष्ठा बनी रह, इसलिये स्वय प्रभु श्रीरामने अपन पुत्रा—लव-कुश तथा भ्रातृपुत्रा (अङ्गद, चित्रकेतु, तक्ष, पुष्कर, सुबाहु और यूपकेतु)-क समस्त सस्कार कराये। आनन्दरामायणम तो यहाँतक वर्णन प्राप्त होता है कि गर्भावस्थाके छठे मासम भगवती सीताजीका सीमन्तोनयन-सस्कार हुआ और बालकपर महर्षि वाल्मीकिकी तपस्थलीके दिव्य सस्कार पड सक, इसलिये आठव मासम सीताजीको वन भेजनेकी लीला हुई थी। इतना ही नहीं श्रीरामजीके परामर्शस जनकजीने सीताजीके पहुँचनेसे पहले ही उनके निवास-सम्बन्धी सारी व्यवस्था वनमें कर रखी थी—

षष्ठे मासे त्वथ प्राप्ते सीताया राघवो मुदा।
सीमन्तोन्नयन चैव वसिष्ठेन चकार स ॥
एव मनोहर गेह सीतार्थं जनकोऽकरोत्।
श्री साक्षाद्‌गन्तुमुद्युक्ता यस्मिन्निवसितु चिरम्॥
वाल्मीकय सर्ववृत्त जनकाऽपि न्यवेदयत्।
मुनिश्चाप्यतिसन्तुष्टो मेने स्वतपस फलम्॥
(जन्मकाण्ड २। २४ ५२ ५४)

पुत्रजन्मके समय पिताको बालकका जातकर्म-सस्कार कराना चाहिये। लोकम इस बातकी शिक्षा दनके लिये स्वय भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके साथ निर्वासित सीताके पास वाल्मीकि आश्रम गय और वहाँ नान्दीमुखश्राद्ध तथा जातकर्म-सस्कार करवाया। इस अवसरपर भगवान् श्रीरामने वस्त्राभरण आदि अनेक प्रकारक दान भी दिये देवतालाग दुन्दुभी बजाने लगे तथा पुष्पवृष्टि करने लगे—

ततो वाल्मीकिना विप्रैर्मितैरेव रघूत्तम ।
जातकर्मादिसस्काराश्चकार विधिपूर्वकम्॥
सीताया पुरत पुत्राननमालोकयन्मुदा।
ददौ दानान्यनेकानि सवस्त्राभरणान्यपि॥
चकार विधिवच्छ्राद्ध पुत्रजन्ममहोत्सवे।
देवदुन्दुभया नेदुर्ववर्षु पुष्पवृष्टिभि ॥
(जन्मकाण्ड ४। २४—२६)

इसी प्रकार नामकरण-सस्कारका भी वर्णन प्राप्त होता है जिसे श्रीरामकी आज्ञासे वाल्मीकिजीने सम्पन्न किया था। इस अवसरपर राजा जनक और उनकी पत्नी सुमधा भी उपस्थित थीं—

कुश नाम तदा चक्रे मुनिरेकादशे दिने।
चकार सर्वसस्कारान् मुनि श्रीराघवाज्ञया॥

एव स बालकस्तत्र ववृधे मातृलालित ।
जनकश्च सुमेधा च नानावस्त्रै सुशोभनै ॥
शोभयामास दौहित्र नानाव्याघ्रनखादिभि ।
बालाऽपि रजयामास स्वक्रीडाभिर्विदेहजाम्॥

(जन्मकाण्ड ४।५८—६०)

सीताके अतिरिक्त देवी उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्तिने भी पुत्राको जन्म दिया और प्रभु श्रीरामने उनके भी पुसवन, जातकर्म और नामकरण आदि सस्कार कराये। उर्मिलाके ज्येष्ठ पुत्रका नाम अगद तथा कनिष्ठ पुत्रका नाम चित्रकेतु रखा गया। इसी प्रकार माण्डवीके ज्येष्ठ पुत्रका पुष्कर तथा कनिष्ठ पुत्रका नाम तक्ष पडा और श्रुतकीर्तिके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सुबाहु एव कनिष्ठ पुत्रका नाम यूपकेतु रखा गया—

तासा पुसवनादीनि विविधानि रघूत्तम ॥
जातकर्मादिसस्कारान् कृत्वा राम पृथक् पृथक्॥
एव कृतानि नामानि गुरुणा विधिपूर्वकम्।

(जन्मकाण्ड ९।२ ७ १०)

यज्ञोपवीत-सस्कारको विशेष महत्त्व देते हुए कुशक यज्ञोपवीत-सस्कारका आनन्दरामायणम विस्तारसे वर्णन आया है। राम तथा अन्य भाइयाके पुत्राम कुश सबसे बड थे। अत श्रीरामचन्द्रजीने गुरु वसिष्ठको उनका उपनयन-सस्कार करनेके लिये कहा। उस समय कुशका पाँचवाँ वर्ष और गर्भसे छठा वर्ष चल रहा था। प्राय ब्राह्मणका उपनयन आठव वर्षमे, क्षत्रियका बारहवे वर्षमे और वैश्यका सालहवे वर्षम हाता है, परतु अपना वर्चस्व बढानेकी इच्छा रखनेवाले विप्रका पाँचव वर्ष बलवृद्धिकी कामनावाले क्षत्रियका छठे वर्ष और धनवृद्धिकी इच्छा रखनवाले वेश्यका आठवे वर्षमे उपनयन-सस्कार कराना उचित होता है।*

कुशक उपनयनका ठीक समय जानकर गुरु वसिष्ठने ज्यातिषियाका बुलाया और उनसे गुरु और शुक्रका बलाबल दिखवाया। ज्योतिषियाने गणना करक बताया कि पद्रह दिन बाद उपनयनके लिये बहुत ही सुन्दर और पवित्र मुहूर्त हे। भगवान् श्रीरामने भी एक पक्षका समय तैयारी आदिके लिय आवश्यक जानकर उसे स्वीकार कर लिया और ज्योतिषियोका धन-वस्त्रादिसे सम्मान किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीन लक्ष्मणको आदेश दिया कि समस्त मित्रो और राजाओको निमन्त्रण-पत्र भेज दो कि वे परिवार, नगरवासिया और राज्यके समस्त नागरिकोके सहित उपनयन-सस्कारमे सम्मिलित हो। इसी प्रकार समस्त मुनिगणोंको भी उपनयन-सस्कारके महोत्सवमें सादर आमन्त्रित कर लो। हे लक्ष्मण! इस शुभ अवसरपर सम्पूर्ण अयोध्यापुरीको अच्छी प्रकारसे सजवाओ, इसके आस-पासकी सातो खाइयोको अच्छी प्रकारसे साफ करवाओ, अट्टालिकाओं और प्राचीरोंको सुन्दर-सुन्दर चित्रोंसे चित्रित करवाओ, अयोध्याके समस्त देवालयाको चूनेसे पुतवाकर उनपर सुन्दर चित्रकारी करवाओ और वहाँ पूजन-सम्बन्धी समस्त सामग्रियाका विशेष रूपसे प्रबन्ध करो, सम्पूर्ण नगरीको ध्वजा-पताकाओसे अलकृत करा दो, सोनेकी वेदियाँ बनवाओ और इसके अतिरिक्त जो बात तुम्हे ठीक लग और मैंने न कही हो, उसको भी कर लो।

लक्ष्मणजीने 'जो आज्ञा' कहकर आदेशको शिरोधार्य किया और श्रीरामजीके कथनके अनुसार सारा प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद उपनयनके दिन श्रीरामजीने उबटन लगाकर स्नान किया, सीता और अन्य भाइयोने भी उबटन लगाकर स्नान किया, फिर कुमारोको स्नान कराकर वस्त्राभूषणासे अलकृत किया गया। तदनन्तर श्रीरामजीने सीताके साथ गुरु वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियाका पूजन-वरण किया। ऋषियनि पुण्याहवाचन किया और श्रीरामजीने नान्दीश्राद्ध और देव-पूजन सम्पन्न किया। इस अवसरपर साता द्वीपाके राजा और ऋषि-मुनि पधारे। उस समय उन सबसे भरी हुई अयोध्यापुरी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी, चारो ओर तुरही और नगाडोके मङ्गलमय स्वर गूँज रहे थे।

यज्ञोपवीत-सस्कारके अवसरपर वसिष्ठजीने श्रीराम और कुशक मध्यम एक सुन्दर कपडेका परदा बाँध दिया ओर आये हुए ब्राह्मणा ओर ऋषि-मुनियाके साथ माङ्गलिक

* ब्राह्मणस्याष्टमे प्रोक्तो द्वादशे क्षत्रियस्य च॥
वैश्यस्य षोडशे वर्षे व्रतबन्धो मुनीश्वरै ।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे॥
राज्ञो बलार्थिन षष्ठ वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे। विद्भिर्द्धिश्चोपनयनमेव शास्त्रेषु निर्णय ॥ (जन्मकाण्ड ९।७२—७५)

श्लोकोका पाठ हाने लगा।[1]

विविध प्रकारके मङ्गलमय मन्त्राका पाठ करक गुरु वसिष्ठने 'ॐ' शब्दका उच्चारण करते हुए अन्त पट (परदा) हटा दिया और कुशको श्रीरामकी गोदम बैठाकर हवनादि कार्योको सम्पन्न किया। इसक अनन्तर कुशको सुवर्णके तारास बनी करधनी पहनायी मृगचर्म बाँधा और कोपीन पहनायी। तत्पश्चात् दण्ड, कमण्डलु देकर वसिष्ठजीने कुशका गायत्री-मन्त्रका उपदेश दिया—

इति नानामङ्गलवाद्यैस्तूर्यघोषैर्मनाहरै ।
ॐकारघाषै स गुरुर्मुमोचान्त पट तदा॥
ततस्त राघवस्याङ्के निवेश्य हवनादिकम्।
विधि कृत्वाऽथ कौपीन दण्ड चाथ कमण्डलुम्॥
बद्ध्वादौ रुक्मजा मौञ्जीं बबन्धैणाजिन तदा।
तत कुशाय स गुरुर्गायत्रीमुपदिष्टवान्॥

(जन्मकाण्ड ९।९४—९६)

तदनन्तर गुरु वसिष्ठजीने ब्रह्मचारीके लिये पालनीय शास्त्रोक्त नियम कुशको इस प्रकार बताये—

ब्रह्मचारीको शोचसे निवृत्त होकर दाँत तथा जीभ साफ कर लेनेक बाद वरुण देवता-सम्बन्धी मन्त्राका जपकर स्नान करना चाहिये फिर आचमन-प्राणायामादि करके दोनो सन्ध्याआम सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। इसके बाद हवन करक अपने नाम, गोत्रका उच्चारण करत हुए ब्राह्मणाको प्रणाम करना चाहिये। मेखला दण्ड उपवीत तथा अजिन धारणकर सुपात्र ब्राह्मणा या कुलीन द्विजाके घरकी भिक्षासे आजीविका चलानी चाहिये। किसीकी निन्दा नहीं करनी चाहिये तथा मौनव्रतका पालन करना चाहिये। गुरुका आज्ञा मिलनेपर ही भोजन ग्रहण करना चाहिय। ब्रह्मचारीका चाहिये कि वह सदैव एक ही बार भाजन कर और श्राद्धादिम तथा आपत्तिकालम भी दो बार भोजन न करे। साय-प्रात अग्निहोत्र करे। मधु तथा मासका आहार प्राणिहिसा, जलमे सूर्य-प्रतिबिम्बका दर्शन, स्त्री-प्रसङ्ग बासी तथा जूठे अन्नका भोजन आदि नहीं करना चाहिये। गुरके सामने अपनी इच्छासे बिना गुरुकी अनुमतिसे कोई कार्य न कर। परोक्षम भी गुरुका नाम बिना विशेपण लगाये न ले। जहाँ गुरुकी निन्दा हो रही हा, वहाँ कान बद कर ले अथवा उठकर चला जाय। अपनी माता, बुआ या बहिनके साथ भी एकान्तम न बैठे, क्योकि इन्द्रियाँ बडी प्रवल होती हैं। व ज्ञानियाक मनको भी विचलित कर देती हैं।[2]

इस प्रकार वसिष्ठजीने कुशको बहुत-से ब्रह्मचर्यव्रतसम्बन्धी नियमाका उपदेश दिया। तदनन्तर प्रभु श्रीरामने विप्रा ऋषियो तथा मुनियाको अनेक प्रकारके दान दिये। कुशको माताके साथ भोजन कराया गया। इसक बाद वसिष्ठजीने राम, सीता और कुशसे आहूत देवताआका पूजन कराया। तदनन्तर जनकजी सहित अन्यान्य राजाआने श्रीरामजीका पूजन किया। श्रीरामजीने भी उनका धन वस्त्र आदिसे यथोचित सम्मान किया। इस अवसरपर श्रीरामजीने ब्राह्मणासे लेकर चाण्डालातकको सादर प्रसन्न किया। श्रीरामजीने उपनयन-सस्कारके शुभ अवसरपर आये हुए राजाआ एव ऋषियो-मुनियाका एक माहतक आतिथ्य-सत्कार किया। इसी प्रकार लव तथा अन्य कुमाराके भी यज्ञोपवीतके माङ्गलिक सस्कारोत्सव मनाये गये।

(आनन्दरामायणके आधारपर)

१ ध्यात्वा श्रीगणनायक विधिसुता शम्भु विधि माधव लक्ष्मीं शैलसुता विधेस्तु दयितामिन्द्र सुरास्तान् ग्रहान्।
पुण्यान्स्थावरनिम्नगाश्च सुमुनान् स्वीया कुलस्याम्बिका तात मातरमादरेण वटवे भूयात्सदा मङ्गलम्॥
तदव लग्न सुदिन तदेव ताराबल चन्द्रबल तदेव। विद्याबल दैवबल तदेव सीतापतेर्यत्स्मरण विधेयम्॥ (जन्मकाण्ड ९।९२-९३)

२ ब्रह्मचर्यव्रतादीनि स कुशायोपदिष्टवान्। कृत्वोक्तविधिना शौच कुर्यादाचमन तथा॥
दन्तान् जिह्वा विशाध्याथ कृत्वा मलविशोधनम्। स्नात्वाऽम्बुदैवतैर्मन्त्रै प्राणानायम्य यत्नत ॥
उपस्थान रवे कृत्वा सध्ययारुभयोरपि। अग्निकार्यं तत कृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत्॥
ब्रुवन्नमुकगोत्रोऽहमभिवादय इत्यपि। धारयन्मेखला दण्डोपवीताजिनमेव च॥
अनिन्द्येपु चरेद्भैक्ष्य ब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये। वाग्यतो गुर्वनुज्ञातो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन्॥
एकान्न च समश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथाऽऽपदि। द्विवार नैव भुञ्जीत दिवा क्वापि द्विजोत्तम ॥
साय प्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित्। मधुमास प्राणिहिसा भास्करालोकन जले॥
स्त्रिय पर्युपितोच्छिष्टे परिवादं विवर्जयेत्। यथेष्टचेष्टो न भवेद्गुरोर्नयनगोचरे॥
न नाम परिगृह्णीयात्परोक्षेऽप्यविशेषणम्। गुरनिन्दा भवेद्यत्र परिवादस्तु यत्र च॥
श्रुती पिधाय स्थातव्य यातव्य वा ततोऽन्यत। न मात्रा न पितु स्वस्रा न स्वसैकान्तशीलता॥
बलवन्तान्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यतिकोविदान्। (जन्मकाण्ड ९।९७—१०७)

यज्ञोपवीत-संस्कार एवं श्रावणीकर्म

(श्रीजीवनदत्तात्रयजी केळकर)

उपनयन-सस्कारम गायत्रीमन्त्रके उपदशके साथ ही ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनकी दीक्षा लेते हुए वटुक गुरुकी शरणमे जाता है, इस प्रकार वह व्रतके बन्धनमे बँधता है। इसीलिये उपनयनको व्रतबन्धके नामसे भी जाना जाता है। उपनयनसे पूर्व बालक पूर्णरूपसे स्वच्छन्द होता है, किंतु बादमे उसे कामाचार, कामभक्षण आदि दोषोसे बचना पडता है। यज्ञोपवीत धारण करनेवाले ब्रह्मचारीको मौञ्ज (मूँज)-की बनी मेखला एव हरिणचर्मको धारण करना पडता है। सस्कारके बाद उस बालककी 'द्विज' सज्ञा होती है।

यज्ञोपवीत—यज्ञोपवीतसूत्रका उपवस्त्र भी माना गया है। यह ९ तन्तुओसे बना होता है, जो ४ अँगुलियोपर ९६ बार लपेटकर बनता है। यह वेदोम स्थित कर्मकाण्ड एव उपासनाकाण्डके क्रमश ८०+१६=९६ सहस्र मन्त्राका द्योतक है। नौ तन्तुओके क्रमश नौ अधिष्ठातृदेव हैं। यथा—ओङ्कार, अग्नि, नाग सोम पितर, प्रजापति वायु, यम (पाठभेद सूर्य) एव विश्वेदेवता। ९६ बार लपेटे गये सूत्रको ऊपरसे बायीं ओर तीन बार लपटना रजोगुण, तमोगुण एव सत्त्वगुणको दर्शाता है। पुन त्रिगुणित कर दाहिनेसे नीचेकी ओर ले जाना क्रमश ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ ऋषि-ऋण देव-ऋण, पितृ-ऋण एव ज्ञान भक्ति, कर्मरूप ब्रह्मगाँठका द्योतक है तो कहीं वेदत्रयी—ऋग्वद यजुर्वेद सामवेदको ब्रह्मगाँठ कहा गया है। शैवसम्प्रदायमे यज्ञोपवीत (त्रिपिण्डा)-के अनुसार ज्ञान, पवित्रता और तपसे प्राप्त होनेवाली चैतन्यता ब्रह्मगाँठ है। ९६की सख्याके बारेम कहा गया है—

तिथिर्वार च नक्षत्र तत्त्ववेदगुणान्वितम्।
कालत्रय च मासाश्च ब्रह्मसूत्र हि षण्णवम्॥

अर्थात् १५ तिथियाँ+७ वार+२७ नक्षत्र+२५ तत्त्व+४ वेद+३ गुण+३ काल+१२ महीने—इनका योग ९६ होनेके कारण यज्ञोपवीतका इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक अन्य मान्यतानुसार हमारे शरीरकी कुल लम्बाई स्वयकी ९६ अँगुलियाके बराबर होती हे। अत यह यज्ञोपवीत सदा सोते-जागते उठते-बैठते यह बोध कराता है, कि यह ९६ अँगुलियाका शरीर मुझसे अलग है शरीर यानी मैं नहीं, कर्ता कोई और है और 'मैं' वाला यह शरीर तो मात्र निमित्त है। यज्ञोपवीत कुछ ऐसे ही आत्मबोधके भावको दशाता है। विशेष परिस्थितियामे इसे बदलकर दूसरा पहननेका विधान है। मल-मूत्रका त्याग करते समय जनेऊको दाहिन कानपर लपेटनेसे गुह्येन्द्रिय तथा अण्डकोशके बहुत-से दोषोका नाश होता है एव मूत्रोत्सर्गके समय होनेवाले वीर्यस्रावको भी रोकनेमे मदद मिलती है। यज्ञोपवीत-सस्कार होनेपर ही सभी धर्म-कर्मोको करनेका अधिकार प्राप्त होता है। प्राण-प्रतिष्ठित यज्ञोपवीत ही सदा पहनना चाहिये। प्राणप्रतिष्ठा किये यज्ञसूत्रमे देवत्वका आधान होता है।

यज्ञोपवीतको सस्कारसम्पन्न करने तथा नूतन यज्ञोपवीत धारण करने और देवताओ, ऋषिया तथा पितराको सन्तृप्त करनेका कर्म श्रावणी महत्त्वपूर्ण सस्कार है। यह स्वाध्यायका सस्कार है। यज्ञोपवीत धारण करनेके उपरान्त सभी यज्ञोपवीतधारकोको श्रावणीपर्व मनाना चाहिये। जैसा कि नामसे ज्ञात होता है कि श्रावणमासकी पूर्णिमापर यह पर्व पडनेसे इसे श्रावणी कहते हैं। वर्षभरम चाहकर अथवा अनजानेम किये गये अच्छे-बुरे कार्योका सुविचार एव प्रायश्चित्त ही श्रावणीकर्म है। वेदाके आधारपर श्रावणीकी कार्यपद्धति—कार्यशैली भिन्न-भिन्न हो सकती है परतु दिशा एव लक्ष्य एक ही होता है।

प्रारम्भम किसी नदीके तटपर अथवा जलाशयके समीप जाकर औषधियुक्त पुष्प-पत्रासे जलद्वारा मार्जनकर शरीरको पवित्र करनकी क्रिया की जाती है। तब मिट्टी, गौके गोबर आदिसे स्नान किया जाता है। इसके बाद तर्पणकर्म होता है। तर्पणमे अपने पूर्वजा गुरु एव गुरुपरम्परासे बँधे बन्धु-बान्धवो, परदादा एव परदादी, पिता तथा माता परनाना परनानी, श्वशुर सास—इसी प्रकार दोनो कुलाके पितरोके नाम और गोत्रका उच्चारण कर उन्हे जलाञ्जलि दी जाती है। तर्पणके बाद भगवान् सूर्यको अर्घ दिया जाता है।

इस प्रकार आन्तरिक एव बाह्य शरीरशुद्धिके बाद सप्तर्षियों एव माता अरुन्धतीकी पूजा होती है। इसके बाद माता गायत्रीका ध्यान करत हुए गायत्रीमन्त्राका उच्चारण कर प्रतिष्ठित यज्ञोपवीतको धारण किया जाता है एव पुराना जनेऊ उतारकर उसे पवित्र जलमे प्रवाहित कर दिया जाता है।
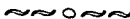
शिखा—चोटीकी महिमा

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री विद्याभूषण धर्माधिकारी)

सनातनधर्मम शिखाका वडा महत्त्व है शास्त्राद्वारा वर्णित पोडश सस्कारामे चूडाकर्म-सस्कार परिगणित है, इसम नवजात शिशुके गर्भसे आये वालाका मुण्डन कर चूडा (शिखा) रखी जाती है। महर्षि मनुका वचन है—

चूडाकर्म द्विजातीना सर्वेषामेव धर्मत ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्य श्रुतिचोदनात्॥

इस प्रमाणसे जातकके प्रथम अथवा तृतीय वर्षसे ही शिखा रखनेका विधान है। अत चोटी रखना चाहिये और स्नान, दान जप, होम सध्या, देव-पूजन आदि समस्त धार्मिक कार्योमे शिखाम ग्रन्थि लगानी चाहिये—

स्नाने दाने जपे होमे सध्याया देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

यदि रोग या वृद्धावस्थाके कारण शिखास्थानके बाल गिर गये हा तो उस स्थानपर तिल, कुशपत्र या दूर्वा चावल रखनेकी व्यवस्था है। यही नहीं शिखाम ग्रन्थि लगानेका शास्त्रम मन्त्र भी है—

चिद्रूपिणि महामाये दिव्यतेज समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये तजोवृद्धि कुरुष्व मे॥

महर्षि कात्यायनका वचन है—

सदोपवीतिना भाव्य सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत् कराति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति)

इससे स्पष्ट है कि द्विजोको यज्ञोपवीत सदा धारण करना चाहिये तथा सदा चोटीम ग्रन्थि लगाये रहना चाहिये। बिना चोटी और जनेऊको धारण किये जो भी धर्म-कर्म किये जाते हैं वे फलदायक नहीं होते। शिखा रखनेका अधिकार और कर्तव्य चारा वर्णों तथा स्त्रियाको भी है। शिखाका छेदन हो जानेपर प्राजापत्य व्रत करनेसे प्रायश्चित्त होता है। हारीत कहते हैं—

प्राजापत्य प्रकुर्वीता निष्कृतिर्नान्यथा भवेत्॥

यही नहीं, लघु हारीतस्मृतिमे तो शिखा कटानेपर पुन सस्कारकी बात कही गयी है—'**शिखा छिन्दन्ति ये केचिद् वैराग्याद् वैरतोऽपि वा। पुन सस्कारमर्हन्ति०॥**'

शिखा तेजको बढाती है और '**दीर्घायुत्वाय वलाय वर्चसे शिखायै वषट्**' के अनुसार दीर्घायु एव बलवर्द्धक भी है। इसीलिये जपादि एव पाठादिक पूर्व शिखाका स्पर्श करके न्यास किया जाता है। शिखा हमारी ज्ञानशक्तिका बढाती है और हम चैतन्यता प्रदान करती है।

शिखा सिरम जिस स्थानपर रखी जाती है, योगशास्त्रानुसार वह सहस्रार-केन्द्र है। शिखाके स्थानके नीचे वुद्धिचक्र है और इसीके पास ब्रह्मरन्ध्र है। बुद्धिचक्र एव ब्रह्मरन्धके ऊपर सहस्रदलकमलम अमृतरूपी ब्रह्मका अधिष्ठान है। जब हम वेदादि स्वाध्याय या परमपुरुषका ध्यान करते हैं, तब इस ध्यानसे समुत्पन्न अमृत-तत्त्व वायुवेगसे सहस्रदलकर्णिकाम प्रविष्ट होकर सिरसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है। इस समय यदि शिखाम ग्रन्थि लगी हो तो वह अमृत-तत्त्व सहस्रदलकर्णिकाम ही रह जाता है। अत शिखाम ग्रन्थि लगाना आवश्यक है।

शरीर-विज्ञानके अनुसार शिखाके स्थानपर '*पिट्यूटरी*' नामक एक ग्रन्थि होती है, इस ग्रन्थिसे शरीरम एक विशेष रसका सचार होता है जो शरीरको हृष्ट-पुष्ट तथा मस्तिष्कको विकसित करता है। अत इस ग्रन्थिकी सुरक्षाके लिये शिखास्थानपर बाल बढाना आवश्यक है।

शिखास्थान शरीरके मर्मस्थलोमेसे एक प्रधान स्थान है। यहाँ चोट लगनेपर मृत्यु भी हो जाती है, अत लम्बी शिखा मर्मस्थलकी रक्षा करती है। सिरम दो भाग हैं—पहला भाग मस्तिष्क है और दूसरा भाग मस्तुलिङ्ग कहलाता है। इन दोनो भागाका सुषुम्णा नाडीसे सम्बन्ध है। अत मस्तिष्क हमारी ज्ञानशक्तिका केन्द्र होकर ज्ञानेन्द्रियोको प्रभावित करता है और मस्तुलिङ्ग कर्मशक्तिका केन्द्र होकर कर्मेन्द्रियाको प्रभावित करता है परतु दोनो केन्द्रोकी प्रकृति भिन्न-भिन्न है। मस्तिष्क शीतप्रधान और मस्तुलिङ्ग उष्ण-प्रधान है। अत यहाँ बालाका गुच्छा (चोटी) रखना आवश्यक है। यहाँ रखे गये बालोसे मस्तुलिङ्गको ऊष्मा मिलती है। योगशास्त्रानुसार यह जो सहस्रार-केन्द्र है, वही शरीरके सप्त चक्रोका अन्तिम बिन्दु है। इस केन्द्रको हम जितना अधिक सुरक्षित, सुसस्कारित एव विकसित करेगे उतने ही ससारके रहस्यो आत्माके रहस्यो और भूत भविष्य एव वर्तमानकी घटनाओके सत्यकी जानकारीका हम अनुभव कर सकेगे। ऋषि महर्षि तथा योगियामे जो दिव्य दृष्टि रहती है, उसका रहस्य शिखामे

ही विद्यमान है। हम देखते हैं कि बडे-बडे विद्वान्, विचारक, वैज्ञानिक, सत-महात्मा चोटीके स्थानपर वडे-बडे बाल रखते थे। पाश्चात्त्य वैज्ञानिक 'विक्टर ई० क्रोमर' ने अपनी पुस्तक 'विरिल कल्पका' मे चोटीका बहुत महत्त्व बतलाया है।

इसीलिये हम मृत्युलोकके निवासियाको शिक्षा देनेक लिये अवतरित नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण चोटी बढानेके लिये लालायित रहते थे—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी॥

शिखा हिन्दुत्वकी पहचान है शिखा राष्ट्रीय एकतामे सहायक है। गुरु गोविन्दसिहजीके दोनो पुत्र जोरावरसिह और फतहसिह स्वयको दीवारमे चुनवाकर तथा वीर हकीकतराय अपना सिर कटवाकर हम चोटी रखनेकी प्रेरणा देते रहे हैं।

आचार्य चाणक्यने शिखा खालकर ही तो प्रतिज्ञा की थी। यदि हमारे सिरपर चोटी नहीं होगी तो हम प्रतिज्ञा कैसे कर सकेगे?

आज तथाकथित सभ्य समाजम सम्भ्रान्त परिवारके लोग दाढी, मूँछ, नख एव बाल बढाकर गौरवका अनुभव कर रहे हैं, फिर हम चोटी बढानेम क्यो शरमाये। अत हमको शिखा रखनी चाहिये, इससे शास्त्राकी आज्ञाका पालन तो होता ही है, हमको आध्यात्मिक, शारीरिक-नीरोगता आदि सुखाकी प्राप्ति भी होती है।

~~~o~~~

हिन्दू-विवाहका पवित्र स्वरूप

(पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम)

भारतीय हिन्दूजातिकी विवाह-प्रणाली अत्यन्त प्राचीन, पवित्र एव विलक्षण है। अन्य जातियामे जो रीतियाँ प्रचलित हैं, उनका दृष्टिकोण केवल भौतिक है। अर्थ-कामपरायणता ही उनका आदर्श है। भाग ही उनका लक्ष्य है। हिन्दूजातिम विवाह एक धार्मिक मस्कार है। धर्म धारक तत्त्व है और सस्कार शोधक एव गुणाधायक। सस्कारके दो प्रकार हैं—मलापकर्षण तथा गुणातिशयका ओधान। स्त्री-पुरुषके अन्त करणकी मलिनता या मलिन भावनाका निराकरण करके उनम सतीत्व, सयम, विशुद्ध अनुराग तथा धर्मानुष्ठान आदि गुणोका आधान करना ही विवाह-सस्कारका उद्देश्य है। यद्यपि प्रजोत्पादनोद्देश्यक कामकी भावना इसमे भी होती है, तथापि वह धर्मके विरुद्ध नहीं होती। धर्माविरुद्ध काम तो भगवान्‌की विभूति है। भारतीय राजनीतिम यह क्रम बताया गया है कि धर्मस अर्थ अर्थसे काम तथा कामसे सुखका उदय होता है। जो धर्म और अर्थका त्याग करके केवल कामपरायण हाता है वह अपनी ही हानि कर बैठता है।[1] महाभारतमे भगवान् व्यासन हाथ उठाकर पुकार-पुकारकर घोषणा की है कि धर्मसे ही अर्थ और कामसुखकी उपलब्धि होती है, अत उसका ही सेवन लोग क्यो नहीं करते हैं?[2] पवित्र सततिकी सृष्टिक लिये स्त्री-पुरुषके पवित्र आचार-विचारकी रक्षा तथा धर्मानुकूल विवाह-पद्धतिका परिपालन अत्यन्त आवश्यक है। एकपत्नीव्रत तथा पतिव्रत भारतीय विवाह-पद्धतिकी ही पवित्र देन है। भारतीय नारी जिसका मनसे वरण कर लेती है, उसे किसी भी दशाम न छोडनेका दृढ सङ्कल्प लेती है। वह मनसे भी पर-पुरुषका चिन्तन गर्हित मानती है। हिन्दू-जातिका विवाह एक महान् धर्मकृत्य है। उसका लक्ष्य इन्द्रिय-सुख-भोग नहीं, अपितु धार्मिक पुत्र उत्पन्न करक देवयाग एव पितृयागकी पावन परम्पराको परिचालित रखना है। यद्यपि विवाहकी आठ श्रेणियाँ बतायी गयी हैं, तथापि उनमे ब्राह्मविवाहकी प्रथा ही सबसे श्रेष्ठ एव उपादेय है।

विवाहकाल

हिन्दू-शास्त्राके अनुसार द्विज-बालक उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदका अध्ययन पूर्ण करते थे। फिर गुरुदक्षिणा देकर उनकी आज्ञासे वे समावर्तनसस्कार कराते थे और स्नातक होकर घर आत थ। एसा अविप्लुत (अखण्डित) ब्रह्मचर्यसम्पन्न

१-धर्मादर्थोऽर्थत काम कामात् सुखफलोदय । आत्मान हन्ति तौ हित्वा युक्त्या यो न निषेवते॥ (कामन्दक)
२-धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सव्यत॥ (महा०स्वर्गा० ५।६२)
~~~

स्नातक विवाहके योग्य माना जाता था। इस अध्ययन और व्रतको पूर्ण करनेमे स्नातककी अवस्था लगभग बीससे पचीस वर्षतककी हो जाती थी। यही पुरुषके लिये विवाहका उचित समय माना जाता था।

योग्यता

वर और कन्या सभी दृष्टियासे एक-दूसरेके उपयुक्त हो, इसकी बडी छान-बीन की जाती थी। वर रूपवान् और सुन्दर हो स्वस्थ हो उत्तम कुलमे उसका जन्म हुआ हो वह इतने धन-वैभवसे सम्पन्न हो कि पत्नीका ठीकसे भरण-पोषण कर सके। कन्याके भी रूप, कुल, गुण, स्वभाव आदिकी परीक्षा की जाती थी। पुरुषके पुरुषत्व तथा स्त्रीके स्त्रीत्वकी भी विश्वस्त रूपसे जानकारी प्राप्त की जाती थी। स्त्री लक्षण्या (उत्तम लक्षणासे सम्पन्न) हो। उसके बाह्य और आन्तरिक—दोना लक्षणापर विचार किया जाता था।

कन्या अनन्यपूर्विका होनी चाहिये, उसका किसी दूसरेके लिये वाग्दान न हुआ हो वह कान्तिमती, असपिण्डा और यवीयसी हो। मातासे लेकर पाँच पीढातक और पितासे लेकर सात पीढीतकके भीतरकी कन्या सपिण्डा कही गयी है। मामा मौसी बूआ—इन सभीकी कन्याएँ सपिण्डा होनेके कारण अग्राह्य हैं। यवीयसीका अर्थ है—वरसे छोटी अवस्थावाली। उसका कद भी वरसे ऊँचा नहीं होना चाहिये। उसे कोई रोग नहीं हो—इसपर भी ध्यान दिया जाय। उसके एक या अनेक भाई अवश्य होने चाहिये। वर और कन्याके गोत्र एव प्रवरमे भी भेद होना आवश्यक है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार जन्मकुण्डलीका भी मेल देख लेना चाहिये। उसमे सौभाग्य और सतानका योग कैसा है? इसका विचार कर लेना चाहिये। गण योनि ग्रह राशि राशीश वश्य, वर्ण तारा भकूट आदिका भी दाम्पत्य-जीवनपर गहरा प्रभाव पडता है अत इसकी भी समीक्षा आवश्यक है। कन्याकी ही भाँति वर भी आवश्यक गुणोसे युक्त तथा दोषासे रहित होना चाहिये। वह अपने ही वर्णका तथा वेद-शास्त्राका ज्ञाता हो। उसके पुरुषत्वकी भी यत्नपूर्वक परीक्षा की गयी हो। वह तरुण बुद्धिमान् एव जनप्रिय होना चाहिये।

ब्राह्मविवाह

वरको घरपर बुलाकर उसे यथाशक्ति वस्त्राभूषणोंसे अलकृत कन्याका दान करना ब्राह्मविवाह है। ब्राह्मविवाहसे उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढियाका उद्धारक होता है।

कन्यादाता

पिता, पितामह भाई, अपने कुलका कोई पुरुष तथा माता—ये कन्यादानके अधिकारी बताये गये हैं। इनमे पूर्व-पूर्वकी श्रेष्ठता है। पूर्वके अभावमे ही परका अधिकार है। दाताओके अभावमे कन्या स्वय वर चुन सकती है। कन्यादान एक बार ही होता है, अत जिसे वाग्दान दिया गया हो उसीको कन्या देनी चाहिये। कन्यादाता यदि रजोदर्शनके बाद भी कन्यादानमे विलम्ब करे तो कन्या तीन वर्षोतक प्रतीक्षाके बाद स्वय वर चुननेकी अधिकारिणी है।

पतिव्रता

जो पतिके जीते-जी या मरनेपर भी अन्य पुरुषका स्वीकार नहीं करती, वह पतिव्रता है। वह इस लोकमें यशस्विनी होती है और परलोकमे उमाकी सहचरी बनकर आनन्दभागिनी होती है। यदि आज्ञाकारिणी कुशल, पुत्रजननी और प्रियवादिनी पत्नीका त्याग करके कोई भार्यान्तर ग्रहण करता है तो उसे अपनी सम्पत्तिका एक-तिहाई अश उस स्त्रीको दे देना होगा। यदि वह निर्धन है तो उसे आजीवन पहली पत्नीके भरण-पोषणका भार सादर वहन करना होगा। ऐसा करनेके लिये उसे राजकीय दण्ड विवश करे।

स्त्रीधर्म तथा स्त्रीकी रक्षा

स्त्रीको सदा पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यही उसका परमधर्म है। विवाहका प्रयोजन है—वश-परम्पराको विच्छेदसे बचाना तथा पत्नीके साथ सद्धर्मानुष्ठानद्वारा अन्त करणकी शुद्धि या स्वर्गादि उत्तम लोक प्राप्त करना। अत स्त्रीका सेवन तथा सरक्षण पतिका परम कर्तव्य है।

ऋतुकालकी रात्रियाँ

स्त्रीके साथ सम्पर्क स्थापित करनेके लिये सोलह राते ऋतुकालसम्बन्धिनी मानी गयी हैं। इनमे पहलेकी चार सर्वथा वर्जित हैं। शेष बारहमे जो युग्म रात्रियाँ हैं उनमे पुत्रार्थीको सहवास करना चाहिये। पर्वोके दिन भी वर्जनीय हैं। मासमे केवल एक रात्रिमे एक बार सम्पर्क स्थापित

करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्मचारीवत् ही समझा जाता है। आधानमे मघा और मूल नक्षत्र वर्जित हैं। उस समय चन्द्रबल ठीक रहना चाहिये।

स्त्रियोका समादर, सरक्षण और आचरण

पति, भाई पिता, बन्धु-बान्धव, सास-ससुर, देवर तथा कुटुम्बाजन भूषण भोजन और वस्त्रद्वारा स्त्रीका सदा सम्मान करते रहे। स्त्रीको गृह-व्यवस्थामे नियुक्त होना चाहिये। घरकी हरेक वस्तुको सँभालकर व्यवस्थापूर्वक रखना चाहिये। नारी सदा कार्यदक्ष हो और प्रसन्न रहे। खर्चीली न हो। प्रतिदिन सास-ससुरके चरणामे प्रणाम करे और पतिकी सेवामे सदा तत्पर रहे। यदि पतिदेव बाहर गये हो तो उसे क्रीडा, शृङ्गारधारण सामाजिक उत्सवोका दर्शन, हास-परिहास और दूसरेके घर जाना आदि कार्य नहीं करने चाहिये। स्त्रीको कभी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिये। वह पिता, पति या पुत्राकी देख-रेखमे ही रहे। कोई न हो तो कुटुम्बीजनोके सरक्षणमे रहे। पिता, माता, पुत्र, भाई, सास ससुर मामा या पति—इनमेसे कोई-न-कोई उसके साथ रहे। वह अकेली न घूमे अन्यथा उसकी निन्दा होती है। वह सदा पतिके प्रिय तथा हितमे लगी रहे। सदाचारिणी तथा जितेन्द्रिय हो। ऐसा करनेसे उसे इस लोकमें कीर्ति और परलोकमे उत्तम गति प्राप्त होती है।

हिन्दू-विवाहकी विशेषता

हिन्दू-विवाहमे देवताओ तथा पितरोका पूजन करके उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है। मातृकाओकी पूजा एव वन्दना की जाती है। विवाहके लिये आये हुए वरको विष्णुरूप मानकर सर्वाधिक पूजनीय कहा गया है। अतएव पहले मधुपर्कसे उसकी पूजा की जाती है। पाद्य, अर्घ्य आचमनीय विष्टर, मधुपर्क तथा गोदान—ये उसके सत्कारके अङ्ग हैं। इसके बाद कन्यादान होता है। यह महादान कहा गया है। इसमे यजमानको राजा वरुणकी उपाधि दी गयी है। वर साक्षात् नारायण है और वधू साक्षात् लक्ष्मी। भगवान्को लक्ष्मी देकर जिस पुण्यका अर्जन होता है वही कन्यादाताको उपलब्ध होता है। कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर अग्निदेवकी प्रदक्षिणा करके वधूको स्वीकार करता है और कहता है—'देवि! तुम्हारी दृष्टि सौम्य हो तुम पतिकी हितैषिणी होओ। तुम्हारा मन प्रसन्न एव सद्भावसे पूर्ण हो। तुम कान्तिमयी तथा तेजस्विनी बनो। पुत्राकी जननी होओ। आस्तिक भावसे युक्त तथा सुखदायिनी होकर रहो। हमारे घरके पशुओ तकके लिये तुम कल्याणकारिणी बनी रहो।' फिर वैवाहिक अग्निकी स्थापनापूर्वक होम होता है। इस होमम वैदिक मन्त्राद्वारा दाम्पत्य-जीवनको सुखमय, सफल तथा धर्म एव यशसे समुन्नत बनानेके लिये प्रार्थनाएँ की जाती हैं। नारीके साङ्गुष्ठ दक्षिण हस्तको ग्रहण करके वर गार्हस्थ्य-धर्मको निभानेकी प्रतिज्ञा तथा आजीवन साथ रहकर परस्पर सहयोगका उद्घोष करता है। लाजाहोमम वधू पतिकुल और पितृकुल—दोनाकी मङ्गल-कामना करती है, गार्हपत्य-अग्निसे पतिके दीर्घजीवनकी प्रार्थना करती है। अश्मारोहणम पति अपनी पत्नीके अविचल सौभाग्यकी कामना करता है। परिक्रमाम अग्निदेवतासे शुभ आशीर्वादकी याचना की जाती है। उसी समय उत्तम पतिव्रताओके गाथागानकी भी प्रथा है **'या स्त्रीणामुत्तम यश ।'** इससे स्त्रीका धर्म-निर्वाहकी प्रेरणा मिलती है तथा तदनुकूल मनोबल प्राप्त होता है। सप्तपदीम पति-पत्नीके सख्य-सम्बन्धकी प्रतिष्ठा होती है। इस समय वर-वधू—दोनो एक-दूसरेके अनुकूल चलनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। ध्रुव और अरुन्धतीके दर्शनका भी विधान है। इससे आजीवन सम्बन्धकी सुदृढता होती है और नारीको पातिव्रत्य-पालनकी प्ररणा मिलती है।

ऋग्वेदके दसवे मण्डलके ८५वे सूक्तम सूर्याके विवाहका उल्लेख मिलता है। वेद यज्ञप्रधान हैं। यज्ञम पत्नीका सनिधान सतत अपेक्षित है। **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'** इत्यादि मन्त्र भी पति-पत्नीसम्बन्धकी अनादिसिद्धता प्रकट करते हैं। जो लोग इसे पीछेका कल्पना कहते हैं, उनकी मान्यता सर्वथा निराधार और मिथ्या है।

ऋग्वेदमे पाँच मन्त्रोद्वारा वधू सूर्याने अपने पति सोमदेवका स्तवन किया है। सूर्या जब पतिके घर जानेके लिये विदा होती है, उस समय उसके लिये रथ और शृङ्गार-सामग्रीका भी विस्तृत वर्णन मिलता है। कन्याकी प्रसन्नताके लिये दिये गये उपहारको 'वहतु' नाम दिया गया है। हिरण्यवर्ण सुन्दर रथचक्रका भी उल्लेख है। विदा हुई कन्या सकुशल पतिके घर पहुँचे—इसके लिये प्रार्थना की गयी है। वहाँ वह गृहस्वामिनी बनकर रहे—यह शुभेच्छा प्रकट की

गयी है। अपने व्यवहारसे वधू समस्त गृहजनाका मन वशमे कर ले, उसका प्रिय मनोरथ पूर्ण हो, वह गृहस्थ-धर्मके पालनके लिये सजग रहे, दम्पती वृद्धावस्थातक एक-दूसरेके सम्मुख एव अनुकूल रह—इत्यादि सद्भावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। एक मन्त्रम कहा गया है—'बहू! तुम मैले वस्त्र त्याग दो। ब्राह्मणोको धनका दान करो। मैले वस्त्रमे कृत्याका प्रवेश होता है। वधूके मैले और उतारे हुए वस्त्रके स्पर्शसे पति श्रीहीन हो जाता है।' घर पहुँचनेपर गुरुजनाको बुलाया जाता था, उनसे कहा जाता था—'यह सुमङ्गला वधू घर आयी है, आशीर्वादके लिये गुरुजन यहाँ पधारे, इसे देखे और इसे सौभाग्यसूचक वर देकर अपने घरको लौट।' श्वशुर-कुलके लोग वधूको स्वागतपूर्वक इस प्रकार आशीर्वाद देते थे—

'दम्पती! तुम इस जगत्म सुखसे रहो। तुमम कभी वियोग न हो। पूरी आयुका उपभोग करो। अपने घर नाती-पोताके साथ आनन्दित रहो। प्रजापति तुम्ह सतान प्रदान करें। अर्यमा उन सतानाको वृद्धावस्थातक जीवित रखें। बहू! तुम दोप-दुर्गुणासे दूर रहकर पतिके पास रहो। हमारे घरक द्विपद (मनुष्य) और चतुष्पद (पशु) सभीके लिये कल्याणकारिणी बनो। तुम सास, ससुर, देवर, ननद—सबके हृदयकी सम्राज्ञी बनो।' ये वैदिक कालके उद्गार हैं।

वेदबोधित इष्टसाधनताके कर्मको धर्म कहा गया है। हिन्दू-विवाहपद्धति पूर्णत वैदिक हानेसे धर्ममय है। धर्मका फल है—अभ्युदय और नि श्रेयस। अत प्रत्येक हिन्दूको विवाहके धार्मिक पक्षपर अधिक बल देना चाहिये। आजकल जो बाह्य आडम्बर बढ गये हैं, उनसे विरत होकर वैवाहिक पवित्र कृत्योके पालनमे सतत सलग्न रहना चाहिये। इसीसे देश जाति समाज और गृह-परिवारका मङ्गल होगा।

~~०~~

नारीके कुसस्कार

कलह—बात-बातम लडने-झगडनेको तैयार रहना लडे बिना चैन न पडना, घरम तथा अडोस-पडोसमे किसीसे भी खुश न रहना—कलहका स्वरूप है। यह बहुत बडा दोप है। जो स्त्री कलह करके अपने दोप धोना तथा अपनी प्रधानता स्थापन करना चाहती है, उसको परिणाममे दोप और घृणा ही मिलते हैं। कलह करनेवाली स्त्रीसे सभी घृणा करते हैं। यहाँतक कि कई बार वह जिन पति-पुत्रोके लिये दूसरोके साथ कलह करती है, वे पति-पुत्र भी उससे अप्रसन्न होकर उसका विरोध करते हैं। कलहसे अपनी सुख-शान्तिका ता नाश होता ही है, सार परिवारमे महाभारत मच जाता है। सास-ससुर पति-पुत्र-कन्या और नौकर-नौकरानियाँ—सबके मनमे उद्वेग होता है। घरके कामोम विशृङ्खलता आ जाती है। पतिका अपने व्यापार या दफ्तरके काममे मन नहीं लगता। रोगीको उचित दवा-पथ्य नहीं मिलता। जिस कुटुम्बम कलहकारिणी कर्कशा स्त्री होती है उसक दुर्भाग्यका क्या ठिकाना। ताने मारना बढा-चढाकर दोपारोपण करना दूसराको गाली देना और स्वय गाली खाना कलहकारिणीक स्वभावमे आ जाता है। अतएव उसके मुँहसे आवेशम ऐसी-ऐसी गदी बात निकल जाती हैं कि जिन्हे सुनकर लज्जा आती है। जबानका घाव अमिट होता है। क्रोधावेशमे नारी अपने घर-परिवारके लोगाको ऐसे शब्द कह बैठती है कि जन्मसे चला आता हुआ प्रेम सहसा नष्ट हो जाता है तथा जीवनभरके लिय परस्पर वैर बँध जाता है। और तो क्या क्रोधमे भरकर नारी ऐसी क्रिया कर बैठती है कि वह अपने स्वामीकी नजरसे भी गिर जाती है और फिर उम्रभर क्लेश सहती है। स्त्री जहाँ एक बार पतिकी आँखसे गिरी कि फिर सभीकी आँखासे गिर जाती है। अत नारीको इस जघन्य दोपसे अवश्य बचे रहना चाहिये।

निन्दा—हिंसा-द्वेप—जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठी हुई कि परचर्चा शुरू हुई। परचर्चामे यदि पराये गुणोकी प्रशसा हा तब तो कोई हानि नहीं है परतु ऐसा होता नहीं। आजकल मानवस्वभावमे यह एक कमजोरी आ गयी है कि वह दूसराके गुण नहीं देखता दोप ही देखता है। कहीं-कहीं तो दोप देखते-देखते दृष्टि ऐसी दोपमयी बन जाती है कि फिर उसे सबम सर्वत्र सदा दोप ही दीखते हैं और

दोष दीखनेपर तो निन्दा ही होगी, स्तुति कैसे होगी। निन्दासे दोषोंका चिन्तन होता है, जिनकी निन्दा होती है, उनसे द्वेष बढता है। द्वेषका परिणाम हिंसा है। अतएव परनिन्दासे बचना चाहिये। उचित तो यह है कि परचर्चा ही न हो। या तो भगवच्चर्चा हो या सत्-चर्चा हो। यदि परचर्चा हो तो वह गुणोंकी हो, दोषोंकी नहीं। इससे सभीको शान्ति मिलेगी तथा बच्चे भी इसी आदर्शमें ढलेंगे। निन्दाकी भाँति चुगली भी दोष है। उससे भी बचना चाहिये। चुगली करके नारियाँ घरमें परस्पर झगडा कराने और घरके बर्बाद होनेमें कारण बनती हैं, जो सर्वथा अनुचित तथा हानिकारी है।

ईर्ष्या—दूसरोंकी उन्नति देखकर, दूसरोंको धन-पुत्र आदिसे सुखी देखकर जलना ईर्ष्या या डाह है। यह बहुत बुरा दोष है और स्त्रियोंमें प्रायः होता है। इससे बहुत-से अनर्थोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव इससे भी बचना आवश्यक है।

भेद—नारियोंमें प्रायः दोष होता है कि वे घरके लोगों और नौकरोंके खान-पानमें तो भेद रखती ही हैं, अपने पति-पुत्रोंमें तथा घरके सास, ससुर, जेठ, देवर, ननद आदिमें तथा उनकी संतानमें भी खान-पान वस्त्रादि पदार्थोंमें तथा व्यवहारमें भेद रखती हैं। बम्बईमें एक सम्भ्रान्त घरकी बहूने पतिके लिये दही छिपाकर रख लिया था और विधुर ससुरके माँगनेपर वह झूठ बोल गयी थी। परिणाम यह हुआ कि ससुरने बुढौतीमें दूसरा विवाह कर लिया और आगे चलकर उस पुत्रवधू और पुत्रको ससुरके धनमेंसे कुछ भी नहीं मिला। अपने ही पेटके लडके और लडकीमें भी स्त्रियाँ भेद करते देखी जाती हैं। लडकेको बढिया भोजन-वस्त्र देती हैं, लडकीको घटिया। लडका अपनी बहिनको मारता है तो माँ हँसती है और कन्याको सहन करनेका उपदेश देती है, एवं कन्या कहीं भाईको जरा डाँट भी देती है तो माँ उसे मारने दौडती है। पर आश्चर्य यह कि यह भेद तभीतक रहता है जबतक कन्याका विवाह नहीं हो जाता। विवाह होनेके बाद माता अपनी कन्यासे विशेष प्यार करती है और पुत्रवधू तथा पुत्रसे कम। खास करके पुत्रवधूके प्रति दुर्व्यवहार और कन्याके प्रति सद्व्यवहार करती है। इस भेदसे भी घर फूटता है। नारियोंको इस व्यवहारभेदका सर्वथा त्याग करना चाहिये।

विलासिता-शौकीनी—यह दोष आजकल बहुत ज्यादा बढ रहा है। भ्रष्ट तेल, साबुन, पामेड, पाउडर, स्नो एसेंस, बढिया-से-बढिया विदेशी ढंगके कपडे-गहने आदिकी इतनी भरमार हो गयी है कि उसके मारे गृहस्थोंका अन्य खर्च चलना कठिन हो गया है। पत्नियोंकी विलासिताकी माँगने पतियोंको तंग कर दिया है। इसीको लेकर रोज घरोंमें आपसमें झगडे हो जाते हैं। यह भारतीय नारियोंके लिये कलङ्क है। शृङ्गार होता है पतिके लिये, न कि दुनियाको दिखानेके लिये। आजके फैशन तथा विलासिताने स्त्रियोंको बहुत नीचे गिरा दिया है। वेष-भूषामें घण्टों खर्च कर देना, खर्चको अत्यधिक बढा लेना, बुरी आदत डाल लेना—जो आगे चलकर दोहरा दुःख देती है और घरके काम-काजमें हाथ न लगाना—ये बहुत बडे दोष हैं, जो शौकीनीके कारण उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य तथा सफाईके लिये आवश्यक उपकरण रखनेमें आपत्ति नहीं और न साफ-सुथरे रहनेमें दोष है। बल्कि साफ-सुथरा रहना तो आवश्यक है। दोष तो शौकीनीकी भावनामें है, जो त्याज्य है।

फिजूलखर्च—शौकीनीकी भावनाके साथ ही दूसरी स्त्रियोंकी देखादेखी तथा मूर्खतासे एवं संग्रह करनेकी आदतसे भी यह दोष बढ जाता है। वही गृहस्थ सुखी रहता है, जो आमदनीसे कम खर्चमें लगाता है। चतुर और बुद्धिमती स्त्रियाँ एक पैसा भी व्यर्थ खर्च नहीं करतीं। लोगोंकी देखादेखी अनावश्यक सामान नहीं खरीदतीं चौके तथा वस्त्राभूषणोंमें सादगीसे काम लेती हैं। बच्चोंको नहला-धुलाकर साफ-सादे कपडे पहनाकर और उनके मनमें उस सादगी तथा सफाईमें ही गौरवबुद्धि उपजाकर सुन्दर-सुडौल रखती हैं जिससे न तो उनकी आदत बिगडती है और न खर्च ही अधिक होता है। खर्चकी तो कोई सीमा ही नहीं है। अपव्यय करनेपर महीनेमें हजारों रुपये भी काफी नहीं होते और सोच-समझकर खर्च करनेसे इस महँगीमें भी सहज ही अपनी आमदनीके अंदर ही काम चल जाता है। स्त्रियोंको हिसाब रखना सीखना चाहिये और आमदनीमेंसे कुछ अवश्य बचाकर रखेंगी—ऐसा निश्चय करके ही खर्च करना चाहिये—*'तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर।'*

असंस्कृत नारी

दिन चढ़ आया किंतु सोती पड़ी आलसमें, कोई सदा ईर्ष्या-सी विषादमें लखाती है।
कोई कलहा है रूठनी है त्यों कुरूपा नारि कोई मार सासको ही गेहसे भगाती है॥
कोई कुलटा है, पति द्रोह आह कोई करे, निपट निलज्ज कोई नंगी ही नहाती है।
कोई मुँहजोरी कोई चटक चटोरी बड़ी बन खर्चीली धन-धर्म भी गँवाती है॥

गर्व—अभिमान—कोई-कोई स्त्री अपने पति-पुत्रके धन या पद-गौरवका अथवा अपने गहने-कपडोका गर्व—अभिमान वाणी और व्यवहारम लाकर इतनी रूखी बन जाती है कि घरके लोगो तकको उससे बात करते डर लगता है और अपमान-बोध होता है। ऐसी स्त्री बिना मतलब सबको अपना द्वेषी बना लेती है। अतएव किसी भी वस्तुका गर्व कभी नहीं करना चाहिय।

दिखावा—नारियाके स्वभावम प्राय ऐसा देखा जाता है कि वे यही समझती हैं कि किसी भी चीजको दिखाकर करना चाहिये। कन्या या ननदको कुछ दगी तो उसको पहले सजाकर लागोको दिखलायेगी, तब देगी। कहीं-कहीं तो दिखाया जाता है ज्यादा और दिया जाता है कम, जिससे कन्या आदिको दु ख भी होता है। इसी प्रकार किसी परिवारके या बाहरके अभावग्रस्त पुरुष या स्त्रीकी कभी कोई सेवा की जाती है तो ऐसा सोचा जाता है कि हमारी सेवाका पता इसको जरूर लग जाना चाहिये। सेवा करे और किसीको कुछ पता भी न चले तो मानो सेवा ही नहीं हुई। सेवा करके जताना अहसान करना और बदलम कृतज्ञता तथा खुशामद प्राप्त करना ही माना सेवाकी सफलताका निशान समझा जाता है। यह बडा दोष है। देना वही सात्त्विक है, जिसको कोई जाने ही नहीं। लेनेवाला भी न जाने तो और भी श्रेष्ठ।

विषाद—कई स्त्रियाम यह देखा गया है कि वे दिन-रात विषादमे डूबी रहती हैं। उनके चेहरेपर कभी हँसी नहीं। दु ख-कष्टमे तो ऐसा होना स्वाभाविक है पर सब तरहके सुख-स्वाच्छन्द्य होनेपर भी स्वभावसे ही हमेशा विषादभरी रहना और किसी बातक पूछत ही झुँझला उठना तो बडा भारी दोष है। इसको छोडकर सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्नता सात्त्विक भाव है। प्रसन्न मनुष्य सबको प्रसन्नताका दान करता है। विषादी और क्रोधी तो विषाद और क्रोध ही बाँटते हैं।

हँसी-मजाक—कई नारियोमे हँसी-मजाकका दोष होता है। कई तो देवर या ननदोई आदिके साथ गदी दिल्लगी भी कर बैठती हैं। परिवारके तथा घरमे आने-जानेवाले पुरुषो तथा स्त्रियोंके साथ भी दिल्लगी करती रहती हैं। हँसमुख रहना गुण है। निर्दोष और सीमित विनोद भी बुरा नहीं, परतु जहाँ हँसी-मजाककी आदत हो जाती है और उसमे ताना, व्यङ्ग्य कटुता और अश्लीलता आ जाती है, वहाँ उससे बडी हानि होती है। स्त्रीको सदा ही मर्यादामे बोलनेवाली और हँसमुखी होनेपर भी गम्भीर होना चाहिये।

वाचालता—बहुत बोलना भी दोष है। इसमे समय नष्ट होता है, व्यर्थचर्चामे असत्य, पर-निन्दा, चुगली आदि भी हो जाते हैं। जबानकी शक्ति नष्ट होती है और घरके कामोमे नुकसान होता है। गप लडानेवाली स्त्रियोके घर उजडा करते हैं। अतएव नारीको समझ-सोचकर सदा हितभरी, मीठी वाणी बोलनी चाहिये और वह भी बहुत ही कम। ज्यादा बोलनेवालीको तो भजन करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती जो बहुत बडी हानि है।

स्वास्थ्यकी लापरवाही तथा कुपथ्य—स्त्रियोम यह दोष प्राय देखा जाता है कि वे स्वास्थ्यकी ओरसे लापरवाह रहती हैं। रोगको दबाती तथा छिपाती हैं और कुपथ्य भी करती रहती हैं। जिन बहुओको ससुरालमे सासके डरसे रोग छिपाना पडता है और रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भी जबरदस्ती बलवान् मजदूरकी तरह दिनभर खटना पडता है, उनकी बात दूसरी है। पर जो प्रमादवश या दवा लेने और पथ्यसे रहनेके डरसे रोगको छिपाती हैं, वे तो अपने तथा घरके साथ भी अन्याय करती हैं। साथ ही स्त्रियाँ प्राय स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोको भी नहीं जानतीं और कुछ जानती हैं तो उनकी परवा नहीं करतीं। ऐसा नहीं करना चाहिये।

मोह—कई स्त्रियाँ मोहवश बच्चाको अपवित्र वस्तुएँ खिलाती, अपवित्र रखती, जानबूझकर कुपथ्य सेवन कराती उन्हे झूठ बोलने नौकरोके साथ बुरा बर्ताव करने तथा गाली देने और मारनेकी बुरी आदत सिखाती उनकी चोरी-चमारीकी क्रियाका सहकर उनका वैसा स्वभाव बनाती और पढाने-लिखानेम प्रमाद करती हैं। साथ ही उन्हे कुछ भी काम न करने दकर और दिन-रात खेल-तमाशा तथा सिनेमा वगैरहमे ल जाकर फिजूलखर्च आलसी, सदाचाररहित, गदा रोगी और बुरे स्वभावका बनाकर उनका भविष्य बिगाडती हैं एव परिणाममे उनको दु खी बनाकर आप भी दु खी होती हैं। इस दोषसे सन्ततिका शील और सदाचार

असंस्कृत नारी

दिन चढ आया किंतु सोती पडी आलसमें, कोई सदा डूबी-सी विषादमें लखाती है।
कोई कलहा है, रूठती है, त्यों कुवेषा नारि, कोई मार सासको ही गेहसे भगाती है॥
कोई कुलटा है, पति-द्रोह ओह कोई करे, निपट निलज्ज कोई नंगी ही नहाती है।
कोई मुँहजोरी कोई चटक चटोरी बड़ी, बन खरचीली धन-धर्म भी गँवाती है॥

गर्व—अभिमान—कोई-कोई स्त्री अपने पति-पुत्रके धन या पद-गौरवका अथवा अपने गहने-कपड़ोंका गर्व—अभिमान वाणी और व्यवहारमें लाकर इतनी रूखी बन जाती है कि घरके लोगों तकको उससे बात करते डर लगता है और अपमान-बोध होता है। ऐसी स्त्री बिना मतलब सबको अपना द्वेषी बना लेती है। अतएव किसी भी वस्तुका गर्व कभी नहीं करना चाहिये।

दिखावा—नारियोंके स्वभावमें प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे यही समझती हैं कि किसी भी चीजको दिखाकर करना चाहिये। कन्या या ननदको कुछ देगी तो उसको पहले सजाकर लोगोंको दिखलायगी, तब देगी। कहीं-कहीं तो दिखाया जाता है ज्यादा और दिया जाता है कम, जिससे कन्या आदिको दुःख भी होता है। इसी प्रकार किसी परिवारके या बाहरके अभावग्रस्त पुरुष या स्त्रीकी कभी कोई सेवा की जाती है तो ऐसा सोचा जाता है कि हमारी सेवाका पता इसको जरूर लग जाना चाहिये। सेवा करे और किसीको कुछ पता भी न चले तो मानो सेवा ही नहीं हुई। सेवा करके जताना, अहसान करना और बदलेमें कृतज्ञता तथा खुशामद प्राप्त करना ही मानो सेवाकी सफलताका निशान समझा जाता है। यह बड़ा दोष है। देना वही सात्त्विक है, जिसको कोई जाने ही नहीं। लेनेवाला भी न जाने तो और भी श्रेष्ठ।

विषाद—कई स्त्रियोंमें यह देखा गया है कि वे दिन-रात विषादमें डूबी रहती हैं। उनके चेहरेपर कभी हँसी नहीं। दुःख-कष्टमें तो ऐसा होना स्वाभाविक है, पर सब तरहके सुख-स्वाच्छन्द्य होनेपर भी स्वभावसे ही हमेशा विषादभरी रहना और किसी बातके पूछते ही झुँझला उठना तो बड़ा भारी दोष है। इसको छोड़कर सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्नता सात्त्विक भाव है। प्रसन्न मनुष्य सबको प्रसन्नताका दान करता है। विषादी और क्रोधी तो विषाद और क्रोध ही बाँटते हैं।

हँसी-मजाक—कई नारियोंमें हँसी-मजाकका दोष होता है। कई तो देवर या ननदोई आदिके साथ गंदी दिल्लगी भी कर बैठती हैं। परिवारके तथा घरमें आने-जानेवाले पुरुषों तथा स्त्रियोंके साथ भी दिल्लगी करती रहती हैं। हँसमुख रहना गुण है। निर्दोष और सीमित विनोद भी बुरा नहीं, परंतु जहाँ हँसी-मजाककी आदत हो जाती है और उसमें ताना, व्यङ्ग्य, कटुता और अश्लीलता आ जाती है, वहाँ उससे बड़ी हानि होती है। स्त्रीको सदा ही मर्यादामें बोलनेवाली और हँसमुखी होनेपर भी गम्भीर होना चाहिये।

वाचालता—बहुत बोलना भी दोष है। इसमें समय नष्ट होता है, व्यर्थचर्चामें असत्य, पर-निन्दा, चुगली आदि भी हो जाते हैं। जबानकी शक्ति नष्ट होती है और घरके कामोंमें नुकसान होता है। गप लड़ानेवाली स्त्रियोंके घर उजड़ा करते हैं। अतएव नारीको समझ-सोचकर सदा हितभरी, मीठी वाणी बोलनी चाहिये और वह भी बहुत ही कम। ज्यादा बोलनेवालीको तो भजन करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती, जो बहुत बड़ी हानि है।

स्वास्थ्यकी लापरवाही तथा कुपथ्य—स्त्रियोंमें यह दोष प्रायः देखा जाता है कि वे स्वास्थ्यकी ओरसे लापरवाह रहती हैं। रोगको दबाती तथा छिपाती हैं और कुपथ्य भी करती रहती हैं। जिन बहुओंको ससुरालमें सासके डरसे रोग छिपाना पड़ता है और रोगकी यन्त्रणा भोगते हुए भी जबरदस्ती बलवान् मजदूरकी तरह दिनभर खटना पड़ता है, उनकी बात दूसरी है। पर जो प्रमादवश या दवा लेने और पथ्यसे रहनेके डरसे रोगको छिपाती हैं, वे तो अपने तथा घरके साथ भी अन्याय करती हैं। साथ ही स्त्रियाँ प्रायः स्वास्थ्य-रक्षाके नियमोंको भी नहीं जानतीं और कुछ जानती हैं तो उनकी परवा नहीं करतीं। ऐसा नहीं करना चाहिये।

मोह—कई स्त्रियाँ मोहवश बच्चोंको अपवित्र वस्तुएँ खिलाती, अपवित्र रखती, जानबूझकर कुपथ्य सेवन कराती, उन्हें झूठ बोलने, नौकरोंके साथ बुरा बर्ताव करने तथा गाली देने और मारनेकी बुरी आदत सिखाती, उनकी चोरी-चमारीकी क्रियाको सहकर उनका वैसा स्वभाव बनाती और पढ़ाने-लिखानेमें प्रमाद करती हैं। साथ ही उन्हें कुछ भी काम न करने देकर और दिन-रात खेल-तमाशों तथा सिनेमा वगैरहमें ले जाकर फिजूलखर्च, आलसी, सदाचाररहित, गंदा, रोगी और बुरे स्वभावका बनाकर उनका भविष्य बिगाड़ती हैं एवं परिणाममें उनको दुःखी बनाकर आप भी दुःखी होती हैं। इस दोषसे सन्ततिका शील और सदाचार

नष्ट हो जाता है और बच्चे कुलदीपकसे कुलनाशक बन जाते हैं। माताओको व्यर्थके मोहसे बचकर बच्चोको—पुत्र तथा कन्या—दोनाको सयमी, धार्मिक, सदाचारी और सद्गुणसम्पन्न बनाना चाहिये, जिससे वे सुखी हो तथा अपने आचरणासे कुलका सिर ऊँचा कर सके।

कुसङ्ग—स्त्रियाको भूलकर भी परनिन्दा करनेवाली, खुशामद करनेवाली, झाड-फूँक और जादू-टोना बतलानवाली, परपुरुपाकी प्रशसा करनेवाली, विलासिनी, अधिक खर्च करनेवाली इधर-उधर भटकनेवाली, कलहकारिणी और कुलटा स्त्रियोका सङ्ग नहीं करना चाहिये। इनका सङ्ग कुसङ्ग है तथा सब प्रकारसे पतनका कारण है।

आलस्य—आलस्य, प्रमाद और निद्रा तमोगुणक स्वरूप हैं। तमागुणसे चित्तमे मलिनता आती है और जीवनम प्रगतिका मार्ग रुक जाता है। अतएव स्त्रियाको सदा सत्कर्मोम लगे रहना चाहिये और आलस्य-प्रमादादिस बचना चाहिये।

व्यभिचार—स्त्रियाके लिये यह सबस बडा दोप है। शरीरसे तो क्या, वाणी और मनसे भी पर-पुरुपका सेवन करना महापाप है। सतीत्वका नाशक है। लोकम निन्दा करानेवाला ओर परलोकको बिगाडनेवाला है। जो नारी ऐसा करती है, उसका मुँह देखना पाप है। उसे लाखा-करोडो बरसातक नरकोकी भीषण यन्त्रणा भोगनी पडती है और तदनन्तर जहाँ जन्म होता है, वहाँ बार-बार भाँति-भाँतिके भीपण दु खा-कष्टाका भार वहन करके जीवनभर रोना पडता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥

यह सब नारियाका दूषण और कुसस्कार है, जिनसे पूरी तरह बचना चाहिये तथा उच्च कोटिक अच्छे सस्काराको स्वीकार करना चाहिये, जिससे जीवन उन्नतिशील बने तथा परम लक्ष्यकी प्राप्ति हो सके।

नारीके उत्तम सस्कार

सौन्दर्य—(१) सुन्दर वर्ण, सुडौल अङ्ग-प्रत्यङ्ग, चाल दृष्टि, भाव-भङ्गी तथा तोड-मरोड आदिम सुहावनापन और वाणीम माधुर्य—यह बाहरी सौन्दर्य है।

(२) क्षमा प्रेम उदारता निरभिमानता विनय, सहिष्णुता समता शान्ति धीरता वीरता परदु खकातरता, सत्य, सेवा, अहिसा ब्रह्मचर्य, शील प्रभुभक्ति आदि सद्गुण तथा सद्भाव—भीतरी सौन्दर्य है।

बाहरी तथा भीतरी—दोना ही सौन्दर्य आवश्यक हैं परतु बाहरीकी अपेक्षा भीतरीका महत्त्व अधिक है। रूपवती नारियाको रूपका गर्व न करके अपने अन्दर सद्गुणा तथा सद्भावाके सौन्दर्यको बढाना चाहिये।

लज्जा—धर्मविरुद्ध शीलके विरुद्ध और समाजकी पवित्र प्रथाआके विरुद्ध कुछ भी करनेम महान् सङ्काच और पुरुप-समाजके ससर्गसे बचनेके लिये होनेवाले दृष्टि-सङ्कोच अङ्ग-सङ्कोच और वाणी-सङ्कोचका नाम लज्जा है। लज्जा नारीका भूपण है और यह शीलभरी आँखामें रहता है। बीमार एव बडोंकी सेवाम तथा कर्तव्यपालनम लज्जाके नामपर तत्पर न हाना लज्जाका दुरुपयाग एव मूर्खता है। साथ ही अबाध पुरुप-ससर्गम नि सङ्कोच जाना-आना लज्जाका निरङ्कुश नाश है, जो नारीके शीलके लिये अत्यन्त घातक है।

विनय—वाणीम, व्यवहारम तथा शरीर-सञ्चालनम गर्व उग्रता, कठोरता तथा टेढेपनका त्याग करके नम्र सरल स्नेहपूर्ण, आदर-भावयुक्त और मधुर होना विनय है। विनयका अर्थ न तो चापलूसी है न कायरता। दुष्टाके दमनमे कठोरता और उग्रता आवश्यक है। पर घर-परिवार तथा ससारके अन्य सभी व्यवहारोम नारीको विनयरूप भूषणको सदैव धारण किये रहना चाहिये।

सयम-तप—शरीर, मन और वाणीको विपयोकी ओरसे यथासाध्य हटाये रखना तथा उनको कभी भी अवैध तथा अकल्याणकारी कार्यम न लगने देनका नाम सयम है। इसीको तप भी कह सकते हैं। गीताम भगवान्ने बतलाया है—(१) देव-द्विज गुरुजन और ज्ञानीजनोंकी पूजा शरीरकी शुद्धि सरलता (शरीरकी सौम्यता) ब्रह्मचर्य (पर-पुरुप अथवा पर-स्त्रीका सर्वथा त्याग एव पति-पत्नीम शास्त्रोक्त सीमित ससग) तथा अहिसा (किसीको

भी चोट न पहुँचाना) यह शारीरिक तप है, (२) किसीको घबराहट न पैदा करे—ऐसी सच्ची, प्रिय और हितकारी वाणी बोलना तथा भगवन्नामका उच्चारण करना एव परमार्थ-ग्रन्थाको पढना—यह वाणीका तप है और (३) मनकी प्रसन्नता, मनकी सौम्यता मनका मौन (अन्य चिन्तनसे रहित केवल भगवच्चिन्तनपरायण होना), मनका वशमें रहना और मनका पवित्र भावासे युक्त रहना—यह मनका तप है। शरीर, वचन और मनसे होनेवाली तमाम कुप्रवृत्तियासे उनको हटाकर इन सत्प्रवृत्तियोमे लगाये रखना ही सयम है।

सतोष—परस्त्रीकातरता, असहिष्णुता लोभ और तृष्णाके वशम न होकर भगवान्की दी हुई अपनी स्थितिम सन्तुष्ट रहना 'सतोष' है। सतोषसे चित्तकी जलन मिटती है, द्वेष-विषाद और क्रोधसे रक्षा होती है एव परम सुखकी प्राप्ति होती है।

क्षमा—अपना अहित करनेवालेके व्यवहारको सह लेना अक्रोध है और उसको अपने तथा दूसरे किसीके द्वारा भी बदलेमे दु ख न मिले एव उसकी बुद्धि सुधर जाय इस प्रकारके सद्भावका नाम 'क्षमा' है। अक्रोध अक्रिय है, क्षमा सक्रिय। क्षमा कायरोका नहीं, वर वीराका धर्म है।

धीरता-वीरता—दु ख, विपत्ति कष्ट और भयके समय भगवान्के मङ्गलमय विधानपर भरोसा रखकर तथा 'विपत्ति सदा नहीं रहती। बादल आते हैं, आकाश काला हो जाता है फिर बादल हटते हैं और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है।' इस प्रकार समझकर अपने कर्तव्यका पालन करते हुए मैदानमे डटे रहना 'धीरता' है और इसीके साथ-साथ विरोधी शक्तियोको निर्मूल करनेका साहस तथा बुद्धिमानीसे युक्त प्रयत्न करना 'वीरता' है।

गम्भीरता—समझकर, मधुर, थोडे शब्दाम बोलना व्यर्थ न बोलना, हँसी-मजाक न करना, विवाद न करना चपलता-चञ्चलता न करना, प्रत्येक कार्यको खूब सोच-विचारकर दृढ निश्चयके साथ करना, शान्त और शिष्ट व्यवहार करना झगडे-टटेम न पडना जरा-सी विपत्ति या घरमे कोई काम आ पडनेपर विचलित न हो जाना गम्भीरता है। गम्भीर स्त्रीका तेज सब मानते हैं तथा उसका आदर करते हैं और वह भी बहुत-सी व्यर्थकी कठिनाइयासे बच जाती है।

समता—सबम एक ही आत्मा है अथवा प्राणिमात्र सब एक ही प्रभुकी अभिव्यक्ति या सतान हैं, यह समझकर मनमे सबके प्रति समान भाव रखना, सबके दु खको अपना दु ख समझना सबके हितमे अपना हित मानना—समता है। व्यवहारमे तो प्रसङ्गानुसार कहीं-कहीं विषमता करनी पडती है, जो अनिवार्य है, पर मनम आत्मदृष्टि अथवा परमात्मदृष्टिसे सबमे समता रखनी चाहिये। विषमता इस रूपमे हो तो वह गुण है—जैसे अपने तथा अपनी सतानके हिस्सेमे कम परिमाणमे, कम सख्याम और अपेक्षाकृत घटिया चीज ली जाय, और अपने देवर-ननद एव जेठानी-देवराना तथा उनकी सतानके हिस्सेमें अधिक परिमाण, अधिक सख्यामे और अपेक्षाकृत बढिया चीजे प्रसन्नतापूर्वक दी जायँ।

सहिष्णुता—दु ख, कष्ट और प्रतिकूलताके सहन करनेका नाम सहिष्णुता है। यह नारी-जातिका स्वाभाविक गुण है। नारी पुरुषकी अपेक्षा बहुत अधिक सहती है और सहनेकी शक्ति रखती है। साधारणत सहिष्णुता गुणकी तुलना वृक्षाके साथ की जाती है। **'तरुणेव सहिष्णुना।'** लोग पत्थर मारते हैं तो वृक्ष सुन्दर, सुपक्व, मधुर फल देता है, लोग काटकर जलाते हैं तो वह स्वय जलकर उनका यज्ञकार्य सम्पादन कराता है भोजन पकाता है और शीतस ठिठुरते हुए शरीरमे गर्मी पहुँचाकर जीवनदान देता है। वृक्ष फलवान् बनता भी है अनेक आँधी-पानी, बिजली आदि बाधा-विपत्तियोको झेलकर। यदि किसी नारीको प्रतिकूल भावाके पति और सास प्राप्त हुए हा ता उसे सहिष्णु बनकर प्रेमके द्वारा उनको सन्मार्गपर लाना चाहिय। सहना, कलह न करके प्रेम करना, प्रतिवाद न करके सेवा करना—ऐसा अमोघ मन्त्र है कि इससे शीघ्र ही अशान्तिसे भरा उजडता हुआ घर पुन बस जाता है और उसमे शान्ति तथा सुखकी लहरे उछलने लगती हैं।

सुव्यवस्था तथा सफाई—घरकी वस्तुएँ, आवश्यक सामग्री तथा कार्योंको सुशृङ्खलाबद्ध रखनेका नाम सुव्यवस्था है। नारी घरकी लक्ष्मी है, घरके सौन्दर्य एव ऐश्वर्यकी देवी

संस्कृत नारी
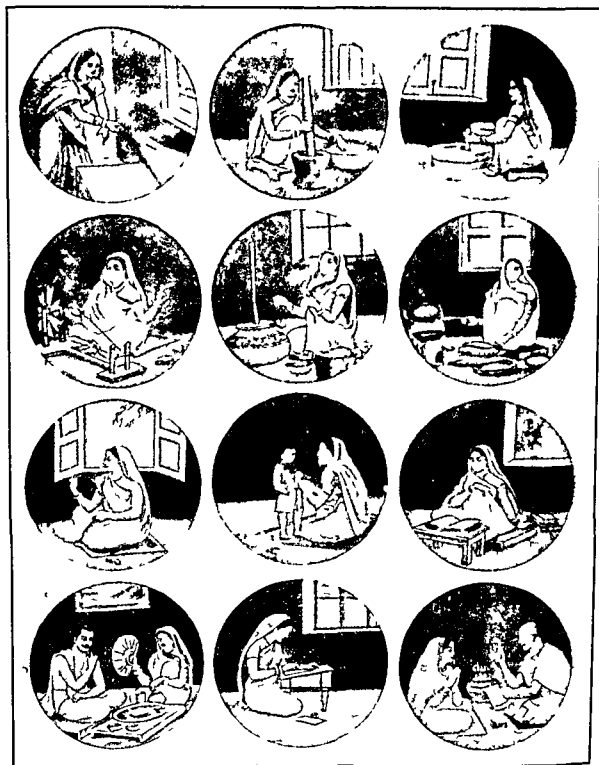
स्वच्छ रखती है घर-द्वारको बुहार सदा, धान कूट लेती औ चाकी भी चलाती है।
सूत कातती है और माखन बिलोती घर, भोजन विशुद्ध निज हाथसे बनाती है॥
करती सिलाई है, लड़ाती लाड़ लाड़लेको, पाठ करती है, निज पतिको जिमाती है।
आय और व्ययका हिसाब लिखती है हरि-गाथा सुनती है पुण्यजीवन बिताती है॥

है। सुव्यवस्थाके बिना घरम लक्ष्मीका स्वरूप बिगड जाता है। इधर-उधर बेतरतीब बिखरी चीज, कूड-कर्कटसे भरा आँगन, मकडीके जालासे छायी दीवारे, कपडे तथा बरतन आदिका मैलापन, खाजनेपर घटातक जरूरी चीजोका नहीं मिलना आवश्यकता होनेपर इधर-उधर दौड-धूप करना, झुँझलाना और दूसरोपर दोषारोपण करना, हिसाब-किताबका पता नहीं—ये सब अव्यवस्थाक रूप हैं। इनसे घर बरबाद होता है और तकलीफ तो कभी मिटती ही नहीं। थोडी-सी सावधानी रखके नियत स्थानपर प्रत्येक वस्तु सम्हालकर रखी जाय, घर-दीवाराको झाड-बुहार लिया जाय और कपडे-बरतन आदिको धो-माँजकर साफ रखा जाय, तो सहज ही सुव्यवस्था हो सकती है। आवश्यकता होते ही चीज मिल जाती है। न समय व्यर्थ जाता है, न झुँझलाहट और न किसीपर दोष लगानेकी नौबत आती है। गदगी तथा कूडा-कर्कट न रहनेसे रोग तथा रोगके कीटाणु भी नहीं पैदा होते और व्यर्थकी सारी तकलीफ भी मिट जाती हैं।

श्रमशीलता—नारी घरमे रहती है, उसके स्वास्थ्यके लिये घरक काम ही सुन्दर व्यायाम हैं। जो नारी शारीरिक परिश्रम करती है आलस्य तो उसके पास फटकता ही नहीं, रोग तथा बुढापा भी उससे दूर-दूर ही रहते हैं। खाया हुआ भोजन हजम होता है। रक्तम शक्ति तथा शुद्धि होती है। मन प्रफुल्लित रहता है। आजकल कुछ नारियाँ कहती हैं कि 'घरम पैसा है नौकर-नौकरानियाँ काम कर सकती हैं, फिर हम मेहनत क्या कर?' पर यह बडी भूल है। नौकर-नौकरानियाँ काम कर देगी, पर आपका खाया हुआ व कैस पचा दगी? आपको स्वस्थ तथा शुद्ध रक्त वे कहाँसे दगी? फिर बिना सम्हालके नौकरोसे कराये हुए काम भी तो ठीक नहीं होते। चोरी शुरू होती है। खर्च बढता है। और सबसे बडी हानि यह होती है—घरमे आलस्य और रोगाकी उत्पत्ति होती है। नौकर रहनेपर भी घरकी सफाई, आटा पीसना चर्खा कातना दही बिलोना रसोई बनाना आदि काम ता हाथस करनेमे ही सब तरहका लाभ है। भोजनमे भावक अनुसार अमृत भी हो सकता है और विष भी। माता तथा पत्नीकी बनायी रसोईमें अमृत होगा। खर्च भी बचेगा और विशुद्धि भी रहेगी। चक्की चलानेवाली स्त्रियाको रजसम्बन्धी रोग बहुत कम होते हैं। खेतोमे काम करनवाली नारियाँ बहुत कम बीमार होती है। अतएव नारीको शारीरिक परिश्रम अवश्य करना चाहिये।

निरभिमानता—रूप धन, पुत्र, विद्या, बुद्धि तथा अधिकार आदिका गर्व न करना और सबके साथ नम्रता तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार करना निरभिमानता है। स्त्रियोम गर्व बहुत जल्दी आता है और वे उसके आवेशमे गाँव और पडोसियाका तथा नौकर-चाकरोका ही नहीं, आत्मीय स्वजनाका—यहाँतक कि सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि गुरुजनाका तथा कन्या-जामाता, पुत्र-पुत्रवधू आदिका भी तिरस्कार कर बैठती हैं, जिसके परिणामस्वरूप जीवनभरके क्लेश पैदा हो जाते है। इसलिये सदा-सर्वदा सावधानीसे निरभिमानताका अत्यन्त विनम्र बर्ताव करना चाहिये। नम्र व्यवहारसे वैरी भी मित्र हो जात हैं और कठोर व्यवहारसे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

मितव्ययिता—सीमित खर्च करनेको 'मितव्ययिता' कहते है। मितव्ययिता केवल रुपये-पैसोकी ही नहीं, घरकी वस्तुमात्रको ही समझदारीके साथ यथासम्भव कम खर्च करना चाहिये। कम आमदनीवाले गृहस्थको सम्भव हो तो आमदनीका तीसरा या चौथा हिस्सा आकस्मिक विपदापद्के समय खर्चके तथा बच्चाके ब्याह-शादीके लिय जमा रखना चाहिये। जिनक पास बहुत पैसा तथा बहुत आमदनी है, उनको भी व्यर्थ व्यय नहीं करना चाहिये। इससे आदत बिगडती है जो कभी पैसा न रहा ता बहुत दु खदायी होती है एव व्यर्थ अधिक व्यय हो जानके कारण धर्म तथा लोकसवाके आवश्यक कार्यम खरचनेकी प्रवृत्ति घट जाती है, जो मनुष्यकी एक उच्च वृत्तिका नाश करनेवाली होनेक कारण सबसे बडी हानि है। स्त्रियाम फिजूलखर्चीका दोष प्राय अधिक होता है। थोडी आमदनीवाले पति-पुत्र तो बचारे तग आ जाते हैं। घरम सदा अशान्ति रहती है। नारियाँ यदि चाहे तो सहज ही मनका सयम करके कम खर्चकी आदत डालकर घरमे पति-पुत्रोको सुख-शान्ति आदतका सुधार तथा धर्म-पुण्यके लिये सुअवसर प्रदान कर सकती हैं।

उदारता—जिस प्रकार फिजूलखर्ची दोष है उसी

प्रकार पैसा होनेपर भी आवश्यक धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमे कजूसी करना भी दोष है। बच्चोकी बीमारीमे, उनके लिये दूध-फल आदिमे, श्राद्धादि धार्मिक कृत्योमे, भगवान्‌की पूजा तथा पर्वोत्सवोम, गो-ब्राह्मण तथा देवसेवामे, बेटी-बहिनको देनेमे, बच्चाकी शिक्षा-दीक्षामे, सास-ससुरकी सेवाम, परिवारके अन्य लोगाकी सेवाम, विधवा तथा आश्रितोके सत्कारपूर्ण भरण-पोषणमे, गरीबाकी सेवामे तथा अपने स्वास्थ्यके लिये भोजन-औषध आदिम जो नारी कजूसी करती है और पैसा बटोरकर रखना चाहती है, उसका अपना नैतिक पतन तो होता ही है, उसके आदर्शसे उसके बाल-बच्चे भी बुरी शिक्षा ग्रहण करके पतित हो जाते हैं। अतएव आवश्यक कामामे कजूसी न करके उदारता बरते। किसीकी सहायता-सेवा करके न अभिमान करे, न अहसान करे और न उसका बदला चाहे।

परदु ख-कातरता—दूसरेको दु खम पडे देखकर बिना किसी भेद-भाव या पक्षपातके उसका दु ख दूर करनेके लिये मनमे जो तीव्र भावना उत्पन्न होती है, उसका नाम 'परदु ख-कातरता' है। इसीको दया भी कहते हैं। नारीम इस गुणका विशेष विकास हो और दु खी प्राणियाका दु खहरण करनेके लिये वह माँ अन्नपूर्णा बन जाय यह बहुत ही आवश्यक है।

सेवा-शुश्रूषा—१-पतिकी सेवा २-सास-ससुरकी सेवा ३-बच्चाकी सेवा ४-अतिथिसेवा ५-देवसेवा ६-देशसेवा और ७-रोगियोकी तथा पीडिताकी सेवा—ये सभी सेवाके अङ्ग हैं। नारीम सेवा-भाव स्वाभाविक होता है, पर उसे सेवा करनी चाहिये केवल पतिसेवाके लिये या परमपति परमात्मा प्रभुकी सेवाक लिये ही। सवामे उसका अन्य उद्देश्य नहीं होना चाहिये। सेवा वशीकरण मन्त्र है। सेवासे सभीको वशमे किया जा सकता है। असलमे जीवन सेवामय ही होना चाहिये। जैसे धनम ईर्ष्या होती है, वैसे ही शुद्ध सेवाम भी सबसे आगे बढनेकी ईर्ष्या तथा सेवाका अधिक-से-अधिक सुअवसर प्राप्त करनेकी तीव्र अभिलाषा एव भगवान्‌से प्रार्थना होनी चाहिये। सेवा शुद्ध सेवाके भावसे ही होनी चाहिये। न तो सेवाम किसीका उपकार करनेका अभिमान होना चाहिये न सेवाका विज्ञापन करनेकी कल्पना और न सेवाके बदलमे कुछ पानेकी आकाङ्क्षा ही। सेवा करनेपर जो गर्वहीन सहज आत्मसताप होता है, वही परम धन है। सेवाके सक्षिप्त प्रकार ये हैं—

(१) तन-मन—सर्वस्व अर्पण करके सब प्रकारसे पतिको सुख पहुँचाने एव उन्ह प्रसन्न करनेके लिये तथा उनका सदा-सर्वदा सर्वत्र कल्याण हो इस कामनासे उनकी हर तरहकी सेवा करे।

(२) सास-ससुरकी सेवा करनेका सुअवसर मिला है, इसमे अपना सौभाग्य मानकर और वे सेवा स्वीकार करते हैं, इसलिये उनका उपकार मानकर मधुर, आदरयुक्त वाणीसे उनकी रुचि तथा पसन्दक अनुसार भोजन वस्त्र, आज्ञापालन, उनके इच्छानुसार धर्मकार्य-सम्पादन या दान आदिके द्वारा सासके, और वृद्ध हा तो ससुरके भी चरण दबाकर रोगादिकी अवस्थामे उनकी हर तरहकी सेवा करके, उनके मतानुसार उनकी कन्याआको, जो ननद लगती हैं, सम्मानपूर्वक देकर, बल्कि वे कम कहें और अपनी हैसियत अधिक देनेकी हो तो प्रार्थना करके उनसे आज्ञा प्राप्त करके उन्हे अधिक देना चाहिये। इसम वे प्रसन्न ही होगे। उन्ह रामायण, भागवत गीता भगवन्नाम कीर्तनादि सुनाकर उनको सुख पहुँचाये।

(३) बच्चोका स्वास्थ्य सुधरे, वे तन-मनसे विकसित हा उनकी बुद्धिका विकास हो, उनके आचरणोमे स्फूर्तियुक्त सात्त्विक गुणाका प्रकाश हो, वे कुल, जाति देश तथा धर्मका गौरव बढानेवाले, सुशिक्षित तथा सदाचारी हो एव त्यागकी पवित्र भावनासे युक्त ईश्वरभक्त हो—इस प्रकारसे उनका लालन-पालन, शिक्षण-सवर्धन आदि करे।

(४) अतिथिको भगवान् समझकर उनकी यथाशक्ति तथा यथाविधि निर्दोष तथा निष्काम सेवा करे।

(५) घरमे इष्टदेवकी धातु अथवा पाषाणकी या चित्रमयी मूर्ति रखकर श्रद्धा तथा विधिपूर्वक भक्तिके साथ उसकी नित्य विविध उपचारोसे पूजा करे।

(६) देशकी सेवाके लिये उत्तम-से-उत्तम सतान निर्माण करे और उसे अपने-अपने कर्तव्यके द्वारा देशसेवाके रूपमे भगवान्‌की सेवाका सक्रिय पाठ सिखाये। देशकी नारियोमे अपने आदर्श सदाचार पातिव्रत्य तथा धर्मभावनाके

द्वारा सत्-शिक्षा और सद्भावनाका विस्तार करे।

(७) घरमे तथा अवसर आनेपर आवश्यकता और अपनी सुविधाके अनुसार रोगियो और पीडितोकी तन-मन-वचन तथा धनसे निर्दोष और निष्काम सेवा आदर तथा सत्कारपूर्वक करे। कभी सेवाका अभिमान न करे, न एहसान जनाये।

सयुक्त परिवार—जहाँतक हो, सहनशीलता तथा उदारताके साथ विनम्र व्यवहार करके घरको सयुक्त रखे। भाइयाको तथा परिवारको पृथक्-पृथक् न होने दे। पता नहीं, किसके भाग्यसे सुख तथा ऐश्वर्य मिलता है। कभी ऐसा न समझे कि मेरा पति या पुत्र कमाता है और दूसरे सब मुफ्तमे खाते हैं। सबका हिस्सा है और सब अपने-अपने भाग्यका ही खाते हैं। तुम जो इसमे निमित्त बन रही हो यह तुम्हारा सौभाग्य है। नारियापर यह एक कलङ्क है कि उनके आते ही सहोदर भाइयामे विद्वेप हो जाता है, घरमे फूट पड जाती है और फलत घर बर्बाद हो जाता है। इस कलङ्कको धोना चाहिये और पति-पुत्रोको समझाकर यथासाध्य सयुक्त परिवार तथा सयुक्त भोजन रहे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। सेवाभाव तथा प्रेम जितना ही अधिक होगा उतना ही त्याग अधिक होगा। प्रेमकी भित्ति त्याग है। जहाँ प्रेम होगा, वहाँ पृथक् होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

भक्ति—जीवनके प्रत्येक कर्मके द्वारा भगवान्‌की सेवा करना, मनके प्रत्येक सङ्कल्पके द्वारा प्रभुका चिन्तन, प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण, प्रभुको प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा—ये भक्तिके मुख्य रूप हैं। इसके विभिन्न विधान हैं। उनको जानकर यथासाध्य प्रतिदिन नियमितरूपसे भगवान्‌के नामका जप, चिन्तन, उनकी लीलाकथाओका वाचन-श्रवण-मनन, उनके दिव्य स्वरूपका ध्यान, उनकी आज्ञाओका पालन एव उनकी वाणी श्रीमद्भगवद्गीता तथा उनके पवित्र चरित्र श्रीरामायण तथा भागवतका अध्ययन करना चाहिये।

सादगी—तनमे, मनमे तथा वचनमे, कहीं भी दिखावट, दम्भ, बाहरी शृङ्गार शौकीनी कुटिलता नहीं हो। भडकीले, चमकीले तथा विदेशी ढगके वस्त्रादि, गहने तथा सेट वगैरह, जिनसे लोगाका आकर्षण होता हो, न हो। सभी वस्तुओमे सादगी और सिधाई हो।

सतीत्व—यह नारीका प्रधान गुण है, जिसके कारण ही भारतकी नारियाँ पूज्य कही जाती हैं। सीता, सावित्री, अनसूयाप्रभृति सती नारियाके उदाहरणासे इस देशका इतिहास भरा पडा है। यही नारीजीवनकी सार्थकता है।

वर्धापन (जन्मोत्सव)-संस्कार

(श्रीआशुतोषजी शास्त्री साहित्यरत्न कर्मकाण्ड चूडामणि)

भारतीय सनातनधर्ममे मानव-जीवनको पवित्र एव उत्कृष्ट बनानेके लिये विविध सस्काराके विधान किये गये हैं। मनुष्यका जीवन दीर्घायु एव सुखमय हो, इसके लिये भारतीय शास्त्रामे प्रत्येक वर्ष जन्मतिथिको वर्धापन-सस्कारका विधान किया गया है। भारतीय वर्धापन-सस्कार कितना सुरुचिपूर्ण स्वास्थ्यवर्द्धक, आयुविवर्द्धक एव समृद्धिदायक है, इसका परिचय अग्राङ्कित विवरणासे स्पष्ट हो जाता है—

भारतीय सनातनधर्ममे मनुष्यके जन्मके अनन्तर पहले वर्ष प्रत्येक मासमें जन्मतिथि*को अखण्ड दीप प्रज्वलितपूर्वक जन्मोत्सव मनानेका विधान है। प्रथम वर्ष व्यतीत होनेके उपरान्त प्रत्येक वर्ष (जन्ममासमें पडनेवाली) जन्मतिथिका जन्मोत्सव मनाया जाता है।

इस दिन सर्वप्रथम शरीरमे तिलका उबटन लगाकर

* विक्रमी सवत् (चान्द्रमास)-के अनुसार जन्मतिथि ग्राह्य होगा। यदि तिथि दो मिलती हो तो जिस तिथिको जन्मनक्षत्रका सयोग हो उसे लिया जायगा। यदि दो दिनोमें जन्म-नक्षत्रका योग हो तो जिस दिन औदयिक दो मुहूर्तसे अधिक हो वह ग्राह्य होगा अन्यथा दो मुहूर्तसे कम होनेपर पूर्व दिन ग्राह्य होगा। यदि जन्म-मासका अधिकमास आ गया हो तो शुद्धमासमें वर्धापन मनाया जाता है न कि अधिकमासमें—

स च वर्षपर्यन्त प्रतिमास जन्मतिथौ कार्य । वर्षोत्तर प्रत्यब्द जन्मतिथौ कार्य । तिथिद्वैधे यत्र जन्मर्भयाग सा ग्राह्या। दिनद्वये जन्मनक्षत्र-योगसत्त्वासत्त्वयोरौदयिकी द्विमुहूर्ताधिका ग्राह्या। द्विमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा। जन्ममासाधिमासत्वे शुद्धे मासे प्रत्याब्दिकवद्वर्धापनविधिर्न त्वधिके।

तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नूतन वस्त्र धारण करके आसनपर बैठकर तिलक लगाये और गुरुकी पूजा करके अक्षतपुञ्जोंपर निम्नलिखित प्रकारसे देवताओंका आवाहन तथा प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा करनी चाहिये—

सर्वप्रथम '**कुलदेवतायै नमः**' इस मन्त्रसे कुलदेवताका आवाहन एवं पूजन करे।

कुलदेवताका आवाहन करनेके पश्चात् जन्म-नक्षत्र, माता-पिता,[१] प्रजापति, सूर्य, गणेश, मार्कण्डेय, व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान्, विभीषण एवं षष्ठीदेवीका अक्षतपुञ्जोंपर नाममन्त्रसे आवाहन करके उनकी पूजा करनी चाहिये।[२] तत्पश्चात् मार्कण्डेयजीको श्वेत तिल और गुडमिश्रित दूध तथा षष्ठीदेवीको[३] दही-भातका नैवेद्य अर्पित करे।

उपर्युक्त देवताओंका पूजन करके *निम्नलिखित मन्त्रोंसे* कल्प-कल्पान्तजीवी महामुनि मार्कण्डेयजीसे दीर्घ आयु तथा आरोग्यकी प्राप्तिकी प्रार्थना करनी चाहिये—

आयुष्प्रद महाभाग सोमवंशसमुद्भव।
महातपो मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नमोऽस्तु ते॥
चिरञ्जीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने।
रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रियायुक्तश्च सर्वदा॥
मार्कण्डेय नमस्तेऽस्तु सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने॥
चिरञ्जीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरो द्विज।
कुरुष्व *मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्॥*
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं अस्माकं वरदो भव॥

—इन मन्त्रोंका भाव यह है—सोमवंशमें प्रादुर्भूत आयु प्रदान करनेवाले महान् तपस्वी महाभाग! मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी! आपको नमस्कार है। हे मुने! जैसे आप चिरञ्जीवी हैं, वैसे ही मैं भी चिरञ्जीवी होऊँ और उत्तम रूप, सम्पत्ति तथा लक्ष्मीसे सदा सम्पन्न रहूँ। सात कल्पांतक जीवित रहनेवाले हे मार्कण्डयजी! आपको नमस्कार है। हे मुने! हे भगवन्! आयु तथा आरोग्य प्रदान करनेके लिये आप प्रसन्न होइये। हे द्विज! जिस प्रकार आप चिरञ्जीवी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, वैसे ही हे मुनिशार्दूल! आप मुझे भी चिरञ्जीवी बनाइये। सात कल्पान्ततक जीवित रहनेवाले हे महाभाग मार्कण्डेयजी! आयु तथा आरोग्यकी सिद्धिके लिये आप हमें वर प्रदान करनेवाले होइये।

इसी प्रकार अश्वत्थामा आदि सात चिरजीवियोंका भी निम्न मन्त्रसे प्रार्थनापूर्वक स्मरण करना चाहिये इससे अपमृत्यु दूर होती है और दीर्घायु प्राप्त होती है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः *परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥*
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

साथ ही षष्ठीदेवीकी प्रार्थना भी करे। देवी षष्ठी बालकोंका लालन-पालन तथा रक्षा करनेवाली हैं। जन्मके छठे दिन षष्ठी-महोत्सव मनाया जाता है, जिसमें उनका विशेष पूजन होता है। प्रार्थनाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठिदेवते॥
***त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि* चराणि च।**
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥

हे देवि! आपकी जय हो, हे जगज्जननी! आप समस्त जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाली हैं, हे कल्याणि! आप मुझपर प्रसन्न हों, हे षष्ठीदेवि! आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंमें जितने भी चराचर प्राणी हैं, वे सभी ब्रह्मा, विष्णु

१ यदि माता-पिता जीवित हों तो देवपूजनके लिये आसनपर बैठनेसे पूर्व ही उनके चरणस्पर्श करके आशीर्वाद ले लेना चाहिये।

२ आयुरभिवृद्ध्यर्थं वर्षवृद्धिकर्म करिष्ये इति सङ्कल्प्य तिलोद्वर्तनपूर्वकं तिलोदकेन स्नात्वा कृततिलकादिविधिर्गुरुं सम्पूज्य अक्षतपुञ्जेषु देवताः पूजयेत्। तत्रादौ कुलदेवतायै नमः इति कुलदेवतामावाह्य जन्मनक्षत्रं पितरौ प्रजापतिं भानुं विघ्नेशं मार्कण्डेयं व्यासं जामदग्न्यं राममश्वत्थामानं कृपं बलिं प्रह्लादं हनूमन्तं विभीषणं षष्ठीं च नाम्नैवावाह्य पूजयेत्। षष्ठ्यै दधिभक्तनैवेद्यं ०। (धर्मसिन्धु, तृ०पू०)

३ काशीमें चौसट्टीघाटपर चतुष्षष्टीदेवीके मन्दिरके समीप पूर्व दिशामें षष्ठीदेवीका प्रसिद्ध मन्दिर है। जहाँ शिशुके जन्मके छठे दिन दर्शन पूजन किया जाता है।

तथा शङ्करके साथ मरी रक्षा कर।

अन्तमे निम्नलिखित मन्त्र पढते हुए मार्कण्डेयजीको निवेदित श्वेत तिल एव गुडमिश्रित दूधको आधी अञ्जलि भरकर जिसका वर्धापन-सस्कार हा रहा हो, उसे पीना चाहिये। इससे महामुनि मार्कण्डयजीकी कृपासे आयुकी वृद्धि होती है—

सतिल गुडसम्मिश्रमञ्जल्यर्धमित पय ।
मार्कण्डेयाद्वर लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये॥

कहीं-कहीं पूजित १६ देवताओके नामसे प्रत्येकक लिये २८की सख्यामे तिलका होम करनेका विधान भी किया गया है।[१]

कर्मकी पूर्णतापर बालकको रक्षाके लिये प्रतिष्ठित रक्षा-पोटलिका (अथवा रक्षासूत्र) भी उसे बाँधा जाता है। पूजन एव प्रार्थनाके अनन्तर आवाहित देवोका विसर्जन करना चाहिये।

इसके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराकर सम्बन्धियो और इष्ट-मित्रोके साथ स्वय भी भोजन करना चाहिये।

वार्षिक वर्धापन-सस्कारके ये नियम धर्मसिन्धुके अनुसार यहाँ सक्षेपमे बताये गये हैं। षष्ठीपूर्ति (६०व जन्मदिन) एव सहस्रचन्द्रदर्शन (८०वे जन्मदिन)-पर विशिष्ट नियम हैं। इन विशिष्ट नियमामे गणपतिपूजन, कलशपूजन पुण्याहवाचन, षोडशमातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध, नवग्रहपूजन, हवन, शान्तिकर्म, आयुसख्याके ग्रन्थिबन्धन एव दीपप्रज्वलन आदि कर्म भी सम्मिलित है।

भारतीय दर्शनमे जन्मोत्सव-सस्कार आयुष्यवृद्धिके लिये किया जाता है। अत जन्मदिनपर आयुवृद्धजना जैसे हनुमदादि कल्पान्तजीवियो एव सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेय ऋषिकी पूजा की जाती है। उसी प्रकार प्रत्यक्षरूपसे जीवित अपनी आयुसे बडे लोगोका भी अभिवादन करके उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है। यही वर्धापन-सस्कारका प्रधान तत्त्व है। वर्धापन-सस्कारके दिन निम्नलिखित नियमोका अनुपालन किया जाना चाहिये[२]—

१-नखो एव केशोको नहीं कटवाना चाहिये। दाढी नहीं बनानी चाहिये।

२-स्त्रीससर्ग (मैथुन) और अधिक भागदौड नहीं करनी चाहिये।

३-आमिषभक्षण (सामिष भाजन) नहीं करना चाहिये।

४-व्यर्थ कलह एव हिसा नहीं करनी चाहिये।

५-गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिये।

६-बडोको प्रणाम करना चाहिये।

इस प्रकार भारतीय सनातनधर्ममे विहित वर्धापन-सस्कार एक सर्वाङ्गपूर्ण जन्मोत्सव-विधि है, जिसे विधिपूर्वक करनेसे आयु एव आरोग्यकी वृद्धि होती है समृद्धि प्राप्त होती है तथा देवताओ, ऋषियो एव माता-पिताका आशीर्वाद प्राप्त होता है।

वर्तमानमें चल पडी केक काटकर 'हैप्पी बर्थ-ड टू यू' कहनेकी प्रणाली पाश्चात्त्य-अनुकरणका प्रभाव है—यह विडम्बना ही है। इससे सर्वथा बचते हुए भारतीय सनातन आराधना-पद्धतिका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा मङ्गल कम, अमङ्गलकी अधिक आशङ्का है।

~~ ० ~~

अमृत-कण

मनुष्य-जीवनका समय बहुत मूल्यवान् है। यह बार-बार नहीं मिल सकता। इसलिये इसे उत्तरोत्तर भजन-ध्यानमे लगाना चाहिये। मृत्यु किसीको सूचना देकर नहीं आती, अचानक ही आ जाती है। यदि भगवान्के स्मरणक बिना ही मृत्यु हो गयी तो यह जन्म व्यर्थ ही गया। मृत्यु कब आ जाय, इसका कोई भरोसा नहीं। अत भगवान्के स्मरणका काम कभी भूलना नहीं चाहिये। मनुष्यको विचार करना चाहिये कि मै कौन हूँ, क्या कर रहा हूँ और किस काममे मुझे समय बिताना चाहिये। बुद्धिसे विचार कर वास्तवमे जिसम अपना परम हित हो, वही काम करना चाहिये।

~~ ० ~~

१ क्वचित् पूजितषोडशदेवताभ्यो नाम्ना प्रत्येकमष्टाविंशतिसख्यतिलहोम उक्त । ततो विप्रभोजनम्। (धर्मसिन्धु, तृ०पू०)

२ खण्डन नखकेशाना मैथुनाध्वगमौ तथा। आमिष कलह हिंसा वर्षवृद्धौ विवर्जयत्॥
मृते जन्मनि सक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा। अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा॥ (धर्मसिन्धु, तृ०पू०)

'हैप्पी बर्थ-डे टू यू'

(डॉ० श्रीभानुशकरजी मेहता)

मेरे एक मित्र हैं भुजबल सिह। सरकारमे ऊँचे अधिकारी हैं। समाजमे अच्छी प्रतिष्ठा है। एक लडका और एक लडकी है, दोनो अग्रेजी माध्यमके प्रतिष्ठित कान्वेण्ट स्कूलमे पढते हैं। पत्नी पढी-लिखी आधुनिका हैं। विवाहपूर्व अग्रेजी स्कूलमे अध्यापिका थीं, अब सुदक्ष गृहिणी हैं बहुधा 'किटीपार्टी' मे जाती हैं। कॉलोनीके आभिजात्य वर्गमे उनकी अच्छी जान-पहचान है। माने इनका एक सुखी आधुनिक आभिजात्य परिवार है।

भुजबल बचपनमे मेरे सहपाठी थे और अभी भी बहुत मानते हैं। लोग प्राय कहते हैं इनकी 'कृष्ण-सुदामा-मिताई' है। कहाँ वे नौकर-चाकर मोटर-बँगलेवाले अफसर और कहाँ मैं हिन्दी माध्यमकी प्राइमरी पाठशालाका अध्यापक। फिर भी उनका पत्र मिला—'तुम्हारे भतीजेका बर्थ-डे है, कल शाम तुम्हे आना ही है।' बक्सेमे सँभालकर रखी धुली धोती और खादीका कुर्ता पहनकर उनके यहाँ गया। अच्छी-खासी भीड थी, खूब सजावट थी। रग-बिरगे गुब्बाराके बीच अग्रेजीमे रगीन पट्टियोसे जन्मदिनकी बधाईके वाक्य लिखे थे।

भुजबलने प्रेमसे स्वागत किया। फिर पुत्रको बुलाया—'टिक्कू, ये तुम्हारे अकल हैं नमस्ते करो।' मैंने आशीर्वाद दिया और एक पेन्सिल भेट की। टिक्कूजीने उपेक्षा भावसे स्वीकार कर ली। भुजबल बाले—'अरे, थैंक्यू तो कहो?' बेचारेको कहना पडा 'थैंक्यू अकल।' मुझे लगा—कह रहा है 'कम अकल'। पूछा 'कितने सालके हुए?' भुजबल बाले 'ग्यारह पूरा करके बारहमे इण्टर कर रहे हैं।' तभी टिक्कू बोल उठे—'नो पापा आई हैव कम्प्लीटड इलेविन नॉट गियारह।' भुजबल थोडा अचकचाये बोले—'ठीक है, ठीक है मीन्स सेम थिग गो गेट बिजी।' तभी घोषणा हुई (अग्रेजीमें) कि सब लाग सटर टेबुलके पास आ जायँ। टेबुलपर एक बडी-सी सुन्दर केक रखी थी और उसपर ग्यारह मामबत्तियाँ लगी थीं जो जल रही थीं। पासमे एक चाकू भी रखा था। 'ममी' के साथ टिक्कू आये। एक जारकी फूँक मारकर सब मामबत्तियाँ बुझा दीं जोरदार तालियाँ बजीं। ममीने सहायता की और टिक्कूजाने उस चाकू (नाइफ)-से केकको एक ओर काट दिया। ममीने काटकर एक टुकडा उनके मुखमे दिया, तालियाँ बजीं और समवेत स्वरमे सब गा उठे—'हैप्पी बर्थ-डे टू यू'। केक बँटने लगी और सब लोग खानेकी टेबुलकी ओर लपक लिये। बकौल स्व० प० श्रीनारायण चतुर्वेदी 'भैय्या साहब' गिद्ध-भोज आरम्भ हो गया।

भुजबल जानते हैं मैं बाहर कहीं खाता-पीता नहीं पर बडे प्रेमसे कुछ फल और मिठाइयाँ लाये। फिर बाले—खाओ यार मेरे बेटेको आशीर्वाद दो कि मुझसे भी बडा अफसर बने। इस वर्ष सेवेन्थमे गया है—फर्राटेसे अग्रेजी बोलता है, जनरल नॉलेज बहुत अच्छी है। 'आई एम प्राउड ऑफ हिम। टथके बाद उसे ऑक्सफोर्ड भेज दूँगा। क्यों ठीक है न।' मैंने कहा—'ठीक ही है। तुमसे भी बडा अफसर बने, यही मेरा आशीर्वाद है।' भुजबलने मेरी आवाजमे उदासी भाँप ली बोले—'क्या दावत अच्छी नहीं लगी? मैं जानता हूँ तुम इण्डियन कस्टमके पक्षधर हो, पर क्या करें अपने यहाँ बर्थ-डे मनानेका कोई रिवाज ही नहीं।' मौका हँसी-खुशीका था मित्रको नाराज करनेका नहीं। मैंने कहा—'ठीक कहते हो। दावत तो तुमने बडी भव्य आयोजित की। अच्छा अब मुझे आज्ञा दो अपने मेहमानाका स्वागत-सत्कार करो।'

रास्तेमे मेरा मन बहुत विचलित था। क्या भारतमें जन्मदिन नहीं मनाया जाता था? मेरी माँ जन्मदिनके सबेरे सिरपर एक चम्मच चीनी रखकर नहलाती थीं (शायद प्राचीन युगमें दुग्ध-दही-शर्करासे स्नान कराते रहे होंगे)। फिर नाश्तेमे गरमागरम हलवा मिलता उसपर दो पत्ती तुलसी पडी होती। इसका मतलब था—हलवा पहले ठाकुरजीको चढाया जा चुका था और अब यह मेरे लिये भगवान्‌का 'प्रसाद' और आशीर्वाद था। सभी बडोके पाँव छूता आशीर्वाद लेता। उस दिनके लिये विशेषरूपसे नया कुर्ता बना होता उसे पहनकर मित्राके बीच इठलाता। दोपहरमें ब्रह्मभोज होता और आमन्त्रित ब्राह्मण उच्च स्वरमे वेदपाठ करते हुए 'जीवेम शरद शतम्' का आशीर्वाद देते। इष्ट-मित्र भोजन करते और हँसी-खुशी

गाते-बजाते दिन बीत जाता। फिर भी भुजबल कहता है—हमारे यहाँ जन्मदिन मनानेका रिवाज ही नहीं है। मैंने संस्कारो और उनके आयोजनपर तनिक भी प्रकाश नहीं डाला है, पर मुझे ज्ञात है कि जन्मदिन मनानेहेतु पूरा विधान है। शायद कर्मकाण्डियोंने अंग्रेजोंकी देखादेखी विधान गढ़ लिया होगा, पर सूरदास तो अंग्रेजी युगके थे नहीं। कृष्ण-लीलाका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—(यशोदा मैयाके शब्दोंमें—) *'आज मेरे ललन की पहली बरसगाँठ रे।'*

खैर, बालककी वर्षगाँठ मनाना अच्छी बात है। कैसे भी मनायी जाय, क्या हर्ज है। पर मुझे अपनी संस्कृतिकी परम्पराकी मान्यताओंकी याद आ गयी। हम 'दीया' जलाते हैं, बुझाते नहीं। स्वयं महावीर स्वामीने कहा था—एक दीया बुझ रहा हो तो हजार दीये जलाओ। कहा गया '**अप्प दीपो भव**'। हम दीपावली मनाते हैं। ठाकुरजीके आगे दीया जलाकर रखते हैं। खुशीका प्रतीक माना जाता है—घीके दिये जलाना। कहावत है—घरमें दीया जलाकर मस्जिदमें दीया जलाओ। सांध्य-प्रदीपकी महिमा कौन नहीं जानता। बचपनमें जब सन्ध्या-समय दीया जलाया जाता तो प्रार्थना करते थे—

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः।
दीपो हरतु मे पापं साध्यदीप नमोऽस्तु ते॥
शुभं करोतु कल्याणमारोग्यं सुखसम्पदम्।
शत्रुबुद्धिविनाशं च दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते॥

घरके लड़केको घरका दीपक—चिराग कहते आये हैं। पर कहीं भी दीया बुझानेकी बात नहीं की गयी। कोई मर जाता है तो लोग कहते हैं—'घरका दीया बुझ गया।' यही क्या मर जानेके बाद शवके पास दीया जलाकर रखते हैं। कोई आता है तो स्वागतमें कहते हैं'—'दिये जलाओ दिये जलाओ—जगमग-जगमग दिये जलाओ।' माना, कि हम पिछड़े लोग बड़े अन्धविश्वासी हैं—हमारे यहाँ दीया बुझ जाना भारी अपशकुन माना जाता है। इसलिये पूजा-पाठके समय दीया जलाते हैं तो वह बुझे नहीं (हवाके झोंकेसे)—इसके लिये व्यवस्था करते हैं।

हमारी एक और परम्परा है कि पवित्र अग्निको फूँक मारकर जलाते या बुझाते नहीं। फूँक मारकर दीया बुझाना कम-से-कम हमारी परम्पराका तो अङ्ग नहीं है।

विचारोंकी आँधी चल रही थी। टिक्कूने दीया बुझाया ही नहीं, फूँककर बुझाया। यह कैसा रिवाज—अपशकुन करके बीते वर्षोंको भगा देनेका। किसीने कहा कि इसलिये बुझाते हैं कि गुजरे वर्ष भुला दिये जायँ। आह! और हम हैं कि लगातार बचपनके सुनहरे दिनोंको याद किये जाते हैं। एक गीत लोकप्रिय था *'बचपनके दिन भुला न देना।'* मगर खैर, वे मानते हैं *'बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि ले।'* अस्तु, बुझाइये दीया, क्या फर्क पड़ता है।

घर पास आ गया था और तभी याद आया कि बहुत वर्षों पहले माँने कहा था 'बेटा जरा इस कोहँड़ेको चाकू तो लगा देना।' आज फिर एक माँने बेटेको केक काटनेको कहा। पता नहीं क्यों काटना, चीरना फाड़ना, तोड़ना अच्छा नहीं माना जाता। काटनेमें तो पशुबलिकी गन्ध आती है। ये सब हिंस्र वृत्तियाँ हैं। पुरुष शिकार-प्रेमी रहा है (आजकल तो शिकारपर रोक लगी है)। अस्तु, उसमें हिंस्र-वृत्ति सहज है, उसका मूल पशु-स्वभावका द्योतक है। फिर कालान्तरमें उसने बलिप्रथा अपनायी (यह भी आजकल प्रतिबन्धित है)। शायद उस प्राचीन बलिप्रथामें भोजन मुख्य उद्देश्य नहीं था, पर जब पेट भरनेके लिये बलि दी जाय तो वह धार्मिक नहीं रहती, आसुरी हो जाती है। अहिंसावादी, सबकी कल्याणकामना करनेवाला भारतवासी कैसे किसी भी आसुरी वृत्तिका समर्थन कर सकता है।

सहसा ध्यान आया कि हमारी तो जोड़नेकी—योगकी संस्कृति है, ऋण या विभाजनकी नहीं। आधुनिक विज्ञान विश्लेषण करता है काटकर खण्ड-खण्ड करता है। यह खण्डन अणुतक ले जाता है, फिर अणुमें झाँको तो कुछ नहीं दिखता, क्योंकि वह है ही ऐसा—अस्ति भी है नास्ति भी। जोड़कर देखें, समग्र देखें तो आकाश दिखता है जिसका ओर-छोर आदि-अन्त नहीं है यह सारा ब्रह्माण्ड उसीमें समाया है, फिर भी अनन्त अवकाश है। हमने ठीक ही कहा कि ईश्वर नीलाम्बुज हैं घनश्याम हैं, आकाश शायद उन्हींकी छाया है, उन्हींका अंश है। अब निर्णय हमें करना है कि हम काटेंगे या जोड़ेंगे। यद्यपि सूरदासजीने ठीक ही कहा कि *'जोग जोग हम नाहीं'*।

शायद मैं ही गलत सोच रहा हूँ। दार्शनिकोने कहा कि जीव ही जीवका आहार है, अत आत्मतुष्टि उदरपूर्ति सर्वोपरि धर्म है, अत जो चाहे खाओ, जैसे चाहे खाओ हम कान है रोकनेवाले। पर काटनेकी बात साचकर जी 'कट' जाता है। केक अच्छी है, पर अपना हलवा क्या बुरा था? खेर, अब तो पी जा ओर खा 'पिज्जा' का युग है—अपनेको बदलनेकी कोशिश कीजिये। बदल ही ता रहे हैं पर भाई भुजबल—यह एक बर्थ-डे क्या आगेके भी सभा बर्थ-डे सुखभर हा। वो अपना सौ वर्ष स्वस्थ रहकर स्थिर अङ्ग, स्वस्थ इन्द्रियासहित शत-शरत् जीनका वैदिक गीत क्या बुरा था? हाँ, बहुत पुराना जरूर हा गया है, पर अब तो दिनोदिन जीनेका फैशन है, एक साल जी लिये ता अगले वर्ष जीनेकी दुआ माँगते हैं। आप स्वय ही सोचिये क्या ठीक है, कौन ठीक है—भुजबल या मैं?

~~o~~

माता-पिताके सस्कारोंका बालकपर प्रभाव

यदि यह कहा जाय कि माता-पिताके आचरणाका बालकापर जितना प्रभाव पडता है, उतना अन्य किसीका नहीं, ता अतिशयोक्ति नहीं होगी। मुख्य बात तो यह है कि अपने बच्चोंको सुधारने-बिगाडनमें जितना हाथ अभिभावकाका रहता है, उतना अन्य किसीका नहीं। माता-पिताके सत्-आचरणा और सद्गुणाके प्रभावसे सतान आदश गुणवाली बनती है। आरम्भसे ही उनम जिन सस्काराकी नींव डाली जायगी, आगे चलकर वे उन्हीं सस्काराक अनुरूप बनगे। बालकगण आरम्भसे ही जैसा आचरण अपने माता-पिताको करते देखते हैं, वैसा ही वे स्वय भी करने लगते हैं। बालकोका मस्तिष्क और उनकी भावनाएँ बहुत ही कोमल होती हैं। उनकी बुद्धि तो परिपक्व होती नहीं ज्ञानकी परिधि भी बहुत ही सीमित हाती है, अत उनके मस्तिष्कमे घरवालोके आचरणका बहुत शीघ्र प्रभाव पड जाता है।

या तो ससारकी जितनी भी विभूतियाँ हुई हैं अथवा होती हैं, सब प्राय अपने ही सिद्धान्तासे महान् होती हैं, फिर भी उनम प्रेरणा उनकी माता-पिताकी दी हुई होती है। बचपनसे ही उनक माता-पिता उनम अच्छे सस्कारोकी नींव डालते हैं, उनमे अच्छी भावनाकी वृद्धि करते हैं, उनके सामने अपना आदर्श उदाहरण रखते हैं जिससे वे भी वैसे ही चरित्रवान् बने। उन्हे अपनी सस्कृति तथा आचरणका ऐसा आकर्षक प्रभाव दिखाते हैं कि बालकगण भी उसे अपनानेमे अपना गौरव समझते हैं। इतिहास इस बातका साक्षी है कि अपने माता-पिताके आचरणासे प्रभावित और उनसे प्रेरित होकर बालकगण अपन देश समाज और राष्ट्रका सिर ऊँचा करते हैं। भरत जिसके नामपर हमारे देशका नाम 'भारतवर्ष' पडा वीराङ्गना माता शकुन्तलाके कारण वीर बन सका। बादम वही प्रतापी सम्राट् हुआ और भारतके नामका उज्ज्वल किया। हिंदू-रक्षक वीर शिवाजीको शिवाजी बनानेम उनकी माता जीजाबाईका पूरा-पूरा योगदान था। ध्रुवजी अपनी माताके आचरण ओर प्रेरणास ही इतन उच्च हो सके। वीर बभ्रुवाहन अभिमन्यु आदि सभीके जीवनम उनके माता-पिताक आदर्श आचरणोका वह प्रबल प्रभाव पडा जिसने उन्हे भी गौरवान्वित कर दशकी विभूतियाम स्थान दिया।

पर बडे खेदकी बात है कि पहलेके लोग जितना अपने आचरणका ध्यान रखते थे उतना आजके लोग नहीं रखते, इससे सतान भी अवनतिके गढेमे गिरती जा रही है। जब हम स्वय चरित्रवान् नहीं हैं तो हमारी सतान क्या सदाचारिणी होगी? हम यह स्वप्नमे भी नहीं सोचना चाहिये कि हम अपना चरित्र भ्रष्टकर अपनी सतानको सुधार लगे। उनम तो हमारी ही छाप रहेगी क्याकि सस्कृतमे एक वचन है कि 'आत्मा वै जायते पुत्र।' अर्थात् पिता ही पुत्ररूपमे उत्पन्न होता है। प्राचीन युगम बालकोको आचरण शिष्टाचार आदिकी शिक्षा अपन माता-पिता गुरुजना आदिसे मिलती थी जिससे वे आरम्भसे ही चरित्रवान् बनते थ। पहले जहाँ सूर्योदयके पूर्व उठकर लोग तुरत दैनिक कार्योसे निपटकर पूजा-पाठ, जप-ध्यान प्रार्थना, देवदर्शन आदि करते थे प्रात-साय गायत्री जपते थे, अन्य धार्मिक कृत्याका आयोजन करते थे वहीं अब सूर्योदयके बाद उठत हैं, पूजा-पाठ और देवदर्शनकी जगह टी०वी० आदिके कार्यक्रमोका श्रवण होता है। धार्मिक ग्रन्थाके स्थानपर चटपटे और कामक्रीडाको प्रोत्साहन दनेवाले

पत्र और उपन्यासादि पढते है तथा अन्य रँगरेलियोम व्यर्थ ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सायकाल क्लब होटल थियटर सिनेमा आदिका आनन्द उठात हैं। आचरणाको गिरानेवाल ये विलासिताके साधन आजके सभ्य और आधुनिक मनुष्यकी सोसाइटीके प्रमुख अङ्ग माने जाते हैं। इन आचरणाका हमारी सतानोपर कितना गहरा प्रभाव पडता जा रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। इतना ही नहीं, माता-पिताकी बीमारियोके कीटाणु अपने-आप जन्मजातसे उनकी सतानाम आकर उनमे भी उमी रागकी उत्पत्ति प्रारम्भ कर देते हैं। वैज्ञानिक खोजने इस बातका अच्छी तरह सिद्ध कर दिया हे। अब वैज्ञानिक खोजासे भी यह सिद्ध हा गया है कि गर्भावस्थाम ही अच्छ-बुरे सस्कार हमारी सतानामे पड जाते हैं। हमारे भारतीय शास्त्र इस बातकी पुष्टि करते हैं कि शिशुकी गर्भावस्थामे उनके माता-पिताकी जैसी भावना होगी, जैसे विचार होगे तथा होनेवाली सतानके प्रति जैसी भावना होगी या बच्चकी गर्भावस्थातक माता-पिताम जैसे अच्छे-बुरे सस्कार जाग्रत् हागे तथा उस समयतक माँ-बाप जैसे अच्छे-बुर आचरणमे रहेगे व ही सब लक्षण, मस्कार तथा भाव उन नवजात शिशुओमे पाये जायँगे। महाभारतकी कथाको पढनसे स्पष्ट हा जाता है कि किस प्रकार अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने गर्भावस्थामे ही अपने पिताद्वारा कही हुई चक्रव्यूहका तोडनेकी सारी कला सीख ली थी।

बालक अपने बचपनम ठीक एक पौधेके समान है, जिसे छोटे रहनेपर चाहे जिधर झुका दिया जा सकता है, पर बडा हानेपर वह किसी तरह नहीं झुकाया जा सकता। यदि माता-पिताकी विचारधारामे बच्चेके विषयमे कुछ अन्तर हो तो उसे बच्चेके सामने निपटाना या झगडा-लडाई करना अच्छा नहीं, अपितु जब बच्चा बाहर हो या वहाँसे दूर हो तो निर्णय कर लेना चाहिये।

अतएव आज सबसे बडी आवश्यकता इस बातकी है कि यदि हम अपनी सतानको आदर्श, सदाचारी और सुसस्कृत बनाना हे ता हम अपना चरित्र इतना दृढ खरा और शुद्ध बना ल कि उसका असर हमारे बालकोपर अच्छा ही पडे। यदि वे उसका अपने स्वभावके कारण अनुकरण भी कर तो उसस उनकी कोई हानि न हो। हमे विशेषरूपस सतर्क रहना चाहिये कि हम कोई ऐसा गलत काम तो नहीं कर रहे है, जिसका असर बालकोपर भी होगा। इसके अतिरिक्त हमे भूलकर भी बच्चोके सामने—

१-गाली-गलौज नहीं करनी चाहिये, क्योकि इससे बालककी भी जबान खराब हाती है।

२-किसीसे भी अधिक हँसी-मजाक नहीं करना चाहिये और न अश्लील बात ही करनी चाहिये।

३-किसीको भी व्यर्थम डाँटना-डपटना अथवा किसीसे दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिये।

४-किसीके प्रति अपना क्रोध-प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।

५-किसीको मारना-पीटना नहीं चाहिये।

६-नशीली वस्तु आदिका सेवन नहीं करना चाहिये।

७-अपनी स्त्री आदिसे किसी ऐसे ढगस वार्तालाप नहीं करना चाहिये, जिसस उसका असर बालकापर भी पडे।

स्पष्ट है कि माता-पिताके आचरणका उनकी सतानपर सबसे गहरा प्रभाव पडता है। अत शुद्ध आचरण तथा आचार-विचार रखकर तथा उचित सस्कार प्रदान कर हम उन्हे सुसस्कृत और सदाचारी बना सकते हैं।

~~~ ० ~~~

जगत्को हम जिस रूपम देखेगे, जगत् हमारे लिय ठीक वैसा ही बन जायगा। यदि हम इसे सर्वथा प्रभुसे पूर्ण देख, प्रत्येक रूपको प्रभुका रूप समझे—जो वास्तवम सत्य तथ्य है—ता हमारे लिय प्रभुसे अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ भी नहीं है। पर कहीं यह हमारा शत्रु, यह मित्र, यह अपना, यह पराया, यह दुष्ट यह साधु, यह ऊँचा, यह नीचा, यह अमीर यह गरीब, यह सुन्दर, यह कुत्सित—इस प्रकार अगणित विभिन्न भावोको स्वीकार कर हम जगत्को देखगे तो फिर हमारा जैसा भाव होगा, उसीके अनुरूप बनकर वह हमार सामन आयगा।

~~~ ० ~~~

अन्त्येष्टि-संस्कार-मीमांसा

(डॉ० श्रीबीरेन्द्रकुमारजी चौधरी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

भारतीय धर्मशास्त्रोंमें अन्त्येष्टि-संस्कारका विधान है। यह हिन्दुओंका अन्तिम एवं महत्त्वपूर्ण संस्कार है। जीवनके अन्तकालमें सुवर्णदान, गोदान तथा भूमिदान आदि विशेष कृत्य करनेकी शास्त्रकी आज्ञा है। ये दान आदि कृत्य पापीको भी तार देते हैं—

हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च।
एतानि वै पवित्राणि तारयन्त्यपि दुष्कृतम्॥

(महा० अनु० ५९।५)

विशेषकर अन्तकालमें दानमें दी जानेवाली वैतरणी गौका अपना अलग ही महत्त्व है। वैतरणी गौके दानके प्रभावसे ही मृतक महाभयावह यममार्गमें स्थित सौ योजन विस्तारवाली वैतरणी नदीको पार कर पाता है—

यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम्।
तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥

(गरुडपुराण सारोद्धार ८।७९)

वैसे भी गाएँ स्वर्गकी सोपान हैं। वे स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। वे समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है—

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किञ्चित् परं स्मृतम्॥

(महा० अनु० ५१।३३)

बृहत्पराशरस्मृति (५।३२)-में कहा गया है कि सभी देवता गौके शरीरमें निवास करते हैं, अतः गौ सर्व-देवमयी है—'सर्वे देवाः स्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः॥'

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें गौकी महिमा बताते हुए तथा उन्हें निरन्तर प्रणाम करनेका निर्देश देते हुए कहा गया है कि गौरूपी तीर्थ (गोमूत्र)-में गङ्गा आदि सभी नदियाँ तथा तीर्थ निवास करते हैं और गौओंके रज कणमें सभी प्रकारकी निरन्तर वृद्धि होनेवाली धर्मराशि एवं पुष्टिका निवास रहता है। गायोंके गोबरमें साक्षात् लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं और इन्हें प्रणाम करनेमें चतुष्पादधर्म सम्पन्न हो जाता है। अतः बुद्धिमान् एवं कल्याणकामी पुरुषको गायोंको निरन्तर प्रणाम करना चाहिये—'तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥'

गोदान करनेवाला मनुष्य सूर्यके समान देदीप्यमान विमानमें बैठकर मेघमण्डलको भेदता हुआ स्वर्गमें जाकर सुशोभित होता है—

गोप्रदानरतो याति भित्त्वा जलदसञ्चयान्।
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते॥
देवानामुपरिष्टाच्च गावः प्रतिवसन्ति वै।
दत्त्वा चैतास्तारयन्ते यान्ति स्वर्गं मनीषिणः॥

(महा० अनु० ७९।२४ ८१।४)

यही कारण है कि मृत्युसे पूर्व वैतरणी गौ एवं मृत्युके अनन्तर बछड़े और दुग्धपात्रसहित उत्तम शील एवं स्वभाववाली दुधारु गाएँ मृतकके कल्याण एवं मुक्तिकी कामनासे दानमें दी जाती हैं।

मरणासन्न व्यक्तिको नदीके किनारे ले जाया जाता है और मृत्युके समय उसकी देहका अधोभाग जलमें डाल दिया जाता है। यह क्रिया 'अन्तर्जली' या 'घाट-मृत्यु' भी कहलाती है। मरणासन्न व्यक्तिको गङ्गाके किनारे ले जानेकी परम्परा है। पतितपावनी गङ्गा स्वर्गकी रुचिर वरदानधारा हैं, जो अपने शुभ आँचलसे मर्त्यलोकके निवासियोंके सारे पाप-ताप दूर कर देती हैं। उनके पवित्र जलके स्पर्श और दर्शनसे युग-युगके कलुष दूर हो जाते हैं। व्यक्तिका अन्तः-बाह्य सब स्वच्छ, धवल और निर्मल हो जाता है। गङ्गाजीमें स्नानकर उनके तटपर मरनेसे मुक्ति मिल जाती है।

मरणासन्न व्यक्तिके निमित्त विशेष संस्कार करनेकी परम्परा प्राचीन कालसे ही चली आ रही है। इसके अनुसार तुलसीके पौधेके समीप गायके गोबरसे एक मण्डलकी रचना की जाती है और वहाँ तिल बिखेरकर कुशाको बिछाया जाता है एवं उनके ऊपर श्वेत वस्त्रके आसनपर शालग्रामशिलाको स्थापित किया जाता है। तदनन्तर उनके समीपमें ही गोबरसे लीपी हुई और कुश एवं तिलोंद्वारा सुसंस्कृत पृथ्वीपर मरणासन्न व्यक्तिको लिटाकर रखा जाता है। तुलसीदल एवं तिलसहित स्वर्ण तथा रत्नका प्रक्षेप करके शालग्रामस्वरूप भगवान् विष्णुका पादोदक एवं गङ्गाजल उसे पिलाया जाता है।

शालग्रामशिला, तुलसीवृक्ष, तिल, कुश एवं गङ्गाजलका अपना-अपना विशेष माहात्म्य है। जहाँ पाप, दोष और

भयको हरण करनेवाली शालग्रामशिला विद्यमान रहती है, उसके सन्निधानम मरनेसे प्राणीको निश्चित ही मुक्ति मिल जाती है। जो मुक्ति दान आदि कर्मोंसे भी दुर्लभ होती है, वह जगत्‌के तापका हरण करनेवाले तुलसीवृक्षकी छायामे मरनसे ही प्राप्त हो जाती है। तुलसीदलको मुखम रखकर तिल और कुशके आसनपर मरनेवाला व्यक्ति पुत्रहीन होनेपर भी नि सदेह विष्णुलोकको जाता है—

शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा।
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तो सुनिश्चिता॥
तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा।
तत्रैव मरणान्मुक्ति सर्वदा दानदुर्लभा॥
तुलसीमञ्जरीयुक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति।
यमस्त नेक्षितु शक्तो युक्त पापशतैरपि॥
तस्या दल मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृत ।
नरो विष्णुपुर याति पुत्रहीनोऽप्यसशय ॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार ९।५-६ ८-९)

अन्तकालम जो शालग्रामशिलाके जलको बिन्दुमात्र भी पीता है, वह सभी पापासे मुक्त होकर वैकुण्ठलोकम जाता है। जो गङ्गाजलका पान करता है, वह सभी यानियास छूटकर हरिके धामको प्राप्त होता है। अन्तकालमे जो 'गङ्गा-गङ्गा' ऐसा कहता है, वह विष्णुलोकको जाता है और पुन भूलोकमे जन्म नहीं लेता है—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात्प्राणै कण्ठगतैरपि।
मृतो विष्णुपुर याति न पुनर्जायते भुवि॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार ९।२९)

म्रियमाण मनुष्यको श्रीमद्भागवत-महापुराणकी कथा सुनानेकी परम्परा भी है। अन्तसमयमे जो श्रीमद्भागवतके एक श्लोक, आधे श्लोक अथवा एक पादका भी पाठ करता है वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर पुन ससारमे कभी नहीं आता—

श्लोक श्लाकार्धपाद वा याऽन्ते भागवत पठेत्।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार ९।३२)

अन्त्येष्टि-सस्कारक अन्तर्गत मुख्यरूपसे मृत्युके अनन्तर की जानवाली क्रियाएँ आती हैं। उनमे अरथी-निर्माण शवको स्नान कराना, पिण्डदान, शवको उठाना, शवयात्रा, दाहक्रिया एव अस्थिसञ्चयन आदिका विशेष महत्त्व है।

प्राचीन कालम उदुम्बरकी लकडीकी अरथी बनायी जाती थी और उसपर रोएँदार कृष्ण मृगचर्मका टुकडा बिछाकर उसपर शवको लिटाया जाता था, किंतु आजकल बाँसकी अरथी बनायी जाती है। मृतकको स्नान कराकर शुद्ध एव नवीन वस्त्र पहनाया जाता है तथा उसे चन्दन अथवा गङ्गाजीकी मिट्टीके लपसे और पुष्प-मालाओसे विभूषित करके अरथीपर लिटाया जाता है। तदनन्तर उसे नवीन वस्त्रो एव पुष्प-मालाओसे ढक दिया जाता है। मृत्युके स्थानपर 'शव' नामक पिण्ड मृत व्यक्तिके नाम-गोत्रसे प्रदान किया जाता है। ऐसा करनेसे भूमि और भूमिके अधिष्ठातृदेवता प्रसन होते हैं। इसके पश्चात् द्वारदेशपर 'पान्थ' नामक पिण्ड मृतकके नाम-गात्र आदिका उच्चारण करके प्रदान किया जाता है, इससे गृहवास्त्वधिदेवता प्रसन्न होते हैं—

मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते॥
तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता।
द्वारदेशे भवेत् पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते॥
तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवता ।

(गरुडपुराण २।५।३१—३३)

इसके बाद शवकी प्रदक्षिणा की जाती है। मिथिलाञ्चलम बन्धु-बान्धवाद्वारा मृतकके कल्याणके उद्देश्यसे अरथीपर आमके पल्लव एव लकडियाँ दी जाती हैं। तदनन्तर शवयात्राके निमित्त अन्य बन्धु-बान्धवाके साथ पुत्र अरथीको कन्धा देता है। अपने पिताको कन्धेपर धारण करके श्मशान ले जानवाला पुत्र पग-पगपर अश्वमधका फल प्राप्त करता है—

धृत्वा स्कन्धे स्वपितर य श्मशानाय गच्छति।
सोऽश्वमेधफल पुत्रो लभते च पदे पदे॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार १०।१२)

आधे मार्गमे पहुँचकर भूमिका मार्जन और पोक्षण करके शवको विश्राम कराया जाता हे तथा 'भूत' नामक पिण्ड प्रदान किया जाता है। इससे दिशाओमे रहनेवाले पिशाच राक्षस, यक्ष आदि उस होतव्य देहके योग्यत्वको क्षति नहीं पहुँचात हें। मार्गम यमगाथा गायी जाती हे आर

यमसूक्तका जप किया जाता है—

'यमगाथा गायन्तो यमसूक्त च जपन्त इत्येके ॥'

(पा०गृ०सू० ३।१०।९)

श्मशानम पहुँचकर शवदाहके लिय यथाविधि भूमिका सशोधन सम्मार्जन और लेपन करके वेदिका बनायी जाती है, जिसे जलसे प्रोक्षित करके उसम विधि-विधानपूर्वक अग्नि स्थापित की जाती है। पुष्प और अक्षत आदिसे क्रव्यादसञ्ज्ञक अग्निदेवकी पूजा-अर्चना की जाती है और निम्न विहित वैदिक मन्त्रासे होम किया जाता है—

'लोमभ्य स्वाहा लोमभ्य स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्य स्वाहा मेदोभ्य स्वाहा। माꣳसेभ्य स्वाहा माꣳसेभ्य स्वाहा स्नावभ्य स्वाहा स्नावभ्य स्वाहा ऽस्थभ्य स्वाहा ऽस्थभ्य स्वाहा मज्जभ्य स्वाहा मज्जभ्य स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥'

(शु०यजु० ३९।१०)

इसके बाद चन्दन तुलसी, पलाश और पिप्पल या आमकी लकडियोसे चिता बनायी जाती है। शवको चितापर रखकर एक पिण्ड 'साधक' नामसे चितापर तथा दूसरा पिण्ड शवके हाथपर 'प्रेत' नामसे दिया जाता है। तदनन्तर क्रव्याद अग्निको तिनकापर रखकर यथाधिकार ज्येष्ठ पुत्र अग्नि प्रदान करता है। मृत्युसे पूर्व गृह्याग्निकी स्थापना करनेवाले मृतकका दाह-संस्कार शालाग्निसे किया जाता है—

'शालाग्निना दहन्त्येनमाहितश्चेत् ॥'

(पा०गृ०सू० ३।१०।११)

किंतु गृह्याग्निकी स्थापना न करनेवाले मृतकको मौन हाकर बिना मन्त्रके लौकिक अग्नि दी जाती है—

'तूष्णीं ग्रामाग्निनेतरम् ॥'

(पा०गृ०सू० ३।१०।१२)

दाह-संस्कारके अनन्तर नदी या सरोवरम जाकर स्नान करनेका विधान है। स्नान करते समय कवल अधोवस्त्र ही पहना जाता है। यज्ञोपवीतको बाय कन्धेसे हटाकर दाहिने कन्धेपर कर लिया जाता है। बाय हाथकी अनामिका अँगुलीसे पानी हटाकर मन्त्रोच्चारणके साथ स्नान किया जाता है। स्नानकर्ता दक्षिणमुख हाकर ही स्नान करते हैं—

'दक्षिणामुखा निमज्जन्ति ॥'

(पा०गृ०सू० ३।१०।२०)

स्नानके बाद **'अमुक प्रेत एतत्ते उदकम्'** (पा०गृ० सू० ३।१०।२१)—यह मन्त्र पढकर मृतकको एक बार जलाञ्जलि दी जाती है। जलस निकलकर मृतकके सपिण्ड लाग स्वच्छ और पवित्र घासवाली भूमिपर बैठ जाते हैं और उन्ह इतिहास और पुराणाकी कथाआसे सान्त्वना दी जाती है। तदनन्तर पीछे मुडकर देखे बिना कम उम्रवाले आगे-आगे और वृद्ध उनके पीछ-पीछ गाँव लौट आते हैं। वे घरम प्रवेश करनेक पूर्व दरवाजपर रखे नीमके पत्तको पहले दाँतसे चबात हैं, उसके बाद आचमन करते हैं। पुन जल आग गोबर सरसा और तिलके तेलका स्पर्श करते हैं और फिर पत्थरको लाँघकर घरम प्रवेश करते हैं—

'निवेशनद्वारे पिचुमन्दपत्राणि विदश्याचम्योदकमग्नि गोमय गौरसर्षपास्तैलमालभ्याश्मानमाक्रम्य प्रविशन्ति ॥'

(पा०गृ०सू० ३।१०।२४)

दाहक्रियाके पश्चात् अस्थि-सञ्चयनका क्रम आता है। प्राचीन कालम यह दाहसे तीसरे, पाँचव या सातवे दिन किया जाता था। इस कृत्यम भस्मपर दूध और जलका सेचन किया जाता था और अस्थियाको उदुम्बर अर्थात् गूलरके डण्डेसे हटाकर उन्ह दूध और जलसे धोकर मिट्टीके पात्रम रखकर नदीके जलम प्रवाहित कर दिया जाता था किंतु आजकल कहीं-कहीं दाहक ही दिन अस्थियाके सञ्चयनकी प्रथा प्रचलित है। दाहके तत्काल पश्चात् अवशेषाको एक मिट्टीके बर्तनम रखा जाता है और बादम क्षौरकर्मस पहले उन्हे गङ्गामे प्रवाहित कर दिया जाता है। मिथिलासम्प्रदायम अस्थि-सञ्चयन दाहसे चौथे दिन किया जाता है—

'चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयन द्विजै ।'

(संवर्तस्मृति ३९)

दाहकर्ता चितास्थलकी तीन बार परिक्रमा करता है और शमीकी टहनीसे बुहारता है। वह विहित मन्त्रका

उच्चारण करता हुआ चितास्थलपर दूधमिश्रित जल छिडकता है। इसके बाद वह अस्थि-सञ्चयनका सङ्कल्प लेकर अस्थियोको चुनकर उन्हे दूध एव जलसे धोकर मिट्टीके नये पात्रमे रखता है। वह चितास्थलपर तुलसीका पौधा रोपता है और पिण्डदान करता है। बादमे क्षौरकर्मसे पहले अस्थियाँ गङ्गामे बहा दी जाती है, किंतु जिसके शवका दाह-संस्कार गङ्गाके तटपर किया जाता है, उसकी अस्थियाँ तत्क्षण ही गङ्गामे प्रवाहित कर दी जाती हैं। जिस व्यक्तिकी अस्थियाँ गङ्गाजलमे प्रवाहित की जाती हैं, उसका ब्रह्मलोकसे कभी भी पुनरागमन नहीं होता है—

अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार १०।७९)

जो अपनी पूर्वावस्थामे पाप करके मर जाते हैं, उनकी अस्थियोको गङ्गामे प्रवाहित करनेपर वे स्वर्गलोक चले जाते हैं—

पूर्वे वयसि पापानि ये कृत्वा मानवा गताः।
गङ्गायामस्थिपतनात्स्वर्गलोकं प्रयान्ति ते॥

(गरुडपुराण-सारोद्धार १०।८४)

वस्तुत अन्त्येष्टि-संस्कार मृतकके पापोका विनाशक है और उसे ब्रह्मलोक पहुँचानेवाला और्ध्वदैहिक कृत्य है। इस संस्कारके समय पठित वैदिक मन्त्रोके प्रभावसे मृतक पुरातन पितरोके सुखप्रद मार्गोंसे पितृलोक जाता है और वहाँ स्वधासे तृप्त यम एव वरुणका दर्शन करता है। वहाँ वह अपने पितरोसे मिलता है और इष्टापूर्त दानादि कृत्योके पुण्यफलोको प्राप्त करता है। वहाँ वह समस्त मालिन्यका त्याग कर दिव्य ज्योतिसे परिपूर्ण नवीन शरीर धारण करके परमानन्द प्राप्त करता है—

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥
सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥

(ऋक्० १०।१४।७-८)

~~~o~~~

जीवकी सद्गतिहेतु और्ध्वदैहिक श्राद्धादि संस्कार

(डॉ० श्रीताराचन्द्रजी शर्मा 'चन्द्र' एम्०ए०, पी-एच्०डी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

शास्त्रोमे जीवकी सद्गतिके लिये और्ध्वदैहिक संस्कारोका विधान किया गया है जिनमे मरणासन्न-अवस्थाके समय विधिपूर्वक किये जानेवाले दस दानों (सवत्सा गौ भूमि तिल स्वर्ण, घृत, वस्त्र धान्य गुड चाँदी तथा लवण)-का विशेष माहात्म्य है। गरुडपुराणमे कहा गया है कि इन दानोके देनेसे जीवको परलोकमे सुखकी प्राप्ति होती है— **'महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्'** (ग०पु०, प्रेत० १९।३)। साथ ही यथाशक्ति पञ्चधेनुदान भी किया जाता है अथवा गोनिष्क्रयद्रव्यसे भी इन दानोकी पूर्ति हो जाती है। पञ्चधेनु इस प्रकार हैं—(१) ऋणापनोदधेनु, (२) पापापनोदधेनु, (३) उत्क्रान्तिधेनु, (४) वैतरणीधेनु तथा (५) मोक्षधेनु।

मृत व्यक्तिको गङ्गाजल आदिसे स्नान कराकर उसके अङ्गोमे गोघृतका लेप करके वस्त्र पहनाया जाता है, चन्दन लगाया जाता है, फूल और तुलसीकी माला पहनायी जाती है और यथाधिकार यज्ञोपवीत भी पहनाया जाता है। शवके मुख, दोनो आँखो, दोनो नासाच्छिद्रो तथा दोनो कानोमे स्वर्णखण्ड छोडा जाता है, स्वर्णके अभावमे घीकी बूँदे डाली जाती हैं। इस प्रकार शवका संस्कार किया जाता है। उसे रजस्वला स्त्री तथा अपवित्र जनोके स्पर्शसे बचाया जाता है। इस प्रकार शवका यथाविधि संस्कार करके चितादाहके समय भी यथाविधि संस्कार सम्पन्न होता है। षट्पिण्ड बनाकर शवयात्राके पूर्व तथा श्मशानतक षट्पिण्डदान होता है तथा बादमे दशगात्रसम्बन्धी दस पिण्डदान होता है। इससे जीवके आतिवाहिक शरीरका निर्माण होता है। इस प्रकार और्ध्वदैहिक दशगात्रतकका कृत्य करके एकादशाह आदिके श्राद्धकृत्य होते हैं तथा सपिण्डीकरणश्राद्धमें प्रेतका पितरोसे मेलन होता है। तदनन्तर वार्षिक तिथिपर क्षयाह
~~~

श्राद्ध तथा पितृपक्ष—महालयमे पार्वणश्राद्ध होते हैं। इससे जीव सम्यक् रूपसे संस्कृत होकर उत्तम गति प्राप्त करता है। श्राद्ध क्या है? और इसकी सामान्य विधि क्या है— इसपर यहाँ आगे संक्षेपमे विचार किया जा रहा है—

'श्राद्ध' शब्दकी निष्पत्ति 'श्रद्धा' शब्दसे '**श्रद्धया कृतं सम्पादितमिदम्**', **श्रद्धया दीयते यस्मात्तच्छ्राद्धम्**', '**श्रद्धार्थमिदं श्राद्धम्**', '**श्रद्धया इदं श्राद्धम्**' इत्यादि अर्थोंमे 'अण्' प्रत्यय करनेपर होती है। इस प्रकार पितरोंकी तृप्तिके निमित्त एवं आत्मोन्नतिके लिये श्रद्धापूर्वक क्रियान्वित सङ्कल्प तथा तर्पणसहित विशेष कार्यविधि श्राद्ध-संस्कार है, जिसमे आवश्यकतानुसार पिण्डदानादि कृत्य किये जाते हैं। श्राद्ध जीवकी सद्गतिके लिये किया जानेवाला और्ध्वदैहिक संस्कार है। अनेक ऋषि-महर्षियोंने श्राद्ध-संस्कारका शास्त्रोंमे वर्णन किया है। ब्रह्मपुराणके अनुसार देश, काल और पात्रमे श्रद्धाद्वारा विधिपूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दिया जानेवाला भोजन 'श्राद्ध' है—

देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥

महर्षि पराशरके मतानुसार देश, काल तथा पात्रमे हविष्यादि विधिद्वारा तिल (यव) और दर्भ (कुश) तथा मन्त्रादिसे श्रद्धापूर्वक किये जानेवाले कर्मको श्राद्ध कहते हैं—

देशे काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत्।
तिलैर्दर्भैश्च मन्त्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धया युतम्॥

महर्षि बृहस्पति उस कर्मविशेषको श्राद्ध कहते हैं, जिसमे भलीभाँति पकाये हुए उत्तम व्यञ्जन दुग्ध, शहद और घृतके साथ श्रद्धापूर्वक पितृगणके उद्देश्यसे ब्राह्मण आदिको प्रदान किये जायँ—

संस्कृतं व्यञ्जनाद्यं च पयोमधुघृतान्वितम्।
श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते॥

विविध श्राद्ध-संस्कार—श्राद्ध-संस्कारोंके अनेकानेक भेद शास्त्रोंमे वर्णित हैं, किंतु यहाँ आवश्यक श्राद्ध ही उल्लिखित हैं। मत्स्यपुराणके '**नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते**' के अनुसार श्राद्ध तीन प्रकारके होते हैं—नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। यमस्मृतिमे पाँच प्रकारके श्राद्ध—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि तथा पार्वणका उल्लेख है। भविष्यपुराणमे बारह प्रकारके श्राद्ध—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि, सपिण्डन, पार्वण, गोष्ठी, शुद्ध्यर्थ, कर्माङ्ग, दैविक, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ बतलाये गये हैं।

श्रौत एवं स्मार्त भेदसे सभी श्राद्ध-संस्कार दो प्रकारके होते हैं—श्रौतश्राद्ध तथा स्मार्तश्राद्ध। अमावास्याके दिन किये गये श्राद्धको श्रौतश्राद्ध-संस्कार कहते हैं, जिसमें केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है। एकोद्दिष्ट, पार्वण एवं तीर्थसे लेकर मरणतकके श्राद्ध स्मार्तश्राद्ध-संस्कार कहलाते हैं, जिसमे वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक एवं धर्मशास्त्र आदिके मन्त्रोंका प्रयोग होता है।

श्राद्ध-संस्कारकी महत्ता—प्राचीन कालमे श्राद्ध-संस्कारके प्रति अटूट श्रद्धा थी, किंतु वर्तमानमें जनमानसका शास्त्रसे सम्पर्क कम होनेसे श्राद्धकर्मपर श्रद्धा कम होती जा रही है, जिससे अधिकांश लोग इसे व्यर्थ समझकर नहीं करते। कुछ यथाविधि नियमसे श्रद्धासहित श्राद्ध-संस्कार करते हैं, शेष केवल रस्म-रिवाजकी दृष्टिसे श्राद्ध करते हैं। वस्तुतः श्राद्धसे सगे-सम्बन्धी ही नहीं वरन् ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी प्राणी तृप्त होते हैं। ब्रह्मपुराणके अनुसार जो व्यक्ति अपनी सम्पत्तिके अनुरूप शास्त्रीय विधिसे श्राद्ध करता है, वह सम्पूर्ण संसारको संतृप्त कर देता है—

एवं विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्प्रीणाति मानवः॥

संसारमे श्राद्धकर्ताके लिये श्राद्धसे बढ़कर और कोई कल्याणकारक एवं श्रेयस्कर कर्म नहीं है। अतः मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। इसीकी पुष्टि करते हुए महर्षि सुमन्तु भी कहते हैं—

श्राद्धात् परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः॥

वस्तुतः श्रद्धा-भक्तिद्वारा शास्त्रोक्त विधिसे सम्पन्न श्राद्ध सर्वविध कल्याणदायक होता है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको पितृगणकी संतुष्टि एवं आत्मकल्याणहेतु श्रद्धापूर्वक यथासमय श्राद्ध करते रहना चाहिये। समस्त श्राद्ध न

कर पानेपर कम-से-कम वर्षमे एक बार आश्विनमासके पितृपक्षमे अपने पितृगणकी मरण-तिथियापर श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। पितृपक्षके साथ पितराका विशेष सम्बन्ध होनेसे पितृपक्षम श्राद्ध करनेकी विशेष महिमा शास्त्रोम वर्णित है। महर्षि जाबालिके कथनानुसार पितृपक्षम श्राद्ध करनसे पुत्र, आयु, आरोग्य, अतुल ऐश्वर्य और अभिलषित वस्तुओकी प्राप्ति होती है—

पुत्रानायुस्तथाऽऽरोग्यमैश्वर्यमतुल तथा।
प्राप्नाति पञ्चेमान् कृत्वा श्राद्ध कामाश्च पुष्कलान्॥

कूर्मपुराणमे वर्णित है कि जो प्राणी जिस किसी भी विधिसे एकाग्रचित्त होकर श्राद्ध करता है, वह समस्त पापोंसे रहित हो मुक्त हा जाता है और पुन ससारचक्रमे नहीं आता—

यो येन विधिना श्राद्ध कुर्यादेकाग्रमानस ।
व्यपेतकल्मषो नित्य याति नावर्तते पुन ॥

मार्कण्डयपुराणके अनुसार श्राद्धसे तृप्त होकर पितृगण श्राद्धकर्ताको दीर्घ आयु, सतति, धन, विद्या, सुख राज्य, स्वर्ग एव मोक्ष प्रदान करते हैं—

आयु प्रजा धन विद्या स्वर्गं मोक्ष सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितर श्राद्धतर्पिता ॥

ऐसा ही उल्लेख याज्ञवल्क्यस्मृति तथा यमस्मृतिमे भी है। यमस्मृतिक अनुसार पितृपूजनसे सन्तुष्ट होकर पितर मनुष्योके लिये आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल-वैभव, पशु, सुख और धन-धान्य प्रदान करते हैं—

आयु पुत्रान् यश स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बल श्रियम्।
पशून् सौख्य धन धान्य प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

ब्रह्मपुराणके अनुसार तो जो मनुष्य शाकके द्वारा भी श्रद्धा-भक्तिसे श्राद्ध करता है, उसके कुलमे कोई भी दु खी नहीं होता—

तस्माच्छ्राद्ध नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि।
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति॥

विष्णुपुराण (३।१४।१-२)-के कथनानुसार श्रद्धायुक्त हो श्राद्धकर्म करनेसे केवल पितृगण ही तृप्त नहीं होते, बल्कि ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अश्विनीकुमार सूर्य, अग्नि, वसु, मरुद्गण, विश्वेदेव, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, ऋषिगण तथा भूतगण—सभी तृप्त होते हैं—

ब्रह्मेन्द्ररुद्रनासत्यसूर्याग्निवसुमारुतान् ।
विश्वेदेवान् पितृगणान् वयासि मनुजान् पशून्॥
सरीसृपान् ऋषिगणान् यच्चान्यद्भूतसञ्ज्ञितम्।
श्राद्ध श्रद्धान्वित कुर्वन् प्रीणयत्यखिल जगत्॥

श्राद्ध-सस्कार न करनेसे हानि—शास्त्रोसे विदित होता है कि मृत व्यक्तिका अपने सगे-सम्बन्धियासे इतना लगाव होता है कि इनके दिये बिना न उसे अन्न मिल सकता है और न जल। फलत भूख-प्याससे उन्हे दारुण दु ख होता है। महर्षि सुमन्तुजी कहते हैं—

लोकान्तरेषु ये तोय लभन्ते नान्नमेव च।
दत्त न वशजैर्येषा ते व्यथा यान्ति दारुणाम्॥

इसीके साथ ही श्राद्ध न करनेवाला भी जीवनपर्यन्त दु खी रहता है। आश्विनमासके पितृपक्षमे अपने पितराका श्राद्ध न करनेवालेको उनक पितर दारुण शाप देत है।

हारीतस्मृतिके अनुसार ऐसे श्राद्धविहीन परिवारमे पुत्र उत्पन्न नहीं होता, कोई नीरोग नहीं रहता, लम्बी आयु नहीं होती तथा किसी भी प्रकार कल्याण प्राप्त नहीं होता—

न तत्र वीरा जायन्त नारोग्य न शतायुष ।
न च श्रेयोऽधिगच्छन्ति यत्र श्राद्ध विवर्जितम्॥

श्राद्ध-सस्कारसे पितरोको श्राद्धान्नकी प्राप्ति—गोत्र एव नामके उच्चारणके साथ श्राद्धमे पितरोके निमित्त दी गयी अन्न-जल आदि सामग्री पितरोके ग्रहण-अनुरूप होकर ही उनके पास पहुँच जाती है। यह व्यवस्था अग्निष्वात्त आदि आजानज पितर करते हैं—

'अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिता ।'

(पद्मपुराण)

शुभ कार्योंके परिपाकसे यदि पिता देवयोनिको प्राप्त हो गया हो तो दिया गया श्राद्धान्न वहाँ उसे अमृत होकर प्राप्त होता है, इसी प्रकार मनुष्ययोनिम अन्नरूपमें तथा पशुयोनिम तृणके रूपमे नागादि योनियोम वायुरूपम, यक्षयोनिम पानरूपम तथा अन्य योनियामे भी तदनुरूप भोगजनक एव तृप्तिकर पदार्थोके रूपमे प्राप्त होकर उस तृप्त करता है—

देवो यदि पिता जात शुभकर्मानुयोगत ।
तस्यान्नममृत भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति॥
मर्त्यत्वे ह्यन्नरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्।
श्राद्धान्न वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति॥
पान भवति यक्षत्वे नानाभोगकर तथा।

(मार्कण्डेयपुराण वायुपुराण श्राद्धकल्पलता)

श्राद्धके अवसर—श्राद्धके अनेक अवसर हैं, जिनपर श्राद्ध करनेकी विशेष महिमा है यथा—मन्वन्तरकी मन्वादि तिथियाँ तथा युगादि तिथियाँ, विषुवयोग, व्यतीपातयोग अयनकाल, सक्रान्तिकाल, ग्रहणकाल इत्यादि। इन तिथियामे स्नान करके पितराके उद्देश्यस तिल एव कुशमिश्रित जलसे तर्पण करना भी अत्यन्त पुण्यकारक और महान् फलदायक होता है। इन कालामे भी अमावास्याको विशेषरूपसे श्राद्ध करनेकी बात कही गयी है।

प्राय वर्षम दो बार श्राद्ध करना चाहिये—१-क्षयाह-तिथिको और २-पितृपक्षमे।

१-क्षयाहतिथि—व्यक्तिकी मृत्युकी तिथिपर वार्षिक श्राद्ध करना चाहिये। शास्त्रानुसार इस दिन एकोद्दिष्टश्राद्ध करनेका विधान है, जिसमे केवल मृत जीवके निमित्त एक पिण्डका दान तथा कम-से-कम एक और अधिक-से-अधिक तीन ब्राह्मणाको भोजन कराया जाता है।

२-पितृपक्ष—पितृपक्षमे मृत व्यक्तिकी मृत्युतिथिपर मुख्य रूपसे पार्वणश्राद्ध करनेका विधान है, जिसमे पिता पितामह, प्रपितामह सपत्नीक यानी तीन चटमे छ व्यक्तियोका श्राद्ध सम्पन्न होता है। इसके साथ ही मातामह, प्रमातामह वृद्धप्रमातामह (नाना, परनाना, वृद्धपरनाना) सपत्नीकके भी तीन चटम छ व्यक्तियाका श्राद्ध होता है। इसीके समान एक चट और लगायी जाती है, जिसपर निकटतम सम्बन्धियाके निमित्त पिण्डदान किया जाता है। इसके अतिरिक्त विश्वेदवके दो चट लगते हैं। इस प्रकार नौ चट लगाकर नौ ब्राह्मणाको भोजन कराया जाता है। उत्तम ब्राह्मण उपलब्ध न होनेपर कम-स-कम एक सन्ध्या-वन्दन आदि करनवाल सात्त्विक ब्राह्मणको अवश्य भोजन कराना चाहिये। पार्वणम नवदैवत्यश्राद्ध भी हाता है।

श्राद्ध-संस्कारकी सम्पन्नता—एकोद्दिष्ट एव पार्वणश्राद्ध-संस्कार किसी कारणवश न हो सकनेकी स्थितिम कम-स-कम सङ्कल्प करके केवल एक ब्राह्मणको भोजन करा देनेसे भी श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। किसी यात्राम जाने, रोगी होने या धन न हानस पाकभोजन न करा सके तो सङ्कल्प करके कवल सूखा एव कच्चा अन्न, घृत, चीनी, नमक आदि पदार्थोंको श्राद्धभोजनके निमित्त किसी ब्राह्मणको दे देना चाहिये या गौको गोग्रास खिलाना चाहिये। सब प्रकारके अभाव होनेपर वनमे जाकर अपने दोनो बाहुआको उठाकर सूर्यको दिखाते हुए विष्णुपुराणके अनुसार उच्च स्वरम यह कहे—

न मेऽस्ति वित्त न धन च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्य स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥

(३।१४।३०)

इसका भाव यह है कि हे मेरे पितृगण! मेरे पास श्राद्धके लिये धन आदि कुछ भी वस्तु नहीं है, मैं अपनी श्रद्धा-भक्ति आपको समर्पित करता हूँ, आपको प्रणाम करता हूँ, आप तृप्त हो जायँ।

सामान्य रूपसे श्राद्धकी प्रक्रिया इस प्रकार है—

सर्वप्रथम श्राद्धदेशमे आकर यथास्थान बैठकर आचमन आदिसे पवित्र हो जाय, सभी श्राद्धीय सामग्रियोको यथास्थान रख ले। गयाधाम तथा गदाधर भगवान् विष्णुका स्मरण-पूजनकर कर्मपात्र बना ले और कर्मपात्रके जलसे अपना तथा सभी श्राद्धीय सामग्रियाका प्राक्षण कर ले। तदनन्तर पीली सरसोसे दिग्रक्षण कर दक्षिण कटिभागम नीवीबन्धन कर ले। फिर श्राद्धका प्रतिज्ञासङ्कल्प कर निम्न पितृगायत्रीका तीन बार पाठ करे—

ॐ देवताभ्य पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नम स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नम ॥

तदनन्तर सङ्कल्पपूर्वक विश्वेदेवा तथा पितराको आसनदान द। आसनदानके अनन्तर विश्वेदेवा तथा पितराका आवाहन करे और अर्घपात्राका निर्माण कर अर्घ प्रदान कर। अर्घप्रदानके बाद विश्वेदेवों तथा पितरोंका

पूजन करे। तदनन्तर पृथक्-पृथक् मण्डल बनाकर अग्नौकरण करे और पृथक्-पृथक् पात्रामे बने हुए पाकमेंसे अन्नपरिवेषण करे। तदनन्तर पात्रालम्भन करके अन्नदानका सङ्कल्प करे, पुन पितृगायत्रीका पाठ करे तथा वेद-शास्त्रादिका पाठ करे। तदनन्तर विकिरदान करके पिण्डवेदी बनाये। वेदीपर रेखाकरण करे, उल्मुक स्थापित करे और पितरोके लिये अवनेजनदानका पृथक्-पृथक् सङ्कल्प करे। तत्पश्चात् पिण्डवेदीपर कुश बिछाकर पिण्डदान करे। लेपभाग देकर श्वासनियमन करे आर पुन सङ्कल्पपूर्वक प्रत्यवनेजनदान करे। तदनन्तर नीवीको विसर्जित करे और सूत्रदान तथा पिण्डपूजन करके अक्षय्योदकदानका सङ्कल्प करे। पुन पिण्डोपर जलधारा तथा दुग्धधारा दे। तदनन्तर पिण्डाघ्राण करके अर्घसञ्चालन कर और दक्षिणादानका सङ्कल्प करे तथा पितरा और विश्वेदेवका विसर्जनकर पितृगायत्रीका पाठ करक दीपक बुझा दे और श्राद्धकर्म भगवान्का अर्पित कर दे। इस प्रकार सक्षेपमे यह श्राद्धकी विधि है। एकोद्दिष्ट, सपिण्डीकरण आदिकी विशेष विधियाँ हैं।

श्राद्धविधिम श्रद्धा एव शुद्ध मन्त्रोच्चारणसहित नाम, गोत्रके साथ पितराका आवाहन किया जाता है। अत श्राद्धकर्ममे अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये। श्राद्ध-सस्कारमे सात चीजे—शरीर द्रव्य, स्त्री, भूमि, मन, मन्त्र और ब्राह्मण विशेष शुद्ध होने चाहिये तथा इसमे तीन बातो—शुद्धि अक्रोध और अत्वरा (जल्दबाजी न करने)-का ध्यान रखना चाहिये। श्राद्धमे मन्त्रका विशेष महत्त्व हाता है। मन्त्र और नामका उच्चारण शुद्ध न होनेपर श्राद्धम प्रदत्त वस्तुएँ पितरातक नहीं पहुँचतीं।

श्राद्धम कुतप वेला (दिनम ११ बजकर ३६ मिनटसे १२ बजकर २४ मिनटतकका समय) अत्यन्त प्रशस्त है। इसी प्रकार दोहित्र (कन्याका पुत्र), कृष्ण तिल, कुश, गङ्गाजल, तुलसी एव चाँदीकी विशेष महिमा है।

मानवमात्रको अपने पितराका श्राद्ध-सस्कार सम्पन्न करक आधिदैविक, आधिभौतिक एव आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करनी चाहिये।

हिन्दूधर्ममे सस्कारोका महत्त्व

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

'सस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातुमे 'घञ्' प्रत्यय लगानेपर 'सपरिभ्या करोतौ भूषणे' इस पाणिनीय सूत्रसे भूषण अर्थम 'सुट्' करनेपर सिद्ध होता है। इसका अर्थ है—सस्करण परिष्करण विमलीकरण तथा विशुद्धीकरण आदि। जिस प्रकार किसी मलिन वस्तुको धो-पाछकर शुद्ध-पवित्र बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्णको आगमे तपाकर उसक मलाको दूर किया जाता है और मलक जल जानेपर सुवर्ण विशुद्धरूपम चमकने लगता है ठीक उसी प्रकारस सस्काराके द्वारा जीवके जन्म-जन्मान्तरोसे सचित मलरूप निकृष्ट कर्म-सस्कारोका भी दूरीकरण किया जाता है। यही कारण है कि हमारे सनातनधर्मम बालकके गर्भमे आनेस लेकर जन्म लेनेतक और फिर बूढे होकर मरनेतक सस्कार किये जाते हैं। जैसा कि शास्त्रमें कहा गया है—

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजा ।
निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषा वै मन्त्रत क्रिया ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १०)

गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिकर्मतक द्विजमात्रके सभी सस्कार वेदमन्त्रोके द्वारा ही होते हैं। सस्कारसे मनुष्य द्विजत्वको प्राप्त हाता है।

सस्काराकी मान्यताम कुछ मतभेद भी हैं। गौतमधर्मसूत्र (१।८।८)-मे ४० सस्कार माने गये हैं—'चत्वारिशत् सस्कारै सस्कृत ।' महर्षि अङ्गिरा २५ सस्कार मानते हैं। परतु व्यासस्मृतिमे १६ सस्कार माने गये हैं। अन्यत्र १६ सस्काराके नाम इस प्रकार हैं—

(१) गर्भाधान (२) पुसवन, (३) सीमन्तोन्नयन (४) जातकम (५) नामकरण (६) निष्क्रमण (७) अन्नप्राशन (८) चूडाकरण (९) कर्णवेध (१०) उपनयन

(११) केशान्त, (१२) समावर्तन (१३) विवाह, (१४) वानप्रस्थ, (१५) परिव्राज्य या सन्यास और (१६) पितृमेध या अन्त्यकर्म-सस्कार।

इन सस्काराका व्यासस्मृति एव मनुस्मृतिके विभिन्न श्लोकामे महत्त्वपूर्ण ढगसे वर्णन किया गया है। अत इन सस्काराका अनुष्ठान करना नितान्त आवश्यक है।

इन सस्काराके करनेका अभिप्राय यह है कि जीव न जाने कितने जन्मासे किन-किन योनियाम अर्थात् पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, सरीसृप, स्थावर, जङ्गम, जलचर, थलचर, नभचर एव मनुष्य आदि योनियामे भटकते हुए किस-किस प्रकारके निकृष्टतम कर्म-सस्काराको बटोरकर साथमे ले आते हैं, पता नहीं चलता। इन्हीं कर्म-सस्काराको नष्ट-भ्रष्ट करके या क्षीण करक उनके स्थानम अच्छे और नये सस्काराको भर देना या उत्पन्न कर देना ही इन सस्काराका अभिप्राय है।

सस्कारासे ही बालक सद्गुणी, उच्च विचारवान्, सदाचारी, सत्कर्मपरायण, आदर्शपूर्ण, साहसी एव सयमी बनेगा। बालकके ऐसा बननेपर देश तथा समाज भी एसा ही बनेगा, किंतु बालकके सस्कारहीन होनेसे वह देशका बिगाडेगा अर्थात् अधर्माचरणवाला नास्तिक तथा दशद्रोही बनकर समाजको दूषित करेगा जिसक परिणामस्वरूप वह चोरी डकैती आतङ्कवाद, कलह, वैर तथा युद्ध-जैसी परिस्थिति उपस्थित कर सकता है। इसलिये हिन्दू-समाजके बालकोका जन्मके पूर्वसे ही सस्कार करानेका विधान है।

सोलह सस्कार

(१) गर्भाधान—सस्कारोमे गर्भाधान प्रथम सस्कार है। यहींसे बालकका निर्माण होता है। गृहस्थाश्रममे प्रवेश करनेके पश्चात् दम्पती—युगलको पुत्र उत्पन्न करनेके लिये मान्यता दी गयी है। इसलिये शास्त्रम कहा गया है—**'गर्भाधान प्रथमत '** (व्यासस्मृति १।१६)। उत्तम सतान प्राप्त करनेक लिय प्रथम गर्भाधान-सस्कार करना होता है। पितृ-ऋणसे उऋण होनेके लिये ही सतान-उत्पादनार्थ यह सस्कार किया जाता है। इस सस्कारसे बीज तथा गर्भसे सम्बन्धित मलिनता आदि दोष दूर हो जाते हैं जिससे उत्तम सतानकी प्राप्ति होती है।

(२) पुसवन—जीव जब पिताके द्वारा मातृगर्भमें आता है, तभीसे उसका शारीरिक विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। बालकके शारीरिक विकास अनुकूलतापूर्वक हों, इसीलिये यह सस्कार किया जाता है। शास्त्रम कहा गया है—**'तृतीये मासि पुसव '** (व्यासस्मृति १।१६)। गर्भाधानसे तीसरे महीनेम पुसवन-सस्कार किया जाता है। इस सस्कारसे गर्भमे आया हुआ जीव पुरुष बनता है। कहा भी है—**'पुमान् सूयते येन कर्मणा तदिद पुसवनम्।'** जिस कर्मसे वह गर्भस्थ जीव पुरुष बनता है, वही पुसवन-सस्कार है।

वैद्यक शास्त्रक अनुसार चार महीनेतक गर्भका लिङ्गभेद नहीं होता है। इसलिये लडका या लडकीके चिह्नकी उत्पत्तिसे पूर्व ही इस सस्कारको किया जाता है। इस सस्कारमे औषधिविशेषको गर्भवती स्त्रीकी नासिकाके छिद्रसे भीतर पहुँचाया जाता है। सुश्रुतसहिता (२।३४)-क अनुसार जिस समय स्त्रीने गर्भधारण कर रखा हो, उन्हीं दिनाम लक्ष्मणा वटशुगा सहदेवी और विश्वदेवा—इनमेसे किसी एक औषधिको गोदुग्धके साथ खूब महीन पीसकर उसकी तीन या चार बूँदे उस स्त्रीकी दाहिनी नासिकाके छिद्रमे डाले। इससे उसे पुत्रकी प्राप्ति होगी।

(३) सीमन्तोन्नयन—इस सस्कारका उद्देश्य है गर्भिणी स्त्रीकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक स्वस्थता, सयम सतुष्टि एव गर्भस्थ शिशुकी शरीरवृद्धिका उपाय करना। अत छठे या आठवे मासम इस सस्कारको अवश्य कर लेना चाहिये।

(४) जातकर्म—गर्भस्थ बालकके जन्म होनेपर यह सस्कार किया जाता है—**'जाते जातक्रिया भवेत्।'** इसमे सोनेकी शलाकासे विषम मात्रामे घृत और मधु घिस करके बालकको चटाया जाता है। इससे माताके गर्भमे जो रस पीनेका दोष है, वह दूर हो जाता है और बालककी आयु तथा मेधाशक्तिको बढानेवाली औषधि बन जाती है। सुवर्ण वातदोषको दूर करता है, मूत्रको भी स्वच्छ बना देता है और रक्तके ऊर्ध्वगामी दोषको भी दूर कर देता है। मधु लाला (लार)-का सचार करता है और रक्तका शोधक होनेके साथ-साथ बलपुष्टिकारक भी है।

(५) नामकरण—नामकरण-सस्कार बालकके जन्म

होनेके ग्यारहवे दिनम कर लेना चाहिये। कारण यह है कि पराशरस्मृतिके अनुसार जन्मके सूतकमें ब्राह्मण दस दिनम, क्षत्रिय बारह दिनमे, वैश्य पद्रह दिनमे ओर शूद्र एक मासमे शुद्ध होता है। अत अशौच बीतनेपर ही नामकरण-सस्कार करना चाहिये, क्याकि नामके साथ मनुष्यका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

नाम प्राय दो होत है, एक गुप्त नाम दूसरा प्रचलित नाम। जसे कहा है—'**द्वे नामनी कारयेत् नाक्षत्रिक नाम अभिप्रायिक च**' (चरकसहिता)। दो नाम निश्चित कर, एक नाम नक्षत्र-सम्बन्धी हो और दूसरा नाम रुचिके अनुसार रखा गया हो। गुप्त नाम केवल माता-पिताको छोडकर अन्य किसीको मालूम न हो। इससे उसके प्रति किया गया मारण उच्चाटन तथा मोहन आदि अभिचार कर्म सफल नहीं हो पाता है। नक्षत्र या राशियाके अनुसार नाम रखनेसे लाभ यह है कि इससे जन्मकुण्डली बनानेम आसानी रहती है। नाम भी बहुत सुन्दर और अर्थपूर्ण रखना चाहिये, अशुभ तथा भद्दा नाम कदापि नहीं रखना चाहिये।

(६) निष्क्रमण—बालकका घरके भीतरसे बाहर निकालनको निष्क्रमण कहते हैं। इसमे बालकको सूर्यका दर्शन कराया जाता है। बच्चेके पैदा होते ही उसे सूर्यके प्रकाशमे नहीं लाना चाहिय। इससे बच्चेकी आँखापर बुरा प्रभाव पड सकता है। इसलिये जब बालककी आँख तथा शरीर कुछ पुष्ट बन जायँ, तब इस सस्कारको करना चाहिये।

(७) अन्नप्राशन—इस सस्कारम बालकको अन्न ग्रहण कराया जाता है। अबतक तो शिशु माताका दुग्धपान करके ही वृद्धिको प्राप्त होता था अब आगे स्वय अन्न ग्रहण करके ही शरीरको पुष्ट करना होगा क्याकि प्राकृतिक नियम सबक लिये यही है। अब बालकको परावलम्बी न रहकर धीरे-धीर स्वावलम्बी बनना पडेगा। कवल यही नहीं, आगे चलकर अपना तथा अपने परिवारके सदस्याके भी भरण-पोषणका दायित्व सँभालना होगा। यही इस सस्कारका तात्पर्य है।

(८) चूडाकरण—अन्नप्राशन-सस्कार करनेके पश्चात् चूडाकरण-सस्कार करनेका विधान है। यह सस्कार पहले या तीसरे वर्षमे कर लेना चाहिय। मनुस्मृति (२।३५)-के कथनानुसार द्विजातियाका पहले या तीसर वर्षम (अथवा कुलाचारके अनुसार) मुण्डन कराना चाहिये—ऐसा वेदका आदश है। कारण यह है कि माताके गर्भसे आये हुए सिरके बाल अर्थात् केश अशुद्ध होते हैं। दूसरी बात वे झडते भी रहते हैं, जिससे शिशुके तेजकी वृद्धि नहीं हो पाती। उन केशोको मुँडवाकर शिशुको शिखा (चोटी) रखी जाती है। शिखासे आयु और तजकी वृद्धि होती है।

(९) कर्णवेध—यह सस्कार कर्णेन्द्रियमे श्रवणशक्तिकी वृद्धि कर्णम आभूषण पहनने तथा स्वास्थ्यरक्षाके लिये किया जाता है। विशेपकर कन्याओके लिये तो कर्णवेध नितान्त आवश्यक माना जाता है। इसमे दोना कानोको वेध करके उसकी नसको ठीक रखनेके लिये उसम सुवर्णका कुण्डल धारण कराया जाता है। इससे शारीरिक लाभ होता है।

(१०) उपनयन—मनुष्य-जीवनके लिये यह सस्कार विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस सस्कारके अनन्तर ही बालकके जीवनमे भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग प्रशस्त होता है। इस सस्कारम वेदारम्भ-सस्कारका भी समावेश है। इसीको यज्ञोपवीत-सस्कार भी कहते हैं। इस सस्कारमें बटुकको गायत्रीमन्त्रकी दीक्षा दी जाती है और यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है। इस सस्कारके बाद ही वेदारम्भ होता है। विशेपकर अपनी-अपनी शाखाके अनुसार वेदाध्ययन किया जाता है।

यह सस्कार ब्राह्मणबालकका आठव वर्षम, क्षत्रियबालकका ग्यारहव वर्षम और वैश्यबालकका बारहवें वर्षम होता है। कन्याआको इस सस्कारका अधिकार नहीं दिया गया है। कवल विवाह-सस्कार ही उनके लिये द्विजत्वक रूपम परिणत करनेवाला सस्कार माना गया है।

(११) केशान्त—बालकका प्रथम मुण्डन प्राय पहले या तीसरे वर्षम हो जाता है यह बात पहले ही कही जा चुकी है। प्रथम मुण्डनका प्रयोजन कवल गर्भके केशमात्र दूर करना होता है। उसक बाद इस केशान्त-

सस्कारम भी मुण्डन करना होता है, जिससे बालक वेदारम्भ तथा क्रिया-कर्मोके लिये अधिकारी बन सके अर्थात् वेद-वेदाङ्गाके पढने तथा यज्ञादिक कार्योंम भाग ल सके। इसलिय कहा भी है—**'केशान्तकर्मणा तत्र यथोक्तचरितव्रत '** (व्याससमृति १।४१)। अर्थात् शास्त्रोक्त विधिसे भलीभाँति व्रतका आचरण करनेवाला ब्रह्मचारी इस केशान्त-सस्कारम सिरके केशाको तथा श्मश्रुके बालाको कटवाता है।

(१२) समावर्तन—यह सस्कार विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेपर किया जाता है। प्राचीन परम्परामे बारह वर्पतक आचार्यकुल या गुरुकुलम रहकर विद्याध्ययन परिसमाप्त हा जानेपर आचार्य स्वय शिष्याका समावर्तन-सस्कार करते थे। उस समय वे अपने शिष्याको गृहस्थ-सम्बन्धी श्रुतिसम्मत कुछ आदर्शपूर्ण उपदश दकर गृहस्थाश्रमम प्रवशके लिये प्ररित करत थे।

जिन विद्याआका अध्ययन करना पडता था वे हैं—चारा वेद वेदाङ्गम—शिक्षा कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिपशास्त्र। उपवेदम—अर्थवेद धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद आदि। ब्राह्मणग्रन्थामे—शतपथब्राह्मण, ऐतेरयब्राह्मण ताण्ड्यब्राह्मण और गापथब्राह्मण आदि। उपाङ्गामे—पूर्वमीमासा, वैशेपिकशास्त्र, न्याय (तर्कशास्त्र), यागशास्त्र साख्यशास्त्र और वेदान्तशास्त्र आदि।

(१३) विवाह—स्नातकोत्तर जीवन विवाहका समय होता है अर्थात् विद्याध्ययनके पश्चात् विवाह करके गृहस्थाश्रममे प्रवेश करना होता हे। यह सस्कार पितृ-ऋणस उऋण होनेके लिये किया जाता है। मनुष्य जन्मसे ही तान ऋणासे ऋणी बनकर जन्म लेता हे। देव-ऋण ऋपि-ऋण और पितृ-ऋण—ये तीन ऋण हैं। इनमसे अग्निहोत्र अर्थात् यज्ञादिक कार्योस देव-ऋण वेदादिक शास्त्रोके अध्ययनसे ऋपि-ऋण और विवाहित पत्नीस पुत्रोत्पत्ति आदिके द्वारा पितृ-ऋणसे उऋण हुआ जाता है।

(१४) वानप्रस्थ—पुत्रका पुत्र अर्थात् पौत्रका मुख देख लेनेक पश्चात् पितृ-ऋण चुक जाता है। यदि घर छोडनेकी सम्भावना न हो ता घरका दायित्व ज्येष्ठ पुत्रको सौंपकर अपने जावनको आध्यात्मिक जावनमें परिवर्तित कर लेना चाहिये। स्वाध्याय मनन, सत्सङ्ग, ध्यान ज्ञान, भक्ति तथा योगादिक साधनाके द्वारा अपने जीवनस्तरको ऊँचा उठाना चाहिये। इससे सन्यासधर्मके लिये याग्यता भी आ जाती है।

(१५) परिव्राज्य या सन्यास—सन्यासका अभिप्राय है सम्यक् प्रकारसे त्याग। सन्यास-आश्रमम प्रवेश करनेके लिये भी सस्कार करना पडता है। इसलिये श्रुतिमें कहा गया है—**'ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्। गृहाद् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।'** (परमहसपरिव्राजकोपनिपद्)

अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करक गृहस्थाश्रमम प्रवेश करे, गृहस्थाश्रमके पश्चात् वानप्रस्थाश्रमम प्रवेश कर और उसके बाद अन्तिम—चौथे सन्यास आश्रमम प्रवश करे, यही वैदिक मान्यता है। सन्यास-आश्रमम प्रवेश करके ब्रह्मविद्याका अभ्यास करना पडता है और ब्रह्माभ्यासक द्वारा कैवल्य—मोक्षकी प्राप्तिका उपाय करना हाता है। कवल यही नहीं, पुत्रैपणा वित्तैपणा एव लाकैपणा आदि समस्त एपणाआका परित्याग भी कर देना होता है। इससे मोक्षमार्ग प्रशस्त बन जाता है। जो सन्यासी आश्रम—मठासे बाहर विचरण करत हा, उनके लिय भिक्षावृत्तिस जावन-निवाह करनेका विधान किया गया ह।

(१६) पितृमेध या अन्त्यकर्म—यह अन्तिम सस्कार है। मृत्युके पश्चात् यह सस्कार किया जाता है। इस सस्कारको पितृमेध अन्त्यकर्म दाह-सस्कार, श्मशानकर्म तथा अन्त्येष्टि-क्रिया आदि भी कहते हैं। यह सस्कार भी वेदमन्त्राके उच्चारणके द्वारा होता है। हिन्दूधर्ममे मृत्युके बाद दाह-सस्कार करनेका विधान है। केवल सन्यासी-महात्माओके लिये—निरग्नि होनेके कारण शरीर छूट जानपर भूमिसमाधि या जलसमाधि आदि देनेका विधान है कहीं-कहीं सन्यासीका भी दाह-सस्कार किया जाता है और उसमे कोई दोप नहीं माना जाता है। ये व सालह सस्कार है जो हिन्दूधर्मके मेरदण्डके समान हैं।

संस्कारोके निर्माणके मूल तत्त्व

(श्रीसुशीलजी चौमाल)

नवीन सस्काराके निर्माणमे कुछ ऐसे तत्त्व है जो मानवको विशेषरूपसे प्रभावित करते हैं, फलत वे सूक्ष्म सस्कार घनीभूत होकर व्यक्तिका जीवन तद्वत् गतिशील बनाते हैं। अच्छा परिवेश अच्छा वातावरण मिले तो अच्छे सस्काराक निर्माणकी सम्भावना रहती है और बुरा परिवेश मिलनेपर व्यक्ति असन्मार्गमे आरूढ हो जाता है। सतजनाका साथ, भगवद्भक्ति, गङ्गादि पवित्र नदियाम नित्य स्नान आदि ऐसे तत्त्व हैं, जो व्यक्तिको उत्तम सस्कारसम्पन्न बनाकर उसके आध्यात्मिक पथको प्रशस्त कर देते हैं। यहाँ सक्षेपमे कुछ बातोको दिया जा रहा है—

१-सत्सङ्ग

सत्सङ्गति बुद्धिकी जडताको हरती है, वाणीमे सत्यका सञ्चार करती है, सम्मानकी वृद्धि करती है, पापोको दूर करती है, चित्तको प्रसन्न करती है और दसो दिशाआमे कीर्तिको फैलाती है। कहो सत्सङ्गति मनुष्यमे क्या नहीं करती।*

अच्छे लोगोका साथ करनेसे बुद्धि निर्मल और तेज होती है, सत्य बोलनेकी प्रेरणा मिलती है। बुद्धिके शुद्ध होनेसे अच्छे कार्य होते हैं, सत्य बोलनेस वाणीका तेज बढता है, मनमे प्रसन्नता आती है। इसीलिये कहा गया है कि सज्जनाके साथ रहना चाहिये सज्जनाका ही सङ्ग करना चाहिये और सज्जनासे ही विचार-विमर्श ओर मित्रता भी करनी चाहिय। असज्जनसे तो कोई सम्पर्क ही नहीं रखना चाहिये—

सद्भिरासीत सतत सद्भि कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवाद मैत्रीं च नासद्भि किञ्चिदाचरेत्॥

(गरुडपुराण पूर्व० ११३।२)

नीतिमे बताया गया है कि सज्जनाका साथ भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति और गङ्गाजलम स्नान—ये तीन इस असार ससारम सारतत्त्व हैं—

सत्सङ्ग केशवे भक्तिर्गङ्गाम्भसि निमज्जनम्।
असारे खलु ससारे त्रीणि साराणि भावयेत्॥

यदि अच्छे व्यक्तियाका, सत्पुरुषोका, सत-महात्माओका साथ हो तो उसका सुफल शीघ्र ही मिलता है। कठिन समयम इनसे प्रेरणा मिलती है, अच्छी सलाह मिलती है हर प्रकारका सहयोग मिलता है। साथ ही इनसे किसी प्रकारका नुकसान होनेकी सम्भावना भी नहीं रहती, बल्कि बिगडते हुए कार्यको ये सुधार भी देते हैं। ये लोक भी बना देते है तथा परलोक भी बना देते हैं।

मनुष्यकी बुद्धि उसकी मनोवृत्तिके अनुसार होती है, लेकिन उसका चरित्र साथ रहनेवालासे प्रभावित होता है। इस जीवनमें तीन अच्छे एव सच्चे मित्र हैं—मधुरभाषण, सज्जनोका साथ तथा अच्छे सस्कार—ये तीनो जिनके पास हैं, वे सबस अधिक सुखी है। पारस पत्थर यदि लोहेको स्पर्श कर दे तो वह सोना हो जाता है, पर सज्जन पुरुष तो अपने साथ रहनेवालेको अपने-जैसा ही बना लेते हैं। महर्षि वाल्मीकिकी कथा सबको ज्ञात हे। वे जगलम रहते थे और आने-जानेवाले पथिकाको लूट लिया करते थ नारदमुनिका कृपा हुई ओर रत्नाकर नामक क्रूर, हिसक व्यक्ति वाल्मीकि मुनिके नामसे विख्यात हा गये।

कुसङ्गतिसे फलित कुसस्काराम पडकर मनुष्यकी बुद्धि दूषित हो जानेपर वह बुरे कर्म करता है, जिससे सभी उससे दूर रहने लगते हैं। सत्सङ्गतिसे फलित अच्छे सस्कारासे बुद्धि अच्छे कार्योंम लगती है सन्मार्गपर उसका लगाव होता है। सत-पुरुषाक गुण उसके अदर आने लगते हे। दान धर्म क्षमा परोपकार-जैसे उत्तम गुण अपन अदर

* जाड्य धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्य मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति।
चेत प्रसादयति दिक्षु तनाति कीर्तिं सत्सङ्गति कथय कि न करोति पुसाम्॥ (नीतिशतक २३)

आते हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि सदैव अच्छे संस्कारोंको अपनाये और बुरे संस्कारोंसे दूर रहे अर्थात् सज्जनोंका साथ करे और दुर्जनोंका साथ छोड़ दे। विदुरनीतिमें ये छः लौकिक सुख कहे गये हैं—नीरोग रहना, ऋण न लेना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगों—संतोंका साथ, स्वतन्त्र आजीविका और सदा निर्भय रहना।* यह ध्यान रखना चाहिये कि इन सबमें संतोंका साथ रखकर अच्छे संस्कारोंका निर्माण सर्वोपरि सुख है।

२-भगवद्भक्ति

श्रीमद्भगवद्गीताके अध्याय १२में श्लोक-संख्या १३ से २० तकके श्लोकोंमें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्तोंके लक्षण, गुण, कर्तव्य, संसारमें रहनेके नियम और जन्म-मरणके चक्करसे मुक्त होनेकी राह बतलायी है। मात्र ८ श्लोक हैं, किंतु ये अच्छे संस्कारोंके मूलभूत हैं। बहुत महत्त्वके होनेसे तथा भगवद्वाणी होनेसे ये श्लोक यहाँ दिये जा रहे हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है।

जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्यागी है—वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है।

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही संतुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

परंतु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतका निष्काम प्रेमभावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।

उपर्युक्त श्लोकोंको प्रतिदिन पढ़ना चाहिये, इनके अर्थका मनन करना चाहिये और इन गुणोंको धारण करनेका पूर्ण प्रयास करना चाहिये। यह समझना चाहिये कि यदि इनमेंसे एक गुणकी भी अपनेमें प्रतिष्ठा हो जाय तो लोक-परलोक दोनों बन जायँ।

* आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः। स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥ (विदुरनीति १।९४)

३-गङ्गा आदि पवित्र नदियोमे स्नान

अच्छे संस्कारोके निर्माण, उनकी प्रतिष्ठा एव मर्यादाकी रक्षाके लिय गङ्गा आदि पवित्र नदियोके जलमे नित्य स्नान, तर्पण, दान आदिका नियम ले लेनेसे व्यक्तिमे सदाचारकी प्रतिष्ठा हो जाती है। उसके सन्ध्या आदि नियम भी सरलतासे सध जाते हैं। कदाचित् नित्य प्रात -स्नान, सन्ध्या आदिका नियम बन जाय तो अन्य संस्कारोकी मूलभित्ति तैयार हो जाती है, क्याकि यह सबसे बडा संस्कार है और नवीन संस्कारोक निर्माणमे इसका विशेष योगदान है।

४-भोजनका संस्कारोपर प्रभाव

भोजनको सामान्य खाना न मानकर उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये। बहुत ही निर्मल शुद्ध और प्रेमके वातावरणमे भोजन—प्रसाद बने और पूर्ण प्रेमसे ईश्वरको भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। भोजन—प्रसादकी यही सार्थकता है। प्रसादका वितरण कर फिर स्वय ग्रहण करना चाहिये।

भोजन बनाते समय तथा ग्रहण करते समय हम जिस विचारधाराम होते हैं, जो देखते हैं, सुनते है, सोचते हैं या मनन करते है—वैसे ही अन्नके संस्कारोसे हम धीरे-धीरे प्रभावित होकर वैसे ही बन जाते हैं। संस्कारित भोजनके अभ्याससे अच्छे संस्कारोका जीवनम समावेश हो जाता है।

५-वाणीका नियन्त्रण

वाणीका नियन्त्रण भी एक उत्तम संस्कार है और उत्तम संस्कारोको जन्म देता है। इसीलिये वाक्-सयमको तपकी सज्ञा दी गयी है। ऐसे ही क्षमा भी विशाल हृदयकी एक उदात्त वृत्ति है, यह साधुताका प्रधान लक्षण है। अत संस्कारसम्पन्न होनेके लिय इन गुणोको आत्मसात् करना चाहिये।

~~ 0 ~~

परिवार—संस्कारोकी आधारशिला

(श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता एम्०ए० बी०एड्०)

सुसंस्कारित पारिवारिक जीवन-पद्धति भारतीय संस्कृति और सनातन धर्मकी आधारशिला है। मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त परिवारम ही रहते हुए जीवन व्यतीत करता है। उसके संस्कारोका निर्माण, उसकी दिनचर्या (प्रात कालसे रात्रिशयनतक), बोलचाल आचार-विचार, रहन-सहन, आहार-विहार तथा आचरण—ये सब प्राय परिवारके अनुसार बनत हैं। *'एकै साधे सब सधै'* की कहावतके अनुसार बालकका सर्वाङ्गीण सुसंस्कारित विकास होनेपर मानवमात्र सुसंस्कारित हो जायगा क्योकि वह परिवार समाज देश और विश्वकी एक इकाईके रूपमे है और उसका भावी निर्माता है। कहावत है कि 'शिशुकी प्रथम पाठशाला परिवार है।' माता-पिता ही प्रथम गुर हैं।

बालकका लालन-पालन चरित्र-निर्माण नैतिक आचरण और उसकी शिक्षा-दीक्षा—ये सब माता-पिताके हाथोम होते हैं। माता-पिता बूढे-बुजुर्गोके समस्त क्रिया-कलाप आचरण-व्यवहार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे देख-सुनकर बालक तदनुरूप उन्हे ग्रहण करता है और ये ही संस्कार उसके भावी जीवन कोमल बुद्धिपर तथा मनरूपी हृदयपटलपर छा जात हैं, जिससे उसके जीवनका निर्माण होता है। जैसे शिवाजीकी माताने बाल्यकालसे ही उन्हे जो सर्वाङ्गीण शिक्षा दी उसीके कारण शिवाजी भारतीय वीरोमे शिरामणि बने।

अतएव माता-पिता, परिवारके सदस्यो, रिश्तेदारा, पास-पडोस बडे-बूढे गुरुजनो, शिक्षकोका परम कर्तव्य है, उत्तरदायित्व है, धर्म है कि वे स्वयको सुसंस्कारित बनाये और अपने ही सुसंस्कारोके द्वारा सकारात्मक चिन्तनसे तथा नैतिक-चारित्रिक आचरणसे, काम, क्रोध, लोभ तथा अभिमानसे रहित हाकर नि स्वार्थ प्रेम-भावसे, त्याग और बलिदानसे अपना उत्तम विचार एव व्यवहार बालकपर प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न करे जिससे बालकमे निम्न शिक्षाप्रद संस्कारसम्पन्न सात्त्विक गुणाका प्रस्फुटन हा सक—

१-'सत्य वद'—सत्य बोलो।

२-'**धर्म चर**'—धर्मका आचरण करो।

३-'**स्वाध्यायान्मा प्रमद** '—अध्ययनमे चूक मत करो।

४-'**सत्यान्न प्रमदितव्यम्**'—सत्य वोलनेस जी नहीं चुराना।

५-'**धर्मान्न प्रमदितव्यम्**'—धर्मक पालनसे मुँह नहीं मोडना।

६-'**मातृदेवो भव**'—माताम देवबुद्धि करनेवाले बनो।

७-'**पितृदेवो भव**'—पिताको दवरूप समझनेवाले हाओ।

८-'**आचार्यदेवो भव**'—गुरु (शिक्षक)-का दवरूप समझनेवाले बना।

९-'**अतिथिदेवो भव**'—अतिथिको देवतुल्य समझनवाले होओ।

जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीके बर्तन बनाते समय कच्चे घडे (बर्तन)-पर जा भी आकृति, कलाकृति डिजाइन या लाइन (लकीर) बना देता हे वह अन्त समयतक (बर्तनके टूटनेतक) बनी रहती है, मिटती नहीं है, अमिट रहती है। उसी प्रकार माता-पिता, गुरु परिवारद्वारा डाले गये सुसस्कार या कुसस्कार उसक हृदयपटलपर—मनम मृत्युतक बने रहते हैं।

वालकके चरित्र-निर्माणके लिय दैवी सम्पदा*युक्त सस्कार डाले जायँ, जिससे उसका जीवन ऊर्ध्व गतिको प्राप्त हो सके और उस सच्चिदानन्दघनकी प्राप्ति हो सके। कुसस्कारोकी छाप होनेपर आसुरी वृत्ति—आसुरी सम्पदा (गीता १६।४ ७—२१)-की ओर बढकर व्यक्ति अधोगतिको प्राप्त होता है, वह विनाशकारी नरकके तीन द्वाराकी ओर जायगा। '**त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन** ' (गीता १६।२१)। काम क्रोध और लोभ—य तीन नरकके द्वार बताये गये हैं, जा चौरासी लाख योनियाम भ्रमण कराते हैं और जीवको रसातलम ले जाते हैं। आजका भारतीय युवा पाश्चात्य सभ्यता सस्कृति तथा सस्काराका अन्धानुकरण करनेम अपनी शान एव गरिमा समझता है तथा समाजम अपने-आपको उच्च शिखरपर बैठा हुआ मानता है। केवल युवा ही क्या, प्राय सभी आयुवर्गोंकी यहा स्थिति है। बच्चापर तो इसका जो प्रत्यक्ष प्रभाव पड रहा है और जा कुसस्कार उनम पनप रहे हैं, उसका भी रूप सामन दिखायी दे रहा है, अत बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। ऐसी स्थितिम बच्चे कैसे आज्ञाकारी बनग, कैसे पढने-लिखनम उनका मन लगगा और कस वे अनुशासनपालनका पाठ पढ सकगे?

यह बात भी सर्वथा असत्य नहीं कि आजके माता-पिता एव अभिभावकाम सनातनधर्मकी आचार-सहिताकी प्रतिष्ठा न होनसे उनक कुसस्कार ही वच्चाक आचरण बन रहे हैं। इस वातपर विचार करना चाहिये।

ऐसी स्थितिमे हम चाह कि परिवारमे समाजम, विद्यालयमे बालक सुसस्कारित वन तो यह कैसे सम्भव है? यह विचारणीय बिन्दु है। इसलिये पारिवारिक जनोको चाहिय कि यथाशक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग-द्वेष, ईर्ष्या, निन्दा तथा अहङ्कारका त्याग करते हुए प्रम शान्ति आदि सात्त्विक गुणाको अपनेमे लाय, ताकि बालकपर भी उनका प्रभाव पड सके। इसी प्रकारका सुसस्कृत परिवार ही उत्तम सस्काराका जन्म दे सकता है।

~~ 0 ~~

---

* अभय सत्त्वसशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थिति । दान दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिसा सत्यमक्रोधस्त्याग शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलोलुप्त्व मार्दव ह्रीरचापलम्॥
तज क्षमा धृति शौचमद्रोहो नातिमानिता। भवन्ति सम्पद दैवीमभिजातस्य भारत॥ (गीता १६।१—३)

[**श्रीभगवान् बोले—**] भयका सर्वथा अभाव अन्त करणकी पूर्ण निर्मलता तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ स्थिति और सात्त्विक दान इन्द्रियाका दमन भगवान्, दवता और गुरुजनोकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एव वेद-शास्त्रोका पठन-पाठन तथा भगवान्‌क नाम और गुणाका कार्तन स्वधर्मपालनक लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियाक सहित अन्त करणकी सरलता मन वाणी और शरारसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना यथार्थ और प्रिय भाषण अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न हाना कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग अन्त करणका उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव किसीकी भी निन्दादि न करना सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया इन्द्रियाका विषयाके साथ सयोग हानेपर भी उनम आसक्तिका न होना कामलता लोक और शास्त्रस विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव तेज क्षमा धैर्य बाहर-भातरकी शुद्धि एव किसार्म भी शत्रुभावका न होना और अपनेमं पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

मनुस्मृति और संस्कार

(साहित्यवाचस्पति डॉ० श्रीरजनसूरिदेवजी)

स्मृतिकार महाराज मनुने संस्कारका केन्द्रीय अर्थ मन, वचन और शरीरकी पवित्रता या शुद्धिसे संदर्भित माना है। इसके लिये उनका यह वचन नीतिकाराके लिये भी ग्राह्य हुआ है—

दृष्टिपूत न्यसेत्पाद वस्त्रपूत जल पिबेत्।
सत्यपूता वदद्वाच मन पूत समाचरेत्॥

(६।४६)

अर्थात् देखनम पवित्र प्रतीत होनेवाली भूमिपर पेर रखना चाहिय, वस्त्रसे छाना हुआ जल पीना चाहिये, सत्यसे पवित्र वचन बोलना चाहिये ओर मनसे पवित्र आचरण करना चाहिय।

मनुने गर्भाधानसे अन्त्येष्टितक बारह संस्काराको परिभाषित किया है। उन्हाने कणवध, विद्यारम्भ वेदारम्भ और अन्त्येष्टिका प्रकारान्तरसे स्वतन्त्र वर्णन किया है। ये सभी सोलह सम्कार मानवके मन, वचन ओर शरीरके पवित्रीकरणसे जुडे हुए हैं। मनुने अपनी स्मृतिका निर्माण मानवकी बहिरन्त शुद्धिके लिय ही किया है, इसलिये मनुस्मृतिकी अपर सज्ञा मानव-धर्मशास्त्र है। उन्होंने मन, वचन और शरीरजनित कर्मोंके शुभाशुभ फलोके अनुसार ही मनुष्यकी उत्तम, मध्यम और अधम गतिकी प्राप्तिका निर्देश किया है—

शुभाशुभफल कर्म मनोवाग्देहसम्भवम्।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमा ॥

(१२।३)

इसलिये मनुष्यको मन, वचन और शरीर—इन तीनो स्तरोपर संस्कारशुद्ध होना अनिवार्य है। इन तीना स्तरोके कर्मोंकी व्याख्या उन्हाने इस प्रकार की है—

मानस कर्म—

परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविध कर्म मानसम्॥

(१२।५)

अर्थात् मनमे पराये धनको हडपनेका और मनसे अनिष्ट करनेका चिन्तन तथा मिथ्या अवधारणाके प्रति आसक्ति—ये तीना अशुभ फलदायक मानस कर्म हैं।

वाचिक कर्म—

पारुष्यमनृत चैव पैशून्य चापि सर्वश ।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मय स्याच्चतुर्विधम्॥

(१२।६)

अर्थात् अप्रिय और असत्य बोलना, चुगली करना और असम्बद्ध बकवास करना—ये चार अशुभ वाचिक कर्म हैं।

शारीरिक कर्म—

अदत्तानामुपादान हिंसा चैवाविधानत ।
परदारोपसेवा च शारीर त्रिविध स्मृतम्॥

(१२।७)

अर्थात् अन्यायपूर्वक बिना दिये दूसरेका धन ले लेना शास्त्रनिषिद्ध हिसा करना और परस्त्रीका सेवन करना—ये तीन शरीरजन्य अशुभ कर्म हैं।

इस प्रकार तीन प्रकारके मानस चार प्रकारक वाचिक और तीन प्रकारके शारीरिक—इन दस प्रकारके धर्मरहित कर्मोंका त्याग कर देना चाहिये।

मनुने धर्मको ब्रह्मज्ञानके अङ्गभूत संस्काररूपमे स्वीकार करते हुए कहा है—राग-द्वेषसे रहित तथा वैदिक संस्कारसे युक्त धार्मिक विद्वानाद्वारा अनुष्ठित एव हृदयस स्वीकृत धर्म ही सच्चा धर्म है—

विद्वद्भि सेवित सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभि ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्त निबोधत॥

(२।१)

मनुने वैदिक संस्कारोपर बहुत बल दिया है। इसीलिये उन्हाने वेदाको धर्मका मूल कहा है। जो वेद जानता है, वही स्मृति और शीलकी रक्षा कर सकता है। धार्मिकाका आचार तथा विकल्पात्मक स्थितिसे आत्मतुष्टि ही प्रामाण्य है। महाकवि कालिदासने कहा है—**'सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय '** (अभिज्ञानशाकुन्तल १।२१)। संदेहास्पद स्थितिमे सज्जनोंके अन्त करणकी प्रवृत्ति ही प्रमाण हे। अन्त करणकी प्रवृत्ति ही आत्मतुष्टि है। मनुने इसी आत्मतुष्टिकी ओर साग्रह सकेत किया है।

संस्कारवान् व्यक्ति ही शीलवान् होता है। मनुस्मृतिकी

मन्वर्थमुक्तावली नामक टीकाके लेखक आचार्य कुल्लूक भट्टने मनुस्मृतिके 'स्मृतिशीले च तद्विदाम्' (२।६)-की टीकामें हारीतके द्वारा निर्दिष्ट शीलके तेरह परिचायक तत्त्वोंकी चर्चा की है—'ब्रह्मण्यता देवपितृभक्तता सौम्यता अपरोपतापिता अनसूयता मृदुता अपारुष्य मैत्रता प्रियवादित्व कृतज्ञता शरण्यता कारुण्य प्रशान्तिश्चेति त्रयोदशविध शीलम्।' अर्थात् १-वेदज्ञ ब्राह्मणोंके प्रति समादर-भावना, २-देव और पितरोंके प्रति भक्तिभावना ३-सौम्यता, ४-दूसरोंको पीडा न पहुँचाना, ५-दूसरोंके गुणोंकी उत्कृष्टताके प्रति दोषारोपण न करनेकी भावना, ६-व्यवहारमें कोमलता ७-निष्ठुरतासे रहित मनोभावना ८-सबके प्रति मैत्रीभाव, ९-प्रियवादिता, १०-कृतज्ञता ११-शरणागतकी रक्षा करना, १२-दया या करुणाकी भावना और १३-शान्तचित्तता—ये तेरह शीलके स्वरूप हैं।

मनु पवित्र वैदिक कर्मोंद्वारा सम्पन्न शरीर-संस्कारोंको उससे भी अधिक महत्त्व देते हैं। इसलिये उन्होंने गर्भशुद्धि-कर्म हवनकर्म, जातकर्म (शिशुओंके मधु, घृतप्राशन आदि) चूडाकरणकर्म (मुण्डन), उपनयनकर्म आदिको संस्कारवृद्धिके लिये आवश्यक माना है और इन कर्मोंको सम्पन्न करनेका विस्तारसे विधिवत् उल्लेख किया है।

मनुने बारह संस्कारोंका इस प्रकार उल्लेख किया है—

१ गर्भाधान (गर्भशुद्धिके लिये सम्पन्न होनेवाले कर्म)।

२ पुसवन (गर्भाधानके चिह्न प्रकट होनेपर पुत्रोत्पत्तिके उद्देश्यसे किया जानेवाला कर्म)।

३ सीमन्तोन्नयन (गर्भाधानके चौथे, छठे या आठवें महीनेमें होनेवाला गर्भिणीके बालोंका विभाजनरूप कर्म)।

४ जातकर्म (जातकका सुवर्ण-घृतप्राशन आदि कर्म)।

५ नामकर्म (नामकरणका कर्म)।

६ निष्क्रमण (शिशुको चौथे महीने सूर्यदर्शनके निमित्त घरसे बाहर निकालना)।

७ अन्नप्राशन (जन्मके छठे महीने पहली बार बच्चेको अन्न खिलानेका कर्म)।

८ चूडाकर्म (मुण्डन)।

९ उपनयन (यज्ञोपवीत)।

१० केशान्त (यज्ञोपवीतके बाद सिरके केशोंका मुण्डनकर्म)।

११ समावर्तन (वेदाध्ययन समाप्त करके ब्रह्मचारीका घर वापस आना)।

१२ विवाह (स्त्री-पुरुषका परस्पर दाम्पत्य-सूत्रमें आबद्ध होना)।

मनुने अन्नगत-संस्कारके प्रति भी विशेष बल दिया है। वे कहते हैं—अन्नकी सदा पूजा करनी चाहिये और अन्नका ग्रहण अनिन्दितभावसे करना चाहिये। भोजनके समय अन्नको देखकर हर्ष और प्रसन्नता व्यक्त करे तथा प्रणामपूर्वक उसे ग्रहण करे—

> पूजयेदशन नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
> दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वश ॥
> (२।५४)

पूजित अन्न बल (सामर्थ्य) और ऊर्जा (वीर्य) प्रदान करता है। वही अपूजित होनेकी स्थितिमें बल और ऊर्जा दोनोंका नाश कर देता है—

> पूजित ह्यशन नित्य बलमूर्जं च यच्छति।
> अपूजित तु तद् भुक्तमुभय नाशयेदिदम्॥
> (२।५५)

अपना जूठा अन्न किसीको नहीं देना चाहिये। दिन और सन्ध्याके भोजनके बादकी अवधिमें दुबारा भोजन नहीं करना चाहिये। दो बारके नियमित भोजनमें भी अधिक भोजन नहीं लेना चाहिये और जूठा हाथ-मुँह लिये कहीं नहीं जाना चाहिये। अति भोजन अस्वास्थ्यकर, आयु एव बलको कम करनेवाला स्वर्गकी गतिको रोकनेवाला पुण्यक्षयकारी और लोकनिन्दनीय होता है, इसलिये उसका वर्जन करना चाहिये—

> नोच्छिष्ट कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
> न चैवात्यशन कुर्यान्न चोच्छिष्ट क्वचिद् व्रजेत्॥
> अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
> अपुण्य लोकविद्विष्ट तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥
> (२।५६ ५७)।

मनुने स्त्रियोंके लिये विवाह-विधिको ही उपनयन-स्थानीय वैदिक संस्कार कहा है और पतिकी सेवा ही उनके लिये गुरुकुलमें रहनेके समान है। गृहकार्य ही उनके लिये साय-प्रात अग्निसेवा या हवनकार्य है तथा यही

उनके लिये वैदिक कर्म भी है। मूलवचन इस प्रकार हैं—

वैवाहिको विधि स्त्रीणा सस्कारो वैदिक स्मृत ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥
अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सायमुद्वासमेव च।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनमिति कर्म च वैदिकम्॥

(२।६७ ७ क्षेपक)

युवा पीढीमे बडे-बूढाके प्रति सम्मानका सस्कार जगानेके लिये मनुने अपनी जागरूकता प्रदर्शित की है। उन्होने बताया है—

अभिवादनशीलस्य नित्य वृद्धोपसविन ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(२।१२१)

अर्थात् वृद्धाके प्रति अभिवादनशील और उनकी सेवामे सदा तत्पर व्यक्ति आयु, विद्या, यश और बलसे समृद्ध होता है। आयुवृद्धिकी वैज्ञानिकताको स्पष्ट करते हुए मनु लिखते हैं—

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यून स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्या पुनस्तान्प्रतिपद्यते॥

(२।१२०)

युवाके सामने जब बूढा आता है, तब युवाकी हृदयस्थित प्राणवायु देहसे बाहर निकल जाना चाहती है—ऊपर चढती है। ऐसा स्थितिमे जब युवा बूढेका अभिवादन करता है, तब वह प्राणवायु अपनी जगहपर आकर स्थिर हो जाती है। खडे होकर प्रणाम नहीं करनेवाले युवाकी प्राणवायुकी विपर्यस्तताके कारण आयु क्षीण हो जाती है, इसलिये बूढे लोगोको खडे होकर अभिवादन करना आवश्यक है।

मनुने भारतीय सस्कारके प्रमुख पक्ष अभिवादन और प्रत्यभिवादनपर विशद रूपसे लिखा है। उन्होने यह भी लिखा है कि जो ब्राह्मण अभिवादनका प्रत्यभिवादन करना नहीं जानता, उसे अभिवादन कभी नहीं करना चाहिये, क्योकि वह विद्वान् होकर भी सस्कारसे भ्रष्ट और शुचितासे च्युत है—

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्र प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्य स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव स ॥

(२।१२६)

रास्ता चलनेके क्रममे भी पूज्यताका भाव रखना चाहिये और अपने सामने आये हुएको रास्ता देना चाहिये। रास्ता किस-किसको देना चाहिये इसके सम्बन्धमे मनुजी कहते हैं—

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिण स्त्रिया ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च॥

(२।१३८)

अर्थात् गाडीवान्, अपने जीवनके दसवे दशकमे पहुँचे हुए यानी नब्बे वर्षसे ऊपरवाले वृद्ध व्यक्ति, रोगी, बोझसे दबे हुए, स्त्री, दीक्षान्तसमारोहसे लौटे स्नातक, राजा और वरको ससम्मान रास्ता देना चाहिये। इन सबकी सम्मिलित उपस्थितिमे राजा और स्नातकको पहले मान्यता दी गयी है और फिर राजा और स्नातकमे स्नातकको प्राथमिकता मिली है—

तेषा तु समवेताना मान्यौ स्नातकपार्थिवौ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्॥

(२।१३९)

पारिवारिक स्तरपर सर्वोपरि पूज्यता माताको दी गयी है। मनुजी कहते हैं—

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणा शत पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(२।१४५)

अर्थात् उपाध्यायसे आचार्यका दस गुना, आचार्यसे पिताका सौ गुना और पितासे माताका स्थान हजार गुना ऊँचा है।

सच पूछिये तो मनुस्मृति मनुष्यको मानवतावादी सस्कारोसे सम्पन्न करनेवाला ऐसा भारतीय ग्रन्थ है, जिसकी प्रासङ्गिकता आज भी अक्षुण्ण है। मनुस्मृतिमे स्वस्थ और सस्कारसम्पन्न समाजके निर्माण और उसके सम्यक् सञ्चालन आदिके नियमोके साथ ही मानव-जीवन-सम्बन्धी अनेक नियम-उपनियम और व्यवहार-बर्ताव बताये गये हैं। इनका पालन सभी नर-नारियोसे यदि सम्भव हो जाय तो फिर भूभार न मालूम पडे। मनुस्मृति शरीरको स्वस्थ चरित्रको सस्कारनिष्ठ और आत्माको निर्मल एव पवित्र तथा नीतिको नियमनिष्ठ बनानेका मार्ग तो दिखलाती ही है, मनुष्यको मानवताका अमर सदेश भी देती है। पवित्र आचार या आचरण ही सस्कारका पर्याय है। इसलिये मनुकी दृष्टिमे धर्मनिष्ठ आचार या सदाचार ही भारतीय सस्कारका सच्चा स्वरूप है और इसे ही ध्यानमे रखकर मनुने '**आचार परमो धर्म** ' '**आचारश्चैव शाश्वत** ' '**सर्वस्य तपसो मूलमाचारम्**'-जैसे मन्त्रवाक्योका आग्रहपूर्वक उल्लेख किया है।

श्रीरामचरितमानसमे संस्कारवर्णन

(डॉ० स्वामी श्रीजयन्त्रानन्दजी मानसमराल, एम्०ए० पी एच्०डी०)

भारतीय जनजीवनमे संस्कारोको बहुत महत्त्व दिया गया है। संस्कारविहीन जीवन तो पशुवत् है। इसलिये हमारे ऋषियोने गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त अनेक संस्कारोकी अवधारणा की है। विभिन्न स्मृतियोमे संस्कारोकी संख्या अलग-अलग है, किंतु १६ संस्कारोको सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। ये १६ संस्कार निम्नलिखित हैं—

१ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन ८ चूडाकरण ९ कर्णवेध, १० उपनयन, ११ केशान्त १२ समावर्तन १३ विवाह तथा अग्न्याधान १४ वानप्रस्थ, १५ सन्यास एव १६ अन्त्येष्टि। इनमसे अनेक संस्कारोकी चर्चा श्रीरामचरितमानसमें आयी है—

गर्भाधान-संस्कार—गर्भाधान-संस्कारका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

जा दिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥
मदिर महँ सब राजहि रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
(१।१९०।६-७)

अर्थात् जब परात्पर ब्रह्म श्रीराम गर्भमे आये तो सारे विश्वमे अलौकिक सुखका साम्राज्य छा गया। सभी माताओमे दिव्य कान्ति, शील और तेजका सञ्चार होने लगा।

श्रीरामके गर्भमे आनेकी प्रक्रिया भी अलौकिक है। गुरुदेव वसिष्ठजीने शृङ्गी ऋषिको बुलाकर पुत्रेष्टियज्ञ कराया। यज्ञसे प्रसन्न होकर अग्निदेवता स्वय ही चरु लेकर प्रकट हुए। वह हविष्यान्न रानियोमे यथायोग्य बाँट दिया गया, जिसे ग्रहणकर वे गर्भवती हुईं।

इस गर्भाधान प्रक्रियाका वर्णन श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार किया गया है—

सृगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
(१।१८९।५—८)

नामकरण-संस्कार—गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमे श्रीरामसहित चारो भाइयोके नामकरण-संस्कारका वर्णन भी ललित ढगसे प्रस्तुत किया है—

नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥
करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
(१।१९७।२ ३)

इस प्रकरणसे यह द्योतित होता है कि प्राचीन कालमे नामकरणका अधिकार माता-पिताको नहीं बल्कि गुरु आचार्य या ऋषिको था। जबतक यह परम्परा सुरक्षित रही तबतक बच्चोके नाम भी संस्कारयुक्त रखे गये। अब इस परम्पराको अतिक्रमित करके लोगोने अर्थहीन और संस्कारहीन नामकरण शुरू कर दिया है जिसका दुष्परिणाम भी उन्हे भोगना पड रहा है।

गुरु वसिष्ठजीने कितने सार्थक और उपयोगी नाम रखे हैं, जो आज भी चारो फलके दाता हैं—

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥
जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥
बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥
(१।१९७।४—८ दो० १९७)

चूडाकरण-संस्कार—यह संस्कार जन्मसे प्रथम या तीसरे वर्षमें किया जाता है। व्यासजीकी मान्यता है कि कुलोचित नियमके अनुसार चूडाकरण करना चाहिये—

'चूडाकरणकुलोचितम्।' (व्यासस्मृति ५।५८)

गोस्वामीजीने चूडाकरण-संस्कारका वर्णन इस प्रकार किया है—

चूडाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥
(१।२०३।३)

सुश्रुत और चरकसहिताके अनुसार जातकके जन्मके बालोको उतारनेके उपरान्त उसके सिरपर घने मुलायम और पुष्ट केश उभरकर आते हैं।

कर्णवेध-संस्कार—इसका संस्मरण श्रीरामने युवराजपद मिलनेके अवसरपर किया है।

जब श्रीरामको राजा दशरथने युवराज बनानेकी घोषणा की तो श्रीरामने बचपनसे लेकर युवावस्थाके उन संस्कारोको याद किया जो सभी भाइयोके साथ-साथ हुए—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥

करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
(२।१०।५-६)

व्यासस्मृतिमे चूडाकरणके पश्चात् कर्णवेध करनेका संकेत किया गया है—'कृतचूडस्य बालस्य कर्णवेधो विधीयते।'

पाँचवे वर्षमे शिखायुक्त बालकका कर्णवेध-संस्कार किया जाता है।

उपनयन-संस्कार—संस्कारोमे उपनयनको विशेष महत्त्व दिया गया है। व्यासस्मृतिमे लिखा है कि ब्राह्मण-बालकको ८वें वर्षमे, क्षत्रियबालकको ११वे वर्षमे तथा वैश्यबालकको १२वे वर्षमे यज्ञोपवीत पहना देना चाहिये। उपनयन-संस्कारके बिना वेदाध्ययनका अधिकार नहीं मिलता।

श्रीरामचरितमानसमे वर्णन किया गया है कि जब चारो भाई कुमार हो गये तो गुरु एव माता-पिताने उनका यज्ञोपवीत-संस्कार किया—

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
(१।२०४।३)

उपनीत होकर श्रीराम भाइयोसहित वेदाध्ययनके लिये गुरुकुलमे गये। गोस्वामीजी कहते हैं—

गुरगृहँ गए पढन रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
(१।२०४।४-५)

विवाह तथा अग्न्याधान-संस्कार—विवाह-संस्कारका वर्णन शिवविवाह तथा रामविवाहके प्रसङ्गमे अत्यन्त विस्तारके साथ किया गया है। श्रीरामविवाहकी एक छोटी-सी झाँकी यहाँ प्रस्तुत है—

बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥
(१।३२५, छं० १)

अन्त्येष्टि-संस्कार—इस संस्कारका वर्णन भी श्रीरामचरितमानसमे विविध पात्रोके माध्यमसे किया गया है। जीवात्माके कल्याणके लिये जो तर्पण, पिण्डदान, श्राद्ध आदि और्ध्वदैहिक कर्म किये जाते हैं, उन्हे अन्त्येष्टि-क्रिया या और्ध्वदैहिक-संस्कार कहा जाता है।

राजा दशरथकी मृत्युके पश्चात् श्रीभरतने अत्यन्त श्रद्धा-भाव एव विधि-विधानसे अपने पिताकी जो अन्त्येष्टि-क्रिया की है, उसका वर्णन श्रीरामचरितमानसमे इस प्रकार आया है—

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥
चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥
जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥

श्रीरामने गीधराज जटायुकी अन्त्येष्टि-क्रिया अपने हाथोसे की, इसका वर्णन भी किया गया है—

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥
(३।३२)

यहाँतक कि अपने प्रतिद्वन्द्वी रावणकी अन्त्येष्टि-क्रिया भी भगवान् श्रीरामने सम्मानपूर्वक करायी। लङ्काकाण्डमे वर्णन आया है—

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥
मंदोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥
(६।१०५।७-८ दो० १०५)

इस प्रकार गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमे प्राय सभी प्रमुख संस्कारोका वर्णन यथास्थान किया है।

सूरके काव्यमें संस्कार-निरूपण

(डॉ० श्रीनिवासजी शर्मा, एम्०ए० (हिन्दी सस्कृत) पी-एच्०डी०)

सूरदास कृष्णप्रेमक अमर गायक थे। उन्होने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाआका गान किया हे। आपने अपने गानमे सस्काराको व्रज-समाजक परिप्रेक्ष्यम अपनी बद आँखोसे खुलेरूपमे प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा वर्णित भगवान् श्रीकृष्णके कुछ सस्कार इस प्रकार हैं—

(१) **जातकर्म**—पुत्रके जन्मके समय जातकर्म नामक सस्कार हाता है। सूरदासन भगवान्‌के प्रकट होनकी प्रसन्नताक साथ जातकर्म-सस्कारका नाम लिये बिना उसका वर्णन किया है। वच्चेके पैदा होनेपर नाल-छेदनसे पहले नान्दीमुखश्राद्ध किया जाता है।

तदनन्तर मधु और घृत असमान मात्राम मिलाकर पिता उसे सोनेकी शलाकासे बालकको प्राशन कराता है। फिर कुश और जलसे बालकका प्रोक्षण किया जाता है तथा छुरेकी पूजा करके नाल काटी जाती है। नाल काटनेके बाद सूतक प्रारम्भ होता है। शास्त्रमे आया है—**'यावन्न छिद्यते नाल तावन्नाप्नोति सूतकम्'** अर्थात् जबतक नाल नहीं काटी जाती, तबतक सूतक प्रारम्भ नहीं होता—

सूरदासके काव्यमे नाल काटनेसे पहलेके सस्कारका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

तब न्हाइ नद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे।
नादीमुख पितर पुजाइ अंतर सोच हरे॥

जातकर्म-सस्कारक समय स्मृतिकाराने ब्राह्मणाको दानका विधान किया है। **'अन्न दद्यात् सुवर्णं वा भूमि गा तुरग तथा'** अर्थात् उस समय सोना भूमि, गाय, घोडे आदिका दान करना चाहिये। नन्दजी उसी नियमक अनुसार दान करत हैं। व एसी गाय दान करत हैं, जिनक खुर ताँवस पीठ चाँदीसे और सींग सानस मढ हुए हात हैं। मूरदासक शब्दाम गायाक दानका वणन इस प्रकार है—

खुर ताँबैं रूपैं पीठि सोनैं सींग मढ़ीं।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक हरषि असीस पढ़ीं॥

इसके अतिरिक्त भी नन्दजी नाना प्रकारके दान देते हैं वे किसीको गौ देते हैं, किसीको वस्त्र पहनाते हैं, किसीको आभूषण किसीको रेशमी वस्त्र, किसीको नग और हीरे देते हैं। सूरकी कला यह है कि वे श्रीकृष्णकी भक्तिमे लीन होकर एक-एक बातका कई-कई पदामे नये-नये रूपमे प्रस्तुत करत हैं।

नन्दजीके यहाँका जातकर्म एक बडे उत्सवका रूप ले लेता है। सुहागिन गोपनारियाँ तरह-तरहके वस्त्राभूषण पहनकर सज-धजकर नन्दके यहाँ आती हैं। वे तरह-तरहकी भेट लाती हैं। आरती करती हैं, हलदी, अक्षत, दूध, दहीका तिलक लगाती हैं, वधाई देती हैं, एक तरहसे सारा व्रज उस जातकर्मके उत्सवमे मग्न हो जाता है—

नंदराय के उत्सव जैसो। व्रज की बीथिनि बीथिनि तैसो॥

बच्चेके नाल-छेदनके समय दाई लोक-परम्पराके अनुसार दान लनेको झगडती है। वह कहती है कि यशोदा! मैं नाल काटने नहीं दूँगी। मैं आज तुम्हारे गलेका मणिमय हार लूँगी—

जसुदा, नार न छेदन दैहौ।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, यहै आजु हौ लैहौं॥

सूरने कई पदाम दाईके झगडनेका वर्णन किया है। बादम यशोदाजी नन्दको बुलाती हैं। वे गलेका हार हाथाके कङ्गन और थाल भरकर मोती देते हैं—

दीन्हौ हार गरै कर ककन मोतिनि थार भरै।
सूरदास स्वामी प्रगटे है, औसर पै झगरै॥

मागध और सूत-जैसे वन्दीजनास आँगन भर जाता है। गावर्धनस गायक आता है यशोगान करता है। फलित ज्यातिपका वखान करनवाले भी आते हैं और कहत हैं—

(नंद जू) आदि जातिषी तुम्हरे घर कौ पुत्र जन्म सुनि आयौ।
लगन साधि सब जातिष गनिकै चाहत तुमहिं सुनायौ।
संवत सरस विभावन भादौ आठै तिथि बुधवार।

कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार।
वृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहै।
चौथैं सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहै।
पचएं बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहै।
छठएं सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहै।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहै।
लाभ भवन मैं मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैं ऐहै।
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहै।
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरें अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी॥

नामकरण—भगवान् श्रीकृष्णके नामकरणके विषयमें सूरदासने कोई दिन-सीमा नहीं कही। वैसे शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि सामान्यतः ग्यारहवें या बारहवें दिन नामकरण होना चाहिये—'एकादशे द्वादशकेऽपि श्रेयः'। सूरदासजी वर्णन करते हैं कि नन्दजीके यहाँ गुरुवर गर्गाचार्य आते हैं और वे नामकरण कराते हैं।

सूरदासने भगवान्के नामकरणके समय कहा है—*'महर-भवन रिषिराज गए।'* उस समय ब्राह्मण कुटुम्बीजन चारण और बन्दीजन सब नन्दके घर आये। भगवान् श्रीकृष्णके सिरपर नयी-नयी दूब हलदी और दहीको रखा गया। गुरु गर्गाचार्यने उनके सब दिव्य लक्षण बताये। उस समयका चित्रण कुछ इस प्रकार है—

गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत हैं अबिनासी।
सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि, आनंदे ब्रजबासी॥

अन्नप्राशन—अन्नप्राशन-संस्कारके वर्णनमें सूरदासजीने छः महीनेसे कुछ कमके समयका सङ्केत किया है—

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए॥

उस समय ब्राह्मणको बुलाया गया। शुभ राशि शुभ पक्ष और अच्छे दिनका विचार किया गया। यशोदाने [illegible]को बुलाकर मङ्गलगीत गवाये। व्रज-वनिताएँ पुलकित होकर मधुर गीत गाने लगीं। व्रज-नारियाँ बालकृष्णको गोदमें लेकर [illegible] फिरती हैं। उस समयका वर्णन करते हुए सूरदासजी कहते हैं—

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन॥

नन्दजीके यहाँ नाना भाँतिके व्यञ्जन तैयार किये गये। नन्द अपने जाति-बन्धुओंको बुलाते हैं। सबको आदरसे बिठाते हैं। यशोदाजी भगवान् श्रीकृष्णका शृङ्गार करके लाती हैं—

जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौं, पट-भूषन पहिराइ।
तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, घूरा दुहुँ कर-पाइ॥

अन्नप्राशन कराते समयका वर्णन निम्नलिखित शब्दोंमें हुआ है—

कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नंद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ॥

नन्दजीके साथ और सब भी रुचिपूर्वक षड्रस-व्यञ्जनका ग्रहण करते हैं। इस हर्ष-आनन्दकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता। सूरदास तो उसपर न्योछावर हो जाते हैं।

वर्षगाँठ—वर्षगाँठका उत्सव वर्ष पूरा होनेपर होता है। भगवान्की वर्षगाँठके अवसरपर नन्द बड़े प्रसन्न होते हैं। फूल-पान आदि मँगाये जाते हैं। यशोदा आनन्दमें मग्न हैं व लालाको उबटन करके नहलाती हैं। सिरपर चौतनी और माथेपर दिठौना लगाती हैं इसलिये कि किसीकी नजर न लग जाय। आँखोंमें अञ्जन लगाती हैं और अच्छे वस्त्र पहनाती हैं। सारी व्रजकी बालाएँ मङ्गलगानके लिये बुलायी जाती हैं—

अरी, मेरे लालन की
आजु बरष-गाँठि, सबै
सखिनि कौं बुलाइ
मंगल गान करावौ।

आँगनको लीपकर चौक पुराकर बाजे बजते हैं। अक्षत दूर्वा आदिसे लालकी गाँठ जोड़ी जाती है। सारी व्रज-युवतियाँ वस्त्राभूषणोंसे सजकर आती हैं। वे आनन्दमें मग्न होकर नाचती-गाती हैं। वे वर्षगाँठ [illegible] न्योछावर होती हैं। वर्षगाँठका [illegible] जाता है। उस समयका [illegible] इस प्रकार [illegible] है—

[illegible]
सूर [illegible] बरष-गाँठि [illegible]॥

कर्णछेदन—कर्णछेदन प्रसिद्ध सस्कार हे। लोकरीति यह है कि चाहे लडका हो या लडकी, उसके कान छेदनेका उत्सवपूर्वक आयोजन किया जाता है। व्रज-प्रदेशम यह रीति अति प्रचलित है। सूरदासने उसका वर्णन करके व्रजवासियाम प्रचलित रीतिको उभारा है। भगवान् श्रीकृष्ण कर्णछेदनके समय हाथमे पूरी और भेली (गुड) ले रखे हें। भगवान्की कर्णछेदन-लीलाको दखकर ब्रह्मा मुसकरा रहे हैं, शङ्कर हँस रह हैं, परतु यशोदाके हृदयम धुकधुकी हो रही है। लालका कान छिदवाते समय जो कष्ट होगा उसस यशोदा डर रही हैं। सींकमे हलदी लगाकर भगवान्के कानाके पास रखा जाता है। कञ्चनकी बाली मँगायी जाती है। उस समय यशोदा और रोहिणी दोनोकी आँखोमे आँसू आ जाते हें। वे कर्णछेदनको देख नहीं पातीं और अपने मुँहका दूसरी ओर मोड लेती हैं। जब भगवान् रोने लगते हैं तो कान छेदनेवाले नाईको घुडकती हैं। सब हँसी और आनन्द मनाते हैं। व्रज-बालाएँ आनन्दित होती हैं और नन्दको बधाई देती हैं। उस वर्णनका कुछ अश प्रस्तुत है—

कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की।
बिधि बिहँसत, हरि हँसत हेरि हरि, जसुमति की धुकधुकी सु उर की॥

× × × ×

लाचन भरि-भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियौ तुरत नौआ कौं घुरकी॥

(सूरसागर प॰ ७१८)

सूरदासने विवाह-सस्कारका भी वर्णन किया है। भगवान् श्रीकृष्णक अनेक विवाहाका वर्णन किया गया है, कितु बालवर्णन करनेम सूरका मन जैसा रमा है, वैसा अन्यत्र नहीं रमा। बालवर्णन और शृङ्गारके वे सम्राट् कहे जाते हैं। भगवान्का बालरूप उन्ह बहुत प्रिय है। यही कारण है कि बचपनके सस्काराका वर्णन करनेम सूरका हृदय बोल उठा है और प्रभुके प्रति उनकी अनुराग-भावना यहाँ बलवती हा उठती है।

कालिदास एव भवभूतिके साहित्यमे सस्कार

(डॉ॰ श्रीविनोदकुमारजी शर्मा एम्॰ए॰ (हिन्दी सस्कृत) पी-एच्॰डी॰ प्रभाकर (सगीत))

कालिदास एव भवभूति सस्कृतसाहित्यके महाकवियोकी प्रथम पक्तिमे सुप्रतिष्ठित हैं। ये सस्कारसम्पन्न रहे हैं, अत इनकी कृतियोम विविध सस्कारोका वर्णन उपलब्ध होना स्वाभाविक है। प्रधानरूपसे इन्होने रघुवश तथा विशेषरूपसे भगवान् श्रीरामकी महनीय गुणावलीका गान किया है। यहाँ इनके काव्याम निरूपित सस्काराका सक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है—

महाकवि कालिदासके साहित्यमे सस्कार

कविकुलगुरु कालिदासने द्विजाके अनेक सस्काराका प्रतिपादन किया है। जीवनमे सस्काराकी महत्ता रघुवशके एक पद्यसे भलीभाँति प्रमाणित हो जाती है, जिसमे कहा गया है कि पुरोहित वसिष्ठजीने जब रघुक जातकर्म आदि सस्काराका सम्पादन कर दिया, तब वह बालक एसा सुशोभित होने लगा जैसे खानसे निकालकर खरादा गया हीरा—

स जातकर्मण्यखिले तपस्विना
तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भव
प्रयुक्तसस्कार इवाधिक बभौ॥

(रघुवंश ३।१८)

रघुवश महाकाव्यम कहा गया है कि रघुवशी आजन्म शुद्ध अर्थात् गर्भाधानादि समस्त सस्कारोके सम्पादनके कारण पवित्र होते थे। राजा दिलीप गर्भवती रानी सुदक्षिणाको निधिगर्भा पृथिवी अग्निगर्भा शमीवृक्ष तथा अन्त सलिला सरस्वती नदीकी भाँति पुत्ररत्नगर्भा समझते थे।* वे महारानीसे जितना प्रेम करते थे जितनी उन्ह प्रसन्नता थी और जितना बडा उनका राज्य था उतने ही ठाठ-बाटसे उन्होने उस

* रघुवश ३।९

सस्कार करनेके पश्चात् विवाह-सस्कार किया। तब राजकन्याएँ उस उत्तम पतिको पाकर वैसे ही अत्यन्त शोभित हुईं, जैसे चन्द्रमाको पाकर दक्षकन्याएँ सुशोभित हुई थीं—

अथास्य गोदानविधेरनन्तर
विवाहदीक्षा निरवर्तयद्गुरु ।
नरेन्द्रकन्यास्तमवाप्य सत्पति
तमोनुद दक्षसुता इवावभु ॥

(रघुवश ३।३३)

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सूर्यवशी नृप सतानप्राप्तिके लिये ही दारपरिग्रह करते थे, कामोपभोगके लिये नहीं।[१]

कालिदासने सम्यक् सस्कारवान् रघुवशीय राजाओके उदात्त चरित्रको आदर्शके रूपमे स्थापित करते हुए कहा है कि क्षीरसागरसे उद्भूत चन्द्रमाकी भाँति[२] आजन्म शुद्ध रघुवशी शैशवकालमे समस्त विद्याओका अभ्यास करनेवाले, युवावस्थामे (सतानप्राप्तिके लिये) दारपरिग्रह करनेवाले, वृद्धावस्थामे मुनिवृत्ति धारण करनेवाले तथा जीवनकी सान्ध्यवेलामे योग-(समाधि)-के द्वारा शरीरको छोडनेवाले थे—

शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

(रघुवश १।८)

रघुवश महाकाव्यम अन्त्येष्टि-सस्कारकी दो विधियाँ निरूपित की गयी हैं—१-भूमिमे समाधि देना तथा २-अग्निदाह करना। जब राजा रघु योगबलसे सर्वदा प्रकाशमान अविनाशी परमात्मामे लीन हो गये[३] तब उनके पुत्र अजने पिताके शरीरका दाह-सस्कार नहीं किया, वरन् भूमिमे समाधि दे दी।[४] जबकि रघुवशके एक अन्य नृपति सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण, जब यक्ष्मारोगसे पीडित होकर परमपदम विलीन हो गये[५] तब मन्त्रियो एव पुरोहितोने राजाके शवको राजभवनके उपवनमे ही अग्निको समर्पित कर दिया, ताकि बाहर ले जानेसे यह रोग कहीं प्रजामे न फैल जाय।[६]

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटकम महाकवि कालिदासने महामुनि कण्वकी धर्मपुत्री शकुन्तलाके विवाहके अवसरपर जो सस्कार-शिक्षा उसे प्रदान की वह भारतीय सनातन सस्कृतिका महानतम आदर्श है। महामुनि कण्व कहते हैं कि जो कन्या पतिगृहम जाकर इन आचरणोका अनुपालन करेगी, वही वास्तवमे सच्ची गृहिणी है, इसके विपरीत आचरण करनेवाली तो स्वय पतित होती ही है, दोनो (पितृकुल और पतिकुल) कुलोके लिये भी आधि (मानसिक कष्ट पीडा बाधा रोग)-का हेतु बनती है। महर्षि कण्वद्वारा शकुन्तलाको दिये गये सस्कारोपदेश इस प्रकार हैं—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीप गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येव गृहिणीपद युवतयो वामा कुलस्याधय ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तल ४।१७)

महर्षि कण्व शकुन्तलासे कहते हैं—पुत्री! आज तुम अपनी ससुराल जा रही हो, तुम्हारा वहाँ प्रथम कर्तव्य है कि तुम अपनेसे बडे सभी गुरुजना (सास-ससुर, जेठानी आदि)-की श्रद्धाभावसे सदा सेवा करती रहना, सपत्नियोंके साथ सखीके समान मित्रताका भाव रखना, तुम्हारी ससुरालमे जो भी परिजन सेवक तथा पारिवारिक जन हो, उन सबके प्रति दाक्षिण्य भाव रखना किसीका अनादर मत करना भाग्योदयकी स्थितिम गर्व न करना अर्थात् सुख-दु खमे समताका भाव बनाये रखना, कदाचित् पतिके द्वारा कभी कोपवश तुम्हारे विपरीत भी कार्य हो जाय तो भी तुम उनके अनुकूल ही रहना, जैसे भी पति प्रसन्न हो, वैसा

---

१ प्रजायै गृहमेधिनाम्॥ (रघुवश १।७) २ दिलीप इति राजन्दुरिन्दु क्षीरनिधाविव॥ (रघुवश १।१२)

३ रघुवश ८।२४

४ क-रघुवश ८।२५ ख-सन्यासियोंका दाहसस्कार नहीं किया जाता ऐसा शास्त्रका आदेश है।

५ रघुवश १९।४८ ५३

६ त गृहोपवन एव सगता पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा। रोगशान्तिमपदिश्य मन्त्रिण सम्भृते शिखिनि गूढमादधु ॥ (रघुवश १९।५४)

व्यवहार करना, पतिकी अनुकूलता ही पत्नीका मुख्य कर्तव्य है। बेटी शकुन्तला! इस प्रकारका आचरण करनेवाली युवती स्त्रियाँ ही गृहिणी कहलाती हैं, इसके विरुद्ध आचरण करनेवाली तो कुलके लिये आधि (मानसिक रोग) रूप ही हैं।

महाकवि भवभूतिके साहित्यमे संस्कार—महाकवि भवभूतिकी कृतियोमे नामधेय, चूडाकरण, विद्यारम्भ उपनयन वेदारम्भ, गोदान, विवाह, जन्मोत्सव आदि संस्कारोका चित्रण उपलब्ध होता है।

उत्तररामचरित नाटकमे कुश तथा लवके नामधेय संस्कारकी[1] चर्चा करके उनके चूडाकरण, विद्यारम्भ उपनयन एव वेदारम्भ संस्कारोके सम्बन्धमे आत्रेयी कहती हैं—'चूडाकरण सम्पन्न उन दोनोको त्रयी-(वेद)-को छोडकर अन्य तीनो विद्याएँ (आन्वीक्षिकी, वार्ता एव दण्डनीति) भगवान् वाल्मीकिके द्वारा सावधान होकर पढायी गयी हैं। तदनन्तर महर्षिने ग्यारहवे वर्षमे क्षत्रियोचित विधिसे यज्ञोपवीत-संस्कार करके उन्हे वेदाध्ययन भी कराया है।[2] शास्त्रानुसार क्षत्रियका उपनयन ग्यारहवे वर्षमे करनेका विधान है।[3] उपनयनसे पूर्व वेदाध्ययनका अधिकार प्राप्त नहीं होता।[4]

महावीरचरितमे राम-लक्ष्मणके उपनयन-संस्कारकी चर्चा[5] हुई है। इसी कृतिमे विश्वामित्र वसिष्ठके लिये संदेश भेजते हुए कहते हैं—'यज्ञके समाप्त हो जानेपर कुमारोका गोदान कर दिया जायगा और उनका विवाह सम्पन्न कर दिया जायगा।'[6] विवाहसे पूर्व सम्पाद्य गोदान (केशान्त)-संस्कारका उल्लेख उत्तररामचरितमे भी हुआ है।

प्राचीन कालमे जन्मोत्सव-संस्कार अत्यन्त पवित्र विधिसे मनाया जाता था। प्रतिवर्ष बालककी जन्मतिथिपर उसकी आयुके अतीत वर्षोंकी संख्याको सूचित करनेके लिये एक सूत्रमे गुग्गुलु, गोरोचना दूर्वा आदि माङ्गलिक वस्तुओसे युक्त ग्रन्थि बाँधनेका उत्सव मनाया जाता था तथा देवताओ एव पूर्वजोकी पुष्पादिसे पूजा-अर्चना की जाती थी। भवभूतिके उत्तररामचरित नाटकमे लव-कुशके जन्मसंवत्सर या अब्दपूर्ति-संस्कारका चित्रण उपलब्ध होता है। इस संदर्भमे भगवती भागीरथी कहती हैं—'हे सीते! आज चिरञ्जीवी कुश तथा लवकी बारहवे जन्मवर्षकी संख्याबोधिकी मङ्गलग्रन्थि है। अत अपने पुरातन श्वशुर वैवस्वत मनुसे उत्पन्न इतने बडे राजर्षियोके वंशके उत्पादक, पापनाशक सूर्यदेवकी अपने हाथोद्वारा चुने हुए पुष्पोसे पूजा करो।'[7]

विवाह-संस्कारके विषयमे भवभूतिकी मान्यता है कि वधू और वरमे पारस्परिक अनुराग विवाहकर्ममे उत्तम एव मङ्गल है। इसकी पुष्टि मालतीमाधवमे महर्षि अङ्गिराके इस कथनसे की गयी है—'जिस कन्यामे (चरित्रलावण्यादिके कारण) मन और नेत्रोकी आसक्ति है, उससे विवाह करनेसे समृद्धि है।'[8] महाकविकी कृतियोमे कङ्कणधारण, कङ्कण-मोक्षण, पाणिग्रहण आदि विवाह-संस्कारकी अनेक क्रियाविधियोका उल्लेख मिलता है।[9]

~~o~~

१ तथैव किल देवतया तयो कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यात । (उत्तररामचरित द्वितीय अङ्क)

२ निर्वृत्तचौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्या सावधानेन परिनिष्ठापिता । तदनन्तर गर्भैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ। (उत्तररामचरित द्वितीय अङ्क)

३ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विश ॥ (मनु० २।३६)

४ उपनीय गुरु शिष्य महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदमध्यापयदेन शौचाचाराश्च शिक्षयेत्॥ (या०स्मृ० १।१५)

५ राजन्यदारकौ नून कृतोपनयनाविति। (महावीरचरित १।१६)

६ राज्ञो यज्ञपरिसमाप्तौ विततगोदानमङ्गला कुमारा परिणेष्यन्तीति। (महावीरचरित १।५८)

७ वत्से देवयजनसम्भवे सीते! अद्य खल्वायुष्मतो कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य संख्यामङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मन पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितार सवितारमपहतपाप्मान देव स्वहस्तावचितै पुष्पैरुपतिष्ठस्व। (उत्तररामचरित तृतीय अङ्क)

८ इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्मणि परार्ध्यं मङ्गलम्। गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्या मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिरिति।

(मालतीमाधव पृ० १०२)

९ उत्तररामचरित ३।४० महावीरचरित २।५०

व्याकरण-शास्त्रमे शब्द-संस्कार

(आचार्य प० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर एम्०ए० [सस्कृत] (गोल्ड मैडलिस्ट) पी-एच्०डी०)

'सस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातुसे निष्पन्न माना जाता हे, जो 'सजाना' अर्थको अभिद्योतित करता है। जहाँ सङ्गीतशास्त्र 'नाद' को ब्रह्मस्वरूप मानता है, वहीं व्याकरण-शास्त्र शब्दको साक्षात् ब्रह्मक रूपमे स्वीकार करता है। इस शब्दब्रह्मके प्रकाशक साक्षात् भगवान् नटराज शिव ही हैं जिन्होन ताण्डव-नृत्यक समाप्तिकालम अपने डमरूके निनादसे नादब्रह्म एव अक्षर-समाम्नाय शब्दब्रह्मको प्रकट किया, जो चौदह माहेश्वर-सूत्रके रूपम आज भी व्याकरण-शास्त्रको आबद्ध किये हुए है। महावैयाकरण पाणिनि एव आचार्य पतञ्जलि शब्दको नित्य मानते हैं। पाणिनिद्वारा विरचित 'अष्टाध्यायी सूत्र' के लोपसज्ञक सूत्रोम **'अदर्शन लोप '** (अष्टाध्यायी सूत्र १।१।६०)—यह सूत्र शब्दकी इसी नित्यताको प्रकट करता है। इस सूत्रकी वृत्तिमे वृत्तिकार श्रीमद्भट्टोजिदीक्षित स्पष्ट करते हैं—**'प्रसक्तस्यादर्शन लोपसज्ञ स्यात्।'** अर्थात् प्राप्तका न सुना जाना ही अदर्शन है, क्योकि दर्शन कर्णेन्द्रियका विषय नहीं हो सकता वह तो नेत्रेन्द्रियका विषय है, लेकिन शब्दोच्चारणको हम देख नहीं सकते, अत वह दर्शनका अविषय है। शब्द कर्णेन्द्रियद्वारा तो श्रवणसिद्ध हो ही जाता है अर्थात् कर्णके द्वारा शब्दाका श्रवण—शब्दका अलौकिक चाक्षुष-प्रत्यक्ष है। जैसे **'सखान्'** शब्दमे 'न' कारका श्रवण प्राप्त था, किंतु उसका न सुना जाना केवल 'सखा' शब्दका सुना जाना ही प्राप्त है, 'न' कारका नहीं। 'न' कारका लोप **'न लोप प्रातिपदिकान्तस्य'** सूत्रद्वारा हो जाता है। —

इस प्रकार लोपको सचमुच यदि लोप ही माने तो अनित्यता दोष आ जायगा जबकि व्याकरण-शास्त्रके अनुसार शब्द नित्य है। नैयायिकाने इसे अनित्य माना है। शब्दस्फोटके द्वारा शब्दकी नित्यता वाक्यपदीयकार भर्तृहरिने भी स्वीकार की है—

> अल्पे महति वा शब्दे स्फोटकालो न भिद्यते।
> परस्तु शब्दसन्तान प्रचयापचयात्मक ॥
>
> (वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड १०३)

शब्दसस्काररूप परमात्माकी सिद्धिका जाननेवाला ब्रह्मरूप अमृतको प्राप्त करता है ऐसा भर्तृहरिका मानना है—

> तस्माद्य शब्दसस्कार सा सिद्धि परमात्मन ।
> तस्य प्रवृत्तितत्त्वज्ञस्तद् ब्रह्मामृतमश्नुत॥
>
> (वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड १३२)

महावैयाकरण पतञ्जलिने तो **'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'** वार्तिकद्वारा शब्द एव अर्थके सम्बन्धको सिद्ध माना है, जो नित्यका परपर्याय है। व्याकरण-शास्त्र शब्दाके सस्कारका शास्त्र है, जो शब्दाके मलाको हटाकर उसे शुद्धरूपम परिणत करता है। जब शब्द विभक्ति, वचनादि धातु, प्रत्यय, प्रत्ययान्तादिसे रहित होता है तो वह प्रातिपदिक सज्ञाको प्राप्त करता है, जैसे—राम। सूत्रोंके सस्कारद्वारा क्रमश **'स्वौजस०'** **'ड्याप्प्रातिपदिकात्'**, **'प्रत्यय '**, **'परश्च'**, **'सुप '**, **'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने'**, **'विरामोऽवसानम्'** तथा **'खरवसानयोर्विसर्जनीय '** इत्यादि सूत्रोको लगाकर **'राम '** यह सस्कृत (परिष्कृत)-रूप बनता है। जबकि महावैयाकरण पतञ्जलिने शब्दापशब्द-विवेकद्वारा ही शब्दको परिष्कृत किया है। जो शब्दोको जानते हैं, उन्हींके सामने शब्द अपने स्वरूपको प्रकट करता है—

> **उत त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।**
> **उतो त्वस्मै तन्व विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा ॥**

एक साधु शब्दके अनेक असाधु शब्द हुआ करते हैं। जैसे—'गो' इस एक साधु शब्दके अनेक अपभ्रश हैं—गावि गोणा, गोता गोपोतलिका इत्यादि। साधु शब्द एक है और असाधु शब्द अनेक। अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य पहले साधु शब्दोका ज्ञान करे अथवा असाधु शब्दाका। यदि असाधु शब्दाका ज्ञान करता है तो उसे अनेक अपशब्दोका ज्ञान करना होगा। अत इस शङ्काके निवारणार्थ महर्षि पतञ्जलिने तण्डकवृत्तिसे आक्षेप-समाधानभाष्यद्वारा इसका निवारण किया है। उन्होंने सर्वप्रथम शब्दकी परिभाषामें कहा है—**'येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिना सम्प्रत्ययो भवति स शब्द '** अथवा **'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि शब्द इत्युच्यत'** (व्याकरणमहाभाष्य)। अर्थात् जा उच्चारित ध्वनियाँ स अभिव्यक्त हाकर गलकम्बल पूँछ ककुद, खुर सींगवाले 'गौ' का बोध कराता है वह शब्द है अथवा लोकव्यवहारम जिस ध्वनिसे अर्थका बोध होता है वह शब्द कहलाता है। इसके बाद

उन्होने रक्षा, ऊह, आगम, लघु तथा असदेह नामक पाँच प्रयोजनोको गिनाया है।

साधु एव असाधु शब्दोके ज्ञानके क्रममे पतञ्जलिने साधु शब्दके ज्ञानपर ही बल दिया है, उन्होने कहा है—'लघुत्वाच्छब्दोपदेश ' (व्याकरणमहाभाष्य, पस्पशाह्निक)। इस सूत्रके द्वारा उन्होने स्पष्ट किया है कि साधु शब्द लघु अर्थात् थोडे हैं, इसीलिये लोगोको लघुताके कारण 'सूचीकटाहन्याय' से शब्दोका उपदेश अर्थात् साधु शब्दोका उपदेश करना चाहिये न कि असाधु शब्दोका, क्योकि यदि साधु शब्दोके उच्चारणमे पुण्यकी प्राप्ति होती है तो निश्चय ही असाधु शब्दोच्चारणसे पापका भागी होना पडेगा। हम पापी न हो, एतदर्थ हमे साधु शब्दोका ही उपदेश करना चाहिये, क्योकि एक शब्दका गलत प्रयोग नाशका कारण बन जाता है, जैसे—त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको दुष्ट शब्दके प्रयोग करनेसे इन्द्रने मार दिया था—

दुष्ट शब्द स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्॥

अब प्रश्न यह उठता है कि अनेक साधु शब्द भी हैं, उनमे किन-किनका उपदेश श्रेयस्कर होगा, क्योकि ऐसा सुना जाता है कि बृहस्पतिने एक हजार दिव्य वर्षोंतक इन्द्रको प्रतिपदोक्त शब्द-पारायण कराया, पर समाप्तितक नहीं पहुँचे—'**बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्य वर्षसहस्र प्रतिपदोक्ताना शब्दाना शब्दपारायण प्रोवाच नान्त जगाम।**' तो शब्दोको कैसे जाना जाय? इस प्रश्नके समाधानमे महर्षि पतञ्जलिने कहा है—'**किञ्चित्सामान्यविशेषवल्लक्षण प्रवर्त्यम्। येनाल्पेन यत्नेन महतो महत शब्दौघान् प्रतिपद्येरन्**'।

अर्थात् कुछ सामान्य लक्षण एव कुछ विशेष लक्षणवाला शास्त्र बनाना चाहिये, जिससे थोडेसे यत्नसे बडी-बडी शब्दराशियोको जान जायँ अर्थात् कुछ उपसर्गात्मक लक्षण हो एव कुछ अपवादात्मक लक्षण। जैसे '**कर्मण्यण्**' एव '**आतोऽनुपसर्गे क** ' इत्यादि। इस प्रकार शब्द-संस्कार ही व्याकरण-शास्त्रका विषय है एव ब्राह्मणोका महत्त्व भी इसी संस्कारतत्त्वको लेकर है, ऐसा मीमासादर्शनकार जैमिनि मानते हैं—'**संस्कारे च तत्प्रधानत्वात्**' (मीमासादर्शन ६।१।३२) अर्थात् कर्म-संस्कारकी प्रधानताको लेकर ही ब्राह्मणोका महत्त्व है।

न्यायशास्त्रमे संस्कारतत्त्व

'संस्कार' शब्दकी पृथक्-पृथक् परिभाषा अन्यान्य ग्रन्थोने प्रतिपादित की है। वेदो एव स्मृतियोमे यह गर्भाधानादिसे अन्त्येष्टिसंस्कारपर्यन्त षोडश संस्कारके रूपमे विभक्त है। पारस्करगृह्यसूत्रादि ग्रन्थोमे यह संख्या बारह है। व्याकरण-शास्त्र शब्दके साधुत्व एव असाधुत्वके संस्कारद्वारा संस्कारतत्त्वको निरूपित करता है। इसका उदाहरण व्याकरणमहाभाष्य एव वाक्यपदीय आदि ग्रन्थोमे क्रमश महर्षि पतञ्जलि एव भर्तृहरिने प्रस्तुत किया है। तन्त्रशास्त्र साधनाक्रममे पञ्चमकारके परिशोधनार्थ संस्कार शब्दका वर्णन करता है, किंतु न्यायशास्त्रमे संस्कारकी दूसरी व्याख्या हुई है। 'न्याय' क्या है—इसे परिभाषित करते हुए कहा गया है—'**प्रमाणै अर्थपरीक्षण न्याय** ।' (न्या० भा० सूत्र १)

अर्थात् प्रत्यक्षानुमानादि प्रमाणचतुष्टयके द्वारा अर्थकी—वस्तुतत्त्वकी परीक्षा 'न्याय' कहलाती है। आन्वीक्षिकीमे स्वय न्यायका तथा न्यायकी प्रणालीसे अन्य विषयोका प्रतिपादन होनेसे उसे न्यायविद्या या न्यायशास्त्र कहा जाता है। इसे यत्र-तत्र हेतुविद्या हेतुशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि नामोसे भी व्यवहृत किया गया है। न्यायको सभी विद्याओका आश्रयस्थल कहा गया है—

प्रदीप सर्वविद्यानामुपाय सर्वकर्मणाम्।
आश्रय सर्वधर्माणा शश्वदान्वीक्षिकी मता॥

(कौटिलीय अर्थशास्त्र)

छ आस्तिक दर्शनोमे न्यायदर्शन एव वैशेषिकदर्शन कुछ तत्त्वोको लेकर अपना दृष्टिकोण समान बनाये हुए है। यहाँ संस्कारको अन्य ग्रन्थोसे हटकर चित्रित किया गया है। पदार्थके द्रव्य, गुण कर्म सामान्य, विशेष समवाय तथा अभाव—ये सात भेद है—

द्रव्य गुणस्तथा कर्म सामान्य सविशेषकम्।
समवायस्तथाऽभाव पदार्था सप्त कीर्तिता ॥

(न्यायसिद्धान्तमुक्तावली २)

उपमानचिन्तामणि ग्रन्थमे नव्यन्यायमार्तण्ड श्रीगङ्गेश

उपाध्यायने शक्तिसादृश्यको भी पदार्थ माननेकी आशङ्का की है। पुन दूसर पदार्थ गुणके चौबीस भेदाम 'सस्कार' अन्तिम भेद है। यह न्यायविहित चार प्रमाणाम शब्दप्रमाणका विषय है। सस्कारकी परिभाषा न्यायशास्त्रम इस प्रकार कही गयी है—**'सस्कारत्वजातिमत्व सस्कारस्य लक्षणम्'** अर्थात् सस्कारत्व जातिमान् सस्कार है, किंतु इसकी निर्दुष्ट परिभाषा इस प्रकार है—**'सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमत्व सस्कारत्वम्'** अर्थात् सामान्य गुण और आत्माम रहनेवाला विशेष गुण—इन दानाम रहनेवाली गुणत्वव्याप्य जाति जहाँ रहती है, उसे 'सस्कार' कहते हैं। सामान्य गुण और विशेष गुण उभय-गुणवृत्तिजातिका आश्रय घट भी है। अत घटादिमे अतिव्याप्ति हटानेके लिये 'गुणत्वव्याप्य' पद दिया गया है। इसी प्रकार सयोगादिम अतिव्याप्ति हटानेके लिये 'आत्मविशेषगुणोभयवृत्ति' पद लक्षणम दिया गया है एव ज्ञानादिम अतिव्याप्ति न हा जाय इसलिय 'सामान्य' पद दिया गया, क्याकि ज्ञान आदि सामान्य गुण नहीं बल्कि विशेष गुण हैं। *न्यायशास्त्र एव वैशेषिकदर्शनने सस्कारक तीन भेदाका स्वीकार किया है—*

'सस्कारभेदो वेगोऽथ स्थितिस्थापकभावने।'

(न्यायसिद्धान्तमुक्तावली १५८)

अर्थात् वेग, भावना एव स्थितिस्थापक—ये तान भेद सस्कारके माने गये हैं। वेगकी परिभाषामे कहा गया है—**'द्वितीयादिपतनाऽसमवायिकारणत्वे सति गुणत्व वेगत्वम्'** अर्थात् द्वितीय आदि पतनके असमवायिकारण गुणको वेग कहते हैं। यह केवल पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा मनम रहता है। द्वितीय सस्कारभावनाके लक्षणम कहा गया है—**'अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिर्हेतुत्व भावनात्वम्'** अर्थात् अनुभवसे उत्पन्न हाकर जो स्मृतिका कारण है, उसे 'भावना' कहते हैं। वह कवल आत्माम रहती है।

तीसर सस्कारस्थितिस्थापकका लक्षण है—**'अन्यथा कृतस्य पुनस्तदवस्थापदकत्व स्थितिस्थापकत्वम्'** अर्थात् अन्य अवस्थाको प्राप्त पदार्थको फिर पहलकी स्थितिमें प्राप्त करानवाल गुणविशेषको 'स्थितिस्थापक' कहते हैं। वे कट (चटाई) आदि पृथिवीम रहते हैं।

इस प्रकार सस्कारके तीन भेदाको न्यायशास्त्रने स्वीकार किया है, जिसका अनुमोदन वैशेषिकदर्शनने भी किया है। [आचार्य प० श्रीनरन्द्रनाथजी ठाकुर]

~~~o~~~

आयुर्वेदशास्त्रमे सस्कार और उनकी उपयोगिता

(वैद्य श्री आर०क० जैन आयुर्वेदाचार्य)

जिस प्रकार भारतीय सस्कृतिमे और भारतीय जनजीवनम विभिन्न प्रकारके सस्काराकी महिमा और उपयोगिता ह उसी प्रकार आयुर्वेदमे भी सस्कारोकी महत्ता एव उपादेयता प्रतिपादित की गयी है क्याकि आयुर्वेदम सस्काराके द्वारा विभिन्न औषधियो और अन्न (आहार-द्रव्या)-को विविध प्रक्रिया-विशेषाद्वारा सस्कारित कर उन्ह प्रयोग और सेवनके योग्य बनाया जाता है। प्रतिदिन हम जिस अन्न या आहारका सेवन करते हैं, उसका सेवन उसी रूपमे नहीं किया जाता, जिस रूपम ये प्राप्त होते हैं बल्कि उन्ह छानकर कूट-पीसकर, पानीम धोकर या भिगाकर अग्निपर उबालकर या पकाकर स्वादिष्ठ एव खानेके योग्य बनाया जाता है। इस प्रकार आहार-द्रव्योपर जो भी क्रिया की जाती है वह 'सस्कार' कहलाती है।

उपर्युक्त पाक आदि क्रियाआके द्वारा आहार-द्रव्योको कवल खानेके याग्य ही नहीं बनाया जाता है अपितु उनक गुणोमे वृद्धि गुणाम अथवा प्रकृति (स्वभाव)-म परिवर्तन भी किया जाता है। आयुर्वेदशास्त्रम विस्तारसे इसकी चर्चा की गयी है। आचार्य वाग्भटने आहारका स्वरूप प्रतिपादित करते हुए निम्न प्रकारसे अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है—**'विधिविहितमन्नपानमिष्टेन्द्रियार्थमायतनमायुषो ब्रुवते। यत्तदायत्तानि ह्योजस्तेजोधात्विन्द्रियबलतुष्टिप्रतिभारोग्यादीनि। तदिन्धना चान्तराग्नेः स्थिति । अग्निमूल च देहधारणमिति॥'** (अष्टाङ्गसग्रह सूत्रस्थान १०। ३)

अर्थात् जो अन्नपान (आहार) विधिपूर्वक बनाया गया होता है और जिसका वर्ण (रूप), गन्ध, रस तथा स्पर्श इष्ट (अभीष्ट-इच्छित-प्रिय) हाता है वह आयुका
~~~

मूल कारण कहा जाता है, क्योकि ओज, तेज, रस आदि धातु, चक्षु-श्रोत्र आदि इन्द्रियोका बल, शारीरिक शक्ति, तुष्टि, पुष्टि, प्रतिभा (प्रज्ञा-मेधाशक्ति) तथा आरोग्य आदि सब उसीके अधीन हैं। इसी आहाररूपी ईंधनसे जठराग्निकी स्थिति है और जठराग्नि ही शरीर-धारणका मूल है।

इसी प्रसङ्गमे आचार्य वाग्भटने आहारके सात कल्पनाविशेष बतलाये हैं। यथा—'**अथात्मवान् स्वभाव-सयोगसस्कारमात्रादेशकालोपयोगव्यवस्थासप्ताहारकल्पन-विशेषाणा स्वास्थ्यास्वास्थ्यफलाना हेतुभूता समीक्ष्य हितमेवानुरुध्येत॥**'

अर्थात् आत्मवान् (सयमी) मनुष्य स्वास्थ्य और अस्वास्थ्यरूप फल (परिणाम)-के हेतुभूत स्वभाव, सयोग, सस्कार मात्रा, देश, काल तथा उपयोग-व्यवस्था—इन सात आहार-कल्पनाविशेषोको भलीभाँति विचारकर हितकारक आहारका ही सेवन करे।

महर्षि चरकने उपर्युक्त सात कल्पनाओके अतिरिक्त उपयोक्ता नामक एक और कल्पनाको जोडकर '**अष्टौ आहारविधिविशेषायतनानि**' का प्रतिपादन किया है। यथा—'**खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति, तद्यथा—प्रकृतिकरणसयोगराशिदेशकालोपयोगसस्थो-पयोक्त्रष्टमानि (भवन्ति)॥**'

(चरकसहिता विमानस्थान १।२१)

आयुर्वेदशास्त्रम मनुष्यके द्वारा ग्रहण (सेवन) किये जानेवाले सम्पूर्ण आहार (अन्नपान)-को क्रियाविशेषके द्वारा रूपान्तरित—सस्कारित करके सुपाच्य एव सात्म्य बनानेका निर्देश किया गया है। वह क्रियाविशेष ही सस्कार कहलाता है। उसके द्वारा आहारद्रव्यका न केवल स्वरूप-परिवर्तन किया जाता है, अपितु द्रव्योके स्वाभाविक गुणोमे वृद्धि अथवा परिवर्तन किया जाता है या हो जाता है। सस्कारको परिभाषित करते हुए आचार्य वाग्भटने अपने ग्रन्थ अष्टाङ्गसग्रह (सूत्रस्थान १२।८)-मे निम्न प्रकारसे कथन किया है—

'**सस्कारस्तु तोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थनदेशकाल-भावनाभाजनादिभिरुपजन्यत।**'

अर्थात् जल तथा अग्निके सन्निकर्षसे, स्वच्छतासे, मन्थनसे, देश एव कालके प्रभावसे, भावना देनेसे, मिट्टी एव ताम्रसे निर्मित भाण्ड (पात्र)-म रखनेसे विशिष्टतापूर्ण लक्षण उत्पन्न कर दिये जाते हैं अथवा उस द्रव्यविशेषमे गुणान्तर (अन्य गुण) उत्पन्न हो जाते हैं।

महर्षि चरकने सस्कारके लिये 'करण' शब्दका व्यवहार किया है। उन्होने अपने ग्रन्थ 'चरकसहिता' (विमानस्थान १।२७)-म विस्तारपूर्वक इसकी चर्चा करते हुए निम्न प्रकारसे उसकी व्याख्या की है—'**करण पुन स्वाभाविकाना द्रव्याणामभिसस्कार, सस्कारो हि गुणान्त-राधानमुच्यते। ते गुणाश्च तोयाग्निसन्निकर्षशौचमन्थन-देशकालवासनभावनादिभि कालप्रकर्षभाजनादिभि-श्चाधीयन्ते॥**'

अर्थात् स्वाभाविक गुणयुक्त द्रव्योमे जो सस्कार किया जाता है, उसे 'करण' कहते हैं। द्रव्योमे विद्यमान गुणोके अतिरिक्त अन्य गुणोका आधान करना सस्कार कहलाता है। जल-सन्निकर्ष, अग्नि-सन्निकर्ष, शौच (शुद्धि), मन्थन, देश काल, वासन, भावना आदिके द्वारा तथा कालप्रकर्ष (अधिक समयतक रखने) एव विभिन्न धातुओ (ताँबा, पीतल, रजत सुवर्ण आदि)-से निर्मित पात्रोम रखनेसे द्रव्यमे स्थित गुणोकी वृद्धि अथवा अन्य गुणोका आधान किया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेदशास्त्रके अनुसार प्रत्येक द्रव्य, चाहे वह आहारद्रव्य हो अथवा औषधद्रव्य, वानस्पतिक द्रव्य हो अथवा खनिज (धातु आदि)-द्रव्य, जाङ्गम द्रव्य हो अथवा विषद्रव्य, उनका उपयोग करनेसे पूर्व विधिपूर्वक (प्रक्रियाविशेषके द्वारा) उन्हे सशोधित या सस्कारित किया जाता है, तभी वे मनुष्यके लिये ग्राह्य अथवा सेवनयोग्य बनते हैं। यदि उन्हे विधिपूर्वक सस्कारित नहीं किया जाता है तो वे शरीरके लिये लाभदायक होनेकी अपेक्षा हानिकारक हो सकते हैं। अत महर्षि चरकने करण या सस्कारके अन्तर्गत जिन विधियो या प्रक्रियाओका उल्लेख किया है उनपर सक्षिप्तरूपसे प्रकाश डालना अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

सर्वप्रथम 'करण' शब्दको देखे। उन्होने सस्कारको करण क्या कहा? इसका समाधान करते हुए बतलाया गया है—'**क्रियते यत्तत्करणम्।**' अर्थात् जो किया जाता है,

वह करण कहलाता है, उसे ही सस्कार कहते हैं। यह सस्कार अनेक प्रकारका होता है—

१-जल-सन्निकर्ष—जलके सयोगसे कठिन—खर गुणवाले द्रव्योको मृदु या मसृण बनाया जाता है। जलके सयोगसे सूखी मिट्टी मृदु बन जाती है। जलके सयोगस गेहूँका आटा या बेसन गूँधा जाता है जलके सयोगस सत्तू घोला जाता है, नीबूकी शिकजी, शर्बत ठडई आदि बनायी जाती है। जलम चन तथा त्रिफला आदि औषधद्रव्य भिगोय जात हैं। भोजन बनानेकी प्रक्रियामे भी अधिकाशत जलका सनिकर्ष (सयोग) अत्यावश्यक होता है।

२-अग्नि-सन्निकर्ष—अग्नि-सनिकर्षके बिना कोई भी पाक-क्रिया सम्भव नहीं है। गूँथे हुए आटेका रोटीके रूपम परिवर्तित होना, चावल दाल, शाक-सब्जी आदि पकाना, खीर, पूरी आदि पक्वान्न बनाना इत्यादि समस्त क्रियाएँ अग्नि-सन्निकर्षका ही परिणाम हैं जिसस आहार-द्रव्य ग्राह्य, स्वादिष्ट एव सुपाच्य बनते हैं। अग्नि-सन्निकर्षसे पकायी गयी रोटी, गूँथे हुए आटेकी अपेक्षा लघु एव सुपाच्य होती है। आयुर्वेदशास्त्रानुसार अनेक औषधियाका निर्माण अग्नि-सन्निकर्षके बिना सम्भव नहीं है। समस्त क्वाथोका निर्माण अग्निद्वारा किये गये पाकसे ही सम्भव है। अग्नि-सन्निकर्षसे ही धानसे 'लाई' बनायी जाती है, जो लघु गुणवाली होती है। अग्निसयोगसे भूना गया चना लघु एव सुपाच्य होता है। लौह आदि धातुआको सात बार या इक्कीस बार अग्निमे सतप्त कर क्रमश तेल, तक्र, गोमूत्र आदिमे बुझाया जाता है, जिसस वे धातुएँ दोषरहित एव शुद्ध होकर मृदु एव भस्म बनानेयोग्य हो जाती हैं। आयुर्वेदोक्त समस्त रस-रसायन, भस्म, अवलेह आदि अग्नि-सन्निकर्षके ही सुपरिणाम हैं। इसी प्रकार अग्नि-सन्निकर्षके और भी अनेक उदाहरण हैं। चाहे पाक-निर्माण-प्रक्रिया हो अथवा औषधि-निर्माण-प्रक्रिया सभीको अग्निद्वारा सस्कारित करना अपेक्षित रहता है।

३-शौच—शौचसे द्रव्यका शोधन या शुद्धिकरणकी प्रक्रियाका सङ्केत मिलता है जैसे—चावलको पकानेस पूर्व जलसे धोकर उसकी मलिनता दूर की जाती है। गन्धकको सात बार अग्निपर तपाकर-पिघलाकर सात बार गादुग्धम डुबाया जाता है। सात बार एसा करनसे उसके दाष दूर हा जाते हैं और यह शुद्ध (निर्दोष) बन जाता है। इसी प्रकार विभिन्न औषधियाके निर्माणमें प्रयुक्त होनवाले कुचला सखिया भिलावा आदि विषद्रव्याका प्रक्रियाविशेषके द्वारा शोधनकर उन्हें निर्दोष बनाया जाता है। तत्पश्चात् उपयुक्त मात्राम विभिन्न औषधियाम उनका प्रयाग किया जाता है। विषद्रव्याके अतिरिक्त अनेक औषधियाम लोहा लौह किट्ट ताँबा पीतल राँगा सीसा आदि धातुओका प्रयोग किया जाता है। उनके प्रयागसे पूर्व प्रथमत शोधन-प्रक्रियाके द्वारा उनम स्थित दाषा—मलाका निर्हरण कर उन्हे शुद्ध किया जाता है, तत्पश्चात् उनका मारण कर औषधिमें प्रयाग किया जाता है। औषधियाम प्रयोग किये जानेवाले पारदका भी प्रथमत अष्ट सस्काराके द्वारा शाधन किया जाता है। शौच-प्रक्रियासे पारदम विद्यमान नाग वग मल वह्नि चाञ्चल्य विष, गिरि और असह्याग्नि दोष दूर हा जाते हैं और वह शुद्ध बन जाता है।

इस प्रकार आयुर्वेदीय औषधियोंके निर्माणम शौच (शोधन)-सस्कार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। पूर्वोक्त आहार-पाकक्रिया एव औषधि-निर्माण-प्रक्रियामें सामान्यत जलसयोग, अग्नि-सन्निकर्ष और शोधन-क्रिया—इन तीना सस्काराका मिश्रितरूप पाया जाता है। जैसे चावल (भात) पकानेकी प्रक्रियाम प्रथमत चावलको जलसयोगसे धोया जाता है जिससे उसकी मलिनता दूर होकर उसकी शुद्धि हो जाती है। यह शौचसस्कार है। तत्पश्चात् उसमे जल मिलाकर अग्नि-सन्निकर्षके द्वारा उसे पकाया जाता है। इस प्रकार चावलसे ओदन बनानेकी प्रक्रियामे उसे तीन सस्कारो—जलसयोग, शौच और अग्नि-सनिकर्षसे सस्कारित होना पडता है। महर्षि चरकके प्रस्तुत वचनसे भी यह सुस्पष्ट है—

'सुधौत प्रस्रुत स्विन्न सन्तप्तश्चौदनो लघु ।'

(च०स० सूत्र २७। २५७)

४-मन्थन—अर्थात् मथना या बिलोना जैसे—दहीको मथकर या बिलोकर मट्ठा (छाछ) बनाया जाता है। दही स्वभावत गुरु और शोथ उत्पन्न करनेवाला होता है किंतु मथनेके बाद वह लघु एव शोथको दूर करनेवाला बन जाता है। यथा—'शोथकृद् शोथघ्न सस्नेहमपि मन्थनाद्।'

५-देश—देशकी अपेक्षासे द्रव्य और उसके गुण-कर्मोंमे भिन्नता पायी जाती है। आयुर्वेदशास्त्रमे त्रिविध देश बतलाये गये हैं—जाङ्गल, आनूप और साधारण। जाङ्गल देशम समुत्पन्न द्रव्य आनूप और साधारण देशकी अपेक्षा अधिक रुक्ष, लघु, कठिन, उष्ण, तीक्ष्ण गुणवाले होते हैं। इसी प्रकार आनूप देशम समुत्पन्न द्रव्य स्निग्ध, मृदु, गुरु, शीत, मन्द, श्लक्ष्ण तथा पिच्छल गुणवाले होते हैं। साधारण देशम उत्पन्न होनेवाले द्रव्य मिश्रित गुणवाले होते हैं। यही कारण है कि आयुर्वेदशास्त्रमे देशानुसार ही औषध और अन्नग्रहण करनेका निर्देश दिया गया है।

६-काल—कालका प्रभाव सम्पूर्ण जगत् ओर उसम अवस्थित समस्त प्राणियो एव द्रव्यापर पडता है। जसे चावल स्वभावत गुरु होता है, कितु एक वर्ष पुराना चावल लघु गुणवाला हो जाता है। खेतम बोया हुआ बीज काल-प्रभावसे पौधा बन जाता है, जो कालान्तरमे पककर अनाज या धान्यके रूपम बन जाता है और हमारे उपयोगमे आता है। कच्चे फल काल-प्रभावसे पककर सेवनयोग्य बन जाते हैं और अधिक समयतक रखे रहनेपर सड या गल जाते हैं। सभी खाद्य-पदार्थ अधिक समयतक नहीं रखे जा सकते, क्योकि वे कालान्तरम सडकर अखाद्य बन जाते हैं। शाक-सब्जी भी अधिक समयतक अपनी स्वाभाविक स्थितिम नहीं रह पाती है। किसी भी योनिम उत्पन्न हुआ प्राणी कालके प्रभावसे ही शैशव, बाल, किशोर युवा प्रौढ वृद्ध आदि अवस्थाओको प्राप्तकर अन्तत मृत्युको प्राप्त होता है। ससारमे होनेवाला सभी प्रकारका परिवर्तन काल-प्रभावजन्य होता है। ससारका कोई भी द्रव्य कालके प्रभावसे अछूता नहीं रहता। प्रत्येक द्रव्यकी उत्पत्ति एव विनाश काल-प्रभावका ही परिणाम है।

७-भाजन—पात्र या बर्तनको भाजन कहते हैं। भाजनक बिना किसी कल्पनाका पूर्ण होना सम्भव नहीं है चाहे वह आहार-कल्पना हो या औषध-कल्पना। आहार-पाक एव औषध-पाक (क्वाथ-निर्माण आदि) भाजन या पात्रम ही किया जाता है। द्राक्षावलेह वासावलेह मूसलीपाक क्रौञ्चबीजपाक आदिके लिये बडे-बड भाजनकी आवश्यकता रहती है। मिट्टीसे बने हुए कुल्हड सकोरे आदिका औषधि-निर्माणमे विशेष महत्त्व है। विभिन्न धातुओकी भस्म बनानेके लिये मिट्टीके सकोरोका प्रयोग विशेषरूपसे किया जाता है। प्राचीन कालम नीबू, आम आदिके अचार रखनेके लिये मिट्टीके घडोका ही प्रयोग किया जाता था। सन्धान-प्रक्रियाके लिये मिट्टीक घडे ही सर्वोत्तम माने जाते थे। मिट्टीके घडेम लम्बी अवधितक रखा गया पक्व या अपक्व, कोई भी द्रव्य खराब नहीं होता, क्योकि उसमे किसी प्रकारका विकार या जीवाणु-सक्रमण नहीं हो पाता, साथ ही उस द्रव्यकी गुणहानि भी नहीं होती। इसी प्रकार त्रिफला (हरड-बहेडा-आँवला)-को मिट्टीक कुल्हडमे पानी डालकर रातभर रखा जाता है। प्रात काल उसे मसलकर-छानकर उस पानीस आँख धोयी जाती हैं, जिससे नेत्र-ज्योति बढती है और चश्मा लगानेकी नौबत नहीं आती। अत सस्कारकी दृष्टिसे भाजन या पात्रका विशेष महत्त्व है।

८-भावना—यह एक प्रक्रियाविशेष है, जिसके द्वारा औषधियोके गुणामे अपेक्षित वृद्धि होती है। यह एक ऐसा सस्कार है, जिसके बिना अनेक आयुर्वेदीय औषधियोका निर्माण ही सम्भव नहीं है। सामान्यत औषधद्रव्योको विभिन्न वनस्पतियाके स्वरस या क्वाथ, जो द्रवरूपमे होत हैं, के साथ खरलमे तबतक घोटा जाता है, जबतक वह द्रव, शुष्क या घनीभूत नहीं हो जाता, जैसे—मोती या सीपको बारीक पीसकर उसे गुलाबजलम घोटना। घोटते-घोटते गुलाबजल सूख जानेपर पुन -पुन सात बार गुलाबजल डालकर घोटना। इससे मोतीका चूरा पिस-पिसकर श्लक्ष्ण पाउडरके रूपम हो जाता है उसे मुक्तापिष्टी कहते हैं, जो पित्त-शामक और हृदयके लिय बल एव पुष्टिकारक होती है। इसी प्रकार अकीकपिष्टी, प्रवालपिष्टी, कहरवापिष्टी आदिका निमाण किया जाता है। विभिन्न औषधिया—जैसे आराग्यवर्धिनी वटीके निर्माणम निम्बपत्र-स्वरसकी भावना पुष्पधन्वा-रसके निमाणम धतूरमूल-स्वरसकी भावना दी जाती है। समस्त रसौषधिया भस्मा वटी आदिके निमाणमे अनिवार्य रूपसे भावना-सस्कारकी अपेक्षा रहती है। विभिन्न रसौषधियोंके निमाणम प्रमुख रूपस प्रयुक्त हानेवाल पारदकी

शुद्धिके लिये जो अष्ट या अष्टादश सस्कार किये जाते हैं, वे भी भावनाप्रधान होत हैं। विभिन्न द्रव्याकी भावनाके बिना वे सस्कार अपूण रहत हैं।

इसके अतिरिक्त कतिपय औपधद्रव्याको जल गामूत्र आदिम रात्रिपर्यन्त या दो तीन दिनतक भिगोकर रखना भी भावनाक अन्तर्गत आता है, जैसे—भिलावा कुचला वत्सनाभ आदिको गामूत्र क्वाथ, तक्र आदिम भिगोकर रखा जाता है। इससे भिलावा आदि निर्विप हा जाते हैं तथा कठोर द्रव्य मृदु हा जात हैं। विभिन्न औपधियाक निर्माणहेतु भावना दनक लिय सामान्यत गामूत्र निम्बपत्र-स्वरस आर्द्रक-स्वरस मूली-स्वरस, अर्कमूल-स्वरस, धत्तूरमूल-स्वरस, गुलावजल गारखमुण्डी-अर्क तथा विभिन्न औपधिद्रव्याके क्वाथ आदिका प्रयोग किया जाता है।

९-कालप्रकर्प—विभिन्न आसव-अरिष्टाके निमाणम सन्धान-प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है। यद्यपि सन्धान-प्रक्रिया स्वय एक सस्कार है जिससे औपधद्रव्यके स्वरूप परिवर्तनके साथ-साथ उसमे पर्याप्तरूपेण गुणान्तराधान होता है। काष्ठौपधद्रव्याके प्रयोगसे जिन अपेक्षित गुणा और रोगनाशक क्षमताको प्राप्त नहीं किया जा सकता उन्ह आसव-अरिष्टरूप औपधियाके सेवनसे प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी औपधि या औपधद्रव्याको नियत कालावधितक एक ही अथवा भिन्न-भिन्न स्थितिम रखना कालप्रकर्प कहलाता है। सन्धान-प्रक्रियाके अन्तर्गत काष्ठौपधियाको जल या क्वाथम निश्चित अवधि (लगभग एक माह)-तक मिट्टीके घडे या बडे भाण्डम रखा जाता है। उसम उचित प्रमाणम धायके फूल मिलाकर घडेका मुख कपडेसे बद कर दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् उसमे किण्वन (सन्धान)-क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और लगभग एक माहमे वह सन्धान-क्रिया पूर्ण हो जाती है, जो कालप्रकपका ही सुपरिणाम है।

यहाँ आयुर्वेदकी दृष्टिसे सस्कारके लिये विभिन्न साधना एव प्रक्रियाओपर प्रकाश डाला गया है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रक्रियाएँ हैं, जो औपधि-निर्माणके लिय प्रयुक्त की जाती हैं, जैसे—द्रव्योको कूटना पीसना छानना, मन्त्रास अभिमन्त्रित करना इत्यादि। ये सभी क्रियाएँ-प्रक्रियाएँ ऊपर कहे गय सस्कारासे व्यतिरिक्त नहीं हैं, अत सम्काराम ही उनका समावश है।

उपर्युक्त विवचनक द्वारा यह सुस्पष्ट है कि सस्कारक द्वारा द्रव्यम स्थित गुणाम परिवर्तन किया जाता है। यहाँ यह विचारणीय है कि क्या सस्कारक द्वारा द्रव्यम विद्यमान स्वाभाविक गुणामे परिवर्तन किया जाना सम्भव है ? क्याकि **'स्वभावो निष्प्रतिक्रिय '** अर्थात् स्वभाव परिवर्तनीय नहीं होता है। इसका समाधान यह है कि किसी भी द्रव्यम उसक उत्पन्न होनक समय उसका जा स्वभाव होता है या उसम जा स्वाभाविक गुण होत हैं व अपरिवर्तनाय हैं, जैसे—उडदम स्वभावत गुरु गुण हाता है उसम किसी भी प्रकारस परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं है, इसी प्रकार अग्निम उष्णता वायुम चञ्चलता, घृत-तेलम स्निग्धता आदि। द्रव्यम उसका स्वभाव तबतक रहता है जबतक द्रव्य अवस्थित है, क्याकि उसका द्रव्यसे नित्यसम्बन्ध रहता है। द्रव्यम जो गुण उसकी उत्पत्तिके पश्चात् प्रादुर्भूत होते हैं, व जन्मात्तरकालान होते हैं और वे ही सस्कारके द्वारा परिवर्तनीय होते हैं। जैसे गुर्वादिगुण। इसके अतिरिक्त द्रव्यम विद्यमान गुणकी वृद्धि और गुणान्तराधान (अन्य गुणाका आधान)-सस्कारके द्वारा किया जाता है, जैसे—दूधको सुपाच्य बनानेक लिय उसमे शुण्ठीचूर्ण डालकर उबालना अथवा दूधको विरेचक (दस्तावर) बनानेके लिये उसम द्राक्षा (मुनक्का) अथवा अमलतासका गूदा डालकर उबालना।

इस प्रकार आयुर्वेदम सस्कारकी विशेप महत्ता एव उपयोगिता है, जिसके बिना औपधियोका निर्माण और उनका गुणकारी होना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त औपधियोम रोगाका शमन या नाश करनकी जो क्षमता उत्पन्न होती है वह सस्कारजन्य ही होती है। विभिन्न रोगोका समूल नाश करनेम जितनी उपयोगिता और अनिवार्यता औपधिकी होती है उससे कहीं अधिक उपयोगिता सस्कारकी होती है। सम्भवत इसीलिये आज भी आयुर्वेदको विश्वमे अपाय (हानि)-रहित अथवा निरापद एक सर्वश्रेष्ठ चिकित्साशास्त्रके रूपम स्वीकार किया गया है।

पारमेश्वरागममें वर्णित अग्निके जातकर्मादि संस्कार

(डॉ० श्रीगोविन्दजी सप्तर्षि)

सनातन-शास्त्राका मुख्य लक्ष्य व्यक्ति एव समाजको अभ्युदय और नि श्रेयसकी प्राप्ति कराना है—

'यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धि स धर्म ।'

(वैशेषिकदर्शन)

व्यक्ति और समाजके अभ्युदयसे तात्पर्य दोनोकी सर्वाङ्गीण लौकिक उन्नतिसे है और नि श्रेयसका अर्थ है— आत्यन्तिक आत्मिक विकास। धर्मशास्त्रोम सस्कारोका विस्तृत उल्लेख मिलता है। सस्कारोद्वारा मनुष्यकी आन्तरिक वृत्तियोका विकास होता है और ये मनुष्यके आन्तरिक विकासके बाह्य प्रतीक हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति अपनेको सामूहिक जीवनके उपयुक्त बनाता है। सस्कृत-मनुष्यको समाजम एक नियत पद प्राप्त होता है। इस प्रकार सस्कारद्वारा व्यक्ति आर समाज दोनाका हित होता है। इन सस्काराकी सख्या धर्मशास्त्रोमे न्यूनाधिक्य बतायी गयी है। यहाँ हम जिन सस्कारोका वर्णन कर रहे हैं वे वीरशैव सम्प्रदायके २८ आगमामे प्रसिद्ध पारमेश्वरागममे वर्णित अग्निके जातकर्मादि सस्कार है।

पारमश्वरागमम लगभग २३ पटलामे शिवाराधनके विषयमें विस्तृतरूपसे वर्णन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ग्रन्थका परिचय देना यहाँ सम्भव नहीं है, इसलिये इसके चतुर्थपटलम होमविधि-निरूपणके प्रसङ्गमें भगवान् शिवद्वारा देवी पार्वतीका अग्निक सस्काराके विषयमे जो समझाया गया है उसीका सार भाग यहाँ वर्णित हे—

भगवान् शिव देवी पार्वतीसे कहते हैं कि गुरु अपने आसनपर विराजमान होकर आचमन प्राणायामादिके उपरान्त सङ्कल्प करे कि मैं वीरशैव धर्मकी दीक्षाके लिये हवन करूँगा।

हे ईशानि! ऐसा सङ्कल्प लनेक पश्चात् गुरु हवन करनेके स्थानकी शुद्धि करे। इसक लिय वह अपने इच्छानुसार स्थण्डिल अथवा कुण्डका निर्माण कर। भगवान् शिव कहते हैं कि हे देवि! स्थण्डिलपर हवन करनेम सभी प्रकारकी सम्पत्तिका लाभ होता है और कुण्डम आहुति देनेसे मनुष्यके सभी प्रयाजन सिद्ध होते हैं। स्थण्डिल तीन और कुण्ड पाँच प्रकारका होता है। स्थण्डिलके चतुरस्र (चोकोर), त्र्यस्र (त्रिकोण) और वृत्त (गोल)—ये तीन भेद क्रमश धर्म, अर्थ और कामको देनेवाले हे। कुण्डके चतुरस्र त्र्यस्र वृत्त, अर्धचन्द्र और कूर्माकृति नामक भेद क्रमश धर्म, अर्थ काम, सायुज्य और कैवल्य देनेवाले हैं। हे देवि! इसलिय गुरु अपने कामनानुसार इन सबमेसे किसीम भी हवन करे।

सर्वप्रथम पुण्याहवाचन तथा नान्दी आदि शुभ कर्म सम्पन्न कर पञ्चगव्यका प्राशन करे एव शिवयोगियोंकी सभाका यथाशक्ति पूजनकर भक्तिपूर्वक अग्निका आहरण करे। इस अग्निको सूर्यकी किरणोसे अथवा अरणिकाष्ठसे उत्पन्न किया जाता है अथवा शिवालय या शिवयोगीके घरसे लाया जाता है। इसे गुरु मूल मन्त्रसे प्रज्वलित करता है एव स्तम्भन, चतुरस्र, धेनु, मत्स्य और योनि—इन पाँच मुद्राआको दिखाकर उसका अभिवादन करता है। फिर अग्नि-कुण्डक पूर्व भागमे अग्निको स्थापित कर उस स्थानका वीक्षण ताडन, प्रोक्षण, अभिमर्षण घातन, प्रार्थना, अभिमन्त्रण और नमस्कार—इन आठ सस्कारोसे पवित्र कर बुद्धिमान् गुरु भगवती पार्वतीका ध्यान करे कि वे भगवती स्वय उदित हा रहे सूर्यक समान लालवर्णकी हैं और लालवर्णके ही वस्त्र पहने हुईं हैं। कुण्डरूपिणी उन महाशक्तिने अपने भीतर महान् अग्निका गर्भके रूपम धारण कर रखा है। पुन घृताहुति अर्पण कर उस गर्भसे उत्पन्न अग्निको नमन करे एव अग्निका जातकर्मादि सस्कार सम्पन्न कर।

कुण्डस्थित अग्निके जातकर्म-सस्कारके लिये प्रणवके साथ मूलमन्त्रका जप करते हुए दस घृताहुतियाँ दी जाती हैं, इसीसे अग्निका जातकर्म-सस्कार सम्पन्न होता है।

सदाशिव कहते हैं कि ह ईशानि! रुद्राग्नि मन्त्रके साथ प्रणवसहित मूल मन्त्रका उच्चारण कर घृतकी दस आहुतियाँ देकर अग्निका नामकरण-सस्कार सम्पन्न करे। नामकरण-सस्कारके सम्पन्न हो जानेक उपरान्त कुण्डस्थ अग्नि उमा और महेशसे पृथक् हा गयी है, एसा विचार करत हुए

अध्ययन समाप्त कर जब ब्रह्मचारी आचार्यके समीप उपस्थित होकर उससे दीक्षान्त आशीर्वाद लेता है तो आचार्य उसे सत्य बोलने धर्मका आचरण करने, स्वाध्यायमें प्रमाद न करने तथा भावी जीवनमें अध्ययन एवं प्रवचनसे विरत न होनेका उपदेश देते हैं। दूरदर्शी आचार्य निम्न वाक्यामें यह कहना नहीं भूलते कि शिष्यको चाहिये कि वह अपने आचार्यके अनिन्दित कर्मोंका ही सेवन करे तथा उनके सुचरिताका ही अनुकरण करे—

यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

(तैत्तिरीयोपनिषद् १।११)

इस प्रकार गुरुगृहसे लौटकर ब्रह्मचारी स्नातक बनता है और स्व-वर्ण गुण कर्म, स्वभाव, शील तथा विद्यायुक्त कन्यासे विवाह कर गृहस्थधर्ममें प्रवेश करता है।

विवाह-संस्कारका महत्त्व—षोडश संस्कारोंमें विवाह सर्वोपरि एवं महत्त्वपूर्ण है। इसकी विधि तथा तत्-सम्बद्ध क्रियाएँ भी विस्तृत तथा जटिल हैं। खेद है कि वर्तमान समयकी मर्यादाहीन जीवनप्रणालीने विवाह-संस्कारको उपहासास्पद बना दिया है। विवाह-जैसे पावन तथा महत्त्वपूर्ण संस्कारका यदि विद्रूप देखना चाहें तो फिल्मोंमें दिखाये जानेवाले वैवाहिक कृत्यों तथा उन्हें सम्पादित करानेवाले पुरोहितोंको देखना चाहिये जो विदूषकोंकी भाँति हँसी तथा उपहासके पात्र दिखाये जाते हैं। विवाहकी समस्त विधियोंको यदि शास्त्रसम्मत विधि-विधानसे कराया जाय तो उसमें पर्याप्त समय लगता है तथा धैर्य भी आवश्यक है। शास्त्रोक्त ब्राह्म विवाहमें निम्न विधियाँ प्रमुख हैं—स्वस्ति तथा शान्तिके मन्त्रोंका मङ्गलवाचन आसन पाद्य अर्घ तथा आचमन एवं मधुपर्कके द्वारा वरका सत्कार गोदान, गोत्र तथा नामोच्चारणपूर्वक कन्याका पाणिग्रहण **'समञ्जन्तु विश्वेदेवा'** आदि प्रतिज्ञामन्त्रोंका उच्चारण तत्पश्चात् वैवाहिक होमकी प्रधानता होती है। **'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्'** आदि मन्त्रपाठके द्वारा कन्याका हस्तग्रहण पुन शिलारोहण लाजाहोम तथा सप्तपदीकी क्रियाएँ होती हैं। उपसंहारकी क्रियाओंमें **'आपो हि ष्ठा मयोभुव'** आदि मन्त्रोंसे जलाभिषेक **'मम व्रते ते हृदयं दधामि'** आदि पारस्कर-गृह्यसूत्रोक्त मन्त्रोंसे हृदयालम्भन, **'सुमङ्गलीरियं वधू'** से सिन्दूरदानपूर्वक आशीर्वाद तथा ध्रुवदर्शन एवं अरुन्धती नक्षत्रके दर्शनके अनन्तर शान्तिपाठ होता है।

जीवनचर्यामें गृहस्थधर्मके पश्चात् वानप्रस्थ-सेवनको भी संस्कारके रूपमें परिगणित किया गया है। वार्धक्यावस्था आनेपर सांसारिक कर्तव्योंसे अनासक्त होकर मानवको उचित है कि वह परलोककी ओर ध्यान दे। गृहस्थका दायित्व पुत्रोंको सौंप दे और स्वयंको लोकहित तथा आत्मकल्याणमें लगा दे। रघुवंशी राजाओंकी जीवन-चर्याका उल्लेख करते हुए महाकवि कालिदासने रघुवंश (१।८)-में कहा है—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

अर्थात् बाल्यकालमें ये रघुवंशी नरेश विद्याओंका अभ्यास करते हैं युवाकालमें गृहस्थधर्मका पालन करते हैं, वृद्ध हो जानेपर मुनियोंकी वृत्ति अपनाकर योगसाधना करते हैं और योगवृत्तिसे ही स्वशरीरका त्याग करते हैं। निवृत्तिमार्गमें रुचि रखनेवालेको चाहिये कि वह समस्त लौकिक रागोंसे निवृत्त होकर प्रबल तप त्याग और वैराग्य-सम्पन्न होकर संन्यासधर्मको स्वीकार करे।

शरीरान्तके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक शवका दाहकर्म भी एक आवश्यक संस्कार माना गया है। शवको भूमिस्थ करने जलमें प्रवाहित करने या दाह करनेकी परम्परा है। शवके दाहमें यथाशक्ति मात्रामें काष्ठ, कर्पूर चन्दन, घृतादिका प्रयोग आवश्यक है। शवदाहके समय यजुर्वेदके उनतालीसवें अध्यायके मन्त्रोंका पाठ तथा तदनुरूप आहुतियाँ देनेका विधान है। ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १४वें सूक्तके अधिकांश मन्त्र मृत्युके नियन्त्रक यम नामवाले परमात्माकी स्तुतिके हैं। यजुर्वेदीय मन्त्रोंमें शरीरस्थ प्राण, चक्षु, श्रोत्र लोम त्वचा रक्त मेद स्नायु, अस्थि मज्जा रेतस् आदि पदार्थोंको अपने कारणतत्त्वोंमें विलीन होनेका संकेत है।

वस्तुत हमारे सभी संस्कार सप्रयोजन हैं जिनमें मानवीय इतिकर्तव्यता तथा आदर्श नैतिकताके तत्त्व संनिहित हैं। इनको पुन प्रतिष्ठित किया जाना अभीष्ट है।

बुन्देलखण्डमे श्रीरामोन्मुख षोडश संस्कार

(श्रीमती सन्ध्याजी पुरवार एम०ए०)

व्यक्तिके असस्कृतरूपको सुसस्कृत करने और उन्हे अनुशासित करनेके लिये प्राचीन ऋषि-मुनियोने सस्कारोका विधान किया है।

सस्कारोके माध्यमसे बुरे प्रभावोका शुद्धीकरण तथा अच्छे प्रभावोका उन्नयन होता है। इसके लिये पूजा-पाठ, हवन इत्यादिके द्वारा मन और वातावरणकी शुद्धि की जाती है तथा देवताओ एव श्रेष्ठ जनोका आशीर्वाद प्राप्त करनेका उपक्रम किया जाता है।

बुन्देली जनजीवन अपनी धार्मिक एव सास्कृतिक परिपाटीके प्रति विशेष आस्थावान् है। इसी कारण यहाँपर शास्त्रोक्त सभी सस्कारोको पूर्ण मनोयोग, श्रद्धा एव हर्षोल्लासके साथ सम्पन्न किया जाता है। यह हर्षोल्लास उस समय दुगुना हो जाता है जब ढोलककी थापपर अपनेको भावोसे परिपूर्ण करते हुए यहाँकी महिलाएँ लोकगीतोके माध्यमसे अपनी आस्थाको व्यक्त करती हैं। यहाँके सस्कारीय लोकगीतोपर भगवान् श्रीरामका प्रभाव इतना व्यापक है कि अधिकाश सस्कारगीत इन्हीं श्रीराम-सीताके प्रसङ्गोपर आधारित हैं और जब इन लोकगीतोका गायन होता है तो उस समय ऐसा वातावरण निर्मित होता है कि वास्तवमे अयोध्यामे श्रीरामजीने जन्म लिया हो। प्रत्येक माता-पिताकी यह इच्छा रहती है कि उनका बालक श्रीरामजीके समान वीर एव ओजस्वी हो।

यहाँ सस्कारोके समय गाये-जानेवाले मुख्य-मुख्य सस्कार गीतोका सक्षेपमे वर्णन प्रस्तुत है—

१-गर्भाधान-सस्कार—इस सस्कारसे बीज तथा गर्भकी मलिनताका शोधन होता है और पति-पत्नी उत्तम सतानकी कामनासे शुद्ध होकर सहवास करते हैं। बुन्देलखण्डमे यह सस्कार '**फूलचौक**'के नामसे जाना जाता है। इस अवसरपर स्त्रियाँ गीत गाती हैं—

आज दिन फूल चौक सुनो मोरी देवरानी।
चौक चदन पुराय, बाहमन देव बुलाय॥
सबरी गणित लगाय रामजीको सुमिर लेओ मोरी देवरानी।
रामजीके सुमिरेसे भाव बनत है॥
लखना बूटीसे, तन्त्र गढत है।
अब होओ रामजी तुम सहाय मोरी देवरानी॥

इस गीतमे भगवान् श्रीरामजीका स्मरण करते हुए उनका भाव मनमे जगाते हुए उन्हींसे वशवृद्धिहेतु सहायता भी माँगी गयी है।

२-पुसवन-सस्कार—यह सस्कार गर्भाधानसे दूसरे या तीसरे माहमे किया जाता है। इस सस्कारसे पुत्रप्राप्तिका योग बनता है। जब पूजन आदि कार्यक्रम चल रहा होता है, तब यहाँकी महिलाओके कोकिल-कण्ठका स्वर यूँ गूँजने लगता है—

मिटगव बाझ कौ नाव,
राजा तौ पौढे पलग पै, रानी मल पिण्डरीं महाराज।
सूनो अयोध्या को राज, अकेला सतति बिना महाराज॥
गजमोतिन के चौक पुरा कलस धरवाइयो महाराज।
बारा बरसके हुइये राम तब बन खा जैहै महाराज॥
इतनी तो सुन राजा दशरथ अटरिया चढ गये महाराज।
पाछू से गई कोसिल्या पूछे कैसे राजा अनमने महाराज॥
बन खो जैहें तो जान दे फर घर आहे महाराज।
मोरो मिटगव बाझ कौ नाव, तुम्हारो वश चलो महाराज॥

३-सीमन्तोन्नयन-सस्कार—यह सस्कार गर्भधारणके पश्चात् छठे या आठवे महीनेमे किया जाता है। इस सस्कारमे कुश एव सेहीके काँटेका विशेषरूपसे प्रयोग होता है, जिससे गर्भस्थ शिशुकी व्याधियोसे रक्षा हो सके तथा गर्भिणी स्त्रीका शारीरिक एव मानसिक श्रमसे बचाव किया जा सके और वह प्रफुल्लित रह सके। इस सस्कारको बुन्देलखण्डमे '**सादे**' कहा जाता है और पूजन इत्यादिके अवसरपर यहाँकी मातृशक्ति अनायास ही गा उठती है—

ऐसी किरपा कब करहै भगवान मेरे आगन बजै बधावौ।
रामजीसे लला मोरे अगना मे डोलै मुस्कावैं॥
रामजीकी किरपा सेई होवे, सुफल मनोरथ हमारो।
हे रामजी अपनी दया बनाय रखियो मेरे आगन बजै बधावौ॥

भगवान् श्रीरामजी-जैसे पुत्रकी कामनापूर्ति केवल श्रीरामजीके अनुग्रहसे ही सम्भव है—यह गीत यही बतलाता है। ये तीनो संस्कार बालकके जन्मसे पूर्वके हैं तथा प्रथम गर्भधारणमें ही अपनाये जाते हैं।

४-जातकर्म-संस्कार—इस संस्कारको पुत्र-जन्मके अवसरपर किया जाता है, इसका उद्देश्य है—पुत्रपर पड़नेवाली बाधाओंका निराकरण। पुत्र उत्पन्न होनेपर थाली बजाकर पुत्र-आगमनकी खुशी व्यक्त की जाती है और महिलाएँ खुशीसे गीत गाने लगती हैं—

राजा दसरथ के चार कुमार, तौ दिन दिन प्यारे लगं,
कौना के जनम भरत शत्रुघन, कौना के लक्षमन राम।
कैकई के जनमे भरत शत्रुघन, कौशिल्या के लक्षमन राम,
कैकई के बाजे ढोलक मजीरा, कौशिल्या के घूमे निसान।

इसी अवसरपर नरा-छीनने (नालच्छेदन)-की प्रक्रिया भी सम्पन्न होती है। जिसमें भगवान् श्रीरामके स्वरूपका वर्णन करते हुए उस महान् दिव्य झाँकीका दर्शन होता है—

कैसी मचल रई दाई, अवध म कैसी मचल रई दाई,
सुरग चुनरी कौशिल्या लयै ठाड़ी, यई न लेये दाई।
सोने को हार कैकई लय ठाड़ी, कूलो मरोर गई दाई॥
नरा तुमारो जबई हम छीने, दरसन दे रघुराई।
रूप चतुर्भुज प्रभु दरसायो खुसी भई अब दाई॥

५-नामकरण-संस्कार—आज विज्ञानद्वारा यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि शब्दोंकी ध्वनिका मानव-मस्तिष्कपर तथा वायुमण्डलपर विशेष प्रभाव पड़ता है। बालकके सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थानहेतु उसके नामकी ध्वनि-तरङ्गोंका विशेष महत्त्व है जिसके लिये इस संस्कारको प्रतिपादित किया जाता है। बुन्देली माटीमें यह संस्कार '**खरीपटा**' के नामसे जाना जाता है। जब पुरोहित नक्षत्रों तथा वर्णानुसार नामका चयन करते हैं, तब महिलाओंका कोकिलस्वर इस प्रकार गुञ्जायमान हो उठता है—

दसरथ जू की रनिया रामा लये कइया
कौशिल्या के रामा भये सुमित्रा के लक्षमनिया।
संझा बेरा रामा भये भोरे लक्षमनिया
शुभ घरी ललन राम भये हैं, मूलपरे लक्षमनिया।

६-निष्क्रमण-संस्कार—यह संस्कार साधारणतः चौथे माहमें होता है और इसका उद्देश्य है—बालकका समाजके साथ एवं प्रकृतिके तत्त्वोंके साथ परिचय कराना। इस संस्कारमें कुआँ पूजन जाया जाता है और उस समय यह गीत गाया जाता है—

ललन खौं लैकें निकरीं दसरथ जू की रनियाँ
कौशिल्या की गोदी म रामजू लद है, भरत कैकयी की कनियाँ।
गैला म ठाड़े अजुध्यावासी, सगै संगै चलती सुगइयाँ
ललन को साथ लय, महलन को छार के, निकरी भरये पनियाँ।

७-अन्नप्राशन-संस्कार—आम तौरपर यह संस्कार जन्मके छठे मासमें किया जाता है और बुन्देलखण्डमें इसे '**पासनी**' कहा जाता है। इस संस्कारका गर्भवास और मलिन-भक्षणकी शुद्धिके लिये तथा आयु एवं बलकी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। इस अवसरपर यह लोकगीत गाया जाता है, जिसमें जनकजीके महलका वर्णन किया गया है, जहाँपर नाना-नानीद्वारा खीर चटाये जानेका पारम्परिक वर्णन हुआ है—

जनक जू के महलन में कैसी परी भीर
हरस भरी भीर हुलस भरी भीर।
नाना चटा रय ललन खौं खीर
काहे की बिलिया काहे की खीर।
सोने की बिलिया इमरत की खीर,
काहे की चम्मच काहे की खीर।
रतन जड़ी चम्मच मेवन की खीर,
नानी चटायीं ललन खौं खीर।

८-चूडाकर्म-संस्कार—यह संस्कार पारिवारिक चलनके अनुरूप एक वर्ष या तीन वर्ष या छः माहमें सुविधानुसार किया जाता है। इसे '**मुण्डन**' कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य होता है—बालकको स्वच्छतासे जीवन-यापनकी शिक्षा देना। इसमें बालकके सिरके सभी बाल (शिखाको छोड़कर) मूड़ दिये जाते हैं और शिखाके माध्यमसे परम तत्त्वके साथ सम्पर्ककी शिक्षा दी जाती है। मुण्डनके समय मातृशक्ति समूहमें गायन करते हुए श्रीरामजीको ही आधार बनाकर राजा दशरथकी ओर संकेत करते हुए कहती हैं—

महराज जू, राम जू को मुड़नो कराओ,
बहमन बुलाओ साइत दिखाओ।
समधी को खबरिया कराओ,
पूरी अयोध्या में दियला जलाओ॥

९-कर्णवेध-सस्कार—यह सस्कार बालकको आयुवृद्धि और व्यवहारसिद्धि तथा परमेश्वरकी प्रसन्नताहेतु किया जाता है। इसका एक अन्य वैज्ञानिक उद्देश्य यह भी है कि कर्णवेधद्वारा अण्डकोशवृद्धि तथा आन्त्रवृद्धि एव श्वासके रोगोसे छुटकारा पाया जा सकता है। इस अवसरपर यह लोकगीत प्रचलित है—

आज समय सुख छायो, रामजीको औसर मन भायो।
कनछेदन सुन आई सखियन मगल गायो॥
झेगुली झीन सुभग तन राजत, जामा परम सुहायो।
बाबा दसरथ कौशिल्या रानी, मुतियन चौक पुरायो॥
बदनवार द्वार बँधवाये, कमल कुअर लख अनद सुख पायो।

१०-उपनयन-सस्कार—यह सस्कार बालकको द्विजत्वसिद्धिद्वारा वेदाध्ययनाधिकारकी सिद्धिहेतु किया जाता है। इसका उद्देश्य मुख्यत शैक्षणिक है और इसका शाब्दिक अर्थ है—समीप ले जाना। अस्तु, इस सस्कारसे तात्पर्य बालकको शिक्षाहेतु गुरुके समीप ले जानसे है। इस सस्कारमे बालकको जनेऊ पहनाया जाता है, जो सदैव उसे नियमाक पालन करनहेतु प्रेरणा देता रहता है। भगवान् श्रीराम तो मर्यादापुरुषोत्तम हैं ही, इसीलिये उनका स्मरण करते हुए यह सस्कार सम्पन्न होता है, जिससे बालक भगवान् श्रीरामके गुणोस प्रभावित हाकर उन्हे अपने जीवनमे अपनाये। इस अवसरपर निम्न गीत गाया जाता है—

जनेउ आज पैरत दसरथ के लाल दसरथ घर मोद बढ़ै।
तीन तगा मे बिरया बाधे, दसरथ घर मोद बढै॥
विस्नू बाधे विस्व करतार दसरथ घर मोद बढै।
बिरमा ठाड़े बिस्नू ठाड़े, ठाड़े त्रिपुरार दसरथ घर माद बढै॥

११-वेदारम्भ-सस्कार—इसे 'पाटीपूजन' भी कहा जाता है तथा इसम बालकको अक्षरज्ञानके माध्यमसे शिक्षा दी जाती है। पाटीपूजनके समय जब गुरु बालकको शिष्यरूपम स्वीकार करते हैं तब भी महिलाएँ श्रीरामजीका ही अपना आधार मानकर उस बालकके वेदारम्भ-सस्कारमें यह गीत गाती हैं—

कौशिल्या जू माई, कैकई जू माई,
पडित जू नेग माग, बेद की पढाई।

१२-समावर्तन-सस्कार—यह सस्कार शिक्षाकी समाप्तिपर सम्पन्न होता है, जिसे बुन्देलीमे 'समर' कहते हैं। बालक अपनी शिक्षा पूरी करके गुरुके आश्रमसे अपने घर वापस आता है। भगवान् श्रीरामजी गुरुशिक्षाके बाद घर आते हैं तो पूरी अयोध्याम खुशी छा जाती है—

आज राम जू लला अजुध्या आय, सबरे आनन्द छाये।
अग्गा अग्गा राम जू पाछे लक्षमन भरत शत्रुधन मन भाये॥
सबरी नगरिया म झालर टँग गयी, सबके मन हर्साये।
दसरथ जू और माता कौशिल्या ने रत्ना खूब लुटाये॥

१३-विवाह-सस्कार—हिन्दू जनमानसमे विवाह एक पवित्र बन्धन होता है, जिसम आत्माका आत्मासे मिलन होता है। बुन्देलखण्डमे विवाहके अवसरपर अत्यधिक उल्लास होता है तथा यह सस्कार कई चरणामे होकर सम्पूर्णताको प्राप्त होता है। इन चरणाम लगुन मटियाना (देवताओको निमन्त्रण), हल्दी-तेल चढना, द्वाराचार भाँवर, पाँव-पखराई (कन्यादान), ज्यानार कुँवर-कलेवा सगुन-चिरैया आदि प्रमुख हैं और इन सभी चरणाके अलग-अलग लोकगीत हैं। जब बालक (वर)-को तेल चढाया जाता है तब भी तेल चढानेवाली महिलाओके मनम यही भाव रहता है कि वे श्रीरामजीको तेल चढा रही हैं—

सो आज मोरे राम जू खौं तेल चढत है,
तेलो चढ़त है फुलेलो चढ़त है।
सोने कटारा मे तेलो भरायो,
सो हरदी मिला कै कैसा झलकत है।
कुवारिन ने मिल तेलो चढायो,
सो नरिन मगल गीत मढत है।

इसी भाँति ककन-छाडनेका गीत देख, जिसको श्रीरामके धनुर्भङ्गका वर्णन करते हुए इस प्रकार गाया जाता है—

जौ ने होय धनुप को टोरयो, कठिन ककन छोरयो।
तुमने जनकपुरी पग धारे, शिव के धनुष टारके डारे॥

जौ नै होय मारीच को मारयो, कठिन ककन छोरयो।

१४-वानप्रस्थ-सस्कार—यह सस्कार जीवनक तृतीय चरणमे इस आशयसे किया जाता है कि व्यक्ति मोहमायाके बन्धनको त्यागकर समाजसे विरक्ति लेकर जीवनके परम उद्देश्य ईश्वरसे साक्षात्कारहेतु प्ररित हो सके। वानप्रस्थके अवसरपर यह निर्मोही लाकगीत वास्तवम श्रीरामजीसे साक्षात्कार कराता है—

राम राम खाँ भज ले प्यारे, क्या करते आना कानी।

१५-सन्यास-सस्कार—जीवनक अन्तिम चरणम मनुष्य इस जीवनसे पूर्ण विरक्ति लेता हुआ ईश्वरमे रम जानेहेतु अग्रसर होता है, इसी कारण उसका मन कहता है—

मन लागौ है राम फकीरी म।
जो सुख है मोय राम भजन म, सो सुख नैया अमीरी मे॥

१६-अन्त्येष्टि-सस्कार—जीवन-समाप्तिके पश्चात् यह अन्तिम सस्कार है अर्थात् स्थूलशरीरका पाँच तत्त्वाम मेलन है। यह शरीर पाँच तत्त्वा—क्षिति, जल पावक, गगन एव वायुसे मिलकर बना है। यह सस्कार इस उद्देश्यस किया जाता है ताकि मृत शरीरके सभी पाँच तत्त्व अपने-अपने अवयवाम मिल जायँ, जिसस प्रकृतिचक्रम कोई व्यवधान उत्पन्न न हो। ऐसे कारुणिक अवसरपर स्वत ही यह आभास होता है—

चलन चलन सब कोऊ कहै चलिबो हँसी न खेल।
चलवौ साचे ओई को, जी को भैरो बुलावे टैर॥

शवयात्राम लोग भगवान् श्रीरामजीके नामकी सत्यताका नाद करते हुए चलते जाते हैं।

भगवान् श्रीराम तो बुन्देलखण्डक जन-जनम व्याप्त हैं एव इसी कारण यहाँकी दिनचर्याका प्रत्येक कार्य भगवान् श्रीरामको केन्द्रित करके ही सम्पन्न होता है। यही इस बुन्देली माटीकी श्रीरामजीके प्रति श्रद्धाका परिचायक है।

~~~ ० ~~~

आख्यान—

माताद्वारा बालकको प्राप्त संस्कार

एक खलासीका घर था। उसमे मालिक-मालकिन और लड़का मिलकर तीन आदमी थ। खलासीके मर जानेके बाद उसकी स्त्री और लड़का निराधार हो गये। लड़केने निश्चय किया कि अब तो उसे अपना और माँका भरण-पोषण खुद ही करना पड़ेगा। इसके बाद वह अपनी माँकी आज्ञा लेकर नौकरीकी तलाशमे गया। सौभाग्यसे उस एक नौकरी मिल गयी और वह अपनी माँके पास आकर बोला—'मुझको नौकरी मिल गयी है। अमुक दिन मेरा जहाज खुलेगा और वह जब लौटेगा, तब मै तुमसे भेट करूँगा।' इतना कहकर वह जहाजपर गया। विभिन्न जगहापर रुकता हुआ वह जहाज एक बड़ बन्दरगाहपर जाकर खड़ा हुआ। लड़केके ऊपर कप्तानकी बड़ी दया थी और वह उसे बहुत मानता था, क्योंकि वह सदा ही सच बोलता था। रोज ईश्वरकी प्रार्थना करता था और दूसरे भी अच्छे गुण उसमे थे। जहाजके खलासी भी उसको चाहते थे। एक दिन कुछ खलासियोके साथ वह लड़का शहर देखने जा रहा था। इतनेमे एक गाड़ीमसे कोई ओहदेदार और उसकी स्त्री उतरी। उतरते वक्त स्त्रीका हीरेका हार नीचे गिर गया। उस हारको दूसरे किसीने न देखा, पर उस लड़केने देखा और देखते ही तुरत उसे उठा लिया। इस बातको जब उसके साथियोने सुना, तब उन्होन कहा—'इस कीमती हारको बेच दिया जाय तो बहुत रुपये मिले और फिर नौकरी-चाकरी करनेकी जरूरत ही न रहे।'

यह सुनकर उस लड़केने कहा—'यह हार तो दूसरेका है। हम यदि इसे ले लेगे तो चोर बन जायँगे। चोरी करना महापाप है। मेरी माँ कहती है कि मनुष्यकी आँखको तो धोखा दिया जा सकता है, पर ईश्वरकी आँखका कोई धोखा नहीं दे सकता क्योंकि ईश्वर सब जगह है। इसलिये मै तो जिसका हार है, उसीको वापस दूँगा।

साथियाने उसे बहुतेरा समझाया, पर उसने उनकी एक न मानी। वह हार जिस स्त्रीका था, उसे वापस दे दिया। उस स्त्रीको हार मिलनेस बहुत ही आनन्द हुआ और उसने उस लडकको याग्य इनाम दिया। कप्तानको जब यह खबर मिली, तब वह भी उस लड़केपर बहुत अधिक प्रेम करने लगा, सत्यसे प्रेम कौन नहीं करता?

~~~ ० ~~~

श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें पञ्चसंस्कार

(शास्त्री श्रीकोसलेन्द्रदासजी 'जयपुरीय)

वेदिक सनातन सस्कृतिकी मान्य परम्पराआम श्रीरामानन्द-सम्प्रदाय अपनी अनेक विशिष्टताओके कारण महनीय स्थान रखता है, जिनम प्रमुख हे उसका सार्वभौम उदार दृष्टिकोण। श्रीरामानन्दसम्प्रदायका स्वीकृत सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत हे। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तकी विशेपताआम अन्यतम है—प्रपत्तिकी अवधारणा जो कर्म, ज्ञान एव भक्तिसे नितान्त विलक्षण तथा परम रहस्यके रूपम शास्त्राम उपदिष्ट हुई है। वेष्णवाचार्योका यह अभिमत है कि उपक्रमोपसहारादि षड्लिङ्गोके माध्यमसे उपनिषदाका परम तात्पर्य—प्रपत्ति ही सिद्ध हाती है। भगवान् श्रीसीतानाथ मुमुक्षु सेवककी भक्ति एव प्रपत्तिसे प्रसन्न होकर उसको मुक्ति प्रदान करते हैं। अत भक्ति तथा प्रपत्ति ही मुक्तिमे परम कारण है।

यह अवश्य ध्यातव्य है कि चाहे पराविद्या हो या अपराविद्या—दोना तभी वीर्यवत्तर होती हैं, जब साधक पूर्णसस्कारसम्पन्न हो। शास्त्रविहितक्रियाजन्य सस्कार न केवल उत्पन्न दुरितका ही नाश करता है अपितु कार्यान्तर-योग्यताका भी सम्पादन करता है अर्थात् इसक द्वारा मलापनयनके साथ-साथ गुणाधान भी सम्पन्न होता है। सस्कारको परिभापित करते हुए श्रीभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्यजी कहते है—

'सस्कारो हि नाम कार्यान्तरयोग्यताकरणम्।'

(श्रीभाष्य १।१।१)

श्रीरामानन्दसम्प्रदायमे पञ्चसस्कार भगवत्प्राप्तिके प्रधान साधन माने जाते हैं। वैष्णवसिद्धान्तमे यह पक्ष अत्यन्त प्रगाढतासे स्वीकृत हे कि मनुष्य जब आचार्योपदिष्ट पञ्चसस्कारासे सस्कृत होता है तभी वह भगवत्कैङ्कर्यका अधिकारी होता है। अत प्रत्येक भगवद्रतिलोलुपप्रेमी मुमुक्षुओके लिये पञ्चसस्कारसम्पन्न होना अत्यावश्यक है। शास्त्रोमे स्पष्ट कहा गया है—

तापादिपञ्चसस्कारी मन्त्ररत्नार्थतत्त्ववित्।
वैष्णव स जगत्पूज्यो याति विष्णो पर पदम्॥

तापादि पञ्चसस्कारासे सम्पन्न श्रीराममन्त्रके अर्थ तथा तत्त्वका यथार्थरूपसे जाननवाला वह वैष्णव ससारम पूज्य होकर भगवानके दिव्य धामको जाता है। इन पञ्चसस्काराको गुरूपदिष्ट श्रीवैष्णवी-दीक्षाके समय सम्प्रदायानुसार शिष्यको प्रदान किया जाता ह। ये पञ्चसस्कार हे—१ श्रीठाकुरजीके दिव्यायुधाको बाहुमूलपर तप्त या शीतलरूपम धारण करना, २ ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करना, ३ भगवत्सम्बन्धी नाम रखना ४ भगवन्मन्त्र धारण करना तथा ५ भगवत्प्रीत्यर्थ तुलसीजीकी युगलमाला धारण करना।

ताप पुण्ड्रस्तथा नाम मन्त्रो माला च पञ्चम ।
अमी हि पञ्चसस्कारा परमैकान्त्यहेतव ॥

तप्तमुद्रा ऊर्ध्वपुण्ड्र भगवत्सम्बन्धी नाम, श्रीराममन्त्र-राजप्राप्ति और तुलसीमाला धारण—ये पञ्चसस्कार परमैकान्तिक मोक्षसुखके साक्षात् प्रदाता है।

१ **ताप**—शुद्ध यज्ञाग्निमें वेदमन्त्रों तथा श्रीरामतारक-मन्त्रसे आहुति देकर शुद्ध धातुसे बनी हुई धनुर्बाण मुद्राओको उस अग्निम सस्कृत कर शिष्यके बाहुमूलपर गुरुद्वारा सविधि अङ्कित करना शास्त्राद्वारा भूरिश आदेशित है। वामबाहुपर धनुप तथा दक्षिणबाहुपर बाणके दो चिह्न अङ्कित करनेका विधान है।

२ **ऊर्ध्वपुण्ड्र**—ललाटपर पवित्र तीर्थस्थलाकी मृत्तिकासे नित्य ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना चाहिये। श्रीरामपादुकाकृति तिलकके मध्यम कुङ्कुमसे 'श्री' धारण करना चाहिये।

३ **नाम**—भगवद्दासान्त नामको धारण करना ही नामसस्कार है। लौकिक नामको त्यागकर आध्यात्मिक भगवन्नामका धारण करना मुक्तिका परमोपाय है।

४ **मन्त्र**—उपनिषदाके परमतात्पर्य श्रीराममन्त्रको धारण करना शास्त्रानुमोदित और प्रशसित मन्त्रसस्कार है। **'काश्या तारोपदेशात '** इत्यादि उपनिषद्वाक्य इस मन्त्रके महत्त्वको प्रतिष्ठापित करत हैं।

५ **माला**—द्विधाकृति कण्ठलग्ना भगवत्प्रसाद-स्वरूपा श्रीतुलसीमालाको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक धारण करता है वह सभी पापासे विनिर्मुक्त हो भगवल्लोकको प्राप्त होता है।

वीरशैव-धर्मम धार्मिक संस्कार

(श्रीमहन्त शमिपुराधीश्वर डॉ० सुज्ञानदेव शिवाचार्य स्वामीजी)

वीरशैव-धर्म अत्यन्त प्राचीन धर्म है। इस धर्मम देवतोपासना और योगकी प्राप्तिके लिये अनक धार्मिक सस्काराका आचरण होता आया है, जिसका विवरण दशकर्म-विधान सिद्धान्तशिखामणि, सस्कार-विधि तथा पूर्वप्रयोगरत्न आदि ग्रन्थाम मिलता है। श्रीमद्भागवत (१०।२४।१३)-मे कहा गया है—

कर्मणा जायते जन्तु कर्मणैव विलीयत।
सुख दु ख भय क्षेम कर्मणैवाभिपद्यते॥

भाव यह है कि प्रत्येक प्राणी कर्मसे जन्म लेकर कर्मसे ही विनाशका प्राप्त होता है। मानवको प्राप्त होनेवाले सुख-दु ख कर्मोसे ही प्रकट होते हैं और इन अनुभूतियासे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये गुरुमुखसे सस्कारोपदेश एव दीक्षा प्राप्तकर परिशुद्ध हुआ व्यक्ति ही शिवापासनाके योग्य बनता है।

सस्काराके यथाविधि आचरण करनेसे शरीर शुद्ध होता है और व्यक्ति शिवभक्ति, गुरुभक्ति, लिङ्ग तथा जङ्गमाराधनाकी योग्यता प्राप्त करता है।

वीरशैवाके मुख्यरूपसे दस सस्कार हैं—(१) गर्भाधान, (२) पुसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म (लिङ्गधारण तथा नामकरण—ये दाना जातकर्मके अन्तर्गत आते हैं) (५) *अन्नप्राशन,* (६) *चौलकर्म* (७) *अक्षराभ्यास (विद्यारम्भ),* (८) दीक्षा (९) विवाह और (१०) अन्त्य-सस्कार।* यहाँ सक्षपम इनका कुछ वर्णन प्रस्तुत है—

(१) गर्भाधान—विवाहके पश्चात् गर्भधारण करना और माँ बनना—यह प्रकृतिका नियम है। ऋतु-स्नानानन्तर निषिद्धेतर दिनोमे दम्पती (पति-पत्नी) मङ्गल-स्नान करके माहेश्वर आचार्यके सम्मुख पुरोहितद्वारा श्रीगणपतिपूजा, पुण्याहवाचन नान्दी एव फलकी पूजा करते हैं तथा पुण्याहवाचनक जलसे पवित्र होकर आचार्यको भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद लेते हैं। रात्रिम शुभ मुहूर्तमे शय्यागृहमे प्रवेशकर शय्यापूजा करनेके बाद वस्त्राभरण तथा सुगन्धित द्रव्यादिसे पत्नीको सतुष्ट करके उसका स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकारक गर्भधारण-सस्कारोंसे गर्भ और बीज अर्थात् शुक्र-शाणितका दाष दूर हा जाता है और पवित्र सतानकी प्राप्ति हाती है।

(२) पुसवन—गर्भधारणक अनन्तर तीसर या चौथे महानम पुसवन-सस्कार होता है। पिताके अन्त्य-सस्कारसम्बन्धी पिण्डदानादि कर्मोका पूरा करक उन्ह उत्तम लोककी प्राप्ति करानेके लिय बालकका उत्पन्न हाना आवश्यक माना जाता है। इसीलिये इस सस्कारका वीरशैवाम भा विशष महत्त्व है। यद्यपि वीरशैवाम शिवैक्य (मरे हुए) व्यक्तिको मोक्षकी प्राप्ति हाती है, एसा विश्वास है तथापि पुरुष-सतानकी प्राप्तिके लिये पुसवन-सस्कार किया जाता है गर्भम स्थित पिण्डकी शुद्धिके लिये यह सस्कार आवश्यक है।

भगवत्पाद रेणुकाचार्यजी उपदेश देते हैं कि **'पुण्याधिक क्षीणपाप पिण्ड इत्यभिधीयते।'** (सिद्धान्त-शिखामणि) अर्थात् अधिक पुण्यवाला और क्षीण पापवाला ही 'पिण्ड' कहा जाता है। इस पिण्डका सस्कार करनेसे वह पिण्ड पापरहित होकर जन्म लेता है। आचार्य या पुराहित शुभ दिनम दम्पतीके मङ्गल-स्नानके अनन्तर उन्ह भद्रपीठपर बिठाकर पुण्याहवाचनके जलसे कुशद्वारा उनका प्राक्षण करते हैं। गर्भवती स्त्रीको मन्त्रपूर्वक पतिसे तीन बार प्रोक्षण करवाना चाहिये। तदनन्तर उडद और गेहूँको पानीम भिगोकर तथा दहीम मिश्रण करके सेवन करनेके लिये पत्नीको तीन बार दिया जाता है और बादम पति-पत्नी—दाना घरके वृद्ध लोगोसे आशीर्वाद लते हैं।

(३) सीमन्तोन्नयन—प्रथम बार गर्भवती होनेके बाद चौथे या आठवे महीनेमे सीमन्तोन्नयन-सस्कार होता है। शुभ दिनम पति अपनी पत्नीके साथ मङ्गल-स्नान करके आचार्य और पुरोहितके सम्मुख भद्रपीठ (आसन)-पर बैठकर सङ्कल्प पुण्याहवाचन नान्दी रक्षाबन्धन

* दशकर्मविधि और पूर्वप्रयोगरत्न।

आदि कृत्य करता है। तदनन्तर पत्नीको पूर्वाभिमुख और पतिको पश्चिमाभिमुख बैठाकर कुशके तीन कूर्च लेकर पीपलके पत्तेके साथ पुण्याहवाचनके जलसे पहले मस्तकपर प्रोक्षण करना चाहिये और मन्त्रोच्चारणपूर्वक मस्तकपर तीन रेखाओंको अङ्कित करना चाहिये। तत्पश्चात् उन कुशाको उत्तर दिशामें रखकर हाथ धो लेना चाहिये। अङ्कुरित हुए गेहूँका हार बनाकर पत्नीके कण्ठपर धारण कराया जाता है और सुमङ्गली स्त्रियाँ उसकी आरती करती हैं तदनन्तर आशीर्वाद लिया जाता है। वीरशैव-धर्ममे गर्भधारणके आठवे महीनेमे गर्भकी दीक्षा प्राप्तकर शिवलिङ्ग-धारण करना आवश्यक है। गर्भवती स्त्रीको शिवलिङ्ग-धारण करनेके पश्चात् तीर्थप्रसाद देकर मन्त्रोपदेश दिया जाता है। शिशुजननके बाद उसी शिवलिङ्गको जातकर्मके सदर्भमे धारण करनेका वीरशैव-सम्प्रदायमे वैशिष्ट्य रहता है। गर्भमे रहते ही शिवजीसे सम्बन्धित संस्कारोके करनेसे जननके बाद जीवका शिवसे सम्बन्ध हो जाता है—ऐसा विश्वास वीरशैव-परम्परामे प्रशस्त है।

(४) जातकर्म—शिशुके जन्मके बाद घरमे सूतक लगता है, उस दिन वीरशैव घरको साफ कर आचार्यका आह्वान करके गुरुपादोदक और पञ्चगव्यसे घरका प्रोक्षण करते हैं। दम्पती मङ्गल-स्नान कर भद्रपीठपर बैठकर आचार्यजीकी पादपूजा, पुण्याहवाचन तथा नान्दी सम्पन्न करते हैं। यदि आठवे महीनेमे गर्भके निमित्त शिवलिङ्ग धारण किया गया हो तो उसी शिवलिङ्गका पुन अभिषेक आदि-संस्कार कर शिशुको भस्मधारण कराकर उसे कण्ठमें धारण कराया जाता है। यदि पहले लिङ्गधारण नहीं कराया गया हो तो नया शिवलिङ्ग लाकर उसका संस्कार करके शिशुको लिङ्गधारण कराया जाता है तदनन्तर शिशुके दाहिने कानमे पञ्चाक्षरी मन्त्रोपदेश किया जाता है। माँको चाहिये कि अपने इष्टलिङ्गके साथ शिशुके कण्ठमे पहनाये गये शिवलिङ्गकी वह पूजा करती रहे। अङ्गके ऊपर लिङ्गधारण करना प्राचीन कालसे ही वीरशैवोमे एक परम्परा रही है। इस परम्परामे लिङ्गधारण तथा नामकरण—ये दोनो कर्म जातकर्मके अन्तर्गत ही समाविष्ट हैं। व्यवहारके लिये नाम रखना मुख्य संस्कार है। मानव नामसे ही कीर्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। शिशुके जन्मसमयके नक्षत्रसे नाम रखनेकी पद्धति है। गुरु तथा देवतासम्बन्धी नाम भी रखा जाता है। जातकर्म होनेके बाद आचार्योंसे नामकरण कराना तथा उनका आशीर्वाद लेना, इस सम्प्रदायकी परम्परा बन गयी है।

(५) अन्नप्राशन—जीवनधारणके लिये वायु, जल एव अन्न आवश्यक हैं। बालकको छठे या आठवे महीनेमे तथा बालिकाको पाँचवे या सातवे महीनेमे अन्नका प्राशन कराना शुभ है। किसी शुभ दिनमे संस्कृत अन्नको एक पात्रमे रखकर उसमे मधु, गोक्षीर तथा गोघृत मिलाकर खिलाया जाता है और पवित्र जलका पान कराया जाता है। इसी क्रममे उपनिष्क्रमण-विधि भी सम्पन्न की जाती है। सूर्य, चन्द्र एवं गुरुदर्शन करानेका विधान ही उपनिष्क्रमण कहलाता है। शिशुको अन्नका प्राशन करानेके बाद माता-पिता और शिशुका स्नान होता है तथा नूतन वस्त्राभरण धारण कर आसनपर बैठकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक सूर्य तथा चन्द्रमाका अलग-अलग कलशमे आवाहन करनेके बाद उनकी पूजा की जाती है। '**ॐ सूर्याय नमः**' मन्त्रसे बालकको दिनमे सूर्यदर्शन तथा '**ॐ चन्द्राय नमः**' मन्त्रसे चन्द्रदर्शन कराया जाता है। तदनन्तर गुरुमठ या मन्दिरमे जाकर भगवान्‌का दर्शन करके आशीर्वाद लिया जाता है। मन्दिरसे वापस घर आकर ललाटपर भस्म धारण किया जाता है। तदनन्तर आरती एवं आशीर्वादके साथ उपनिष्क्रमण-संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

(६) चौलकर्म—शिशुके जन्म लेनेके तीसरे वर्षमे चौलकर्मका आचरण वीरशैवका शास्त्र-सम्प्रदाय है। यदि माँ गर्भवती हो तो बच्चेका चौलकर्म नहीं करना चाहिये*। शुभ दिनमे आचार्यका आवाहन कर पुण्याहवाचन नान्दी, रक्षाबन्धन कर्म सम्पन्न कर पिता पवित्र आसनपर बैठकर कुमारको पूर्वाभिमुख बैठाये। चारों ओर पञ्चगव्यका

* सूनोर्मातरि गर्भिण्या चूडाकर्म न कारयेत्। पञ्चमासादध कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्॥ (पूर्वप्रयोगरत्न)

प्रोक्षण कर गरम पानी और ठण्डा पानी मिलाकर '**आप उदन्तु०**' इस मन्त्रसे शिशुके मस्तकपर जलका सेचन करे। तीन कुशाक कूर्चोको मिलाकर ऊर्ध्वमुख बालोको पकडकर काटना चाहिये। काटे हुए बालाका आदुम्बर वृक्षक नीच या किसी फलके वृक्षके नीचे रखना चाहिये। बादम '**अघमर्षण सूक्त**' का पाठ करत हुए शिशुको स्नान कराकर नूतन वस्त्राभरण धारण कराया जाता है। भस्म धारणकर माथेपर गन्धाक्षत रखकर गुरु जङ्गमोका पादोदक या इष्टदेवताका तीर्थप्रसाद लेकर आचार्य एव वृद्ध लागास आशीवाद लिया जाता है।

(७) अक्षराभ्यास (विद्यारम्भ)—शिशुजन्मक बाद पाँचवे वर्षम सूर्यके उत्तरायण शुभ तिथि एव शुभ वारम विद्यारम्भ करना चाहिये। मङ्गल-स्नान करके आचार्यजीका आह्वान कर विद्यागणपति सरस्वती गुरु तथा पार्वती-परमेश्वरकी पूजा की जाती है। गुरुध्यानके बाद बालक या बालिकाका पूर्वाभिमुख बिठाकर रक्षासूत्र बाँधकर यथाशक्ति चाँदी या सोनेक पात्रम चावल फैलाकर उसम '**ॐ नम शिवाय**' लिखकर बच्चासे उस लिखाना और पढाना चाहिये। तदनन्तर माथपर गन्धलेपन कर लिख हुए अक्षरोको माथम लगाना चाहिये। बड लोगाका दान देकर आशीर्वाद लना चाहिये।

(८) दीक्षा—वीरशैव-धर्मम दाक्षा मुख्य संस्कार है। यहाँ दीक्षाका अर्थ शिवदीक्षा माहेश्वर-संस्कार जङ्गमत्व तथा अनुग्रह आदिस है। शिवभक्त हाना विशेष संस्कार है। मांसपिण्डका संस्कारस पवित्र पिण्ड बनानका विधान ही शिवदीक्षा संस्कार कहलाता है। भगवत्पाद जगद्गुरु रेणुकाचार्यजी दीक्षाके बारम इस प्रकार उपदेश दत हैं—

दीयते च शिवज्ञान क्षीयते पाशबन्धनम्।
यस्मादत समाख्याता दीक्षेतीय विचक्षणै ॥
दीयत ज्ञानसम्बन्ध क्षीयते च मलत्रयम्।
दीयत क्षीयते यस्मात् सा दीक्षेति निगद्यत॥
(सिद्धान्तशिखामणि)

अर्थात् जिस संस्कारक द्वारा शिवज्ञान प्राप्त हाता ह और पाशरूपी बन्धन क्षीण हो जाता है उस विद्वानान दीक्षा कहा है। जिसम ज्ञानसम्बन्ध दिया जाता है और त्रिविधमल क्षीण होता है अत (ज्ञान) देने तथा (मल) क्षीण होनेसे 'दीक्षा' यह पद बनता है।

वीरशैवाम स्त्री तथा पुरुषाका समान दीक्षा दी जाती है। भवबन्धनसे दूर रहना, शिवज्ञानम स्थित रहना तथा आणव, माया एव कार्मिक—इन मलत्रयासे जीवात्माको बन्धनस मुक्ति दिलाना—यह दीक्षा-संस्कारका मुख्य प्रयोजन है। दीक्षाके विषयमे भगवत्पाद श्रीरेणुकाचार्यजी कहते हैं—

सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदै।
वेधारूपा क्रियारूपा मन्त्ररूपा च तापस॥

वेधा मन्त्र और क्रिया नामसे दीक्षाक तीन प्रकार हैं। वेधा-दीक्षासे तनु, मन्त्र-दीक्षासे सूक्ष्म तनु और क्रिया-दीक्षास स्थूल तनुको शुद्ध किया जाता है। श्रीगुरु आणव माया तथा कार्मिक—इन मलत्रयाको संस्कारस दूरकर भावलिङ्ग, प्राणलिङ्ग तथा इष्टलिङ्गका अनुग्रह प्रदान करते हैं।

तीनो दीक्षाआका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) वेधा-दीक्षा—आचार्यके दृष्टियोग और हस्त-मस्तक आदिके संयोगस शिष्यमे शिवत्वका समावेश कराना ही वेधा-दीक्षा है। यहाँ आणव मलकी निवृत्ति हाती है।

(ख) मन्त्र-दीक्षा—आचार्यश्रीद्वारा शिष्यको मन्त्रोपदेश करना ही मन्त्र-दीक्षा है। मन्त्रबोधनस शिष्यम ज्ञानोदय होता है। यहाँ मायामलकी निवृत्ति होती है। मन्त्र-पठनस मांसमय पिण्ड मन्त्रमय पिण्ड बन जाता है।

(ग) क्रिया-दीक्षा—शुभ मास शुभ तिथि तथा शुभ दिनम मण्डप रचाकर उसे सर्वविध अलंकृत करके आचार्यका आह्वान कर पुरोहितस गणपति-पूजा पुण्याहवाचन नान्दी समाराधन अङ्कुरार्पण मण्डप-देवता-पूजा प्रतिष्ठापन और पञ्चाचार्योक रूपम पञ्चकलशाकी विधिपूर्वक स्थापना कराया जाता है। तत्पश्चात् बच्चाक हाथस वीरमाहेश्वराको फल-ताम्बूल-दक्षिणा अर्पण कर बच्चाद्वारा उन्ह दण्डवत् प्रणाम कराया जाता है। आचार्य शिष्यका मण्डपम पूर्वाभिमुख बिठाकर उसके दाहिन हाथम रक्षासूत्र बाँधकर शिवध्यान कराकर क्रिया-दीक्षा प्रदान करत हैं। इस दीक्षा-विधानस

कार्मिक मलकी निवृत्ति हो जाती है और शिष्य शिवस्वरूप बन जाता है। आचार्यके आज्ञानुसार जीवनपर्यन्त लिङ्गपूजन करना शिष्यका कर्तव्य है। यह लिङ्गपूजन महाव्रत कहलाता है। आठव वर्षम दीक्षा-सस्कार करना उत्तम पक्ष है।

(९) विवाह—विवाह-सस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्त्री-पुरुष—दोनाकी आत्माआका परस्पर एकीकरण होना विवाह है। मुख्यरूपसे सत्सतानप्राप्तिके लिये ही विवाह होता है न कि इन्द्रियोपभोगके लिये। चारो आश्रमामें गृहस्थाश्रम मूल स्तम्भ है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास—सभी आश्रमवाले गृहस्थका ही आश्रय लेते हैं। श्रीगणपति-पूजा, वाग्दान, कलशस्थापन, धारामुहूर्त, कन्यादान, पाणिग्रहण तथा सप्तपदी आदि विवाह-सस्कारके मुख्य अङ्ग हैं।

(१०) अन्त्य-सस्कार—वीरशैव-धर्मानुसार शिव-दाक्षा लिया हुआ व्यक्ति अष्टावरण, पञ्चाचार और षट्-स्थल-व्रतनिष्ठ होकर लिङ्गैक्य या शिवैक्य प्राप्त कर लेता है, ऐस व्यक्तिके लिङ्ग-देहके सस्कार-क्रमको 'शिवमेध' नामस कहा जाता है। इसके निर्वाणयाग, देहावसान-कृत्य या अन्त्येष्टि-विधि आदि नाम भी हैं। 'मेध' को 'आराधना' नामसे कहा जाता है। इसलिये शिवमेधको विधानपूर्वक करना चाहिये। इसीको अन्त्य-सस्कार कहा जाता है।*

वीरशैव-धर्मकी मान्यता है कि लिङ्गैक्य होनेके बाद उस देहका भूमिमे निक्षेप करनेका विधान 'समाधि' है। यह समाधि यज्ञरूप और क्रियारूपसे दो प्रकारकी है। पहली यज्ञरूप समाधिको निर्वाण, चिदम्बर, निरवय और निजशिव कहते हैं और दूसरी क्रियारूप समाधिको गोमुखसमाधि, गालकसमाधि और बयलुसमाधि कहते हैं। कुछ विधियोमं धूलुसमाधि, जलसमाधि और अग्निसमाधिका भी विधान है।

क्रियासमाधिम शिवयागियो या महन्ताको पूर्वाभिमुख, शेष लोगाको उत्तराभिमुख रहना आवश्यक माना जाता है। वीरशैव-धर्मसिन्धु ग्रन्थमे बताया गया है कि आचार्यों, जङ्गमा और आचारशील शिवशरणो (सत-महात्माओ)-को क्रियासमाधि दी जाती है। सामान्य वीरशैवाको धूलुसमाधि दना सभी जगह देखा जा सकता है।

इस प्रकार वीरशैवोंके यहाँ बताये गये दशविध सस्कारोंका आचरण करनेसे मानव-जीवन सार्थक बन जाता है।

बौद्धग्रन्थ धम्मपदमे सस्कारोंका स्वरूप

(डॉ० श्रीरामकृष्णाजी सराफ)

चरित्रकी पवित्रताके विषयम सभी धर्मोका चिन्तन समान है। सभी धर्म चरित्रकी उदात्तताको प्रधानता प्रदान करते हैं। सनातनधर्मके समान जैन और बौद्धधर्मकी भी पवित्र आचरणके सम्बन्धम स्पष्ट अवधारणा है। मानव-धर्मशास्त्र (मनुस्मृति)-म सभी मानवोके लिय धर्मके स्वरूपको निम्नानुसार व्याख्यायित किया गया है—

> अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
> [प्रजन स्वषु दारेषु तथा चैवानसूयता॥]
> एत सामासिक धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु ॥
> (१०।६३)

अहिंसा (दूसरका किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाना) सत्य, अस्तेय (बिना अनुमति किसीकी वस्तुको न लेना), शौच (आन्तरिक तथा बाह्य अर्थात् शरीरकी स्वच्छता), इन्द्रियोको उनके विषयासे रोकना, अपनी भार्यासे ही सतानोत्पादन तथा अनसूया अर्थात् दूसरोके शुभमे द्वेष-भावका न होना—इस प्रकार भगवान् मनुने सक्षेपमे चारा वर्णोका धर्म निरूपित किया है। धर्मक इस विश्वजनीन स्वरूपके सम्बन्धमे सभी धर्मोमे स्वीकृति प्राप्त है, किंतु सस्कारोके सम्बन्धमे अन्य धर्मोकी अपनी-अपनी अवधारणा है।

बौद्धधर्मम सस्काराको सर्वथा भिन्न अर्थम ग्रहण किया गया है। इसका सकेत हमे धम्मपदम मिलता है।

* वीरशैव-धर्मसिन्धु

धम्मपद बौद्धधर्मका एक ऐसा ग्रन्थ हे, जिसकी प्रत्यक गाथाम बाद्धधर्मका सार सनिहित है। इसमे बौद्धधर्मका सर्वाङ्गसुन्दर विवेचन साररूपम प्राप्त हाता है। इसम वैदिक धर्ममे स्वीकृत सभी उदात्त गुणोको स्वीकृति प्राप्त है, किंतु धम्मपदमे सस्कारकी अपनी परिभाषा है अपनी व्याख्या है।

'धम्मपद' पाली भाषामे निबद्ध बौद्धधर्मका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसे बौद्धोकी गीता कहा गया है। बौद्धजगत्‌म इस ग्रन्थकी उसी प्रकार प्रतिष्ठा है, जिस प्रकार सस्कृतवाङ्मयम श्रीमद्भगवद्गीताकी। धम्मपदमे तथागतके दीर्घजीवनके उपदेशवचन सकलित हैं। ये तथागतके श्रीमुखसे समय-समयपर नि सृत उपदेशगाथाएँ हैं। इन गाथाओकी सख्या ४२३ है और ये २६ वर्गों (वग्गो)-म विभक्त हैं।

बौद्धधर्ममे चार आर्य सत्य (अटल सत्य) माने गये हैं। वे हैं—हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय। इनमेसे 'हय' का अर्थ है दु ख अर्थात् ससारमे दु ख है। तथागतके अनुसार ससारमे सभी दु खी हैं। 'हेयहेतु' अर्थात् उस दु खका कोई कारण है। 'हान' अर्थात् उस दु खसे मुक्ति पाना सम्भव है तथा 'हानोपाय' अर्थात् उस दु खसे छुटकारा पानेका उपाय है। दु ख कार्य-कारणशृङ्खलाका एक कडी है। यह शृङ्खला अविद्यासे शुरू होती है और दु खानुभूतिम उसका पर्यवसान है। अविद्यासे सस्कार उत्पन्न होते हैं। सस्कारका अर्थ है—मनोजनित-सृष्टि। यह मनाजनित-सृष्टि मानसिक वासनाके रूपम बन्धनका हेतु बनती है, इसलिये ये सस्कार सबसे बडे दु ख माने गये हैं—

'सङ्खारा परमा दुखा।' (धम्म० २०३)

किंतु चित्तके सस्कार-शून्य हो जानेपर दु खके कारणसे मुक्ति मिल जाती है—

'विसङ्खारगत चित्त तण्हान खयमज्झगा॥'[1]

(धम्म० १५४)

धम्मपदम कहा गया है कि सभी सस्कार दु ख हैं—ऐसा जब साधक प्रज्ञासे देखता है, तब सभी दु खासे वह निर्वेदको प्राप्त हो जाता है—

सब्बे सङ्खारा दुक्खा ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥[2]

(धम्म० २७८)

तथागत कहते हैं कि जो सस्कारोके विनाशको जानता है, वह निर्वाण प्राप्त कर लेता है—

'सखारान खय जत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण'॥[3]

(धम्म० ३८३)

इस प्रकार स्पष्ट है कि धम्मपदमे 'सस्कार' शब्दका अर्थ वैदिक धर्मसम्मत अर्थसे सर्वथा भिन्न है। चूँकि बौद्धधर्म, वैदिक धर्मकी व्यवस्थाओको स्वीकार नहीं करता, इसलिये बौद्धधर्मम वैदिक धर्मसम्मत सस्कारोके लिये कोई स्थान नहीं है। उसम कवल विवाहको मान्य ठहराया गया है। वहाँ भी वह किसी सस्कारके रूपम नहीं प्रत्युत केवल गृहस्थ-जीवनमे प्रवेशके माध्यमके रूपम, किंतु जहाँतक नैतिक मूल्यो और चारित्रिक पवित्रताका प्रश्न हे, वेदिक धर्म एव बौद्धधर्ममे कोई अन्तर नहीं है।

जिस प्रकार मनुष्यके व्यक्तित्वके समग्र विकासके लिय वैदिक धर्मम उदात्त आचरणका आदेश है बौद्धधर्मम भी उसी प्रकारकी व्यवस्था मिलती है। बौद्धधर्मम 'षट्पारमिता' का महत्त्व सर्वाधिक है। पारमिताका अर्थ है पूर्णता। मानवको अपने जीवनकी पूर्णता प्राप्त करनके लिये षट्पारमितासम्मत आचरणका आदश है। षट्पारमिताओमे दान शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञामे उत्तरोत्तर पारमिता श्रेष्ठ मानी गयी है। कहीं-कहीं इन पारमिताओके अतिरिक्त सत्त्व अधिष्ठान मैत्र तथा उपेक्षाका भी धम्मपदम उपदेश मिलता है।

धम्मपदम चञ्चल मनक नियन्त्रणपर विशेष बल दिया

---

१ विसस्कारगत चित्त तृष्णाना क्षयमध्यगात्।

२ सर्वे सस्कारा दु खा इति यदा प्रज्ञया पश्यति। अथ निर्विन्दति दु खानि एष मार्गो विशुद्धये॥

३ संस्काराणां क्षयं ज्ञात्वाऽकृतज्ञोऽसि ब्राह्मण।

गया है। वहाँ कहा गया है कि किसी दूसरेके प्रति मनमे दुर्भावना (वैरभाव) रखनेसे मनका वैरभाव कभी शान्त नहीं होता—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥[1]

(धम्म० ५)

जिसने चित्तमलोका त्याग कर दिया है, जो शीलपर प्रतिष्ठित है तथा जो संयम और सत्यसे युक्त है, वही काषाय वस्त्र धारण करनेका अधिकारी है अर्थात् उसे ही प्रव्रज्या ग्रहण करनेका अधिकार है—

यो च वन्तकसावस्स सीलसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमर्हति॥[2]

(धम्म० १०)

तथागत अक्रोधसे क्रोधपर विजय प्राप्त करनेका परामर्श देते हैं—

'अक्कोधेन जिने कोध।'[3]

(धम्म० २२३)

धम्मपदमें पुण्य कर्मोंकी प्रशंसा की गयी है। पुण्यकर्माको उभय लोकोंमें सुखकी प्राप्ति होनी है—

'इध मोदति पेच्च मोदति कतपुञ्ञो उभ यत्थ मोदति।'[4]

(धम्म० १६)

तथागत कामासक्ति और वनिताव्यसनसे दूर रहनेका उपदेश देते हैं—

'मा कामरतिसन्थव।'[5]

(धम्म० २७)

वे कहते हैं कि कामवासनाओंका परिणाम दुःखदायी होता है।

भगवान् बुद्धका आदेश है कि पुण्यकर्ममे शीघ्रता करनी चाहिये तथा पापकर्मका चित्तसे हटाना चाहिये, क्योंकि पुण्यकर्मको धीमी गतिसे करनेवालेका मन पापकर्मम लग जाता है—

अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्त निवारये।
दन्ध हि करोतो पुञ्ञ पापस्मि रमते मनो॥[6]

(धम्म० ११६)

भगवान् बुद्ध हिंसाकर्मका निषेध करते हुए कहते हैं कि प्राणियोकी हिंसा करनेसे कोई श्रेष्ठ नहीं होता, प्रत्युत प्राणियोकी हिंसा न करनेसे वह श्रेष्ठ—महान् कहा जाता है—

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणान अरियोति पवुच्चति॥[7]

(धम्म० २७०)

शास्ता संयमकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जो धीरपुरुष शरीरसे संयमवान् हैं, वाणीपर जिनका नियन्त्रण है और मनपर जिनका अनुशासन है, वे ही पूर्णरूपसे संयत हैं—

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा त वे सुपरिसंवुता॥[8]

(धम्म० २३४)

इस प्रकार धम्मपदमें उन सभी उदात्त मूल्योकी प्रशंसा की गयी है एवं उन्हे अपने आचरणमें उतारनेकी सीख दी गयी है, जिनको वैदिक परम्पराओंमें श्रेयस्कर ठहराया गया है।

~~~०~~~

१ न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन। अवैरेण च शाम्यन्ति एष धर्म सनातन॥
२ यश्च वान्तकषाय स्यात् शीलेषु सुसमाहित। उपेतो दमसत्याभ्या स वै काषायमर्हति॥
३ अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।
४ इह मोदते प्रेत्य मोदते कृतपुण्य उभयत्र मोदते।
५ मा कामरतिसंस्तवम्।
६ अभित्वरेत कल्याण पापात् चित्त निवारयेत्। तन्द्रित हि कुर्वत पुण्य पापे रमते मन॥
७ न तेनाऽऽर्यो भवति यन प्राणान् हिनस्ति। अहिंसया सर्वप्राणाना आर्य इति प्रोच्यते॥
८ कायेन संवृता धीरा अथ वाचाय संवृता। मनसा संवृता धीरा ते वै सुपरिसंवृता॥
~~~

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें प्रभुभक्तिके संस्कार

(डॉ० श्रीसुभाषचन्द्रजी सचदेवा हर्ष एम०ए० (संस्कृत) एम०फिल्०, पी-एच्०डी०)

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबम सिखगुरुओ एव अन्य भक्ताकी वाणीके सौजन्यसे सस्कारा तथा उनके विशिष्ट अभिप्रायाको आध्यात्मिक कलेवर प्रदान किया गया है। श्रीगुरुग्रन्थसाहिबम पद-पदपर प्रभुके नाम-स्मरणको भगवत्प्राप्तिके अन्य सभी साधनोसे उत्तम वतलाते हुए[१] इस तथ्यकी उद्भावना की गयी है कि जन्म-जन्मान्तरक सञ्चित हुए पापों एव विपय-वासनाओका विनाश करनेके लिये मलिन हुई बुद्धिको प्रभुके नामम रँग देना चाहिये।[२] प्रभुका नाम-स्मरण ऐसी दिव्य औपधि है, जिससे मन एव तन दोनोका ही सस्कार सम्भव है।[३] वस्तुत जब साधकके हर श्वासमे परमेश्वरक नामका निवास हो जाता है तो जीवन-यापनकी सही कलाका जीवनम उन्मेष होता है।[४] अत सासारिक दु खास मुक्ति एव कोटिश अपराधासे दूपित हुए जीवनका सस्कार प्रभुके नाम-स्मरणसे ही हो सकता है।[५] प्रभुके नामम ऐसी चमत्कारिक शक्ति है कि साधक इस नाम-स्मरणके अभ्याससे न केवल अपना अपितु पितराका भी उद्धार करनेम समर्थ हो जाता है।[६]

प्रभुभक्तिके दिव्य सस्कारासे न केवल इस युगम अपितु पुरातन कालसे ही जन-जनका कल्याण होता आया है।[७] श्रीगुरुग्रन्थसाहिबका निश्चित सिद्धान्त है कि रामनामरूपी अलौकिक रत्नका सचय करनसे भगवद्भक्ताके भावपूरित मन एव तनको अपूर्व शान्ति एव महान् सुखकी उपलब्धि होती है।[८] क्षणभरके प्रभुनाम-स्मरणस मानसिक कालुष्यका नाश हो जाता है और करोडो तीर्थोंकी यात्रा एव दानका फल प्राप्त हाता है।[९] परमेश्वरके नामकी शक्तिका आश्रय लिये बिना न तो सासारिक तृष्णाआसे छुटकारा मिलता है और न जीवनकी व्याकुलता (आतुरता)-का अन्त होता है।[१०] गुरुकृपा[११] एव सत्सङ्गतिके प्रभावसे नाम-रसके लोकोत्तर माधुर्यका पान करनेका सुअवसर प्राप्त होता है।[१२] साधकपर सत्सङ्गति एव गुरुकृपाकी अमिट छाप तभी पड सकती है, जब जीवनमे निष्कपटता[१३] (निश्छलता—

१ कल मैं एकु नामु किरपानिधि जाहि जपै गति पावै। अवर धरम ताकै समिनाहनि इह बिधि बेदु बतावै॥ (सोरठमहला-९ पृ० ६३२)

२ (क) भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह॥ मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै सगि। ओहु धोपै नावै कै रगि॥ (वाणी जपुजी पृ० ४)
(ख) जिसु सिमरत मनि होत अनदा उतरै मनहु जगीला। मिलबे की महिमा बरनि न साकउ नानक परै परीला॥
(गूजरीमहला-५ दुपदे घरु-२ पृ० ४९८)

३ अउखध मत्रु मूलु मन ऐकै जेकरि द्रिड चितु कीजै रे। जनम जनम के पाप करम के काटनहाँरा लीजै रे॥
(गउडा चेतीमहला-१ पृ० १५६)

४ जीवनो मैं जीवनु पाइआ गुरमुखि भाए राम। हरि नामो हरि नामु देवै मेरै प्रानि वसाए राम॥ (रागु आसा छत महला ४ पृ० ४४२)

५ भवखडन दुखभजन स्वामी भगतिवछल निरकारे। कोटि पराध मिटे खिन भीतरि जा गुरमुखि नाम समारे॥
(धनासरीमहला-५ पृ० ६७०)

६ जिसु सिमरत सभि किलविख नासहि पितरी होइ उधारो। सो हरि हरि तुम सदही जापहु जाका अतु न पारो॥
(गूजरीमहला-५ पृ० ४९६)

७ जो जो तरिओ पुरातनु नवतनु भगति भाय हरि देवा। नानक की वेनती प्रभजीओ मिलै सतजन सेवा॥ (सारगमहला-५ पृ० १२२९)

८ (क) राम नामु रतन धनु सचह मनि तनि लावहु भाओ। आन विभूति मिथिआ करि मानहु साचा इहै सुआओ॥ (पृ० १२१९)
(ख) सिमरत साति महासुखु पाईऐ मिटि जाहि सगल बिखादि। हरि हरि लाभु साध सगि पाईऐ धरि लै आवहु लादि॥ (पृ० १२१९)

९ सिमरन राम को इकु नाम। कलमल दगध होहि खिन अतरि कोटि दान इसनान॥ (सारगमहला-५ पृ० १२२१)

१० आतुरु नाम बिनु ससार। त्रिपति न होवत कूकरी आसा इतु लागो बिखिआछार॥ (सारगमहला-५ पृ० १२२३)

११ (क) हरिकी भगति फलदाती। गुरि पूरै किरपा करि दीनी विरलै किनही जानी॥ (सोरठमहला-५ पृ० ६२८-२९)
(ख) नामु खजाना गुर ते पाइआ त्रिपति रहे आघाई। सतहु गुरमुखि मुकति गति पाई ऐकु नामु वसिआ घट अतरि पूरै की वडिआई॥
(रामकलीमहला-३ पृ० ९११-१२)

१२ (क) सत सगि अतरि प्रभु डीठा। नामु प्रभु का लागा मीठा॥ (वाणी सुखमनी पृ० २९३)
(ख) सत प्रसादि भए किरपाला होए आपि सहाय। गुन निधान निति गावै नानकु सहसा दुखु मिटाय॥ (आसामहला-५ पृ० ३७८)

१३ (क) कूडा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआइऐ। फलु तेवे हो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ॥
(सलोकमहला-१ पृ० ४६८)
(ख) अतरि मैलु लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जाओ। निरमल नामु जपहु सद गुरमुखि अतर की गति ताही जीओ॥
(सोरठमहला-१ पृ० ५९८)

सरलता), विनम्रता[१४] एव शुभचिन्तनके सस्कारो[१५]को प्रश्रय दिया जाय।

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमे प्रभुके नाम-स्मरणके साथ-साथ सेवाकी उच्च भावनाके सस्कारोको भी आध्यात्मिक साधनाका अपरिहार्य अङ्ग स्वीकार किया गया है। श्रीगुरु अमरदासजीकी यह मान्यता थी कि गुरु एव मानवताकी सेवा करना ही सच्चा त्याग एव सच्ची तपस्या है।[१६] साधकमे जब सेवाभावनाके सस्कार जाग्रत् होते हैं तो उसके जीवनमे जहाँ एक ओर अहकारका नाश होता है,[१७] वहाँ दूसरी ओर ज्ञानमे परिपक्वता आती है।[१८] अत साधनाकी परिपूर्णताहेतु सच्चे मार्गदर्शक गुरुदेवकी सेवा परमावश्यक है।[१९]

सेवाकी उदात्त भावनासे प्रेरित होकर जब साधक नामस्मरण आदि साधनाके अभ्यासद्वारा विशुद्ध चित्तसे साधनामे सलग्न होता है तो उसमे स्वत ही आत्मज्ञानके सस्कार प्रकट होने लगते हैं।[२०] श्रीगुरुग्रन्थसाहिबकी मान्यता है कि सच्चा आत्मिक ज्ञान ही साधकके तन और मनको निर्मलता प्रदान करता है।[२१] आध्यात्मिक ज्ञानकी साधनाके ये सभी सोपान सद्गुरुमे अनायास ही प्रतिबिम्बित होते हैं। अत ऐसे पूज्य, सबके सच्चे मित्र एव परम विवेकी मार्गदर्शक गुरुमे श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये,[२२] जिससे जीवनमे उत्तरोत्तर गतिसे आध्यात्मिक सस्कारोका उत्कर्ष हो।

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमे इस तथ्यको भी उजागर किया गया है कि एकाग्रचित्त होकर अनन्यभावसे परमेश्वरके दया उदारता, क्षमाशीलता आदि गुणोकी स्तुति करनी चाहिये।[२३] साधककी इस भावमयी स्थितिमे प्रभावित होकर वे भक्तवत्सल परमेश्वर अपने गुणोकी लाज रखते हुए अपने भक्तोको आध्यात्मिकताके सस्कारोसे ओत-प्रोत करके उसकी उसी प्रकार रक्षा करेगे जैसे एक योग्य पिता अपने गुणी पुत्रकी सभी प्रकारसे रक्षा करके उसे अपने स्नेह एव कृपासे कृतकृत्य बना देता है।[२४]

निष्कर्षत श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमे मुख्यरूपसे प्रभुनाम-स्मरण, विनम्रता, निष्कपटता शुभचिन्तन, सेवाभावना एव आध्यात्मिक ज्ञानमे सलग्नता आदि दिव्य सस्कारोको जीवनमें धारण करनेकी पुन पुन प्रेरणा दी गयी है। परमेश्वरकी अनुकम्पासे ये सभी सस्कार साधकोके जीवनमे क्रियान्वित हो, ऐसी प्रभुसे प्रार्थना है।

~~o~~

१४ गुरकिरपा ते निरमलु होआ जिनि विचहु आपु गवाइआ। अन दिनु गुण गावहि नित साचे गुर कै सबदि सुहाइआ॥ (सोरठमहला ३ घरु १ पृ० ५९९)

१५ सुभ चितन गोबिद रमण निरमल साधू सग। नानक नामु न विसरउ इक घडी करि किरपा भगवत॥ (आसामहला ५ छत घरु ७ पृ० ४५९)

१६ देखे— A short history of the Sikhs —by Ganda Singh and Teja Singh Page 20

१७ गुर के ग्रिहि सेवक जो रहै। गुर की आगिआ मन महि सहै॥ आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरि नाम रिदै सद धिआवै॥ (बाणी सुखमनी पृ० २८६)

१८ (क) आप गवाए सेवा करे ता किछु पाए मानु। नानक जिसका लगा तिसु मिलै लगा सो परवानु॥ (आसादीवार सलोकमहला-१ पृ० ४७४)

(ख) मति गुर सेवि सचि चितु लाइआ। गुरमती सहज समावणिआ॥ (माझमहला-३ पृ० १११)

१९ (क) गुरसेवा ते हरिनाम धन पावै। अतरि परगासु हरिनामु धिआवै॥ (धनासरीमहला-३ पृ० ६६४)

(ख) गुर सेवा ते जनु निरमलु होइ। अतरि नामु वसै पति ऊतम होइ॥ (धनासरीमहला-३, पृ० ६६४)

२० सचे चरण सरेवी अहि भाई भ्रमु भउ होवै नासु। मिलि सत सभा मनु माजीऐ भाई हरि कै नामि निवासु। मिटै अधेरा अगि आनता भाई कमल होवै परगासु॥ (सोरठमहला-५ घर १ असटपदीआ पृ० ६३९)

२१ जलि मलि काइआ माजीऐ भाई भी मैला तनु होइ। गिआन महारसि नाईऐ भाई मनु तनु निरमलु होइ॥ (सोरठमहला-१ दुतुकी पृ० ६३७)

२२ जिसु अतरु हिरदा सुधु है तिसु जन कउ सभि नमसकारी। जिसु अदरि नाम निधानु है तिसु जन कउ हउ बलिहारी॥ जिसु अदरि बुधि बिबेकु है हरि नामु मुरारी। सो सतिगुरु सभना का मितु है सभ तिसहि पिआरा। सभु आतम रामु पसारिआ गुरु बुधि बिचारी॥ (सलोकमहला-३ पृ० ५८९)

२३ प्रभ की उसतति करहु सत मीत। सावधान ऐकागर चीत॥ (बाणी सुखमनी पृ० २९५)

२४ प्रभ को भगतिवछलु बिरदाइओ। कर प्रतिपाल बारिक की निआई जन कउ लाड लडाइआ॥ जप तप सजम करम धरम हरि कीरतनु जनि गाइओ। सरनि परिओ नानक ठाकुर की अभैदानु सुखु पाइओ॥ (गूजरीमहला-५ पृ० ४९८)

सिखधर्मके सस्कार

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

सिखधर्मके चार प्रमुख सस्कार हैं—१ जन्मसस्कार, २ अमृतसस्कार ३ आनन्दसस्कार (विवाह) और ४ अन्तिमसस्कार (मृत्युसस्कार)। इन चार सस्काराम अमृतसस्कार सवसे प्रमुख है। इस सस्कारके जनक श्रीगुरुगाविन्दसिहजी महाराज हैं जिनका जन्म (प्रकाश-अवतार) बिहारकी राजधानी पटना सिटीम हुआ था। इस आजकल पटनासाहव कहा जाता है यहाँपर इनकी स्मृतिमे तख्त श्रीहरिमन्दिरजीका निर्माण हुआ है। यहाँ विश्वके कोने-कोनेसे लाग दर्शन करनेके लिये आते हैं तथा आशीर्वाद एव प्रसाद ग्रहण करते हैं।

मुख्य बात तो यह है कि सिखपन्थका जन्म दिया था श्रीगुरुनानकदेवजी महाराजने और अब दसव स्वरूप श्रीगुरुगोविन्दसिहजी महाराजको जन्म देना था सिहको जिस खालसा कहा गया। खालसा बननेक लिय अमृतसस्कार नितान्त आवश्यक है। खालसा वह व्यक्ति है जो खालिस—पूर्ण ईश्वरकी ज्योतिमे लीन हो जाता है, जिसका रूप कृत्रिम नहीं है। इस कार्यके लिये श्रीगुरुगोविन्दसिहजी महाराजने १६९९ ई० की बैसाखी, १३ अप्रैलको श्रीकेशगढसाहिब आनन्दपुरसाहिब (पजाब)-म सर्वप्रथम पञ्च प्यारा—१-भाई दयाराम २-भाई धर्मदास, ३-भाई मुहकम चन्द ४-भाई हिम्मतराय और ५-भाई साहिबचदको अमृतपान कराकर अर्थात् अमृतसस्कारसे परिपूर्ण कर खालसा सजाया तथा इन्हीं पञ्च प्यारोसे स्वय अमृतपान कर गुरुगोविन्दरायसे गुरुगाविन्दसिह बने।

अमृतसस्कारकी विधि—अमृतसस्कारके पहले श्रीगुरुग्रन्थसाहिबका प्रकाश हाता है गुरुवाणीका कीर्तन होता है। फिर दीवानसे चुने हुए पाँच अमृतधारी कृपाणधारी सिह लाहेसे बने बर्तनमे जख और बतासा डालकर एकाग्रचित्त होकर श्रीजपुजीसाहिब (श्रीगुरुनानकदवजीकी कृति) सवेये-चौपाई (श्रीगुरुगोविन्दसिहजीकी कृतियाँ) श्रीआनन्दसाहिब (श्रीगुरुअमरदासजीकी कृति)-का पाठ करते हैं तथा अमृत तैयार हो जानेपर अमृतसस्कारकी अन्तिम प्रक्रिया शुरू हाती है।

सर्वप्रथम पञ्च प्याराद्वारा अमृतपान-सस्कारक अभिलाषी जनको जो केशस्नान करनेके बाद नये वस्त्र धारण किय हुए रहते हैं, पञ्च चुले छकाये जाते हैं, नेत्रापर अमृत छिडका जाता है और बाटे-वर्तनम बचे हुए अमृतको एक पक्तिमें अभिलाषीजनको बैठाकर वारी-बारीसे सभीको अमृतपान कराया जाता है। दाना तरफसे सभी वारी-बारीसे एक ही बर्तनसे मुँह लगाकर अमृतपान करत हैं। अव इस तरह इन सभीमे कोई भेद नहीं रह जाता है, सब भाई-भाई हो जाते हैं। इतना ही नहीं प्रत्येक घूँट-चूलेके साथ *'वाहि गुरुजीका खालसा, वाहि गुरुजीकी फतेह'*-का जयघोष करना पडता है। फिर श्रीगुरुग्रन्थसाहिबके हुकुमके अनुसार पहले अक्षरके आधारपर नामकरण होता है। प्रत्यक पुरुषके नामके साथमे 'सिह' तथा स्त्रीके साथ 'कौर' जोडा जाता है।

इसके बाद खालसापन्थकी रक्षित मर्यादाका उपदेश पञ्च प्याराद्वारा दिया जाता है, फिर अरदास (प्रार्थना)-के बाद कडाह-प्रसाद अमृतवाले लौह बाटे-बर्तनका ही प्रसाद छकाया जाता है।

इस अमृतसस्कारसे परिपूर्ण व्यक्तिको पञ्च ककार — १ कश २ कघा ३ कडा ४ कछहरा और ५ कृपाण धारण करनकी शिक्षा दी जाती है।

चार कुसस्कारासे बचनेहेतु हिदायत दी जाती है— १ केशोकी बेअदबी नहीं करनी २ तम्बाकू आदि नशेका प्रयोग नहीं करना ३ परस्त्री-परपुरुषका सग नहीं करना और ४ कुढा (मास) नहीं खाना।

सिखोको मिलते समय आपसम गरजकर *'वाहि गुरुजीका खालसा, वाहि गुरुजीकी फतेह'*—बुलानेकी हिदायत दी जाती है। जैकारा—*'बोले सो निहाल, सत श्रीअकाल'*—बुलाया जाता है। इस तरह अमृतसस्कार सम्पन्न होता है। अमृतसस्कार सम्पन्न हानेपर खालसाकी परिभाषापर श्रीगुरुगोविन्दसिहकी वाणीका रागी सिहोद्वारा

गायन कर प्रकाश डाला जाता है जो इस प्रकार है—

जागति ज्योति जपै निस-बासुर, एक बिना मन नैक न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत, गोर मढ़ी मढ भूल न मानै॥
तीरथ दान दया तप सजम, एक बिना नहि एक पछानै।
पूरन ज्योति जगै घटमे, तब खालस ताहि निखालस जानै॥

(३३ सवैये श्रीदशमग्रन्थसाहिब पृ० ७१२)

अर्थात् जो सत्यकी ज्योतिको सदैव प्रज्वलित रखता है, एक ईश्वरके अतिरिक्त और किसीको नहीं मानता, उसीमे उसका पूर्ण प्रेम और विश्वास है। जो भूलकर भी मृत व्यक्तियाकी समाधियापर नहीं जाता, ईश्वरके निश्छल प्रममे ही जिसका तीर्थ, दान दया, तप और सयम समाहित है और जिसके हृदयमे पूर्णज्योतिका प्रकाश है, वह पवित्र व्यक्ति ही खालसा है।

इतना ही नहीं, अमृतसस्कारके बाद खालसापन्थके प्रति श्रीगुरुगोविन्दसिहकी अगाध श्रद्धा, जो श्रीसरबलोहग्रन्थम पूर्ण रूपसे प्रकट हुई है, की शिक्षा दी जाती है जा इस प्रकार है—

खालसा मेरो रूप है खास। खालसे मे हउ करौ निवास॥
खालसा मेरा इष्ट सुहिरद। खालसा मेरी कहियत बिरद॥
खालसा मेरो मित्र सखाई। खालसा मित्र पिता सुखदाई॥
खालसा मेरो पिड परान। खालसा मेरो जान की जान॥
खालसा मेरो सति गुरु पूरा। खालसा मेरो सजन सूरा॥
खालसा मेरो बुध अरु ज्ञान। खालसे का हौ धरो ध्यान॥
हौ खालसे को खालसा मेरो। उत पोत सागर बुन्दरो॥

(श्रीसरबलोहग्रन्थ)

तनखाहानामाके अनुसार अमृतसस्कारसे परिपूर्ण खालसाके कर्तव्यपर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

खालसा सोई जो निदा तिआगै। खालसा सोई लड़े है आगै॥
खालसा सोई पर दृष्टि तिआगै। खालसा सोई नाम रति लागै॥
खालसा सोई निरधन का पालै। खालसा सोई दुष्ट को गालै॥
खालसा सोई जु चढै तुरग। खालसा सोई करै नित गग॥

अमृतसस्कारकी परम्पराके आदिपिता श्रीगुरुगोविन्द-सिह तथा माता—मातासाहिब कौर माने जाते हैं। हर व्यक्ति जो अमृतसस्कारसे सम्पन्न होता है, वह खालसा है और उसको श्रीगुरुगोविन्दसिहजीके बताये मार्गपर चलना है, तभी वह पूर्ण खालसा है।

आजकी विषम परिस्थितिम श्रीगुरुगोविन्दसिहद्वारा स्थापित अमृतसस्कारकी प्रासङ्गिकता बढती जा रही है, जो एक पूर्ण मनुष्य बननेके लिये बहुत जरूरी है। इस प्रकार सिखपन्थम अमृतसस्कारकी विशेष महिमा है।

~~~o~~~

यज्ञोपवीतके लिये अनूठा बलिदान

पजाबके क्रान्तिकारी युवक पण्डित रामरक्खाको ब्रिटिश-राज्यके विरुद्ध विद्रोह भड़काने-जैसे गम्भीर आरोपमे आजीवन कारावासका दण्ड देकर अण्डमान (कालापानी)-की जेल भेजा गया। अण्डमान जेल पहुँचते ही जेलरने उनके गलेमे सुसज्जित यज्ञोपवीत (जनेऊ)-को निकालनेका आदेश दिया। रामरक्खाने कहा—'जनेऊ हम ब्राह्मणाका धार्मिक चिह्न है। मै इसे धारण किये बिना पानीतक नहीं पी सकता।' अग्रेज जेलरके आदशपर वार्डनाने उन्हे पकड़ लिया तथा जबरदस्ती यज्ञोपवीत उनके गलेसे निकालकर फेक दिया।

रामरक्खा उसी समयसे यज्ञापवीत फेके जानेके विरोधमे अनशनपर बैठ गये। वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा अन्य अनेक क्रान्तिकारी भी उसी जेलमे बद थे। सभीने रामरक्खासे प्राणरक्षाका आग्रह किया तथा परामर्श दिया कि अन्न ग्रहण कर ले और अपना जनेऊ धारण करनकी माँग करते रह, किंतु ये दृढ़व्रती स्वाभिमानी धर्मवीर अन्न-जल ग्रहण करनेको तैयार नही हुए। लगभग बीस दिनतक अनशन करनेके बाद उन्होन अण्डमान जेलम अपने यज्ञोपवीत धारण करनेके धार्मिक अधिकारकी रक्षाके लिय प्राण त्याग दिये।

उनके इस अनूठे बलिदानकी चर्चा भारतके समाचारपत्राम हुई। उनके प्राणोत्सर्गका यह परिणाम निकला कि जेलम भारतीय बदियोको यज्ञापवीत धारण करनेकी अनुमति मिल गयी। (श्रीशिवकुमारजी गायल)

~~~o~~~

महर्षि मेँहींके पञ्चशील-संस्कार

(श्रीधारीसिंहजी दयालपुरी)

भगवान् बुद्धकी भाँति ही महर्षि मेँहींने भी संतमतके पञ्चशील-संस्कारको स्वीकार किया है। उनके पञ्चशील-संस्कार निम्नलिखित हैं—

१ सत्संग २ गुरुभक्ति ३ ध्यान-साधना ४ सदाचार और ५ स्वावलम्बन।

१ सत्संग—सद्गुरु महर्षि मेँहीं परमहंसजी महाराजने सत्संगको अपना श्वास बताया है—सत्संग ही मेरी साँस है। वस्तुतः सत्संग संतमतका अभिन्न अङ्ग है और मोक्षका मार्ग है।

संस्कारोंसे सम्पन्न होनेपर ही सत्संग मिलता है। सत्संगसे उत्तम संस्कार प्राप्त होते हैं तथा व्यक्ति सुसंस्कृत चरित्रवान्, सदाचारी तथा प्रभुपरायण हो जाता है। यह सत्संग भी ईश्वरकी कृपाके बिना सुलभ नहीं होता—

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

सत्संगसे सत्य एवं सदाचारका ज्ञान होता है। सत्संगका संस्कार आत्मोन्नतिका उत्कृष्ट साधन है। जिस प्रकार पारसमणिके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है उसी प्रकार असंस्कृत व्यक्ति भी सत्संग पाकर सुसंस्कृत हो जाता है।

सत्संग भी दो प्रकारके होते हैं—पहला बाह्यसत्संग और दूसरा आभ्यन्तरसत्संग। बाह्यसत्संगमें सद्गुरुद्वारा उपदेश प्राप्त होता है और आभ्यन्तरसत्संगमें जीव, ब्रह्म और परब्रह्मका भेद मालूम होता है। महर्षि मेँहीं-पदावलीमें कहा गया है—

धर्मकथा बाहर सतसंगा। अन्तर सतसंग ध्यान अभंगा॥

२ गुरुभक्ति—संतमतके सत्संगमें गुरुकी गरिमापर जोर दिया गया है। महर्षि मेँहीं-पदावलीमें सद्गुरुकी महत्तापर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है—

गुरु सतगुरु सम हित नहिं कोऊ,
निस दिन करिये सेव हे।
तन मन आतम रक्षक है गुरु
गुरुहिक नाम एक लेव हे॥१॥
मातहुँ ते बढ़ि छोह करैं नित
पितहुँ ते अधिक भलाइ हे।
कुल मालिकहुँ ते बढ़ि कृपा धार,
गुरु सम नाहिं सहाइ हे॥२॥

सद्गुरुकी सच्ची भक्तिमें भौतिक जगत् और अध्यात्मजगत्—दोनों एक साथ लाभान्वित होते हैं।

जीवनकालमें जिनकी सूरत सारे आवरणोंको पारकर शब्दातीत पदमें समाधिसमें लीन होती है और पिण्डमें बरतनेके समय उन्मनीभावमें रहकर शब्दमें लगी रहती है, ऐसे जीवन्मुक्त एवं परम संत पुरुष पूरे और सच्चे सद्गुरु कहे जाते हैं।

३ ध्यान-साधना—संतमतमें संस्कारसम्पन्न होनेके लिये ध्यान-साधनासंस्कारके चार सोपान निर्दिष्ट हैं—मानसजप, मानसध्यान, दृष्टियोग और सुरतशब्दयोग।

मानसजप—मानसजप ध्यान-साधनाका प्रथम सोपान है। इस जपमें मन्त्रका उच्चारण मुँहसे नहीं किया जाता। यह जप मन-ही-मन किया जाता है। इससे मनोनिग्रह होता है और उस साधकमें सहज जपका संस्कार प्रतिष्ठित हो जाता है। सदाचारी और संस्कारी साधक ही इस जपसे सफलताकी पराकाष्ठापर पहुँचते हैं।

मानसध्यान—ध्यान-साधनाका दूसरा सोपान है—मानसध्यान। इस उपासनाको स्थूल सगुण उपासना कहा जाता है। इसके बलपर सूक्ष्म उपासनामें मदद मिलती है। मानसध्यानमें साधक अपने इष्टके स्थूलरूपका ध्यान करता है। इष्टसाधनसे सूक्ष्म ध्यानकी क्षमता प्राप्त होती है।

दृष्टियोग—यह ध्यानयोगका तृतीय सोपान है। अति पवित्र, सदाचारी एवं संस्कारी साधकको ही इस योगमें सफलता मिलती है। साधक दृष्टियोगद्वारा अपनी दोनों आँखोंकी धाराको एक नोकपर तबतक जोड़ता है जबतक फैली हुई धारा एक बिन्दुपर न मिल जाय। बिन्दु प्राप्त होनेपर अन्धकार मिट जाता है। जब अन्धकार मिट जाता है तब प्रकाश हो जाता है। दृष्टि और मनका अभिन्न मिलाप

होता है। जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ मन भी जाता है। दृष्टिके स्थिर होनेपर मन भी स्थिर हो जाता है। जबतक दृष्टि चञ्चल रहती है, तबतक मन भी चञ्चल रहता है। सतोने मनोनिरोधका मबसे अच्छा साधन दृष्टियागको ही बताया है। दृष्टिसाधनसे एकाग्रता होती है। एकाग्रतासे चेतनवृत्तिका सिमटाव होता है और इस सिमटावसे ऊर्ध्वगति होती है।

सुरतशब्दयोग—सुरतशब्दयोगको नादानुसन्धान भी कहते हैं। इसम शब्दकी साधना होती है। सतमतमे यह ईश्वरप्राप्तिका सर्वोत्तम साधन है। सुरतको अन्तर्नादकी क्रियासे जोडनेकी क्रियाको सुरतशब्दयोग कहते हैं। नादबिन्दूपनिषद् (४९-५०)-म आया है—

सदा नादानुसन्धानात्सक्षीणा वासना तु या॥
निरञ्जने विलीयेते मनोवायू न सशय ।

अर्थात् शब्दके मतत अभ्याससे वासना क्षीण हो जाती है और मन तथा प्राणवायुका निरञ्जनमे निश्चित ही लय हो जाता है।

जिस प्रकार मधुमक्खी शहदके रसका पान करती हुई सुगन्धकी चिन्ता नहीं करती, उसी प्रकार चित्त, जो सदा नादमे लीन रहता है, विषयकी चाहना नहीं करता क्याकि वह नादके मिठासमे वशीभूत हो अपनी चञ्चल प्रकृतिको त्याग चुका हाता है। वस्तुत सतमतमें सुरतशब्दयोग किवा नादानुसन्धानके सस्कारसे सस्कृत होना सर्वोपरि साधना है।

४ सदाचार—सतमतम सदाचारका महत्त्वपूर्ण स्थान है। महर्षि मेँहीँकी उक्ति है—सदाचारकी नींवपर ही साधनाकी इमारत खडी होती है। अतएव सस्कृत होनेके लिये सदाचार अनिवार्य है। सदाचारके अभावमे अध्यात्म-पथपर अग्रसर होना असम्भव है। सदाचारसे सस्कार बनता है। सस्कारी साधकको साधनामे आशातीत सफलता मिलती है। सतमतमे नशा चोरी, व्यभिचार, हिसा और झूठसे बचकर रहना ही सदाचार है। सदाचारपालनसे इस लोकमे एव परलोकमे भी सुख मिलता है। सदाचारके पालनसे स्वराज्यमे सुराज्य (सुन्दर राज्य) हो जायगा।

५ स्वावलम्बन—स्वावलम्बनका अर्थ है—अपने बलपर जीवन-यापन करना। सतमतमे स्वावलम्बनपर बहुत जोर दिया गया है। महर्षि मेँहीँकी उक्ति है—साधकको स्वावलम्बी होना चाहिये। अपने पसीनेकी कमाईसे अपना निर्वाह करना चाहिये। थोडी-सी वस्तुओंको पाकर ही अपनेको सन्तुष्ट रखनेकी आदत डालनी चाहिये। स्वावलम्बीकी सहायता ईश्वर करते हैं, क्योकि स्वपर अवलम्बनका तात्पर्य आत्मनियन्त्रणसे ही है। प्रकारान्तरसे स्वावलम्बनका तात्पर्य है—ईश्वरका अवलम्बन। कदाचित् बुद्धिमे इस प्रकारका सस्कार दृढ हो जाय तो फिर स्वय प्रभु ही उसका योगक्षेम वहन करते हैं।

महर्षि मेँहीँ-पदावलीके ५३व पद्यकी अन्तिम दा पक्तियाँ स्वावलम्बी जीवन-यापनका सदेश देती हैं—

जीवन बिताओ स्वावलम्बी, भरम भाँडे फोड़िकर।
सतो की आज्ञा है ये मेँहीँ, माथ धर छल छोड़िकर॥

अर्थात् गलत धारणाआको मनसे दूरकर स्वावलम्बी जीवन बिताना चाहिये। स्वावलम्बनसे मानव सुसम्कृत हाते हैं। सस्कारयुक्त होनेपर मानवका ऐहलौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदय सहज ही सिद्ध हो जाता है।

भगवान्‌की अभय-वाणी

'अरे भक्त! तुझे कोई भय नहीं, तू केवल नाम ले। मै भयका भय, भीषणका भीषण, सब विपत्तियोका नाश करनेवाला सदा तेरी विपत्तियोका नाश करता हूँ और 'मै तेरा'—कहकर जो मेरी शरणम आता है, उसे अभयदान करना मरा व्रत है। आकाश टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े, प्रलयकी अग्नि जल उठे, साथ ही कोटि वज्रपात होने लग, भयङ्कर महाझझावातसे विश्व-ब्रह्माण्ड काँप उठे, साता समुद्र उमड़ पड़े, तथापि, तथापि, रे प्रियतम! डर नहीं। मै तुझे छातीसे लगाकर तेरी रक्षा कर रहा हूँ। यह बात मत भूल—'मै हूँ तेरा, अरे मै हूँ तेरा।' मत डर। अरे तापित, तृषित, क्षुभित, श्रान्त, क्लान्त, आत्मविस्मृत सतान! ससार-स्वप्न देखकर और हाहाकार न कर। ससार केवल स्वप्न है। सत्य केवल—एकमात्र मै हूँ। मेरा नाम ले। नामानन्द-सागरमें डूबकर तू भी नाममय हो जा।'

मसीही (ईसाई) धर्ममे संस्कार

(डॉ० ए०बी० शिवाजी)

विश्वके समस्त धर्मोमे सस्कारोका महत्त्व है, क्याकि सस्कारोके बिना धर्म अर्थहीन हो जाता है। सस्कारोसे ही मनुष्यका आचरण बनता हे। सस्कार धर्मके मार्गपर चलनेकी, मानवताको ग्रहण करनेकी तथा मुक्ति प्राप्त करनेकी धार्मिक प्रक्रिया है। सस्कार मनुष्यके आन्तरिक जीवनको प्रभावित करते हैं।

सस्कारकी परिभाषा

खीष्ट (मसीही) कलीसियाओने सस्कारकी परिभाषाएँ अलग-अलग रूपसे की हैं। इन परिभाषाआम दो बाते मुख्यरूपसे पायी जाती हैं—प्रतीक ओर अर्थ। उदाहरणस्वरूप रोमकी कलीसियाके अनुसार सस्कार अदृश्य अनुग्रहका दृश्य प्रतीक है, जो हमारे धर्मी बने रहनेके लिये निर्धारित किया गया है। इग्लैण्डकी कलीसियाके अनुसार भीतरी और आत्मिक अनुग्रहका बाहरी ओर दृश्य प्रतीक जो हमे दिया गया है, वह सस्कार हे, इसे मसीहने स्वय निर्धारित किया है कि यह हमारे अनुग्रहकी प्राप्तिका साधन हो। यह एक प्रतिज्ञा है, जिसके द्वारा हमे उस अनुग्रहका निश्चय हो। यूरापीय कलीसियाके मतानुसार सस्कार एक पवित्र रीति है, जिसे मसीहने स्थापित किया ओर जिसमे इन्द्रियगोचर प्रतीकोके द्वारा नवीन सन्धि (वाचा)-की आशिष विश्वास करनेवालोक लिये उपस्थित प्रतिज्ञात और प्राप्य हैं। सनातनी मसीही कहते हैं—सस्कार एक पवित्र क्रिया है जिसके द्वारा अनुग्रह अर्थात् परमेश्वरकी उद्धार करनेवाली शक्ति, मनुष्यम रहस्यपूर्ण रीतिसे कार्य करती है।*

प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक—दोनों सम्प्रदायोंम सस्कारोंके विषयम यह साम्य है कि ये प्रभु यीशु मसीहद्वारा अनुग्रह प्रदान करनेके लिय स्थापित किये गये हैं। इन दोनामे जो भेद हैं वे इस प्रकार हैं—

प्रोटेस्टेण्ट और केथोलिकमे भेद

प्रोटेस्टेण्ट मतावलम्बियोने सस्कारके दो भेदोको माना है—जल-सस्कार (बपतिस्मा) और प्रभुभाज (हाली कम्यूनन) जबकि कैथोलिक सम्प्रदायके अनुयायी सात सस्कारोमे विश्वास करते हैं—१-जल-सस्कार, २-प्रभुभोज ३-दृढीकरण, ४-प्रायश्चित्त अथवा तपस्या ५-विवाह, ६-अभिषेकीकरण तथा ७-पवित्र सन्यास।

१-जल-सस्कार (बपतिस्मा)—प्राचीन कालसे जलसे अपनेको शुद्ध करनेकी बात कही जाती रही है। यहूदी जाति इसपर बहुत अधिक ध्यान देती थी। जैसा कि यशय्याह नबीने लिखा है—अपनेको धोकर पवित्र करा। मेरी आँखाके सामनेसे अपने बुरे कामोको दूर करो, भविष्यमे बुराई करना छोड दो (यशय्याह १ १६)। यूहन्ना ३ ५ म कहा गया है कि जबतक कोई मनुष्य जल और आत्मासे न जन्मे तबतक वह परमेश्वरके राज्यम प्रवेश नहीं कर सकता। बपतिस्मा एक बाह्य प्रतीक है, जो मनुष्यके हृदय तथा मनके आन्तरिक परिवर्तनका सूचक है। कैथोलिकका मत है कि बपतिस्माके द्वारा मूल पापसे छुटकारा मिलता है। बाइबिल बताती है कि बपतिस्मा देनेका अधिकार प्रभु यीशु मसीहने अपने शिष्याको दिया था। जैसा कि लिखा है इसलिये तुम जाकर सब जातियाके लोगाको शिष्य बनाओ और उन्ह पिता-पुत्र तथा पवित्रात्माके नामसे बपतिस्मा दो (मत्ती २८ १९)। बपतिस्मेके द्वारा न केवल उद्धार प्राप्त होता है तथा नया जीवन आरम्भ होता है अपितु पवित्र आत्माका दान भी प्राप्त होता है।

२-प्रभुभोज—कैथोलिक एव प्रोटेस्टेण्ट—दानो सम्प्रदायोमे प्रभुभोजको सस्कारके रूपमे अनिवार्य मान्यता प्राप्त है। प्रभुभोजक सस्कारकी नींव प्रभु यीशु मसीहद्वारा ही रखी गयी है। प्रभु यीशुकी क्रूसपर मृत्युके पहले उन्होने इसे स्थापित किया। पौलुस १ करिन्थियोकी मत्ती (११ २३—२६)-मे लिखते हैं—'प्रभु यीशुने, जिस रात वे पकडवाये गये, रोटी ली धन्यवाद करके उसे ताडा और कहा—यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिये है। मरे स्मरणके लिये यह किया करो। इसी रीतिसे उन्हाने बियारीके पीछे कटारा भी लिया और कहा—यह कटोरा मेरे लोहूम नयी वाचा है। जब कभी पीओ तो मेरे स्मरणके लिये यह किया करो, क्याकि जब कभी तुम यह रोटी खाते और इस कटोरेमसे पीते हो तुम प्रभुकी मृत्युको

* मसीही-सिद्धान्तोकी रूपरेखा (दूसरा भाग)—एबर्ट एम्०क्लार्क पृ० १५६।

जबतक वह न आये प्रचार करते रहो' (मत्ती २६ १७—३५ मरकुस १४ १२—२५, लूका २२ ३—२३ भी देखे)। उस समयसे लेकर मसीही इस सस्कारके द्वारा प्रभु यीशुकी मृत्युको स्मरण करते हैं कि उन्हान मानवजातिके उद्धारके लिये अपना लोहू बहाया और एक प्रकारसे लोहू वहाकर मानवजाति, जो पापी है, उसन प्रायश्चित्त किया। प्रभुभोजका विधिके अवसरपर श्रद्धालुगण प्रभु यीशुके समस्त जीवन, उनक अनुग्रह, सामर्थ्ययुक्त अर्थ, उनकी शिक्षाओ, उनकी क्रूसकी मृत्यु, उनके जीवित होने, स्वर्गारोहण तथा पवित्रात्माके उँडेले जानेको भी स्मरण करते हैं आर यह भी स्मरण करते हैं कि उन्होने अपने बलिदानद्वारा मनुष्यको एक नयी आशा दी है, क्योकि इसके द्वारा उनके साथ एक पवित्र सहभागिता होती है।

एक बात सत्य है कि इस सस्कारविधिके अभावमे एक मसीही व्यक्तिकी साधना निस्सार होती है। यह विधि प्रोटेस्टेण्ट चर्चोंम कम-से-कम महीनेम एक बार और कैथोलिक चर्चोमे प्रत्येक सप्ताह मनायी जाती है। इस विधिको सम्पन्न करते समय पादरी अथवा पास्टर प्रभु यीशुके इन शब्दोको दोहराते हैं और अनुयायी रोटी ओर दाखरसको आदरसे लेते हुए कुछ क्षणातक प्रभु यीशुकी मृत्युको स्मरण करते हुए अपने-अपने पापाकी क्षमा एव उनकी निरन्तर आध्यात्मिक सगतिके लिय मन-ही-मन प्रार्थना करते हैं।

(३) दृढीकरण—कैथोलिक चर्च ही दृढीकरणको सस्कारके रूपमे ग्रहण करते हैं, प्रोटेस्टेण्ट नहीं। दृढीकरण विशषकर नवयुवक और नवयुवतियाके लिये होता है। दृढीकरणसे पूर्व उनकी धार्मिक शिक्षाकी जाँच होती है और वे इच्छा जाहिर करते हैं कि इस विधिमे उन्हे सम्मिलित किया जाय ताकि वे पूर्णरूपसे समाजके सदस्य हो जायँ और चचकी नाना प्रकारकी कार्यवाहीमे सहभागिता कर मसीही जीवन जी सके। ऐसा माना जाता है कि दृढीकरण बपतिस्मके अनुग्रहको पूर्ण करता है।

(४) प्रायश्चित्त अथवा तपस्या—प्रायश्चित्त-सस्कारको प्रोटेस्टण्ट इतना महत्त्व नहीं दते, जितना कैथोलिक देते हैं। प्रायश्चित्त करनेके लिये एक कैथोलिक अनुयायी कैथालिक पुरोहितके पास जाकर अपने किये हुए पापको बतलाता है उन्हे स्वीकार करता है। पुराहित प्रभु यीशुकी ओरसे उसके पापाको क्षमा करता है। बाइबिलके अनुसार प्रोटेस्टेण्टको हिदायत है कि वह कपटियोकी तरह दिखानेके लिये प्रार्थना न करे (मत्ती ६ ५), परतु अपनी बद कोठरीमे गुप्तरूपमे प्रार्थना करे। कपटियाकी तरह उपवास न करे कि मुँहपर उदासी छायी रहे (मत्ती ६ १६-१७)। दान करते समय सभाओम, गलियाम बडाई न करवाये, अपितु दान करते समय बायाँ हाथ न जानने पाय कि दाहिने हाथने दान किया है। इसी प्रकार पापोका प्रायश्चित्त ईश्वरके सम्मुख गुप्तरूपमे होना चाहिये। कैथोलिक यूहन्ना (२० २३)-को इस सस्कारके लिये आधार बनाते हैं जहाँ कहा गया है—'जिनके पाप तुम क्षमा करोगे वे उनके लिये क्षमा किये जायेंगे, जिनके तुम रखोगे, वे रखे जायगे।' ये शब्द यीशुद्वारा शिष्योको कहे गये थे। कैथोलिक चर्च अपनेको शिष्याके उत्तराधिकारीके रूपमे देखता है और यह मानता है कि उसे उसके अनुयायियोक पाप क्षमा करनेका अधिकार है, किंतु प्रोटेस्टेण्ट यह कहकर इस सस्कारको नहीं मानते कि पापोको क्षमा करनेका अधिकार यीशु ख्रीष्टको ही है, किसी अन्य मनुष्यको नहीं।

यदि हम परमेश्वरका भय माने और अपने पडोसीको अपने समान प्रेम कर तो जीवनके अनन्त पापोसे मुक्ति हो जायगी ओर मानव-मानवके बीच समरसता स्थापित हो जायगी।

(५) विवाह—विवाह एक पवित्र बन्धन है फिर भी प्रोटेस्टेण्ट उसे सस्कारके रूपमे ग्रहण नहीं करते, जबकि कैथोलिक मसीह इसे सस्कारके रूपम ग्रहण करते हैं। व मानते है कि कैथोलिक मतावलम्बियाके बीच विवाह एक पवित्र ईश्वरीय प्रबन्ध है। इस कारण यह सर्वोत्तम है, जबकि अन्य विवाह निम्न स्तरके हैं। सत बर्नार्डने सर्वप्रथम सात सस्काराकी बात की थी, किंतु उसकी सूचीमे केवल छ ही सस्कार थे। लगभग ११५० ई०म विवाहको सस्कारके रूपम मान्यता दी गयी। प्रोटस्टेण्ट अनुयायियोंकी दृष्टिमें विवाह एक आदरणीय दशा है। परमेश्वरने मनुष्यको अपने स्वरूपमे सृजन कर आशिषे दी हैं और पुरुषके विषयमे सोचा गया कि उसका अकेला रहना अच्छा नहीं (उत्पत्ति २ १८) और

उसके लिये स्त्रीको भी दिया गया और कहा—फलो, फूलो और पृथ्वीमे भर जाओ और उसको अपने वशम कर लो, समुद्रकी मछलिया तथा आकाशके पक्षियापर रेंगनवाले सभी जन्तुआपर अधिकार रखो (उत्पत्ति १ २७-२८)। अत जब विवाह होता है तब पुरोहित कहता है कि इस कारण मनुष्य अपने माता-पितासे अलग होकर अपनी पत्नीके साथ रहेगा और वे दोनो एक तन होगे। सो वे अब दो नहीं, अपितु एकतन हैं। इसलिये जिसे परमेश्वरन जोडा है, उसे कोई मनुष्य अलग न करे (मत्ती १९ ५-६)। पत्नियाको आदेश दिया जाता है—'हे पत्नियो! अपने-अपने पतिक ऐसे अधीन रहो, जैसे प्रभुके।' पतियाको भी आदेश है—'हे पतियो! अपनी-अपनी पत्नीसे प्रेम रखो, जैसा मसीहने भी अलीसियासे प्रेम करके अपने-आपको उसके लिये दे दिया' (इफिसियो ५ २२—२५)। इन बाताको लेकर ही चर्च इस बातपर बल देता है कि एक परिवार नैतिक रूपसे सामाजिक रूपसे राष्ट्रिय एव अन्तर्राष्ट्रिय रूपसे सुसस्कृत हो।

(६) अभिषेकीकरण— अभिषेकीकरण मसीही समाजके दोना सम्प्रदाया—कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्टम पादरीका पद देत समय किया जाता है। कैथोलिक इसे सस्कारके रूपम लेते हैं, किंतु प्रोटेस्टेण्ट इसे सस्कारके रूपम मान्यता नहीं देते। गुरुका पद एकदम नहीं दिया जाता, यह श्रेणीम विभाजित है। कैथोलिकम सर्वोच्च पद पोपका ओर उसके बाद कार्डिनल बिशप फादर्स ओर ब्रदर्सका होता है। इन पदापर वे ही लोग नियुक्त होते हैं जो धार्मिक शिक्षामे निपुण होते हैं। महिलाआम नन (साध्वियाँ) होती हैं। प्रोटेस्टेण्टमे सर्वप्रथम डीन और प्रेसबिटर होते हैं। उच्च पदपर बिशप होता है। क्षेत्रकी दृष्टिसे चर्चोका विभाजन हाता है और प्रत्येक क्षेत्रका एक बिशप होता है, जिसके अधीन डीकन और प्रेसबिटर होते हैं। स्थानीय चर्चका प्रशासन स्थानीय पास्टोरट कमेटी प्रेसबिटरके साथ मिलकर करती है। सारे बिशप मिलकर सिनडका निर्माण करते हैं। इस प्रकार वे सब मिलकर 'वर्ल्ड कौंसिल ऑफ चर्चेस' का निर्माण करते हैं जिससे चर्चोका प्रतिनिधित्व होता है। भारतक चर्च प्रशासनकी दृष्टिस 'चर्च ऑफ नार्थ इण्डिया' और 'चर्च ऑफ साउथ इण्डिया' मे विभाजित हैं।

प्राचीन कालम गुरुआको याजक कहा जाता था। एसा विश्वास किया जाता है कि प्रभु यीशु ख्रीष्ट सर्वोच्च याजक हैं।

(७) पवित्र सन्यास—कैथोलिक सम्प्रदायका अन्तिम सस्कार पवित्र सन्यास है। यह विधि उस समय प्रयोगमे आती है जब कोई मसीही-विश्वासी बीमार होता है और उसके स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी सम्भावना कम हाती है। कभी-कभी मनुष्य बीमारीकी अवस्थाम अवसादमे डूब जाता है और वह निराशावादी हो जाता है। कभी-कभी वह ईश्वरके प्रति विद्रोह भी करने लगता है कि ईश्वर उसकी प्रार्थनाको क्यों नहीं सुनता और क्या नहीं उस नीरागता प्राप्त होती है। इस कारण यह सस्कार याकूबकी मत्ती (५ १४)-के आधारपर अपनाया जाता है, जहाँ लिखा है यदि तुमम कोई रोगी हो तो कलीसियाके प्राचीन क्षेत्रीय प्रशासनिक सदस्यको बुलाये और वे प्रभुके नामसे उसपर तेल मलकर उसके लिये प्रार्थना कर। उनकी प्रार्थनाद्वारा रोगी बच जायगा और प्रभु उसको उठाकर खडा करेंगे और यदि उसने पाप भी किये हागे तो उसकी भी क्षमा हो जायगी। इसलिये तुम आपसम एक-दूसरेके सामने अपने-अपने पापाको मान लो और एक-दूसरेक लिये प्रार्थना करो जिससे स्वस्थ हो जाओ धर्मीजनकी प्रार्थनाके प्रभावसे बहुत कुछ हो सकता है। यह सत्य है कि धर्मी भक्त लोगाकी प्रार्थनासे रोगियाको आरोग्यता मिलती है। जब एक कैथोलिक पुरोहित सिरपर तेल लगाकर प्रार्थना करते है तब वे कहते हैं—इस पवित्र तेलके लगानेमे प्रभु उसकी पवित्र आत्माम पवित्र आत्माके अनुग्रहम तुम्हारी सहायता करे। प्रभु परमेश्वर जो तुम्हारे पापाको क्षमा करता है तुम्हे बचायें और खडा करे, आमीन।

प्रोटेस्टेण्ट पुरोहित भी बीमाराके लिये उनके निवास-स्थानपर जाकर प्रार्थना करते हैं, किंतु इस कार्य अथवा विधिको वे सस्कारक रूपमे स्वीकार नहीं करते।

संस्कार और सदाचारके अधिष्ठाता—भगवान् श्रीराम

(डॉ० श्रीराधानन्दजी सिंह एम्०ए० पी-एच्०डी०, एल्-एल्०बी०)

भारतीय सनातन आर्य-परम्परामे भगवान् श्रीराम संस्कार और सदाचारके अधिष्ठाता हैं। वे शास्त्रीय संस्कारोंके रक्षक और पालक हैं। सच तो यह है कि सम्पूर्ण मानवीय संस्कार श्रीरामको पाकर मर्यादित होते हैं। अतः उनका आचरण ही संस्कार है, चरित्र ही शास्त्र है और जीवन ही धर्म है।

मानवता संस्कारमें ही परिभाषित होती है। जीवनको सुसंस्कृत, परिष्कृत और संयमित करनेके लिये शास्त्रोंमें विविध संस्कारोंका उल्लेख है। भारतीय संस्कृतिमें शास्त्रोक्त संस्कार आध्यात्मिक जीवन-साधनाके सुदृढ़ आधार हैं, जिनके अनुपालनसे मानव मायिक बन्धनोंसे मुक्त होकर अमृतत्वको प्राप्त करता है। संस्कारयुक्त जीवनसे लोक-परलोक तथा स्वार्थ और परमार्थ—दोनों सध जाते हैं।

युग जब-जब संस्कारविहीन होकर दिग्भ्रान्त होने लगता है, तब-तब भारतीय मनीषी युग और जीवनको सांस्कृतिक दिशा और दशा प्रदान करनेके लिये संस्कारयुक्त चैतन्य पुरुषका आह्वान करते हैं।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने तमसाच्छन्न युगको संस्कारित करनेके लिये चैतन्य पुरुषकी प्राप्तिके लिये अपनी पीडाको तमसा नदीके तटपर देवर्षि नारदके सम्मुख इस प्रकार रखा—

> को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
> धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
> चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
> विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
> × × × ×
> महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्॥
> (वा० रा० १।१।२-३, ५)

सम्प्रति इस लोकमें ऐसा कौन मनुष्य है, जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढव्रत होनेके साथ-साथ सदाचारसे युक्त हो, जो सब प्राणियोंका हितकारक हो, साथ ही विद्वान्, समर्थ तथा प्रियदर्शन हो। महर्षे! आप ही इस प्रकारके पुरुषको जाननेमें समर्थ हैं। उत्तरमें श्रीनारदजी कहते हैं—

> इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
> नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
> बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।
> (वा०रा० १।१।८-९)

इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगोंमें 'राम' नामसे विख्यात हैं, वे ही मनको वशमें रखनेवाले महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रुसंहारक हैं।

नारदजी पुनः कहते हैं कि वे शारीरिक दृष्टिसे पुष्ट, सुडौल, शोभायमान, शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, प्रजाके हितकारक, यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय, जीवों तथा धर्मके रक्षक, स्वधर्म एवं स्वजनोंके पालक, वेद-वेदाङ्गतत्त्वज्ञ, सर्वलोकप्रिय तथा उदार हृदयवाले हैं। श्रीरामसे साधु लोग ऐसे मिलते हैं जैसे नदियाँ समुद्रसे।

स्पष्टतः आदिकविकी व्यथाके शमनहेतु देवर्षि नारद जिन रामका उल्लेख करते हैं, उनका व्यक्तित्व और कर्तृत्व सम्पूर्ण शुभ संस्कारोंसे युक्त है। ऐसे ही संस्कारयुक्त अति पावन चरित्रसे युगकी कल्मषता धुलती है और जन-जनका मानस पवित्र होता है।

श्रीराम गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं। इसकी व्यञ्जना यह है कि पर्वतराज हिमालयसे कन्याकुमारीतकका सम्पूर्ण भारत श्रीरामकी ही जागतिक अभिव्यक्ति है। भारतके सारे संस्कार, सदाचार, विचार, चिन्तन, मर्यादा, धर्म और जीवन श्रीरामसे ही परिभाषित होते हैं। श्रीराम समस्त शुभ संस्कारोंके परम पावन स्वरूप हैं। श्रीराम व्यक्ति नहीं समष्टि हैं, राष्ट्र हैं।

श्रीरामके बिना राष्ट्रकी कल्पना ही असम्भव है। आदिकवि कहत हैं—श्रीराम जहाँके राजा न होगे वह राज्य राज्य नहीं रह जायगा—जगल हो जायगा तथा श्रीराम जहाँ निवास करगे वह वन एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायगा—

न हि तद् भविता राष्ट्र यत्र रामो न भूपति ।
तद् वन भविता राष्ट्र यत्र रामो निवत्स्यति॥

(वा०रा० २।३७।२९)

राष्ट्र भी श्रीरामसे ही सस्कारित होता है। अत श्रीराम मानवके तथा श्रीरामचरित्र मानव-चरित्रका आदर्श है। सस्कारभूषित श्रीरामकी गाथा सम्पूर्ण विश्व-मानवताकी गाथा है। ऐस चरित्रकी उपेक्षा करक राष्ट्र और विश्वमे शान्ति, सुरक्षा और सौमनस्य आदिकी रक्षा सर्वथा असम्भव है। श्रीरामसे ही सम्पूर्ण जगत्की सस्कारिता मर्यादित होती है।

श्रीरामकी भगवत्ता लौकिक धरातलपर इतनी सहज है कि वे सभी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियामे अपने सस्कारजन्य शुभ गुणाक आदर्शका निर्वहण करते हैं। बाल्यावस्थाम वे भाइयाके साथ खेलते हुए भी उनकी भावनाआको आहत नहीं होने देते थे। रगभूमि जनकपुरम भी उनके सहज सस्कार यथोचित बने रहते हैं। परशुरामको तो वे अपनी अगाध विनम्रतापूर्ण वाणीसे ही नतमस्तक कर देते है। गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (१।२८४।६)-म कहते हैं—

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥

श्रीरघुनाथजीके कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिके पर्दे खुल गये। श्रीरामके पावन सस्कारका ही असाधारण प्रभाव है कि युगके दुर्धर्ष नायकको मति सुधर जाती है।

अयोध्याक राजमहलम मन्थराकी कुमन्त्रणासे जब कैकेयीको ईर्ष्याग्निकी लपट उठने लगी और राजमहल धू-धू कर जलने लगा तथा महाराज दशरथ अचेत हो गये तो वहाँ भी श्रीरामके सस्कारोंकी मर्यादा पद्मपत्रवत् बनी रही। श्रीराम न तो राज्याभिषेकसे हर्षित होते हैं और न ही वनवासके दु खसे उनका मुखकमल मलिन होता है। इस घटनाको वे *सौभाग्य मानते हैं।* गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (२।४२।६ २।५३।५-६)-मे कहते हैं—

थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥

× × × ×

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

भगवान् श्रीरामक उपर्युक्त वचन उनक इस तथ्यका उद्घाटित करते हैं कि सुख-साम्राज्यके भोगका अनुसरण रामका सस्कार नहीं है। उनका सस्कार भोगका नहीं, वरन् त्यागका है। इससे मनुष्य सामान्य धरातलसे उठकर महान् बन जाता है। उनकी सम्पूर्ण सस्कारनिष्ठा निष्कामतापर आधृत है।

भगवान् श्रीरामका दिव्य सस्कारसम्पन्न उज्ज्वल व्यक्तित्व इतना विराट् है कि वे केवटको गले लगाते हैं, शबरीके जूठे बेर खाते हैं तथा गृद्ध जटायुके शरीरको हाथसे सहलात हुए आँसू बहाते हैं पिताकी भाँति उसका अन्तिम सस्कार करते हैं। वनवासी, कोल, भील तपस्वी ऋषि महर्षि पशु, पक्षी, वानर आदि सभी उनको पावन सस्कार-गङ्गाम अवगाहन कर धन्य हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि श्रीराम मानवीय सामाजिक सस्काराके मूर्तस्वरूप तो हैं ही, मानवेतर समाज भी उनसे प्रशसित होता है। उन्होने वर्ण और आश्रमकी स्वर्णमजूषाम सजे भारतीय समाजकी मर्यादाकी स्थापना की है। वे लोकजीवनमे समाहित होकर भी लोकसे ऊपर हैं। उनका लोकमङ्गल लोकरक्षक और लोकरञ्जक सस्कार अनुकरणीय है।

श्रीरामका ही वह अलौकिक सस्कार है जिससे समुद्र भी मर्यादित होता है, पत्थर जिनके नामसे तैरता है किष्किन्धाका वानरसमाज कामका परित्याग कर राममय हो जाता है और खर-दूषण युद्धस्थलमे उनके अनुपम सौन्दर्यको देख अचम्भित होकर उद्घोष करते हैं—

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहि असि सुदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(रा०च०मा० ३।१९।३—५)

आदर्श भ्रातृप्रेम , सुग्रीवके साथ अविचल मित्रता विभीषणको परमाश्रयका दान अपने आश्रित वानरोंके साथ सद्व्यवहार प्रजावत्सलता और पूज्य ऋषियाके सम्मुख विनम्र मननशीलता—य सब कुछ भगवान् श्रीरामके शुभ

सस्काराको द्योतित करते हैं।

श्रीरामके सस्कारकी साधुता वहाँ उद्घाटित होती है, जहाँ व रावणसे कहत हैं कि रावण! तुमने आज भयङ्कर काय किया है, क्योकि मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीराको तुमने मार डाला है। इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणासे तुम्ह मृत्युके अधीन नहीं कर रहा हूँ, तुम युद्धसे पीडित हा श्रान्त हो, लङ्कामे जाकर कुछ देरतक विश्राम कर लो, तत्पश्चात् रथ और धनुपसे सुसज्जित होकर पुन आना तब मेरा बल देखना—

कृत त्वया कर्म महत् सुभीम
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वा शरैर्मृत्युवश नयामि॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिचरराज लङ्काम्।
आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बल प्रेक्ष्यसि मे रथस्थ ॥
(वा०रा० ६।५९।१४२-१४३)

रावणकी मृत्युक बाद विभीषणद्वारा अत्याचारी भाईक दाह-सस्कारको अस्वीकार कर देनेपर भगवान् श्रीरामने कहा—मरनेके बाद वैरका अन्त हो जाता है। अब मरा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है अत इस समय जैस यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी है, अतएव इसका दाह-सस्कार करो—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्त न प्रयोजनम्॥
क्रियतामस्य सस्कारो ममाप्येष यथा तव।
(वा०रा० ६।१११।१००-१०१)

यह है श्रीरामकी सस्कारजन्य करुणा और उनकी क्षमाशीलता। भगवान् श्रीराम शीलके सिन्धु हैं। प्रम, करुणा और त्यागका महासमुद्र उनके सस्कारम सदा ही उफनता और लहराता रहता है। अत दुराचार, अत्याचार, अनाचार और कदाचारसे ग्रस्त आजके ससारम श्रीरामके परम पावन दिव्य सस्कारका सञ्चार हो जाय तो जगजीवन सदाचार सद्विचार और शिष्टाचारसे परिपूर्ण हो जाय। भक्त्यात्मक दृष्टिसे भी भक्तवत्सलता और शरणागत-परित्राणपरायणता उनके शुभ सस्कारके उज्ज्वल प्रकाशस्तम्भ हैं अत श्रीरामके चरणारविन्दाका पावन आश्रय ही जीवका परमसाध्य है। आदिकविके शब्दाम मनुष्य-जीवनकी परम सार्थकता यही है कि या तो हम श्रीरामको देख सक या श्रीरामकी दृष्टि हमारे ऊपर पड जाय, अन्यथा स्वय हमारी आत्मा ही हम कोसेगी—

यश्च राम न पश्येत्तु य च रामो न पश्यति।
निन्दित सर्वलोकेषु स्वात्माप्येन विगर्हते॥
(वा०रा० २।१७।१४)

श्रीकृष्णकी जीवनचर्यामे प्रतिष्ठित सस्कारोके मौलिक सूत्र

(स्वामी श्रीअजस्रानन्दजी महाराज)

सस्कारोंके कारण ही व्यक्तिमें विलक्षण और अनिर्वचनीय गुणाका प्रादुर्भाव होता है। सस्कार जीवनके विभिन्न अवसरोंको महत्त्व और पवित्रता प्रदान करते हैं। लोकमङ्गलकारी सस्काराका प्रभाव जब जीवनचर्यामें होता है, तब व्यक्तिके जीवनम समग्ररूपसे पूर्णता आती है।

श्रीकृष्णके जीवनम प्रतिष्ठित सस्कारोकी अभिव्यक्ति विशेष रूपसे उनके उपदेशा एव वचनामृतोसे प्रकट होती है। उनकी जीवनचर्या उदात्त सस्कारोके मौलिक सूत्रोकी एव अन्तर्निहित भावोकी परिचायिका है। इसी कारण व 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' के रूपमे वन्द्य एव पूज्य हैं। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके सस्कारोके अनन्त मौलिक सूत्रोको स्वल्प बुद्धिसे समझनकी चेष्टा की गयी है—

१ **सेवा-समर्पण और सम्मानदान**—भगवान् श्रीकृष्णके जीवनमे सेवा, समर्पण और सम्मानदानके सस्कार शैशवसे ही प्रकट रहे। जिनमे गौओ, माता-पिता, गुरुजनो, परिजनो तथा मित्रोकी सेवा आदि प्रमुख हैं। जब खेलम थके हुए बलरामजी किसी गोपकी गोदमे सिर रखकर लेट जाते तो श्रीकृष्ण उनके पैर दबाकर तथा उन्हे पखा झलकर उनकी थकावट दूर करते थे—

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्त गोपोत्सङ्गोपबर्हणम्।
स्वय विश्रमयत्यार्यं पादसवाहनादिभि ॥
(श्रीमद्भा०१०।१५।१४)

श्रीकृष्णजी सुदामासे कहते हैं—मैं गुरुदेवकी सेवासे जितना प्रसन्न होता हूँ, उतना यज्ञ-वेदाध्ययन, तपस्या आदिसे नहीं, तभी तो वे वनसे लकडी चुनकर लाते थे—

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥
(श्रीमद्भा०१०।८०।३४)

वे रणभूमिमें अश्वोंकी परिचर्या अपने हाथोंसे करते थे। उनके शरीरमें धँसे तीरोंको निकालते, कुशलतापूर्वक घावोंकी चिकित्सा करते, उनका श्रम एवं कष्ट मिटाते, उन्हें पानी पिलाते और नहलाते। जब उनकी सारी थकावट दूर हो जाती तो उन्हें रथमें जोतते। गोवत्स-चारण तथा उनकी सेवा तो श्रीकृष्णजीकी जीवनी शक्ति ही रही है, इसीसे उनका गोपाल, गोविन्द नाम पड़ा।

महाराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञ-महोत्सवमें उन्हें अग्रपूजाका एकमात्र अधिकारी माना गया था, किंतु अभ्यागतोंके पाद-प्रक्षालन करनेका काम उन्होंने अपने लिये प्रिय समझा तथा जूठी पत्तलें उठायीं। कौन लोकनायक आज ऐसा आदर्श सेवा-कार्य स्वीकार करता है?

श्रीकृष्णद्वारा की गयी सेवाओंका गान तो गोपियाँ रो-रोकर करती हैं—कृष्ण! विषविदूषित जलसे, अनेकानेक दानवोंसे, कालकी-सी प्रलयवर्षा एवं तूफानसे, दावाग्निसे तथा अगणित आपत्तियोंसे आपने हमारी बार-बार रक्षा की है—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥
(श्रीमद्भा०१०।३१।३)

२ सदाचार-शिष्टाचार एवं विनयशीलता—श्रीकृष्ण सदाचार, शिष्टाचार एवं विनयशीलताके मूर्तस्वरूप ही हैं। श्रीनारदजी द्वारकाधीश श्रीकृष्णसे भेंट करने जब द्वारकापुरी पहुँचे तो उन्हें देखते ही धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने रुक्मिणीके पलंगसे उठकर उनके चरणोंमें अपना सिर रखकर प्रणाम किया और उन्हें अपने आसनपर बिठाया। जिनके चरणोंका धोवन-जल (चरणोदक) गङ्गाके नामसे संसारको पवित्र करता है, उन जगदीश्वर, भक्तवत्सल तथा ब्राह्मणोंको अपना आराध्य माननेवाले श्रीकृष्णने स्वयं नारदजीके चरण पखारे तथा उनका चरणामृत अपने सिरपर धारण किया—

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम्॥
(श्रीमद्भा०१०।६९।१५)

इसी प्रकार रुक्मिणीके द्वारा प्रेषित संदेशवाहक ब्राह्मणदेवको देखते ही वे स्वर्णसिंहासनसे नीचे उतर पड़े, उनका आदर-सत्कार किया और जब वे भोजनके अनन्तर विश्राम कर चुके, तब श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथोंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्तभावसे पूछने लगे—विप्रवर! आपका चित्त तो सन्तुष्ट है? आपको अपने पूर्वजोंद्वारा स्वीकृत धर्मका पालन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती?

कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा॥
(श्रीमद्भा० १०।५२।३०)

३ स्वर-साधनाका संस्कार—श्रीकृष्णके वेणुगीतमें वाक्संयम-वैदग्ध्यका समावेश है, जो अत्यन्त कल्याणकारी है। सर्वात्माका वेणुगीत आत्माका संगीत है, जिसमें जड-जगत् एवं जीव-जगत्को मोहित करनेके भाव प्रस्फुटित हुए हैं। वंशी-ध्वनि सुनकर वृक्ष-लताएँ प्रफुल्लित होती थीं, पुष्प नया रंग लेकर खिलते थे तथा पवनके झकोरोंमें और पक्षियोंकी काकलिमें आनन्दका स्वर भर जाता था—

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥
(श्रीमद्भा०१०।२१।१९)

सभी भाषाओंके कवियोंने मोहनके मुरलीवादनपर अनेक काव्य लिखे हैं। विभिन्न भाषाओंके साहित्यमें जो मधुरता आयी है, उसका उत्स यही वेणुगीत है। संस्कारी हृदयोंमें हृदयरसका सिञ्चन करनेवाली यह स्वरमाधुरी रासलीलाकी पूर्वभूमिका है। वेणुगीत और रासोत्सव-जैसा अमृतरस कहीं नहीं है। इनमें जो स्वर है, जो गीत है, उसमें भावोंकी सृजनशक्ति ही नहीं, साथ-साथ लय

करनेकी शक्ति भी है। इनकी शक्ति अलौकिक है, जो सासारिक एव आध्यात्मिक—दोनो सुखोको तुच्छ करनेवाली है।

वणुके सात छिद्रामसे छ छिद्र तो भगवान्के ऐश्वय, वीर्य, यश श्री ज्ञान और वैराग्यकी प्राणवायुसे पूरित हैं। सातवाँ छिद्र स्वय भगवान्के अप्राकृत निर्विकार स्वरूपका बोधक है। वणुनाद श्रीकृष्णके स्वारस्य-अनुभूतिका हेतु है।

४ वाक्-कौशल—भूत भविष्य और वतमानके जितने भी वक्ता हैं, उनमे श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं। उनका वाक्-कौशल विश्वमे आचरणीय है। गोपियाँ अपने परिजनो तथा परिवारजनोको छोडकर 'कृष्णदर्शनलालसा', 'त्यक्त्वा च सर्वविषयान् तव पादमूलम्' ऐसा करुणक्रन्दन करते हुए श्रीकृष्णकी ओर बढीं और श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ—गोपियाँ बिलकुल पास आयी हैं तब मुस्कराकर पूर्व भाषण करनेवाले व अपनी विनोदभरी वाक्-चातुरीसे उन्हे मोहित करते हुए बोले—'महाभाग्यवती गोपियो! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ तो तुम्हे प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ? व्रजमे तो सब कुशल-मङ्गल है न?'

> अवदद् वदता श्रेष्ठो वाच पशैर्विमोहयन्॥
> स्वागत वो महाभागा प्रियं किं करवाणि व।
> व्रजस्यानामय कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम्॥
> (श्रीमद्भा० १०।२९।१७-१८)

श्रीकृष्ण जब कौरवसभामे पाण्डवोकी ओरसे सन्धि-प्रस्तावके लिये दूत बनकर पहुँचे उस समय उनका वाक्-कौशल विशेष प्रकाशमे आया। जिस समय श्रीकृष्ण विदुर एव सात्यकिका हाथ पकडकर सभाभवनमे पधारे, उस समय उनकी कान्तिने समस्त कौरवोको निस्तेज कर दिया। धृतराष्ट्रके निवेदनपर वे सर्वतोभद्र नामक सुवर्ण-सिंहासनपर मुस्कराते हुए विराजमान हुए। सभी कौरवो तथा अन्य राजाओने उनका पूजन किया। नारद आदि ऋषि-मुनिगण भी बडी उत्कण्ठा लेकर वहाँ पहुँचे। द्वारकानाथकी लोककल्याणकारिणी वाणी सुननेको वे सभी उतावले थे।

श्रीकृष्ण बोले—हे भरतनन्दन धृतराष्ट्र! मैं आपसे यह प्रार्थना करने आया हूँ कि क्षत्रियवीरोंका बिना सहार हुए ही कौरवो और पाण्डवोमे शान्तिकी स्थापना हो जाय। हे

भारत! कौरवकुल समस्त गुणोंसे सम्पन्न है। इसमें कृपा अनुकम्पा करुणा अनृशंसता सरलता सत्य और क्षमा— ये सद्गुण अन्य राजवंशोंकी अपेक्षा अधिक हैं। ऐसे कुलके होते आपके द्वारा कोई अनुचित कार्य हो जाय तो यह उचित नहीं। तात! यदि इनमें कोई प्रकट या अप्रकट रूपसे मिथ्याचरण करने लगे तो आप ही उन्हें रोककर सन्मार्गपर स्थापित करनेवाले हैं—

> कुरूणां पाण्डवानां च शमः स्यादिति भारत।
> अप्रणाशेन वीराणामेतद् याचितुमागतः॥

कृपानुकम्पा कारुण्यमानृशस्यं च भारत।
तथाऽऽर्जवं क्षमा सत्य कुरुष्वेतद् विशिष्यते॥
त्व हि धारयिता श्रेष्ठ कुरूणा कुरुसत्तम।
मिथ्या प्रचरता तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च॥

(महा० उद्योग० ९५।३ ६ ८)

श्रीकृष्णजी पुन बोले—हे भारत! आपके पुत्रो तथा पाण्डवोके मिल जानेपर आप सबके लिये अजेय हो सकते हैं। इससे आपके स्वार्थकी ही सिद्धि होगी—

एतैर्हि सहित सर्वैं पाण्डवै स्वैश्च भारत।
अन्यान् विजेष्यसे शत्रूनप स्वार्थस्तवाखिल ॥

(महा० उद्योग०९५।२६)

हे भरतर्षभ! पाण्डव बाल्यावस्थामे ही पितासे बिछुड गये थे। आपने ही उन्हे पाल-पोसकर बडा किया अत उनका और अपने पुत्रोका न्यायपूर्वक पालन कीजिये—

बाला विहीना पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिता ।
तान् पालय यथान्याय पुत्राश्च भरतर्षभ॥

(महा० उद्योग०९५।३८)

श्रीकृष्णके गीतोक्त वचन कर्म ज्ञान भक्ति एव समत्वयोगके सर्वोच्च उपदेश तो हैं ही, युद्ध छोडकर भागते वीर अर्जुनको विषादसे प्रसादकी ओर ले जाकर स्वधर्ममे भी लगाते है और अपना प्रयोजन '**परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृता धर्मसस्थापनार्थाय**' को पूर्ण कराते हैं।

५ **पराक्रम**—श्रीकृष्णके सस्कारोमे तेजस्विता, अपराजित्व, शास्तृत्व सगठन, सुदृढ व्रत आदि वैशिष्ट्य निहित हैं। श्रीकृष्ण नारदजीसे कहते हैं—देवर्षे! मैं ही धर्मका उपदेश करनेवाला हूँ, ससारमे लोगोको धर्म सिखानेके लिये मैं ही स्वय उसका पालन करता हूँ, इसलिये तुम खेद मत करो—एक साथ मेरे हजारो कार्योंको देखकर तुम भ्रममे मत पडो—

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताह कर्ता तदनुमोदिता।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थित पुत्र मा खिद ॥

(श्रीमद्भा०१०।६९।४०)

युद्धभूमिमे अर्जुनद्वारा पराक्रमी कर्णके न मारे जानेपर युधिष्ठिर, जो स्वय आहत थे आक्रोशमे अर्जुनसे बोले—तुम्हे अपने गाण्डीवको किसी अन्यको दे देना चाहिये। यह सुनकर अर्जुन तलवार निकालकर युधिष्ठिरका वध करनेको तैयार हो गये। उस समय श्रीकृष्णने उन्हे धिक्कारा। यह उनके परम तेजस्वी नियामक स्वरूपका परिचायक है। उन्होने कहा—पार्थ! मैं समझ गया कि तुम वृद्धोंकी सेवामे नहीं रहे, इसीलिये तुम्हे बिना अवसरके क्रोध आ गया। पार्थ! जो करनेयोग्य होनेपर भी असाध्य हो तथा जो साध्य होनेपर भी निषिद्ध हो ऐसे कर्मोसे जो सम्बन्ध जोडता है वह पुरुषोमे अधम माना जाता है—

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धा सेवितास्त्वया।
काले न पुरुषव्याघ्र सरम्भ यद्भवानगात्॥
अकार्याणा क्रियाणा च सयोग य करोति वै।
कार्याणामक्रियाणा च स पार्थ पुरुषाधमा ॥

(महा० कर्ण० ६९।१६ १८)

६ **सौन्दर्यानन्द**—सस्कारोमे श्रीकृष्णकी रसमयी, चिन्मयी आनन्दमयी, मधुमयी तथा हास्यमयी वृत्तिने सम्पूर्ण विश्वको अपनी ओर आकृष्ट कर रखा है।

'सोभित कर नवनीत लिए' से लेकर गोवत्स-चारण वेणुवादन रासविलासमे—सर्वत्र वे मयूरमुकुटी ही विजयी रहे हैं। '**मधुराधिपतेरखिल मधुरम्**' होनसे वे मूर्तिमान् शृङ्गारके रूपमे मन्मथमन्मथ हो गये। वनस्थली, पर्वतश्रेणी तथा कालिन्दीके बालुकामय कूलको देखकर उनका हृदय सौन्दर्यप्रवाहमे बह उठता है। यमुनातीरको देखकर वहाँके सुमनसौरभयुक्त समीरका स्पर्शकर एव विहगसमूहोकी काकलि सुनकर वे आनन्दमग्न होते हैं, तब उनका सरस हृदय इस प्रकार मुखरित हो उठता है—

अहोऽतिरम्य पुलिन वयस्या
स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छवालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक-
ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।५)

वहाँके वृक्षो लताओ हरी-हरी घास पुष्पगुच्छो मयूरो, गोवत्सो और मृगोको देखकर वे मुदित हो उठते हैं।

७ **सत्यप्रतिज्ञाका सस्कार**—दु खार्ता द्रौपदीके तप्त अश्रुबिन्दुओने श्रीकृष्णके हृदयको झकझोर दिया और श्रीकृष्णके मुखसे निकले वचनोसे कौरवोका विनाश सुनिश्चित हो गया। द्रौपदीसे श्रीकृष्ण बोले—'भाविनि! तुम

जिनपर क्रुद्ध हुई हो उनकी स्त्रियाँ भी अपने प्राणप्यारे पतियाको अर्जुनके बाणासे छिन्न-भिन्न और खूनसे लथपथ हो मरकर धरतीपर पडा देख इसी प्रकार रोयेगी। पाण्डवाके हितके लिये जो कुछ भी सम्भव है मैं वह सब करूँगा, शोक न करो। मैं सत्य प्रतिज्ञापूर्वक कह रहा हूँ कि तुम राजरानी बनागी'—

रोदिष्यन्ति स्त्रियो ह्येव येषा क्रुद्धासि भाविनि।
बीभत्सुशरसच्छन्नाञ्छोणितौघपरिप्लुतान् ॥
निहतान् वल्लभान् वीक्ष्य शयानान् वसुधातले।
यत्समर्थं पाण्डवाना तत्करिष्यामि मा शुच ॥
सत्य ते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यसि।

(महा० वन०१२।१२८—१३०)

अश्वत्थामाके छाडे ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे उत्तराका गर्भ (परीक्षित्) जलने लगा उस समय श्रीकृष्णने कहा—'यदि मैंने कभी झूठ न बाला हो, तो पाण्डवाका एकमात्र आधार यह बालक जी उठे।' बालक जी उठा। (महा०, आश्व० ६९।१८—२४)

८ **प्रकृतिसरक्षण**—प्रकृतिका सरक्षण ता श्रीकृष्णके सस्काराम बाल्यावस्थासे ही था। इसी उपक्रमम उन्होने गापाकी परम्परा—इन्द्रपूजाका विरोध किया। इन्द्रके प्रति कोई वैमनस्य नहीं था। वनस्पतिजगत्, वन-गिरि-नदीके प्रति उनका सौमनस्य था। गोवर्धनपूजा एव वृक्षोके महत्त्वम वे अपने सखाओसे कहते हैं—'मित्रो! ये वृक्ष महाभाग्यशाली हैं, इनका जीवन परापकारार्थ है अत अति श्रेयस्कर है'—

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति न ॥
एतावज्जन्मसाफल्य देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा॥

(श्रीमद्भा०१०।२२।३२ ३५)

९ **समत्वयोग**—श्रीकृष्णम समत्वयोगकी प्रतिष्ठा है। इसका प्रकटीकरण स्वधाम-प्रस्थानकी वलाम बडे प्रभावकारी रूपसे वर्णित है—वे चतुर्भुजरूपमे एक पीपलके पडतले जाकर चुपचाप धरतीपर ही पद्मासनम स्थित हो गये। अपनी दाहिनी जाँघपर बायाँ चरण रखकर बैठ गये। लाल-लाल तलवा रक्तकमलकी तरह चमक रहा था। वर्षाकालीन मेघकी तरह तप्त कचनके समान ज्याति निकल रही थी। वे रेशमी पीताम्बरकी धोती एव दुपट्टा धारण किय थे। कन्धपर यज्ञापवीत माथेपर मुकुट घुटनातक वनमाला लटक रही थी—बडा ही मङ्गलरूप था। जरा नामक बहेलियेको दूरसे लाल-लाल तलवा हरिणका मुख जान पडा। सचमुच हरिणमुख समझ उसने बाणसे उस बींध दिया। पास आया, दखा—ये तो श्रीकृष्ण हैं। अपने अपराधवश डरके मारे काँपन लगा। श्रीकृष्णके चरणाम गिर पडा। बाला—मैंने अज्ञानम बडा पाप किया है। आप मुझे अभी-अभी मार डालिये। श्रीकृष्ण बोले—'हे जरे! तू मत डर, उठ-उठ। यह तो तूने मेर मनका काम किया है, जा मेरी आज्ञासे तू स्वर्गम निवास कर, जिसकी प्राप्ति बड-बडे पुण्यवानाको होती है—

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे।
याहि त्व मदनुज्ञात स्वर्गं सुकृतिना पदम्॥

(श्रीमद्भा०११।३०।३९)

स्वसम्कारवश श्रीकृष्ण मारकके भी तारक बने—वाह रे समत्वसस्कारकी पराकाष्ठा!

श्रीकृष्णका सारथि दारुक उनके द्वारा धारण की गयी तुलसीमालाकी सुगन्धि सूँघता हुआ वहीं जा पहुँचा। उन्हे देखकर उसके हृदयम प्रेमकी बाढ आ गयी। आँसुओकी धारा बह निकली। बाला—प्रभो! मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है, चारो ओर अन्धेरा छा गया है, दिशाओका ज्ञान नहीं है और मनम शान्ति भी नहीं है। श्रीकृष्ण बोले—दारुक! तुम द्वारका जाओ और यदुवशियोके परस्पर सहार तथा भैया बलरामकी परमगतिकी एव मेरे स्वधामगमनकी बात बताओ। तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट भागवतधर्मका आश्रय लो ज्ञाननिष्ठ हाकर सबकी उपेक्षा कर दो तथा इस दृश्यको मेरी मायाकी रचना समझकर शान्त हो जाओ—

त्व तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षक ।
मन्मायारचनामेता विज्ञायोपशम व्रज॥

(श्रीमद्भा०, ११।३०।४९)

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण चर्या सस्कारासे अनुप्राणित है और सस्काराकी प्रतिष्ठाके लिये ही लीलारूपम व्यक्त है।

बचपनमें दिया गया सस्कार अमिट होता है

[माता मदालसाकी कथा]

मानव-शिशु जन्म लेते ही रोना प्रारम्भ कर देते हैं, यदि उसी समयसे कोई सस्कार डाला जाय तो वह भी अमिट हो जाता है। महापतिव्रता पतिप्राणा मदालसा चाहती थीं कि उनका पुत्र ब्रह्मज्ञानी बने, क्याकि मनुष्यजीवनका सबसे बडा लक्ष्य यही है। उपनिषद्ने कहा है कि यदि इस शरीरसे मनुष्य ईश्वरको जान गया, तब तो मानवशरीर धारण करना मफल हो गया नहीं तो उसका सर्वनाश हो गया—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चदिहावेदीन्महती विनष्टि ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीरा प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् २।५)

इसलिय मदालसाका पुत्र जब उत्पन्न हुआ तो उसी समयसे व उसम आत्मतत्त्वका सस्कार डालन लगीं। वे शिशुसे कहती हैं—'हे पुत्र! तुम शुद्ध हो अर्थात् मायासे निर्लिप्त आत्मा हो, तुम रोत क्यो हो क्याकि रोना आत्माका धर्म नहीं है। रोना तो शरीरका धर्म है'—

शुद्धोऽसि रे तात न तऽस्ति नाम
कृत हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मक देहमिद-न तेऽस्ति-
न्नैवास्य त्व रोदिपि कस्य हेतो ॥

(मार्कण्डेयपुराण २५।११)

दसव दिन पितान उस नवजात शिशुका नाम 'विक्रान्त' रखा और विक्रान्त कहकर पुकारा भी। नाम आत्माका तो होता नहीं है, क्याकि आत्मा तो सर्वव्यापक है। नाम शरीरका होता है। इस तथ्यको मदालसाने शिशुको पहले ही दिन रोते समय कह दिया था।

इस तरह निरन्तर मदालसा नवजात शिशुको आत्मतत्त्वका सस्कार डालने लगी और देहम आत्मबुद्धि न हो, इसका भी सस्कार डालने लगी। 'विक्रान्त' जीवनपयन्त ब्रह्मानन्दम हो लीन रहा। आत्मतत्त्वका यही सस्कार उन्हाने अपने दूसरे और तीसरे पुत्रा सुबाहु और शत्रुमर्दनका भी दिया। इसका फल यह हुआ कि तीना-क-तीना पुत्र विवाहादि दुनियावी चक्करम न पडकर ब्रह्मानन्दी ही रहने लग। अपन तीनो पुत्राका व्यावहारिक ज्ञानसे रहित देखकर ऋतध्वजको यह चिन्ता हुई कि इन तीना पुत्रामेस कोई भी शासन नहीं कर सकता, फिर मेरे राज्यका भार कौन सँभालेगा। तीना पुत्राको सदा ब्रह्मानन्दम लीन दखकर राजाको सुख तो बहुत मिलता था, परतु साथ ही यह भी चिन्ता सताती रहती थी कि राज्यकार्य कैसे चलेगा। इसलिये उन्होने अपनी पत्नी मदालसासे कहा कि मेरी आज्ञा है कि चौथे पुत्रमे तुम ऐसे सस्कार डालो कि वह हममे भी बढकर कुशल शासक प्रमाणित हो।

मदालसा यद्यपि आत्मतत्त्ववत्ता थीं, किंतु स्त्री होनेके नाते पातिव्रतधर्मकी महत्ताका भी जानती थीं। इसलिये पतिप्राणा थीं पतिमें इतना अनुराग रखती थीं कि एक बार इन्हाने यह सुन लिया कि मर पति मर गये तो अपने प्राणाको भी त्याग दिया था। इस तथ्यकी जानकारी रखना पाठकोका आवश्यक है, इसलिय इसका उल्लेख किया जा रहा है—

मार्कण्डयपुराणका आख्यान है कि राजा शत्रुजित्के प्रिय पुत्रका नाम ऋतध्वज था। य राजनीतिज्ञ, वीर एव प्रजावत्सल थे। इसलिय पितान उन्ह युवराजपदपर अभिषिक्त

कर दिया था। एक दिन एक दिव्य घोडेको उनको सुपुर्द करते हुए कहा कि बेटा! देखो, आजकल बहुत-से दानव पातालसे पृथ्वीपर आकर प्रजाको कष्ट पहुँचा रहे हैं। यह दिव्य घोडा सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण कर सकता है, तुम इसपर बैठकर दानवोका सहार कर प्रजाके कष्ट दूर करो। राजकुमार ऋतध्वजने अपना काम बहुत बखूबीसे निभाया। प्राय दानव पृथ्वी छोडकर पाताललोकमे भाग गये। पातालमे दानवोका राजा पातालकेतु था, ऋतध्वजने उसको पृथ्वीसे तो भगा दिया, पर वह बार-बार पृथ्वीवासियोको कष्ट देता ही रहा। अन्तमे ऋतध्वज उसका पीछा करते हुए पाताललोक चले गये और उसका सेनासहित सहार कर दिया। इस तरह पृथ्वीका बोझ तो ऋतध्वजने हटा दिया, लेकिन पाताल पहुँचनेपर उनके ऊपर एक बोझ और आ पडा। वहाँ उन्हे बताया गया कि पातालकेतुने गन्धर्वराजकी पुत्री मदालसाको बहुत दिनसे कैद कर रखा है और वह उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है, आप उसका उद्धार करे। यह सुनकर ऋतध्वजने पातालकेतुके घरमे प्रवेश किया वहाँ मदालसाको देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये, उसका रूप-लावण्य अलौकिक था। मदालसा भी अनुरागसे मोहित हो गयी बोली कि 'राजन्! मुझे पत्नीरूपमे स्वीकार करो। यह पहला अवसर है कि हममे अनुराग आया है।' युवराज ऋतध्वजने उसे अपने कुवलय घोडेपर बिठा लिया और शीघ्र ही घर पहुँच गये तथा शुभ अवसर आनेपर मदालसासे विवाह कर लिया। मदालसा तो सब जगह ब्रह्मको देखती थी और सदा ब्रह्ममे लीन रहती थी। पतिको भी उसने ब्रह्मके रूपमे देखा और उसके ब्रह्मानन्दमे चार चाँद लग गये। बीचमे एक ऐसी घटना घटी जिसने प्रमाणित किया कि वह सचमुच पतिप्राणा थी। बात यह हुई कि पातालकेतुका छोटा भाई तालकेतु था, उसने अपने भाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिये छल-छद्मका आश्रय लिया। एक साधुका रूप बनाकर झोपडी डालकर वह पृथ्वीपर रहने लगा। वह जानता था कि मदालसा पतिके अनुरागमे इतनी डूबी रहती है कि पतिके वियोगमे एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। तालकेतु साधुका स्वाँग बनाकर एक कुटीमे रहने लगा और निरतर ऋतध्वजकी प्रतीक्षा करता रहा। एक दिन कुवलय घोडेपर पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए ऋतध्वज उसकी कुटीपर पहुँचे। साधु जानकर उन्होने उसे प्रणाम किया। तालकेतु बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा कि 'राजन्! मैं बहुत दिनसे आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, मैं जानता हूँ कि आप दृढप्रतिज्ञ है जो कहेगे उसे अवश्य पूरा करेगे। मैं एक यज्ञ करूँगा, उसमे सुवर्णकी दक्षिणा अपेक्षित है। मैं याचना करता हूँ कि आप अपने कण्ठमे धारण किया हुआ सुवर्णका हार मुझे दे दे। एक और प्रार्थना है कि थोडी देरतक मेरे आश्रमकी रक्षा करे मैं जलमे घुसकर वरुणदेवकी आराधना करता हूँ, अधिक देर नहीं लगेगी।' ऐसा कहकर राजकुमारका कण्ठाभरण लेकर जलके भीतर-ही-भीतर वह राजमहलमे पहुँच गया। वहाँ उसने कहा कि 'एक दानवने ऋतध्वजको मार डाला है, मैं उनका कण्ठाभरण ले आया हूँ।' यह प्रामाणिक समाचार सुनकर मदालसाने अपने प्राण त्याग दिये।

यह तो मदालसाके पतिके प्रति अनुरागकी बात हुई। आगे एक ऐसी घटना घटी, जिसमे मदालसाको पुन उसी रूपमे जीवित कर ऋतध्वजको सौंप दिया गया। वह घटना इस प्रकार है—

पाताललोकमे नागोके राजा अश्वतर थे, उनके दो पुत्र थे। पिताने दोनो पुत्रोको सभी विद्याओमे पारगत कर दिया था। एक दिन उन्होने कहा कि तुम लोग सभी प्रकारका ज्ञान प्राप्त कर चुके हो अब पृथ्वीका भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये तुम्हे वहाँ जाना चाहिये। यह सुनकर वे दोनो ब्राह्मणवेशमे पृथ्वीपर आये। यहाँ युवराज ऋतध्वजका नाम पृथ्वीके कण-कणमे व्याप्त था। ये दोनो भी युवराजके पास पहुँचे। युवराजने अपने गुणोसे उन्हे अभिभूत कर दिया, अब इन दोनोका मन युवराजके बिना लगता ही नहीं था। एक दिन गन्धर्वराजने अपने पुत्रोसे पूछा कि मैं तुम दोनोको केवल रातमे ही देख पाता हूँ, ऐसा क्यो? पुत्रोने

बताया कि युवराज ऋतध्वज पृथ्वीपर हम दोनोके मित्र हो गये हैं, उनके गुण और शीलने हम दोनाको परवश बना दिया है। उनके बिना हमे चैन नहीं मिलता यहाँ आनेपर उनके वियोगम हम लम्बी-लम्बी साँस खींचनी पडती है। नागराज पिताके कर्तव्यको जानते थे, उन्हाने पूछा कि तुमने इतने गुणी युवराजकी कोई इच्छा पूरी की है कि नहीं, मेर घरम जितने रत्न, धन आदि हैं, उन्ह देकर उनका बदला चुकाओ। पुत्राने कहा कि युवराजको धन-सम्पत्तिका कोई अभाव नहीं है। जो हमारे घरमे है वह सब उनके पास विद्यमान है। नागराजने कहा कि प्रत्येक व्यक्तिको कोई-न-कोई अभाव अवश्य होता है, तुम दोनो सोचकर बताओ कि उन्ह किस चीजकी कमी है? पुत्रोने कहा कि उन्हे उस वस्तुकी कमी है जिसे न हम पूरा कर सकते हैं और न आप। उनकी एक प्राणप्रिया पत्नी थी, उसके प्राण धोखेसे एक दानवने हरण कर लिये, राजकुमारको उसीका विरह है, लेकिन इस कमीको हमलोग पूरा नहीं कर सकते।

नागराजने कहा हम देवता हैं। हमारे इष्टदेव भगवान् शकर हैं, वे आशुतोप हैं एव सब कुछ देनेमे समर्थ हैं। नागराजने आराधना करके भगवान् शकरको प्रसन्न कर लिया। भगवान् शकरने कहा—'नागराज! वर माँगो।' नागराजने कहा—प्रभो! मदालसा मुझे पुत्रीरूपम प्राप्त हो जाय, वह जिस अवस्थामे मृत्युको प्राप्त हुई है, उसी अवस्था गुण, रूप और स्वभावसहित पुन उत्पन्न हो जाय। भगवान् शकरने कहा कि पितराका श्राद्ध करके मध्यम पिण्डको खा लेना इससे तुम्हारे मध्यम फणसे मदालसा प्रकट हो जायगी। ऐसा ही हुआ। मदालसा पुन उसी अवस्था रूप, गुण और स्वभावसहित उत्पन्न हो गयी।

नागराजने अपने पुत्रासे कहा कि जाकर युवराजको ले आओ और मदालसाका अपनी बहिनकी भाँति युवराजसे विवाह कर दो। यह एक ऐसी घटना घटी, जिससे युवराज और मदालसा ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्रजामे आनन्दकी लहर दौड गयी। राजा शत्रुजित्ने ऋतध्वजको राजा बनाकर स्वय वनमे तपस्याहेतु प्रस्थान किया।

मदालसाने उत्पत्तिके समयसे ही अपने तीना पुत्राको ब्रह्मानन्दम लगा दिया वे ससारचिन्तनसे मुक्त थे और पतिकी इच्छाके अनुरूप चौथे पुत्रम राजनीतिके सस्कार डालने शुरू किये। फल यह निकला कि चौथा पुत्र अलर्क विश्वका एक श्रेष्ठ शासक बन गया, लेकिन ब्रह्मनिष्ठा मदालसा यह चाहती थी कि चौथे वयसमे इसे भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाय इसलिये उसे एक अँगूठी दी और उससे कहा कि जब तुम घोर विपत्तिमे पडना ता इसे खोलकर देखना। उसमे लिखा था कि घोर विपत्तिम किसी महापुरुपका

आश्रय लो। अलर्कके भाई भी चाहते थे कि यह केवल दुनियाका एक श्रेष्ठ शासक बनकर ही न रह जाय अपितु अपने मनुष्य-जीवनको सफल करे। अलर्कके सौभाग्यसे उसे महापुरुपके रूपम जगद्गुरु दत्तात्रेय मिले और उसका भी मानवजीवन सफल हा गया।

उपर्युक्त कथासे स्पष्ट हो जाता है कि शिशुके जन्मके दिनसे ही सस्कार दने प्रारम्भ करने चाहिये। ये सस्कार अमिट हो जाते हैं। इस प्रकार हम चाहें तो अपने बालकको ब्रह्मनिष्ठ बना द और चाह तो श्रेष्ठ शासक बना द। (ला०वि०मि०)

~~o~~

'सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते'

(श्री बी०के० कुमावत)

मनुस्मृतिमे कहा गया है कि दस उपाध्यायासे बढकर एक आचार्य होता है, सौ आचार्योसे बढकर एक पिता होता है और एक हजार पिताओसे बढकर एक माता होती है—

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणा शत पिता।
सहस्त्र तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

(मनु० २।१४५)

माताको ससारका सबसे प्रथम एव सबसे बडा विश्वविद्यालय माना गया है। सन्तानको जो शिक्षा और सस्कार माता देती है, वह कोई भी सस्था या विश्वविद्यालय नहीं दे सकता। माताके गर्भसे यह शिक्षण प्रारम्भ हो जाता है और निरन्तर जारी रहता है। हमारे शास्त्रोमे अनेक प्रमाण मिलते हैं कि माताद्वारा दी गयी शिक्षासे सन्तानको अद्वितीय उपलब्धियाँ मिली हैं। वीर अभिमन्युने माताके गर्भमे ही चक्रव्यूहभेदनकी विद्या सीख ली थी। माता कौसल्याने अपने पुत्र रामको मर्यादापुरुषोत्तम राम बना दिया, जिनके शीलका उदाहरण सर्वत्र दिया जाता है और जिनके राज्यका आदर्श राज्य निरूपित किया जाता है। शुकदेव मुनिका तो सारा ज्ञान माताके गर्भमे ही प्राप्त हो चुका था और गर्भसे बाहर आते ही वे सच्चे विरागी एव ज्ञानी होकर घरसे चल दिये थे। अष्टावक्रजीने वेदोका सारा ज्ञान अपनी माताके गर्भमे ही प्राप्त कर लिया था। आशय यह है कि सन्तानके निर्माणमे—सस्काराके सृजनमे माताकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

श्रीरामचरितमानसमे माताके उपदेशका बडा मार्मिक प्रसङ्ग आया है। माता सुमित्राके पास लक्ष्मण वनगमनके लिये अनुमति प्राप्त करने जाते हैं, क्योकि भाईकी स्वीकृति मिल चुकी थी। माता सुमित्राने सारी घटना सुनकर लक्ष्मणजीको श्रीराम-जानकीजीके साथ वन-गमनकी सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी तथा जो उपदेश पुत्र लक्ष्मणको दिया, वह हमारे आध्यात्मिक एव भौतिक जीवनकी सार्थकताकी कुञ्जी है। गोस्वामी तुलसीदासजीने उसका वर्णन निम्न पक्तियामे किया है—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

(रा०च०मा० २।७५।५-६ ८ छद)

माता सुमित्राका सकेत है कि श्रीराम और सीताका वन-गमन मानवकल्याण एव राष्ट्रोत्थानके लिये हो रहा है। उनका यह अभियान तभी सफल होगा, जब तुम राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह—इनके वशमे स्वप्नमे भी न होकर सब प्रकारके विकारोका परित्याग कर मन, वचन तथा कर्मसे उनकी सेवा करोगे। तुम्हे वहाँ अपने आरामकी चिन्ता नहीं करनी है। तुम वही करना, जिससे श्रीरामजीको वनमे क्लेश न हो। तात्पर्य यह है कि समाज या राष्ट्रकी सेवामे राग, रोष, ईर्ष्या, मद मोह एव अन्य विकार बाधक होते हैं। इनसे बचे रहनेपर ही सच्ची सेवा हो सकती है। रागके वशमे न होनेका भाव यह है कि श्रीसीतारामजीको छोडकर अन्य किसीसे प्रेम न करना और माता-पिता, भाई पत्नी इत्यादि सबकी ओरसे प्रेम हटाकर इनके ही चरणोमे प्रेम रखना अर्थात् अन्य सबको मनसे भुला देना। रोषके वशमे न होनेका भाव यह है कि ये जो आज्ञा दे वह यदि तुम्हारे मनके अनुकूल न भी हो तो भी कदापि रुष्ट न होना। ईर्ष्याके वशमे न होनेका भाव यह है कि कभी भी किसी कारणसे यह बात चित्तमे न आने पाये कि ये भी राजकुमार हैं और हम भी राजकुमार—दोनो बराबर हैं, हम सेवा क्यो करे? मदके वशमे न होनेका भाव यह है कि जाति विद्या, बल इत्यादिका गर्व न हो। यह विचार कदापि न आये कि मुझे छोडकर इनका कौन सेवक या रक्षक है। मोहके वशमें न होनेका भाव यह है कि तुम घरका मोह मत करना। इनके स्वरूप और अपने स्वरूपको न भुला देना। माता

सुमित्राने यह बात बल देकर कही कि उनकी सेवा करते समय तुम्हारा मन, कर्म तथा वचन शुद्ध रहे। मनकी सवा यह है कि सेवाके समयका बराबर ध्यान रहे। वचनकी बात यह है कि मनकी बात जानकर अनुकूल आज्ञा माँगना तथा उसका परिपालन करना। सदा प्रिय, मधुर तथा कोमल वचन बोलना। कर्मसे सेवाका भाव यह है कि कैंकर्यम सदा तत्पर रहना। *'जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू'* का आशय यह है कि श्रीराम-जानकीजीको किसी प्रकारका क्लेश-असुविधा न हो। पर्णकुटी, भोजन पुष्पशय्या, वन्य-जीवासे रक्षा इत्यादिकी उपयुक्त व्यवस्था करना। माता सुमित्राकी इस शिक्षामे दो बार उपदेश शब्दका उल्लेख हुआ है। एक बार तो क्लेश दूर करनेके लिये कहा गया है तथा दूसरी बार श्रीराम-जानकीजीको सुख देनेके लिय कहा गया है। सुख भी ऐसा देना कि उन्ह माता-पिता परिवार नगर-सुख आदिकी याद न आये। शिक्षाके साथ पुत्र लक्ष्मणको माता सुमित्राने आशीर्वाद भी दिया कि भगवान् श्रीरामक चरणोंम अविरल (निरन्तर) तथा अमल (शुद्ध) प्रेम तुम्हे प्राप्त होगा। इस प्रेमम कभी स्वार्थका मैल नहीं आयेगा तथा यह नवनवोन्मेप-युक्त होगा।

माता सुमित्राको कितना खयाल है कि श्रीरामजीको दु ख न हो। यह बात गीतावलीमे भलीभाँति स्पष्ट होती है। अपने पुत्र लक्ष्मणको शक्तिबाण लगनेका शोक उनको नहीं है अपितु यह शोक है कि राम अकेले हैं। वे अपने दूसरे पुत्र शत्रुघ्नको कहती हैं—जाओ, तुम श्रीरामजीकी सेवा करो—

सुनि रन घायल लषन परे है।
स्वामिकाज सग्राम सुभटसो लोहे ललकारि लरे है॥
सुवन-सोक सतोप सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे है।
छिन-छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपिसो कहति सुभाय अबके अबक अबु भरे है।
रघुनदन बिनु बधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे है॥
'तात! जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खर है।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढर हैं॥
अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे है॥

(गीतावली ६।१३)

मानसकी सुमित्राजीके समान माताका चरित्र अन्य किसी ग्रन्थमे तो क्या किसी अन्य देश या भापामे मिलना असम्भव है। सुमित्राजीके हृदयका पुत्र-विरहका स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्हाने अपने रामभक्त पुत्रको चौदह वर्पके वनवासके लिये जाते समय भी हृदयसे नहीं लगाया। धन्य धन्य भक्तजननी और उसका **'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'** अन्त करण। ऐसी माताका पुत्र भी कसौटीपर खरा उतरता है। पुत्रने माताके उपदेशका अक्षरश परिपालन किया। जब माताने यह कहा *'जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू'* तो लक्ष्मणजीनें विचार किया कि जाग्रत् अवस्थाम तो राग, रोप ईर्ष्या मद, मोह आदि विकारोपर नियन्त्रण रखा जा सकता है किंतु कदाचित् स्वप्रमे इनके वशीभूत हा गया तो माताके आदेशका उल्लघन हो जायगा अत उन्हाने यह सङ्कल्प लिया कि मैं चौदह वर्पतक सोऊँगा ही नहीं अर्थात् निद्रा नहीं आने दूँगा। जब सोना नहीं होगा तो स्वप्न *भी नहीं आयेगा और माताकी आज्ञाका उल्लघन भी* नहीं होगा। लक्ष्मणजी चौदह वर्पतक सोये नहीं। सेवाके इस कठोर व्रतके पालनका ही फल था कि वे इन्द्रको जीत लेनेवाले महान् योद्धा रावण-पुत्र मेघनादका रणभूमिमें पराजित करनेम सफल हुए।

पुत्र लक्ष्मणको माता सुमित्राद्वारा दी गयी शिक्षा समाज तथा राष्ट्रकी सेवा करनेवाले व्यक्तिके लिये एक सच्ची शिक्षा है। अपने निजी स्वार्थका परित्याग कर निजी सुख-सुविधाकी चिन्ता किये बिना परहितचिन्तनमें सदैव सचेष्ट रहना चाहिये। माताकी दी हुई सस्कार-शिक्षा शिशुके अन्त करणमे प्रविष्ट होकर उसके जीवनको तथैव गतिशील बनाती है। माता मदालसाने तो अपने पुत्रोको लोरी सुनाते हुए एसी सस्कार-शिक्षा प्रदान की कि वे बचपनमे ही अध्यात्म-मार्गके पथिक बन गये।

आचार्य वैशम्पायन और महर्षि याज्ञवल्क्य

महामुनि वैशम्पायनजी वेदाके आचार्य थे। उनके यहाँ बहुत-से छात्र वेदाध्ययन करते थे। याज्ञवल्क्यजी भी इनके ही समीप पढते थे। याज्ञवल्क्यजी इनकी बहिनके लडके थे और मिथिलापुरीमे रहते थे। एक बार समस्त ऋषियाने मिलकर मेरुके समीप एक सभा स्थापित की। उस सभामे यह नियम था कि निश्चित तिथिको जो ऋषि उस सभामे उपस्थित न होगा उसे सात दिनतक वाचिक ब्रह्महत्याका पातक लगेगा। इस नियमके अनुसार सब ऋषि वहाँ उपस्थित होते थे। एक बार उसी तिथिका वेशम्पायनजीके पिताका श्राद्ध था, उन्हाने सोचा—'श्राद्ध तो आवश्यक है, इसका प्रायश्चित्त सब विद्यार्थी मिलकर कर लगे।' तदनुसार वे सभामे नहीं गये। नियमानुसार उन्हे वाचिक ब्रह्महत्याका पाप लगा। उन्हाने अपने समस्त विद्यार्थियासे कहा—'तुम सब मिलकर इस अपराधका प्रायश्चित्त कर लो।' याज्ञवल्क्यजीने कहा—'अभी ये सब छात्र छोटे हैं, ये सब क्या प्रायश्चित्त करगे? सबके बदलेका मैं ही कर लूँगा।' वैशम्पायनजीने बहुत कहा—'नहीं भाई सबको मिलकर ही करना चाहिये।' किंतु याज्ञवल्क्यजी हठ पकड गये कि नहीं, मैं अकेला ही करूँगा। तब गुरुको कुछ क्रोध आया और उन्होंने कहा—'तू बडा अभिमानी है, अत मेरे द्वारा पढी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दे।' गुरुकी आज्ञा पाकर याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमे वे सब ऋचाएँ उगल दीं। उन्हे शिष्योंने तित्तिर (तीतर) बनकर ग्रहण कर लिया वही यजुर्वेदमे कृष्णयजु के नामसे प्रसिद्ध शाखा हुई। इसीसे कृष्णयजु और शुक्लयजु —ये दो भेद हुए। उस शाखाके पढनेवाले ब्राह्मण तैत्तिरीय कहलाये।

तब याज्ञवल्क्यजीने निश्चय किया कि अब कभी किसी मनुष्यको गुरु नहीं बनाऊँगा। यह निश्चय करके वे सूर्यभगवान्की आराधना करने लगे। सूर्यभगवान्ने अश्वका रूप धारण करके उन्हे उपदेश दिया वही 'माध्यन्दिन वाजसनेय'के नामसे शाखा प्रसिद्ध हुई।

इनकी दो स्त्रियाँ थीं मैत्रेयी और कात्यायनी। मैत्रेयीने भगवान् याज्ञवल्क्यसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके परमपद प्राप्त किया और दूसरी भरद्वाजकी कन्या कात्यायनीसे चन्द्रकान्त महामेघ विजय नामक तीन पुत्र हुए।

भगवान् याज्ञवल्क्य कर्मकाण्डमे बडे ही प्रवीण थे। इन्होने बडे-बडे यज्ञ कराये और उनमे आचार्य बने। श्रोत्रिय होनके साथ-ही-साथ ये ब्रह्मनिष्ठ भी थे। एक बार महाराज जनककी इच्छा हुई कि हम किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरुसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करे। सर्वोत्तम ब्रह्मनिष्ठ ऋषिकी परीक्षा करनेके लिये उन्हाने एक युक्ति सोची। समस्त बडे-बडे ऋषियोको उन्होने बुलाया और सभामे बछडेसहित हजार सुवर्णकी गौएँ खडी कर दीं। तदनन्तर उन्हाने समस्त ऋषियोंके सामने घोषणा की—जो कोई ब्रह्मनिष्ठ हो, वे इन गौओको सजीव बनाकर ले जायँ। सभीकी इच्छा हुई कि हम ले किंतु 'पहले उठकर हम ऐसा करते हैं तो और लोग समझगे कि ये तो अपने मुँह ही अपनेको ब्रह्मनिष्ठ बताते हैं' ऐसा सोचकर शिष्टाचार और लोकापवादके भयसे कोई भी न उठे। तब याज्ञवल्क्यजीने अपने एक शिष्यसे कहा—'सब गौओको ले चलो।' इसपर उनका समस्त ऋषियासे तथा गार्गीसे शास्त्रार्थ हुआ। उन्होने सभीके प्रश्नोका विधिवत् उत्तर दिया। सभी संतुष्ट हुए। गौएँ भी सजीव हो गयीं। महाराज जनकजीने उनसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की।

याज्ञवल्क्य ब्रह्मज्ञानी, कर्मकाण्डी, स्मृतिकार आदि सभी है। इनके 'याज्ञवल्क्यशिक्षा', 'प्रतिज्ञासूत्र', 'याज्ञवल्क्यस्मृति', 'शतपथब्राह्मण' और 'योगियाज्ञवल्क्य', ये ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्मे इनके शास्त्रार्थका बहुत लम्बा वर्णन है। ब्रह्मवादिनी गार्गीके साथ इनका जो शास्त्रार्थ हुआ, वह बडा ही अपूर्व है।

वैशम्पायनजी कर्मकाण्डके आचार्य होनेके साथ ही भगवल्लीलाओके बडे रसिक थे। महाराज जनकके यज्ञमे इन मामा-भानजोमे कुछ कहासुनी भी हो गयी थी। किंतु उन्हाने जब सूर्यभगवान्से संहिता प्राप्त कर ली तब वैशम्पायनजी परम प्रसन्न हुए और अपने शिष्योको भी उन्हाने याज्ञवल्क्यजीसे वह संहिता पढवायी। इन्हाने अन्तमे घर छोडकर विद्वत्संन्यास ग्रहण कर लिया था। याज्ञवल्क्यके पंद्रह शिष्योके नामासे शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाएँ प्रसिद्ध हुईं।

महर्षि वाल्मीकिका महनीय चरित

[क्षणभरके सत्सङ्गका सस्कार कलुपित जीवनको भी परमोज्ज्वल कर देता है]

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

बहुत प्राचीन बात है, सङ्गदोपसे एक ब्राह्मण क्रूर डाकू बन गया था। जन्मसे ही वह अशिक्षित था। अपने परिवारक पालन-पोपणके लिय उसने वडा घार मार्ग अपनाया। घोर वनसे जानेवाले एक मार्गके समीप उसका अड्डा था। जा भी यात्री उधरसे निकलता, उसे वह मार डालता बिना यह सोचे कि इस हत्यासे उसे लाभ कितना होगा। मृत व्यक्तिके पास जो कुछ मिलता उसे लेकर वह शवको कहीं ठिकाने लगा देता।

वह मार्ग यात्रियोके लिये मृत्यु-द्वार बन गया था। पथिकोकी यह विपत्ति देवर्पि नारदसे दखी नहीं गयी। वे स्वय उसी मार्गसे चल पडे। सदाकी भाँति शस्त्र उठाये डाकू उनपर भी झपटा। देवर्पिको भला भय क्या! उन्हाने कहा—'भाई! तुम व्यर्थ क्या क्रोध करत हो? शस्त्र उठानेस क्या लाभ? मैने तो तुम्हारा कुछ बिगाडा नहीं है। तुम चाहते क्या हो?'

'मैं चाहता हूँ तेरे प्राण तेरी यह तुमडी और वस्त्र तथा तेरे पास कुछ और निकले तो वह भी।' डाकू गरज उठा।

'निरन्तर जीव-हत्याका यह पाप किये बिना भी तो तुम वनके फल-कन्दसे अपना पेट भर सकते हो।' देवर्पिका तेज और उनक स्वरम भरी दया डाकूको स्तम्भित किय दे रह थ।

'किंतु मर माता-पिता स्त्री-पुत्रका पट कौन भरेगा तू?' डाकू अभी क्रूर व्यग्य ही कर रहा था।

'भाई! तुम जिनके लिय नित्य यह पाप करते हा, उनमसे कोई तुम्हार पापका फल भोगनम भाग नहीं लगा! अपने पापका फल तुम्ह अकेल ही भागना होगा।' नारदजीने वडी मृदुतासे कहा।

'यह कैस हा सकता है!' डाकू विचलित हो उठा था। 'जो मर पापसे कमाय धनका सुख भागते हैं, वे मरे पापके फलम भी भाग ता लगे ही।'

'बहुत भाले हो, भाई! पापके फलम कोई भाग नहीं लेगा। तुम्ह मेरी बातका विश्वास न हो तो घर जाकर उन लोगासे पूछ लो।' देवर्पिने बात पूरी कर दी।

'बाबा! तू मुझे मूर्ख बनाना चाहता है। मैं घर पूछने जाऊँ और तू यहाँसे खिसकता बने!' डाकूने फिर शस्त्र सम्हाला।

'तुम मुझ इस पेडके साथ भलीभाँति बाँध दा।' चुपचाप नारदजी स्वय एक पेडसे लगकर खडे हो गये।

अब डाकूको उनकी बात सच्ची लगी। उसने उन्ह पेडके साथ वनका लताआस भलीभाँति बाँध दिया और स्वय शीघ्रतापूर्वक घर पहुँचा। घर जाकर उसने पितासे

पूछा—'पिताजी! आप तो जानते ही हैं कि मैं यात्रियोंकी हत्या करके उनके साथकी सामग्री लाता हूँ और उसीसे परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। मैं जो नित्य यह पाप करता हूँ, उसके फलमे आपका भी तो भाग है न?'

तनिक खाँसकर पिताने उसकी ओर देखा और कहा—'बेटा! हमने तुम्हारा पालन-पोषण किया, तुम्हे छोटेसे बडा किया और अब तुम समर्थ हो गये। हमारी वृद्धावस्था आ गयी। तुम्हारा कर्तव्य है हमारा भरण-पोषण करना। तुम कैसे धन लाते हो, इससे हमे क्या! तुम्हारे पाप-पुण्यमे भला हमारा भाग क्यो होने लगा!'

पहली बार डाकू चौंका। वह माताके पास गया, किंतु माताने भी उसे वही उत्तर दिया जो पिताने दिया था। उसने पत्नीसे पूछा—तो पत्नीने कहा—'स्वामी! मेरा कर्तव्य है आपकी सेवा करना, आपके गुरुजनो तथा परिवारकी सेवा करना। वह अपना कर्तव्य मैं पालन करती हूँ। आपका कर्तव्य है मेरी रक्षा करना और मेरा पोषण करना, वह आप करते हैं। इसके लिये आप कैसे धन लाते है, सो आप जानें। आपके उस पापसे मेरा क्या सम्बन्ध! मैं उसमे क्यो भाग लूँगी!'

डाकू निराश हो गया, फिर भी उसने अपने बालक पुत्रसे अन्तमे पूछा। बालकने और स्पष्ट उत्तर दिया—'मैं छोटा हूँ, असमर्थ हूँ, अतः आप मेरा भरण-पोषण करते हैं। मैं समर्थ हो जाऊँगा तब आप वृद्ध और असमर्थ हो जायँगे। उस समय मैं आपका भरण-पोषण करूँगा और अवश्य करूँगा। यह तो परस्पर सहायताकी बात है। आपके पापको आप जानें, मैं उसमे कोई भाग लेना नहीं चाहता, न लूँगा।'

डाकूके नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया। जिनके लिये वह इतने पाप कर चुका, वे कोई उस पापका दारुण फल भोगनेमे उसके साथ नहीं रहना चाहते। पश्चात्तापसे जलने लगा उसका हृदय। दौडा वह वनकी ओर। वहाँ पहुँचकर देवर्षिके बन्धनकी लताएँ उसने तोड फेंकीं और क्रन्दन करता उनके चरणोंपर गिर पडा।

'तुम राम-नामका जप करो।' देवर्षिने प्रायश्चित्त बतलाया। किंतु उस निष्ठुरहृदयकी पाप-कलुषित वाणी यह दिव्य नाम सीधा होनेपर भी उच्चारण करनेमे समर्थ नहीं हुई। देवर्षि हारना नहीं जानते, वे जिसे मिल जायँ, वह भगवान्के चरणोंसे दूर बना रहे—यह शक्य नहीं। उन्होने कहा—'चिन्ता नहीं, तुम 'मरा-मरा' ही जपो।'

डाकू वहीं बैठ गया। उसे पता नहीं कि उसके उपदेष्टा कब चले गये। उसकी वाणी लग गयी जपमे—मरा मरा मरा मरा... दिन सप्ताह, महीने और वर्ष बीतते चले गये, किंतु डाकूको कुछ पता नहीं था। उसके शरीरमे दीमक लग गयी, दीमकोंकी पूरी बाँबी (वल्मीक) बन गयी उसके ऊपर।'

डाकूके तपने सृष्टिकर्ताको आश्चर्यमे डाल दिया। वे हंसवाहन स्वयं पधारे वहाँ और अपने कमण्डलुके अमृत-जलसे उन्होने उस तपस्वीपर छींटे दिये। उन जल-सीकरोंके प्रभावसे उस दीमकोंके वल्मीकसे जो पुरुष निकल खडा हुआ, वह अब पूरा बदल चुका था। उसका रूप, रंग, शरीर और हृदय सब दिव्य हो चुका था।

संसार ठीक नहीं जानता कि डाकूका नाम क्या था? कोई-कोई उसे रत्नाकर कहते हैं। किंतु वह जो तपस्वी उठा, वल्मीकसे निकलनेके कारण उसे 'वाल्मीकि' कहा गया। वह आदिकवि, भगवान् श्रीरामके निर्मल यशका प्रथम गायक—विश्व उसकी वन्दना करके आज भी कृतार्थ होता है। रहा होगा वह कभी अज्ञातनामा क्रूर डाकू, किंतु एक क्षणके सत्सङ्गने उसे महत्तम जो बना दिया।

'रघुपति बिपति-दवन'

रघुपति बिपति-दवन।
परम कृपालु, प्रनत-प्रतिपालक, पतित-पवन॥
कूर, कुटिल, कुलहीन, दीन, अति मलिन जवन।
सुमिरत नाम राम पठये सब अपने भवन॥
गज-पिंगला-अजामिल-से खल गनै धौं कवन।
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन॥

(विनय-पत्रिका २१२)

गुरुभक्त आरुणि या उद्दालक

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर ।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नम ॥*

जीवनमे किसीपर श्रद्धा हो, किसीपर भी पूर्ण विश्वास हो तो बस बेडा पार ही समझा। किसीके वचनको माननेकी इच्छा हो आज्ञापालनकी दृढता हा तो उसके लिय जावनमे कौन-सा काम दुर्लभ है। सबसे अधिक श्रद्धेय सबसे अधिक विश्वसनीय सबसे अधिक प्रेमास्पद श्रीगुरु भगवान् ही हैं, जो निरन्तर शिष्यका अज्ञान दूर करनेके लिय मनसे चेष्टा करते रहते हैं। गुरुके बराबर दयालु, उनके बराबर हितैषी जगत्‌म कौन हागा। जिन्हाने भी कुछ प्राप्त किया है गुरुकृपासे ही प्राप्त किया है।

प्राचीन कालमे आजकी भाँति विद्यालय हाईस्कूल और पाठशालाएँ तथा कॉलेज नहीं थे। विद्वान्, तपस्वी गुरु जगलामे रहते थ, वहीं शिष्य पहुँच जाते थे। वहाँ भी कोई नियमसे कॉपी-पुस्तक लेकर चार-छ घण्ट पढाई नहीं होती थी। गुरु अपने शिष्याको काम सौंप देते थे, स्वय भी काम करते थे। काम करते-करते बातो-ही-बाताम वे अनेक प्रकारकी शिक्षा दे देते थे और किसीपर गुरुकी परम कृपा हो गयी तो उसे स्वय ही सब विद्याएँ आ जाती थीं।

ऐसे ही एक आयोद धौम्य नामक ऋषि थे। उनके यहाँ आरुणि उपमन्यु और वेद नामके तान विद्यार्थी पढते थे। धौम्य ऋषि बडे परिश्रमी थे वे विद्यार्थियासे खूब काम लते थ। किंतु उनके विद्यार्थी भी इतने गुरभक्त थे कि गुरुजी जो भी आज्ञा देते उसका पालन वे बडी तत्परताके साथ करते। कभी उनकी आज्ञाका उल्लघन नहीं करते। हमारा खयाल है कि उनके कड शासनके ही कारण अधिक विद्यार्थी उनके यहाँ नहीं आये। जो आय वे तपानेपर खरा सोना बनकर ही गय। तीनो ही विद्यार्थी आदर्श गुरुभक्त छात्र निकले।

एक दिन खूब वर्षा हो रही थी गुरुजान पाञ्चालदेशके आरुणिसे कहा—'बेटा आरुणि। तुम अभी चले जाआ और वर्षाम ही खतका मेड बाँध आआ जिससे वर्षाका पानी खेतके बाहर न निकलने पाये। सब पानी बाहर निकल जायगा तो फसल अच्छी न होगी। पानी खेतम ही सूखना चाहिये।'

गुरकी आज्ञा पाकर आरुणि खेतपर गया। मूसलाधार पानी पड रहा था। खतम खूब पानी भरा था एक जगह बडी ऊँची मेड थी। वह मड पानीक वगस बहुत कट गया था। पानी उसमसे बडी तेजीक साथ निकल रहा था। आरुणिन फावडीसे इधर-उधरकी बहुत-सी मिट्टा लेकर उस कटी हुई मेडपर रखी। जबतक वह मिट्टी रखता और दूसरी मिट्टी रखनके लिये लाता तबतक पहली मिट्टी बह जाती। उसन जी ताडकर परिश्रम किया, किंतु जलका वेग इतना तीव्र था कि वह पानीको रोक न सका। तब उसे बडी चिन्ता हुई। उसने सोचा—गुरुकी आज्ञा है कि पानी खतस निकलने न पावे और पानी निरन्तर निकल रहा है। अत उसे एक बात सूझी। फावडेको रखकर वह कटी हुई मेडकी जगह स्वय लेट गया। उसके लटनेसे पानी रुक गया। थाडी देरम वर्षा भी बद हो गयी किंतु खेतम पानी भरा हुआ था। वह यदि उठता है ता सब पानी निकल जाता है अत वह वहीं चुपचाप पानी रोके पडा रहा। वहाँ पड-पडे उसे रात्रि हो गयी।

अन्त करणसे सदा भलाईम निरत रहनेवाले गुरुने शामको अपने सब शिष्याको बुलाया उनम आरुणि नहीं था। गुरुजीने सबसे पूछा—'आरणि कहाँ गया?' शिष्याने कहा—'भगवन्। आपने ही तो उसे प्रात खेतकी मेड बनाने भेजा था।' गुरुने साचा—'ओहो। प्रात कालसे अभीतक नहीं आया? चला चल, उसका पता लगावे।' यह कहकर वे शिष्याके साथ प्रकाश लकर आरुणिकी खाजमे चल। उन्हाने इधर-उधर बहुत ढूँढा किंतु आरुणि कहीं दीखा ही नहीं। तब गुरुजीने जारासे आवाज दी—'बेटा आरुणि। तुम कहाँ हो? हम तुम्हारी खोज कर रहे हैं।' दूरमे आरुणिन पडे-ही-पडे आवाज दी—'गुरुजी। मैं यहाँ मेड बना हुआ पडा हूँ।'

* गुरु ही ब्रह्मा गुरु ही विष्णु गुरु हा महेश्वर हैं और गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं उन गुरुका नमस्कार है।

आवाजके सहारे-सहारे गुरुजी वहाँ पहुँचे। उन्हाने जाकर देखा कि आरुणि सचमुच मेड बना हुआ पडा है और पानीको रोके हुए है। गुरुने कहा—'बेटा! अब तुम निकल आओ।' गुरुजीकी आज्ञा पाकर आरुणि मेडको काटकर निकल आया, गुरुजीका हृदय भर आया। उन्होने अपने प्यारे शिष्यको छातीसे चिपटा लिया। प्रेमसे उसका माथा सूँघा और आशीर्वाद दिया—'बेटा! मैं तुम्हारी गुरुभक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हे बिना पढे ही सब विद्या आ जायगी। तुम जगत्मे यशस्वी और भगवद्भक्त होगे। आज से तुम्हारा नाम उद्दालक हुआ।' वे ही आरुणि मुनि उद्दालकके नामसे प्रसिद्ध हुए, जिनका सवाद उपनिषदोमे आता है।

त्यागमूर्ति महर्षि दधीचि

'परोपकाराय सता विभूतय ।'*

एक बारकी बात है, देवराज इन्द्र अपनी सभाम बैठे थे। उन्हे अभिमान हो आया कि हम तीना लाकोंके स्वामी हैं। ब्राह्मण हमे यज्ञम आहुति देते हैं, देवता हमारी उपासना करते हैं। फिर हम सामान्य ब्राह्मण बृहस्पतिजीसे इतना क्यो डरते हैं ? उनके आनेपर खडे क्या हो जाते हैं, वे तो हमारी जीविकासे पलते हैं। ऐसा सोचकर वे सिहासनपर डटकर बैठ गये। भगवान् बृहस्पतिके आनेपर न तो वे स्वय उठे, न सभासदोको उठने दिया। देवगुरु बृहस्पतिजी इन्द्रका यह औद्धत्य देखकर लौट गये और कहीं एकान्तमे जाकर छिप गये।

थोडी देरके पश्चात् देवराजका मद उतर गया, उन्हे अपनी गलती मालूम हुई। वे अपने कृत्यपर बडा पश्चात्ताप करने लगे, दौडे-दौडे गुरुके यहाँ आये, किंतु गुरुजी तो पहले ही चले गये थे, निराश होकर इन्द्र लौट आये। गुरुके बिना यज्ञ कौन कराये! यज्ञके बिना दवता शक्तिहीन हो गये। असुरोंको यह बात मालूम हो गयी उन्होने अपने गुरु शुक्राचार्यकी सम्मतिसे देवताओपर चढाई कर दी। इन्द्रको स्वर्ग छोडकर भागना पडा, स्वर्गपर असुरोका अधिकार हो गया। पराजित देवताओको लेकर इन्द्र भगवान् ब्रह्माजीके पास गये अपना सब हाल सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—'त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको अपना पुरोहित बनाकर काम चलाओ।' देवताओने ऐसा ही किया। विश्वरूप बडे विद्वान्, वेदज्ञ और सदाचारी थे, किंतु इनकी माता असुर कुलकी थी, इससे ये देवताओसे छिपाकर असुरोको भी कभी-कभी भाग दे देते थे। इससे असुरोके बलकी वृद्धि होने लगी।

इन्द्रको इस बातका पता चला, उन्हे दूसरा कोई उपाय ही न सूझा। एक दिन विश्वरूप एकान्तमे बैठे वेदाध्ययन कर रहे थे कि इन्द्रने पीछेसे जाकर उनका सिर काट लिया। इसपर उन्हे ब्रह्महत्या लगी। जिस किसी प्रकार गुरु बृहस्पतिजी प्रसन्न हुए। उन्होनें यज्ञ आदि कराके ब्रह्महत्याको पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियाम बाँट दिया। इन्द्रका फिरसे स्वर्गपर अधिकार हो गया।

इधर त्वष्टा ऋषिने जब सुना कि इन्द्रने मेरे पुत्रको मार दिया है तो उन्हे बडा दु ख हुआ। अपने तपके प्रभावसे उन्होने उसी समय इन्द्रको मारनेकी इच्छासे एक बडे भारी बली पुत्र वृत्रासुरको उत्पन्न किया। वृत्रासुरके पराक्रमसे सम्पूर्ण त्रैलोक्य भयभीत था। उसके ऐसे पराक्रमको देखकर देवराज भी डर गये, वे दौडे-दौडे ब्रह्माजीके पास गये। सब हाल सुनाकर उन्होने ब्रह्माजीसे वृत्रासुरके कोपसे बचनेका कोई उपाय पूछा। ब्रह्माजीने कहा—'देवराज! तुम किसी प्रकार वृत्रासुरसे बच नहीं सकते। वह बडा बली, तपस्वी और भगवद्भक्त है। उसे मारनेका एक ही उपाय है कि नैमिषारण्यमे एक महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं। उग्र तपके प्रभावसे इनकी हड्डियाँ वज्रसे भी अधिक मजबूत हो गयी हैं। यदि परोपकारकी इच्छास वह अपनी हड्डी दे द और उनसे तुम वज्र बनाओ तो वृत्रासुर मर सकता है।'

ब्रह्माजीकी सलाह मानकर देवराज समस्त देवताआके

* सज्जनोकी सम्पूर्ण विभूति परोपकारके लिय होती है।

साथ नेमिषारण्यमे पहुँचे। उग्र तपस्यामे लगे हुए भगवान् दधीचिकी उन्हान भाँति-भाँतिसे स्तुति की। तब ऋषिन

उनसे वरदान माँगनेके लिये कहा। इन्द्रने हाथ जोडकर कहा—'त्रैलोक्यकी मङ्गलकामनाके निमित्त आप अपनी हड्डी हम दे दीजिये।'

महर्षि दधीचिने कहा—'देवराज! समस्त देहधारियाको अपना शरीर प्यारा होता है, स्वेच्छासे इस शरीरको जीवित अवस्थामे छोडना बडा कठिन होता है कितु त्रैलाक्यकी मङ्गलकामनाके निमित्त मैं इस कामको भी करूँगा। मेरी इच्छा तीर्थ करनेकी थी।'

इन्द्रने कहा—'ब्रह्मन्! समस्त तीर्थोको मैं यहीं बुलाये देता हूँ।' यह कहकर देवराजने समस्त तीर्थोको नैमिषारण्यमे बुलाया। सभीने ऋषिकी स्तुति की। ऋषिने सबमे स्नान, आचमन आदि किया और वे समाधिमे बैठ गये। जगली गौने उनके शरीरका अपनी काँटेदार जीभसे चाटना आरम्भ किया। चाटते-चाटते चमडी उड गयी। तब इन्द्रने उनकी तप पूत रीढकी हड्डी निकाल ली, उससे एक महान् शक्तिशाली तेजोमय दिव्य वज्र बनाया गया और उसी वज्रकी सहायतासे देवराज इन्द्रने वृत्रासुरको मारकर त्रिलोकीके सकटको दूर किया। इस प्रकार एक महान् परोपकारी ऋषिके अद्वितीय त्यागके कारण देवराज इन्द्र बच गये और तीना लोक सुखी हुए।

ससारके इतिहासमे ऐसे उदाहरण बहुत थोडे मिलेगे, जिनमे स्वेच्छासे केवल परोपकारके ही निमित्त—जिसमे मान, प्रतिष्ठा आदि अपना निजी स्वार्थ कुछ भी न हो—अपने शरीरको हँसते-हँसते एक याचकको सौंप दिया गया हो। इसलिये भगवान् दधीचिका यह त्याग परोपकारी सताके लिये एक परम आदर्श है।

दधीचि ऋषिकी और भी विशेषता देखिये। अश्विनीकुमारोको ब्रह्मविद्याका उपदश देनेके कारण इन्द्रने इनका मस्तक उतार लिया था। फिर अश्विनीकुमारोंने इनके धडपर घोडेका सिर चढा दिया और इससे इनका नाम अश्वशिरा विख्यात हुआ था। जिस इन्द्रने इनके साथ इतना दुष्ट बर्ताव किया था उसी इन्द्रकी सहायता महर्षिने अपनी हड्डी देकर की। सतोकी उदारता ऐसी ही होती है। वज्र बननेके बाद जो हड्डियाँ बची थीं उन्हींसे शिवजीका पिनाकधनुष बना था। दधीचि ब्रह्माजीके पुत्र अथर्वा ऋषिके पुत्र थे। साभ्रमती और चन्द्रभागाके सगमपर इनका आश्रम था।

~~o~~

मुक्त कौन होता है ?

सर्वमित्र सर्वसह शम रक्तो जितेन्द्रिय । व्यपेतभयमन्युश्च आत्मवान् मुच्यते नर ॥
आत्मवत् सर्वभूतेषु यश्चरेन्नियत शुचि । अमानी निरभीमान सर्वतो मुक्त एव स ॥
जीवित मरण चोभे सुखदु खे तथैव च। लाभालाभे प्रियद्वेष्ये य सम स च मुच्यते॥

(महाभारत आश्व० १९। २—४)

जो सबका मित्र सब कुछ सहनेवाला मनोनिग्रहम तत्पर, जितेन्द्रिय भय और क्रोधस रहित तथा आत्मवान् है, वह मनुष्य बन्धनस मुक्त हो जाता है। जो नियमपरायण और पवित्र रह कर सब प्राणियाक प्रति अपन-जैसा बर्ताव करता है जिसके भातर सम्मान पानेकी इच्छा नहीं है तथा जो अभिमानसे दूर रहता है वह सर्वथा मुक्त ही है। जो जीवन-मरण सुख-दु ख लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रिय आदि द्वन्द्वाका समभावसे दखता है, वह मुक्त हो जाता है।

~~o~~

महात्मा गोकर्ण

पूर्वकालमे दक्षिण भारतकी तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक सुन्दर नगरी थी। वहाँ आत्मदेव नामक एक सदाचारी विद्वान् तथा धनवान् ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। वह बडी कलहकारिणी थी। उस ब्राह्मण-दम्पतीको सब प्रकारके सासारिक सुख प्राप्त होनेपर भी सन्तानका अभाव बहुत खटकता था। उन्होने सन्तानके निमित्त बहुत-से उद्योग किये, परतु सब निष्फल। एक दिन इसी चिन्तामे ब्राह्मण घरसे निकल पडा और वनमे जाकर एक तालाबके किनारे बैठ गया। वहाँ उसे एक सन्यासी महात्माके दर्शन हुए। ब्राह्मणने उनसे अपने दु खका वृत्तान्त कहा। महात्माको ब्राह्मणपर बडी दया आयी। उन्हाने उसके ललाटपर लिखी हुई विधाताकी लिपिको बाँचकर कहा—'हे ब्राह्मण! तुम्हारे प्रारब्धमे सात जन्मतक सन्ततिका योग नहीं है। अत तुम्हें सन्तानकी चिन्ता छोडकर भगवान्मे मन लगाना चाहिये।' परतु ब्राह्मणको महात्माके वचनोसे सन्तोष नहीं हुआ। वह बोला—'महाराज! मुझे आपका ज्ञान नहीं चाहिये, मुझे तो सन्तान दीजिये, नहीं तो मैं अभी आपके सामने प्राणत्याग करता हूँ।' ब्राह्मणके इस हठको देखकर महात्माने कहा—'तुम्हारा इस प्रकार हठ करना ठीक नहीं है। विधाताके लेखके विरुद्ध पुत्र प्राप्त होनेसे भी तुम्हे सुख न होगा। किंतु फिर भी तुम न मानो तो यह फल ले जाओ। इसे तुम घर ले जाकर अपनी स्त्रीको खिला दो, इससे तुम्हे पुत्र होगा। परतु तुम्हारी स्त्रीको चाहिये कि वह पुत्र उत्पन्न होनेके समयतक पवित्रतासे रहे, सत्य बाले, दान करे और एक समय खाकर जीवन निर्वाह करे। इससे तुम्हे अच्छी सन्तान होगी।' यह कहकर ब्राह्मणको उन्होने एक फल दिया।

ब्राह्मणने ले जाकर फल अपनी स्त्रीको दे दिया। उसकी स्त्रीने सोचा—'फल खानेसे मुझे नियमपूर्वक रहना पडेगा आर गर्भधारणसे भी कष्ट होगा और पुत्र उत्पन्न हो जानेपर उसके लालन-पालनमे बडे कष्टोका सामना करना पडेगा। इससे तो बाँझ रहना ही अच्छा है।' यह सोचकर उसने फल अपनी गौको खिला दिया ओर पतिसे झूठमूठ कह दिया कि मैंने फल खा लिया। उन्हीं दिनो उसकी छोटी बहिन गर्भवती हुई। धुन्धुलीने उसके साथ यह तय कर लिया कि जो सन्तान उसे होगी उसे लाकर वह धुन्धुलीको दे देगी। समय आनेपर धुन्धुलीकी बहिनके एक पुत्र हुआ और उसने उसे लाकर धुन्धुलीको द दिया। लोकमे यह प्रसिद्ध कर दिया गया कि धुन्धुलीके पुत्र हुआ है और उसका नाम धुन्धुकारी रखा गया।

तीन मासके अनन्तर गौको भी एक बालक उत्पन्न हुआ। उसके सभी अवयव मनुष्यके-से थे, केवल उसके कान गौके-से थे। इसीलिये उसका नाम गोकर्ण रखा गया।

यही हमारे चरित्रनायक हैं। गोकर्ण देखनेमे बडे सुन्दर, तेजस्वी और बुद्धिमान् थे। ये थोडी ही अवस्थामे बडे विद्वान् और ज्ञानी हो गये। इधर धुन्धुकारी बडा दुश्चरित्र, आचारहीन, क्रोधी, चोर, निर्दयी और वेश्यागामी निकला। वह माता-पिताको भी बहुत दु ख देने लगा और उनका सब धन अपहरण कर वेश्याओको दे आता। आत्मदेव उसके बर्तावसे बहुत दु खी होकर रोने लग। तब गोकर्णने उन्हे समझाया और ज्ञानका उपदेश दिया। पुत्रके उपदेशसे प्रभावित हो वह वृद्ध ब्राह्मण घरसे निकल पडा और वनमे जाकर भगवान् श्रीहरिके परायण हो उसन शरीर त्याग दिया।

पिताके चल जानेपर धुन्धुकारीने उनका सारा धन नष्ट कर दिया और अपनी माताका बहुत सताने लगा जिससे दु खी

होकर उसने कुएँमे गिरकर प्राण त्याग दिये। गोकर्णने भी अब घरमे रहना उचित नहीं समझा और वे तीर्थयात्राके निमित्त वहाँसे चल दिये। उन्ह माताकी मृत्यु तथा पिताके वनवासका तथा घरकी सारी सम्पत्तिके नष्ट हो जानेका तनिक भी दु ख न हुआ, क्याकि उनकी सर्वत्र समबुद्धि हो गयी थी, उनकी दृष्टिमे न कोई शत्रु था और न काई मित्र था। इधर धुन्धुकारी पाँच वेश्याओको लेकर स्वच्छन्दतापूर्वक घरहीम रहने लगा। एक दिन उन वेश्याओंने उसे बडी निर्दयतापूर्वक मार डाला और उसके शरीरको किसी गडहेमे डाल दिया। धुन्धुकारी अपने दूषित कर्मोंसे प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ और इधर-उधर भटकता हुआ बहुत क्लेश पाने लगा। गोकर्णने जब उसकी मृत्युका समाचार सुना तो गया जाकर वहाँ उसका श्राद्ध किया और फिर जिस-जिस तीर्थमे वे गय वहाँ उन्होने बडी श्रद्धापूर्वक उसे पिण्डदान दिया।

× × ×

गोकर्ण तीर्थयात्रा कर लौट आये। वे जब रातको घरमे सोने गये तो प्रेत बना हुआ धुन्धुकारी वहाँ अनेक प्रकारके उत्पात मचाने लगा। गोकर्णने देखा कि अवश्य ही यह कोई प्रेत है और बडे धैर्यके साथ उससे पूछा कि तू कौन है और तेरी यह दशा किस प्रकार हुई ? यह सुनकर धुन्धुकारी बडे जोरसे रोने लगा, किंतु चेष्टा करनेपर भी कुछ बोल न सका। तब गोकर्णने अपनी अञ्जलिमे जल लेकर मन-ही-मन कोई मन्त्र पढा और उस जलको उस-प्रेतके ऊपर छिडक दिया, जिससे वह पापमुक्त होकर बोलने लगा। उसने बडे दीन शब्दोम अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया और उस भीषण यातनासे छूटनेका उपाय पूछा। गोकर्णने साचा कि जब इसकी गयाश्राद्धसे भी मुक्ति नहीं हुई, तब इसके लिये कोई असाधारण उपाय सोचना पडेगा, साधारण उपायोसे काम नहीं चलेगा। उन्होने प्रेतसे कहा—'अच्छा, इस समय तुम जाओ। तुम्हारे लिये अवश्य कोई उपाय सोचेगे भय न करो।' दूसरे दिन गोकर्णने कई विद्वान् योगी और ब्रह्मवादियासे इस विषयम परामर्श किया। उन सबकी राय यह हुई कि भगवान् सूर्यनारायणसे इस विषयम पूछा जाय और वे जो उपाय बताये, वही किया जाय। गोकर्णने उसी समय सबके सामने मन्त्रबलसे भगवान् सूर्यदेवकी गतिको राककर उनकी स्तुति की और उनसे इस सम्बन्धमे प्रश्न किया। सूर्यदेवने स्पष्ट शब्दोमे यह कहा कि इसकी श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, उसका सात दिनमें पाठ करो। यह सुनकर गोकर्ण श्रीमद्भागवतके पारायणमे प्रवृत्त हुए।

गोकर्णके द्वारा श्रीमद्भागवतके पाठका समाचार सुनकर आस-पासके गाँवोके बहुत-से लोग वहाँ एकत्र हो गये। जिस समय व्यासासनपर बैठकर गाकर्णने कथा कहनी शुरू की, उस समय धुन्धुकारी प्रेत भी कथामण्डपम आया और बैठनेके लिये इधर-उधर स्थान ढूँढने लगा। उसने देखा कि वहाँ सात गाँठका एक ऊँचा-सा बाँस खडा है। वह वायुरूप होकर उसीकी जडके एक छिद्रमे घुसकर बैठ गया, ज्यों ही सायकाल हुआ और पहले दिनकी कथा समाप्त हुई लोगोने देखा कि उस बाँसकी एक गाँठ बडी कडकडाहटके साथ टूट गयी। दूसरे दिन दूसरी गाँठ और तीसरे दिन तीसरी गाँठ टूटी। इस प्रकार सात दिनम उस बाँसकी सातो गाँठे टूट गयीं और कथा समाप्त होते-होते वह धुन्धुकारी प्रेतयोनिको त्यागकर दिव्य रूपको प्राप्त हो गया। लोगाने देखा, उसके गलेमें तुलसीकी माला पडी हुई है मस्तकपर मुकुट विराजमान

है कानामे कुण्डल सुशोभित हैं उसका श्यामवर्ण है और वह पीताम्बर पहने हुए है। वह गोकर्णके सामने आकर खडा हो गया और हाथ जोडकर कहने लगा—'भाई गोकर्ण तुमने मुझपर बडी दया की, जा मुझ इस प्रेतयोनिसे छुडाया। अब मैं इस दिव्य शरीरको प्राप्तकर भगवान्‌के परमधामको जा रहा हूँ। देखा मेरे लिये वह विमान खडा है और भगवान् विष्णुके पार्षद

मुझे बुला रहे हैं।' यह कहकर वह सब लोगोके देखते हुए विमानपर आरूढ होकर भगवान् विष्णुके परमधामको चला गया।

श्रावणके महीनेम गोकर्णने फिर उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी कथा कही। कथासमाप्तिके दिन स्वय भगवान् अपने पार्षदा-सहित अनेक विमानाको साथ लेकर वहाँ प्रकट हुए और जय-जयकारकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। भगवान्ने स्वय अपना पाञ्चजन्य शख बजाया और गोकर्णको हृदयसे लगाकर अपना चतुर्भुज रूप प्रदान किया। देखत-देखते मण्डपमे उपस्थित श्रोतागण भी विष्णुरूप हो गये और उस गाँवक और भी जितने लोग थे, वे सब-के-सब महात्मा गोकर्णकी कृपासे विमानापर बैठकर योगिदुर्लभ विष्णुलोकको चले गये। भक्तवत्सल भगवान् भी अपने भक्तको साथ लेकर गोलोकको चले गये। इस प्रकार उस महान् संतने अपनी भक्तिके प्रभावसे गाँवभरका उद्धार कर दिया। बोलो भक्त और भगवान्की जय! (पद्मपुराण)

माता यशोदाका वात्सल्य

अङ्काधिरूढं शिशुगोपगूढं
स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम्।
सम्बोधयामास मुदा यशोदा
गोविन्द दामोदर माधवेति॥*

महाभाग्यवती यशोदाजीक सौभाग्यका वर्णन कौन कर सकता है जिनके स्तनोको साक्षात् ब्रह्माण्डनायकने पान किया है। ससारमे अनेक प्रकारके भक्त हैं उनकी इच्छाके अनुसार भगवान्ने अनेक रूप धारण किये। नीच-से-नीच काम किये छोटी-से-छोटी सवा भगवान्ने की। कहीं नाई बनकर पैर दबाये तो कहीं महार बने। धर्मराजके यज्ञम सबके चरण पखारते रह, किंतु उनका बाँधा किसीने नहीं। छड़ी लकर ताडना देनेका सौभाग्य महाभाग्यवती यशोदाजीको ही हुआ। ऐसा सुख, एसा वात्सल्य-आनन्द ससारमे किसीको भी प्राप्त न हुआ न होगा। इसीलिय महाराज परीक्षित्ने पूछा है, महाभागा यशोदाने ऐसा कौन-सा सुकृत किया था जिसके कारण श्रीहरिने उनके स्तनाका पान किया?

नन्दबाबाकी रानी यशोदा मैयाके कोई सन्तान नहीं थी। वृद्धावस्थाम आकर श्यामसुन्दर उनके लाडले लाल बने। माताके हर्षका ठिकाना नहीं। आँखाकी पुतलीकी तरह वे अपने श्यामसुन्दरकी दख-रख करने लगीं। यद्यपि व बाहरसे काम करती थीं, किंतु उनका मन सदा श्यामसुन्दरकी ओर लगा रहता था। श्यामसुन्दर उनकी आँखोसे ओझल न हो, मनमोहन सदा उसके हृदयमन्दिरके आँगनम क्रीडा करते रह। चमचक्षु भी अनिमेषभावसे उन्हे देखते रह। किंतु यह बालक अद्भुत था जन्मके थोडे ही दिन बाद पूतनाने आकर इसे मारना चाहा वह स्वय मारी गयी। शकटासुरने माया फैलायी उसका भी अन्त हुआ। व्योमासुरने जाल रचा, वह भी यमलोक सिधारा। इस प्रकार रोज ही नये-नये उत्पात होने लगे। माताको बडी शका हुइ बच्चा बडा चञ्चल है। इसकी चञ्चलता दिन-प्रतिदिन बढती जाती है पता नहीं क्या घटना घट जाय। एक दिन माता दूध पिला रही थी उधर दूध उफना। बच्चेको वहीं जमीनपर रखकर दूधको देखने गयीं। चञ्चल भगवान् ही जो ठहरे। दहीकी मटकी फोड दी माखन फेंक दिया बन्दराको बुला लिया। माताने देखा यह तो बडा

* अपनी गोदम बैठकर दूध पीते हुए बालगोपालरूपधारी भगवान् लक्ष्मीकान्तको लक्ष्य करके प्रेमानन्दमे मग्न हुई माता यशोदा इस प्रकार बुलाया करती थीं— ऐ मेरे गोविन्द! ऐ मेरे दामोदर! ऐ मेरे माधव!

अनर्थ हुआ, देखते ही भागेगा और पता नहीं कहाँ जाय। धीरेसे पकड लिया और बोली—'अब बता, तू बडी चञ्चलता करता है। घरमे टिकता ही नहीं, मैं तुझे बाँधूँगी।' यह कहकर ओखलीसे उन्हे बाँध दिया। जो कभी नहीं बँधे थे, वे बँध तो गये, किंतु उनका बन्धन भी दूसराकी मुक्तिके ही लिये था। ओखलीको घसीटते हुए यमलार्जुन वृक्षाके बीचम पहुँचे और उन्ह अपने पावन स्पर्शसे शापमुक्त कर दिया। नन्दजीने देखा कि उत्पात बढ रहे हैं तो वे अपने शकटोको जोतकर ज्ञाति-बन्धुओ ओर गौआके साथ श्रीवृन्दावन चले गये।

वृन्दावनम उन वृन्दावनविहारीने अनन्त लीलाएँ कीं। उनका वर्णन कौन कर सकता है, किंतु यशोदाजीको जो महान् विकलता हुई, वह एक ही घटना थी। कालियह्रदमे एक विषधर नाग रहता था। उसने समस्त यमुनाजीके जलको विषैला बना दिया था। खेलते समय गद उस ह्रदमे गिर गयी। उसीके आधारपर मुरारी कदम्बकी डाली पकडकर कालियह्रदमे कूद पडे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। व्रजवासी दौडे आये। यशोदामैयाने भी सुना। भला, उनके दु खका क्या पूछना है। वे अपने प्यारे बच्चेको न पाकर छटपटाने लगीं। उन्हाने बडे आर्तस्वरम कहा—'अरे, कोई मेरे बच्चेको बचा दो, मुझे मेरे छौनेको दिखा दो।' रोते-रोते वे उस कुण्डमे कूदने लगीं। जैसे-तैसे गोपियाने उन्ह पकडा। अब नागको नाथकर नन्दनन्दन बाहर आ गये तो माताने उन्हे छातीसे चिपटा लिया। प्रेमके अश्रुओसे नहला दिया!

समय बदला। उन लीलाओकी स्मृतिका अवसर आया। अक्रूरके साथ घनश्याम मथुरा चले गये। माताको आशा थी कि जल्दी आयेगे, किंतु वह 'जल्दी' फिर आयी नहीं। उसके स्थानम उद्धव सदेश लेकर आये। उन्हे देखते ही नन्दजीन प्रश्नाकी झडी लगा दी। पासमे बैठी हुई वियोगिनी माता अपने पुत्राकी सब बात सुन रही थी। रह-रहकर उसके हृदयम हूक उठ रही थी। उन स्मरणाके आते ही माताकी विचित्र दशा हो गयी।

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा॥

उनकी आँखासे प्रेमके अश्रु बह रहे थे स्तनोसे दूध निकल रहा था, वे स्मृतियाँ रह-रहकर उन्हे रुला रही थीं—

'ते हि नो दिवसा गता '

यशोदा धन्य हैं, जिन्हाने भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर बाल-लीलाओका आनन्द लूटा। देवकीजी तो इस सुखसे वञ्चित ही रहीं।

~~~ o ~~~

महादेवी कुन्तीका उदात्त चरित

विपद सन्तु न शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शन यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥*

हमारे यहाँ शास्त्रोमे पाँच देवियाँ नित्यकन्याएँ मानी गयी हैं। उनमे महारानी कुन्ती भी हैं। ये वसुदेवजीकी बहिन थीं और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी फूआ। महाराज कुन्तिभोजसे इनके पिताकी मित्रता थी उनके कोई सतान नहीं थी अत ये कुन्तिभोजके यहाँ गोद आयीं और उन्हींकी पुत्री होनेके कारण इनका नाम कुन्ती पडा। बाल्यकालमे ये साधु-महात्माओकी बहुत सेवा किया करती थीं, घरमे जो भी कोई अतिथि-साधु आता, ये हर प्रकारसे उसकी सेवा-शुश्रूषा करतीं। एक बार महर्षि दुर्वासा इनके यहाँ आये और वे बरसातके चार महीने इन्हींके यहाँ ठहर गये। कुन्तीजीने

* कुन्तीजी भगवान्से प्रार्थना करती हैं— हे जगद्गुरो! हमपर सदा विपत्तियाँ ही आती रह क्याकि आपके दर्शन विपत्तिमें ही होते हैं और आपके दर्शन होनेपर फिर इस ससारके दर्शन नहीं हाते अर्थात् मनुष्य आवागमनसे रहित हो जाता है।'
~~~

उनकी तन-मनसे खूब सेवा की। चलते समय महर्षि इन्हें एक मन्त्र दे गये और कह गये कि 'सन्तानकामनासे तू जिस किसी देवताका स्मरण करेगी, वह उसी समय अपने दिव्य तेजसे आ जायगा, इससे तेरा कन्याभाव नष्ट न होगा।' ऋषिके चले जानेपर इन्होंने बालकपनके कुतूहलवश भगवान् सूर्यदेवका आवाहन किया। सूर्यदेव आये, ये डर गयीं, उन्होंने आश्वासन दिया, उन्हींसे दानी कर्णकी उत्पत्ति हुई जिन्हें लोकापवादके कारण इन्होंने नदीमें छोड़ दिया और एक सारथिने अपना पुत्र बनाया। महाराज पाण्डुके साथ इनका विवाह हुआ, वे राजपाट छोड़कर वनको चले गये। वनमें ही इनके धर्म इन्द्र, पवनके अंशसे युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई और माद्रीसे अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल, सहदेवका जन्म हुआ। महाराज पाण्डुका शरीरान्त होनेपर माद्री तो उनके साथ सती हो गयीं और ये बच्चोंकी रक्षाके लिये जीवित रह गयीं। इन्होंने पाँचों पुत्रोंको अपनी ही कोखसे उत्पन्न हुआ माना, कभी स्वप्नमें भी उनमें भेदभाव नहीं किया।

पाण्डवोंको जब देशनिकाला हुआ, तो ये दु:खके साथ विदुरके घरमें रहीं, पुत्रोंकी मङ्गलकामना ईश्वरसे करती रहीं, इससे पूर्व जब दुर्योधनने लाक्षागृहमें पाँचों पाण्डवोंको जलानेका षड्यन्त्र रचा था तब माता कुन्ती साथ ही थीं और साथ ही वहाँसे छिपकर भागीं। तब पाण्डवोंपर बड़ी विपत्ति थी। वे भीख माँगकर खाते थे, माता उनकी सब प्रकारसे रक्षा करतीं और सबका यथायोग्य भोजन देतीं। ये इतनी दयावती थीं कि जिस ब्राह्मणके यहाँ रहती थीं, उसके घरसे एक दिन उसका पुत्र राक्षसके पास उसके भोजनके लिये जा रहा था। ब्राह्मणी अपने इकलौते पुत्रको जाते देख रो रही थी। माता कुन्तीको दया आयी और कहा—'मेरे पाँच पुत्र हैं, एक चला जायगा।' जब ब्राह्मणीने बहुत मना किया तो बोलीं—'मेरा पुत्र उस राक्षसको मार डालेगा।' ऐसा ही हुआ। भीमने उस राक्षसको मारकर सारी नगरीको सदाके लिये सुखी बना दिया।

वे दयावती होनेके साथ ही वीरमाता थीं। जब जूएमें युधिष्ठिर हार गये और तेरह वर्षके वनवासके बाद भी दुर्योधन पाण्डवोंको कुछ भी देनेके लिये राजी नहीं हुआ तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूत बनकर हस्तिनापुर आये। दुर्योधनको बहुत समझाया, वह माना ही नहीं। उसने स्पष्ट कह दिया—

सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव।

'हे माधव! सूईके अग्रभागके बराबर भी पृथ्वी मैं बिना युद्धके न दूँगा।' तब भगवान् माता कुन्तीके पास आये और बोले—'ऐसी दशामें अब तुम अपने पुत्रोंको क्या संदेश देती हो?' तब कुन्तीजीने बड़ी ही वीरतासे कहा—

'यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागत ॥'

'क्षत्रियाणी जिस समयके लिये पुत्रोंको पैदा करती है, वह समय—अर्थात् युद्ध करनेका समय अब आ गया, मेरे पुत्रोंसे कह देना, लड़कर वे अपना अधिकार प्राप्त करें।' यह है एक वीरमाताका पुत्रोंके लिये आदेश।

जिसकी सम्भावना थी, वही हुआ। महाभारतका युद्ध हुआ। अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार हुआ। धृतराष्ट्रके सौ पुत्र मारे गये। गान्धारी पुत्रहीना बन गयी, वह रोती हुई युद्धभूमिमें गयी कुन्ती उसे पकड़कर ले गयीं और भाँति-भाँतिसे धैर्य बँधाने लगीं। माता कुन्तीने सच्चे मनसे उन पतिव्रता गान्धारीकी सब प्रकारसे सेवा की।

माता कुन्तीने कभी शारीरिक सुख नहीं भोगा, जबसे वह विवाहित होकर आयीं, उन्हें विपत्तियोंका ही सामना करना पड़ा। पति रोगी थे, उनके साथ जंगलोंमें भटकती रहीं। वहीं पुत्र पैदा हुए, उनकी देख-रेख की, थोड़े दिन हस्तिनापुरमें पुत्रोंके साथ रहीं, वह भी दूसरेकी आश्रिता बनकर। फिर लाक्षागृहसे किसी प्रकार अपने पुत्रोंको लेकर भागीं और भिक्षाके अन्नपर जीवन बिताती रहीं। थोड़े दिन राज्य-सुख भोगनेका समय आया कि धर्मराज युधिष्ठिर कपटके जूएमें सर्वस्व हारकर वनवासी बने, तब विदुरके घरमें रहकर जैसे-तैसे जीवन बिताती रहीं। युद्ध हुआ, परिवारवालोंका संहार हुआ, इससे कुन्तीको क्या सुख। उन्होंने अपने सुखके लिये युद्धकी सम्मति थोड़े ही दी थी, वह तो उन्होंने क्षत्रियोंका धर्म बताया था। पाण्डवोंकी विजय होनेसे क्या हुआ। वह पाण्डवोंके साथ राज्यभोगमें सम्मिलित नहीं हुईं। उन्होंने तो अपना सम्पूर्ण जीवन् अपने उन अन्धे जेठ धृतराष्ट्र और जिठानी गान्धारीकी सेवामें अर्पण कर दिया, जिन धृतराष्ट्र और गान्धारीके पुत्रोंने इन्हें और इनके पुत्रोंको इतने कष्ट दिये थे! गान्धारी और धृतराष्ट्र जब पुत्रवियोगसे दु:खी होकर जंगलमें चले तो उनकी लाठी पकड़कर पुत्रोंका मोह छोड़कर कुन्तीदेवी उनके साथ हो लीं। इस प्रकार उनका जीवन सदा विपत्तिमें ही कटा। इस विपत्तिमें भी उन्हें सुख

था। वे इस विपत्तिको भगवान्से चाहती थीं और हृदयसे इसे विपत्ति मानती भी नहीं थीं।

विपदो नैव विपद सम्पदो नैव सम्पद ।
विपद्विस्मरण विष्णो सम्पन्नारायणस्मृति ॥

'विपत्ति यथार्थ विपत्ति नहीं है सम्पत्ति भी सम्पत्ति नहीं। भगवान्का विस्मरण होना ही विपत्ति है और उनका स्मरण बना रहे यही सबसे बडी सम्पत्ति है।' सो उन्हे भगवान्का विस्मरण कभी हुआ नहीं अत वे सदा सुखम ही रहीं।

~~o~~

बचपनके संस्कारको मौत भी नही मिटा सकी

[दो वीर बालकोकी कथा]

वादशाह औरगजेब गुरु गोविन्दसिहकी बढती हुई शक्तिसे और उनपर किये गये आक्रमणाकी असफलतासे झुँझला गया था। उसने शाही फरमान जारी किया कि जो व्यक्ति गुरु गोविन्दसिहको पकडकर या उनका सिर काटकर मेर सामने पेश करेगा, उसे मुँहमाँगा इनाम दिया जायगा। यह शाही फरमान भी व्यर्थ गया न तो कोई गुरुजीको गिरफ्तार कर सका और न काई उनका सिर ही काट सका। बादशाहके कुछ सैनिक गुरु गोविन्दसिहक दो बालका—जारावरसिह और फतेहसिहको गिरफ्तार करनेम सफल हो गये। बादशाहके सैनिकाने दोना बच्चाको सरहिन्दक नवाबको सौंप दिया। सरहिन्दके नवाबने गुरु गोविन्दसिहके दिलको चोट पहुँचानेके लिये दोना बच्चाका मुसलमान बनानेकी साची। सूबा सरहिन्द वजीद खाँने भर दरबारम बच्चासे पूछा—'ऐ बच्चो! तुमलोगोको दीन इस्लामकी गोदम आना मजूर है या कतल होना?' बच्चाको तो प्रारम्भस ही कण-कणसे यह सस्कार पड चुका था उनके पूर्वजाने तिल-तिल कष्ट सहकर भी मरना स्वीकार किया था परतु अपना धर्म छोडना स्वीकार नहीं किया था। इनके पिता गुरु गाविन्दसिहके प्रपितामह गुरु अर्जुनदेवने धर्मक लिये जैसा बलिदान दिया वैसा कष्टकर बलिदान इतिहासम दूसरा देखा-सुना नहीं जाता। बच्चाको बताया गया था कि बादशाह जहाँगीर गुरु अर्जुनदवको मुसलमान बनाना चाहता था अपनी इस चाहका उसने 'तुजुक जहाँगीरी' म लिख रखा था। एक दिन उसने गुरु अर्जुनदवका लाहौरसे पकड मँगवाया और उन्ह अपने एक हाकिम चन्दूशाहक हवाले करके तडपा-तडपाकर मारनेका हुक्म दे स्वय कश्मीर चला गया ताकि गुरु अर्जुनदव डरकर इस्लाम धर्म कबूल कर लें। जेठकी जलती हुई दापहरम गरम तवेपर गुरुजीको बैठाया जाता नीचेसे आँच तेज की जाता और ऊपरसे गरम रेत डाली जाती, फिर उन्ह खौलते हुए पानीके डेगमे डाला जाता। यह क्रम तबतक चलता रहा जबतक कि वे शहीद नहीं हो गये। दोनो बच्चाने शहीद हानेके इतने कष्टदायक वृत्तान्तको सुना था, जिससे बचपनमे ही उनके मनमें यह सस्कार दृढ हो गया था कि हम भी इसी प्रकार अपने धर्मकी बलिवेदीपर शहीद होना चाहिये पर अपना धर्म नहीं छोडना चाहिये।

सूबा सरहिन्द वजीद खाँने भी इन बच्चाको घोर तडपन हो इसलिये एक नयी तरकीब निकाली। बच्चासे कहा गया कि अगर तुम इस्लाम धर्म नहीं कबूल करोगे तो तुम्हे दीवारम चुनवा दिया जायगा तुम साँस भी नहीं ले पाओगे और दम ताड दोगे। बच्चाके सस्कारने कहा कि किसी भी प्रकारसे मरना स्वीकार है, परतु अपने प्राणप्रिय धर्मको छाडना स्वीकार नहीं है। दीवार खडी होने लगी बच्चे बडी वीरताके साथ सब देखते रहे। उनके चेहरेसे प्रसन्नता झलक रही थी उनके सस्कार बाल रहे थे कि बहुत दिनांके बाद उन्ह अपने पूर्वज गुरु अर्जुनदेवकी भाँति शहीद होनेका अवसर मिला है। यह अवसर भी अनूठा है। दीवार उठते-उठते छाटे भाई फतहसिहके गलेतक आ गयी यह देखकर बडे भाई जारावरसिहकी आँखाम आँसू आ गये। यह देखकर वजीद खाँ बहुत खुश हुआ और बाला 'रो क्या रहे हो इस्लाम कबूल कर लो तुम्हे जन्नतसे बढकर सुख दूँगा।' जोरावरने सिह-गर्जना करते हुए कहा 'अरे नराधम! मुझे इस बातका रोना आ रहा है कि मैं बडा भाई हूँ, पहले शहीद होनेका मौका मुझे मिलना चाहिये था परतु मेरा छाटा भाई इसमे मुझसे आगे निकल गया।'

दानों भाइयाका बचपनका सस्कार इतना अमिट हो गया था कि मौत भी उनके सस्काराको नहीं मिटा सकी।

(ला०चि०मि०)

~~o~~

भक्तिके संस्कारसे सुसंस्कृत दो बालकोके चरित्र

(सौ० सुनीलाजी पराजपे)

माताकी सत्-शिक्षाआसे बालकपर सस्कार कितना दृढ हो जाता है और गर्भस्थ शिशुपर उपदेशोके माध्यमसे भक्तिका सस्कार कितना सुदृढ हो जाता है, इस सम्बन्धमे बालक ध्रुव तथा बालक प्रह्लादके सस्कारसम्पन्न चरित्र यहाँ प्रस्तुत है—

१-बालक ध्रुवके भक्तिके सस्कार

कई युगो पहले महाराज स्वायम्भुव मनु हुए थे। उन्हे उनकी पत्नी महारानी शतरूपासे दो पुत्र हुए—१ प्रियव्रत तथा २ उत्तानपाद। महाराज उत्तानपादकी सुरुचि एव सुनीति नामक दो पत्नियाँ थीं। उनमेसे महारानी सुरुचिके पुत्रका नाम उत्तम एव सुनीतिके पुत्रका नाम ध्रुव था।

एक दिन राजा उत्तानपाद महारानी सुरुचिके पुत्र कुमार उत्तमको अपने अङ्कमे बिठाकर प्रेम प्रकट कर रहे थे, तभी कुमार ध्रुवने भी अपने पितासे उनके अङ्कमे बैठनेकी इच्छा

प्रकट की। इसपर महारानी सुरुचिने ईर्ष्यापूर्वक ध्रुवको डाँटते हुए कहा—'तुम राजा उत्तानपादके पुत्र होते हुए भी राजसिहासनपर बैठनके अधिकारी नहीं हो, क्याकि तुम मेरी कुक्षिसे उत्पन्न नहीं हुए हो। अत यदि तुम्हे राज्यकी इच्छा है तो तुम्हे भगवान् नारायणकी उपासना करक उनसे प्राप्त वरके द्वारा मेरे गर्भसे जन्म लेना पडेगा।'

अपनी विमाताके दुर्वचनोको सुनकर कुमार ध्रुव रोते हुए अपनी माताके पास गये एव उनसे लिपटकर उन्हे सारी बाते कह सुनायीं। बालक ध्रुवकी बाते सुनकर सुनीतिने कहा—'वत्स! महारानी सुरुचिने उचित ही कहा है कि यदि तुम राजसिहासनपर बैठना चाहते हो तो द्वेषभावनाका त्यागकर भगवान् नारायणकी आराधना करो—

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व-
मुक्त समात्रापि यदव्यलीकम्।
आराधयाधोक्षजपादपद्म
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा॥

(श्रीमद्भा० ४।८।१९)

बेटा! तुम्हारे पितामह एव प्रपितामह (महाराज मनु तथा श्रीब्रह्माजी)-ने उन्हींकी आराधनासे श्रेष्ठ पद प्राप्त किया है। अत तुम्हे भी उन्हीं श्रीहरिका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। उन्हींका आश्रय लेनेसे तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूर्ण होगी।' माता सुनीतिके यथार्थ एव हितकारी वचनोको सुनकर ध्रुवजी तपस्याहेतु नगरसे बाहर निकल पडे।

इधर देवर्षि नारदजी ध्रुवजीके पास जाकर उनकी परीक्षा लेनेहेतु बोले—'वत्स! तुम्हारी उम्र अभी तपस्या करने लायक नहीं है। अत वृद्ध होनेपर परमार्थकी सिद्धिके लिये तप करना। मनुष्यको सुख-दु ख जो भी प्राप्त हो, उसे विधाताका विधान समझकर उसीमे सतुष्ट रहना चाहिये। एसा करनेपर वह इस मोहग्रस्त ससारसे सुखपूर्वक पार हो जाता है।' यह सुनकर ध्रुवजी बोले—भगवन्! आपने सुख-दु खसे विगलित लोगोके लिये एक बहुत अच्छा उपाय कहा है, किंतु मैं क्षत्रिय हूँ। अत किसीसे कुछ माँगना मेरा स्वभाव नहीं है। मेरी विमाताने मेरे हृदयको अपने कटु वचनसे विदीर्ण कर दिया है। ब्रह्मन्! अब मैं उस पदको पाना चाहता हूँ, जो त्रैलोक्यमे सबसे श्रेष्ठ है'—

'पद त्रिभुवनोत्कृष्ट जिगीषो साधु वर्त्म मे।'

(श्रीमद्भा० ४।८।३७)

ऐसा विचार ज्ञात होनेपर देवर्षि नारदजीने प्रसन्न होकर उन्हे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर-

मन्त्र प्रदान किया। सदुपदेश पाकर ध्रुवजीने परम पवित्र तपस्थली मधुवनमे पहुँचकर यमुनाम स्नान किया एव एकाग्रचित्त हो श्रीमन्नारायणकी उपासना प्रारम्भ की तथा कुछ ही मासम उन्हें प्रसन्न कर लिया। उसके फलरूपमें उन्होंने छत्तीस हजार वर्षोंतक धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करके सदह ही भगवान् नारायणके परमधामको प्राप्त कर लिया।

२-बालक प्रह्लादके भक्तिमय सस्कार

प्राचीन कालम कश्यप ऋषि एव दितिस हिरण्यकशिपु नामक राक्षसराज उत्पन्न हुआ। उसके पुत्र प्रह्लाद भगवान् श्रीहरिके भक्त थे। हिरण्यकशिपु अपने पुत्रको हरिभजनसे विरत करना चाहता था। वह समझता था कि उसका पुत्र विगड गया है। अत उसने गुरु शुक्राचार्यके आश्रमम उनके दोनो पुत्रों—शण्ड और अमर्कके पास बालक प्रह्लादको भेजा जिससे कि वहाँ वे असुरकुलोचित शिक्षा ग्रहण कर सक। दोनो गुरुपुत्र जब आश्रमके अन्य कार्योंम व्यस्त होते तो प्रह्लादजी अपने सहपाठियाको एकत्रित कर उन्ह सदाचार तथा श्रीहरिकी भक्तिका पाठ पढाया करते थे।

एक बार उनक सहपाठियाने उनसे पूछा कि प्रह्लाद! एक ता तुम्हारी अवस्था कम है दूसरे तुम आश्रमम आनेसे पूर्व महलम रहा करते थे तो सभी बात तुम्हे किस प्रकार मालूम हुईं। इसपर प्रह्लादजी बाले—मित्रा! मरे पिताजी अपने भ्राता हिरण्याक्षकी मृत्युके बाद अजेय होने तथा अमरत्व प्राप्त करनेके लिये तप करनहेतु मन्दराचल पर्वतपर गये थे। यह समाचार पाकर देवाने दैत्यपुरीपर धावा बोल दिया। असुर अपने राजाकी अनुपस्थितिम पराजित हो भाग खडे हुए। तब इन्द्रदव मेरी माता कयाधूको बदी बनाकर अपनी पुरी अमरावती ले जाने लगे। मार्गमे नारदजीने उन्ह रोकते हुए इसका कारण पूछा तो इन्द्र बोले—देवर्षे! इसके गर्भमे असुरराज हिरण्यकशिपुका बालक पल रहा है, मै पैदा होते ही उसे मार डालूँगा। इसपर देवर्षि नारदजीने उन्हे धिक्कारते हुए बताया कि इसके गर्भमे जा बालक है, वह भगवान् विष्णुका भक्त है। अत तुम उसका कुछ बिगाड न पाओगे। ऐसा सुनकर इन्द्रने मेरी मातासे क्षमा-याचना की एव अपनी पुराको चले गये।

नारदजी मेरी माताको अपने आश्रममे ले गये और वे वहींपर सुखपूर्वक निवास करने लगीं। वहाँ देवर्षि नारदजी नित्य ही उन्हे भगवद्भक्तिके उपदेश देते थे। वे उपदेश मुझतक भी पहुँचते थे। उन्हीं देवर्षिकी कृपासे वे उपदेश मुझे स्मरण हैं।

इधर शुक्राचार्यके पुत्रोने सभी बात जाकर असुरराज हिरण्यकशिपुसे कहीं। तब वह असुर क्रोधाभिभूत हो बालक प्रह्लादको अपने हाथोसे मार डालनेका निश्चय कर प्रह्लादसे बोला—अभागे! तुम इस जगत्का स्वामी मेरे सिवा किसी औरको बतलाते हो। आज मैं तेरे उसी जगदीश्वरको देखना चाहता हूँ। तुम उसे सब जगह उपस्थित कहते हो! क्या वह इस निर्जीव स्तम्भमे भी है? ऐसा कहकर उसने स्तम्भपर प्रहार किया। उस समय उस स्तम्भसे ब्रह्माण्डको कम्पित कर देनेवाला स्वर निकला। उस स्तम्भमे हिरण्यकशिपुने देखा कि जगदीश्वर एक विचित्र रूपमे उसे

मारनेक लिये उद्यत थे। यह दखकर हिरण्यकशिपु उनसे युद्ध करन लगा किंतु अन्तमे नृसिहभगवान्ने उसे प्राप्त वरके अनुसार उसका वध किया एव सभी दवताओसहित प्रह्लादको अभय प्रदान किया। इस प्रकार भक्तराज प्रह्लाद नृसिह-अवतारके भी कारण बने।

कुसंस्कारोंसे भावित राजा वेन और संस्कारसम्पन्न महाराज पृथु

प्राचीन कालम प्रशासनका सारा भार प्राय राजाके ही ऊपर रहता था और जनताके कल्याणके लिये राजा सर्वदा तथा सर्वथा सचेष्ट रहता था। राजाका जीवन सदाचारपूर्ण, सस्कारसम्पन्न एव सरल होता था, वह स्वय तो कष्ट सहन कर लेता था, किंतु प्रजावर्गकी सुख-सुविधाआमे कोई न्यूनता न हो इस ओर वह पूरा सावधान रहता था। दाशरथि राम आदि राजा इसके लिये उदाहरणीय हैं। इसके विपरीत अपवादस्वरूप कतिपय वेदविरोधी निरङ्कुश या स्वेच्छाचारी एव कुसस्कारसम्पन्न शासकोका भी उल्लेख इतिहास-पुराणाम मिलता है, जिन्हे समाजद्वारा दण्डित होना पडता था और उनके पतन होनेमे भी देर नहीं लगती थी।

पुरातनकालम ऐसे ही अहङ्कारी, उद्दण्ड तथा स्वेच्छाचारी राजा वेनका प्रसङ्ग मिलता है। उनके पिता अङ्ग थे, जो

परम सदाचारी राजा थे। पुत्र वेनकी उद्दण्डतामे ऊबकर राजर्षि अङ्गने घर छोडकर वनका आश्रय ले लिया था। अत शासकके अभावम सम्पूर्ण राष्ट्रम पाशविक उच्छृङ्खलताएँ बढ गयीं। मुनियोने राज्यकी कल्याण-कामनाके लिये पुत्रवत्सल वेनकी माता सुनीथाकी प्रेरणास मन्त्रियाके सहमत न होनेपर भी वेनको ही भूमण्डलके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि राजपदपर आसीन होते ही आठो लोकपालोकी ऐश्वर्य-कलाके आत्मनिष्ठ हो जानेके कारण वह उन्मत्त हो उठा और अहङ्कारवश अपनेको ही सर्वश्रेष्ठ मानकर महापुरुषोका अपमान करने लगा। ऐश्वर्यमदम अन्धा हुआ वेन रथारूढ होकर, निरङ्कुश गजराजके समान पृथ्वी और आकाशको कँपाता हुआ सर्वत्र विचरण करने लगा। ढिंढोरा पिटवाकर उसने सम्पूर्ण राष्ट्रमे धार्मिक एव सास्कृतिक कार्य बद करवा दिये। सम्पूर्ण भूमण्डलमे हाहाकार मच गया। अहङ्कारवश मदान्मत्त होकर उसने अपनेको ही जगत्के ईश्वरके रूपम घोषित कर दिया। अपनेको छोडकर किसी अन्य अतीन्द्रिय शक्तिशाली परमात्माके अस्तित्वको उसने कथमपि स्वीकार नहीं किया। सारे प्रजावर्गको मूर्ख मानकर वह कहने लगा था—'प्रजाजनो, तुम अधर्मम धर्मबुद्धि रखते हो। जो लोग मूर्खतावश प्रत्यक्ष राजारूप परमेश्वरका अनादर करते हैं, उन्ह न तो इस लोकम सुख मिलता है और न परलोकम ही। जिसमे तुमलोगोकी इतनी भक्ति है, वह परमेश्वर है कौन ? यह तो ऐसी बात हुई जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने विवाहित पतिसे प्रेम न कर किसी परपुरुषमे आसक्त हो जायँ। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि और वरुण तथा इनके अतिरिक्त जो दूसरे समर्थ देवता हैं, वे प्रत्यक्ष राजाके शरीरमे विद्यमान रहते हैं, इसलिय राजा सर्वदेवमय है और देवता उसके अशमात्र हैं। अतएव तुम लोग मत्सरता छोडकर अपने अशेष कर्मोके द्वारा एकमात्र मेरा ही पूजन करो और मुझे ही बलि समर्पित करो। भला, मेरे सिवा और कौन अग्रपूजाका अधिकारी हो सकता है ?'

इस प्रकार विपरीत बुद्धि हानेके कारण वह अत्यन्त पापी और कुमार्गगामी हो गया था। उसका पुण्य सर्वथा क्षीण हो चुका था, इसलिये '**विनाशकाले विपरीतबुद्धि**' के अनुसार वेनको किसी हितैषीका सदुपदेश भी अच्छा नहीं लगता था।* उसने अपना दुराचरण नहीं छोडा और उसकी तानाशाही दिन-पर-दिन बढती ही गयी।

ऐसी दु स्थितिम धर्म एव समाजक हितचिन्तक

---

* नीतिकारका यह कथन ठीक ही है कि—

सुहृदा हितकामाना य शृणोति न भाषितम्। विपत् सनिहिता तस्य स नर शत्रुनन्दन ॥
दीपनिर्वाणगन्ध च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्। न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुष ॥ (हितोपदेश १। ११९ १२१)

मुनिवरोने वेनको राज्यसिहासनके अयोग्य समझकर अपने छिपे हुए क्रोधको प्रकट कर धर्म एव समाजकी रक्षाके लिये उसे मार डालनेका निश्चय किया। यद्यपि वेन तो अपने पापाचरणके कारण पहले ही मर चुका था, अत मुनियोने केवल हुङ्कारोसे ही उसका वध कर दिया। अब वेनकी शोकाकुला माता सुनीथा मोहवश मन्त्रादि-बलसे तथा अन्य युक्तियोसे अपने मृत पुत्रके शवकी रक्षा करने लगी।

स्मृतियाके मतानुसार राष्ट्रमे एक सुयोग्य राजा या शासकका होना परमावश्यक माना गया है, क्याकि शासकके अभावमे प्रजावर्गम निर्भीकता एव उच्छृङ्खलता बढ जाती है। दुराचारी रहनेपर भी राजा वेनके मर जानेपर सारे भूमण्डलमें अराजकता फैल गयी, चोर-डाकुओका उपद्रव बढने लगा, लूट-खसोट शुरू हो गयी। निरङ्कुशताके कारण बलवान् निर्बलोको तरह-तरहसे सताने लगे। यह देखकर मुनियोने विचार किया—ब्राह्मण यदि समदर्शी और शान्तस्वभाव भी हो तो भी दीनाके दैन्यकी उपेक्षा करनेसे उसका तपोबल उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे फूटे हुए घडेमेसे जल। फिर राजर्षि अङ्गकी वशपरम्पराका भी नाश नहीं होना चाहिये क्याकि इसमे अनेक अमोघ शक्तिसम्पन्न, सस्कारवान् तथा कर्तव्यपरायण राजा हो चुके हैं। ऐसा सोचकर ब्राह्मणाने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओका मन्थन किया। उससे एक स्त्री-पुरुषका जोडा प्रकट हुआ। ब्रह्मवादी ऋषि उस जोडेको उत्पन्न हुआ देखकर और उसे भगवान्का अश जानकर बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—इनमे जो पुरुष है, उसके अङ्ग-अङ्गम चक्रवर्तीके चिह्न हैं, यह अपने सुयशका प्रथन अर्थात् विस्तार करनेके कारण परम यशस्वी 'पृथु' नामक सम्राट् होगा एव राजाओमे सर्वप्रथम राजमान्य। सर्वगुणसम्पन्ना यह सुन्दरी स्त्री पृथुको अपने पतिके रूपम वरेगी और यह 'अर्चि' नामसे विख्यात होगी।

पृथुके जन्मके उपलक्ष्यम सम्पूर्ण राष्ट्रम गीत-वाद्यादिके द्वारा महान् उत्सव मनाये गये। ब्रह्मा आदि प्रमुख देवता भी उस कुमारको देखने आये।

स्वेच्छाचारी राजा वेनके राजत्वकालम सारे राज्यमे असतोषकी स्थिति हो गयी थी। सर्वत्र दुर्भिक्ष छा गया था धरा शक्तिहीन हो गयी थी। अन्न और औषधादिक पदार्थ लुप्तप्राय हो गये थे। वेनकी तानाशाहीके कारण प्रजावर्गम क्षुधाके मारे व्याकुलता थी। सर्वत्र 'त्राहि-त्राहि' का आर्तनाद सुनायी देता था।

जब समाजमे दुराचरणकी अतिशयिता चरम शिखरपर पहुँच जाती है, सत्-सस्कारोका सर्वथा लोप होने लगता है तब उसके निवारणके लिये प्रकृति निश्चय हा कुछ प्रबन्ध कर देती है। जब रावणके दर्पकी मात्रा बढी, तब उसका उसकी राजधानी लङ्कासहित सर्वनाश हुआ। अभिमानके चरम सीमापर पहुँचनेपर कौरवोका पतन हुआ और जब राजा बलिको अपनी दानशीलताके लिये गर्व हुआ तब उन्हे बन्धनमे आना पडा—

अतिदर्पे हता लङ्का अतिमाने च कौरवा ।
अतिदाने बलिर्बद्ध सर्वमत्यन्तगर्हितम्॥

(सुभाषितरत्नभाण्डागार)
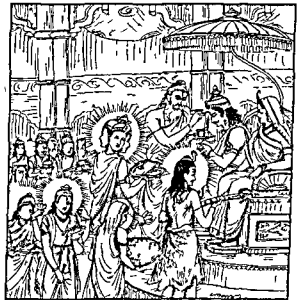
ऐसी ही अवस्थाके आ जानेपर वेनके सहारके पश्चात् पृथुका राज्याभिषेक हुआ और समस्त राज्याधिकार प्रजावत्सल सदाचारी पृथुके हाथम आया। पृथुके अशेष आचरण धार्मिक सुसस्कारयुक्त एव प्रजातान्त्रिक थे। प्रजावर्गकी सुख-सुविधाके लिये पृथु सम्पूर्ण व्यवस्था करते थे। सारे राज्यमे प्रसन्नता एव अद्भुत शान्ति छा गयी। दु ख-दारिद्र्यका कहीं नामतक सुनायी नहीं देता था आनन्द-ही-आनन्दकी अनुभूति हो रही थी। पृथुके द्वारा शासित पृथ्वी अपने 'वसुन्धरा' नामको चरितार्थ करने लगी। उससे विविध प्रकारके अन्न प्रचुर मात्राम उपजने लगे थ। वृक्ष-लताएँ भाँति-भाँतिक स्वादु फलो एव सुगन्धित पुष्पासे लदने लगीं। गव्य (गो-दुग्धादि) पदार्थोंका बाहुल्य हो

गया था। ऐसी अवस्था देख महाराज पृथु प्रसन्नताका अनुभव करने लग। तत्कालीन सर्वकामदुघा पृथ्वीके प्रति उनका पुत्रीके समान स्नेह होने लगा, अत उसे अपनी कन्याके रूपम उन्होने स्वीकार कर लिया। [मनुजीने ९।४४ मे इन्हे पृथुकी स्त्री भी वतलाया है।] उन्होने पूर्वसे अव्यवस्थित आकृतिवाले ऊबड-खाबड सारे भूमण्डलको प्राय समतल कर दिया। जनताके लिये उन्हाने जहाँ-तहाँ यथायोग्य निवासस्थानाकी व्यवस्था कर दी। अनेक गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, घाप (अहीराकी बस्ती), पशुओक रहनेके स्थान, छावनियाँ किसानोके गाँव और पहाडाकी तलहटीके गाँव उन्होने बसाये और जनताकी शिक्षा-दीक्षा आदिकी सारी व्यवस्था कर दी। इनके पहले इस भूमण्डलपर पुर-ग्रामादिका विभाग नहीं था, सब लोग अपने-अपने सुभीतेक अनुसार जहाँ-तहाँ बसत थे।

विधिका प्राकृतिक विधान विचित्र एव आकस्मिक परिवर्तनमय होता ह। एक स्थितिका दूमरी स्थितिम परिवर्तन अवश्यम्भावी रहता ह। रात्रि-दिन, दु ख-सुख अशान्ति-शान्ति, दुर्भिक्ष-सुभिक्ष तथा विपाद-प्रसाद आदि विविध विपरीत तत्त्वयुगलका परिवर्तनचक्र अवाधगतिसे निरन्तर चलता रहता है। जब हिरण्यकशिपुके अत्याचारसे प्रह्लाद-प्रभृति सदाचारी जनता पीडित हुई, तब नरसिहने प्रकट होकर शान्ति स्थापित की। रावणके अत्याचारसे सत्रस्त हुई जनताका श्रीरामने उद्धार किया। कसके अत्याचारसे व्याकुल प्रजावर्गको श्रीकृष्णने शान्ति प्रदान की थी। उसी प्रकार वेदविरोधी पापी वेनके उद्दण्ड शासनसे उद्विग्न जनताके कल्याणके लिये महाराज पृथुका चक्रवर्ती राजाके रूपम आविर्भाव हुआ था। (अथर्ववेदमे इनका चरित्र विस्तारसे वर्णित है।)

प्रकृतिका एक अकाट्य नियम है—राष्ट्र या समाजम जब जनताके धर्म, मयादा एव सस्कृतिके ऊपर भीषण सकट आ जाता है और घोर अधर्मका उत्थान होने लगता है, तब कोई नियामक शक्ति किसी रूपमे अवश्य आकर सार्वत्रिक शान्तिकी व्यवस्था कर देती है—

इत्थ यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याह करिष्याम्यरिसक्षयम्॥

(मार्कण्डेयपुराणोक्त दवीमाहात्म्य० ११।५५)

सतोकी सत्प्रेरणासे संस्कारोका निर्माण

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

हमारे सभी धर्मशास्त्र धर्माचार्य तथा सत-महात्मा सस्काराको सदाचरणका प्रमुख आधार निरूपित करते रहे है। धर्मशास्त्राम कहा गया है कि सत्पुरुपाका सत्सङ्ग करनेसे अच्छ सस्कार मिलते हैं, जबकि दुर्व्यसनासे युक्त व्यक्तिका सङ्ग करनेसे व्यक्ति सस्कारहीन बनकर दुर्गतिको प्राप्त हाता है।

महाभारतमे कहा गया है—

येपा त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
ते सेव्यास्तै समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी॥

(महा० वन० १।२७)

जिनक विद्या कुल और कर्म—ये तीनो शुद्ध हो उन सत्पुरुपा साधु पुरुषाकी सेवा करे, उनका सत्सङ्ग करे। उनका सत्सङ्ग शास्त्रोके स्वाध्यायसे भी श्रेष्ठ है।

इसक विपरीत दुर्जना दुष्टोके सङ्गके दुष्परिणामोपर प्रकाश डालत हुए कहा गया है—

असता दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचारा प्रहीयन्त सिद्ध्यन्ति च न मानवा॥

(महा० वन० १।२९)

दुष्ट तथा दुर्व्यसनी मनुष्याके दर्शनसे, स्पर्शसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं। ऐसे कुसङ्गी मनुष्य कभी भी अपने किसी कार्यमे सफल नहीं हो सकते।

धर्मप्राण भारतमे बच्चोको परिवारमे ही माता-पितासे अच्छे सस्कार मिलने शुरू हो जाते थे। माताएँ बच्चोको भगवान् श्रीराम श्रीकृष्ण तथा अन्य अवतारो, देवी-देवताओके जीवनके प्रसङ्ग सुना-सुनाकर सन्मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देती थीं। वे बच्चाको भगवान् श्रीरामद्वारा सबेरे सोकर उठते ही माता-पिताके चरणस्पर्श करनेका प्रसङ्ग सुनाकर उनमें माता-पिताकी सेवाके सस्कार डालती थीं। बच्चोको बताया जाता था कि परिवारक गुरु या पुरोहितका किस

प्रकार खडे होकर, चरण छूकर सम्मान किया जाना चाहिये। गुरुकुलमे विद्याध्ययनके लिये जानेपर किस प्रकार गुरुआका आदर करना चाहिये। किस प्रकार उनकी सेवा करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णकी तरह अपने सखाआ— साथियाके साथ बिना गरीब-अमीरका विचार किये, व्यवहार किया जाना चाहिये। ये सब सस्कार घरम बैठे-बैठे बच्चोको प्राप्त हो जाते थे।

मैं पाँच-छ वर्षका था। मेरी माता पूज्या जगनदई मेरी अँगुली पकडकर मुझे मन्दिर ले जाती थीं। वहाँ भगवान्की प्रतिमाको कैसे श्रद्धाभावके साथ दाना हाथ जोडे जाते हैं, बताती थीं। माताजी तुलसीकी परिक्रमा करती थीं। मुझे भी उनसे बचपनम ही तुलसीकी पूजा-उपासनाकी प्रेरणा मिली। परिवारमें हमारे कुलगुरु पण्डित मुरलीधरजी जब कभी पधारते, उनके चरणस्पर्शकी प्रेरणा माताजी देतीं। और तो और, हमारे घरकी सफाई करनेवाली वृद्धा झब्बो भगिन आती तो माताजी कहतीं—दादी कहकर राम-राम करो। माताजी स्वय उन्हे 'पैरा पडूँ' कहकर उनका अभिवादन करती थीं। माँसे मिले इन सस्कारोने मुझे साधु-सताके सत्सङ्ग तथा सेवाकी प्रेरणा दी।

सत-महात्माओका योगदान

माता-पिता तो बालकोको घरम अच्छे सस्कार देते ही थे। सत-महात्माओका भी गाँव-गाँवमे प्रवचनोके माध्यमसे सत्प्रेरणा देनेका महान् योगदान रहा है। गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास रैदास, मीराबाई सत गुरु नानकदेव, नामदेव सत दादू, भक्त नरसी मेहता नाभादास सत ज्ञानेश्वर, सत तुकाराम समर्थ स्वामी रामदास सत सुन्दरदास-सरीखे अनेक सत-महात्माआने अपनी वाणी तथा अपने रचे पदाके माध्यमसे समाजको सस्कारित करनेका अनूठा कार्य किया। सत-महात्मा पदयात्रा करते हुए गाँव-गाँव पहुँचते थे तथा सरल सात्त्विक और ईमानदारीका जीवन जीते हुए पदो अभङ्गो भजनो एव प्रवचनाके माध्यमसे प्रभुभक्तिमे लीन रहनेकी सत्प्रेरणा देते थे।

गुरु नानकदेवजी महाराजने अपने चमत्काराके माध्यमसे यह सिद्ध किया कि नेक कमाईमे ही बरक्कत होती है तथा बेईमानी, शोषण एव पापकी कमाईका अन्न खानेवाला एक प्रकारसे खून पीता है।

कुछ सतगण पैदल टोलियोके रूपमे गाँवाम पहुँचते थे। मन्दिरा एव चौपालापर उनके प्रवचनाके आयाजन किय जाते थे। वे प्रवचना भजना अभङ्गा तथा पदाके माध्यमसे माता-पिताकी सेवा करन धर्मपर दृढ रहने बडा और वृद्धाका सम्मान करने मास-मदिरा-तम्बाकू-जैस अखाद्य पदार्थोको हाथ भी न लगानेकी प्रेरणा देकर एक प्रकारस अच्छे सस्काराका प्रसारण किया करते थे।

सत-महात्माआका अपना जीवन स्वत प्रेरणापुञ्ज हुआ करता था। श्रद्धालुजन उनके त्याग-तपस्यामय जीवन तथा शास्त्रानुसार दिनचर्याको देखकर स्वत प्रेरणा एव सस्कार ग्रहण करत थ।

कुछ सद्‌गृहस्थ, प्रवचनकार, भजनोपदेशक कथावाचक आदि जगह-जगह पहुँचकर धर्मवीर हकीकतराय गुरु गोविन्दसिहके पुत्रो बन्दा वैरागी गुरु तेगबहादुर गुरु अर्जुनदेवजी आदिके धर्मरक्षार्थ प्राणात्सर्ग करनेकी एतिहासिक घटनाआका वर्णन करके जहाँ जनताको धर्मपर दृढ रहनेके सस्कार तथा प्रेरणा दते थे वहीं भगवान् श्रीराम श्रीकृष्ण श्रवणकुमार आदिद्वारा माता-पिताकी सेवा और आज्ञापालनके प्रेरक प्रसङ्ग सुनाकर उनका सस्कारित भी किया करते थे। वे महाराणा प्रताप छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिह, मगल पाण्डे, महारानी लक्ष्मीबाई दुर्गावतीसे लेकर सरदार भगतसिह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद 'बिस्मिल'-सरीखे राष्ट्रसेनानिया बलिदानियाकी गाथाआके माध्यमसे राष्ट्रके प्रति कर्तव्यपालनकी प्ररणा तथा सस्कार देते थे। इन सत-महात्माओ प्रवचनकारो आदिके कारण ही मुसलमाना तथा अग्रेजाके शासनकालमे भी हिन्दूसमाज अपने प्राचीन सस्काराको अक्षुण्ण बनाये रखनेमे सफल रहा।

पूज्य उडिया बाबा सस्कारपुञ्ज थे

परम सिद्ध तथा ब्रह्मज्ञ सत पूज्य उडिया बाबा (स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ)-जी महाराज तो पग-पगपर श्रद्धालुजनोका माता-पिता तथा वृद्धजनोकी सेवा शास्त्रानुसार जीवन जीने मोहमायास दूर रहकर गृहस्थधर्मका पालन करते हुए भगवद्भक्तिमे लगे रहने सेवा परोपकारको सर्वोपरि कर्तव्य मानने-जैस सस्कार बाँटते रहा करते थे।

मुझे बचपनसे ही पूज्य उडिया बाबाका सत्सङ्ग करने तथा उनक साथ महीनो-महीनोतक पदयात्रा करते रहनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ करता था। वे गङ्गातटके गाँवाम पहुँचकर ग्रामीणोको लोक-परलोकका कल्याण कैसे हो—

इसका सरल साधन बताया करते थे। मैंने देखा कि पूज्य बाबा अपनी दिनचर्या तथा उपदेशासे ग्रामीणाको सन्मार्गपर चलनेका सहजमे ही सस्कार दे देते थे। उनके उपदेशासे न जाने कितने व्यक्तियाने सस्कारित होकर अपना जीवन सफल बनाया था।

एक बार पूज्य श्रीहरि बाबाजीके गवाँ (बदायूँ)-स्थित बाँध आश्रममें पूज्य श्रीउडिया बाबा, स्वामी कृष्णानन्दजी, सत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, स्वामी अखण्डानन्दजी, माता आनन्दमयी आदि विभूतियाँ एक साथ पधारी हुई थीं। मैं भी सतोकी सेवामे उपस्थित था। एक दिनकी बात है—श्रीउडिया बाबा वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। अनूपशहरके पासके किसी गाँवके एक राजपूत बाबाके पास पहुँचे। उन्होने बातचीतके दौरान कहा—बाबा! मैं इस वर्ष बद्रीनाथकी यात्रापर जाना चाहता हूँ। बाबाने कहा—तीर्थयात्रा बडे भाग्यसे होती है, अवश्य जाइये। बाबाने पूछा—परिवारमे कौन-कौन ह? ठाकुर साहबने बताया—विधवा माता हैं। भाई सेनाम हानेके कारण बहुत दूर है।

बाबाने सहजहीमे पूछ लिया—माताजीका स्वास्थ्य तो ठीक होगा। अपना काम स्वय कर लेती हागी।

ठाकुर साहबने कहा—वे वृद्धा होनेके साथ-साथ अपङ्ग हैं, वे बीमार भी हैं, उनकी देखभालके लिये नौकर-नौकरानी रहेगे।

बाबा बोले—अरे भैया! अपङ्ग-बीमार वृद्धा माँको नौकरापर छोडकर तीर्थयात्राके लिये जाना उचित नहीं है। सबसे बडा तीर्थ तो वह वृद्धा माँ ही है। उसके चरणोकी सेवा करो। स्वत तीर्थयात्राका पुण्य मिल जायगा। मेरे सामने ही ठाकुर साहबने सङ्कल्प लिया कि वे तीर्थस्वरूपा बीमार माताजीको छोडकर कहीं नहीं जायँगे।

स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजकी सत्प्रेरणा

एक बार महान् विरक्त सत स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज हाथमे करुवा लेकर गढमुक्तेश्वरतीर्थकी ओर पैदल विचरण करते हुए पिलखुवा पधारे। वे ठाकुरद्वारामन्दिरमे रुके। मुझे पता लगा कि एक दण्डी सन्यासी मन्दिरम पधारे हुए हैं। मैंने माताजीद्वारा आलेमे रखे गये पैसोमेसे इकन्नी उठायी और बाजारसे फल खरीदकर मन्दिर गया। पूज्य स्वामीजीके चरणस्पर्श कर फल सामने रख दिये। स्वामीजीने मुझे आशीर्वाद दिया, परिचय पूछा तथा बोले—इन फलोको खरीदनेके लिये पैसा कहाँसे लाये? मैंने उत्तर दिया—माताजीके रखे पैसामेसे लाया हूँ।

उन्होने पूछा—क्या माताजीसे पूछकर लाये हो या बिना पूछे।

मैंने सहज भावसे कहा—महाराजजी, माताजी पूजा कर रही थीं। मैं बिना पूछे आलेमसे इकन्नी उठा लाया।

स्वामीजीने कहा—फल वापस ले जाओ। माता-पिताकी आज्ञा प्राप्त करके ही पैसे लेने चाहिये, अन्यथा चोरीका पाप लगता है।

पूज्य स्वामीजीके इन शब्दोने मुझ बालकको झकझोर डाला। उसी दिन सङ्कल्प ल लिया कि माता-पिताजीकी आज्ञा बिना एक अधेला भी नहीं उठाना है। स्वामीजीके दिये उस सस्कारयुक्त उपदेशका मैंने जीवनभर पालन करनेका प्रयास किया।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य पूज्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके साथ कई बार पैदल भ्रमणका, उनकी दिनचर्याको निकटसे देखनका मुझे परम सौभाग्य प्राप्त होता रहा। पूज्य स्वामीजीसे यदि कोई भिक्षा ग्रहण करनेकी प्रार्थना करता तो वे उससे पूछा करते थे—क्या तुम अण्डा, मास, मछली तो नहीं खाते? घरमें प्याज-लहसुन मास-मदिराका सेवन तो नहीं किया जाता? घरम कोई तबाकू तो नहीं पीता? जिन परिवाराम इन अखाद्य पदार्थोका सेवन होता, उन परिवारोंकी भिक्षा वे ग्रहण नहीं करते थे। उनके भिक्षा ग्रहण करनेके इस कठोर नियमसे ही अनेक लोग प्रेरणा लेकर—सस्कार ग्रहण कर तामसिक पदार्थोका सेवन न करनेका सङ्कल्प ल लेते थे। स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तो दर्शनाके लिये आनेवाल प्रत्येक श्रद्धालुको ऐसी प्रेरणा दिया करते थे कि उसका जीवन ही बदल जाता था।

एक बार गढमुक्तेश्वरम गङ्गातटपर एक झोपडीमे पूज्य स्वामीजी ठहरे हुए थे। पता लगते ही मैं उनके श्रीचरणोमें पहुँच गया।

मेरे समक्ष ही एक सेवक फल लेकर आया तथा उनक चरणोम अर्पित करके बैठ गया।

पूज्य स्वामीजीन परिचय पूछा तो उसने बताया कि अमुक गाँवका रहनवाला हूँ, जातिस ब्राह्मण हूँ, अग्रेजी स्कूलम पढता हूँ।

स्वामीजीने कहा—अरे तुम ब्राह्मण होकर भी पैण्ट पहने हुए हो, सिरपर चोटी नहीं है। स्कूलम म्लेच्छ भाषा अग्रेजी पढते हो। अपना मानव-जीवन क्या व्यर्थ कर रहे हो। धोती-कुर्ता हमार धर्मप्राण भारतकी पोशाक है, उसे धारण किया करो। सिरपर चोटी रखो। यज्ञोपवीत पहनो। प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन किया करो। अग्रेजीकी जगह सस्कृत पढो। सस्कृत पढकर ही धर्मशास्त्र पढ सकोगे।

उन ब्राह्मणदवताने उसी समय सङ्कल्प लिया कि वे आजसे ही उनके उपदशका पालन करेगे।

बादम वे सस्कृत पढकर सस्कृतके अध्यापक बने। अपना समस्त जीवन सनातनधर्मके अनुसार व्यतीत किया तथा अन्तिम समयतक स्वामीजीके प्रति श्रद्धा-भावना रखते रहे।

एक बार स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज गढमुक्तेश्वरतीर्थम घमण्डीलालके मन्दिरम विराजमान थे। उन दिना गाँवोम साग हुआ करते थे। लखमीचन्द सागीकी दूर-दूरतक ख्याति थी। हजारा व्यक्तियाकी उपस्थितिम जब लखमीचन्द मचसे नगाडेकी तालपर इतिहासकी किसी घटनाको स्वरचित सागम गाकर सुनाते तो श्रोतागण वाह-वाह कर उठते थे।

एक दिन गढमुक्तेश्वरम गङ्गास्नानके लिये आये हुए लखमीचन्द स्वामीजीकी ख्याति सुनकर उनके दर्शनोके लिये पहुँचे। उनके साथ आये व्यक्तिने कहा—महाराज! ये सुविख्यात श्रीलखमी सागी हैं। इनके पदा एव गायनको सुनकर लोग झूम उठते हैं।

उसन स्वामीजीको बताया कि मैं जातिसे ब्राह्मण हूँ। यह सुनते ही स्वामीजीने कहा—तुम कैसे ब्राह्मण हो! न सिरपर चोटी है न माथेपर तिलक है! क्या यज्ञोपवीत है क्या सन्ध्या-वन्दन करते हो?

स्वामीजीक शब्द सुनते ही लखमीचन्द चुप हो गय। उन्हाने हाथ जाडकर कहा—महाराज! आपके आदेशका पालन करूँगा।

लखमीचन्दन स्वामीजीका स्वरचित पद तथा भजन सुनाय। एक पद किसी राजकुमार-राजकुमारीक प्रेम-प्रसङ्गको लेकर था। स्वामीजीने कहा—इस प्रकारक गानासे युवापीढीपर गलत सस्कार पडते हैं। अपनी प्रतिभा एव वाणीका दुरुपयोग कदापि नहीं करना चाहिये। तुम्ह अच्छे सस्कार देनेवाले और लोगोम धर्मकी भावना पैदा करनवाल भजन ही सुनाने चाहिये।

पूज्य स्वामीजी परम विरक्त सत थे। उन्हे आश्रम बनानेके लिये न किसीसे धन लेना था न किसीको शिष्य बनाना था। इसीलिये वे शास्त्राके आदेशको दृढताके साथ सबके सामने रखनेको तत्पर रहते थे। शङ्कराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तो गृहस्थोंको ही नहीं सन्यासिया साधुआतकको भी धर्मविरुद्ध आचरण करते देखकर उद्वेलित हो उठते थे तथा उन्ह भी सन्यासियाके सस्कारोका पालन करनेकी प्रेरणा देते थे।

एक बार पूज्य स्वामीजी एक आश्रमम ठहरे हुए थे। वे सायकाल यमुनाक पावन तटपर विचरणक लिये जानेसे पूर्व पासकी कुटियाम पहुँचे तो उन्हाने देखा कि एक सन्यासीके पैरामे महिला तेल लगा रही है। यह देखते ही उन्हाने कहा—स्वामीजी! यदि महिलासे चरणसेवा करानी थी तो घर छोडकर साधु क्यो बने? महिला देवीस्वरूपा होती है। उससे चरणस्पर्श कराना, सेवा कराना सन्यासधर्मके विरुद्ध है। उन सन्यासीने तुरत सङ्कल्प लिया कि भविष्यम एसा धर्मविरुद्ध आचरण कदापि नहीं करग।

आज प्राचीन सस्काराकी उपक्षा किये जानेके दुष्परिणाम सभीके सामने आ रहे हैं। सस्कारहीनताकी आँधीने सभीको प्रभावित कर रखा है। अपनी प्राचीन सभ्यता तथा सस्कृतिको त्यागकर पश्चिमी देशाकी विकृतियाके पीछे दौडनेके कारण ही धर्मप्राण भारतके लाग तरह-तरहकी व्याधियास त्रस्त हो रहे हैं। धर्मकी घोर अवहेलना एव उपेक्षाके कारण चारा ओर उच्छृङ्खलता और मर्यादाहीनताका वातावरण दिखायी दे रहा है। यदि हम सच्चे अर्थोम सुख शान्ति तथा समृद्धि प्राप्त करना चाहते हैं लोक-परलाक—दोनामें कल्याण चाहते हैं तो हमें अपना जीवन पुन धर्ममय बनाना होगा एव अपनी सतानको विशेषकर युवापीढीको अच्छ-अच्छे सस्कार देकर उस सन्मार्गपर चलनकी प्ररणा दनी हागी।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गायल]

सत-कृपासे दिव्य संस्कारकी प्राप्ति

(श्रीइन्द्रदेवप्रसादमिहजी)

मानवको महान् लक्ष्यारोही बनानेहेतु हमारे आचार्योंने सस्काराकी लम्बी सूची प्रदान की है। किन्हींने आठ, किन्हींने सोलह, किन्हींने चालीस और किन्हींने अडतालीसतकको गणना प्रदान की है, किंतु समन्वयनके बाद सोलह सस्कारोकी मान्यता ही सस्कृतिम सर्वस्वीकृत है। क्रियात्मकताकी दृष्टिसे इन सालहम भी कुछक ही व्यवहारम प्रचलित हैं शेष तो पोथियाम ही सा रहे हैं। न जाने कब इनकी जागृति होगी। परम्पराप्राप्त सस्काराके अतिरिक्त भी हमारी भारतभूमिमे कुछ अद्भुत दिव्य सस्कार शिक्षा-दीक्षाक क्षेत्रमे उपलब्ध हैं, जो सर्वथा भावकाण्डके अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। ऐसे ललित एव प्रेरक सस्कार भी क्रियात्रयीका निर्वाह करते हैं। किसी दिव्य भावापन्न सतकी दयार्द्र दृष्टि होनेपर विकृत सस्कारसयुक्त प्राणी भी क्षणार्द्धमे सुसस्कृत हो जाता है।

पूर्वजन्मार्जित कुसस्कार तथा वर्तमान कुसग एव गर्हित अभ्याससे कुसस्कारसवलित मनुष्यको नवनीतहृदय सतकी कृपादृष्टि क्षणमे सुसस्कृत कर देती है। सतोकी दिव्य करुणामयी दृष्टिसे क्षणम मनका कायापलट हो जाता है और कपट कोसा दूर भाग जाता है। गर्हित परमाणुका जीवम लेश भी नहीं रहता। वहाँ तो परिष्कृत परमाणुकी पारदर्शिता पनप उठती है। प्राणी पुण्यश्लोकधर्मा बन जाता है। प्रमाणपुष्टिके लिये इस प्रकारके एक दिव्य सस्कारका दिग्दर्शन पर्याप्त होगा। वैस तो सनातनसस्कृतिम ऐसे दिव्य सस्काराकी सुदीर्घ सूची है, किंतु यहाँ मात्र एककी चर्चा प्रस्तुत है—

'जय जय रघुबीर समर्थ'-मन्त्रके नित्य-निरन्तर जापक समर्थ गुरु श्रीरामदासजी महाराज अपनी सम्यक् सन्यस्तवृत्तिम अद्वितीय थे। नित्य-भिक्षोपजीवी थे मात्र एक घरसे ही उपलब्ध सामग्रियाद्वारा शरीरमन्दिरकी सेवा करते थे। नित्यनियमानुसार एक दिन उन्होने प्रात कालमे *'जय जय रघुबीर समर्थ'* की ध्वनि करते हुए भिक्षाहेतु नगरम प्रवेश किया।

स्वनिष्ठानुसार वे एक द्वारपर रुके और पुन -पुन *'जय जय रघुबीर समर्थ'* का उद्घोष करते हुए उन्होने **'भिक्षा देहि'** का अनुनय किया। गृहिणीकी ओरसे विलम्ब होता देख समर्थजीन पुन एक-दो बार अपने आराध्यका नामोच्चारण किया। सयोगसे गृहस्वामिनी उस समय अपनी गृहचर्यामे सलग्न थी। वह उस समय चौकेको गोबर-मिट्टीसे लीप रही थी। **'भिक्षा देहि'** की पुन -पुन ध्वनि सुनकर गृहिणी सहसा आक्रोशवश झल्ला उठी। क्रोधावेशमे विवेकशून्य होकर उस नारीने मृत्तिका-गोबरमिश्रित पोतनेको श्रीसमर्थके चेहरेपर द मारा और कहा कि 'ले भिक्षा'।

महात्मा समर्थ श्रीरामदासने इस विषम क्षणम अपने समर्थ नामको सहज ही सार्थक किया। ऐसी विपरीत घटनासे वे तनिक भी विचलित न हुए। बल्कि उन्हाने सहर्षस्वरमे देवीको धन्यवाद दिया, साथ ही सर्वव्यापी परमात्माको भी। उन्होने अपने मनको सम्बोध प्रदान किया कि आज मेरे भाग्यमे यही भिक्षा बदी थी। समर्थ श्रीरामदासजी उस पोतनेको लेकर आश्रमपर आये। आश्रमपर आते ही स्वामीजीने अपने अक्षय करुणाकोषको खोल दिया उस दिग्भ्रमित अबलापर। अत्यन्त अनुरागपूर्वक सत समर्थने नारीप्रदत्त पोतनेको तल्लीनतापूर्वक धोकर सर्वाङ्गस्वच्छ किया। पुन सूर्यरश्मिके सम्मुख कर उसे सुखाया, तदुपरान्त मनोयोगपूर्वक उस कपडेकी वर्तिका बनायी, फिर घृतमिश्रित उस वर्तिकाको दीपकम डालकर ठाकुरजीके सामने प्रज्वलित कर दिया। सतद्वारा निर्मित दीपवर्तिकाने अद्भुत आलोक बिखेर दिया—न केवल मन्दिरमे, बल्कि उस उग्रस्वभावापन्न नारीके हृदयमन्दिरम भी। मधुर-मधुर लौसे मन्दिरमे दीपक जल रहा था और उधर शनै -शनै उस नारीका विकृत सस्कार भस्मीभूत हो रहा था। मध्यरात्रिम सतकी दयाभरी प्रार्थना हो रही थी अपने आराध्यसे कि प्रभु उस गृहिणीको सुसस्कृत कर द। सतकृपा, सचमुच उस नारीका सम्पूर्ण दाष ही समाप्त हो गया। सुशीला नारीकी भाँति सद्गुणाकी अक्षय निधि उसे रात्रिभरम प्राप्त हो गयी। उसे स्व-स्वरूपका सम्यक् बोध उपलब्ध हो गया। सतके प्रति किये गये दुर्व्यवहारपर उसे पश्चात्तापकी

अग्निमे जलना पडा। सत श्रीसमर्थकी द्रवणशीलतासे इसमे भी हीनाङ्गपूर्तिस्वरूप कुन्दनवत् कान्तिमय भक्तिका आविर्भाव हो गया। रात्रिभर राहतकी साँस ले सकी वह। प्रात पौ फटते ही उसन श्रीसमर्थके चरणापर प्रणिपात किया और वह बारम्बार आर्तस्वरसे 'क्षमा देहि' की याचिका बन गयी। इधर पूर्ण सूर्योदय हुआ। दूसरी ओर उस पथविमुख अबलाका पूर्ण भाग्योदय। श्रीसमर्थरामदासने उसे अपने अमोघ आशीर्वचनासे निहाल कर दिया। विकृतसे सस्कृत नहीं, सुसस्कृत कर दिया और कारण था—*'लागि दया कोमल चित सता।'* उस नारीकी अवस्था *'नाथ आजु मै काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा'* की हो गयी। नयनोके नीरसे श्रीसमर्थके चरणोको धोने लगी। इस महान् परिवर्तनसे स्वामीजी भी पिघल गये और उस नारीको सदा सदाके लिये कृपाभाजन बना लिया और बना दिया उस योग्य जो प्रभुमन्दिरम शान्त स्निग्ध चित्तसे पदार्पण कर सके। धन्य है सताके द्वारा दिया गया सस्कार जो कोपभाजनको भी कृपाभाजन बना देता है।

ऐसा सस्कार चारो आश्रमा एव चारा वर्णोके सस्कारासे सर्वथा भिन्न माना जाता है। उक्त सस्कार परिभाषासे परे है। इसीलिये तो परम्परापोषित एव परिगणित सस्कारामे इसका खाता कहीं नजर नहीं आता। यह सस्कार विशेष खाताधारी है। हमारे दीर्घदृष्टिसम्पन्न ऋषि-महर्षियाके पास न जाने एसी कितनी विद्याएँ थीं, जिनके माध्यमसे वे भगवद्विमुख जीवाको क्षणमे भगवत्सम्मुख बना डालते थे। वे किसी व्यक्तिद्वारा स्पर्शित वस्तुके परिमार्जन-परिशोधनद्वारा उस व्यक्तिके शारीरिक परमाणुआको परिष्कृत कर डालते थ। फलस्वरूप वह व्यक्ति अपने-आपमे आमूल-चूल परिवर्तित हो उठता था। आधुनिक विज्ञानने भी अनेक क्षेत्रामें स्थूलरूपसे इस प्रक्रियाको अपनाकर लाभ उठाया है।

दिव्यदृष्टिसम्पन्न आचार्योने इन प्रक्रियाओको भूतशुद्धि-सस्कार कहा है। भावनाशक्ति और मन्त्रशक्तिके सयोगसे क्रियाविशेषद्वारा शरीरस्थ समलभूतोको भस्मीभूत करके नवीन दिव्य भूताका आविर्भाव किया जाता है। स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरके शोधनमे ही इन सस्कारोका सदुपयोग है। चित्तशुद्धिक लिये भारतीय आर्षपरम्परामे अनेक विधियोका निरूपण हुआ है, किंतु उनम भी सस्कार-साधनोका विशेष निर्देश हुआ है। अव्यय ब्रह्मस वियुक्त शरीरके पञ्चभूतोका परिशोधन कर ब्रह्मके दुर्लभ सयोगक योग्य बना देना ही इन सस्काराका मूल तात्पर्य है।

संस्कारसम्पन्न महापुरुषोके उदात्त चरित

(श्रीघनश्यामजी वर्मा)

समय-समयपर पृथ्वीपर कुछ ऐसे पुरुष आते हैं, जो हमारी तरह नहीं होते। यह ठीक है कि देखने-सुननेमे वे दूसरोसे भिन्न नहीं होते, पर यह भी सत्य है कि हममे और उनम इतना अधिक अन्तर होता है, जितना यहाँके सुख और स्वर्गके आनन्दम। उनके प्रकाशसे हमारा जीवन प्रकाशित होता है। उनके उपदेशामे जीवनको ऊँचा उठानेम सहायता मिलती है। महापुरुष किसी भी जमानेमे हुए हा उनकी शिक्षाएँ कभी पुरानी नहीं पडतीं। वे जा कुछ कहते हैं वह सब समयके लिये और सबकी भलाइक लिय हाता है। इस लेखमे कुछ महापुरुषाका सक्षिप्त परिचय दिया गया है जो युगो-युगातक ससारके लिये आदर्शक प्रतिमान कहे जाते रहगे।

चैतन्यमहाप्रभु—चैतन्यमहाप्रभुका जन्म विक्रम सवत् १५४२ की पूर्णिमाको होलीके दिन पश्चिम बगालके नवद्वीप गाँवम हुआ था। उनके पिताका नाम पण्डित जगन्नाथ मिश्र और माताका नाम शचीदेवी था।

बालकका नाम विश्वम्भर रखा गया। प्यारसे माता-पिता उसे 'निमाई' कहते थे। चैतन्यने लडकोको पढानेके लिय एक पाठशाला खोली जिसम विद्यार्थी आने लगे। निमाई (चैतन्य) अपने विद्यार्थियोका मेहनतसे पढाते और मित्रकी तरह उनसे प्रेमभाव रखते। माताके विशेष आग्रहपर इन्हान पण्डित वल्लभाचार्यकी पुत्री लक्ष्मीदेवीसे विवाह कर लिया जिसे ये बचपनसे ही जानते थे। दुर्भाग्यवश पत्नीकी अल्पसमयम ही मृत्यु हो गयी। अपनी आयुके २४

वर्षतक चैतन्य गृहस्थाश्रमी रहे।

इनके गुरु सन्यासी ईश्वरपुरी थे। कृष्णभक्तिके गीत गाते हुए वे जनताके हृदयमे भगवद्भक्तिकी भावना भरने लगे। गोरवर्णके कारण 'गौराँग महाप्रभु' नामसे चैतन्य प्रसिद्ध हुए।

जगन्नाथपुरीमे चैतन्य महाप्रभुका मठ विद्यमान है। चैतन्य प्रभु अधिकतर जगन्नाथपुरीमे ही रहते थे और मूर्तिके आगे खडे होकर घटो रोया करते थे। अडतालीस वर्षकी उम्रमे रथयात्राके दिन उनकी जीवनलीला समाप्त हो गयी। उनका शरीर चला गया पर उनका नाम सदा अमर रहेगा। भक्तिकी उन्होने जो धारा बहायी वह कभी नहीं सूखेगी और लोगोको सदैव पवित्र करती रहेगी। साथ ही इन्होने नाम-सकीर्तनके सस्कारका जो बीज बोया वह सुरभित होकर सभीको आप्यायित कर रहा है।

गुरु नानक—१५वीं शताब्दीमे गुरु नानकका आविर्भाव हुआ। उनके पिताका नाम बेदी कालूचद पटवारी और माताका नाम तृप्तादेवी था। कार्तिक पूर्णिमाके दिन पजाबके तलवडी गाँवमे नानकका जन्म हुआ। बचपनसे नानकका ध्यान साधुओमे लगा था। उनकी पत्नीका नाम सुलक्षणी था। विवाहके बाद उन्हे श्रीचन्द्र तथा लक्ष्मीदास नामक दो पुत्र हुए थे, परतु ससारमें उनका चित्त रमा नहीं, वे परिवारका त्याग कर निकल पडे। भारतके सभी तीर्थोंकी यात्रा नानकदेवने की। कई तीर्थस्थानोमे उन्होने धर्मशालाएँ बनवायीं। अफगानिस्तान, ईरान इत्यादि देशोमे उन्होने यात्रा कर अपने विचारोका उपदेश दिया था। कई मुसलमान नानकजीके शिष्य हुए थे। उनके अनुयायी 'ग्रन्थसाहब' नामक जिस धर्मग्रन्थको बडी श्रद्धासे पढते हैं, उसमे गुरु नानकदेवकी वाणी बडे प्रमाणमे सगृहीत है। इस धर्मग्रन्थमे कबीर, रविदास, मीराबाई, नामदेव आदि महान् सतोके काव्य सकलित किये गये हैं।

रामकृष्ण परमहस—बगालकी धरतीने जिन सस्कारसम्पन्न महापुरुषोको जन्म दिया है उनमसे रामकृष्ण परमहस उच्च कोटिके सत हुए हैं। रामकृष्णका जन्म हुगली जिलेके 'कामारपुकुर' गाँवमे खुदीराम चट्टोपाध्याय नामक श्रद्धालु ब्राह्मणके यहाँ हुआ। आपकी माता चन्द्रमणि भी धार्मिक विचारोकी महिला थीं। इन्हींके यहाँ १७ फरवरी १८३६ के दिन रामकृष्णने जन्म लिया।

रामकृष्णका बचपनका नाम गदाधर था। रामकृष्ण परमहस नाम उनके सन्यासी जीवनमे पडा। वे कुशाग्र बुद्धिके बालक थे। उनका गला सुरीला था। अध्यापक उन्हे बहुत स्नेह करते थे। अपने बडे भाई रामकुमारकी मृत्युके बाद प्रबन्धकने दक्षिणेश्वरमे कालीके मन्दिरकी पूजाका भार परमहसपर छोड दिया था। वे कालीके परम भक्त हो गये। माता-पिताने इनका विवाह शारदामणिसे कर दिया जो बादमे जाकर शारदादेवीके नामसे विख्यात हुईं। उन्होने शारदामणिसे पत्नी-जैसा सम्बन्ध न रखा बल्कि उन्हे भी पूज्य माना। शारदादेवी भी मन्दिरमे ही रहने लगीं। आपकी प्रसिद्धि देशके कोने-कोनेमे फैल गयी।

रामकृष्ण उच्चकोटिके भक्त थे। साथ ही वे समाजसुधारक और देश एव सस्कृतिसे भी प्रेम करते थे। जिस समय वे कार्यक्षेत्रमे आगे आये उस समय भारतमे लोग अपनी परम्परा और मर्यादाको त्यागकर अग्रेजी शिक्षा और सस्कृतिको अपनाने लगे थे। स्वामीजीने भारतीय सस्कृतिके प्रति देशवासियोका ध्यान आकर्षित कर उनमे देश-प्रेम जाग्रत् किया। स्वामीजीमे अहकार लेशमात्र भी नहीं था। स्वामीजी सरल बँगलाभाषामे उपदेश देते थे। उनके उपदेशोका सग्रह रामकृष्ण-आश्रमद्वारा किया गया है। स्वामीजीने ५१ वर्षकी उम्रतक अपने भक्तोको उपदेश देने और देशवासियोको उचित मार्गदर्शन करानेके बाद १८८६ ईसवीके अगस्त माहमे प्राण-त्याग किया था।

बालगगाधरतिलक—१९वीं शताब्दीके आरम्भमे छोटे-छोटे स्वतन्त्र देशी राज्य आपसमे लडकर कमजोर हो गये थे। दक्षिणमे मराठा राज्य भी कमजोर हो गया था। देश आर्थिक राजनीतिक तथा प्रशासनिक रूपसे अग्रेजोका उपनिवेश बन चुका था।

ऐसे वातावरणमे महाराष्ट्रके रत्नागिरी जिलेमे २३ जुलाई १८५६ ईसवीको बालगगाधरतिलकका जन्म गगाधरपत नामक गरीब ब्राह्मणपरिवारमे माता पार्वतीबाईके गर्भसे हुआ। उनके पिता सस्कृतके विद्वान् थे। तिलकमे भी विलक्षण प्रतिभा थी। खेल-खेलमे ही इन्होने गणित और सस्कृतकी इतनी शिक्षा प्राप्त कर ली कि पाठशाला जानेपर अध्यापकोसे कुछ भी सीखनेकी आवश्यकता नहीं रही।

आपन डक्कन कॉलेजसे बी०ए० और बम्बईसे एल्-एल्०बी०की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षासमाप्तिके बाद आपने ससारके कार्यक्षेत्रम उतरकर अनेक कार्य किये। चौदह वर्षकी अवस्थाम ही आपका विवाह सत्यभामा बाईसे कर दिया गया। तिलकको बचपनसे ही गीतासे अगाध प्रेम था। आपने माडले जेलम समयका सदुपयोग मराठीमे गीताका सरल भाष्य 'गीतारहस्य' तैयार करक किया। इसम आपके प्रकाण्ड पाण्डित्यका प्रदर्शन मिलता है। अत्र तो कई भाषाओम गीतारहस्यके अनुवाद प्रकाशित हा चुके हैं। तिलकको 'लोकमान्य' की पदवी इसलिये मिली थी कि उन्होने लोकसाधारणकी व्यथाको समझा था। उसके उपचारके लिये अथक श्रम किया था। तिलकने ही सर्वप्रथम देशको **'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'**—यह महामन्त्र सिखाया था। अन्त समयमे आप ज्वरसे पीडित रहे तथा ३१ जुलाई १९२० को बम्बईम आपका स्वर्गवास हो गया।

महामना प० मदनमोहन मालवीय—मालवीयजीका जन्म २५ दिसम्बर, १८६१ को इलाहाबादम प० ब्रजनाथ चतुर्वेदीके यहाँ हुआ। इनकी माता भूनादेवी दयावती और धार्मिक स्वभावकी महिला थीं। प० मदनमोहनपर अपने माता-पिताके गुणाका विशेष प्रभाव पडा। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही हुई। घरकी आर्थिक स्थिति कमजोर होनेके कारण बी०ए० करनेके बाद आगे न पढ सके और इलाहाबादके जिला स्कूलमे अध्यापक हो गये जहाँ ३० सालतक कार्य किया। २५ वर्षकी अल्पायुम ही इनकी ख्याति फैल गयी थी। मालवीयजीकी वाणीमे बडा ओज था। जब वे भाषण करते तो लोगापर जादू-सा हो जाता था। आपने कई महत्त्वपूर्ण पत्राका सम्पादनकार्य किया। मालवीयजीने बहुत परिश्रमसे हिन्दीको न्यायालयोमे स्थान दिलाया। उन दिना अदालतामे उर्दू और अग्रेजीका ही बोलबाला था। राष्ट्रभाषाके प्रचार-प्रसारके लिये मालवीयजीन 'हिन्दीसाहित्यसम्मेलन' तथा 'नागरीप्रचारिणीसभा' की स्थापना की।

आप शिक्षाको बहुत महत्त्व देते थे और शिक्षाके माध्यमसे ही देश व्यक्ति और समाजको ऊँचा उठाना चाहते थे। आपके बहुत प्रयत्नोके बाद ही काशीहिन्दू-विश्वविद्यालयकी नींव रखी जा सकी। जबकि आपके पास पैसे नहीं थे। इसके लिये आपने लोगोसे भिक्षा माँगी और पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया। वे लम्बे समयतक वहाँके कुलपति रहे। उनके परिश्रमका फल है कि आज काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयका नाम पूर विश्वमे प्रसिद्ध है। सन् १९४६ म इस महान् शिक्षाशास्त्रीने अपनी देह त्याग दी। परतु काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयकी स्थापनासे उनका नाम सदाके लिये अमर हो गया।

स्वामी विवेकानन्द—विवेकानन्दका जन्म १२ जनवरी १८६३ म कोलकाताके निकटवर्ती गाँवम हुआ था। इनके पिताका नाम विश्वनाथदत्त और माताका नाम भुवनेश्वरी था। इनकी माता बहुत मेधावी थीं। इनका बचपनका नाम नरेन्द्रदत्त था। सन्यासी होनेपर नाम बदलकर 'विवेकानन्द' रखा गया।

छात्रावस्थामे ही इन्होने यूरोपीय दर्शनशाखामे बहुत अधिक जानकारी प्राप्त कर ली थी। इनमे अत्यधिक आध्यात्मिक जिज्ञासा थी। उन दिना सारे भारतम धर्मविप्लव मचा था। बगालमें ईसाईधर्मका प्रचार जोरोंपर था। ब्रह्मसमाजकी नींव भी पड चुकी थी। कई प्रतिभासम्पन्न हिन्दूजन ईसाई हो चुके थे। इसी समय नरेन्द्रदत्तका मन ब्रह्मसमाजकी ओर झुका। शीघ्र ही इनका सम्पर्क रामकृष्ण परमहससे हो गया। परमहसने प्रसन्न होकर इन्हे अपना शिष्य बना लिया और ये विवेकानन्दके नामसे देश-देशान्तरमे विख्यात हो गये। इन्होने अमरिकाम जाकर वेदान्तका प्रचार किया। अपने वक्तृत्व पाण्डित्य और उदात्त चारित्र्यके सामर्थ्यसे स्वामीजीने अमेरिकाको मानो जीत लिया। अमेरिकाके अनेक अध्यात्मनिष्ठ स्त्री-पुरुषोने स्वामीजीका शिष्यत्व ग्रहण किया। इग्लैण्ड, फ्रास आदि देशामे भी उनके वक्तृत्वद्वारा लोगाको हिन्दूधर्मका यथार्थ ज्ञान हुआ। रामकृष्णमिशनका विश्वव्यापी सगठन स्वामीजीके कर्तृत्वका प्रतीक है। ३९ सालकी अल्पायुमे हिन्दूधर्मका पुनर्जागरण करनेका असाधारण कार्य स्वामी विवेकानन्दने किया। ४ जुलाई १९०२ को स्वामीजी समाधिस्थ हुए।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—सन् १८२० ई०मे बगाल प्रान्तम कोलकाताके पास वीरसिह नामक ग्राममे आपका जन्म हुआ। आपके पिता ठाकुरदास बहुत निर्धन थे। इनके जन्मके समय वे आठ रुपये मासिक वेतन पाते थे। माताका नाम भगवतीदेवी था।

विद्यालयमें प्रवेशके समय आप पाँच वर्षके थे। नौ वर्षकी अवस्थामें गाँवसे कोलकातामें पढ़नेके लिये पिताके पास चले गये। आप सदैव हर कक्षामें प्रथम आते थे। आप अपने गरीब साथियोंकी बहुत मदद करते थे। इक्कीस वर्षकी अवस्थामें आपको 'विद्यासागर'की उपाधि मिली और संस्कृतके महान् पण्डित बनकर निकले। आप सबके साथ एक-सा बर्ताव करते थे। ईश्वरचन्द्र सदैव सादी वेशभूषामें रहते और जब किसी भी बड़े-से-बड़े अधिकारीसे मिलते तो सादी वेशभूषामें ही मिलते। आपने बंगालमें संस्कृत भाषाका बहुत प्रचार किया। सैकड़ों पाठशालाएँ खुलवायीं और उन्हें सरकारी सहायता दिलायी। आप सारी आयुभर विधवा-विवाह और कन्याओंमें शिक्षा-प्रचारके लिये लड़ते रहे। आप सदा कठिनाइयोंमें रहकर भी दुःखियोंकी सहायता करते रहे।

महर्षि अरविन्द—महर्षि अरविन्दको हम आज भी नहीं पहचान सके हैं, उन्हें कवि गुरु रवीन्द्रनाथने पहचाना था और एक कविता लिखकर वन्दना की थी। अरविन्दका जन्म १५ अगस्त १८७२ में कोलकातामें हुआ था। उनके पिताका नाम कृष्णधन और माताका नाम स्वर्णलता था। श्रीअरविन्द डॉ० कृष्णधनके तीसरे पुत्र थे। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही अरविन्दको दार्जिलिंगके लारेट कान्वेण्टमें पढ़ने भेज दिया गया। सन् १८७९ में इनके पिताने अपने तीनों लड़कोंको इंग्लैण्ड भेज दिया। पिताकी इच्छा थी कि अरविन्द आई०सी०एस० बनें और अरविन्द आई०सी०एस० परीक्षामें बैठे तथा सम्मानसहित पास भी हो गये। लेकिन उनके पिता जल्दी ही स्वर्ग सिधार गये और उनकी इच्छा पूरी तरहसे पूर्ण नहीं हो सकी। अरविन्दने लेटिन और अंग्रेजीकी उत्तम शिक्षा इंग्लैण्डके पादरीसे ही पायी थी। छोटी उम्रमें ही वे कविता लिखना सीख गये थे। उन्होंने जीवनभर साधना करके जो कुछ पाया, उसे वह हमारे लिये 'सावित्री' नामक गद्यकाव्यमें संजोकर रख गये हैं।

अरविन्दने लंदन-जैसे शहरमें रहकर मुनिपुत्र-जैसा जीवन बिताया। उनमें चरित्रबल और दृढ़ संकल्पशक्ति थी। १४ साल विलायतमें रहनेके बाद भी वे विचारोंसे पूर्णतः स्वदेशी बने रहे। १९०६ से १९१० तक श्रीअरविन्द राजनीतिक खुले मैदानमें रहे। अरविन्द बहुत विनोदप्रिय भी थे। पाण्डिचेरी उनकी तपःस्थली है। यह उनकी कर्म और साधनाभूमि है। जब वे यहाँ आये तब यह मृतप्राय स्थान था। आज यह ऋषिभूमि विश्वका तीर्थस्थान है।

[संस्कार-सौरभ]

~~o~~

अंगिका लोकसाहित्यके संस्कार-गीतोंमें श्रीराम-वर्णन

(डॉ० श्रीनरेशजी पाण्डेय 'चकोर')

वर्तमानमें संस्कारोंका यथोचित विधान तथा कर्मकाण्डीय स्वरूप भले ही लुप्त होता जा रहा है, किंतु लोकजीवनके रीति-रिवाजोंमें संस्कारोंका चलन अभी भी विद्यमान है। जन्म, छठी, मुण्डन, जनेऊ तथा विवाह आदि अवसरोंपर स्त्रियाँ संस्कारोंके स्वरूपोंको भूली नहीं हैं और इस प्रकार संस्कारोंके समय गीत गानेकी प्रथा प्रायः सर्वत्र देखी-सुनी जा सकती है। अपनी-अपनी लोकभाषामें महिलाएँ लोकगीत गाती हैं। अंग जनपद अर्थात् बिहारके भागलपुर, मुंगेर, सहरसा, पूर्णिया मण्डल एवं झारखण्ड प्रान्तके संथाल परगनाकी जनता अंगिका-भाषी है। इस क्षेत्रका लोकसाहित्य (अंगिकासाहित्य) अत्यन्त समृद्ध है।

अंगिका-संस्कारगीतोंका गायन प्रायः छठी, यज्ञोपवीत, मुण्डन एवं विवाहके अवसरपर होता है। यज्ञोपवीत एवं विवाहके अवसरपर लग्न पड़नेके बादहीसे रात्रिको लोकगायन प्रस्तुत किया जाता है। इस अवसरपर शुभारम्भ 'गोसाँय-गीत' से होता है। कम-से-कम पाँच 'गोसाँय-गीत' गाये जाते हैं। इस गोसाँय-गीतमें कुलदेवताकी प्रधानता रहती है। एक गीतकी प्रारम्भिक पङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं—

भगता के एडना चन्दन केरऽ हे गछिया
वही तरे हे ठाढ़ी भेल कुलदवता गोसाँय हे
ठाढ़ी भये देवी जग करावे हे॥

गीतका भाव यह है कि भक्तके आँगनमें चन्दनका वृक्ष है। इसी वृक्षके नीचे कुलदेवता खड़े होकर भक्तके यज्ञका संरक्षण कर रहे हैं।

गीत लम्बा है, जिसे महिलाएँ भावविभोर होकर गाती हैं। इस तरह पाँच गोसाँय-गीत गानेके बाद अन्य गीत गाये जाते हैं।

अब यहाँ वे अंगिका-संस्कार-गीत प्रस्तुत हैं, जिनमें

भगवान् श्रीरामकी विशेष चर्चा है।

एक सोहरगीतकी दो पंक्तियामे श्रीदशरथ कौसल्या और रामके नामका उल्लेख हुआ है—

धनि धनि राजा दसरथ, धनि रे कोसिलेआ रानी हे।
हुनको के नै छिकेन रामचन्दर किए का धीरज धरथिन ह॥

इसी तरह एक सोहरगीतकी अन्तिम दो पंक्तियाम श्रीरामके नामका उल्लेख हुआ है, जो इस प्रकार है—

कोसिला जनम राजा रामचन्दर केकइ भरत भेल ह ललना रे।
सुमित्रा के जनमल लछुमन सब घर सोहावन लागे ह॥

नीचके एक सोहरगीतम औषधि लायी जाती है और कुमारी कन्यासे पिसवाकर उसे कौसल्या कैकेयी तथा सुमित्रा पीती हैं, गर्भधारण करती हैं और पुत्ररत्नकी प्राप्ति होती है—

आहे पहिले ने पिअलक रानी कोसिला तब रानी केकई न हे।
ललना रे सिला धोई पियलक रानी सुमित्रा तीनो रानी गरभ से हे॥
कोसिला के जनमल राजा रामचन्दर भरथ कैकईके जनमल हे।
ललना रे सुमितरा के जनमल लछुमन तीनों घर बधावा बाजै हे॥

एक मुण्डनगीतम दशरथद्वारा अपने पुत्राके मुण्डन-संस्कार करने तथा कैकेयीके रूठनेका उल्लेख हुआ है। गीत निम्न प्रकार है—

चौकिया बैठल राजा दशरथ, मँचिया कोसिला रानी हे।
राजा रामजी के करबैन मुँड़ना भरथ जग मुड़न हे॥
अरिअर नेउतब परिवर औरोसे परिवर हे।
राजा, एक नहीं नेउतब केकैया रानी, विरहा से मातलि हे॥
अरिवर आयल परिवर औरो से परिवर हे।
राजा एक नहीं ऐली केकैया रानी, विरहा के मातलि हे॥
चौका पर से उठला राजा दशरथ चलिभेल केकैया गिरिहि हे।
रानी कौन अपराध हमरा सं भेल नेउतबो फेरि देलन हे॥
राजा भरथ के करबै मुड़नमाँ रामजीके जग मुड़न हे॥

संस्कारक अंगिका-गीतोम श्रीरामकी चर्चा हुई है। यज्ञोपवीत-संस्कारके समय अंगिका-गीतम 'बरुआ' शब्दका अधिक प्रयोग हुआ है। जिस बालकका यज्ञोपवीत-संस्कार होता है उसे 'बरुआ' कहा जाता है। किसी-किसी गीतमे श्रीरामका नाम आता है। नीचेके गीतकी कुछ पंक्तियाम बरुआकी जगह रामचन्दर शब्दका प्रयोग हुआ है—

मौंटी कोड़ायब मड़वा भरायब, मड़वा रतन पमार माई हे।
माइ हे अब देखबै रामचन्दर कै जनेउवा हे॥
बाबा क दै नेवता पठायब अम्मा सहित चलि आयऽ माइ हे।
माइ हे कब देखबै रामचन्दर के जनेउवा हे॥

नीचके एक अंगिका-संस्कारगीतमें श्रीराम एवं लक्ष्मणकी चर्चा हुई है। इसम अवधनगरका नाम भी आया है। गीत इस प्रकार है—

राम लखनके जनेउवा माय हे अवधनगरम।
चन्नन काठ के खँभा गड़ाओल रचि रचि
मड़वा छराओल माय हे अवधनगरम॥
गाय के गोबर अँगना निपाओल केसर
चन्दन छिरकाओल माय हे अवधनगरमें॥
गजमोतियनके चोक पुराओल सोनेके
कलस धराओल माय हे अवधनगरमे॥
कनक कलस पुरहर लै धराओल मानिक
दियरा बराओल माय हे अवधनगरम॥
जनेउबात पड़े रघुबर के, सखी सब
मंगल गाओल माय हे अवधनगरम॥

विवाह-संस्कार जीवनका एक बहुत बड़ा संस्कार है। अंगिका-संस्कार-गीतामें विवाहके नाना प्रकारके विधि-विधानके गीत हैं, जिनम श्रीरामकी चर्चा हुई है। नीचेके गीतम श्रीरामद्वारा धनुषभंग करनेपर उनका तिलक-संस्कार विधि-विधानके साथ सम्पन्न होने और फिर उनका सीताके साथ विवाह होनेका उल्लेख हुआ है—

कहमाँ से आयल बालक कहमाँ कैने जाय।
किनकर जे तोहं बालक छिका किनका के तिलक चढाउ हे॥
अवधपुरी से आयल बालक जनकपुर कैने जाय हे।
राजा दशरथजीके बालक छिकाँ हुनकऽ तिलक चढाइ हे॥
पीयर धोती पाग पछौटा, हाथ मुठी पाकल पान हे।
राजा दशरथजीके बालक छिका हुनका तिलक चढाऊ हे॥
हरदी दुभी लेके माता चुमाहू सुभ सखि मंगल गाउ हे।
ई बालकके कोमल काया धनुखा कैसे टूटत हे॥
टूटल धनुषा चहु दिसि बिखरल सीता बिआहे मुसुकाय हे।

इस प्रकार अंगिकालोकभाषाके संस्कारगीतोंमें अधिकांशमें भगवान् श्रीरामकी मङ्गलचर्चा आयी है।

~~~ ० ~~~
~~~

भगवान् श्रीरामद्वारा सुसंस्कृत एवं सदाचारमय मर्यादाकी स्थापना

(श्रीरामपदारथजी सिह)

सुसस्कृत एव सदाचारमय जीवनक निर्माणमें सस्कारोका सहयाग आर्ष-अनुभवसे सिद्ध है। सम्कार उन क्रियाओको कहते हैं जो योग्यता प्रदान करती हैं—**'योग्यता चादधाना क्रिया सस्कारा इत्युच्यन्ते'** (तन्त्रवार्तिक)। बालकको सर्वविध योग्य बनानेहेतु उसके जन्मके पूर्वसे ही सस्कार-क्रिया प्रारम्भ कर देनेका विधान शास्त्रामे पाया जाता है। वेदोक्त मन्त्रोसे गर्भाधान आदि शरीर-सस्कार करनेसे इहलोक तथा परलोकमे पवित्रता प्राप्त होती है। गर्भशुद्धिकारक हवन, जातकर्म चूडाकरण एव यज्ञोपवीत आदि-सस्कारासे वीर्य तथा गर्भमें उत्पन्न दोष नष्ट होते हैं। स्वाध्याय, मास-मदिरा आदिके त्यागरूप व्रतादिसे मानव-शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बनाया जाता है—**'ब्राह्मीय क्रियते तनु '** (मनु० २।२८)।

सदा शुद्ध सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म श्रीभगवान् स्वय महाराज दशरथके पुत्र बनकर श्रीरामरूपम प्रकट हुए थे। वे परिपूर्णतम परमात्मा थे, उनमे कोई कमी नहीं थी, अत योग्यताप्राप्तिहेतु उन्ह किसी सस्कारकी आवश्यकता नहीं थी, परतु उनका अवतार तो लोकशिक्षणके लिये हुआ था। उन्ह अपने चरित्रसे मानव-जीवनोपयोगी अनेक आदर्शोंकी स्थापनाके क्रमम स्वय सस्कारित होकर मानव-जीवनको सुसस्कृत एव सदाचारमय बनानेमे सस्कारोकी उपयोगिता भी सिद्ध करनी थी, इसलिये वे राजा दशरथके यहाँ उनका पुत्र बनकर तबतक अवतरित नहीं हुए, जबतक श्रीदशरथजीने पुत्रेष्टियज्ञ नहीं किया। यज्ञसे सस्कारित पवित्र पायमको ग्रहण कर महाराज दशरथजीकी रानियाँ गर्भवती हुईं। गर्भाधान-सस्कारकी दिव्य विधिकी ओर गोस्वामी तुलसीदासजीने ध्यान आकर्षित किया है—

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥

(रा०च०मा० १।१९०।५)

जिस दिनसे भगवान् श्रीहरिने मातृगर्भमे आगमनकी लीला आरम्भ की, उस दिनसे सब लोकोम सुख-सम्पत्ति छा गयी। यथा—

जा दिन ते हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख सपति छाए॥

(रा०च०मा० १।१९०।६)

आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामजन्मके उपरान्त गृह्यसूत्रोक्त सभी सस्कारोके किये जानेका वर्णन सूत्रशैलीमें करते हुए कहा है—**'तेषा जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्य-कारयत्'** (वा०रा० १।१८।२४) अर्थात् महर्षि वसिष्ठने समय-समयपर दशरथसे श्रीराम आदि बालकोंके जातकर्म आदि सभी सस्कार करवाये। गोस्वामी श्रीतुलसीदासने भगवान् श्रीरामके किये गये अनेक सस्कारोत्सवोका नामोल्लेखपूर्वक और विवाह-सस्कारोत्सवका विस्तारसे मनामुग्धकारी वर्णन किया है। अधोलिखित पङ्क्तियोम विवाहेतर सस्कार चर्चित हैं—

नदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

(रा०च०मा० १।१९३)

नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥

(रा०च०मा० १।१९७।२)

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥

(रा०च०मा० १।२०३।३)

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(रा०च०मा० १।२०४।३-४)

बालकोंके नामकरण-सस्कारका अवसर जानकर महाराज दशरथन गुरु वसिष्ठको बुलवाया, लेकिन चूडाकरण-सस्कार गुरु वसिष्ठने स्वय जाकर किया। इससे यह सदेश मिलता है कि बालकके पिता और कुलपुरोहित—दोनोको बालकके सस्कारोके सम्बन्धम सचेत और सचेष्ट रहना चाहिये ताकि सस्कारोके लिये निर्दिष्ट समयका अतिक्रमण न होने पाये। श्रीराम तथा उनके सभी भाई विद्या, विनय, गुण एव शीलमें निपुण थे—*'बिद्या बिनय निपुन गुन सीला'* (रा०च०मा० १।२०४।६)। इसे विधिपूर्वक सस्कार सम्पन्न किये जानेका सुफल समझा जाना चाहिये।

सस्कारोकी उपेक्षाका दुष्परिणाम भी द्रष्टव्य है। गर्भाधानके लिये निषिद्ध समय—सन्ध्याकालमे कैकसीने विश्रवा मुनिसे पुत्रकी कामना की। उसका अभिप्राय जानकर मुनिने उससे कहा कि तुम दारुण वेलाम मेरे पास आयी हो, इसलिये क्रूरतापूण कर्म करनवाले राक्षसोको पैदा करोगी—**'प्रसविष्यसि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मण '** (वा०रा० ७।९।२४)। कैकसीके मनोवेगने उसके पुत्र रावणके चित्तपर एक स्थायी कुसस्कार स्थापित कर दिया, जो उसके तप और वेदाध्ययनसे भी दूर नहीं हुआ। किसी व्यक्तिका सभ्य सस्कृत और सदाचारी हाना उसकी ऊँची शिक्षापर उतना अवलम्बित नहीं है जितना उसके सस्कारपर।

भगवान् श्रीरामका समग्र चरित्र आदिसे अन्ततक एक सुसस्कृत, मर्यादासम्पन्न और सदाचारी मानवका चरित्र है। बालक श्रीरामकी पवित्र दिनचर्याका प्रसग आजके बालकाके लिये प्रेरक है। व वही कार्य करते थ, जिसस नगरक लाग आनन्दित हा। वे मन लगाकर वेद-पुराण सुनते थे और स्वय छोट भाइयाको समझाकर सुनात थे। प्रात काल उठकर माता पिता और गुरुको प्रणाम करते थे तथा उनकी आज्ञा लकर नगरका काम करत थ। यथा—

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

(रा०च०मा० १।२०५।५—८)

भगवानुके अवतार ता अनेक हुए, लकिन श्रीरामावतारसे पूर्वके किसी अवतारमे विवाह-लीला नहीं हुई। श्रीरामचन्द्रजीको मानव-जीवनके महत्त्वपूर्ण पक्ष विवाह-सस्कारकी मर्यादा भी स्थापित करनी थी। जनकजीकी प्रतिज्ञाके अनुसार धनुप तोडनेवाले व्यक्तिसे सीताजीका विवाह हाना निश्चित था लेकिन भगवान् श्रीराम धनुपको तोडने और स्वयवरम जीतनेपर भी अपने पिता महाराज दशरथकी अनुमतिके बिना विवाह करनेको तैयार नहीं हुए। महाराज दशरथको बुलाया गया और गुरु वसिष्ठ तथा शतानन्दजीके निर्देशनम कन्यादान पाणिग्रहण, हवन आदि वैदिक विधियासे विवाह सम्पन्न हुआ। भगवान् श्रीरामके वैवाहिक उद्देश्यको प्रकाशित करते हुए श्रीमद्भागवतमहापुराण (९।१०।५५)-मे कहा गया है—

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरित शुचि।
स्वधर्मं गृहमेधीय शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामने एकपत्नीव्रत धारण कर रखा था। उनका चरित्र अत्यन्त पवित्र और राजर्पियाका-सा था। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिय स्वय उस धर्मका आचरण करते थे।

एकपत्नीव्रती श्रीरामके चरित्रकी दिव्यता-सम्बन्धी एक मार्मिक घटना हनुमन्नाटकम इस प्रकार उल्लिखित है। रावणके मारे जानेपर उसकी रानी मन्दोदरीके सम्बन्धम विजयी श्रीरामका क्या निर्णय है—यह जाननके लिये वह स्वय उनसे मिलने गयी। सुग्रीवजीने उसके आनेकी सूचना श्रीरामचन्द्रजीको दी। श्रीरामने नीचेकी ओर मुख करक पूछा—'महाभागा मन्दोदरीकी क्या आज्ञा है?' श्रीरामके इस सद्व्यवहारमे मन्दादरी वहुत प्रभावित हुई। उसे देव यक्ष, गन्धर्व, नर किन्नर एव नागाकी कुमारिया और नारियाका अपहरण करनवाल रावण और श्रीरामक चरित्रका अन्तर समझम आ गया। उसक मुखसे प्रशसोक्ति निकली—

धन्या राम त्वया माता धन्यो राम त्वया पिता।
धन्यो राम त्वया वश परदारान्न पश्यसि॥

(अङ्क १४।५९)

अर्थात् हे श्रीराम! आपका माता भी आपके हानस धन्य हैं, आपम पिताजी भी धन्य हैं आपस रघुवश धन्य है, क्याकि आप परस्त्रीको नहीं दखत।

भगवान् श्रीरामकी वनलीला उनकी सदाचारनिष्ठाकी पराकाष्ठा है। उस लीलाका स्मरण कर श्रीमद्भागवतवक्ताका हृदयाद्गार इस रूपम व्यक्त हुआ है—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।

(श्रीमद्भा० ११।५।३४)

अर्थात् महापुरुप! अपन पिता दशरथजीके वचनासे देवताआके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोडकर आपके चरण-कमल वन-वन घूमते फिरे। सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं। पिता-माताको उनकी आज्ञा-पालनद्वारा सतुष्ट करनेम अपना वडा भाग्य समझकर तथा परिवार और समाजके सामूहिक हिताको प्रधान एव अपने वैयक्तिक स्वार्थोको तुच्छ समझकर एक उच्च आदर्श स्थापित करनेहेतु श्रीरामने वनगमन किया। कैकेयीजीसे कही गयी उनकी वाताम यह तथ्य प्रकट है—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा॥
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि समत जननी तोर॥
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ समाजा॥

(रा०च०मा० २।४१।७-८ दो० ४१ ४२।१-२)

वनमे वासयोग्य जगह खोजते समय भगवान् श्रीराम सचेत थे कि उनके रहनेक कारण पहलेसे रहनेवाले ऋषि-मुनि उद्विग्न न हाने पाव। वे श्रीवाल्मीकिमुनिके आश्रमम उनसे सानुरोध वैसा जगह वतलानका कहत हैं—

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥
मुनि तापस जिन्ह त दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥

(रा०च०मा० २।१२६।२—६)

यह श्रीरामचन्द्रका शील है, जो वे दूसरोंको असुविधामें डालकर स्वयं सुविधा प्राप्त करना पसंद नहीं करते। श्रीरामने रावण-खर-दूषण आदि दुर्धर्ष राक्षसोंके वैर ठाननेकी चिन्ता न करके धर्मकी रक्षाके लिये परमार्थका चिन्तन करनेवाले वनवासी ऋषि-मुनियोंका पक्ष लिया। उनके संरक्षणमें ऋषि-मुनि अपने-अपने आश्रममें स्वतन्त्रतापूर्वक योग, जप, यज्ञ एवं तप करने लगे—

जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबृंद।
करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥

(रा०च०मा० २।१३४)

भगवान् श्रीरामने रणक्षेत्रमें भी सदा मर्यादा एवं शालीनताका अनुपालन किया। लङ्कामें लड़ा गया युद्ध भौतिक दृष्टिसे अत्यन्त असमान था। श्रीराम विरथ थे। उनके पैरोंमें पदत्राण भी नहीं थे। प्रतिपक्षी रावण रथपर सवार और युद्धोपयोगी सुविधाओंसे सम्पन्न था। इस असमान स्थितिको देखकर विभीषण अधीर हो गये। उन्हें श्रीरामकी विजयमें संदेह होने लगा। उन्होंने इसे श्रीरामके समक्ष व्यक्त भी कर दिया। उस समय भगवान् श्रीरामने विभीषणसे कहा कि जिससे विजय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य उस रथके पहिये हैं। सत्य, शील उसकी मजबूत ध्वजा-पताकाएँ हैं। बल, विवेक, दम और परहित घोड़े हैं, जो क्षमा, कृपा और समतारूपी डोरीसे रथमें जुड़े हुए हैं। ईश्वरका भजन चतुर सारथि, वैराग्य ढाल, संतोष तलवार, दान फरसा, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति, श्रेष्ठ विज्ञान धनुष, निर्मल और अचल मन तरकश, शम, यम, नियम बहुत-से बाण तथा ब्राह्मण एवं गुरुका पूजन अभेद्य कवच है। ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो, उसके लिये जीतनेको कहीं शत्रु ही नहीं है। ऐसा दृढ़ रथवाला वीर संसाररूपी महादुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है, रावण तो कुछ भी नहीं है। मानसमें वर्णित इस धर्मरथके रूपकमें विशिष्ट सात्त्विक संस्कारसम्पन्न सदाचारके चौबीस सूत्र कहे गये हैं, जो श्रीराममें हैं, रावणमें नहीं। भगवान् श्रीरामका युद्ध-जैसे उद्वेजक अवसरपर भी इन संस्कारसूत्रोंको धारण किये रहना आश्चर्यजनक है। इसीलिये कहा गया है—

'नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः' (वा०रा० २।४४।२६)। श्रीवाल्मीकिरामायणका यह कथन श्रीरामके संस्कारमय चरित्रकी उज्ज्वलताका निदर्शक है।

युद्धके बाद विभीषण रावणका अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं करना चाहता था। उस समय सुसंस्कृत और सभ्य श्रीरामका उदात्त चरित्र प्रकट हुआ। उन्होंने विभीषणको समझाया—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

(वा०रा० ६।१०९।२५)

अर्थात् मरनेके बाद वैरका अन्त हो गया। अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, अतः विभीषण! तुम इसका यथोचित संस्कार करो। इस समय यह जैसे तुम्हारा भाई है, वैसे ही मेरा भी। श्रीरामजीके कहनेका आशय है कि तुम संस्कार नहीं करोगे, तो मैं करूँगा। इस प्रसंगसे विदित होता है कि भगवान् श्रीरामकी किसीसे शत्रुता नहीं थी, वे तो रावणका भी हित चाहते थे।

शुक्राचार्यजी कहते हैं कि पृथ्वीपर श्रीरामके समान नीतिमान् राजा नहीं हुआ—**'न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्'** (शुक्रनीति ५।५७)। नीति धर्मका व्यावहारिक पक्ष है। राजा रामके नीति, धर्म और संस्कृत सदाचारमय जीवनकी झाँकी उनकी दिनचर्यामें दर्शनीय है—

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥

(रा०च०मा० ७।२६।१—३)

श्रीरामके संस्कृत आचरणका यह पावन संदेश है कि एक राजपुरुषको आस्तिक होना चाहिये। उसे ज्ञानियोंका संग, सद्ग्रन्थोंका श्रवण एवं माङ्गलिक कार्योंका अनुष्ठान करते रहना चाहिये तथा भोजन आदि ऐश्वर्योपभोगमें भाई-बन्धुओंसे दुराव और द्वैध नहीं करना चाहिये।

भगवान् श्रीराम अपने राज्यकालमें सतर्क रहे कि केवल वे ही नहीं, उनके परिजन भी प्रजाके समक्ष सदाचारमय सुसंस्कृत जीवनका आदर्श उपस्थित करें। राजा रामकी प्रजा उनके गुणोंका गान करती रहती थी और उस आनन्दमें दिन-रातका बीतना भी नहीं जान पाती थी—

नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

(रा०च०मा० ७।२६।८)

साधकोंके लिये उपयोगी सस्कार

भगवान् या भगवान्के प्रेमकी प्राप्ति ही मनुष्य-जीवनका उद्देश्य है और जो इस उद्देश्यमे सफल हो चुके हैं, वे ही सत हैं, अतएव इस सतभावकी प्राप्तिमे ही मनुष्य-जन्मकी सार्थकता है। इसकी प्राप्तिके अनेक उपाय शास्त्रो और सतोंने बतलाये हैं, परतु इनम प्रधान दो ही हैं—१-भगवान्की नित्य असीम कृपाका आश्रय और २-लक्ष्यप्राप्तिके लिये दृढ निश्चय और अटल विश्वासके साथ किया जानेवाला पुरुषार्थ।

भक्तिमार्गी साधक दोनोमसे एकका अथवा दोनोका साधन कर सकते हैं, परतु ज्ञानमार्गी प्राय दूसरेका ही करते हैं। याग ता दोनाम ही आवश्यक है। जबतक चित्तवृत्तिका अपने इष्टमे याग नहीं हाता तबतक साधनम सफलता मिल ही नहीं सकती। उपर्युक्त दोना उपायोमे भक्तिमार्गीको पहला अधिक प्रिय होता है, वह अपने पुरुषार्थका भरोसा नहीं करता और वैसा करनेम वह अपनेम एक अभिमानका दोष आता देखकर सिहर उठता है, साथ ही उसकी यह भी धारणा है कि जीवके पुरुषार्थसे भगवान्का मिलना असम्भव है वे तो स्वय कृपा करके जब अपना दर्शन देकर कृतार्थ करना चाहते हैं, तभी जीव उनके दर्शन पा सकता है। इसीलिये वह उनकी कृपापर विश्वास करके तन-मन-धनसे उनके शरणापन्न हो जाता है, परतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह सब क्रियाओको त्यागकर चुपचाप हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाता है या आलसीकी भाँति तानकर सोता है। वह पुरुषार्थ नहीं करता इसका अर्थ यही है कि वह पुरुषार्थका अभिमान अपने अदर नहीं उत्पन्न होने देता परतु अपने तन-मन-धन—सबको भगवान्का समझकर अनवरत उनकी सेवामें तो लगा ही रहता है क्षणभर भी स्वच्छन्द विश्राम नहीं लता। वस्तुत वही परमपुरुषार्थी होता है जो अपनेको भगवान्के परतन्त्र मानकर यन्त्रवत् उनकी सेवाम लगा रहता है। जो मनुष्य यह कहता है कि मैं भगवान्के शरणापन्न हूँ, मुझ ता उन्हींकी कृपाका भरोसा है परतु जो भगवान्के आज्ञानुसार सवा नहीं करता, वह या तो स्वय धाखेम है या दूसरोको धाखा दे रहा है। शरणागतिम साधनका या पुरुषार्थका अथवा यो कह कि अभिमानयुक्त कर्मका सर्वथा अभाव है, क्योकि शरणागतिके साधकको साधन या पुरुषार्थका आश्रय नहीं होता, परतु उसमे भगवत्सेवारूप कर्मका कभी अभाव नहीं होता। भगवत्सेवाके लिये तो उसका सब कुछ समर्पित ही है, परतु ऐसे भक्तको भी ज्ञानकी आवश्यकता है, ज्ञानकी सुदृढ नींवपर ही भक्तिकी विशाल और मनोहर अट्टालिका खडी हो सकती है और ज्ञानमे प्रेम तो है ही। अतएव यद्यपि इन दोनाका समन्वय है तथापि एककी प्रधानताम दूसरा छिपा-सा रहता है। इससे वह स्पष्ट व्यक्त नहीं होता।

गीतोक्त निष्कामकर्मयाग ता अहैतुकी सक्रियभक्तिका ही एक रूपान्तरमात्र है। निष्कामकर्मयोगी कर्ममे आसक्ति और फलकी चाह न रखकर सब कुछ भगवान्के लिये ही करता है। वह समझता है कि कर्ममे ही मेरा अधिकार है, फलम कदापि नहीं। सब साधनोके एकमात्र परमफल तो भगवान् ही होने चाहिये फिर मैं भगवदर्थ कर्म करनेसे वञ्चित क्या रहूँ? यह समझकर वह ममता आसक्ति और आशा-निराशाको छोडकर मन-बुद्धि आदिको भगवान्के अर्पणकर नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण करता हुआ भगवान्की पूजाके लिये ही अपने जिम्मेम आये हुए कर्मोंका सुचारु रूपसे नि सग होकर उत्साहपूर्वक सम्पादन करता रहता है।

तप-स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधानात्मक पतञ्जल्युक्त क्रियायोगका भी भक्तियोगमे समावेश हो जाता है। भक्तिसाधनामे होनेवाले नाना प्रकारके कष्टोको भक्त सत्कारपूर्वक सहन करता है भगवान्की सेवाम प्राणतक देनेम वह आनन्दका अनुभव करता है और प्रारब्धवश प्राप्त हुए प्रत्येक भीषण-से-भीषण सकटको वह भगवत्प्रसाद समझकर उसका सुखपूर्वक स्वागत करता है, यह उसका परम तप है। वह सदा-सर्वदा भगवद्गुणानुवादके पढन-सुननेम तथा भगवान्के नाम-जपमे अपनेको लगाये रखता है यह उसका स्वाध्याय है और ईश्वरके अनन्य शरण तो वह है ही। अवश्य ही पतञ्जल्युक्त क्रियायोगका पृथक्

साधन भी सतभावकी प्राप्तिमे प्रधान उपाय हो सकता है, परतु उसमे भी ज्ञान और भक्तिका सम्मिश्रण है ही। बहुत-से साधक अष्टाङ्ग योग और षडङ्ग हठयोगका साधन करते हैं और वह भी बहुत ठीक है, परतु ये सारे साधन उपर्युक्त दूसरे साधनमे आ जाते हैं।

यद्यपि सबके लिये एकहीसे साधन समानरूपसे उपयोगी नहीं हो सकते, तथापि नीचे कुछ ऐसे उपाय लिखे जाते हैं, जिनका साधन करनेसे सतभावकी प्राप्तिमे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है—

१-शुद्ध सत्य कमाईका परिमित और नियमित लघु भोजन करना।

२-मीठी सत्य वाणी बोलना।

३-सबकी यथायोग्य सेवा करना, परतु मनमें ममत्व और अभिमान न आने देना।

४-शिष्य न बनाना।

५-पूजा-प्रतिष्ठा और ख्यातिसे यथासाध्य बचना।

६-तर्क-वितर्क, वाद-विवाद, खण्डन-मण्डन और कलह न करना।

७-अपने इष्ट और साधनको ही सर्वोपरि मानना, परतु दूसरेके इष्ट और साधनको न नीचा समझना, न उनकी निन्दा करना।

८-शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिको सदा शुद्ध आध्यात्मिक वायुमण्डलमे रखनेकी चेष्टा करना। यथासाध्य उनको भगवत्सम्बन्धी कार्योंमे ही लगाये रखना।

९-भगवान्‌को सर्वत्र, सर्वदा विराजित देखना।

१०-प्रतिदिन कम-से-कम दो घण्टे एकान्तमें भगवान्‌का ध्यान करना भगवान्‌से भगवद्भावको पानेकी सच्ची प्रार्थना करना और ऐसा अनुभव करना मानो भगवान्‌की पवित्र-शक्ति मेरे अदर प्रवेश कर रही है और मेरा हृदय पवित्रसे पवित्रतर और पवित्रतम होता जा रहा है और अज्ञान अहता, ममता, राग-द्वेषादि दोषाका नाश होकर उनके स्थानपर दैवी गुणोका विकास बडी तेजीसे हो रहा है।

११-काम क्रोध लोभ दम्भ, दर्प, वैर, ईर्ष्या आदि मानसिक दोषाको अपने अदर जगह देनेसे इनकार कर देना इनको जरा भी आदर न देना और पद-पदपर इनका तिरस्कार करना। याद रखना चाहिये कि ये सब दोष हमारी लापरवाही अथवा अज्ञात अथवा ज्ञात अनुमतिसे ही हमारे अदर रह रहे हैं। जिस दिन हमारी आत्मा बलपूर्वक इनको अदर रहनेसे रोक दगी, उस दिनसे इनका अदर रहना कठिन हो जायगा। बार-बार तिरस्कारपूर्ण धक्के खा-खाकर आखिर ये हमारे अदरसे सदाके लिये चले जायँगे।

१२-मन जहाँ-तहाँ दौडता है और मनमानी करता है, इसमे प्रधान कारण हमारी कमजोरी ही है। वस्तुत आत्माकी दृष्टिसे या अनन्तशक्ति परमात्माका सनातन अश होनेके कारण जीवमे अपार शक्ति है, उस आत्मिक या ईश्वरीय शक्तिके सामने मन-इन्द्रिय आदिकी शक्ति तुच्छ और नगण्य है, बल्कि मन-इन्द्रियादिमे जो शक्ति है, आत्माकी ही दी हुई है। शक्तिका मूल उत्स और एकमात्र भण्डार तो आत्मा ही है। वह आत्मा यदि अपने स्वरूपको सँभाल कर उसमें प्रतिष्ठित होकर बलपूर्वक मन-इन्द्रियादिको आज्ञा दे दे कि 'खबरदार, अब तुम असत् विषयोंको अपने अंदर नहीं रख सकते' तो फिर इनकी ताकत नहीं है कि ये इन विषयोको अपनेमे स्थान दे सकं। इसलिये मन-इन्द्रियोको सदा आत्माका अनिवार्य आदेश देते रहना चाहिये। पूर्वाभ्यासवश आत्मासे अनुमति पानेकी इनकी चेष्टा एक-दो बारके आदेशसे ही नष्ट नहीं हो जायगी, परतु जब-जब ये अनुमति माँगे, तब-तब इनसे स्पष्टतया कह देना चाहिये कि 'तुम हमारे अधीन हो—तुम्हे हमारे आज्ञानुसार चलना ही होगा' और इन्हे बडी सावधानीसे निरन्तर भगवान्‌मे लगाय रखना चाहिय।

१३-अपने इष्ट मन्त्रका या भगवन्नामका स्मरण-चिन्तन जितना अधिक-से-अधिक हो सके, श्रद्धा और विश्वासपूर्वक करना चाहिये।

१४-जहाँतक हा सक—स्त्रियासे मिलना-जुलना बद कर देना चाहिय। सतभावको चाहनेवाली स्त्रियाँ भी पुरुषास अनावश्यक और अधिक न मिल।

१५-यथासाध्य सासारिक वस्तुआका सग्रह कम-से-कम करना चाहिये और सगृहीत वस्तुआपर एकमात्र परमात्माका ही अधिकार मानना चाहिय।

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'

[अङ्गोके संस्कार]

(शास्त्रोपासक आचार्य डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)

भारतीय वाङ्मयमे विभिन्न अङ्गोके संस्कारको भी विशेष चर्चा मिलती है। यहाँ वाङ्मयमे प्रत्येक देवताके अपने-अपने कवच और रक्षास्तोत्रोकी परम्परा मिलती है। इन दोनाके द्वारा शरीरके विभिन्न अङ्गापर तत्तद् देवताका अधिष्ठान कराया जाता है। इसी क्रममे करन्यास, षडङ्गन्यास, लघुन्यास बृहन्न्यास आदिकी भी परम्परा है। जिन अङ्गोपर देवताके विभिन्न स्वरूपोका ध्यान किया जाता है, उससे उन अङ्गामे तेजकी वृद्धि होती है और उन अङ्गोका संस्कार होता है। **'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'**के अनुसार बिना देवता बने देवताकी पूजा नहीं हो सकती। जब देवताका अधिष्ठान अङ्गोपर कराया जाता है तो उन अङ्गोमे शारीरिक शक्तिके साथ-साथ दैवी शक्तिका भी सञ्चार हो जाता है।

प्रत्येक देवताके अनुष्ठानात्मक प्रयोगमे अङ्गन्यास और करन्यासका विधान आवश्यक है। अङ्गन्यास और करन्यासके द्वारा विभिन्न मन्त्रोसे अङ्गोको संस्कारित भी किया जाता है। कर्मकाण्डके प्रारम्भिक प्रयोगोंमे मन्त्रसहित तीन बार आचमन विभिन्न अङ्गोका स्पर्श तथा प्राणायामके द्वारा शरीरको संस्कृत किया जाता है।

अङ्गोको संस्कृत करनेकी परम्परा सनातनधर्ममे तो है ही विभिन्न धर्मोंमे भी मिलती है। मुसलमानोंमे वजू करना विभिन्न तरहसे नमाज अदा करना एक विशेष प्रकारका संस्कार ही है। इसी प्रकार श्रीगुरुग्रन्थसाहिबके पाठके पूर्व सिखगायत्री—*'गोविन्दे मुकुन्दे उदारे अपारे हरिय करिय निर्णामे अकामे'* जपनेका विधान है।

ॐ अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा।
य स्मरेत् पुण्डरीकाक्ष स बाह्याभ्यन्तर शुचि ॥

पवित्रीकरणके इस प्रसिद्ध मन्त्रम मार्जन-स्नानद्वारा शरीर अपवित्रसे पवित्र हो जाता है, इसके साथ ही शुद्धिके लिये भगवान्‌के स्वरूपका स्मरण-ध्यान भी आवश्यक है।

मूर्ति आदिकी प्राण-प्रतिष्ठाके समय देवमूर्तिके सभी अङ्गाके संस्कार करनेका विधान है। सन्ध्या स्नान, जप, देवपूजन बलिवैश्वदेव और अतिथिसत्कार—ये छ कर्म नित्य करनेसे स्वत संस्काराम वृद्धि होती है—

सन्ध्या स्नान जपश्चैव देवताना च पूजनम्।
वैश्वदेव तथाऽऽतिथ्य षट् कर्माणि दिने दिने॥

शिखाबन्धनसे सिरका संस्कार ही नहीं होता, अपितु कर्मोंमे अर्हता एव ब्रह्मतेजकी प्राप्ति भी होती है। भगवन्नाम-जपसे वाणीका संस्कार होता है। यथाधिकार वेदश्रवणसे कानोका संस्कार होता है। देव, गुरु, सत तथा भक्तके दर्शनसे आँखाका संस्कार होता है। माला धारण करनेसे गलेका संस्कार होता है। ध्यानसे मन, बुद्धि तथा हृदयका संस्कार होता है। शास्त्रविहित भोगसे उपस्थका संस्कार होता है। देवपूजा, भगवत्सेवा सतसेवा, दीनो-अनाथोकी सेवा करनेसे हाथोका संस्कार सम्पन्न होता है। देवता, गौ, माता-पिता तथा देवालयकी प्रदक्षिणा तथा तीर्थाटनसे पैराका संस्कार होता है और साष्टाङ्ग प्रणाम-निवेदन एव शरणागत होनसे भगवत्प्राप्तिका संस्कार दृढ हो जाता है। ऐसी चर्चा आर्ष-ग्रन्थाम प्राय पायी जाती है।

इन्हीं संस्काराके बलपर सौ वर्ष जीने देखने-सुनने अर्थात् सौ वर्षतक स्वस्थ-जीवनकी भावना की गयी है।

इतना ही नहीं यह भी भगवान्‌से प्रार्थना की गयी है कि सभी इन्द्रियाम बलवान् जो मेरा मन है, उसका सम्यक् संस्कार हो और वह मेरा मन अशुभ वासनाओं-आसक्तियोसे रहित होकर शुभ संकल्पवाला हो—**'तन्मे मन शिवसङ्कल्पमस्तु॥'**

भगवान्‌के संस्कार—एक अनुचिन्तन

(डॉ० श्रीसत्येन्दुजी शर्मा एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

हलायुधकोशमे 'सस्कार' शब्दका अर्थ है वासना, प्रतियत्न आदि और प्रस्तुत सदर्भमे इसी अर्थको ग्रहण किया गया है—'**सस्कारो वासना स्मृता**'। मनुष्यके गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सस्कारोका परम उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति, किंतु जिस भगवान्‌के सानिध्य-लाभमे शास्त्रोक्त सस्कारोके अनुष्ठानकी सार्थकता है, हमारे वे परमाराध्य भगवान् भी सस्कारोसे अछूते नहीं हैं। उनके सस्कार-स्वभाव अत्यन्त मधुर, शाश्वत, अपरिवर्तनशील एव परम लोक-मङ्गलकारी हैं। यहाँ उनके कुछ प्रमुख सस्कार निम्नानुसार हैं—

आनन्दभोगका सस्कार—यूँ तो भगवान् सर्वथा आप्तकाम, पूर्णकाम तथा निष्काम हैं, पूर्ण हैं और सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं, तथापि सृष्टिके पूर्व भगवान् जब अकेले थे, तब उन्हे अच्छा नहीं लगा—'**स वै नैव रेमे**' (बृ०उपनिषद् १।४।३)।उनमे आनन्दभोगकी कामना जगी—'**सोऽकामयत। बहु स्या प्रजायेयेति**' (तै० उपनिषद्)।'**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति**' (ऐ० उपनिषद्)। क्योकि कोई अकेला आनन्द नहीं मना सकता—'**एकाकी न रमते**', इसलिये उन्होने करोडो ब्रह्माण्डोकी रचना कर डाली, तरह-तरहके जीव बना दिये और अपनी सृष्टिमे रमण करने लगे। इस प्रकार यह ससार भगवान्‌के आनन्दात्मक सस्कारकी देन है। अपने इसी सस्कारके वशीभूत होकर वे निर्गुणसे सगुण तथा निराकारसे साकार रूप धारण कर भक्तोके हित-सुखके लिये नाना लीलाएँ करते रहते हैं—

'चारु चरित नानाबिधि करहीं॥'

लीलाका सस्कार—जिस प्रकार कोई जीवन्मुक्त महात्मा लोकहितार्थ निष्काम कर्म करते हुए उनसे लिप्त नहीं होता उसी प्रकार भगवान् भी जगत्‌के सर्जन पालन और सहारकी लीला करते रहते हैं। लीला उन्हे अत्यन्त प्रिय है और जितने विलक्षण वे स्वय हैं उतनी ही विलक्षण उनकी लीलाएँ भी हैं। मुँहमे ब्रह्माण्ड दिखाकर यशोदा माताको विस्मित कर देना गोपिकाओके चीरहरणकी लीला तथा रासलीला करते-करते अचानक अदृश्य हो जाना आदि उनके बडे प्रिय खेल हैं। तरह-तरहके कौतुक करके भक्तोको चकित करनेके लिये ही तो उन्हींके प्रेमके वशीभूत हो उन्होने यह प्रपञ्चात्मक ससार रचा है। ब्रह्मसूत्रकार सृष्टिके मूलमे उनके लीला-सस्कारको स्वीकार करते हैं—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥'

कर्मयोगका सस्कार—भगवान्‌ने अनेक अवतार लेकर लोकमे कर्तव्यकर्मोके पालनका आदर्श प्रस्तुत किया है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता (३।२२)-मे स्वय कहते हैं कि तीनो लोकोमें मेरा कोई कर्तव्य नहीं है और न ही कोई प्राप्तव्य वस्तु अप्राप्त है, फिर भी मैं सदा कर्ममे ही लगा रहता हूँ—

न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त एव च कर्मणि॥

अवतरणका सस्कार—भगवान्‌मे अवतार-ग्रहणका प्रबल सस्कार है। जब जिस युगमे जैसी कामना होती है, वैसा ही रूप धारण कर अवतरित हो जाते हैं। यद्यपि किसी कार्य-सम्पादनके लिये उन्हे 'अवतार-ग्रहणकी आवश्यकता नहीं है, तथापि अपने इस सस्कारकी युक्तियाँ प्रस्तुत करनेमे नहीं चूकते। उनका कथन है कि जब-जब धर्मका ह्रास होता है और अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥

(गीता ४।७)

साधुओकी रक्षा, दुष्टोके सहार और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमे प्रकट होता हूँ—

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

अवतारके अनेक कारणोमे प्रबल कारण यह है कि भक्त उनकी प्रिय आत्मा हैं और मुख्यत अपने भक्तोपर अनुग्रह करके स्वय आनन्दित होने तथा उन्हे आनन्दित करनेके लिये ही वे अवतार ग्रहण करते हैं।

भगत हेतु लीलातनु गहई॥
'भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
'भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप॥'

साथ ही अपने सस्कारसम्पन्न आदर्श चरितकी मर्यादा

स्थापित कर जीवोको उसका अनुकरण करनेकी शिक्षा देनेके लिये प्रभु अवतरित होते हैं—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्'

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

दर्पदलनका संस्कार—सर्वसमर्थ भगवान्में दर्पदलनका शाश्वत सस्कार है। अहकार उन्हे तृणमात्र भी नहीं सुहाता। राक्षसराज रावण हो या देवर्षि नारद, दुष्कर्मी दुर्योधन हो या अनन्य सखा अर्जुन, शूर्पणखा हो या गोपिकाएँ—अहकारके मामलेमे वे किसीको क्षमा नहीं करते—

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥

अहकार तो मानो उनका आहार है। दुष्टो और भक्तोके दर्पदलनमे अन्तर इतना ही रखते हैं कि भक्तोको छोटी-सी प्रेमभरी सजा देकर पुन सँभलनेका अवसर प्रदान करते हैं और दुष्टोके लिये कोई अवसर नहीं छोडते। भक्ताका अभिमान तो वे ममतावश दूर करते हैं—

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥

वैसे दुष्टापर भी उनका क्रोध माङ्गलिक ही होता है—

'खीझे देत निज धाम रे।' (विनय-पत्रिका ७१)

शरणागतरक्षणका सस्कार—शरणागतोकी रक्षाकी भगवान्ने प्रतिज्ञा ले रखी है—*'मम पन सरनागत भयहारी॥'* कैसा भी पापी शरणम आये, वे उसे निराश नहीं करते, उसका उद्धार कर देते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहि ताहू॥

यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं और वालि भी उनकी समदर्शिताका वैशिष्ट्यवाचन *'समदरसी रघुनाथ'* करके सुग्रीवसे लडने निकल पडा था, किंतु शरणागत सुग्रीवके लिये प्रभुने वालिको छिपकर मारनेमे कोई सकोच नहीं किया। तात्त्विक बात यह है कि समदर्शी होते हुए भी भक्तो और अभक्तोके अनुसार भगवान्का प्रेम भक्तोके प्रति विशेष रहता ही है—

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा॥

प्रेम-प्रतिदानका सस्कार—कोई आजीवन वेद-शास्त्र पढता रहे या पञ्चाग्नि-तपका पराक्रम करे, करोडो मन्त्र जप ले अथवा अहर्निश यज्ञ-स्वाध्याय ही सम्पन्न कर ले, किंतु इससे भगवान् तनिक भी नहीं रीझते। प्रेमके बिना ये सारी साधनाएँ व्यर्थ हैं। परतु बिना कुछ साधन-भजन किये भी कोई हृदयसे उन्हे एक प्रेमभरी पुकार लगा दे तो वे द्रवित होकर ऐसे दौडे-भागे चले आते हैं, जैसे क्षणमात्रकी देरीसे बडा अनर्थ हो जायगा। वस्तुत भगवान् प्रेममय हैं, प्रेमके वशीभूत हैं, उन्हे केवल प्रेमसे प्रेम है—

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा।'

प्रेम ही वह पारस है जो भगवान्को निर्गुणसे सगुण बना देता है—

'भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥'

'रामु सगुन भए भगत पेम बस॥'

ब्रह्मा और महेश भी जिस भगवान्की थाह पाते-पाते थक गये, वे ही भगवान् गोकुलकी गोपियोकी अँगुलियोके इशारेपर ठुमक-ठुमककर नाचनेम आनन्दका अनुभव करते हैं। दुर्योधनके राजभवनमे छप्पन भोग ठुकराकर विदुरजीकी कुटियामे भोजन करना उन्हे अधिक रुचिकर लगता है। अपने प्रेमीभक्त नारदका शाप वे सहर्ष स्वीकार करते हैं। प्रेममे भगवान्की परवशताका सूरदासजीने मार्मिक वर्णन किया है—

सबसो ऊँची प्रेम सगाई।

× × ×

राजसु-जग्य जुधिष्ठिर कीन्हो ताम जूँठ उठाई।
प्रेमके बस पारथ रथ हाँक्यो, भूलि गये ठकुराई॥

भक्तकी अधीनताका सस्कार—भगवान्मे ऐश्वर्यके साथ-साथ सेवा, कृपा करुणा और अनुग्रहका गहन सस्कार है। मायापति भगवान्को अपने दासापर अतिशय ममता है—*'सेवक पर ममता अति भूरी'* अपने दासोसे अत्यन्त प्रेम है—*'मोरे अधिक दास पर प्रीती'* इसलिये उसकी रुचिका पूरा ध्यान रखते हैं—*'राम सदा सेवक रुचि राखी'* और प्रेमके प्रबल प्रवाहमे दासोके वशमे हो जाते हैं—*'ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।'*

प्रभुकी प्रीतिकी रीति ही ऐसी है कि अपनी प्रभुता भूलकर सेवकोके अधीन हो जाते हैं—

ऐसी हरि करत दासपर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस होत सदा यह रीति॥

(विनय-पत्रिका ९८)

भगवान्के भक्तकी अधीनताके सस्कारके सम्बन्धम यह कथन बडा सुन्दर है—'भगवान् परम स्वतन्त्र हैं,

इसलिये उनको परवश होनेमे आनन्द आता है। जीव परतन्त्र है, इसलिये उसको स्वतन्त्र होनेमे आनन्द आता है।' भगवान् स्वय स्वीकार करते हैं कि मैं तो अस्वतन्त्र-जैसा सर्वथा भक्तोके अधीन हूँ। मेरे भक्तप्रेमी हृदयपर भक्त साधुओने आधिपत्य जमा रखा है। मुझमे हृदय लगाकर भक्तजन मुझे पूरी तरह अपने वशमे कर लेते हैं। जैसे कि सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमे कर लेती है—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय ॥
मयि निर्बद्धहृदया साधव समदर्शना ।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रिय सत्पति यथा॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६३।६६)

सचमुच भगवान् भक्तोके अधीन हैं। भक्तोको उनकी चाकरी करनेमे आनन्द आता है और वे भक्तोकी दासता करके आत्मविभोर होते हैं। तभी तो कभी सेवक बनकर उगनाके रूपमे विद्यापतिकी सेवा करते हैं तो कभी एकनाथजीके घरमे श्रीखडिया बनकर नौकरी करते हैं। कभी भक्त तुलसीदासकी रुचि देखते हुए बाँसुरी त्यागकर धनुष-बाण धारण कर लेते हैं तो कभी रामप्रसादके छप्पर बँधवाने—सहयोग करने वहाँ पहुँच जाते हैं। ससारके स्वामीपर भक्तकी अधीनताका ऐसा सस्कार छाया हुआ है कि प्रेमी भक्तोके पीछे-पीछे उनकी चरणधूलिसे स्वयको पवित्र करनेके लिये दीवानोकी तरह घूमते रहते हैं—

निरपेक्षं मुनि शान्त निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यह नित्य पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभि ॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

अपने दासोका दासत्व करनेवाले, भक्तोके परम पक्षपाती, सेवकोपर अकारण अनुग्रहके लिये व्याकुल—ऐसे अद्भुत सस्कारसम्पन्न श्रीभगवान्‌के चरणामे प्रणाम निवेदनपूर्वक प्रार्थना है कि अपने सस्कारके थोडे अश हम सभी तुच्छ दासोको भी प्रदान करनेकी कृपा करे।

~~~o~~~

शुभकार्यके लिये प्रतीक्षा मत कीजिये

शष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्रगतमानसम्। वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति॥
अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मा त्वा कालोऽत्यगादयम्। अकृतेष्वेव कार्येषु मृत्युर्वै सम्प्रकर्षति॥
श्व कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। न हि प्रतीक्षते मृत्यु कृतमस्य न वा कृतम्॥
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।
न मृत्युरामन्त्रयते हर्तुकामो जगत्प्रभु। अबुद्ध एवाक्रमते मीनान् मीनग्रहो यथा॥
युवैव धर्मशील स्यादनित्य खलु जीवितम्। कृते धर्मे भवेत् कीर्तिरिह प्रेत्य च वै सुखम्॥

जैसे घास चरते हुए भेडेके पास अचानक व्याघ्री पहुँच जाती है और उसे दबोचकर चल देती है, उसी प्रकार मनुष्यका मन जब दूसरी ओर लगा होता है, उसी समय सहसा मृत्यु आ जाती है और उसे लेकर चल देती है। इसलिये जो कल्याणकारी कार्य हो, उसे आज ही कर डालिये। आपका यह समय हाथसे निकल न जाय, क्योंकि सारे काम अधूरे ही पडे रह जायँगे और मौत आपको खींच ले जायगी। कल किया जानेवाला काम आज ही पूरा कर लेना चाहिये। जिसे सायकालमे करना है, उसे प्रात कालमे ही कर लेना चाहिये, क्योकि मौत यह नहीं देखती कि इसका काम अभी पूरा हुआ या नहीं। कौन जानता है कि किसका मृत्युकाल आज ही उपस्थित होगा? सम्पूर्ण जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली मृत्यु जब किसीको हरकर ले जाना चाहती है, तो उसे पहलेसे सूचना नहीं भेजती। जैसे मछुआ चुपकेसे आकर मछलियोको पकड लेता है उसी प्रकार मृत्यु भी अज्ञात रहकर ही आक्रमण करती है। अत युवावस्थामे ही सबको धर्मका आचरण करना चाहिये, क्याकि जीवन निस्सदेह अनित्य है। धर्माचरण करनेसे इस लोकमे मनुष्यकी कीर्तिका विस्तार होता है और परलोकमे भी उसे सुख मिलता है। (महा०, शान्ति० अ० १७५)

~~~o~~~

भगवान् श्रीरामका नामकरण-संस्कार

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')

षोडश संस्कारोंमें एक नामकरण-संस्कार भी है, जिसका विशिष्ट प्रयोजन है। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त तो नामका महत्त्व रहता ही है, किंतु मृत्युके पश्चात् तो नाम ही रह जाता है। व्यक्ति अपने कर्मोंके अनुसार नामद्वारा ही यश एवं अपयश प्राप्त करता है। इसीलिये नामकरण-संस्कारकी अपनी विशेष महिमा है। यहाँ भगवान् श्रीरामके नामकरण-संस्कारके प्रसङ्गकी संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है—

भगवान् श्रीरामके अवतरणसे अयोध्यापुरी आनन्दाम्बुधिमें हिलोरें लेने लगी। जन्म-महोत्सवके अनुपम आनन्दकी उमङ्गमें कुछ दिवस यों ही बीत गये। श्रीरामचरितमानस (१।१९७।१)-में गोस्वामीजीकी वाणी है—

कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥

तदनन्तर नामकरण-संस्कारका समय जानकर राजा दशरथने कुलगुरु मुनिवर वसिष्ठजीको बुलवाया—

नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥
करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥

(रा०च०मा० १।१९७।२-३)

वसिष्ठजी कहते हैं—

इन्ह के नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥

(रा०च०मा० १।१९७।४)

हे राजन्! इनके नाम तो अनेक (अनन्त) हैं—अनुपम हैं तथापि मैं अपनी बुद्धिके अनुसार ही कहता हूँ। अब भगवान्का नामकरण-संस्कार करते हुए परमज्ञानी मुनि वसिष्ठ उनकी महिमाका वर्णन भी करते चलते हैं—

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

(रा०च०मा० १।१९७।५-६)

यहाँ भगवान् श्रीरामकी विशेषता बतलाते हुए तीन विशेषण दिये गये हैं—(१) आनंद सिंधु (२) सुखरासी और (३) सुख धाम। प्रसङ्गानुसार इनका संक्षिप्त विवेचन समुचित होगा। प्रश्न उठता है कि इन तीन विशेषणोंकी क्या आवश्यकता थी? जबकि एक 'आनंद सिंधु' से ही भलीभाँति काम चल सकता था। इन तीन विशेषणोंसे वसिष्ठजी क्या प्रकट करना चाहते हैं? देखिये—

(१) **'आनंद सिंधु'**—प्रभु ऐसे आनन्दके समुद्र हैं जिनके एक बिन्दुमात्रसे त्रैलोक्यमें आनन्दकी वर्षा हो सकती है। 'आनंद सिंधु' उन पूर्ण अनुरागी, लोकातीत भगवद्भक्तोंके लिये कहा, जो सर्वथा प्रभुमें लीन होना चाहते हैं किंवा तन्मय होनेकी कामना रखते हैं जिस आनंद सिंधुमें डूब जानेपर फिर निकलना नहीं होता। जहाँ डूबनेपर व्यक्ति अपने व्यक्तित्वको खो देता है और प्रभुरूप ही हो जाता है, सो यह तो सबके वशकी बात नहीं है और इस प्रकार संसारकी सारी सम्पदाओं एवं क्रिया-कलापोंकी वासनासे मुक्त होकर 'आनंद सिंधु' में गोता लगाना किन्हीं विरले भाग्यशालियोंको ही प्राप्त होता है, जिनके मनमें प्रभुके सिवा और कुछ प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं होती। इस स्थितिके लिये संत कबीरदासजीने कहा है—

जिन ढूँढा तिन पाइया गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठि॥

इसलिये इस 'आनद सिधु' म बूडनेकी हिम्मत सब नहीं कर सकते, यह तो भक्त-योगियाके वशकी ही बात है। इस सम्बन्धमे श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायके अन्तिम दो श्लोक प्रमाण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सखा अर्जुनसे कहते हैं—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥
योगिनामपि सर्वेपा मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मा स मे युक्ततमो मत ॥

अर्थात् याेगी तपस्वियोसे श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियोंसे भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करनेवालोसे भी योगी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन! तू योगी हो।

सम्पूर्ण योगियोमे भी जो श्रद्धावान् योगी मुझम लगे हुए अन्तरात्मासे मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

तपस्वी किसी कामनाको लेकर तपस्या करता है। शास्त्रज्ञानी एव कर्मशीलमे भी कामना काम करती है, पर योगी वह होता है, जिसके मनम कोई सासारिक इच्छा शेष नहीं रहती, केवल प्रभुकी ही लगन होती है, चिन्तन और सुमिरन होता है तथा ध्यान होता है। प्रभु और उसके बीचमे कामनाका परदा या आवरण न होनेसे हृदयमे सीधा प्रभुका दर्शन हो जाता है। यही योग है। यथा—

योग बने प्रभु रामसे जपे नाम निष्काम।
देह रहे सुख धाम है, देह तजे हरिधाम॥

अतएव ऐसे भक्तयोगी ही आनद सिधु प्रभुमे पूर्णतया निमग्न हो सकते हैं।

अब जो इस स्थितिमे पहुँचनेमें असमर्थ हैं उनके लिये वसिष्ठजीने दूसरा विशेषण दिया—

(२) सुखरासी—सुखकी राशि (ढेर या भण्डार)-से ऐसे भक्त अपनी-अपनी क्षमताके अनुसार सुख ग्रहण कर लेते हैं। कोई-कोई दूरसे ही सुखराशिका दर्शन कर सुखी हा जाते है जो सत्सङ्गके माध्यमसे उन्हे उपलब्ध होता है।

(३) सुख धाम—अब तीसरे प्रकारके भक्त जो सम्पूर्ण सुरक्षासहित सुखका भोग करना चाहते हे, उनके लिये वसिष्ठजीने विशेषण दिया—*सुख धाम*।

भगवान् राम सुखके धाम हैं, धामका अर्थ है—आश्रयस्थान या आश्रम। सुजन भक्त सुख धाममे जहाँ प्रवेश कर रहने लगते हैं, वहाँ कोई दु ख-ताप नहीं रहता—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

वहाँ वर्षा शीत, ग्रीष्म किसीके प्रवेशका भय नहीं रहता। अब सुखपूर्वक सुख धाममे रहा, फिर यह कोई छोटा-मोटा आश्रयस्थान तो है नहीं जहाँ कुछ ही जन रह सके। यह तो इतना विशाल विराट् स्थान है कि जो तीनो लोकोके भक्तोको विश्राम दे सकता है।

ऐसे आनन्दसिन्धु, सुखराशि और सुखधामके नामकरण-संस्कारके सम्बन्धमे अध्यात्मरामायणके बालकाण्ड (सर्ग ३।४०)-म यह श्लाक आया है—

यस्मिन् रमन्ते मुनयो विद्ययाज्ञानविप्लवे।
त गुरु प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि॥

भावार्थ—

जब विज्ञान-विभवके द्वारा हो जाता अज्ञान विनाश।
रमण किया करते हैं जिनम मुनिजन पाकर प्रेम-प्रकाश॥
अथवा जो निज रूप सुधाका करवाके अनुपम रस पान।
भक्तजनोका चित्त रमाते 'राम' वही गुरु कहा बखान॥

इस प्रकार भगवान् रामका नामकरण-संस्कार हुआ। इस प्रसङ्गसे यही समझमे आता है कि बालकका नामकरण-संस्कार अपने कुलगुरु या किसी सम्माननीय वरिष्ठ आचार्य, सत सत्पुरुपके द्वारा करवाना चाहिये। नामकरणके पूर्व उस व्यक्तिका भलीभाँति मान-पूजन करना चाहिये जैसा कि श्रीरामचरितमानस (१।१९७।३)-मे वर्णित है—

करि पूजा भूपति अस भाषा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥

इस प्रकार नामकरण-संस्कार परम मङ्गलमय हो जाता है। अपने द्वारा कल्पित, मनमाने निरर्थक नाम न रखकर सार्थक शुभ और सुन्दर नाम रखना ही श्रेयस्कर होता है।

परम ज्ञानी मुनिवर वसिष्ठजीने अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे

देखकर राजा दशरथके पुत्र सर्वसमर्थ प्रभुका नामकरण इस प्रकार किया कि वह नाम सर्वत्र प्रचारित हो गया। भले-बुरे, हानि-लाभ, जीवन-मरण, सुख-दु ख—सबके साथ जुड गया। यहाँतक कि अधिकाश सुजन अपने बाल-गोपालका नाम राम-नामसे युक्त ही रखने लगे।

'राम' इस नामका जनमानसपर ऐसा प्रभाव पडा कि सर्वत्र राम-ही-रामका उद्घोष होने लगा। जीवनके पग-पगपर पल-पलमे राम-नामका स्मरण, कथन होने लगा और वह जनता-जनार्दनका कण्ठहार बन गया, तब भगवद्भक्तोका चाह भी इस प्रकार राम-नामके साथ जुड गयी—

रसना पै राम राम श्रवणोमे राम राम,
अर्चा म राम राम, चर्चा में राम राम।
सोते मे राम राम, जगते मे राम राम,
सपने मे राम राम, अपने में राम राम॥
चलते मे राम राम, बैठे तो राम राम,
निर्जन म राम राम, बहुजन में राम राम।
सुख में भी राम राम, दुख मे भी राम राम,
'हरीदास' अष्टयाम राम राम राम राम॥

~~○~~

भगवद्भक्ति और सस्कार

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदास 'श्रीसंतजी महाराज')

संस्कारकी दृष्टिसे ही मानव-योनि सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य ही संस्कारोंसे सम्पन्न होकर सुसंस्कृत, चरित्रवान्, सदाचारी और भगवद्भक्त बन सकता है। अन्य किसी जीवको यह योग्यता नहीं प्राप्त है। प्रभुकी मानवपर यह विशेष कृपा है। अत जीवनको भक्तिके संस्कारसे आप्लावित करना ही मानव-जीवनकी सफलता है।

अन्त करणको निर्मल करना ही सस्कार है। जब मनुष्य कामना, ममता और अहकारको छोडता है, तभी उसका अन्त करण निर्मल बनता है। शिष्टाचार सस्कारकी पूर्वपीठिका है। बडे-छोटे तथा समाजकी मर्यादाके अनुसार शिष्टाचारके नियम बनाये गये हैं। मर्यादाका पालन शिष्टाचार है। भगवान् श्रीरामकी अवतार-लीलाम शिष्टाचारकी शिक्षा परिव्याप्त है। बडोको आदर देनेसे अन्त करण पवित्र बनता है। उन्हे वन्दन करनेसे हृदय शीतल बनता है और अहकाररूपी दोष मिटता है। भारतीय सनातन सस्कृतिके अनुसार शिष्टाचार-धर्मका पालन अवश्य करना चाहिये। अपनसे छोटाको सदा प्यार करना चाहिये। धार्मिक आचरणकी प्रेरणा ग्रहण करनेक लिये तथा उन्हे भारतीय सस्कार-परम्पराका अवबोध करानेके लिये सद्ग्रन्थोको पढनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। इससे भक्तिके सस्कार दृढ होंगे।

भक्तिकी साधनाद्वारा ही मानव-जीवनमें उत्तम संस्कारोका विकास होता है। भक्तिरसके सागरमें निरन्तर अवगाहन करनेवाले आचार्य श्रीधरस्वामीजीने श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीताकी सुबोधगम्य टीकामे यह भली-भाँति दर्शाया है कि भगवान्की प्राप्तिके जितने भी मार्ग हैं, वे सब भक्तिके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। सभी मनुष्योका सस्कार एक समान नहीं होता, अत सबके कल्याणके लिये भक्तिके भिन्न-भिन्न मार्गोंकी आवश्यकता होती है।

अन्त करणकी मलिनताके कारण हम भगवान् तथा भक्ति-भावनाको नहीं समझ पाते। इसलिये अन्त करणकी मलिनताको दूर करना पवित्र सस्कारको अर्जित करना है। भगवान्के नाम-जपसे श्रेष्ठ सस्कार बनते हैं। श्रेष्ठ सस्कारको सात्त्विक सस्कार कहा जाता है। सात्त्विक सस्कारस ही भगवान्म विश्वास और प्रेम बढता है, जिस भक्तिकी सज्ञा दी जाती है।

भगवान् सगुण निर्गुण—सब कुछ हैं। जैसे-जैसे नाम-जप साधन सत्सङ्ग आदिके सस्कार दृढ होते जाते हैं, वैसे-वैसे भगवान्मे अधिक विश्वास और प्रेम बढता

जाता है। पारस घरमे पडा है, लेकिन उसका ज्ञान नही रहनेके कारण हम व्यर्थ ही दु खी होते है। ठीक इसी प्रकार भगवान् हमारे भीतर तथा चारा तरफ है, लेकिन विश्वास-सस्कारके अभावम हम सदा दु खी रहते हैं। जैसे सूर्यके आश्रयसे गरमी और प्रकाश प्राप्त होते हैं, वैसे ही भगवान्‌के भजन और स्मरणसे हममे स्वत ही सद्गुण ओर सदाचारकी प्रतिष्ठा हा जाती है, श्रेष्ठ एव पवित्र सस्कारकी अविच्छिन्न परम्परासे हम आप्लावित होते जाते हैं।

भगवान् यद्यपि सब कुछ हैं, लेकिन भक्त अपनी भावना और सस्कारक अनुसार ही उन्हे देखता है। भक्तकी भावनाकी महत्ता है। भगवान्‌के भजनरूपी सस्कारसे भक्तिकी सिद्धि होती है। सिद्ध भक्तमे ज्ञान, वैराग्य, प्रेम, चरित्रनिर्माण तथा मानवताके सारे शुभ सस्कार स्वत आ जाते है। जैसे-जैसे साधक भजन करता है, वैस-वैसे उसम भक्तिके सस्कार बढते जाते है। भजनसे जन्म-जन्मके पुराने मलिन पाप तथा अज्ञानके सस्कार निश्चय ही मिट जाते हैं। भजन विषको अमृत बना देता है। तुलसीदासजीने प्रभु-नामके जप तथा स्मरणकी अपार महिमा बताते हुए कहा है—

पाई न कहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।

(रा०च०मा० ७।१३०।छ० १)

शरीरका चिन्तन और अज्ञान ही कुसस्कार है। आत्मा और परमात्माका बोध होना सुसस्कार हे। सुसस्कारसे भगवद्भक्ति होती है। जीवका पारमार्थिक स्वरूप आत्मा है। कुसस्काराके पनपनेसे ही अज्ञानी मनुष्य सदा भटकता रहता है।

आत्मरूपी परमात्मप्रमका आचरण ही भगवद्भक्तिका सच्चा स्वरूप है। तुलसीदासजीने भी आत्मप्रेमको मणि बताकर भगवद्भक्तिकी महिमा गायी है, देखिये—

चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥
सा मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥

ज्ञानकी दृष्टिसे समस्त ससार ही भगवत्स्वरूप है। सभी प्राणियामे भगवान्‌की सत्ता देखकर सबसे नि स्वार्थ प्रेम करना तथा उनकी सेवा करना बिना सुसस्कृत हुए सर्वथा असम्भव-सा ही है। इसीलिये असस्कृत एव अज्ञानी मनुष्य भगवान् तथा धर्मके तत्त्वका न जाननेके कारण अपने अमूल्य जीवनका दुरुपयोग ही करते हैं। भगवान्‌के गुणोका अनुसरण करना वास्तवम सस्कारसम्पन्न बनना ही है। सुसस्काराकी अनुपालना भगवान्‌तक पहुँचनेकी साधना है।

विडम्बना है कि सस्कारोके बलपर ही जगद्गुरुकी प्रतिष्ठाको प्राप्त हमारे देशमे आज सर्वत्र कुसस्कार फैलते जा रहे हैं और भगवद्भक्तिरूप उत्तम सस्कारका लाप-सा हो गया है। इस दुष्प्रवृत्तिको रोकनेका दृढतासे प्रयत्न करना हागा। धर्म, नैतिकता, भगवद्भक्ति आदिके शुभ सस्कारोकी प्रेरणा प्राप्त करनेक लिये अपन गौरवमय अतीतकी ओर देखना होगा। शुभ सस्कारोका अनुपालन करना ही मानवताका विकास करना है। भारतीय सस्कृतिकी गरिमा मानवताकी रक्षा और विकास करनेमे ही है। भगवान् सबका सद्बुद्धि द, जिससे सभी मनुष्य धर्म, नैतिकता और भगवद्भक्तिद्वारा अपने चरित्रकी गरिमा तथा महिमाको बढानेमे सफल हो।

सस्कारोके अनुपालनका अर्थ है—देहभावके मलिन सस्कारोको आत्मभावके पवित्र सस्कारासे दूर करना अर्थात् देहात्मबुद्धिका त्याग करना।

भक्तिका सस्कार दृढ होनेपर देहासक्ति तथा कर्मफलासक्ति मिट जाती है। जबतक विषय-वासना आदि कुसस्कार मनुष्यमे स्थित रहते हैं, तबतक वह भगवद्भक्तिके दिव्य सस्कारोको नहीं समझ सकता, किंतु जब सस्कार-साधनासे उसका अन्त करण निर्मल हो जाता है तो उसमे भक्तिगम्य महाप्रभु स्वय ही आकर प्रतिष्ठित हो जाते हैं और तब उसका मानव-जन्म सफल हो जाता है।

सुसंस्कृत एवं सदाचारमर्यादाकी रघुकुल-रीति

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री साहित्याचार्य विद्यावारिधि एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने गुणकर्मका विभाग करते हुए चातुर्वर्ण्यात्मक भारतीय समाजकी सृष्टि की[१] और उसकी सुव्यवस्थाहेतु श्रुतियोंको प्रतिष्ठापित किया। भगवान्‌के श्वाससे निःसृत[२] इन श्रुतियोंके अनुसार सुसंस्कृत एवं सदाचारमय जीवन-यापन करनेसे धर्मार्थकाममोक्षरूपी पुरुषार्थचतुष्टय अनायास ही सिद्ध होता है।[३] श्रुतियोंकी इस परम्पराके संरक्षक स्वयं भगवान् हैं और जब-जब इस श्रुतिपरम्परामें कोई व्यवधान उपस्थित होता है, तब-तब भगवान् स्वयं अवतार लेकर अपनी श्रुतिपरम्पराओंका संरक्षण करते हैं।[४] भगवान् शंकरके शब्दोंमें श्रीरामजन्मका हेतु भी यही है—

> असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
> जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥
>
> (रा०च०मा० १।१२१)

रघुकुलतिलक भगवान् श्रीरामने रघुकुलकी रीतिके अनुसार सुसंस्कृत एवं सदाचारमय जीवन-दर्शनकी इसी मर्यादाको सुस्थापित किया। जिसका मूल 'धर्म' है, शाखाएँ 'अर्थ' हैं तथा पुष्प 'काम' है और फल 'मोक्ष' है—ऐसा सदाचाररूपी वृक्ष[५] किस प्रकार विकसित-पुष्पित एवं फलित होता है इसका प्रत्यक्ष अनुभव करानेके लिये व्यापक-अकल-अनीह-निर्गुण और अज परमात्माने श्रीरामके रूपमें मानवशरीर धारण किया। श्रीरामने यावज्जीवन श्रुति-सम्मत मर्यादाओं एवं सदाचारोंका[६] अनुपालन करते हुए संसारके सम्मुख एक प्रत्यक्ष एवं प्रभावशाली आदर्श समुपस्थापित किया।

भगवान् श्रीराम बाल्यकालसे ही सदाचारपरायण हैं। जन्मके समय माता कौसल्याको उन्होंने अपने चतुर्भुजरूपका

---

१ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता ४।१३)

२ 'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। (रा०च०मा० १।२०४।५)

३ प्राचीन कालमें गङ्गा, सरस्वती इत्यादि नदियोंसे समलङ्कृत एवं देवनिर्मित हमारे देश भारतवर्ष (ब्रह्मावर्त)-में ये संस्कार एवं सदाचार परम्परागत ढंगसे अपनाये जाते थे तथा लोग सफलमनोरथ होते थे। मनुने इन सदाचारोंको समस्त विश्वके लिये आचरणीय (अनुकरणीय) कहा था। तत्कालीन भारतको अपने इन्हीं सदाचारोंके बलपर विश्वगुरुका गौरव प्राप्त था—

> सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥
> तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ (मनुस्मृति २।१७-१८)

४ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता ४।७)

५ धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन् संसेवितो येन स पुण्यभाक्॥ (वामनपुराण १४।१९)

६ कामन्दकीय नीतिसारमें सदाचारी संस्कारसम्पन्न महापुरुषके सात्त्विक गुणोंका विस्तारसे वर्णन मिलता है। तदनुसार सत्पुरुषके मुख्य गुण हैं—सत्य एवं मधुर वाणी, प्राणिमात्रपर दया, दानशीलता, दीनों तथा शरणागतोंकी रक्षा, शुचिता, [illegible] पवित्रता एवं उदारता, नित्य देवदर्शनकी प्रवृत्ति, गुरुजनोंमें देवबुद्धि तथा मित्रोंमें आत्मदृष्टि। सत्पुरुष पुण्य [illegible] तथा सदा अपने गुरुजनों [illegible] समस्त [illegible] अपने जनों तथा अपने सुहृत् [illegible] प्रदान किये रहते हैं। इस प्रकार वे अपने [illegible] मित्रों [illegible] प्रेम सदा [illegible] एवं सबको और विनय [illegible] तथा [illegible] अन्य सभी जनोंको

दर्शन अवश्य कराया, किंतु माताकी आज्ञा मिलते ही वे शिशुरूप धारण कर रोने लगे—

'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।'

(रा०च०मा० १।१९२ छन्द)

श्रीराम प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर माता-पिता एवं गुरुको प्रणाम करते हैं तथा उनकी आज्ञाओंका अनुसरण करते हैं—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
'मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥

(रा०च०मा० १।२०५।७ ४)

भगवान् श्रीराम शतकोटि मनोजोको भी लज्जित करनेवाले तथा भूमण्डलमे अनुपमेय रूप-सौन्दर्यसे परिपूर्ण एव पराक्रमी हैं, तथापि उन्हे अपने रूप, वैभव या पराक्रमका लेशमात्र भी गर्व नहीं है। वे अपने अनुजो और सखाओके सङ्ग भोजन करते हैं तथा साथमे मृगया खेलने जाते हैं—

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
'अनुज सखा सँग भोजन करहीं।'

जनकपुरमे नगर-दर्शनहेतु निकले हुए श्रीराम जनकपुरवासी बालकोके घरमे प्रेमपूर्वक निःसकोच चले जाते हैं तथा बच्चाके साथ ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि व बच्चे उनके परम मनोहर शरीरका स्पर्श भी कर लेते हैं। गोस्वामीजीने इस आनन्ददायक प्रसङ्गको इस प्रकार वर्णित किया है—

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

(रा०च०मा० १।२२५।२)

सब सिसु एहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ देखि देखि दोउ भ्रात॥

(रा०च०मा० १।२२४)

श्रीराम किसीसे भी ईर्ष्या नहीं करते, वे तो अपने पराक्रमसे अर्जित विजयश्रीका श्रेय भी दूसरोको द देते हैं। रावण-जैसे पराक्रमी शत्रुका वध करनेके पश्चात् श्रीरामने अत्यन्त ही सरलतापूर्वक इस विजयश्रीका श्रेय वानराको दे दिया है—

तुम्हरे बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥

(रा०च०मा० ६।११८।४ ७।८।७)

श्रीरामको यदि कोई कठोर वचन कह भी दता है तो वे उसका उत्तर नहीं देते तथा शान्तचित्त रहते हैं। वे इतन उदार हैं कि एक बार भी किये गये उपकारको सदैव याद रखते हैं, किंतु अपने प्रियजनोके सैकडो अपराधापर भी ध्यान नहीं देते है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली। फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥

(रा०च०मा० १।२९।५—७)

झूठी बाते तो उनके मुखसे निकलती ही नहीं। वे स्पष्ट कहते है कि श्रीराम दो तरहकी बात नहीं बोलते—'रामो द्विर्नाभिभाषते' (वा०रा० २।१८।३०)।

श्रीराम छ अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदाके यथार्थ ज्ञाता हैं। वे नाटकादि साहित्यके भी अध्येता और विज्ञ है। वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले हैं तथा विद्वान् है, किंतु इतना सब कुछ होनेपर भी वे निरभिमानी-भावसे सर्वदा वृद्ध पुरुषोका समादर किया करते हैं* तथा ज्ञान-विज्ञानशील एव चरित्र तथा आयुमे वृद्धजनाका नित्य ससर्ग करके उनसे शिक्षा ग्रहण करते रहते है—

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ सग द्विज सज्जन॥

अभिभूत किये रहते हैं। सत्पुरुष दूसरेके कार्योंकी निन्दा नहीं करते अपने धर्मके पालनमे सदा तत्पर रहते हैं दीनापर अनुग्रह करते हैं और सदा ही मधुर वाणीका प्रयोग करते हैं सन्मार्गमे आरूढ मित्रका प्राणासे भी अधिक उपकार करते हैं। गृहागत व्यक्तिको स्नेह एव आलिङ्गन प्रदान करते हैं सहिष्णु रहते हैं अपनी समृद्धिमें गौरवकी अनुभूति नहीं करते दूसरके अभ्युदयमें द्वेष नहीं रखते धार्मिक वचन ही बोलते हैं तथा विशेष रूपसे मौनव्रतका पालन करते हैं अर्थात् अन्यायपूर्वक नहीं बोलते बन्धुजनोसे उनका नित्य सयोग बना रहता है सज्जनासे उनका नित्य सानिध्य रहता है और वे उन्हींके चित्तक अनुकूल आचरण करते हैं।

* श्रीरामके इन गुणोकी चर्चा वाल्मीकिजीने (वा०रा० २।१।९—२६ मे) विस्तारस की है। यहाँ कवल हिन्दी भावानुवाद दिया जा रहा है—

श्रीराम बडे ही रूपवान् और पराक्रमी थे। वे किसीके दोष नहीं देखते थे। भूमण्डलमें उनकी समता करनेवाला कोई नहीं था। वे अपने

वेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥[1]
(रा०च०मा० ७। २६। १-२)

श्रीराम बडे दयालु हैं तथा दीन-दुखियोके प्रति उनके मनमे बडी दया है।[2] भगवान् श्रीराम अपने कुलके अनुसार आचार, दया, उदारता और शरणागत-रक्षा आदिमे मन लगाते हैं—*'मम पन सरनागत भयहारी'* (रा०च०मा० ५। ४३। ८)। श्रीराम अपने क्षत्रियधर्म (प्रजापालनधर्म)-को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। उनका मानना है कि अपने धर्मका सम्यगनुपालन करनेसे ही उत्तम पदकी प्राप्ति सम्भव है।[3]

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

गुणोसे पिता दशरथके समान एव योग्य पुत्र थे॥ ९॥ वे सदा शान्त चित्त रहते और सान्त्वनापूर्वक मीठे वचन बोलते थे यदि उनसे कोई कठोर बात भी कह देता तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे॥ १०॥ कभी कोई एक बार भी उपकार कर देता तो वे उसके उस एक ही उपकारसे सदा सतुष्ट रहते थे और मनको वशमे रखनेके कारण किसीके सैकडो अपराध करनेपर भी उसके अपराधोको याद नहीं रखते थे॥ ११॥ अस्त्र-शस्त्रोके अभ्यासके लिये उपयुक्त समयमे भी बीच-बीचमे अवसर निकालकर वे उत्तम चरित्रमे ज्ञानमे तथा अवस्थामे बढ-चढे सत्पुरुषोके साथ ही सदा बातचीत करते (और उनसे शिक्षा लेते थे)॥ १२॥ वे बडे बुद्धिमान् थे और सदा मीठे वचन बोलते थे। अपने पास आये हुए मनुष्योसे पहले स्वय ही बात करते और ऐसी बाते मुँहसे निकालते जो उन्हे प्रिय लगे बल और पराक्रमसे सम्पन्न होनेपर भी अपने महान् पराक्रमके कारण उन्हे कभी गर्व नहीं होता था॥ १३॥ झूठी बात तो उनके मुखसे कभी निकलती ही नहीं थी। वे विद्वान् थे और सदा वृद्ध पुरुषोका सम्मान किया करते थे। प्रजाका श्रीरामके प्रति और श्रीरामका प्रजाके प्रति बडा अनुराग था॥ १४॥ वे परम दयालु, क्रोधको जीतनेवाले और ब्राह्मणोके पुजारी थे। उनके मनमे दीन-दुखियोके प्रति बडी दया थी। वे धर्मके रहस्यको जाननेवाले इन्द्रियोको सदा वशमें रखनेवाले और बाहर-भीतरसे परम पवित्र थे॥ १५॥ अपने कुलोचित आचार दया, उदारता और शरणागतरक्षा आदिमें ही उनका मन लगता था। वे अपने क्षत्रियधर्मको अधिक महत्त्व देते और मानते थे। वे उस क्षत्रियधर्मके पालनसे महान् स्वर्ग (परम धाम)-की प्राप्ति मानते थे अत बडी प्रसन्नताके साथ उसमे सलग्न रहते थे॥ १६॥ अमङ्गलकारी निषिद्ध कर्ममे उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं होती थी शास्त्रविरुद्ध बातोको सुननेमें उनकी रुचि नहीं थी वे अपने न्याययुक्त पक्षके समर्थनमे बृहस्पतिके समान एक-से-एक बढकर युक्तियाँ देते थे॥ १७॥ उनका शरीर नीरोग था और अवस्था तरुण। वे अच्छे वक्ता सुन्दर शरीरसे सुशोभित तथा देश-कालके तत्त्वको समझनेवाले थे। उन्हे देखकर ऐसा जान पडता था कि विधाताने ससारमें समस्त पुरुषोके सारतत्त्वको समझनेवाले साधु पुरुषके रूपमे एकमात्र श्रीरामको ही प्रकट किया है॥ १८॥ राजकुमार श्रीराम श्रेष्ठ गुणोसे युक्त थे। वे अपने सद्गुणोके कारण प्रजाजनोको बाहर विचरनेवाले प्राणकी भाँति प्रिय थे॥ १९॥ भरतके बडे भाई श्रीराम सम्पूर्ण विद्याओके व्रतमें निष्णात और छहों अङ्गोसहित सम्पूर्ण वेदोके यथार्थ ज्ञाता थे। बाणविद्यामे तो वे अपने पितासे भी बढकर थे॥ २०॥ वे कल्याणकी जन्मभूमि साधु, दैन्यरहित सत्यवादी और सरल थे धर्म और अर्थके ज्ञाता वृद्ध ब्राह्मणोके द्वारा उन्हे उत्तम शिक्षा प्राप्त हुई थी॥ २१॥ उन्हे धर्म काम और अर्थके तत्त्वका सम्यक् ज्ञान था। वे स्मरणशक्तिसे सम्पन्न और प्रतिभाशाली थे। वे लोकव्यवहारके सम्पादनमें समर्थ और समयोचित धर्माचरणमे कुशल थे॥ २२॥ वे विनयशील अपने आकार (अभिप्राय)-को छिपानेवाले मन्त्रको गुप्त रखनेवाले और उत्तम सहायकोंसे सम्पन्न थे। उनका क्रोध अथवा हर्ष निष्फल नहीं होता था। वे वस्तुओके त्याग और सग्रहके अवसरको भलीभाँति जानते थे॥ २३॥ गुरुजनोके प्रति उनकी दृढ भक्ति थी। वे स्थितप्रज्ञ थे और असद्वस्तुओंको कभी ग्रहण नहीं करते थे। उनके मुखसे कभी दुर्वचन नहीं निकलता था। वे आलस्यरहित प्रमादशून्य तथा अपने और पराये मनुष्योंके दोषोको अच्छी प्रकार जाननेवाले थे॥ २४॥ वे शास्त्रोके ज्ञाता उपकारियोके प्रति कृतज्ञ तथा पुरुषोके तारतम्यको अथवा दूसरे पुरुषोके मनोभावको जाननेमें कुशल थे। यथायोग्य निग्रह और अनुग्रह करनेमे वे पूर्ण चतुर थे॥ २५॥ उन्हें सत्पुरुषोके सग्रह और पालन तथा दुष्ट पुरुषोके निग्रहके अवसरोका ठीक-ठीक ज्ञान था। धनकी आयके उपायोको वे अच्छी तरह जानते थे (अर्थात् फूलोको नष्ट न करके उनसे रस लेनेवाले भमरोकी भाँति वे प्रजाओको कष्ट दिये बिना ही उनसे न्यायोचित धनका उपार्जन करनेमें कुशल थे) तथा शास्त्रवर्णित व्यय कर्मका भी उन्हे ठीक-ठीक ज्ञान था॥ २६॥

१ वाल्मीकिरामायणके उत्तरकाण्डमें श्रीरामदरबारके विविध प्रसङ्ग द्रष्टव्य हैं जहाँ विश्वामित्र आदि ऋषियोंसे श्रीरामने वार्ताएँ सुनी हैं।

२ रघुबर! रावरि यहै बडाई।
निदरि गनी आदर गरीबपर, करत कृपा अधिकाई॥
थके देव साधन करि सब सपनेहु नहिं देत दिखाई।
कवट कुटिल भालु कपि कौनप किया सकल सँग भाई॥ (विनय पत्रिका १६५)

३ कृष्णावतारमें प्रभुने यही उपदेश अर्जुनको भी दिया था— स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। 'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ॥ (गीता २। ३१ ३७ ३। ३५)

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
(रा०च०मा० १।२८४।१—४)

भगवान् विप्रगणो एवं गुरुजनोका अत्यधिक समादर करते हैं। वे इनकी सेवामे सदैव तत्पर रहते हैं तथा कथमपि इनकी अवज्ञा न हो, इसके लिये सचेष्ट भी रहते हैं। महर्षि विश्वामित्रकी जो सेवा श्रीरामने की तथा उनकी मर्यादाका जैसा ध्यान रखा, वह अनुकरणीय है—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
× × ×
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
(रा०च०मा० १।२२६।३ २२५।६)

साधु पुरुषोके समान ही श्रीराममे भी दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव है।[1] वे प्रजासे एक समान प्रेम करते हैं, तथापि गरीबोपर और दीन-दुःखियापर उनकी विशेष कृपा रहती है।[2]

श्रीरामका भ्रातृप्रेम अद्वितीय है। स्वयं भरतने श्रीरामके भ्रातृस्नेहका अनुभव सुनाया है कि श्रीराम खेलमे भी मुझे दुःखी नहीं देख सकते थे। उन्होने कभी भी मेरा साथ नहीं छोडा और न कभी मानभङ्ग ही किया। खेलमे जब मैं हार भी जाता था तब वे मुझे ही जिता देते थे—

मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(रा०च०मा० २।२६०।६—८)

श्रीरामकी पितृपरायणता अद्भुत है। उन्हे पितृपर-वशता अच्छी लगती है। वे पिताकी आज्ञासे आगमे कूदने, विषभक्षण करने एवं समुद्रमे गिरनेको भी तत्पर रहते हैं। वे अपने पिताको अपना गुरु और परम हितैषी मानते हैं। श्रीरामका मानना है कि इस संसारमे पिताकी आज्ञाका पालन करनेसे बडा कोई दूसरा धर्म नहीं है—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव॥
(प्रतिमानाटक अङ्क १ श्लोक १४)

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥
न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया॥
(वा०रा० २।१८।२८-२९ १९।२२)

पितृभक्त श्रीराम पिताकी आज्ञासे वनको प्रस्थान कर देते हैं। उनके मनमे हर्ष या विषादका किंचिदपि विकार नहीं है। वस्तुतः श्रीरामके अवतारका उद्देश्य ही श्रुतिसम्मत सदाचारोको भक्तोके सम्मुख प्रस्तुत करना है, तभी तो वे व्यापक ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी प्राकृत मनुष्यो-जैसे चरित करते हैं—

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥
भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
(रा०च०मा० १।२०५ ७।७२ क)

श्रीराम अपनी सदाचारपरायणताके कारण प्रजामे दशरथके समान ही बहुमान्य है। वे प्रजाजनोके प्राणके समान है। प्रजाको श्रीराम प्राणोसे भी अधिक प्रिय लगते हे—

स तु श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मजः।
बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः॥
(वा०रा० २।१।१९)

कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥
(रा०च०मा० १।२०४)

श्रीरामका वनगमन वस्तुतः श्रुतिवाक्योके प्रामाण्यकी सिद्धि दर्शानेके लिये है। श्रुतियाँ कहती हैं कि सत्यसन्धके वचन कभी मिथ्या नहीं होते। राजा दशरथ सत्यसन्ध हैं।

---

१ 'साधवः क्षीणदोषाश्च' (कालिकापुराण अ० ८९)।
साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय। सार-सार को गहि रहै थोथा देइ उडाय॥ (कबीर)
२ समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥ (रा०च०मा० ४।३।८)

सत्यका ही अवलम्ब लेना उनकी कुल-परम्परा रही है। राजा दशरथ और श्रीराम दोनाने अपनी इस कुल-परम्पराका उद्धरण दिया है—

श्रीराम—

रघुबसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपथ पगु धरइ न काऊ॥

(रा०च०मा० १।२३१।५)

दशरथ—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

(रा०च०मा० २।२८।४)

सत्यसन्ध दशरथने श्रीरामको राज्य देनेका सङ्कल्प किया।[१] गुरु वसिष्ठने राजा दशरथकी प्रशसा करते हुए कहा कि हे राजन्! फल तो तुम्हारी अभिलाषाआका अनुगमन करनेवाले हैं।[२] गुरु वसिष्ठजीन राज्याभिषकका तत्काल मुहूर्त भी घोषित कर दिया।[३] राज्याभिषेककी तैयारी हो ही रही थी कि तभी श्रीरामके वनगमनका प्रसङ्ग आ गया। राज्य भी भरतको देनेकी वात आ गयी। अब प्रश्न यह उठा कि क्या सत्यसन्ध दशरथका सङ्कल्प झूठा हो जायगा? क्या ऋषि वसिष्ठजीकी वाणी मिथ्या पड जायगी? क्या श्रुतिवाक्याका प्रामाण्य नहीं रह जायगा? इन प्रश्नाका उत्तर देनेके लिये श्रीराम वनम प्रस्थान करते हैं। श्रीरामका श्रुतिवाक्याका प्रामाण्य सिद्ध करना है। उन्हे सत्यसन्ध पिताके वाक्योपर विश्वास है। उन्ह शब्दप्रमाण (शास्त्रप्रमाण)-पर विश्वास है। व जानते हैं कि प्रकृति सत्यसन्धके वाक्याकी कभी प्रतिगामी नहीं होती। राम वनमे सीता और लक्ष्मणको भी ले गये, क्याकि श्रीराम जानते हैं कि वनम हम तीनो (राम, सीता तथा लक्ष्मण)-का वियोग कथमपि सम्भव नहीं है। अत वनगमनक समय उनकी मुखमुद्रा हर्ष-विषादसे मुक्त है। श्रीरामके राज्याभिषेककी घोषणाक पश्चात् वनगमन ही नहीं, अपितु सीताहरण, लक्ष्मणशक्ति, नागपाश-बन्धन आदि अन्य अनक व्यवधान भी आये किंतु वे सभी येन-केन-प्रकारेण टल गये, सफल नहीं हुए तथा वनवासकी अवधि बीतनेपर श्रीराम लङ्का-विजयकी अक्षय कीर्तिश्री लेकर हनुमदादि मित्रवर्गसे सम्पुष्ट होकर अयोध्या लौटे। श्रुतिवाक्योंका प्रामाण्य सिद्ध हुआ शास्त्राकी प्रामाणिकता सिद्ध हुई और सत्यकी रक्षा हुई।

शास्त्राकी इस प्रामाणिकताको स्थायी रूपसे देखकर न केवल अयोध्याकी प्रजा अपितु त्रैलोक्यके समस्त नर-नारियाके हृदय उल्लसित हुए तथा श्रीरामकी त्रिवर्गसिद्धि देखकर शास्त्रोक्त सदाचारोमे उनकी आस्था पुन दृढ हो गयी। इस प्रकार श्रीरामने सुसस्कृत एव सदाचारमय जीवन-दर्शनकी मर्यादा स्थापित की जिसका अनुकरण करनेसे मानव-जीवनके परम उद्देश्य—जन्म-मरणक बन्धनसे मुक्त होना—सहज सुलभ हो जाता है।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरासो, हरो जीव-जड़ताई॥
चहौ न सुगति, सुमति सपति कछु रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं माहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अडकी नाईं॥
या जगमे जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सो होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

(विनय-पत्रिका १०३)

---

१ नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥ (रा०च०मा० २।२।८)
२ राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार॥ (रा०च०मा० २।३)
३ बेगि बिलबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।' (रा०च०मा० २।४)

नाम-साधनाका संस्कार

(डॉ० श्रीअजितजी कुलकर्णी एम्०ए०, पी एच्०डी०)

पारमार्थिक या आध्यात्मिक साधनामे नाम-साधनाका स्थान महत्त्वपूर्ण है। भगवान्‌की अनुभूतिके लिये मनुष्यको श्रवण, मनन, निदिध्यासनकी आवश्यकता है। जब साधक भगवान्‌का नाम लेता रहता है तो उसका भी एक सस्कार उसमें प्रतिष्ठित हो जाता है। भगवान्‌क चरित्रका जा लीलानुवाद गुणानुवाद या नाम-सङ्कीर्तन होता है, इससे साधकके जीवनम अभ्युदय हाता है और इसी सम्कारम उसका भगवान्मे प्रेम हान लगता है और वह उस ओर आकृष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवतमे भगवान्‌के अवतार और उनकी लीला-कथाओंका गुणानुवाद हुआ है। भगवान्‌की लीलाओंम सस्कारका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सदर्भमे यहाँ दो कथाएँ प्रस्तुत हैं—

देवी रुक्मिणीका विवाह—भीष्मक विदर्भ देशके राजा थे। उनके रुक्मा, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली—ये पाँच पुत्र और एक कन्या थी, जिसका नाम था—रुक्मिणी। वह साक्षात् लक्ष्मीजीकी ही स्वरूप थी।

श्रीकृष्णसे द्वेपके कारण रुक्मीने रुक्मिणीका विवाह शिशुपालसे तय कर दिया था। लेकिन देवर्षि नारद और इतर लोगोसे रुक्मिणीने जब भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रम, सौन्दर्य एव गुणाका वर्णन सुना, उसी समय उसने मन-ही-मन श्रीकृष्णस विवाह करनेका निश्चय कर लिया था। इसलिये देवी रुक्मिणीने पत्र लिखकर एक शीलवान् ब्राह्मणक हाथ भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ भेज दिया। यह पत्र साधकाके लिये एक दिव्य सदेश है। इससे रुक्मिणीपर भगवान्‌के गुणानुवादका जो सस्कार पडा था उसीका प्रभाव प्रतीत होता है—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वता ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूप दृशा दृशिमतामखिलार्थलाभ
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रप मे॥

(श्रीमद्भा० १०।५२।३७)

ब्राह्मण बोले कि रुक्मिणीजीने कहा है—हे त्रिभुवनसुन्दर! आपके गुणाका हमने श्रवण किया है। जो आपके गुणानुवादका श्रवण करते हैं, उनके कर्णरन्ध्रोसे हृदयमे प्रविष्ट होकर आप गुणश्रवण करनेवालोंके एक-एक अङ्गके ताप तथा जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं और आपक रूप-सौन्दर्यका (-के विपयम) जो नेत्रवाले जीवाके नेत्रोके लिये धर्म अर्थ, काम और मोक्ष—चारा पुरुपार्थोंके फल एव स्वार्थ-परमार्थ—सब कुछ हैं, श्रवण करके हे प्यारे अच्युत! मेरा चित्त लज्जा—शर्म सब कुछ छोडकर आपमे ही प्रवेश कर रहा है।

अत्यन्त प्रेमरसपूर्ण शब्दामे भगवान् श्रीकृष्णसे रुक्मिणीने प्रार्थना की है। बहुत मननशील और चिन्तनशील विचार उस पत्रमे रुक्मिणीजीने लिखे हैं। यह सब भगवद्गुणानुवादका ही सम्कार है और इसी सस्कारके दृढ हो जानेसे रुक्मिणी भगवान्‌की आर आकृष्ट हुई। पत्रके प्रत्येक शब्द सारगर्भित हैं एक शब्द भी अनावश्यक नहीं। इसका विचारपूर्वक अध्ययन होना चाहिय और इससे भगवत्प्रेमकी शिक्षा लेनी चाहिय।

ब्राह्मणपत्नियोपर कृपानुग्रह—ब्राह्मणपत्नियोपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने जो लीला की उसी कथाका राजा परीक्षित्‌को बताते हुए श्रीशुकदेवजीने कहा—एक बार जब ग्वाल-बाल यमुना-तटपर हरे-भरे उपवनम गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूखे ग्वालाने भगवान् श्रीकृष्णस कहा—'श्यामसुन्दर! आपने बडे-बडे दुष्टोका सहार किया है उन्हीं दुष्टोके समान यह भूख हम सता रही

है, अत इसे बुझानेका कोई उपाय कीजिये।' ग्वालोकी प्रार्थनापर भगवान्ने उनसे कहा—'मेरे प्यार मित्रो! यहाँसे थोडी दूरपर वेदवादी ब्राह्मण आङ्गिरस नामक यज्ञ कर रहे हैं, तुमलोग वहाँ जाकर हमारा नाम लेकर भाजन-सामग्री माँग लाओ।' सब गोपाल वहाँ पहुँचे और श्रीकृष्णकी अन्नपानकी बात कह डाली, परतु ऋषियाने सभी गोपालोको विमुख कर दिया। ब्राह्मणाको याज्ञिकत्वका एव ब्राह्मणत्वका अभिमान था। वे यह नहीं जानते थे कि देश, काल, द्रव्य आदि सब-के-सब भगवत्स्वरूप ही हैं। सभी गापाल वापस आ गये। उन्होने भगवान्को बता दिया। यह सुनकर श्रीकृष्ण हँसने लगे। भगवान्ने कहा—प्रिय ग्वालबालो! फिर जाओ और उन ऋषियोकी जो पत्नियाँ भोजनगृहम काम कर रही हैं, उनसे भोजन माँगो, वे तुम्हे खूब भोजन देगी।

अबकी बार गोप पत्नीशालाम गये। उन्हाने गोपालोकी बात सुनी तो उन्ह बडी प्रसन्नता हुई। उनके हाथमे जो पदार्थ आये, वह सब लेकर वे श्रीकृष्ण-बलरामकी सेवामे आ गयीं। उन्ह बहुत आनन्द आ रहा था क्याकि आजतक सगुण रूपम उनका दर्शन नहीं हो पाया था। भक्ष्य भोज्य, लेह्य तथा चोष्य—इन चारो प्रकारके गुणवाले भोजन वे लायी थीं। श्रीकृष्णने कहा—आप सब कुछ छोडकर मेरे

पास आयीं है लकिन वहाँ यज्ञकर्म पूरा हाना है इसलिये वापस जाआ। ब्राह्मणपत्नियान कहा—भगवन्! इस प्रकारकी कठोर वाणी मत बोलिये। जो आपकी शरणमे आता है, उसकी पुन वापसी नहीं होती। सभीने उनके चरण पकड लिये।

ब्राह्मण प्रतिभासम्पन्न थे, जब उन्ह ज्ञान हुआ कि उन्होने भगवान्का अनादर किया है तो उन्ह बडा पछतावा हुआ, वे स्वयको धिक्कारने लगे। ब्राह्मणपत्नियाने गापियास जो श्रीकृष्णचरित्रका गुणानुवाद सुना, लीलाएँ सुनीं, उससे उनमे एक अलौकिक सस्कार प्रतिष्ठित हुआ और उन्हे भगवत्प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त हो गयी—

श्रुत्वाच्युतमुपायात नित्य तद्दर्शनोत्सुका।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमा॥

(श्रीमद्भा० १०।२३।१८)

भाव यह है कि ब्राह्मणियाँ बहुत दिनासे भगवान्की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं। उनका मन उनमे लग चुका था। वे सदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ। श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयीं।

भगवान्के गुणानुवादसे हृदय अन्त करण प्रसन्न होता है और भगवत्प्रीति उदित होती है। भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम एक अमोघ साधन है। नाम-सकीर्तन अमोघ सस्कार है।

भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नर।
सतत कीर्तयेद् भूमि याति मल्लयता स हि॥

जो प्राणी नारायण अच्युत अनन्त और वासुदेव आदि नामोका सदा-कीर्तन करता है, वह मुझम लीन होनेवाले भक्ताकी भूमिको प्राप्त हो जाता है।

भगवन्नाम-सकीर्तनका श्रवणकर भगवान् भक्तके कर्णछिद्रसे हृदयदेशम आते हैं और हृदयम जो अशुद्धियाँ हैं, उनको वे स्वय दूर कर देते हैं। कलियुगम नाम-सकीर्तनकी महिमा ही एसी है कि भगवान् आकर हृदयम प्रकट हो जाते हैं। ऐसा है नाम-सकीर्तनका सस्कार। इसीलिये भगवान् शङ्कर कहते हैं—

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥

(रा०च०मा० १।११३।२)

शुभ संस्कारोसे भगवान्के दर्शन सुलभ हो जाते है

(प० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दुबे)

मानव-शरीर अन्य सभी शरीरोसे श्रेष्ठ और परम दुर्लभ है तथा वह जीवको भगवान्की विशेष कृपासे जन्म-मृत्युरूप ससार-समुद्रसे तरनेके लिये ही मिलता है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो मनुष्य अपने कर्मसमूहोका ईश्वर-पूजाके लिये समर्पण नहीं करते और कामोपभोगको ही जीवनका परम ध्येय मानकर विषयोकी आसक्ति और कामनावश केवल विषयोकी प्राप्ति और उसके यथेच्छ उपभोगमे ही लगे रहते हैं, अपना पतन करनेवाले हैं। ऐसे लोग अपने जीवनको कर्मबन्धनमे और अधिक जकड रहे हैं। मनुष्य-शरीरकी शोभा विषय-भोग नहीं है, अपितु यह शरीरसम्पदा तप, ज्ञान, भक्ति और धर्मके लिये मिली है। शास्त्रप्रेरित कर्म ही धर्म है। धर्म एव शुभ कर्महीन जीवन पशुजीवन है।

साधकको शरीर और भोगोकी अनित्यता एव अपने आत्माकी नित्यतापर विचार करके इन अनित्य भोगोसे सुखकी आशाका त्याग करके सदा अपने साथ रहनेवाले नित्यसुखरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त करनेका अभिलाषी बनना चाहिये। हमारी हिन्दू सस्कृतिमे दो चीज प्रधान हैं—पहला ईश्वर और दूसरा धर्म। धर्म ही जीवनका रक्षक है, धर्म ही मनुष्यको पवित्र करता है। ससारमे मनुष्यका सबसे बडा धर्म यही है कि वह भगवन्नाम-जपादिके द्वारा भगवान्के चरणोमे भक्ति करे।

हममेसे अधिकाश लोगोने भगवान्को भुला दिया, जगत्को भगवान्से रहित मान लिया फलत ईश्वरमे, धर्ममे, पुनर्जन्ममे श्रद्धा-विश्वास न होनेसे महान् दु ख, अशान्तिकी सृष्टि हो गयी। साथ ही वर्णाश्रम-व्यवस्थाके बिगड जानेके कारण आज हमारा पतन हो रहा है, यह बडे दु खकी बात है। इसके मूलमे कुसस्कारोकी वासना ही मुख्य हेतु है।

भारतीय सस्कृति एव सनातनधर्ममे आचार-विचारको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये आचारका आश्रय आवश्यक है। इससे अन्त करणकी पवित्रताके साथ-साथ लौकिक एव पारलौकिक लाभ भी प्राप्त होता है। आचारके दो भेद माने गये हैं—पहला सदाचार तथा दूसरा शौचाचार। सदाचरणोका व्यवहार कल्याणका श्रेयस्कर मार्ग है।

चित्तमे जैसे सस्कार होते हैं, उसी हिसाबसे क्रिया होती है। ये सस्कार दो प्रकारके होते हैं—(१) द्रव्य-सस्कार और (२) भाव-सस्कार। खान-पानके द्वारा जो सस्कार उत्पन्न होकर चित्तको प्रभावित करते हैं, वे द्रव्य-सस्कार हैं और इन्द्रियोके तथा मनके अनुभवद्वारा चित्तमे जो सस्कार-भावनाएँ जाग्रत् होती हैं, वे भाव-सस्कार हैं। कल्याणकामीको चाहिये कि खान-पानके पदार्थोपर विशेष ध्यान रखे। खान-पानके पदार्थ सात्त्विक, धर्मसे प्राप्त तथा भगवान्को निवेदित किये होने चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य पूर्वजन्माके किये हुए कर्मोके फलस्वरूप इस जन्ममे विवश होकर अपना-अपना कर्म करता रहता है। पूर्वजन्मार्जित सस्कार उस कर्मप्रवृत्तिका हेतु है। यदि पूर्वजन्मके कर्म अच्छे हैं तो उत्तम जाति, आयु और भोग प्राप्त होते हैं। भारतीय सस्कृतिके अनुसार 'सूक्ष्म-सस्कार' मरणोपरान्त भी जीवात्माके साथ सलग्न रहते हैं।

मनुष्य जब शरीरका त्याग करता है, तब इस जन्मकी विद्या कर्म, क्रिया तथा प्रज्ञा आत्माके साथ जाती है और उसी ज्ञान और कर्मके अनुसार ही उसका जन्म होता है, यानी वैसे सस्कार जन्मके साथ प्रकट होते हैं। निषिद्ध कर्माचरणसे अन्धकारमय दु खप्रद नरकादि लोक और नीच पशु-पक्षी आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। पवित्र वैध कर्मके फलस्वरूप उत्तम लोक तथा मानव-योनिकी प्राप्ति होती है।

जब भगवान् विष्णुने वाराहावतार धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला तब, उसके सहोदर भ्राता हिरण्यकशिपुने विष्णुके वधकी प्रतिज्ञा की। तपहेतु वह महेन्द्राचलपर गया और वहाँ उसने घोर तपस्या की।

इधर इन्द्रने दैत्योपर चढाई कर दी। दैत्यगण रसातलमे चले गये। इन्द्रने हिरण्यकशिपुकी गर्भवती पत्नी कयाधूको बन्दी बना लिया। देवर्षि नारदजीके कहनेसे इन्द्रने कयाधूको छोड दिया, तब नारदजी कयाधूको अपने आश्रमपर ले आये। नारदजी कयाधूको अपने आश्रममे नित्य भगवद्भक्ति और

भगवत्तत्त्वका उपदेश देते रहते थे, क्योकि वे जानते थे कि इसके गर्भमे होनहार परम भागवत बालक है। गर्भस्थ प्रह्लादजी नारदजीके उपदेशोको बडे ध्यानसे सुनते थे।

जब हिरण्यकशिपु घोर तपस्या करके महलमे लौट आया, तब कयाधू भी राजमहलमे लौट आयी। कयाधूके गर्भसे भागवतरत्न प्रह्लादजीका जन्म हुआ। हिरण्यकशिपुका वह भक्तपुत्र जन्मसे ही वैष्णव हुआ। प्रह्लादजीकी माँ राक्षसकुलकी थी, परतु गर्भकालमे देवर्षि नारदके आश्रमम भगवत्कथा सुननेसे उसके गर्भसे परम भक्त प्रह्लादजीका जन्म हुआ। प्राणीके ऊपर जन्म-जन्मान्तरोकी छाप पडी होती है। ये सस्कार वासनाओके रूपमे अज्ञातरूपसे विद्यमान रहते हैं।

पुराणोकी कथाके अनुसार प्रह्लादजी पूर्वजन्ममे शिवशर्माके पुत्र सोमशर्मा नामक ब्राह्मण थे। वे सदा भगवान्‌के ध्यानमे लीन रहते थे। एक समय कुछ दैत्योने इनके तपमे विघ्न डालते हुए भयानक गर्जना की और सयोगकी बात है कि तत्क्षण इन (सोमशर्मा)-की मृत्यु हो गयी। अन्तिम समयमे दैत्योके शब्द कानमे पडनेसे उनके प्राण दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी पत्नी कयाधूमे प्रविष्ट हो गये, पर पूर्वजन्मके सस्कारोके प्रभावसे वहाँ भी उन्हे नारदजीके भक्तिसम्बन्धी दिव्य उपदेश सुननेको मिले। उन्हे उनके पूर्वजन्मकी पूर्ण स्मृति थी।

इस जन्ममे (वर्तमान जन्मम) प्रह्लादजीने दृढ निष्ठा एव विश्वाससे भगवान्‌की अनपायिनी भक्तिमे अपना मन लगाया। पूर्वजन्मके एव गर्भावस्थाके शुभ सस्कारो तथा वर्तमान जन्मकी भगवान्‌की अनपायिनी भक्तिके प्रभावसे प्रह्लादजीको भगवान् नरसिहजीके साक्षात् दर्शन सुलभ हुए एव उनके कृपाप्रसादकी—दिव्य वरोकी प्राप्ति हुई।

शास्त्रोके कथन '**हरिस्मृति सर्वविपद्विमोक्षणम्**' के अनुसार भगवान् नरसिहने दर्शन देनसे पूर्व अपने अनन्य साधुभक्त प्रह्लादजीकी नानाविध मृत्युतुल्य यातनाओसे समय-समयपर प्राणोकी रक्षा की। भगवान्‌मे अपना मन लगा देनेसे उनको किसी प्रकारकी भी पीडा नहीं हुई। भगवदाश्रय ग्रहण करनेवाले भक्तका अशुभ ही नहीं होता। ऐसे शुभ सस्कार बन सके, इसके लिये सतत सचेष्ट तथा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

~~ o ~~

भगवन्नाम-जपके सुसस्कार

[रोचक वृत्तान्त]

(डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)

जो व्यक्ति स्वेच्छासे एव अन्यकी प्रेरणासे हाथ पैर मन तथा वाणीसे इष्टानिष्ट क्रिया करता है, उसे कर्ता कहा जाता है। कर्ता जिन साधनासे कर्म करता है वे करण कहलाते हैं। वे करण यदि बाहरी हैं तो उन्हे बाह्य करण और यदि भीतरी हैं तो उन्हे अन्त करण कहा जाता है। कर्ता अपने करणोद्वारा जो शुभाशुभ क्रियाएँ करता है, उन्हें कर्म कहा जाता है। मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसके मनपर उन कर्मोका सूक्ष्म प्रभाव पडता है जिन्हे सस्कार कहा जाता है। शुभ कर्मोके शुभ सस्कार और अशुभ कर्मोके अशुभ सस्कार चित्तपर अङ्कित हो जाते हैं। ये ही सस्कार समय पाकर आगामी कर्मोके प्रेरक एव कर्मफलके कारण बन जाया करते हैं जैसे—चलचित्रमे जो रूप रग आकार दृश्य स्वर-गीत वाणी-वचन और जो नाद-वादन भरा गया हो—अङ्कित किया हुआ हो समयपर वही यथातथ्य अभिव्यक्त हो जाता है इसी प्रकार जिन भावासे जो कर्म किये जाते हैं वैसे ही उनके फल प्रकट हुआ करते हैं। अपने किये कर्मोका दायित्व कर्तापर ही है। प्रत्येक कर्ताम क्रिया करनेकी स्वतन्त्रता विद्यमान है। किया हुआ कर्म अपना फल दिये बिना रह नहीं सकता—यह सिद्धान्त अटल है। शुभ कर्मका फल शुभ और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है। इन सदर्भोके कुछ रोचक वृत्तान्त यहाँ प्रस्तुत हैं—

[१]

कुछ घटित जीवन-दृष्टान्तोसे यह भी प्रतीत होता है कि राम नाम-जपद्वारा व्यक्ति सस्कारित होकर अपने दुर्बल प्रारब्धको भी बदल देता है अर्थात् कुसस्कारी व्यक्ति भी भगवन्नामजपक दिव्य सस्काराद्वारा निन्दनीय न रहकर वन्दनीय बन जाता है। उसके विचार, आचरण एव स्वभावमे उल्लेखनीय परिवर्तन प्रत्यक्ष दिखायी देने लगता है। एक दृष्टान्तद्वारा इसे दिखाया जा रहा है—

एक बारकी बात है, सम्राट् अकबर एवं बीरबलने मार्गमें किसी ब्राह्मणको भीख माँगते देखा। राजाने व्यङ्ग्यात्मक सम्बोधनद्वारा बीरबलसे पूछा—यह क्या है? बीरबलने तत्काल उत्तर दिया—'महाराज! भूला हुआ है।' तो इस पण्डितको रास्तेपर लाओ, राजाने तत्क्षण कहा। बीरबलने कहा—आ जायगा राजन्! समय लगेगा। कृपया तीन माहकी अवधि दीजिये। राजाने स्वीकृति दे दी। शामको बीरबल ब्राह्मणके घर पहुँचे विद्वान् होकर भीख माँगनेका कारण पूछा और कहा—'ब्राह्मणदेवता! कलसे प्रातः आप चार बजे जग जायँ और मेरे लिये दो घण्टे राम-राम जप करें। शामको एक स्वर्णमुद्रा रोज आपके घर पहुँचा दी जायगी। ब्राह्मणको पहले तो यह सुनकर आश्चर्य हुआ किंतु मन-ही-मन सोचा कि ऐसा करनेमें क्या हर्ज है, जप करना स्वीकार कर लिया। पिछले जन्मके कुलके संस्कार शुभ थे। अतः चार बजे उठने तथा जप करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। फलतः स्वर्णमुद्राएँ एकत्रित हुईं और वे धनवान् हो गये। अभ्यास करते-करते राम-नामके दिव्य संस्कारोंने दबे सुसंस्कारोंको भी उभारा। अब वे सोचने लगे—यदि बीरबलके लिये जपनेसे राम-नामने धनाढ्य बना दिया है तो स्वयंके लिये भी क्यूँ न जपूँ? पुनः चार घण्टे रोज जप होने लगा। अब तो मकान भी बन गया और परिवार सुखी तथा हर सुविधासे सम्पन्न हो गया। फिर धीरे-धीरे उन्हें नाम मीठा लगने लगा और कामनाएँ कम होने लगीं। अतः उन्होंने बीरबलसे निवेदन किया—'अब केवल अपने लिये ही जप करूँगा, आप कृपा करके स्वर्णमुद्रा न भेजें। राम-नामकी उपासनाने मेरा विवेक एवं वैराग्य जाग्रत् कर दिया, प्रभुभक्तिकी लगन लग गयी।'

ब्राह्मणदेवताने अवसर पाकर पत्नीसे कहा—देवि! ईश्वरकृपासे घरमें सब कुछ है और प्रचुर मात्रामें है, परिवारका जीवन-यापन निर्विघ्न हो सकता है, अतः आप अनुमति दें तो मैं एकान्तमें रहकर जप-साधना करूँ। पत्नी साध्वी थी उसने सहर्ष स्वीकृति दे दी। अब ब्राह्मणदेवता सतत रामनामोपासनासे राम-रंगमें रँग गये। साधना फलने-फूलने लगी। लोग दर्शनार्थ पधारने लगे। प्रसिद्धिकी बात राजातक भी पहुँची। वे बीरबलसहित महात्माके दर्शन करने पधारे। लौटते समय अकबरने कहा—महात्मन्! मैं भारतका बादशाह अकबर आपसे प्रार्थना करता हूँ—यदि आपको किसी भी पदार्थ—सामग्रीकी आवश्यकता हो तो निःसंकोच संदेश भिजवाइयेगा तत्काल आपकी सेवामें पहुँच जायगी। ब्राह्मणदेवता मुसकराये, बोले—राजन्! आपके पास ऐसा कुछ नहीं, जिसकी मुझे जरूरत हो। हाँ, यदि आपको कुछ चाहिये तो माँगनेमें संकोच नहीं करना चाहिये। बीरबलने कहा—राजन्! आपने पहचाना इन्हें, ये वे ही ब्राह्मण हैं, जो तीन माह पूर्व भीख माँग रहे थे। राम-नामके जपने एक भिखारीको सच्चा दाता बना दिया, वास्तविक धनका धनी बना दिया। राम-नामके सुसंस्कारोंके प्रतापने इनके लोक-परलोक दोनों सुधार दिये। राजन्! आपने कहा था 'इसे सुधारो' तो मैंने पहले स्वर्णमुद्राका प्रलोभन देकर इनसे राम-नामका जप करवाया और जब इन्हें रामके नाममें रस आने लगा तो इन्होंने स्वर्णमुद्रा लेना बंद कर दिया और भगवत्प्रेमके वशीभूत हो जप करने लगे और आज इनका नाम-जपका संस्कार दृढ़ हो गया है। यह सुनकर अकबरको बड़ा आश्चर्य हुआ।

[२]

सुसंस्कारोंका सञ्चय, कुसंस्कारोंके प्रभावको दबा देता है, मंद कर देता है और कालान्तरमें नष्ट भी कर देता है। इस संदर्भमें एक दृष्टान्त यहाँ दिया जा रहा है—

किसी राजदरबारमें एक कर्मचारीकी पत्नी महारानीकी निजी दासी थी। दोनोंमें अति घनिष्ठ सम्बन्ध तथा पूर्ण अपनापन था। दासी इतनी विश्वसनीय थी कि महारानी कभी उससे कुछ न छिपातीं और दासी भी अपनी गुह्यतम बातें उन्हें निर्भयतापूर्वक बतला देती। ऐसे ही बहुत समय व्यतीत हो गया। दासीके पतिने एक दिन जब राजकुमारीको देखा तो उसे प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा उसके मनमें बैठ गयी और कामनापूर्तिके अनेक दुर्विचारोंने उसे घेर लिया। उसकी पतिव्रता पत्नीको पतिकी मनःस्थितिका पता चला तो उसे बहुत दुःख हुआ और वह उदास रहने लगी। इधर महारानीको लगा कि उसकी दासी उससे कुछ छिपा रही है।

एक दिन महारानीने उससे उदासीका कारण पूछा। बार-बार पूछनेपर दासीने डरते-डरते सब कुछ बतला दिया। दासीका

निश्चय हो गया था कि हम दाना पति-पत्नीको नौकरीसे छुट्टी ही नहीं, कडा दण्ड भी मिलेगा, किंतु भक्तिमयी रानी अति बुद्धिमान् थी। उसने सोच-विचारकर कहा—तू घबरा मत, मैं राजकुमारीको प्रस्तुत करनेका तेयार हूँ, पर एक शर्त है—नगरकी बाह्य सीमापर हमारा जो बगीचा है, तुम्हारा पति उसमे रहे। हर समय राम-राम जपे, जो भेजूँ वह खाये, छ माह बाद में राजकुमारीका हाथ उसके हाथम दे दूँगी। दासीने आकर सभी बात अपने पतिका बतायीं तो वह मान गया। उसने बगीचेक लिये प्रस्थान किया। राजकुमारीका पानेके लिये वह कुछ भी करनेको तैयार था। उसने राम-रामका जप शुरू कर दिया। महलसे सात्त्विक भोजन, दूध, फल निरन्तर जाता रहा। कुछ दिन तो उसका मन राम-नामम लगा नहीं क्योकि उसका तो ध्यान राजकुमारीम लगा था, किंतु उसे यह मालूम था कि बिना नाम जपे राजकुमारीका मिलना असम्भव है। अत वह विवश होकर नाम-जप करता रहा। फल यह हुआ कि भक्तिम आनन्द आने लगा, वह जितना अधिक नाम जपता, उतना अधिक उसे मधुर लगने लगता। अविराम नाम-जपसे उसके मन-बुद्धिमें बसे कुसस्कारोंकी धूल धुल गयी। दुर्विचार सद्विचारोंमें बदल गये। वह सत-स्वभावका हो गया, उसका मन पवित्र हो गया था। छ माह पूरे हुए, महारानी राजकुमारीसहित बगीचेम पधारीं। दासीके पतिका अन्त करण निर्मल हो गया था उसकी आसक्ति समाप्त हो गयी थी, वह हडबडाकर उठ बैठा उसने दोनोके चरणापर मस्तक रखा और कहने लगा—महारानीजी। इस देवीका विवाह किसी राजकुमारके साथ करे राम-नामने मेरी कुदृष्टि बदल दी और मेरा मातृभाव जगा दिया। नाम-जपके शुभ सस्काराने मेरे वासनामय सस्काराको दग्ध कर दिया है, आप मुझे क्षमा कर। आपने मेरी आँखे खोल दीं।

इस प्रकार उपर्युक्त दृष्टान्तासे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवन्नाम-जपके सुसस्कार हमारे कुसस्काराको अभिभूत करके हम प्रलोभनाके प्रति आकर्षणसे बचाते हैं। एक बारका बचाव हमे बलिष्ठ बनाता है और बार-बारका बचाव हमें फिर कभी प्रलोभनाम फँसने नहीं देता और फिर धीरे-धीरे कुसस्कारोंके बीज ही नष्ट हो जाते हैं। व्यक्तिको चाहिये कि ऐसे कुसस्कारोंको पुनर्जीवित होनेका अवसर ही न दे।

[३]

पावन राम-नामके सस्कार भी पावन होते ह, जो *भीतरी अपवित्रताका उन्मूलन करके उपासकका भी पावन* बना देते है और पवित्र तथा ईमानदार जीवन व्यतीत करनेके लिये अडिग रहनेका बल देते है। एक ऐसी ही घटना यहाँ प्रस्तुत है—

होशगाबादम करसी नोटाका कागज बनता है किंतु अधिकाश कागज विदेशसे ही आता है, जिसकी जाँच यहाँ होती है। एक राम-नामके उपासक कागजके परीक्षण-अधिकारीक पदपर नियुक्त थे। उनका निर्णय अन्तिम निर्णय होता था। निरीक्षण करनेपर एक पूरे लॉटम कमी पायी गयी। अस्तु, साधकने उसे स्वीकार न किया। उच्च अधिकारियाने समझाया, झझटम न पडो जैसा है वेसा ही पास कर दो। साधक न माना। विदेशी अधिकारियान दबाव भी डाला एव लालच भी दिया, किंतु साधकपर राम-नाम-जपके शुभ सस्कार प्रभावी थे, वह न भयभीत हुआ और न प्रलोभनम ही फँसा फलत पूरा लॉट अस्वीकार हो गया। कार्यालयस घर लौटकर साधकने अपने पिताजीसे चर्चा की। पिताजीने कहा—इतने बडे-बडे ऑफीसर कह रहे थे तो उनका कहना मान लेना चाहिये था। साधकने निवेदन किया—नहीं पिताजी। राम-नामके उपासकमे गलतको गलत कहनेका साहस न हो ईमानदारीपर अडिग रहनेका बल न हो, तो फिर किसमे होगा? दूसरा व्यक्ति तो बेईमानीक कुसस्कारासे प्रेरित हो सकता है, परतु उपासक तो परम शुचिताके सस्कारोसे सम्पन्न रहता है और वह कभी सन्मार्गसे च्युत नहीं हो सकता। राम-नाम ईमानदारी सिखाता है, अत साधक न स्वय और न ही किसीके कहनेपर गलत काम करता है। इस शुभ सस्कार और राम-नामके आश्रयका फल यह हुआ कि उन्हे सच्चाईके कारण बीस अधिकारियाका अधिक्रमण करके पदोन्नति मिली, वेतनम वृद्धि हुई और अन्य कई पुरस्कार भी मिले। इस प्रकार यह निश्चित हाता है कि सुसस्काराके फल लोक एव परलाक दोनाम मिलते हैं। साथ ही राम-नामक दिव्य सस्कार जापकका दिव्य बना देते हैं और उसे दिव्यता वितरित करनेयोग्य भी बना देते हैं।

~~~o~~~
~~~

गृहस्थधर्मके संस्कारसेवनसे भगवत्प्राप्ति

(डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

संस्कारका आशय—मनमें रहनेवाली भावना और उस भावनाके अनुसार किये जानेवाले कार्यों एवं कर्मोंको 'संस्कार' कहते हैं। यदि आपकी भावना सही एवं पवित्र है और आप दूसरोंके हितके उद्देश्यसे कर्म करते हैं, तो आपके संस्कार अच्छे हैं। यदि आपकी भावना गलत एवं अपवित्र है और आप अपने सुख, स्वार्थके उद्देश्यसे कार्य करते हैं, तो आपके संस्कार खराब हैं।

गृहस्थधर्म और संस्कार—हमारे ऋषि-महर्षियों एवं शास्त्रोंने गृहस्थधर्ममें पालन किये जानेवाले विशेष संस्कारोंका वर्णन किया है। गृहस्थ होनेके नाते आपको उन संस्कारोंका पालन करना चाहिये। यदि आप उन संस्कारोंका सेवन करेंगे तो आपका गृहस्थ-जीवन सुखमय, सरस, मधुर एवं सुन्दर बन जायगा और साथ-साथ आपको परम शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति तथा भगवान् भी मिल जायँगे। यदि आप उन संस्कारोंका पालन नहीं करेंगे तो सब प्रकारकी बाह्य सुख-सुविधाएँ होनेके बाद भी आपका गृहस्थ-जीवन अत्यन्त दुःखमय बना रहेगा, आप जीवनपर्यन्त अशान्त रहेंगे और मरनेके बाद भी आपकी सद्गति नहीं होगी।

गृहस्थधर्मके संस्कार

गृहस्थधर्मके संस्कारोंको दो भागोंमें विभाजित किया गया है—

(क) बाह्य या सहयोगी संस्कार—ये वे संस्कार हैं, जिनका सेवन करनेसे आपके घरका वातावरण सुन्दर बनेगा, घरमें शुद्धता तथा पवित्रता रहेगी, स्वस्थ एवं सुन्दर परम्पराओंका विकास होगा, बालकों और परिवारजनोंमें अच्छे संस्कार विकसित होंगे। ये सहयोगी संस्कार इस प्रकार हैं—

१-प्रातः जागरण—प्रातःकाल साढ़े तीन बजेसे सूर्योदयके लगभग चालीस मिनट पहलेतक अमृतवर्षा होती है। इस वर्षामें पानी नहीं बरसता है। इसमें प्रकृतिकी ओरसे ऐसे हजारों तत्त्व बरसते हैं, जिनके सेवनसे शरीर सदैव नीरोग रहता है और मन शान्त एवं प्रसन्न रहता है। इस वर्षाका लाभ केवल उन्हीं भाई-बहनोंको मिलता है जो प्रातःकाल जल्दी उठ जाते हैं। इस दृष्टिसे प्रातःजागरणका संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

२-उषा-पान—प्रातःकाल उठनेके बाद लगभग एक-सवा लीटर जल पीना चाहिये। इसे उषा-पान कहते हैं। खाली पेट जलपान शरीरमें अमृतका कार्य करता है। इससे तन स्वस्थ एवं मन प्रसन्न रहता है। उषा-पानकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

३-अभिवादन—प्रातः उठते ही आप जैसे ही अपने पति-पत्नी, बच्चों, माता, पिता, भाई, बहन आदि परिवारजनोंसे मिलें तो आपको 'जय श्रीकृष्ण' या 'जय श्रीराम' अथवा अन्य माङ्गलिक शब्द बोलकर उनका अभिवादन करना चाहिये। अभिवादनमें छोटे-बड़ेका विशेष नियम नहीं है। आप पिता, पति, दादा, दादी आदिको झुककर प्रणाम करें तथा अपने छोटे-छोटे बालकों एवं पौत्र-पौत्रियोंको अपनी ओरसे 'जय श्रीकृष्ण' बोलकर उनका अभिवादन कर सकते हैं। अभिवादनसे मन आनन्दित रहता है।

४-भगवान्‌के दर्शन तथा वन्दन—आपके घरमें उपयुक्त और पवित्र स्थानपर भगवान्‌का मन्दिर या पूजास्थल अवश्य होना चाहिये। मन्दिरकी नित्यप्रति सफाई करनी चाहिये। स्नान करनेके बाद परिवारके प्रत्येक सदस्यको भगवान्‌के दर्शन करके उनकी वन्दना करनी चाहिये। अपने छोटे-छोटे बच्चोंको भी बचपनसे ही भगवान्‌के दर्शन करवाने चाहिये। परिवारके सभी बड़े सदस्योंको भगवान्‌के दर्शन करके कुछ समयके लिये मन्दिरमें बैठकर भगवान्‌का भजन, भगवान्‌के नामका जप, सद्ग्रन्थोंका पाठ आदि अवश्य करना चाहिये। भगवान्‌के दर्शन और वन्दनके संस्कारसे भगवत्कृपासे अलौकिक शक्तियोंका विकास होता है।

५-प्रणाम—भगवान्‌के दर्शन तथा वन्दनके बाद अपने परिवारके सभी बड़े सदस्यों—माता, पिता, सास, ससुर, दादा, दादी, बड़े भाई आदिके चरणोंमें प्रणाम करनेका संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अनुकरणीय है। इस संस्कारसे अनेक अदृश्य एवं प्रत्यक्ष लाभ होते हैं।

भगवान् श्रीरामके जीवनम यह सस्कार बडा सजीव था। श्रीरामचरितमानसमे इसका स्पष्ट वर्णन है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
(रा०च०मा० १।२०५।७)

इसका आशय है—श्रीरघुनाथजी प्रात काल उठकर माता-पिता और गुरुको मस्तक नवाते थे।

६-आज्ञापालन—जहाँतक सम्भव हो, अपने माता, पिता, पति आदि बडे सदस्याकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यदि आप किसी विशेष कारणवश उनकी आज्ञाका पालन न कर सक तो अपनी बात स्पष्ट करते हुए विनम्रतापूर्वक क्षमा माँगनी चाहिये। आज्ञापालनसे परिवारकी शान्ति तथा एकता सुरक्षित रहती है।

७-मर्यादापालन एव शिष्टाचारसस्कार—रहन-सहन, वेश-भूषा, परस्पर बातचीत और विचारविनिमयम शास्त्र, कुल एव परिवारकी मर्यादाओ तथा शिष्टाचारक नियमाका पालन करना चाहिये। पारिवारिक और सामाजिक मामलोम अपनी राय विनम्रतापूर्वक देनी चाहिये।

(ख) मूल सस्कार—ये वे सस्कार हैं, जिनका पालन करनेसे आप गृहस्थ-जीवनम शान्ति एव प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए परम शान्ति, जीवन्मुक्ति एव भगवद्भक्ति प्राप्त करके अपने मानवजीवनको सफल बना पायेगे। महत्त्वपूर्ण मूल सस्कार इस प्रकार हैं—

१-मालिक भगवान् है—आप अपने मनमे यह भावना रखे—इस जगत्के मालिक भगवान् हैं। मेरे पास इस जगत्की तीन चीजे हैं—शरीर, निकट परिवारजन—पति-पत्नी, सतान, माता, पिता भाई, बहन आदि और निजी सामान—सम्पत्ति। इन तीना चीजोके मालिक भी भगवान् हैं। इस भावनासे आपको हर समय परमात्माकी स्मृति बनी रहेगी और आप इन तीना चीजाकी ममतासे मुक्त भी रहगे।

२-भगवान्के मेहमाना और स्वरूपाको प्रणाम—अपने परिवारके सभी छोटे-बडे सदस्याको भगवान्के साक्षात् स्वरूप या भगवान्के मेहमान मानकर प्रात उठनेके बाद, रात्रिमे सोनेके पहले एकान्तम बैठकर इस प्रकार प्रणाम कर—हे भगवान्! आप स्वय मेरे पिता बनकर पधारे हैं, आपके इस रूपको मेरा प्रणाम। आरम्भम प्रात एव रात्रिमे बादम दिनमे अनेक बार प्रणाम कर।

३-दु ख नहीं देना, अपमान न करना—भगवान्के किसी भी स्वरूप या मेहमानको तन मन, वचन, कर्म और व्यवहारसे दु ख न पहुँचाये, उनका अपमान न कर। यदि आप इस भूलको करेगे तो आपका गृहस्थजीवन दु खमय बन जायगा, आप गृहस्थीम फँस जायँगे। यदि आप अपनी ही भूल, स्वभाव एव अभिमानवश किसीको दु ख दे द या अपमान कर द, तो उससे तत्काल क्षमा माँग ल, उस भूलको दुबारा न करनेकी प्रतिज्ञा कर ल।

४-सद्भाव और सहयोग—गृहस्थीम आप अपने साथ रहनेवाले सभी स्वजनाके प्रति सद्भावना रखे अर्थात् मनमे यही साचे कि भगवान्क ये मेहमान किस प्रकार खुश एव प्रसन्न रह, इनका कल्याण कैसे हो। स्वजनाको यथाशक्ति क्रियात्मक सहयोग दे। सहयोगका न अभिमान कर न एहसान जताय।

५-क्रोध न करे, क्षमा कर दे, प्रेम द—यदि आपके स्वजन आपको दु ख द आपके साथ प्रतिकूल व्यवहार कर तो आप उनपर क्रोध न करे, उनको क्षमा कर द, उनको प्रेम देते रह। आपम उनपर क्रोध न करने, उनको क्षमा करने तथा उन्ह प्रेम देनेकी शक्ति तब आयेगी, जब आप इस सच्ची बातको मान लगे कि मुझे किसी भी स्वजनने दु ख नहीं दिया न दे रहा है और न भविष्यमे देगा। मेरे दु खका मूल कारण मेरी अपनी भूल है और उस भूलका नाम है—पराधीनता या कामना।

६-भगवान्के कार्य—प्रात काल उठनेसे लेकर रात्रिम सोनेतक आप अपने शरीर, परिवार, सम्पत्तिके जितने भी कार्य करे, उन कार्योंको भगवान्क कार्य मानकर पूरी सावधानीसे कर, उन कार्योंमे अपना पूरा समय, शक्ति, बल, बुद्धि योग्यता एव अनुभव लगाय, लेशमात्र भी लापरवाही न करे।

७-शरीरकी सेवा—शरीरको भगवान्का मेहमान समझकर इसकी सेवा कर। स्थूल शरीरको श्रमी, सयमी सदाचारी, स्वावलम्बी रखे, इसे 'मैं, मेरा मर लिये' कभी न मान। सूक्ष्म शरीरको मोह, ममता, कामना राग द्वेष, दीनता और अभिमानसे मुक्त करके निर्मल बनाये रखें कारण शरीरको कर्तापनके अभिमानसे मुक्त करके सर्वथा अहकारशून्य बनाकर इसके अस्तित्वको मिटा द।

८-सँभाल—प्रभुप्रदत्त निजी सामान तथा सम्पत्तिको भगवान्‌की धरोहर मानकर यथाशक्ति सँभाल ओर उसका सदुपयोग कर। सदुपयोगका अर्थ है—अपने शरीर, स्वजना एव समाजके हितम उसका उपयोग करना।

९-लौटा द—जब भी भगवान् अपनी दी हुई किसी भी वस्तु, शरीर अथवा परिवारजनको वापस ल, तो आप उनकी धरोहर उनका प्रसन्नतापूर्वक लौटा दे, लौटानेम आप लेशमात्र भी दु खी और चिन्तित न हो।

१०-कुछ न चाहे—शरीर स्वजन, सामान—सम्पत्तिके प्रति अपने कर्तव्यका पालन उपर्युक्त विधिसे कर दे बदलेम इनसे कभी कुछ न चाह अर्थात् ऐसा कभी न सोचे कि परिवारजन मेरी इच्छाके अनुसार ही रह, चले और करे, शरीर वैसा ही और तबतक बना रहे जैसा और जबतक में चाहूँ, सम्पत्ति मेरी इच्छाके अनुसार बनी तथा बढती रहे। याद रख, चाह करना आपके वशकी बात है, लेकिन चाहको पूरी करना आपके वशकी बात नहीं है। यदि आपकी चाह पूरी नहीं हुई तो आप भयकर दु ख, चिन्ता, तनाव एव क्रोधमे फँस जायँगे।

११-भगवान्‌का अधिकार देकर निश्चिन्त हो जाना—भगवान्‌का अधिकार देनेका अर्थ है—भगवान्‌से निवेदन कर देना कि हे भगवान्! शरीर स्वजन, सामान—सम्पत्तिके प्रति मैं अपना कर्तव्य साङ्गोपाङ्ग विधिसे पूरा कर दूँगा, बदलेम किसीसे कोई चाह नहीं रखूँगा। आप इन तीनो चीजाको अपनी इच्छाके अनुसार तबतक वहीं और वैसे ही रखे, जबतक, जहाँ जैसे रखनेमे आपकी प्रसन्नता हो। आप इन्ह जहाँ, जबतक, जैसे रखगे, मैं उसीम पूर्ण सन्तुष्ट, शान्त और प्रसन्न रहूँगा—एसा निवेदन करके जीवनमे निश्चिन्त, निर्भय तथा प्रसन्न रहना चाहिये।

गृहस्थजीवनके इन सस्काराके सेवनसे तन स्वस्थ रहेगा, मन प्रसन्न रहेगा, परिवारमे शान्ति रहेगी, परस्पर प्रेम बना रहेगा, बालक अच्छे बनेगे व्यापार विकसित होगा, आप परिवारके मोहसे मुक्त रहेगे, परिवारजनोके साथ आपका भगवत्प्रेमका सम्बन्ध सजीव बनेगा आप गृहस्थजीवनमे प्रसन्नतासे रहगे। इन सबके साथ-साथ आपको अपने अनमोल मानव-जीवनका लक्ष्य—परम शान्ति जीवन्मुक्ति भगवद्भक्ति, भगवत्-मिलन, भगवद्दर्शन भी मिल जायगा और आपका मानवजीवन पूर्ण सफल हो जायगा।

पूर्वजन्मका सस्कार

(डॉ० पुष्पा मिश्रा, एम०ए० (द्वय) पी-एच०डी०)

'सस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्॥'

(योगदर्शन ३।१८)

भगवान् पतञ्जलिने योगदर्शनके विभूतिपादके अन्तर्गत इस सूत्रद्वारा स्पष्ट किया है कि सस्कारके साक्षात् होनसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है। सयम (धारणा ध्यान एव समाधि)-की परिपक्वताकी अवस्थाम पूर्व-जन्मका ज्ञान होता है। विज्ञानभिक्षुके अनुसार सस्कारोके साक्षात्कारसे आनेवाले जन्मोका भी ज्ञान होता है। दूसराक सस्काराका साक्षात् करनेसे दूसरोके पूर्वजन्मका भी ज्ञान सम्भव है।

वस्तुत सस्कार चित्तका धर्म है। इस ही प्रारब्ध भवितव्यता, दैव और कर्मविपाक भी कहते हैं। सस्कारका अर्थ पूर्वजन्मके कृत्योकी वासना है—

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा ॥'

(योगदर्शन २।१३)

इसका तात्पर्य है—जबतक क्लश (अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष एव अभिनिवेश)-रूपी जड विद्यमान रहती है, तबतक कर्मोका सस्कार (कर्माशय) विपाक (परिणाम)-स्वरूप बार-बार भिन्न-भिन्न योनियोमे जन्म होना निश्चित आयुतक उस योनिम जीवित रहना तथा फिर मृत्यु-दु खको भोगना—ये तीन भोगावस्थाएँ प्राप्त होती हैं।

आचार्य सुश्रुतका कथन है कि दु खके सयोगको व्याधि कहते हैं जा चार प्रकारकी हैं—आगन्तुक कायिक, मानसिक तथा स्वाभाविक।

तद् दु खसयागा व्याधय उच्यन्ते॥ ते चतुर्विधा — आगन्तव , शारीरा , मानसा , स्वाभाविकाश्चेति॥

(सु०स० सूत्रस्थान १।२३-२४)

आचार्य शार्ङ्गधर इन चारके अतिरिक्त कर्मदोष (कर्मज)-को व्याधि कहते हैं—

स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा
रोगा भवेयु किल कर्मदोषजा ।
तच्छेदनार्थ दुरितापहारिण
श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥

(शा०स० १।१।५)

स्वाभाविक (भूख, प्यास, बुढापा मृत्यु आदि), आगन्तुक (आघात या साँप-विच्छूके काटनेसे उत्पन्न रोग), कायिक (शरीरकी धातुआके दूषित होनेसे प्राप्त रोग) एव मानसिक (पागलपन मूर्च्छा आदि)—ये कर्म तथा दोषसे पैदा होते है। 'कर्मजरोग' पूर्वजन्मके किये गये पापकर्मोक फलस्वरूप होते हैं। कोई रोग आहार-विहारके अयाग अतियोग और मिथ्यायोगम दोषाक कुपित हानेस होते हैं तथा कोई-कोई रोग दोना कारणासे होते है।

गरुडपुराण-सारोद्धार ((१।१९))-के अनुसार—

सुकृत दुष्कृत वाऽपि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम्।
कर्मयोगात्तदा तस्य कश्चिद् व्याधि प्रजायते॥

पूर्वजन्ममे या वर्तमानम अच्छे और बुरे कर्म भोग्यरूप होकर ही व्याधिके रूपमे उत्पन्न होते हैं।

श्रुतिम पुनर्जन्मका विशद वर्णन आया है। मृत्यूपरान्त जीवात्मा मनमे स्थित हुई इन्द्रियाक सहित पुनर्जन्मको प्राप्त होता है।

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजा पुनर्भव- मिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानै ॥ (प्रश्नोपनिषद् ३।९)

जिसके शरीरसे उदानवायु निकल जाती है, उसका शरीर गरम नहीं रहता। शरीरकी गरमी शान्त होते ही उसमे रहनेवाला जीवात्मा मनमे विलीन हुई इन्द्रियाको साथ लेकर दूसरे शरीरम चला जाता है। यही 'पुनर्जन्म' कहलाता है।

'वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च' (वदान्त-दर्शन ४।२।१)-क अनुसार मृत्युके समय वाणी मनम स्थित हो जाती है। यह प्रत्यक्ष देखने और शास्त्रप्रमाणासे भी सिद्ध है।

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयता वाङ्मनसि सम्पद्यते मन प्राणे प्राणस्तेजसि तेज परस्या देवतायाम्॥

(छान्दोग्योपनिषद् ६।८।६)

एक शरीरस दूसर शरीरम जात समय वाणी मनम मन प्राणम प्राण तजम तथा तेज परदेवताम स्थित हा जाता है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन ।
स्थाणुमन्येऽनुसयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥

(कठोपनिषद् २।२।७)

अपने शुभ-अशुभ कर्मोके अनुसार अन्तकालीन वासनाके अनुसार मरनेके बाद कितने ही जीवात्मा तो दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं। पुण्य-पाप समान होनेपर मानवयोनि प्राप्त होती है। पाप अधिक और पुण्य कम होनेपर पशु-पक्षीयोनि तथा अत्यधिक पापी स्थावरभावको प्राप्त होते हैं।

श्रुति एव अन्य आगमप्रमाणासे यह सिद्ध हाता है कि मृत्युके बाद आत्मा कारण-शरीर (मन, बुद्धि अहकार एव चित्त)-के साथ उस जन्मके कर्मविपाक (परिणाम)-को साथ लेकर ही दूसर शरीरमे स्थित हाता है। पाँच क्लेशो (अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश)-म अभिनिवेश (मृत्युका भय) पूर्वजन्मके सस्कारके रूपम इस जन्मम विद्यमान रहता है इसी कारण जन्म लनेके उपरान्त सभी जीव मृत्युसे डरने लगते हैं। पूर्वजन्मके सस्कार स्मरणम रहनेके कारण जन्मसे ही किसी-किसीको पिछल जन्मकी घटनाएँ याद रहती हैं।

'तासामनादित्व चाशिषो नित्यत्वात्।'

(योगदर्शन ४।१०)

पूर्वजन्मम भी मृत्युभयकी व्याप्ति होनेसे जन्म-जन्मान्तरकी परम्परा अनादिसिद्ध हा जाती है।

महर्षि वसिष्ठजीन इस प्रसगको इस प्रकार कहा है—

प्राणस्याऽऽभ्यन्तरे चित्त चित्तस्याऽऽभ्यन्तरे जगत्।
विद्यते विविधाकार बीजस्यान्तरिव द्रुम ॥

(यो०वा० नि०उ० १८।५)

ह रामजी! मृत पुरुषाका जो प्राण निकलता है उसक भीतर चित्त स्थित हाता है। चित्तक भातर जगत् एसे व्याप्त है जैस—बीजके भीतर वृक्ष।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता (१५।८)-म कहते हैं—

शरीर यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वर ।
गृहीत्वैतानि सयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

जीव अपनी देहात्मबुद्धिका एक शरारम दूसरम उसी तरह ल जाता है जिम प्रकार सुगन्धका वायु एक स्थानम दूसर स्थानतक ल जाता है।

वासनाएँ सैकडा जन्म पूर्वकी होती हैं। इनम देश-कालका भी अन्तर होता है, फिर भी जन्मके समय विभिन्न देश और कालाम चित्तके भीतर बनी हुई वासनाएँ एक साथ प्रकट होती हैं—

'ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्।'

(योगदर्शन ४।८)

काई कर्म किसी जन्मम किया गया ओर कोई कर्म किसी दूसर जन्मम। यह कर्मोमे जन्मका प्रभाव है। उसी प्रकार कर्मोमें दश आर कालका भी प्रभाव है। जन्म, देश तथा कालका प्रभाव होते हुए भी जिस कर्मका फल प्राप्त होनेवाला है, उसके अनुरूप भोग-वासना उत्पन्न हाती है। स्मृति और सस्कारम अन्तर नहीं होता है—

'जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसस्कार-योरेकरूपत्वात्।' (योगदर्शन ४।९)

वासनाएँ अनादि और अनन्त हैं, फिर भी ये हेतुफल और आश्रयके अधीन रहती हैं। हेतुफल एव आश्रयकी उपस्थितिम वासनाआकी उत्पत्ति हाती है। इनके अभावम वासनाएँ नष्ट हा जाती हैं। विवेक-ख्यातिके द्वारा ही पञ्च क्लेशाका नाश होता है और इसके उपरान्त ही वासनाओका नाश हाता है—

'हेतुफलाश्रयालम्बनै सगृहीतत्वादेषामभावे तदभाव ॥'

(योगदर्शन ४।११)

यह सिद्ध है कि अभावका कभी भाव नहीं होता और भावका कभी अभाव नहीं हाता। भगवान् श्रीकृष्णका गीता (२।१६)-म उपदेश है—

'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत ।'

पूर्वजन्मके सस्कार दो प्रकारके होते हैं १-स्थायी, जिसका परिणाम भोगना ही पडता है तथा २-अस्थायी, जिसको दान-पुण्य, यज्ञ तप, भगवन्नाम आदि उपायोद्वारा मिटाया जा सकता है। दाना ही प्रकारके सस्कारोका कुपरिणाम भगवान्‌की निष्काम भक्तिसे मिटाया जा सकता है।

नामसङ्कीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दु खशमनस्त नमामि हरि परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

जिन भगवान्‌का नाम-सङ्कीर्तन सभी पापोका नाश करनेवाला है और प्रणाम दु खनाशक है, उन परमेश्वरको मैं नमन करता हूँ।

~~~o~~~

आख्यान—

अच्छे संस्कारोंसे सत्यकामको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ

(श्रीआनन्दीलालजी यादव एम्०ए० एल्-एल्० बी०)

अच्छे सस्काराका मानव-जीवनम विशेष महत्त्व होता है। सस्कार आध्यात्मिक उपचारकी प्रक्रियास्वरूप हाते हैं, जिससे व्यक्तिके तन-मनके कषाय दूर होते हैं और मनुष्यका इहलाक तथा परलोक सुधरता है। अच्छे सस्कारयुक्त मनुष्यम सदैव सद्गुणोंका विकास होता है और जीवन उत्कृष्ट बनता है।

प्राचीन कालमे जगह-जगह ऋषि-मुनियाके गुरुकुल स्थापित थे, जहाँ विभिन्न क्षेत्रास आय हुए शिक्षार्थी गुरुकुलाम निवास करते हुए विद्या ग्रहण किया करत थ।

जबाला नामकी एक ब्राह्मणी थी। उसके पुत्रका नाम था—सत्यकाम। एक दिन सत्यकामन गुरुकुलम रहकर अध्ययन करनेकी इच्छाको अपनी माँस कहा—'माता! मैं ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरुकी सवाम रहना चाहता हूँ। मै अपना नाम तो जानता हूँ, परतु गोत्र नहीं जानता। गुरु मुझसे मेरा गोत्र पूछेगे। मुझे मेरा गोत्र वता दो।'

जबालाने कहा 'बेटा! मै घरपर अतिथि-सेवामे व्यस्त रहती थी। इस व्यस्तताके कारण में तुम्हारे स्वर्गवासी पितास तुम्हारा गोत्र नहीं पूछ सकी। गुरु पूछें तो कह देना—मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।' जबालाने अपने पुत्रकी विद्याग्रहण करनेका जिज्ञासा देखकर उसे गुरुकुलमे जानेकी आज्ञा दे दी। बालक सत्यकाम पूर्ण तैयारीके साथ शिक्षा प्राप्त करनके लिये गुरुकुलकी आर बिडे उत्साहके साथ चल दिया।

हारिद्रुमत गौतम ऋषिके आश्रमम पहुँचकर सत्यकामने ऋषिको प्रणाम करक उनसे निवेदन किया 'भगवन्! मैं ब्रह्मचर्यका पालन करत हुए आपके पास रहकर आपकी
~~~

सेवा करना चाहता हूँ, मुझे शिष्यरूपम स्वीकार कीजिये।' गौतम ऋषि बालकक विनम भावसे प्रसन्न हो गये। उन्होने बहुत ही स्नेहसे पूछा, 'सौम्य! तुम्हारा नाम और गोत्र क्या है ?'
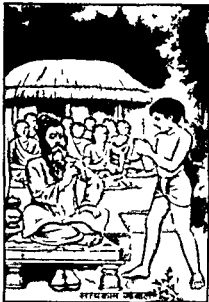
सत्यकामन कहा—'भगवन्! मेरी माता घर आये अतिथियाकी सेवाम व्यस्त रहनेके कारणवश मेरे परलोकवासी पितासे गोत्र नहीं पूछ सकीं। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ।'

बालक सत्यकामका उत्तर सुनकर ऋषिने प्रसन्न होकर कहा—'वत्स! तुम निश्चितरूपस ब्राह्मण हो। ब्राह्मण ही सीधी-सच्ची बात कह सकता है। आओ, मैं तुम्हारा उपनयन-सस्कार कर देता हूँ।' उन्होने समिधा मँगवाकर उसका उपनयन-सस्कार कर दिया।

गौतम ऋषिने सत्यकामको आश्रमकी चार सौ दुबली-पतली गायोको सौंपते हुए कहा 'पुत्र! इन गायोको वनम चराने ले जाओ। जब इन गायोकी सख्या एक हजार हो जाय तब इन्हे आश्रमम वापस ले आना।' सत्यकामने गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य की और कहा—'भगवन्! इन गायोकी सख्या एक हजार होनेपर ही मैं आश्रमम वापस लौटूँगा।' वह गुरुको प्रणाम करके चार सौ गायाको हाँककर वनम चरानेके लिये ले गया।

सत्यकाम गायाको उन स्थानापर रखता था जहाँ चारे और पानीकी सुविधा मिलती थी। वह उनकी सुरक्षाका भी ध्यान रखता था। उसने तन-मनस गासेवा की जिसका परिणाम यह निकला कि दुबली-पतली गौएँ हृष्ट-पुष्ट हो गयीं और गोधनका वशवृद्धि हुई।

एक दिन एक वृषभने सत्यकामक पास आकर मानव-वाणीम कहा—'सत्यकाम! अब हमारी सख्या एक हजार हो गयी है। हम गुरुके आश्रमम ले चलो मैं तुम्हे ब्रह्मक एक पादका उपदेश देता हूँ।' सत्यकामन कहा 'भगवन्! मुझे उपदश दीजिये।' तब उस वृषभन उस 'प्रकाशवान्' नामक ब्रह्मके एक पादका उपदश दिया और कहा कि ब्रह्मके दूसर पादका उपदश तुझे अग्निदेव करग।' सत्यकामन प्राप्त हुए ज्ञानका मनन किया।

दूसरे दिन प्रातःकालीन वेलाम सत्यकाम गायाको हाँककर गुरुक आश्रमकी ओर चल दिया। उसने सध्या होनेपर एक सुविधाजनक स्थानपर पडाव डाल दिया। उसने गायाक चारे-पानीकी व्यवस्था की तथा अग्नि जलाकर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। सहसा अग्निदेवने उससे कहा—'सत्यकाम!' उसने कहा—'भगवन्! क्या आज्ञा है ?' अग्निदेवने कहा—'सौम्य! मैं तुम्हें ब्रह्मके द्वितीय पादका उपदश देता हूँ।' स्वय अग्निदेवने उसे 'अनन्तवान्' नामक ब्रह्मके द्वितीय पादका उपदेश दिया और कहा कि ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश तुम्हे एक हस देगा। सत्यकामने प्राप्त ज्ञानका रातमे चिन्तन किया।

सुबह होते ही सत्यकाम गायाको लेकर आश्रमकी तरफ आगे बढा। दिनभर यात्रा करनेके बाद उसने शामको एक स्थानपर पडाव डाला गायोके चारे-पानीकी व्यवस्था की तथा अग्नि प्रज्वलित करक पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। उसी समय एक हसने वहाँ आकर उससे कहा—'सत्यकाम!' वह बोला—'भगवन्! क्या आज्ञा है ?' हसने कहा—'मैं तुम्हे ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश देता हूँ।' वह बोला—'भगवन्! कृपा करके उपदेश दीजिये।' हसने उसे 'ज्योतिष्मान्' नामक ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश देकर कहा कि एक मद्गु (जलमुर्ग) तुम्हे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश देगा। इसके बाद हस उडकर चला गया। उसने उपदेशका मनन किया।

सुबह होनेपर सत्यकाम पुन गायाको लेकर आश्रमकी

ओर आगे बढा तथा सध्याके समय एक स्थानपर गायाको ठहराकर उनके चार-पानीकी व्यवस्था करके उसने अग्नि प्रज्वलित की और पूर्वाभिमुख होकर वैठ गया। तभी एक जलपक्षीने उसे सम्बोधित किया—'सत्यकाम!' वह बोला, 'भगवन्! क्या आज्ञा है?' जलमुर्ग बोला—'मैं तुम्हे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश दूँगा।' सत्यकामने कहा 'उपदेश दीजिये, भगवन्!' जलमुर्गने उसे 'आयतनवान्' नामक ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश दिया और वह वहाँसे चला गया। सत्यकामने उपदेशका रातम मनन किया।

सत्यकामको वृषभरूप वायुदव अग्निदेव, हसरूप सूर्यदेव तथा जलपक्षीरूप प्राणदेवतासे क्रमश प्रकाशवान्, अनन्तवान्, ज्योतिष्मान् तथा आयतनवान् नामक ब्रह्मके चार पादाका ज्ञान प्राप्त हुआ। यह उसके द्वारा की गयी गो-सेवा तथा गुरकी आज्ञाका पालन करनेका फल था। वह ब्रह्मज्ञानी हो गया। उसके मुखमण्डलपर ब्रह्मतेज दिखायी दे रहा था। प्रात काल वह गायोंको लेकर आश्रमकी तरफ चल पडा।

अपने गुरु गौतम ऋषिके आश्रमपर पहुँचकर उसने ऋषिको प्रणाम करके कहा—'गायोकी सख्या एक हजार हो गयी है। आपके आज्ञानुसार मैं इन्हे वापस आश्रममे ले आया हूँ।' गौतम ऋषिने हृष्ट-पुष्ट गो-धनको देखकर एव सत्यकामके मुखमण्डलपर दृष्टिपात करके कहा—'वत्स सत्यकाम! तू ब्रह्मज्ञानीके समान दिखायी दे रहा है। तुझे किसने उपदेश दिया है?'

सत्यकामने कहा, 'भगवन्! मुझे मनुष्येतरास ज्ञान प्राप्त हुआ है।' उसने सारी घटना अपन गुरुको सुनाकर निवेदन किया—'भगवन्! गुरुके द्वारा प्रदान की गयी विद्या ही श्रेष्ठ होती है। अत आप मुझे विद्या प्रदान कर।' गौतम ऋषि बोले—'वत्स! तुमने ब्रह्मत्वका ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अब तुझे कुछ भी जानना शप नहीं रहा।'

सत्यकामको वाल्यावस्थासे ही अच्छे संस्कारास सँजोया गया था। '**अतिथिदेवो भव**' को वह घरपर प्रत्यक्ष देखता था। उसम सेवा-भाव, सत्य वोलना विनम्रता सदाचार सादगी तथा आज्ञापालन-जैसे सद्‌गुण थे। वह विद्याग्रहण करनेको तत्पर था। गौतम ऋषिके सानिध्यमे उसे गुरुसेवा तथा गोसेवाका अवसर मिला, जिसके फलसे वह ब्रह्मज्ञानी बना। उसका जीवनवृत्त शिक्षार्थियाक लिये प्रेरणाका स्रोत है। सभी व्यक्तियोमे अच्छे संस्कार हो, तभी मानव सासारिक और आध्यात्मिक जीवनमे सफल हो सकता है। आगे चलकर सत्यकाम ही 'जाबाल' ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हुए।

निष्कामसेवाके संस्कारोंसे प्रभुप्रेमकी प्राप्ति

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

निष्कामभावसे प्राणिमात्रकी सेवा करना ही वास्तविक भजन है। यही सच्चा धर्म है। ऐसी निष्कामसेवासे प्रभुप्रेमकी प्राप्ति अवश्य होती है।

जिस धर्मम दूसरोको दु ख देने दूसराकी हिसा करनेकी बात कही गयी है, वह वास्तवमे धर्म है ही नहीं। दूसरोको सुख-शान्ति देनेसे ही हमे सुख-शान्ति मिलेगी। दूसराको दु ख देनेसे हमे दु खकी ही प्राप्ति होगी, लाखो प्रयत्न करनेपर भी हम दु खसे बच नहीं सकते। पुण्य बने तो करो, परतु पाप तो कभी मत करो। हो सके तो दूसराको देना सीखो परतु लेनेकी भावना कभी मत रखो। दूसराको सुखी देखकर प्रसन्न होना चाहिये। दु खी देखकर उनकी सहायता करनी चाहिय, परतु कभी भी किसीको दु खी देखकर प्रसन्न नहीं होना चाहिये। जैसी भावना वैसी प्राप्ति। प्राणिमात्रका भला हो, सभी सुखी हो, किसीको दु ख न हो—ऐसी भावना नित्यप्रति बार-बार करनी चाहिये। एसी भावनासे हमारे विकार नष्ट होत हैं, तिरस्कार और द्वेष शान्त हो जाते हैं तथा सुसंस्कार मनम बैठ जाते हैं। हम जैसी भावना करे, वैसा आचरण भी कर—इससे भावना शीघ्र फलवती होती है। भावना अभ्यास है और आचरण उसका फल है। जिसके विचार वाणी और आचरणम एकता है उसे भय दु ख, चिन्ता और क्रोध होते ही नहीं हैं। इसलिये जो मनुष्य प्राणिमात्रका हित चाहता है, किसीका भी सुख देखकर जिसके अन्त करणम प्रसन्नता

होती है, दु खी देखकर जिसका अन्त करण द्रवित हो जाता है और अपने सामर्थ्यानुसार भेदभावसे रहित होकर वह उसकी सहायता करता है, किंतु बदलेमे स्वय कामनारहित रहता है—ऐसे मनुष्यसे सभी प्रम करत हैं, आवश्यकता पडनेपर उसकी सेवा करते हैं, जड-चेतन सभी उसके अनुकूल हा जाते हैं।

जो आचरण हमे अच्छा न लगे वह दूसराके साथ न कर। परोपकारसे पुण्य होता है, सुख मिलता है और परपीडासे महान् दु खकी प्राप्ति होती है। पाप दु ख है ओर पुण्य सुख है। निष्कामभावनासे जो परोपकार करता है, वह सदैव सुखी रहता है।

जिसके अन्त करणम दया है, जिसका हृदय दयासे परिपूर्ण है, उसे चारा दिशाओसे सुख प्राप्त हाता है, परतु जो दूसरोको दु खी देखकर प्रसन्न होता है, वह अवश्य ही दु खी होता है।

दूसरेको दु खी देखकर सहायता करे, दया करे यदि कुछ भी न बने तो उसका दु ख दूर करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना कर कि उसका भला हो। हम जैसा करगे वैसा मिलेगा, करना हमारे हाथमे है, फल कब और कितना देना है—यह ईश्वरके हाथम है। भगवान्ने तुम्ह अवसर दिया है तो जागो, उठो और सेवामे जुट जाओ, फिर ऐसा अवसर बार-बार नहीं आयेगा। ईश्वरका भजन करना चाहिये और जो भी भगवान्ने हमे दिया है, उसमस नित्यप्रति दान देते रहना चाहिये।

बुद्धि हो तो भूलेको रास्ता दिखाओ दु खीके प्रति दया रखकर उसकी सहायता करा। मन तथा इन्द्रियाको विषयासे हटाकर भगवान्की ओर लगाना चाहिये। कुटुम्बपोषण और विषयभोग ता पशु-पक्षी भी करते हैं फिर इन्हीं कार्योंमे अपनी आयु नष्ट क्यो की जाय? काल आयेगा तो सभी वस्तुएँ यहीं छोडकर जाना पडेगा उस समय कुटुम्बी सहायता नहीं करग। तुम्हारे साथ तुम्हारे पाप-पुण्य ही जायँगे। इसलिय नित्यप्रति पुण्यकर्म और भगवद्भजन करते रहना चाहिये ये ही तुम्हारे काम आयगे। यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि सच्चा धन धर्म और भगवान्का भजन ही है।

ससारम जीता-जागता परमेश्वर कहाँ है? तो वे हैं माता-पिता और परापकारी। इनको जो दु खी करता हे इनका जो तिरस्कार करता है वह कभी सुखी नहीं हो सकता, उलट दु ख ही पायेगा। इनकी सेवा करनेवाला सदैव सुखी रहता है। परमेश्वरपरायण, साधु, वृद्ध, बालक, गरीब, दु खी, भूखे और रोगी—ये सभी ईश्वरके रूप हैं। जाति-पाँति और योग्यता देखे बिना इनकी सेवा करनी चाहिये। इनकी सेवा करनेस जैसी शान्ति प्राप्त होती है वेसी शान्ति अन्य किसी क्रियासे नहीं हा सकती। नि स्वार्थ सेवा करनेमे जो आनन्द है वह स्वर्गम भी नहीं है, फिर इस लोकम तो हो ही कैसे सकता है? परतु उस सेवाम प्रत्युपकार, कीर्ति आशीर्वाद अथवा पुण्य आदि किसी भी प्रकारकी इच्छा अन्तम नहीं हानी चाहिये। यदि इच्छा होगी तो उसका तुम्हे वैसा फल मिल जायगा, परतु उसमे विघ्न आयेगे, जिनकी सहायता की है उनमे राग होगा। परतु कोई इच्छा न रहनेपर कामम अप्रत्याशित सरलता और सफलता मिलेगी—भगवान् मिलगे। अच्छे काम करते हुए यदि विघ्न आत हैं ता समझना चाहिये कि हमारे हृदयके किसी कोनेमे सूक्ष्म इच्छा अवश्य दबी पडी है।

कर्म किये बिना शरीर रह नहीं सकता इसलिये मनुष्य दान, पुण्य, जप तप, तीर्थसेवन, देवताआकी आराधना, यज्ञ आदि सामर्थ्यानुसार करे, परतु उन सब क्रियाआका फल भगवत्प्रेम ही चाहे—

'सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।'

(रा०च०मा० २। १२९)

विचारवान् और अविचारीमे इतना ही अन्तर है कि विचारवान् परिणामी सुखको देखता है और अविचारी तात्कालिक सुखको महत्त्व दता है। तात्कालिक सुख क्षणिक होता हे, जबकि परिणामी सुख असीम होता है। जिस वस्तु और क्रियास परिणामम सुख हो उसका सेवन करना चाहिये और जिनसे परिणामम दु ख हा उनका त्याग करना चाहिये।

उपासक कटुवचनाका प्रयाग और क्राध कभी न करे। परपीडा न दे किसीका तिरस्कार न करे। भगवान्

सबके अन्त करणमे रहते हैं, प्राणिमात्रका हृदय उनका मन्दिर है। हमारे मर्मभेदी वचनासे भगवान्का मन्दिर डोलने लगता है, उसम दरारे पड जाती हैं। दूसरोको दु ख देनेसे हम कभी सुखी नहीं हो सकते। एक बात और ध्यानमे रखनी चाहिये कि सबका स्वभाव अलग-अलग है, अत जिससे भी व्यवहार पडे, उसके स्वभावका ध्यान रखते हुए, उसे किसी प्रकारका दु ख न हो—ऐसा व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार आपको और उसको दोनाको सुख मिलेगा। सुख, शान्ति और आनन्दकी सभीको इच्छा रहती है। अत हमारे द्वारा किसीका दु ख न पहुँचे और हम किसीके व्यवहारसे दु खी न हो तो सुख सदैव हमारे साथ रहेगा। इसके लिये कुछ सूत्र बताते हैं—

१-दूसराका कोई हक न ले २-दूसरेको दु ख हो, ऐसा कुछ न कर ३-परनिन्दा न करे न सुने ४-प्रतिदिन किसी-न-किसी स्वरूपमे दूसरेका सुख पहुँचे, ऐसा कार्य अवश्य करे, किंतु प्रत्युपकारकी आशा न रखे तथा ५-कभी किसीको ठगे नहीं। हम ठगे जायँगे, इसका भय न रखकर, दूसरा हमारे द्वारा न ठगा जाय—इसका भय रखे।

—इन नियमाका पालन करनेवाला सबको प्रिय लगता है। सब उसपर विश्वास करते हैं और सभी उसका प्रिय चाहते हैं।

दु ख पापाधीन है, सुख पुण्याधीन है। दूसराको सुख पहुँचाना ही पुण्य है और दूसरोको दु ख देना ही पाप है। भगवान्की भक्ति करना सबसे बडा पुण्य है और भगवान्से विमुखता ही सबसे बडा पाप है।

पूर्वजन्ममे अथवा इस जन्मम किये हुए कर्मोंका फल भोगना ही पडेगा। भोग किये बिना कर्मफल समाप्त नहीं होते। इसलिये धैर्यके साथ यत्नपूर्वक उन्हें सहन करना चाहिये। दु खके पश्चात् सुख और सुखके पश्चात् दु ख आयेगा ही। अत दु खमे धैर्य और शान्तिके साथ यह विचार रखना चाहिये कि यह कहाँ चिरकालतक रहनेवाला है, दु खके बाद सुख तो आयेगा ही। यही बात सुखम भी स्मरण रखनी चाहिये कि किसीका सुख चिरकालतक नहीं रहता। इस प्रकार सुख-दु खका प्रभाव मनपर न पडने द। शरीरसे सदैव क्रियाशील रहे और मनको शान्तिपूर्वक भगवच्चिन्तनमे लगाय।

बहुत धन कमायेंगे और अपने इच्छानुसार खर्च करेंगे—ऐसी भावना नहीं रखनी चाहिये। वास्तवम हम क्या कमाते हैं? केवल श्रम और चिन्ता ही न! धन कमानेम श्रम तो करना ही पडता है, साथ ही धन खर्च करते समय भी मन सदा विक्षेपयुक्त रहता है। कारण—चिन्ता लक्ष्मीकी सहेली है और क्लेश तो लक्ष्मीके साथ माथेकी बिन्दीकी तरह चिपका रहता है। जहाँ लक्ष्मी जाती हैं वहाँ चिन्ता और क्लेश भी अवश्य जाते हैं। जीवको शान्ति और आनन्दकी भूख है, परंतु लक्ष्मीको कमाते और खर्च करते समय तो श्रम, चिन्ता और विक्षेप ही होते हैं। लक्ष्मीम शान्ति और आनन्द नहीं है। शान्ति और आनन्द तो निष्काम सेवामे है, आत्माम है—परमात्माम है। यदि अपने पूर्व-पुण्याके प्रतापसे लक्ष्मी मिली हो तो उससे भगवान्की आराधना करनी चाहिये, सत्सग करना चाहिये। लक्ष्मीका उपयोग भगवान्के लिये और भगवान्के भक्ताके लिये करते रहना चाहिये।

मनुष्य जैसा करेगा, उसके प्रति सारा जगत् वैसा ही करेगा। वह सत्य बोलेगा तो सारा ससार उसके साथ सत्य-वर्ताव करेगा। वह दूसरोको सुखी करनेमे यथाशक्ति प्रयत्न करेगा तो उसे सुखी करनेके लिये सम्पूर्ण जगत् चेष्टा करेगा। वह दया करेगा तो सारा ससार उसके प्रति दया रखेगा। इसमे दो शर्तें हैं—एक तो जिन गुणोका आचरण वह करे वे निष्काम और भगवदर्पण होने चाहिये। दूसरी, उनका बार-बार आचरण करते हुए अपना स्वभाव गुणमय हो जाना चाहिये, क्योंकि कोई भी सकाम पुण्यकर्म सम्पत्ति और यश देते हैं, जबकि निष्काम कर्म भगवान्की प्राप्ति कराते हैं। अत सच्चे अन्त करणसे निष्कामभावपूर्वक यथाशक्ति सबकी सेवा करनी चाहिये।

[प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा]

नम्र निवेदन एव क्षमा-प्रार्थना

'सस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते।'

मानवमे पहलेसे विद्यमान दुर्गुणाको निकालकर उनके स्थानपर सद्गुणाका आधान कर देनेका नाम 'सस्कार' है। महर्षि चरककी यह उक्ति सस्कारका पूरी तरह परिभाषित करती है। वास्तवम सस्कार मानव-जीवनका परिष्कृत करनेवाली एक आध्यात्मिक विधा है। सस्कारासे सम्पन्न होनेपर ही मानव सुसस्कृत, चरित्रवान्, सदाचारी तथा प्रभुपरायण हा सकता है। कुसस्कारजन्य चारित्रिक पतन ही मनुष्यको विनाशकी ओर ले जाता है, किंतु सस्कारयुक्त होनेपर मानवका ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय सहज ही सिद्ध हो जाता है। प्राकृतिक पदार्थ भी जब बिना सुसस्कृत किये प्रयोगके योग्य नहीं बन पाते तो फिर मानवके लिये सस्कारोकी कितनी आवश्यकता है, यह स्पष्ट ही हे। जबतक बीज एव गर्भसम्बन्धी दोपोका आहरण नहीं कर लिया जाता, तबतक व्यक्ति आर्पेय नहीं बन पाता और तब वह हव्य-कव्य देनेका अधिकारी भी नहीं बन पाता। मानव-जीवनको पवित्र, चमत्कारपूर्ण एव उत्कृष्ट बनानेके लिये सस्कारोकी मुख्य आवश्यकता है।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' का विशेपाङ्क **'सस्कार-अङ्क'** प्रकाशित किया जा रहा है। भारतीय सस्कृतिमे सस्काराका विशेप महत्त्व होनेके कारण सर्वसाधारणम सस्काराके सम्बन्धमे जाननेकी उत्सुकता होना स्वाभाविक है। पिछले कई वर्पोसे सुविज्ञजनाका यह आग्रह था कि सस्कारसे सम्बन्धित सामग्री 'कल्याण' के विशेपाङ्कके रूपमे प्रकाशित की जाय। यद्यपि यह कार्य इतना सरल नहीं था, फिर भी भगवत्प्रेरणासे यह विचार आया कि **'सस्कार-अङ्क'**-के द्वारा सुधी पाठकजनाकी जिज्ञासाको यथासाध्य पूर्ण करनेका प्रयास किया जाय। अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुकी असीम अनुकम्पासे इस वर्ष यह अवसर प्राप्त हुआ।

वास्तवम सस्कारोसे शारीरिक एव मानसिक मला—दापा—पापाका आहरण होता है और आध्यात्मिक पूर्णताकी योग्यता प्राप्त होती है। सस्कार सदाचरण और शास्त्रीय आचारके घटक हैं। सस्कार, सद्विचार और सदाचारकी सुसम्पन्नतासे मानव-जीवनके अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति होती है। सस्कार ही सद्विचार ओर सदाचारके नियामक हैं। एक सुसस्कृत व्यक्ति ही अपने कर्तव्यकर्मोको यथाविधि करनम समर्थ हो सकता है। सस्कारासे व्यक्तिको शास्त्रीय आचार-विचार और व्यवहारकी प्रबल सत्प्रेरणा प्राप्त होती है ओर वह भगवन्मार्गका अनुगामी बन जाता है। सस्कारासे शुचिता, पवित्रता, सदाशयता तथा सात्त्विक गुणाकी सहज ही प्रतिष्ठा हो जाती है और उसका जीवन अत्यन्त मर्यादित एव आचारनिष्ठ हो जाता है। भारतीय सस्कृति सदासे ही सस्कार और सदाचारसे अनुप्राणित रही है। अच्छे सस्कार पडे रहनेपर सत्कर्म बनते हैं और बुरे सस्कारोसे सम्पृक्त रहनेपर असत्कर्म ही बनते हैं। असत्कर्म न बन पडे और प्राप्त जीवनके प्रत्येक क्षणका हम सदुपयोग कर सके, इसके लिये सस्कारोका ज्ञान और सस्कार-परम्पराका अविच्छिन्न रूपसे परिपालन परमावश्यक है।

वर्तमानमे व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्वकी जो स्थिति है, सर्वत्र जैसी विभीपिका व्याप्त है, वह किसीसे छिपी नहीं। मानव आज कितनी तीव्र गतिसे पतनकी ओर जा रहा है और कितना दिग्भ्रान्त हे, यह सभीकी अनुभूतिमे है। असदाचार, अनैतिक जीवन, स्वच्छन्दता, वैयक्तिकता, मर्यादाहीनता, उच्छृङ्खलता, नास्तिकता, शास्त्रविरुद्ध आचरणके पालन तथा हितकारी एव कल्याणकारी नियमाके उल्लघनम गौरवानुभूति और इसमे बुद्धिमत्ताका बोध आदि-आदि—यह सब कुसस्कारोंसे प्रवृत्त होनेके कारण ही है। शास्त्रीय सस्काराके पालनको असभ्य और असस्कृत सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति भी बहुत

व्यापक रूपसे प्रचलनमे है—यह भारी विडम्बना है। सस्कार और सस्कारोके वैज्ञानिक तत्त्व आज अज्ञात और लुप्त-से हो गये हैं, जो हैं भी उनका भी रूप विकृत हो गया है। साथ ही उनका प्रचलन भी दिनोदिन कम होता जा रहा है, यहॉतक कि सस्कारोके नाम भी सज्ञानम नहीं रह गये हे—यह महान् भयकी सूचना है। सस्कार ही हमारी अविच्छिन्न सास्कृतिक परम्पराके प्राण हें, अत हम सस्काराका सविशेष अनुशीलन कर उन्हे पुन व्यावहारिक रूप देना चाहिये। उनकी रक्षा, सुरक्षा एव सरक्षाके दायित्वका निर्वाह करना चाहिये।

शास्त्रामे जन्मक पूर्वसे लकर मृत्युपर्यन्त तथा मृत्युके अनन्तर भी जीवकी सद्गति हो सके—इसके लिये सस्काराका विधान किया गया है, ताकि व्यक्तिका अन्त करण निर्मल बन सके। उससे सत्कर्म बन और वह इस मानव-जीवनकी प्राप्तिको सफल बना सके। ये सस्कार कौन-कोन-से हैं तथा उनकी विधि क्या हे और किस प्रकार ये भगवत्प्राप्तिमे सहयोगी बनते हैं, इसका अतिसूक्ष्म एव वैज्ञानिक वर्णन शास्त्रोमे विस्तारसे हुआ है। सस्काराके स्वरूपका ठीक-ठीक परिज्ञान हो सके तथा हम उनकी उपयोगिता ओर महिमाको समझकर उन्हे अपने जीवनमे उतार सके तथा दूसरोको भी इस ओर प्रवृत्त कर सके—इसके लिये सस्कारोके सूक्ष्म रहस्यसे परिचित होना परमावश्यक है।

इन्हीं सब दृष्टियोसे इस वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपम **'सस्कार-अङ्क'** सुधी पाठकोके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसम मुख्यरूपसे सस्कारका स्वरूप, उनकी महिमा तथा उपयोगिता, उनके सम्पन्न करनेकी विधि, सस्काराके मुख्य भेद, प्रमुख सस्काराका साङ्गोपाङ्ग वर्णन, विविध धर्म तथा सस्कृतियोम सस्कारोका स्वरूप तथा उनका महत्त्व सस्कारवान् महापुरुषोके चरित्र सस्कारसम्पन्नतासे लाभ तथा कुसस्काराका परिणाम ओर उससे होनेवाला विनाशकारी पतन, जन्मसे पूर्वके सस्कार गर्भकालीन सस्कार, जन्मके अनन्तर बालकाके सस्कार, शैक्षणिक एव नैतिक सस्कार, स्त्रियोके लिय विशिष्ट सस्कार, द्विजेतराके लिये सस्कार, उपनयन एव विवाहादि सस्कार, अन्त्येष्टि-सस्कारका स्वरूप तथा लौकिक एव पारलौकिक अभ्युदयमे सस्कार-परिपालनकी उपयोगिता और सस्कारसम्पन्नतासे भगवत्प्राप्तिम प्रवृत्ति तथा आत्मोद्धारके साधनके रूपमे सस्कारोकी मर्यादा आदि तात्त्विक विषयो एव उससे सम्बद्ध आख्यानोको सकलित कर सरल एव समग्ररूपमे प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया, जिससे सर्वसाधारण अपनी भारतीय सनातन सस्कृतिके प्राणभूत कल्याणकारी बातोसे परिचित होकर उन्हे अपने जीवनम आत्मसात् कर सके।

इस वर्ष **'सस्कार-अङ्क'** क लिये लेखक महानुभावोने उत्साहपूर्वक जो योगदान प्रदान किया है, वह अत्यधिक प्रशसनीय है। भगवत्कृपासे इतने लेख आर सामग्रियाँ प्राप्त हुईं कि सबको इस अङ्कम समाहित करना सम्भव नहीं था, फिर भी विषयकी सर्वाङ्गीणताको ध्यानम रखते हुए अधिकतम सामग्रियोका समायोजन करनेका विशष प्रयास किया गया हे। सामग्रीकी अधिकताक कारण फरवरी मासका 'कल्याण' **परिशिष्टाङ्क** के रूपमे प्रकाशित करनेका विचार हे।

लेखक महानुभावाके हम अत्यधिक कृतज्ञ है, जिन्हाने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर सस्कार-सम्बन्धी सामग्री तैयार कर यहाँ प्रेपित की है। हम उन सबकी सम्पूर्ण सामग्रीको इस 'विशषाङ्क' मे स्थान न दे सके, इसका हम खेद है। इसमे हमारी विवशता ही कारण है। इनमेसे कुछ तो एक ही विषयपर अनेक लेख आनेके कारण न छप सके तथा कुछ अच्छे लेख विलम्बसे आये, जिनमे कुछ लेखोको स्थानाभावके कारण सक्षिप्त करना पडा ओर कुछ नहीं दिय जा सके। यद्यपि इनमसे कुछ सामग्रीको आगेके साधारण अङ्काम देनेका प्रयास अवश्य करगे, परतु विशेष कारणासे कुछ लेख प्रकाशित न हो सकेंगे ता विद्वान् लेखक हमारी विवशताको ध्यानमे रखकर हमे अवश्य क्षमा करनेकी कृपा करगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय सत-महात्माओके श्रीचरणोम प्रणाम करते ह, जिन्होने विशेषाङ्ककी पूर्णतामे किञ्चित् भी योगदान किया है। सद्विचारोके प्रचार-प्रसारम वे ही निमित्त हैं, क्योकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्चविचारयुक्त भावनाओसे 'कल्याण' को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता ह। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है, त्रुटियो एव व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमा-प्रार्थी ह।

'सस्कार-अङ्क' के सम्पादनम जिन सतो एव विद्वान् लेखकोसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्ह हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम में वाराणसीके समादरणीय प० श्रीलालविहारीजी शास्त्री तथा प्रयागके प० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होने अपने लेख एव प्रेरणाप्रद परामर्श प्रदान कर निष्काम भावसे अपनी सेवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणोमे समर्पित की हैं। 'गोधन' के सम्पादक तथा विशिष्ट पत्रकार श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं, जो निरन्तर अपने पूज्य पिता भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके सग्रहालयसे अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ हमे उपलब्ध कराते हैं, साथ ही कई विशिष्ट महानुभावोसे भी सामग्री एकत्र कर भेजनेका कष्ट करते है।

में अपने कनिष्ठ भ्राता प्रेमप्रकाश लक्कडके प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होने इस अङ्कके सम्पादनम अपना अमूल्य समय देकर पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके सम्पादन, प्रूफ-सशोधन, चित्रनिर्माण तथा मुद्रण आदिम जिन-जिन लोगोसे हम सहृदयता मिली, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्ह धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवम 'कल्याण' का कार्य भगवान्का कार्य हे, अपना कार्य भगवान् स्वय करते है, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'सस्कार-अङ्क'** के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत जगन्नियन्ता प्रभु तथा शास्त्रबोधित शुभ सस्कारोका चिन्तन-मनन और सत्सङ्गका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हम आशा है कि इस 'विशेषाङ्क' क पठन-पाठनसे हमारे सहृदय प्रेमी पाठकोको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमे हम अपनी त्रुटियोके लिये आप सबसे पुन क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल अकारण करुणावरुणालय परमात्मप्रभुसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे हम तथा जगत्के सम्पूर्ण जीवोको सद्बुद्धि प्रदान कर, जिससे हम सब ऋषि-महर्षियोद्वारा निर्दिष्ट शुभ सस्कारोकी ओर प्रवृत्त होकर जीवनके वास्तविक लक्ष्यको प्राप्त कर सक।

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक

॥ श्रीहरि ॥
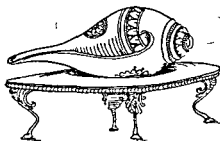
गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

[जनवरीसे नवम्बर २००५ तकके नवीन प्रकाशन*]

कोड		मूल्य
■1592	आरोग्य अङ्क (परिवर्धित संस्करण)	१२०
■1610	देवीपुराण [महाभागवत]-शक्तिपीठाङ्क	८०
■1589	श्रीहरिवंशपुराण—केवल हिन्दी	१५०
■1629	स्तोत्ररत्नावली सजिल्द	२८
■1590	गीता ग्रन्थमी पॅकेटसाइज (वि० सं०)	२०
■1595	साधकमें साधुता	२०
■1627	रुद्राष्टाध्यायी सानुवाद	१८
■1624	पौराणिक कथाएँ	१०
▲1598	सत्संगके फूल	९
▲1597	चिन्ता शोक कैसे मिटे ?	८
■1583	सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा (आठी) टाइप	६
■1623	ललितासहस्रनामस्तोत्र	६
▲1631	भगवान् कैसे मिले ?	६
■1599	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (नामावलीसहित)	५
■1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ( )	५
■1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् (")	५
▲1633	एक संतकी वसीयत	२
■1612	सच्ची और पक्की बात (सौ प्रतिके पैकेटमें)	१
■1611	मैं भगवान्का अंश हूँ (सौ प्रतिके पैकेटमें)	१
■1505	भीष्मपितामह	३
■1615	श्रीरामचरितमानस मूल मझला अजिल्द	३०
▲1653	मनुष्य जीवनका उद्देश्य	६
■1647	देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ	१५
■1646	महाभारतके प्रमुख पात्र	१५
■1602	श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकार्थसहित विशिष्ट संस्करण	८
■0557	मत्स्यमहापुराण [सचित्र, हिन्दी अनुवादसहित]	१५०
■1131	कूर्मपुराण [सचित्र, हिन्दी अनुवादसहित]	८०
■1549	वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड सटीक	५०
■1555	श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यसहित (विशिष्ट संस्करण) मोटे एवं अच्छे क्वालिटीके कागजपर)	३५
■1591	आरती संग्रह मोटा टाइप	१०
■1566	गीता पॉकेट साइज सजिल्द	१०
▲1587	जीवन सुधारकी बातें	८
■1588	माघमास माहात्म्य	५

कोड		मूल्य
■1556	श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकार्थसहित लघु आकार	५
	English	
■1159/1160	Śrīmad Bhāgavata Mahāpurāṇa Only English Translation Set of 2 Volumes	१५०
■1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	८०
■1584	Śrīmad Bhagavadgītā (With English Translation & Transliteration)	१०
	बँगला	
■1603	ईशादि नौ उपनिषद्	४५
■1604	पातञ्जलयोगदर्शन	११
▲1651	हे! महाजीवन हे! महामरण	७
■1652	नवग्रह पत्रिका	१०
■1574	संक्षिप्त महाभारत खण्ड १	१२०
■1513	उपयोगी कहानियाँ	८
▲1579	साधनार मनोभूमि	६
▲1580	अध्यात्म साधनाय कर्महीनता नय	६
▲1581	गीतार सारात्सार	६
	गुजराती	
■1608	श्रीमद्भागवत सुधासागर	१८०
■1634	दुर्गासप्तशती सटीक सजिल्द	२४
■1620	क्या करें ? क्या न करें ?	१८
■1636	श्रीमद्भगवद्गीता मूल मोटा टाइप	७
	मराठी	
■1607	रुक्मिणी स्वयंवर	१२
▲1613	भगवान्के स्वभावका रहस्य	९
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1642	प्रेमदर्शन	९
▲1641	साधनकी आवश्यकता	८
■1508	अध्यात्मरामायण	७०
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२
	पंजाबी	
▲1616	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७

कोड		मूल्य
	नेपाली	
■1609	श्रीरामचरितमानस सटीक मोटा टाइप	१४०
▲1621	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२
	तेलुगु	
■1622	श्रीमद्वाल्मीकिरामायण श्लोकतात्पर्यसहित [भाग २]	१३०
■964	राजा राम (चित्रकथा)	१५
■963	रामलला ( )	१५
■968	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र ( )	१५
■967	रामायणके प्रमुख पात्र ( )	१५
■959	कन्हैया ( )	१०
■960	गोपाल ( )	१०
■961	मोहन ( )	१०
■911	विष्णुसहस्रनाम-मूल (लघु आकार)	१
■962	श्रीकृष्ण पत्रिका	१०
■973	शिवस्तोत्रावली	३
■972	सुमति श्रीकृष्ण दाशरथिशतक मुलु	५
■1639	बालरामायणम् लघुआकार	१
■1024	श्रीनारायण कवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■1573	श्रीमद्भागवतमहापुराण मूलमात्रम्	१२०
■908	श्रीमन्नारायणीयम् (मूल)	१५
▲1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
■1371	श्रीमद्भगवद्गीता लघु आकार	२
	तमिल	
■1606	श्रीमन्नारायणीयम् सटीक	६०
■1605	भागवत एकादश स्कन्ध सटीक	५५
■1427	गीता साधक संजीवनी (भाग-२)	७५
	कन्नड़	
▲1625	नारीशिक्षा	८
▲1626	अमृत बिन्दु	६
■1559	वाल्मीकिरामायण-सुन्दरकाण्ड (सटीक)	५५
	ओड़िआ	
■1644	गीता दैनन्दिनी पुस्तकाकार विशिष्ट संस्करण	४५
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६

☞ भारतम डाक खर्च, पैकिग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि —२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अशके मूल्यकी पुस्तकापर —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ रगीन चित्रोपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोपर ५% पैकिग हैण्डलिग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोके मूल्य एव डाक दरमे परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओके नियमाकी पुस्तिका अलग है। विदेशोमे निर्यातके अलग नियम है।

☞ रु० १५०० से अधिककी पुस्तके एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्न वाली पुस्तकोपर ३०%) छूट देय। (पैकिग, रेल भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

सम्पर्क करे—

* शेष प्रकाशन विवरण अगले पृष्ठसे

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर।

कोड मूल्य

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता तत्त्व विवेचनी—(टीकाकार श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५९५ प्रश्न और उत्तररूपमें विवेचनात्मक हिन्दी टीका सचित्र सजिल्द आकर्षक

- ■ 1 बृहदाकार १२०
- ■ 2 ग्रन्थाकार विशिष्ट सस्करण ७० [बगला तमिल ओडिआ कन्नड अंग्रेजी तेलुगु, गुजराती मराठीमें भी]
- ■ 3 साधारण सस्करण ४५

गीता साधक संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एव सरल सुबोध भाषामें हिन्दी टीका सचित्र सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार परिशिष्टसहित १८
- ■ 6 ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित १० [मराठी तमिल (दोखण्डोंमें) गुजराती अंग्रेजी (दो खण्डोंमें) कन्नड़ (दो खण्डोंमें) बँगला ओडिआमें भी]

गीता दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश गीता व्याकरण और छन्द सम्बन्धी गूढ़ विवेचन

- ■ 8 सचित्र सजिल्द [मराठी बगला गुजराती ओडिआमें भी] ४
- ■1562 गीता प्रबोधनी—पुस्तकाकार ३
- ■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ दीपिका (मराठी) १३
- ■ 748 मूल गुटका (मराठी) २५
- ■ 859 मूल मझला (मराठी) ३५
- ■ 10 गीता शांकर भाष्य— ६
- ■ 581 गीता रामानुज भाष्य— ४
- ■ 11 गीता चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता विषयक लेखों विचारों पत्रों आदिका सग्रह) ३५

गीता—मूल पदच्छद अन्वय भाषा टीका टिप्पणी प्रधान

- ■ 17 लेखमहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती २५ बँगला मराठी कन्नड तेलुगु, तमिलमें भी]
- ■ 16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्य सहित सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) २५
- ■1555 गीता माहात्म्य डीलक्स ३५
- ■ 18 भाषा टीका टिप्पणी प्रधान विषय मोटा टाइप [ओडिआ गुजराती मराठीमें भी] १३
- ■ 502 गीता (सजि) २ [तेलुगु, ओडिआ गुजराती कन्नड तमिलमें भी]
- ■ 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) ७
- ■ 750 —भाषा पाकेट साइज (हिन्दी) ४
- ■ 20 —भाषा टीका पकिट साइज (हिन्दी) ५ [अंग्रेजी मराठी बँगला असमिया ओडिआ गुजराती कन्नड तेलुगुमें भी]
- ■1566 गीता—भाषा टीका पकिट १ साइज सजिल्द [गुजराती बँगला अंग्रेजी भी]
- ■ 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता विष्णुसहस्रनाम भीष्मस्तवराज अनुस्मृति गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओडिआमें भी] १५
- ■ 22 गीता—मूल मोटे अक्षरोंवाली (तेलुगु, गुजरातीमें भी) ७
- ■ 23 गीता—मूल विष्णुसहस्रनामसहित ३ [कन्नड तेलुगु, तमिल मलयालम ओडिआमें भी]
- ■1556 गीताश्लोकार्थसहित—लघु आकार ५
- ■ 700 गीता—मूल लघु आकार (ओडिआ बंगला तेलुगुमें भी) २
- ■1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (बगला तेलुगुमें भी) ४
- ■ 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१ प्रति एक साथ) २५
- ▲289 गीता निबन्धावली
- ▲297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप १
- ▲388 गीता माधुर्य सरल प्रश्नोत्तर ८ शैलीमें (हिन्दी) [तमिल मराठी गुजराती उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया कन्नड ओडिआ अंग्रेजी संस्कृतमें भी]
- ■1242 पाण्डव गीता एवं हंसगीता ३
- ■1431 गीता दैनन्दिनी (२० ६) पुस्तकाकार, विशिष्ट सस्करण (बँगला ओडिआमें भी) ४५
- ■ 503 गीता दैनन्दिनी (२ ६) ३ रोमन पुस्तकाकार प्लास्टिक जिल्द
- ■ 506 गीता दैनन्दिनी (२ ६)— २० पॉकेट साइज डीलक्स
- ▲464 गीता ज्ञान प्रवेशिका स्वामी रामसुखदास १५
- ■ 508 गीता सुधा तरंगिनी १

रामायण

- ■1389 श्रीरामचरितमानस बृहदाकार (राजसस्करण) ३५०
- ■ 80 श्रीरामचरितमानस बृहदाकार २५
- ■1095 ग्रन्थाकार (राजसस्करण) (गुजरातीमें भी) ११
- ■ 81 सचित्र सटीक मोटा टाइप १३ [ओडिआ बगला तेलुगु, मराठी गुजराती कन्नड़ अंग्रेजीमें भी]
- ■1402 „ सटीक ग्रथाकार (सामान्य) १
- ■ 82 मझला साइज सटीक सजिल्द ६५ [गुजराती अंग्रेजी भी]
- ■1563 मझला—सटीक विशिष्ट सस्करण ७५
- ■1318 रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित २०
- ■ 456 अंग्रेजी अनुवादसहित १२
- ■ 786 मझला ७०
- ■1436 मूलपाठ बृहदाकार १४
- ■ 83 मूलपाठ ग्रथाकार [गुजराती ओडिआ भी] ६५
- ■ 84 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला साइज [गुजराती भी] ४
- ■ 85 मूल, गुटका [गुजराती भी] २५
- ■1544 मूल गुटका (विशिष्ट सस्करण) ३
- ■ 790 केवल भाषा ८०

[श्रीरामचरितमानस अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड १८
- ■ 95 अयोध्याकाण्ड १८
- ■1349 सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) १५
- ■ 98 सुन्दरकाण्ड [कन्नड तेलुगु, बँगला भी] ५
- ■ 101 लकाकाण्ड ९
- ■ 102 उत्तरकाण्ड १
- ■ 141 अरण्य किष्किन्धा एव सुन्दरकाण्ड ९
- ■ 830 सुन्दरकाण्ड मूल ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन) १३
- ■ 99 श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड मूल गुटका [गुजराती भी] ३
- ■ 100 सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप [गुजराती ओडिआ भी] ५
- ■1378 सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप (लाल रंगमें) ६
- ■ 858 सुन्दरकाण्ड मूल लघु आकार [गुजराती भी] २
- ■1376 मानस गूढार्थ चन्द्रिका (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक टीकाकार प प प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) ७६ (अलग अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■ 86 मानसपीयूष (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १२२५ (अलग अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■1291 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण कथा सुधा सागर ८५
- ■ 75, 76 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक दो खण्डोंमें सेट २२
- ■1337, 1338 भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट २४
- ■ 77 केवल भाषा १४०
- ■ 583 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—(मूलमात्रम्) १
- ■ 78 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड मूलमात्रम् १५
- ■1549 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड—सटीक ५
- ■ 452, 453 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) ३
- ■1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क ६५
- ■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल तेलुगु, कन्नड मराठी भी] ६
- ■ 223 मूल रामायण [गुजराती भी] २
- ■1654 लवकुश चरित्र २
- ▲401 मानसमें नाम वन्दना ८
- ■ 103 मानस रहस्य ३५
- ■ 104 मानस शंका समाधान ११

अन्य तुलसीकृत साहित्य

- ■ 105 विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित २५
- ■ 106 गीतावली— २५
- ■ 107 दोहावली— १२
- ■ 108 कवितावली— १२
- ■ 109 रामाज्ञाप्रश्न— ७
- ■ 110 श्रीकृष्णगीतावली— ५
- ■ 111 जानकीमंगल— ४
- ■ 112 हनुमानबाहुक— ३
- ■ 113 पार्वतीमंगल— ३
- ■ 114 वैराग्य सदीपनी एव बरवै रामायण ३

सूर-साहित्य

- ■ 555 श्रीकृष्णमाधुरी २
- ■ 61 सूर विनय पत्रिका २
- ■ 62 श्रीकृष्ण बाल माधुरी २
- ■ 735 सूर रामचरितावली १८
- ■ 547 विरह पदावली १५
- ■ 864 अनुराग पदावली— २

पुराण उपनिषद् आदि

- ■ 28 श्रीमद्भागवत सुधासागर—भाषानुवाद, सचित्र सजिल्द १३
- ■1490 (विशिष्ट सस्करण) १८
- ■ 25 श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बडे टाइपमें २८
- ■1535, 1536 श्रीमद्भागवत महापुराण—सटीक दो खण्डोंमें सेट (विशिष्ट सस्करण) ३
- ■ 26, 27 श्रीमद्भागवत महापुराण—सटीक दो खण्डोंमें सेट (गुजराती भी) २२
- ■ 564 565 श्रीमद्भागवत महापुराण—अंग्रेजी सेट २५०
- ■ 29 मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी) ९०
- ■ 124 श्रीमद्भागवत महापुराण—मूल मझला ५५
- ■1092 भागवतस्तुति संग्रह
- ■ 571 श्रीकृष्णलीला चिन्तन (राजसस्करण) १
- ■ 30 श्रीप्रेम सुधासागर—श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका भाषानुवाद, सचित्र सजिल्द ६
- ■ 31 भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र सजिल्द [तमिल भी] २४
- ■728 महाभारत—हिन्दी टीकासहित सजिल्द, सचित्र [छ खण्डोंमें] सेट १२ ० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ■ 38 महाभारत खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक १८
- ■ 637 जैमिनीय अश्वमेध पर्व ५
- ■ 39, 511 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) २२
- ■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र सजिल्द १४
- ■1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट सस्करण) १४
- ■ 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी] ११
- ■1133 सं० देवीभागवत—मोटा टाइप [गुजराती भी] १३
- ■ 48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक सचित्र सजिल्द ८
- ■1364 श्रीविष्णुपुराण—(केवल हिन्दी) ५५
- ■1183 सं० नारदपुराण १
- ■ 279 सं स्कन्दपुराणाङ्क—सचित्र सजिल्द १५
- ■ 539 सं० मार्कण्डेयपुराण ५५
- ■1111 सं० ब्रह्मपुराण ७०
- ■1113 नरसिंहपुराणम्—सटीक ६
- ■1189 सं० गरुड़पुराण ९
- ■1362 अग्निपुराण (मूल सस्कृतका हिन्दी अनुवाद) १२
- ■1361 सं० श्रीवराहपुराण ६
- ■ 584 सं भविष्यपुराण ९
- ■1131 कूर्मपुराण—सटीक ८
- ■ 631 सं ब्रह्मवैवर्तपुराण १२
- ■1432 वामन पुराण—सटीक ७५
- ■ 557 मत्स्यमहापुराण—सटीक १५
- ■ 517 गर्गसंहिता—भगवान् कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन सचित्र सजिल्द ८
- ■ 47 पातञ्जलयोग प्रदीप— १
- ■ 135 पातञ्जलयोगदर्शन— १
- ■ 582 छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य ७०
- ■ 577 बृहदारण्यकोपनिषद्— १
- ■ 1421 ईशादि नौ उपनिषद् १ एक ही जिल्दमें
- ■ 66 ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय हिन्दी व्याख्या ४५

कोड	पुस्तक	मूल्य
■ 67	ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	४
■ 68	केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य	१०
■ 578	कठोपनिषद्—	१२
■ 69	माण्डूक्योपनिषद्—	२
■ 513	मुण्डकोपनिषद्—	८
■ 70	प्रश्नोपनिषद्—	१
■ 71	तैत्तिरीयोपनिषद्	१६
■ 72	ऐतरेयोपनिषद्—	७
■ 73	श्वेताश्वतरोपनिषद्—	२
■ 65	वेदान्त दर्शन—हिन्दी व्याख्यासहित सजिल्द	३५
■ 639	श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु भी]	३५

भक्त-चरित्र

कोड	पुस्तक	मूल्य
■ 40	भक्तचरिताङ्क—सचित्र सजिल्द	१२०
■ 51	श्रीतुकाराम चरित जीवनी और उपदेश	३५
■ 121	एकनाथ चरित्र	१५
■ 53	भागवतरत्न प्रह्लाद	१५
■ 123	चैतन्य चरितावली सम्पूर्ण एक साथ	१००
■ 751	देवर्षि नारद	१२
■ 167	भक्त भारती	
■ 168	भक्त नरसिंह मेहता [मराठी गुजराती भी]	१२
■ 1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■ 169	भक्त बालक गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड मराठी भी]	५
■ 170	भक्त नारी—मीरा शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171	भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	६
■ 172	आदर्श भक्त—शिबि रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड गुजराती भी]	६
■ 173	भक्त सप्तरत्न दामा रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती कन्नड भी]	६
■ 174	भक्त चन्द्रिका सखू, विट्ठल आदि छ भक्तगाथा [गुजराती कन्नड तेलुगु, मराठी ओडिआ भी]	५
■ 175	भक्त कुसुम जगन्नाथ आदि छ भक्तगाथा	५
■ 176	प्रेमी भक्त बिल्वमंगल जयदेव आदि [गुजराती भी]	५
■ 177	प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय उत्तङ्क आदि	१
■ 178	भक्त सरोज—गङ्गाधरदास श्रीधर आदि (गुजराती भी)	७
■ 179	भक्त सुमन—नामदेव राँका बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	६
■ 180	भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	७
■ 181	भक्त सुधाकर—रामचन्द्र लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	६
■ 182	भक्त महिलारत्न रानी रत्नावती हरदेवी आदि [गुजराती भी]	६
■ 183	भक्त दिवाकर—सुव्रत वैश्वानर आदि भक्तगाथा	६
■ 184	भक्तरत्नाकर—माधवदास विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	६
■ 185	भक्तराज हनुमान् हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी ओडिआ तमिल तेलुगु, कन्नड गुजराती भी]	५
■ 186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओडिआ भी]	४
■ 187	प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल तेलुगु, गुजराती ओडिआ भी]	४
■ 188	महात्मा विदुर [गुजराती तमिल ओडिआ भी]	४
■ 136	विदुरनीति	१
■ 138	भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	९
■ 189	भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक	मूल्य
■ 683	तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ)	८०
■ 814	साधन कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲ 527	प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१५
▲ 528	ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१
▲ 266	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी)	९
▲ 267	(भाग २)	९
▲ 303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल गुजराती भी]	८
▲ 298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य [तमिल गुजराती भी]	९
▲ 243	परम साधन—भाग १	९
▲ 244	— भाग २	८
▲ 245	आत्मोद्धारके साधन—भाग १	१
▲ 335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग २) [गुजराती भी]	९
▲ 579	अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती मराठी कन्नड ओडिआ भी]	७
▲ 246	मनुष्यका परम कर्तव्य—भाग १	९
▲ 247	भाग २	९
▲ 611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	९
▲ 1296	कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲ 1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	७
▲ 248	कल्याणप्राप्तिके उपाय (त चि म भा०१) [बँगला भी]	१३
▲ 249	शीघ्र कल्याणके सोपान भाग २ खण्ड १ [गुजराती भी]	८
▲ 250	ईश्वर और संसार भाग २ (खण्ड २)	१२
▲ 519	अमूल्य शिक्षा भाग ३ (खण्ड १)	९
▲ 253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग ३ (खण्ड २)	९
▲ 251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि—भाग ४ (खण्ड १)	१
▲ 252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा (खण्ड २)	१०
▲ 254	व्यवहारमें परमार्थकी कला—त चि भाग-५, (खण्ड १) [गुजराती भी]	८
▲ 255	श्रद्धा विश्वास और प्रेम भाग ५ (खण्ड २) [गुजराती भी]	१०
▲ 258	तत्त्वचिन्तामणि भाग ६ (खण्ड १)	९
▲ 257	परमानन्दकी खेती भाग ६ (खण्ड २)	९
▲ 260	समता अमृत और विषमता विष भाग-७ (खण्ड १)	१
▲ 259	भक्ति भक्त भगवान् भाग ७ (खण्ड २)	१
▲ 256	आत्मोद्धारके सरल उपाय	८
▲ 261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान [मराठी कन्नड तेलुगु, तमिल, गुजराती ओडिआ, अंग्रेजी भी]	३
▲ 262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी कन्नड गुजराती ओडिआ तमिल मराठी भी]	७
▲ 263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी कन्नड, गुजराती तमिल मराठी भी]	५
▲ 264	मनुष्य जीवनकी सफलता—भाग १	९
▲ 265	मनुष्य जीवनकी सफलता—भाग २	७
▲ 268	परमशान्तिका मार्ग—भाग १ (गुजराती भी)	९
▲ 269	भाग २	९
▲ 543	परमार्थ सूत्र संग्रह [ओडिआ भी]	८
▲ 1530	आनन्द कैसे मिले?	६
▲ 769	साधन नवनीत [गुजराती ओडिआ कन्नड भी]	८
▲ 599	हमारा आश्चर्य	८
▲ 681	रहस्यमय प्रवचन	८
▲ 1021	आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८
▲ 1324	अमृत वचन [बंगला भी]	८
▲ 1409	भगवत्प्रेम प्राप्तिके उपाय	८
▲ 1433	साधना पथ	६
▲ 1483	भगवत्पथ दर्शन	८
▲ 1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें	६
▲ 1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲ 1529	सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव कैसे हो?	६
▲ 1561	दु:खोंका नाश कैसे हो?	८
▲ 1587	जीवन सुधारकी बातें	८
▲ 1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओडिआ भी]	८
▲ 292	नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी कन्नड भी]	५
▲ 273	नल दमयन्ती [मराठी तमिल कन्नड गुजराती ओडिआ तेलुगु भी]	३
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	५
▲ 277	उद्धार कैसे हो?—५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती ओडिआ मराठी भी]	५
▲ 278	सच्ची सलाह—८ पत्रोंका संग्रह	८
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र—७२ पत्रोंका संग्रह	६
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र—७ पत्रोंका संग्रह	७
▲ 282	पारमार्थिक पत्र—९१ पत्रोंका संग्रह	६
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र—५४ पत्रोंका संग्रह	४
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ—[अंग्रेजी कन्नड गुजराती मराठी तेलुगु, ओडिआ भी]	५
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी गुजराती कन्नड तेलुगु भी]	८
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी भी]	८
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती मराठी भी]	८
▲ 1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	८
▲ 1283	सत्संगकी मार्मिक बातें	७
▲ 1150	साधनकी आवश्यकता—[मराठी भी]	७
▲ 320	वास्तविक त्याग	५
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओडिआ भी]	५
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड ओडिआ गुजराती भी]	३
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओडिआ भी]	४
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	८
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल ओडिआ गुजराती मराठी भी]	३
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओडिआ भी]	४
▲ 300	नारीधर्म	३
▲ 293	सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय [गुजराती भी]	२
▲ 294	संत महिमा [गुजराती ओडिआ भी]	१५
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बंगला तमिल तेलुगु, गुजराती ओडिआ मराठी अंग्रेजी भी]	२
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	१५
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती तमिल तेलुगु, ओडिआ कन्नड, मराठी भी]	२
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	३
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति—गजलगीतासहित [गुजराती असमिया तमिल मराठी भी]	२
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—(कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ) [ओडिआ भी]	३
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओडिआ भी]	२
▲ 306	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती ओडिआ व अंग्रेजी भी]	२
▲ 307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत कण) [ओडिआ कन्नड, गुजराती भी]	२
▲ 316	ईश्वर साक्षात्कारके लिये नाम जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 314	व्यापार सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती मराठी भी]	२
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	२
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	१५
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती तेलुगु भी]	२
▲ 270	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी)	२
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?	२
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	२
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओडिआ गुजराती अंग्रेजी भी]	१५

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक	मूल्य
■ 820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	७०
■ 050	पदरत्नाकर	५
■ 049	श्रीराधा माधव चिन्तन	५
▲ 058	अमृत कण	१६
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२
▲ 333	सुख शान्तिका मार्ग	१५
▲ 343	मधुर	११
▲ 056	मानव जीवनका लक्ष्य	१२
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	१२
▲ 514	दु:खमें भगवत्कृपा	१
▲ 386	सत्संग सुधा	१
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी तीन भागमें]	१५

कोड	मूल्य
▲347 तुलसीदल	१
▲339 सत्सगके बिखरे मोती—	१०
▲349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू संस्कृति	१२
▲350 साधकोंका सहारा—	१५
▲351 भगवच्चर्चा—(भाग ५)	१५
▲352 पूर्ण समर्पण	१५
▲353 लोक-परलोक-सुधार—(भाग १)	८
▲354 आनन्दका स्वरूप	८ ५
▲355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—	१२
▲356 शान्ति कैसे मिले ?	१३
▲357 दु ख क्यों होते हैं ?	१२
▲348 नैवेद्य	१
▲337 दाम्पत्य जीवनका आदर्श [गुजराती तेलुगु भी]	७
▲336 नारीशिक्षा [गुजराती भी]	८
▲340 श्रीरामचिन्तन	९
▲338 श्रीभगवन्नाम चिन्तन	१
▲345 भवरोगकी रामबाण दवा [ओडिआ भी]	७
▲346 सुखी बनो	७
▲341 प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	९
▲358 कल्याण-कुज—(क० कु० भाग १)	६
▲359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प (भाग २)	७
▲360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (भाग ३)	८
▲361 मानव कल्याणके साधन—(भाग-४)	१२
▲362 दिव्य सुखकी सरिता—(भाग ५)	६
[गुजराती भी]	
▲363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ (क कु भाग ६)	६
▲364 परमार्थकी मन्दाकिनी— (क० कु भाग ७)	५
▲366 मानव धर्म—	५
▲526 महाभाव कल्लोलिनी	६
▲367 दैनिक कल्याण सूत्र—	४
▲368 प्रार्थना—प्रार्थना पीयूष [ओडिआ भी]	५
▲369 गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	३
▲370 श्रीभगवन्नाम [ओडिआ भी]	३
▲373 कल्याणकारी आचरण	१
▲374 साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	४
▲375 वर्तमान शिक्षा	३
▲376 स्त्री धर्म प्रश्नोत्तरी	३
▲377 मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	१
▲378 आनन्दकी लहरें [बँगला ओडिआ गुजराती अंग्रेजी भी]	२
▲379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	३
▲380 ब्रह्मचर्य [ओडिआ भी]	२
▲381 दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य—	१
▲382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	२
▲344 उपनिषदोंके चौदह रत्न—	६
▲371 राधा माधव रससुधा (षोडशगीत) सटीक	३
▲384 विवाहमें दहेज—	१
▲809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें ?	१

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड	मूल्य
■465 साधन सुधा सिन्धु [ओडिआ भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	८
▲400 कल्याण पथ	८
▲401 मानसमें नाम वन्दना	८
▲605 जित देखूँ तित तू [गुजराती मराठी भी]	७
▲406 भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	७
▲535 सुन्दर समाजका निर्माण	८
▲1447 मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी ओडिआ बँगला गुजराती अंग्रेजी भी)	१०
▲1485 ज्ञानके दीप जले	१२
▲1175 प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला ओडिआ भी]	८
▲1247 मेरे तो गिरधर गोपाल	६
▲403 जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	८
▲436 कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती अंग्रेजी बँगला ओडिआ भी]	६
▲405 नित्ययोगकी प्राप्ति [ओडिआ भी]	६
▲1093 आदर्श कहानियाँ [ओडिआ बँगला भी]	७
▲407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड मराठी भी]	६
▲408 भगवान्‌से अपनापन [गुजराती ओडिआ भी]	५
▲861 सत्सग मुक्ताहार [गुजराती ओडिआ भी]	४
▲860 मुक्तिमें सबका अधिकार — [गुजराती भी]	१
▲409 वास्तविक सुख [तमिल ओडिआ भी]	५
▲1308 प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओडिआ भी]	६
▲1408 सब साधनोंका सार [बँगला भी]	४
▲411 साधन और साध्य [मराठी बँगला, गुजराती भी]	५
▲412 तात्त्विक प्रवचन [मराठी ओडिआ बँगला, गुजराती भी]	५
▲414 तत्त्वज्ञान कैसे हो ? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला गुजराती भी]	६
▲410 जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	६
▲822 अमृत बिन्दु [बँगला तमिल ओडिआ अंग्रेजी गुजराती मराठी कन्नड भी]	६
▲821 किसान और गाय [तेलुगु भी]	२
▲416 जीवनका सत्य [गुजराती अंग्रेजी भी]	५
▲417 भगवन्नाम [मराठी अंग्रेजी भी]	४
▲418 साधकोंके प्रति [बँगला मराठी भी]	४
▲419 सत्सगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	४
▲545 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग [गुजराती भी]	४
▲420 मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल बँगला मराठी गुजराती ओडिआ भी]	३
▲421 जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	५
▲422 कर्मरहस्य [बँगला तमिल कन्नड ओडिआ भी]	४
▲424 वासुदेव सर्वम् [मराठी अंग्रेजी भी]	४
▲425 अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	४
▲426 सत्सगका प्रसाद [गुजराती भी]	४
▲1019 सत्यकी खोज [गुजराती अंग्रेजी भी]	५
▲1479 साधनके दो प्रधान सूत्र [ओडिआ बँगला भी]	४
▲1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360 तू ही तू	२
▲1434 एक नयी बात	२
▲1440 परम पितासे प्रार्थना	१
▲1441 संसारका असर कैसे छुटे ?	२
▲1176 शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और हम कहाँ जा रहे हैं विचार करें [बँगला भी]	२
▲1255 कल्याणके तीन सुगम मार्ग [बँगला मराठी भी]	१५
▲431 स्वाधीन कैसे बनें ? [अंग्रेजी भी]	२
▲702 यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	२
▲589 भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती ओडिआ भी]	५
▲617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल बँगला तेलुगु, ओडिआ कन्नड गुजराती मराठी भी]	३
▲427 गृहस्थमें कैसे रहें ? [बँगला मराठी कन्नड ओडिआ अंग्रेजी तमिल तेलुगु, गुजराती असमिया भी]	६
▲432 एकै साधे सब सधै [गुजराती तमिल तेलुगु भी]	४
▲433 सहज साधना [गुजराती बँगला ओडिआ मराठी अंग्रेजी भी]	४
▲434 शरणागति [तमिल ओडिआ तेलुगु, कन्नड भी]	४
▲435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती ओडिआ अंग्रेजी मराठी भी]	५
■1012 पत्रामृत—(१०० पत्रोंका पैकेटमें) [गुजराती भी]	१
■1037 हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१ पत्रोंका पैकेटमें)	१
▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? [गुजराती ओडिआ भी]	४
▲515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती अंग्रेजी तमिल तेलुगु भी]	१
▲770 अमरताकी ओर [गुजराती भी]	५
▲438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती बँगला (गुरुतत्त्व सहित) मराठी भी]	२
▲439 महापापसे बचो [बँगला तेलुगु, कन्नड गुजराती तमिल भी]	२
▲440 सच्चा गुरु कौन ? [ओडिआ भी]	२
▲444 नित्य स्तुति और प्रार्थना [कन्नड तेलुगु भी]	२
▲729 सार संग्रह एवं सत्सगके अमृत कण [गुजराती भी]	२
▲445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? [बँगला भी]	२
▲745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]	२
▲632 सब जग ईश्वररूप है [ओडिआ गुजराती भी]	५
▲447 मूर्तिपूजा नाम जपकी महिमा [ओडिआ बँगला तमिल तेलुगु, मराठी गुजराती भी]	२

नित्यपाठ साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड हेतु

कोड	मूल्य
■592 नित्यकर्म पूजाप्रकाश [गुजराती भी]	३५
■1593 अन्त्यकर्म श्राद्धप्रकाश	७५
■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर	२
■610 व्रतपरिचय	२८
■1162 एकादशी व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप	१२
■1136 वैशाख-कार्तिक माघमास माहात्म्य	२
■1588 माघमासका माहात्म्य	५
■1367 श्रीसत्यनारायण व्रतकथा	८
■052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु कन्नड भी]	२
■1567 दुर्गासप्तशती—मूल मोटा (बेड़िया)	२२
■117 मूल, मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड भी]	१५
■876 दुर्गासप्तशती—मूल गुटका	७
■1346 सानुवाद मोटा टाइप	३
■118 सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओडिआ भी]	१८
■489 सजिल्द	२४
■866 केवल हिन्दी	१२
■1161 मोटा टाइप सजिल्द	३०
■1281 सटीक (राजसंस्करण)	३०
■819 श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य	१५
■206 सटीक	४
■226 मूल [मलयालम तेलुगु, कन्नड, तमिल गुजराती भी]	२
■509 सूक्ति सुधाकर—सूक्ति संग्रह	१५
■207 रामस्तवराज—(सटीक)	३
■211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी —अंग्रेजी अनुवादसहित [ओडिआ भी]	२
■224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र भक्त बिल्वमंगलरचित [तेलुगु, ओडिआ भी]	४
■231 रामरक्षास्तोत्रम्—[ ]	२
■715 महामन्त्रराजस्तोत्रम्	४
■704 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■705 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	३
■706 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■707 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■708 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■709 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■710 श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■711 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■712 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■713 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■810 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■495 दत्तात्रेय वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]	३
■229 श्रीनारायणकवच एवं अमोघ शिवकवच [ओडिआ भी]	३
■563 शिवमहिम्नस्तोत्र—[तेलुगु भी]	३
■054 भजन संग्रह—पाँचों भाग एकसाथ	२५
■140 श्रीरामकृष्णलीला भजनावली	१६
■142 चेतावनी पद संग्रह—(दोनों भाग)	१६
■144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	७
■1355 सचित्र स्तुति संग्रह	५
■1344 सचित्र-आरती संग्रह	१
■1591 आरती संग्रह—मोटा टाइप	१
■153 आरती संग्रह—१०२ आरतियोंका संग्रह	५
■807 सचित्र आरतियाँ [गुजराती भी]	१
▲385 नारद भक्ति सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र सानुवाद [बँगला तमिल भी]	२
■208 सीतारामभजन	३
■221 हरेरामभजन—दो माला (गुटका)	३
■222 हरेरामभजन—१४ माला	१०
■576 विनय पत्रिकाके पैंतीस पद	२
■225 गजेन्द्रमोक्ष सानुवाद, हिन्दी पद्य भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड ओडिआ भी]	२
■699 गङ्गालहरी	२
■232 श्रीरामगीता	३
■383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी—	१५
■1094 हनुमानचालीसा हिन्दी भावार्थसहित	४
■1181 हनुमानचालीसा मूल (रंगीन)	२
■227 (पॉकेट साइज) [गुजराती असमिया तमिल बँगला तेलुगु, कन्नड, ओडिआ भी]	१५
■695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती भी]	१

कोड	मूल्य
■1524 हनुमानचालीसा—विशिष्ट सं० (लघु आकार)	१
■1525 हनुमानचालीसा— अति लघु आकार	१
■228 शिवचालीसा—(असमिया भी)	२
■1185 शिवचालीसा— लघु आकार	१
■851 दुर्गाचालीसा विन्ध्येश्वरीचालीसा	२
■1033 दुर्गाचालीसा—लघुआकार	१
■203 अपरोक्षानुभूति	३
■139 नित्यकर्म प्रयोग	१
■524 ब्रह्मचर्य और सन्ध्या गायत्री	३
■1471 सन्ध्या सन्ध्या गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य	४
■210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित	३
■236 साधकदैनन्दिनी	२
■614 सन्ध्या	२

बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकें

कोड	मूल्य
■573 बालक अङ्क—(कल्याण-वर्ष २७)	११
■1316 बालपोथी (शिशु) रंगीन	१०
■461 भाग १	३
■212 भाग २	३
■684 भाग ३	३
■764 भाग ४	७
■765 भाग-५	७
■125 रंगीन भाग १	४
■216 बालकको दिनचर्या	३
■214 बालकके गुण	४
■217 बालकोंकी सीख	३
■219 बालकके आचरण	३
■218 बाल-अमृत वचन	३
■696 बाल प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	३
■215 आओ बच्चो तुम्हें बतायें	३
■213 बालकोंकी बोल चाल	३
■145 बालकोकी बातें	७
■146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओडिआ भी]	७
■150 पिताकी सीख [गुजराती भी]	८
■396 आदर्श ऋषिमुनि	५
■397 आदर्श देशभक्त	५
■398 आदर्श सम्राट	५
■402 आदर्श सुधारक	५
■399 आदर्श संत	५
■516 आदर्श चरितावली	
■116 लघुसिद्धान्तकौमुदी सजिल्द	२५
■148 वीर बालक (गुजराती भी)	६
■1437 वीर बालक (रंगीन)	७
■149 गुरु और माता पिताके भक्त बालक (गुजराती अंग्रेजी भी)	६
■1451 गुरु और माता पिताके भक्त बालक (रंगीन)	७
■152 सच्चे ईमानदार बालक	५
■1450 सच्चे ईमानदार बालक (रंगीन)	६
■155 दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ (गुजराती अंग्रेजी भी)	५
■1449 दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ (रंगीन)	६
■156 वीर बालिकाएँ (गुजराती भी)	५
■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन)	६
■727 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	३

सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड	मूल्य
■698 मार्क्सवाद और रामराज्य स्वामी करपात्रीजी	७५
■202 मनोबोध—	५
■746 भ्रमण नारद	
■747 सत्समहत्त्व—	३
■1300 महाकुम्भ पर्व	५
■542 ईश्वर—	२
■196 पत्रमाला	
■57 मानसिक दक्षता	२
■59 जीवनमें नया प्रकाश	१५
■60 आशाकी नयी किरणें	१६
■119 अमृतके घूँट	१५
■132 स्वर्णपथ	१४
■55 महकते जीवनफूल	२०
■1381 क्या करें? क्या न करें?—[गुजराती भी]	१८
■1461 हम कैसे रहें?	८
■1416 गरुडपुराण सारोद्धार (सानुवाद)	२
■64 प्रेमयोग	१८
■774 कल्याणकारी दोहा संग्रह गीताप्रेस परिचयसहित	५
■387 प्रेम सत्संग सुधामाला	१२
■668 प्रश्नोत्तरी	२
■501 उद्धव सन्देश	१३
■191 भगवान् कृष्ण [तमिल तेलुगु, मराठी गुजराती भी]	५
■193 भगवान् राम [गुजराती भी]	५
■195 भगवान्पर विश्वास	५
■120 आनन्दमय जीवन	१३
■130 तत्त्वविचार	९
■133 विवेक चूडामणि [तेलुगु बंगला भी]	१२
▲701 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका [ओडिआ बँगला तमिल तेलुगु, मराठी अंग्रेजी गुजराती कन्नड भी]	३
■131 सुखी जीवन	१
■122 एक लोटा पानी	१२
■888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी]	१२
■1217 भवनभास्कर	१
■134 सती द्रौपदी	९
■137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल कन्नड गुजराती बंगला भी]	८
■159 आदर्श उपकार (पढ़ो समझो और करो)	१०
■160 कलेजेके अक्षर—	१०
■161 हृदयकी आदर्श विशालता	१
■162 उपकारका बदला	१
■163 आदर्श मानव हृदय	१
■164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा	१
■165 मानवताका पुजारी	१०
■166 परोपकार और सच्चाईका फल	१
■510 असीम नीचता और असीम साधुता	१
■157 सती सुकला	४
■147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल गुजराती मराठी भी]	५
■129 एक महात्माका प्रसाद—	१८
■827 तेईस चुलबुली कहानियाँ—	१
■151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला	१
■1363 शरणागति रहस्य	२

चित्रकथा

कोड	मूल्य
■1114 श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी शैली १८वीं शताब्दी)	१
■190 बाल चित्रमय श्रीकृष्णलीला	१२
■868 भगवान् सूर्य (प्रथाकार)	१५
■1156 एकादश रुद्र (शिव)	५
■1032 बालचित्र रामायण—पुस्तकाकार	४
■869 कन्हैया [बँगला तमिल गुजराती ओडिआ तेलुगु भी]	१
■870 गोपाल [बँगला तेलुगु, तमिल भी]	१
■871 मोहन [बँगला तेलुगु, तमिल गुजराती ओडिआ अंग्रेजी भी]	१
■872 श्रीकृष्ण [बँगला तमिल तेलुगु भी]	१
■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी]	१
■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी]	१५
■1116 राजाराम [तेलुगु भी]	१५
■862 मुझे बचाओ मेरा क्या कसूर?	१५
■1017 श्रीराम—	१५
■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार)	१
■1418 श्रीकृष्णलीला दर्शन ( )	१
■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी]	१
■829 अष्टविनायक [ओडिआ मराठी गुजराती भी]	१
■1214 मानस स्तुति संग्रह	१०
■1343 हर हर महादेव	१५
■204 ॐ नमः शिवाय [बँगला ओडिआ कन्नड भी]	१५
■787 जय हनुमान [तेलुगु, ओडिआ भी]	१५
■779 दशावतार [बँगला भी]	१
■1215 प्रमुख देवता	१
■1216 प्रमुख देवियाँ	१
■1442 प्रमुख ऋषि मुनि	१५
■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	१५
■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [ ]	१५
■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ	१५
■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ	१५
■1420 पौराणिक देवियाँ	१
■205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती असमिया कन्नड अंग्रेजी ओडिआ बँगला भी]	१०
■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज	४
■537 बाल चित्रमय बुद्धलीला	
■194 बाल चित्रमय चैतन्यलीला [ओडिआ बँगला भी]	७
■693 श्रीकृष्णरेखा चित्रावली	
■656 गीता माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल तेलुगु भी]	८
■651 गोसेवाके चमत्कार—[तमिल भी]	१

रंगीन चित्र-प्रकाशन

कोड	मूल्य
▲237 जयश्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
▲546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण—	८
▲1001 जगज्जननी श्रीराधा—	८
▲1020 श्रीराधा कृष्ण—युगल छवि	८
▲491 हनुमान्‌जी—(भक्तराज हनुमान्)	८
▲492 भगवान् विष्णु	८
▲1568 भगवान् श्रीराम बालरूपमें	८
▲560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	८
▲1351 सुमधुर गोपाल	८
▲548 मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर)	८
▲776 सीताराम— युगल छवि	८
▲782 श्रीरामदरबारकी झाँकी	८
▲1290 नटराज शिव	८
▲630 सर्वदेवमयी गौ	८
▲531 श्रीबाँकेबिहारी	८
▲812 नवदुर्गा (मा दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण)	८
▲437 कल्याण चित्रावली—I	८
▲1320 कल्याण चित्रावली—II	८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड	मूल्य
■1184 श्रीकृष्णाङ्क	१
■749 ईश्वराङ्क	९
■635 शिवाङ्क	१
■41 शक्ति अङ्क	१२
■616 योगाङ्क	९
■627 संत अङ्क	१२५
■604 साधनाङ्क	१२
■1104 भागवताङ्क	
■1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	६५
■44 संक्षिप्त पद्मपुराण	१४
■539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	५५
■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	७०
■43 नारी अङ्क	१०
■659 उपनिषद् अङ्क—	११
■518 हिन्दू संस्कृति अङ्क	१२
■279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१५
■40 भक्त चरिताङ्क	१२
■573 बालक अङ्क	११
■1183 सं० नारदपुराण	१
■667 सतवाणी अङ्क	११
■587 सत्कथा अङ्क	१
■636 तीर्थाङ्क	१
■660 भक्ति अङ्क	
■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप	१३
■574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ	९
■789 सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	११
■631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२
■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९
■572 परलोक पुनर्जन्माङ्क	१
■517 गर्ग संहिता	८
■1113 नरसिंहपुराणम् सानुवाद	६
■1362 अग्निपुराण	१२
■1432 वामनपुराण	७५
■557 मत्स्यमहापुराण	१५
■657 श्रीगणेश अङ्क	७५
■42 हनुमान अङ्क	७५
■1361 सं० श्रीवराहपुराण	६
■791 सूर्याङ्क	६
■584 सं० भविष्यपुराण	९
■586 शिवोपासनाङ्क	७५
■628 रामभक्ति अङ्क	६५
■653 गोसेवा अङ्क	७५
■1131 कूर्मपुराण	८
■448 भगवल्लीला अङ्क	६५
■1044 वेद कथाङ्क	८
■1189 सं० गरुडपुराण	९
■1379 नीतिसार अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)	१२
■1472 नीतिसार अङ्क	८०
■1467 भगवत्प्रेम अङ्क-सजि (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१
■1542 भगवत्प्रेम-अङ्क अजिल्द (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	८
■1548 व्रतपर्वोत्सव अंक सजिल्द	१
■1585 व्रतपर्वोत्सव अंक अजिल्द	८
■1610 देवीपुराण [महाभागवत]-शक्तिपीठाङ्क	८
■2100 कल्याण मासिक अङ्क (रियायती गतवर्ष तकके)	४

Annual Issues of Kalyan Kalpataru

कोड	मूल्य
■1395 Woman N	40
■1396 Rama No	40
■1397 Man smrti No	40
■1398 Hindu Samskrti No	40
■602 Divine Love Number	60
■602A Humanity Numbe	60

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित अन्य भारतीय भाषाओके प्रकाशन

संस्कृत

कोड	मूल्य
▲ 679 गीतामाधुर्य	६

बँगला

कोड	मूल्य
■ 1577 श्रीमद्भागवत पुराण सटीक भाग I	१२५
■ 954 श्रीरामचरितमानस ग्रन्थाकार	१३
■ 1574 संक्षिप्त महाभारत भाग I	१२
■ 763 गीता साधक संजीवनी—परिशिष्टसहित	११०
■ 1118 गीता तत्त्व विवेचनी	७०
■ 556 गीता दर्पण—	४
■ 1489 गीता-दैनन्दिनी—२० ६	४५
■ 013 गीता पदच्छेद—	२५
■ *1444 गीता ताबीजी सजिल्द*	४
■ 1455 गीता लघु आकार	२
■ 1322 दुर्गासप्तशती सटीक	१८
■ 1460 विवेक चूड़ामणि	१०
■ 1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा)	१५
■ 1043 नवदुर्गा ( )	१
■ 1439 दशमहाविद्या ( )	१
■ 1292 दशावतार ( )	१
■ 1096 कन्हैया ( )	१
■ 1097 गोपाल ( )	१
■ 1098 मोहन ( )	१
■ 1123 श्रीकृष्ण ( )	१
■ 1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■ 1393 गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज) सजि	१
■ 1454 स्तोत्ररत्नावली	१६
■ 496 गीता भाषा टीका (पॉकेट सा॰ज)	६
▲ 1581 गीतार सारात्सार	६
■ 1496 परलोक पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ	१
▲ 275 कल्याण प्राप्तिक उपाय	१३
▲ 1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला	८
▲ 395 गीतामाधुर्य	५
▲ 1102 अमृत बिन्दु	६
■ 1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन	४
▲ 276 परमार्थ पत्रावली—(भाग-१)	५
▲ 1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति	४
▲ 1119 ईश्वर और धर्म क्यों ?	९
▲ 1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय	७
▲ 1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय	६
▲ 1452 आदर्श कहानियाँ	६
▲ 1453 प्रेरक कहानिया	४
■ 1513 मूल्यवान कहानियाँ	८
▲ 1469 सब साधनोंका सार	४
▲ 1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१
▲ 1359 जिन खोजा तिन पाइया	५
▲ 1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?	५
▲ 1303 साधकोंके प्रति	४
▲ 1358 कर्म रहस्य	४
▲ 1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	३
▲ 625 देशकी वर्तमान दशा—	३
▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें ?	४
▲ 903 सहज साधना	३
▲ 1368 साधना	३
▲ 1415 अमृतवाणी	७
▲ 312 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 1541 साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 955 तात्त्विक प्रवचन	४
■ 1103 मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र	३
▲ 449 दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व	३
▲ 956 साधन और साध्य	३
▲ 1579 साधनारमनोभूमि	६
▲ 330 नारद एवं शांडिल्य भक्ति सूत्र	२
▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित…	२
▲ 848 आनन्दकी लहरें	२
■ 626 हनुमानचालीसा	२
▲ 1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग	२
▲ 1293 शिखा धारणकी……	२
▲ 450 हम ईश्वरको क्यो मानें ?	२
▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान	१
▲ 451 महापापसे बचो	२
▲ *469 मूर्तिपूजा*	१
▲ 296 सत्संगकी सार बातें	१
▲ 443 संतानका कर्तव्य	१
▲ 1140 भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष	१५०

मराठी

कोड	मूल्य
■ 1314 श्रीरामचरितमानस सटीक मोटा टाईप	१३
■ 784 ज्ञानेश्वरी गुढार्थ दीपिका	१३
■ 853 एकनाथी भागवत—मूल	१
■ 7 गीता साधक संजीवनी टीका	१
■ 1304 गीता तत्त्व विवेचनी	७०
■ 1474 श्रीसकलसंतवाणी (भाग १)	६
■ 1475 श्रीसकलसंतवाणी (भाग-२)	१५
■ 1071 श्रीनामदेवाची गाथा	६
■ 859 ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	४
■ 15 गीता माहात्म्यसहित	३५
■ 504 गीता दर्पण	३५
■ 748 ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	२५
■ 14 गीता पदच्छेद	३
■ 1388 गीता श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१
■ 1257 गीता श्लोकार्थसहित	७
■ 1168 भक्त नरसिंह मेहता	९
▲ 429 गृहस्थमें कैसे रहे ?	८
▲ 1387 प्रेममें विलक्षण एकता	८
■ 857 अष्टविनायक	६
▲ 391 गीतामाधुर्य	७
▲ 1099 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 1335 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲ 1155 उद्धार कैसे हो ?	४
▲ 1074 आध्यात्मिक पत्रावली	६
▲ 1275 नवधा भक्ति	५
▲ 1386 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ 1340 अमृत बिन्दु	६
▲ 1382 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲ 1210 जित देखू तित तू	७
▲ 1330 मेरा अनुभव	८
■ 1277 भक्त बालक	५
■ 1073 भक्त चन्द्रिका	५
■ 1383 भक्तराज हनुमान्	५
▲ 886 साधकोंके प्रति	५
▲ 885 तात्त्विक प्रवचन	४
■ 1333 भगवान् श्रीकृष्ण	५
■ 1332 दत्तात्रेय वज्रकवच	३
■ *855 हरीपाठ*	३
■ 1169 चोखी कहानियाँ	४
▲ 1385 नल-दमयंती	३
▲ 1384 सती सावित्री कथा	२
▲ 880 साधन और साध्य	४
▲ 1006 वासुदेव सर्वम्	४
▲ 1276 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 1334 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 899 देशकी वर्तमान दशा…	३
▲ 1339 कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲ 1428 आवश्यक शिक्षा	४
▲ 1341 सहज साधना	४
▲ 802 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 882 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲ 883 मूर्तिपूजा	२
▲ *884 सन्तानका कर्तव्य*	२
▲ 1279 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲ 901 नाम जपकी महिमा	२
▲ 900 दुर्गतिसे बचो	२
▲ 902 आहार शुद्धि	
▲ 1170 हमारा कर्तव्य	२
▲ 881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲ 898 भगवन्नाम	४
▲ 1578 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

गुजराती

कोड	मूल्य
■ 1533 श्रीरामचरितमानस—बड़ी सटीक डीलक्स	१९०
■ 799 ग्रन्थाकार	१३
■ 1430 मूल मोटा	६०
■ 1552 भागवत सटीक खण्ड १	१२
■ 1553 खण्ड २	१२
■ 1326 सं० देवीभागवत	१३
■ 1286 संक्षिप्त शिवपुराण	११
■ 467 गीता साधक संजीवनी	१
■ 1313 गीता तत्त्व विवेचनी	७०
■ 785 श्रीरामचरितमानस—मझला सटीक	६
■ 468 गीता दर्पण	४५
■ 878 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	४
■ 879 —मूल गुटका	२५
■ 1365 नित्यकर्म पूजाप्रकाश	३५
■ 1565 गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	२२
■ 12 गीता पदच्छेद	२५
■ 1315 गीता—सटीक मोटा टाइप	१५
■ 1366 दुर्गासप्तशती—सटीक	१८
■ 1227 सचित्र आरतियाँ	१०
■ 1034 गीता छोटी—सजिल्द	१
■ *1225 मोहन— (चित्रकथा)*	१
■ 1224 कन्हैया—( )	१
■ 1228 नवदुर्गा—( )	१
■ 936 गीता छोटी—सटीक	७
■ 948 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
■ 1085 भगवान् राम—	४
■ 950 सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■ 1199 सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	२
■ 1226 अष्ट विनायक	१
■ 613 भक्त नरसिंह मेहता	१२
▲ 1518 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	९
▲ 1486 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१
▲ 1164 शीघ्र कल्याणके सोपान	१
▲ 1146 श्रद्धा विश्वास और प्रेम	१
▲ 1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला	८
▲ 1062 नारीशिक्षा	८
▲ 1129 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
■ *1400 पिताकी सीख*	८
■ 1425 वीर बालिकाएँ	५
■ 1423 गुरु माता-पिताके भक्त बालक	६
■ 1424 दयालु और परोपकारी बालक बालिकायें	५
■ 1422 वीर बालक	६
▲ 1128 दाम्पत्य जीवनका आदर्श	७
▲ 1061 साधन नवनीत	७
▲ 1520 कर्मयोगका तत्त्व भाग १	९
▲ 1264 मेरा अनुभव	८
▲ 1046 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	७
■ 1143 भक्त सुमन	७
■ *1142 भक्त सरोज*	७
▲ 1211 जीवनका कर्तव्य	८
▲ 404 कल्याणकारी प्रवचन	७
▲ 877 अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	७
▲ 818 उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲ *1265 आध्यात्मिक प्रवचन*	७
▲ 1516 परमशान्तिका मार्ग (भाग १)	८
▲ 1504 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१
▲ 1503 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲ 1325 सब जग ईश्वररूप है	५
▲ 1052 इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
■ 934 उपयोगी कहानियाँ	७
■ 1076 आदर्श भक्त	६
■ 1084 भक्त महिलारत्न	६
■ 875 भक्त सुधाकर	६
▲ *1067 दिव्य सुखकी सरिता*	६
▲ 933 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 1295 जित देखूँ तित तूँ	७
▲ 943 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
▲ 1260 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?	६
▲ 1263 साधन और साध्य	५
▲ 1294 भगवान् और उनकी भक्ति	५
▲ 932 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 392 गीतामाधुर्य	७
■ 1082 भक्त सप्तरत्न	५
■ 1087 प्रेमी भक्त	५
▲ *1077 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ*	५
▲ 940 अमृत बिन्दु	५
▲ 931 उद्धार कैसे हो ?	५
▲ 894 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ *413 तात्त्विक प्रवचन*	५
■ 892 भक्त चन्द्रिका	४
■ *895 भगवान् श्रीकृष्ण*	५
▲ 1126 साधन पथ	४
▲ 946 सत्संगका प्रसाद	४
▲ 942 जीवनका सत्य	५
▲ 1145 अमरताकी ओर	४
▲ 1066 भगवान्‌में अपनापन	४
■ 806 रामभक्त हनुमान्	४
▲ 1086 कल्याणकारी प्रवचन भाग-२	४
▲ 1287 सत्यकी खोज	५
▲ 1088 एकै साधे सब सधै	४
■ 1399 चोखी कहानियाँ	५
▲ 889 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 1141 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	३
▲ 939 मातृ शक्तिका घोर अपमान	३
■ 890 प्रेमी भक्त उद्धव	३

कोड	मूल्य
▲1047 आदर्श नारी सुशीला	४
▲1059 नल दमयन्ती	४
▲1045 बालशिक्षा	४
▲1063 सत्संगकी विलक्षणता	३
▲1064 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग	४
▲1165 सहज साधना	४
▲1151 सत्संगमुक्ताहार	४
■1401 प्रश्नोत्तरी	३
■ 935 संक्षिप्त रामायण	२
▲ 893 सती सावित्री	२
▲ 941 देशकी वर्तमान दशा—	२
▲1177 आवश्यक शिक्षा	३
▲ 804 गर्भपात उचित या अनुचित‑	२
▲1049 आनन्दकी लहरें	२
■ 947 महात्मा विदुर	३
■ 937 विष्णुसहस्रनाम	२
▲1058 मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050 सच्चा सुख	२
▲1060 त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
■ 828 हनुमानचालीसा	२
▲ 844 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055 हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१५
▲1048 संत महिमा	२
▲1310 धर्मके नामपर पाप	२
▲1179 दुर्गतिसे बचो	१५
▲1178 सार संग्रह, सत्संगके अमृत कण	२
▲1152 मुक्तिमें सबका अधिकार	१५
▲1207 मूर्तिपूजा नाम जपकी महिमा	१५
▲1167 भगवत्तत्त्व	१५
▲1206 धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	२
▲1500 सन्ध्या गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051 भगवान्‌की दया	१५
■1198 हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1229 पंचामृत	१
▲1054 प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१५
▲ 938 सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056 चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053 अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१५
▲1127 ध्यान और मानसिक पूजा	१५
▲1148 महापापसे बचो	२
▲1153 अलौकिक प्रेम	१५
—— तमिल ——	
■1426 साधक सजीवनी (भाग १)	७५
■1427 साधक सजीवनी (भाग २)	७५
■ 800 गीता तत्त्व विवेचनी	८०
■1534 वा० रा० सुन्दरकाण्ड	७०
■1256 अध्यात्मरामायण	६
■ 823 गीता पदच्छेद	४
■ 743 गीता मूलम्	३५
▲ 389 गीतामाधुर्य	९
■ 365 गोसेवाके चमत्कार	१
■1134 गीता माहात्म्यकी कहानियाँ	१
▲1007 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553 गृहस्थमें कैसे रहें ?	९

कोड	मूल्य
▲ 850 संतवाणी— (भाग १)	७
▲ 952 संतवाणी— („ २)	७
▲ 953 (३)	७
▲1353 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1354 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
■ 795 गीता भाषा	६
■ 646 चोखी कहानियाँ	७
■ 608 भक्तराज हनुमान्	७
■1246 भक्तचरित्रम्	७
▲ 643 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 550 नाम जपकी महिमा	१५
▲1289 साधन पथ	५
▲1480 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	७
▲1481 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482 भक्तियोगका तत्त्व	७
■ 793 गीता मूल विष्णुसहस्रनाम	६
▲1117 देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110 अमृत बिन्दु	६
▲ 655 एकै साधे सब सधै	५
▲1243 वास्तविक सुख	६
■ 741 महात्मा विदुर	५
▲ 536 गीता पढ़नेके लाभ सत्यकी शरणसे मुक्ति	३
▲ 591 महापापसे बचो संतानका कर्तव्य	३
▲ 609 सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 568 शरणागति	३
▲ 805 मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲ 607 सबका कल्याण कैसे हो?	२
■ 794 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127 उपयोगी कहानियाँ	८
■ 600 हनुमानचालीसा	३
▲ 466 सत्संगकी सार बातें	२
▲ 499 नारद भक्ति सूत्र	१५
■ 601 भगवान् श्रीकृष्ण	७
■ 642 प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647 कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 648 श्रीकृष्ण—( )	१५
■ 649 गोपाल— ( )	१५
■ 650 मोहन— ( )	१५
■1042 पञ्चामृत	२
▲ 742 गर्भपात उचित या...	२५
▲ 423 कर्मरहस्य	४
▲ 569 मूर्तिपूजा	१५
▲ 551 आहारशुद्धि	२
▲ 645 नल दमयन्ती	६
▲ 606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 792 आवश्यक चेतावनी	२
—— कन्नड़ ——	
■1112 गीता तत्त्व विवेचनी	७०
■1369 / 1370 गीता साधक सजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१४
■1558 अध्यात्मरामायण	३०
■1560 रामचरितमानस सटीक	११
■1559 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	५५
■ 726 गीता पदच्छेद	३
■ 718 गीता तात्पर्यके साथ	१५
■1372 गीता माहात्म्य	९
■1375 ॐ नम शिवाय	१५

कोड	मूल्य
■1357 नवदुर्गा	१०
▲1109 उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲ 945 साधन नवनीत	१०
■ 724 उपयोगी कहानियाँ	८
▲1499 नवधाभक्ति	५
▲1498 भगवत्कृपा	४
▲ 833 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 834 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	९
■1107 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288 गीता श्लोकार्थ	६
▲ 716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
■ 832 सुन्दरकाण्ड (सटीक)	८
■ 840 आदर्श भक्त	७
■ 841 भक्त सप्तरत्न	८
■ 843 दुर्गासप्तशती—मूल	१
▲ 390 गीतामाधुर्य	७
▲ 720 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1374 अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲ 128 गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
■ 661 गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721 भक्त बालक	६
■ 951 भक्त चन्द्रिका	५
■ 835 श्रीरामभक्त हनुमान्	६
■ 837 विष्णुसहस्रनाम—सटीक	५
■ 842 ललितासहस्रनामस्तोत्र	४
■1373 गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106 ईशावास्योपनिषद्	३
▲ 717 सावित्री सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 723 नाम जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३
▲ 725 भगवान्‌की दया एवं—	३
▲ 722 सत्यकी शरणसे मुक्ति गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325 कर्मरहस्य	४
▲ 597 महापापसे बचो	१५
▲ 719 बालशिक्षा	३
▲ 839 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1371 शरणागति	४
▲ 836 नल दमयन्ती	३
■ 737 विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
▲ 838 गर्भपात उचित या अनुचित—	२
■ 736 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105 श्रीवाल्मीकि रामायणम् संक्षिप्त	२
■ 738 हनुमत् स्तोत्रावली	२
▲ 593 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	
▲ 598 वास्तविक सुख	४
▲ 831 देशकी वर्तमान दशा तथा	३
—— असमिया ——	
■ 714 गीता भाषा-टीका—पॉकेट साइज	७
■1222 श्रीमद्भागवत माहात्म्य	७
■ 825 नवदुर्गा—	५
▲ 624 गीतामाधुर्य—	६
▲1487 गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
■1323 श्रीहनुमान चालीसा	२
■1515 शिवचालीसा	२
▲ 703 गीता पढ़नेके लाभ	१

कोड	मूल्य
—— ओड़िआ ——	
■1551 संतजगन्नाथदासकृत भागवत	१४०
■1121 गीता साधक संजीवनी	११
■1100 गीता तत्त्व विवेचनी	७५
■1463 रामचरितमानस सटीक मोटा टाइप	१३
■1218 मूल मोटा टाइप	७०
■1473 साधन सुधा सिन्धु	९
■1298 गीता दर्पण	४
■ 815 गीता श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	२
■1219 गीता पञ्चरत्न	१५
■1009 जय हनुमान् (चित्रकथा)	१५
■1250 ॐ नम शिवाय ( )	१५
■1010 अष्टविनायक ( )	१०
■1248 मोहन ( )	१०
■1249 कन्हैया („)	१
■ 863 नवदुर्गा ( )	१
■1494 बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157 गीता सटीक मोटे अक्षर	१२
■1465 गीता-अन्वय अर्थसहित पॉकेट साइज	१५
▲1511 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
■1476 दुर्गा सप्तशती सटीक	१८
▲1251 भवरोगकी रामबाण दवा	९
▲1270 नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268 वास्तविक सुख	५
▲1209 प्रश्नोत्तर मणिमाला	८
▲1464 अमृत बिन्दु	६
▲1274 परमार्थ सूत्र संग्रह	८
▲1254 साधन नवनीत	९
■1008 गीता—पॉकेट साइज	७
▲ 754 गीतामाधुर्य	६
▲1208 आदर्श कहानियाँ	६
▲1139 कल्याणकारी प्रवचन	६
■1342 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा—	७
▲1205 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1506 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1272 निष्काम श्रद्धा और प्रेम	८
■1204 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
▲1299 भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854 भक्तराज हनुमान्	५
▲1004 तात्त्विक प्रवचन	५
▲1138 भगवान्‌से अपनापन	५
▲1187 आदर्श भ्रातृप्रेम	४
▲ 430 गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
▲1321 सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269 आवश्यक शिक्षा	५
▲ 865 प्रार्थना	३
▲ 796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	३
■1154 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	३
▲1174 आदर्श नारी सुशीला	३
▲1507 उद्धार कैसे हो	५
■ 541 गीता मूल विष्णुसहस्रनाम सहित	३
▲1003 सत्संगमुक्ताहार	४
▲1512 साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 817 कर्मरहस्य	३
▲1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	३
▲1079 बालशिक्षा	४

श्री गुप्ता ...
पुस्तकालय ... [५००]

कोड	मूल्य
▲1163 बालकोंके कर्तव्य	४
▲1252 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 757 शरणागति	३
▲1186 श्रीभगवन्नाम	३
▲1267 सहज साधना	३
▲1005 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203 नल दमयन्ती	३
▲1253 परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	३
▲1220 सावित्री और सत्यवान्	२
▲ 826 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
■ 856 हनुमानचालीसा	२
▲ 798 गुरुतत्त्व	१५
▲ 797 सन्तानका कर्तव्य	१५०
■1036 गीता—मूल लघु आकार	२
■1509 रामरक्षास्तोत्र	२
■1070 आदित्यहृदयस्तोत्र	१५
■1068 गजेन्द्रमोक्ष	१५
■1069 नारायणकवच	१५०
▲1089 धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	१५०
▲1039 भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	१५०
▲1090 प्रेमका सच्चा स्वरूप	१५०
▲1091 हमारा कर्तव्य	१५०
▲1040 सत्संगकी कुछ सार बातें	१५
▲1011 आनन्दकी लहरें	१५
▲ 852 मूर्तिपूजा नामजपकी महिमा	१५
▲1038 संत महिमा	१५
▲1041 ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221 आदर्श देवियाँ	३
■1201 महात्मा विदुर	३
■1202 प्रेमी भक्त उद्धव	
■1173 भक्त चन्द्रिका	५
उर्दू	
■1446 गीता उर्दू	८

कोड	मूल्य
▲ 393 गीतामाधुर्य	८
▲ 590 मनकी खटपट कैसे मिटे	०८०
तेलुगु	
■1573 श्रीमद्भागवत मूल मोटा टाइप	१२
■1352 रामचरितमानस सटीक ग्रन्थाकार	१२
■1419 रामचरितमानस-केवल भाषा	७०
■1557 वाल्मीकिरामायण भाग१	११
■1429 श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477 (सामान्य)	६५
■1172 गीता तत्त्व विवेचनी	८
■ 845 अध्यात्मरामायण	७५
■ 772 गीता पञ्चरत्न अन्वयसहित	२५
■ 914 स्तोत्ररत्नावली	२
■1569 हनुमत्स्तोत्रावली	३
■1466 वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड मूल पुस्तकाकार	३
■ 924 सुन्दरकाण्ड मूल गुटका	१८
■1532 वचनमु	३
■1026 पंच सूक्तमुलु रुद्रमु	५
■ 887 जय हनुमान् पत्रिका	१५
■ 771 गीता तात्पर्यसहित	१५
■ 910 विवेकचूडामणि	१५
▲ 904 नारद भक्तिसूत्रमुलु (प्रेमदर्शन)	१२
■ 909 दुर्गासप्तशती—मूलम्	१२
■1029 भजन संकीर्तनावली	१२
■1301 नवदुर्गा पत्रिका	१
■1309 गीता माहात्म्यकी कहानियाँ	१
■1390 गीता तात्पर्य पॉकेट साइज मोटा टाइप	१०
■ 691 श्रीभीष्मपितामह	१
▲1028 गीतामाधुर्य	१
▲ 915 उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲1572 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲ 905 आदर्श दाम्पत्य जीवनमु	८
■1526 गीता मूल मोटे अक्षर, पॉकेट साइज	८
■1570 गीता ताबीजी	४

कोड	मूल्य
■1031 गीता—छोटी पॉकेट साइज	६
■1571 गीता लघु आकार	२
■ 929 महाभक्तुलु	७
■ 919 पंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	७
■1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	६
▲ 768 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■ 908 नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682 भक्त पञ्चरत्न	६
■ 687 आदर्श भक्त	६
■ 767 भक्तराज हनुमान्	६
■ 917 भक्त चन्द्रिका	७
■ 918 भक्त सप्तरत्न	८
■ 641 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663 गीता भाषा	६
■ 662 गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753 सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
■ 685 भक्त बालक	५
■ 692 चोखी कहानियाँ	५
▲ 920 परमार्थ पत्रावली	५
■ 930 दत्तात्रेय वज्र कवच	३
■ 846 ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686 प्रेमीभक्त उद्धव	४
■1023 श्रीशिवमहिम्न स्तोत्रम् सटीक	३
■1025 स्तोत्रकदम्बम्	३
■ 674 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675 सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906 भगवन्तुडे आत्मेयुडु	३
■ 801 ललितासहस्रनाम	४
■ 688 भक्तराज ध्रुव	३
■ 670 विष्णुसहस्रनाम मूल	२
■1527 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलीसहित	४
■1531 गीता विष्णुसहस्रनाम मोटा टाइप	८

कोड	मूल्य
■ 732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■ 912 रामरक्षास्तोत्र सटीक	२
■ 677 गजेन्द्रमोक्षम्	२
▲ 913 भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु नाम स्मरणमें	१५
▲ 923 भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
▲ 760 महत्त्वपूर्ण शिक्षा	५
▲ 761 एकै साधे सब सधै	५
▲ 922 सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759 शरणागति एवं मुकुन्दमाला	३
▲ 752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734 आहारशुद्धि मूर्तिपूजा	२
▲ 664 सावित्री सत्यवान्	
▲ 665 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 921 नवधा भक्ति	४
▲ 666 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	१५
▲ 671 नामजपकी महिमा	१
▲ 678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731 महापापसे बचो	२
▲ 925 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	१५
▲1547 किसान और गाय	२
▲ 758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 916 नल दमयन्ती	५
▲ 689 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 690 बालशिक्षा	४
▲ 907 प्रेमभक्ति प्रकाशिका	१५
▲ 673 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	१५
▲ 926 सन्तानका कर्तव्य	२
मलयालम	
■ 739 गीता विष्णुसहस्रनाम मूल	४
■ 740 विष्णुसहस्रनाम—मूल	१५०

Our English Publications

■1318 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hind Text, Transl iteration & English Translation) 200
■ 456 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation) 120
■ 786 „ Med um 70
■ 452 } Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa
453 } (W th San krit Te t and Engl sh Transl t o) Set of 2 volumes 300
■ 564 } Śrīmad Bhāga ata (W th Sanskrit
565 } Text and English Translation) Set 250
■1080 } Śrīmad Bh gavadgītā Sādhaka Sañj vanī
1081 (By Swami Ramsukhdas) (Engl h Comme tary) Set of 2 Volumes 100
■ 457 Śrīm d Bhagavadgītā Tattv Vivecanī (By Jayad yal Goyandka) Deta l d Commentary 70
■ 455 Bhag vadgītā (W th San krit Te t and E glish Tran lation) Pocket s z 5
■ 534 „ (Bound) 10
■ 8 4 Songs from Bhartṛh ri

■1223 Bhaga adgītā (Roman Gītā) (With Sanskrit Text, Translit eration and English Translation) 10
▲ 783 Abortion Right or Wrong You Decide 2
■ 494 The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)
■1528 Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size) 3
■1491 Mohana (Picture Story) 10
■1492 Rāma Lalā (Picture Story) 15
■1445 Virtuous Children 13
■1545 Brave and Honest Children 13

— By Jayadayal Goyandka —

▲ 477 Gems of Truth [Vol I] 8
▲ 478 [Vol II] 8
▲ 479 Sure Steps to God Realization 12
▲ 481 Way to Divi e Bli s 5
▲ 482 What is Dharma What is God 1
▲ 480 Instructi e Eleven Stories 4
▲1285 Moral Stories 10
▲1284 Some Ideal Characters of Rāmaya a 8
▲1 45 Some Exemplary Ch racters of the Mah bharata 7

▲ 694 Dialogue with the Lord During Meditation 2
▲1125 Five Divine Abodes 3
▲ 520 Secret of Jñānayoga 12
▲ 521 „ Premayoga 9
▲ 522 Secret of Karmayoga 12
▲ 523 „ „ Bhaktiyoga 13
▲ 658 „ „ Gītā 6
▲1013 Gems of Satsanga 1
▲1501 Real Love 4

— By Hanuman Prasad Poddar —

▲ 484 Look Beyond the Veil 8
▲ 6 2 How to Attain Eternal Happiness? 8
▲ 483 Turn to God 8
▲ 485 Path to Divinity 7
▲ 847 Gopis Love for Śrī Kṛṣṇa 4
▲ 620 The Di ine Name and Its Practice 3
▲ 486 Wavelets of Bliss & the D ine Message

— By Swami Ramsukhdas —

▲1470 For Sal tion of Mankind 12
▲ 619 Ease in God Realization 4
▲ 471 Benedictory Discourses 6
▲ 473 Art of Livi g 5
▲ 487 Gītā Mādhurya 7
▲1101 The Drops of Nectar (Amrta Bindu) 5

▲ 472 How to Lead A Household Life 4
▲ 570 Let Us Know the Truth 4
▲ 638 Sahaja Sādhanā 5
▲ 634 God is Everything 4
▲ 621 Invaluable Ad ice 3
▲ 474 Be Good 9
▲ 497 Truthfulness of Life 2
▲ 669 The Divine Name 2
▲ 476 How to be Self R liant
▲ 552 Way to Attain the Suprem Bliss 1
▲ 562 Ancient Idealism for Modernday Living 1

— Special Editions —

■1411 Gītā Roman (San krit text, Transl teration & Engl sh Translation) Book Size 20
■1407 The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas) 10
■1406 Gītā Mādhurya (By Swami R m ukhdas) 15
■1438 Discovery of Truth and Immortal ty (By Swami Ramsukhdas) 15
■1413 All is God (By Swami Rams khdas) 10
■1414 The Story f M rā Bāī (Bankey B hari) 15

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग) पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षमें रु० १३० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १५०) है। विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail) से US$25 (रु० ११५०) तथा समुद्री डाक (Sea mail) से US$13 (रु० ६००) है। समुद्री डाकसे पहुँचनेमें बहुत समय लग सकता है, अतः हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये। सदस्यता शुल्कके साथ बैंक कलक्शन चार्ज US$6 अतिरिक्त भेजना चाहिये।

२- कल्याण का नया वर्ष जनवरीमें आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

३-ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोंपर अवश्य भेज देना चाहिये जिससे उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे भेजा जा सके। जिन ग्राहक-सज्जनोंसे शुल्क-राशि अग्रिम प्राप्त नहीं होती, उन्हें विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेका नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमें यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमें रु० १० ग्राहकको अधिक देना पड़ता है, परंतु अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अतः सभी ग्राहकोंको वी०पी०पी० ठीक समयसे छुड़ा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने/वी०पी० पी० छुड़ानेके अतिरिक्त खर्चमें बच सकते हैं।

४-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/वी०पी०पी०से प्रेषित किया जाता है। फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क माहके अन्तिम तारीखतक न मिले तो डाक-विभागमें जाँच करनेके उपरान्त हमें सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोंके उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः भेजनेका प्रयास किया जाता है।

५-पता बदलनेकी सूचना समयसे भेज देनी चाहिये जिससे अङ्क प्राप्तिमें असुविधा एवं विलम्ब न हो। पत्रोंमें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढ़नेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोंमें लिखना चाहिये।**

६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाई होना कठिन है। अतः 'ग्राहक-संख्या' प्रत्येक पत्रमें अवश्य लिखी जानी चाहिये।

७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं।

८- कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क (भारतमें) सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ६५०, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ७५० हैं। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० ३०७६५/७७ श्री जुबल्ली नगर
प्र० तिथि २०-१२-२००५ पुस्तक।
पजीकृत-सख्या—NP/GR—13/06
LICENCE NO WPP/GR-03/2006 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

स्टेशन

संस्कारसारसर्वस्व

५४० पत्रिका

वेदमनूच्याचार्योऽन्तवासिनमनुशास्ति। सत्य वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद। आचार्याय प्रिय धनमाहृत्य प्रजातन्तु मा व्यवच्छत्सी। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम्। दवपितृकार्याभ्या न प्रमदितव्यम्।

मातृदेवा भव। पितृदवा भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदवा भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकः सुचरितानि। तानि त्वयापास्यानि। ना इतराणि। य क चास्मच्छ्रेया॰सा ब्राह्मणा। तषा त्वयाऽऽसनन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया दयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया दयम्। ह्रिया दयम्। भिया देयम्। सविदा दयम्।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा या वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। य तत्र ब्राह्मणा सम्मर्शिन। युक्ता आयुक्ता। अलूक्षा धर्मकामा स्यु। यथा त तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथा। अथाभ्याख्यातषु। य तत्र ब्राह्मणा सम्मर्शिन। युक्ता आयुक्ता। अलूक्षा धर्मकामा स्यु। यथा त तषु वर्तेरन्। तथा तषु वर्तेथा। एष आदश। एष उपदश। एषा वेदापनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।

वदका भलाभाँति अध्ययन कराकर आचार्य अपन आश्रमम रहनवाले ब्रह्मचारी विद्यार्थीका शिक्षा देत हैं— तुम सत्य बाला धर्मका आचरण करो स्वाध्यायम कभी न चूका आचार्यक लिये दक्षिणाक रूपम वाञ्छित धन लाकर (दा फिर उनकी आज्ञास गृहस्थ-आश्रमम प्रवश करक) सतान-परम्पराको (चालू रखा उसका) उच्छद न करना (तुमका) सत्यस कभी नहीं डिगना चाहिय धर्मस नहीं डिगना चाहिय शुभ कर्मोंस कभा नहीं चूकना चाहिय उन्नतिक साधनास कभी नहीं चूकना चाहिय वदाक पढने और पढानम कभी भूल नहीं करनी चाहिये देवकार्यस और पितृकार्यस कभी नहीं चूकना चाहिय।

तुम माताम भगवद्बुद्धि करनवाले बना पिताको भगवद्रूप समझनवाले होआ आचार्यका दवरूप समझनवाले बनो, अतिथिको दवतुल्य समझनवाल होआ जा-जा निर्दोष कर्म हैं उन्हींका तुम्ह सेवन करना चाहिय दूसरे (दापयुक्त) कर्मोंका कभी आचरण नहीं करना चाहिय हमार (आचरणामसे भी) जा-जा अच्छे आचरण हैं, उनका ही तुमको सवन करना चाहिये दूसराका कभी नहीं, जा काई भी अपनसे श्रष्ठ (गुरजन एव) ब्राह्मण आय उनको तुम्ह आसन-दान आदिक द्वारा सवा करक विश्राम देना चाहिये श्रद्धापूर्वक दान दना चाहिये बिना श्रद्धाके नहीं देना चाहिये आर्थिक स्थितिके अनुसार दना चाहिये लज्जासे दना चाहिये भयसे भी दना चाहिये (और) (जा कुछ भी दिया जाय, वह सब) विवेकपूर्वक देना चाहिय।

इसक बाद यदि तुमको कर्तव्यक निर्णय करनेम किसी प्रकारकी शङ्का हो या सदाचारके विषयम कोई शङ्का कदाचित् हो जाय तो वहाँ जो उत्तम विचारवाले परामर्श देनेम कुशल कर्म आर सदाचारम पूर्णतया सलग्न स्निग्ध स्वभाववाले (तथा) एकमात्र धर्मक ही अभिलाषी ब्राह्मण हा वे जिस प्रकार उस कर्म और आचरणके क्षेत्रम बर्ताव करते हो, उस कर्म और आचरणके क्षेत्रम वैस ही तुमको भी बर्ताव करना चाहिये तथा यदि किसी दोषस लाञ्छित मनुष्याके साथ बर्ताव करनेमे (सदेह उत्पन्न हो जाय तो भी) जो वहाँ उत्तम विचारवाल परामर्श देनम कुशल सब प्रकारसे यथायोग्य सत्कर्म और सदाचारम भलीभाँति लगे हुए रूखपनसे रहित धर्मके अभिलायी (विद्वान्) ब्राह्मण हा वे जिस प्रकार उनके साथ बर्ताव कर, उनक साथ वैसा ही तुमको भी बर्ताव करना चाहिये यह शास्त्रकी आज्ञा है, यही (गुरुजनाका अपने शिष्यो और पुत्रोके लिय) उपदेश है यही वेदाका रहस्य है और यही परम्परागत शिक्षा है। इसी प्रकार तुमका अनुष्ठान करना चाहिये इसी प्रकार यह अनुष्ठान करना चाहिये। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

~~~o~~~
~~~